समर्पण

—:0:—

मेरे पिता भक्त मूल चन्द जी विज क्षत्री वासी

तहसील चन्योट, जिला झंग ब्राह्मणों द्वारा सदैव म

की कथाएं बड़े प्रेम के साथ श्रवण किया करते थे

इस उत्तम, प्राचीन, शिक्षा दायक, धर्म के सागर, वीर

कोष, ग्रंथ के सुनने में उन को रुचि रहती थी इस का

मैं इस पुस्तक को उन्हीं के नाम पर समर्पण करता हूं ॥

रामदित्तामल विज क्षत्री
पुस्तकां वाला लोहारी दरवाज़ा
लाहौर ॥

८ अक्टोबर स० १९१२

निवेदन

—:०:—

लाला राम दित्ता मल सपुत्र भक्त मूल चन्द साहिब जाति के विज चत्री झंग के ज़िले के रजोया ग्राम के रहने वाले हैं आपने प्रथम लाहौर के प्रसिद्ध कारखाने मुफ़ीद आम में जिस के मालिक स्वर्गवासी श्रीमान् राय साहिब मुन्शी गुलाब सिंह जो समय के बड़े दानी और भले पुरुष थे, थे और अब उन के सपुत्र राय बहादर लाला मोहन लाल साहिब आनरेरी मजिस्टरेट लाहौर और लाला लाल चंद साहिब हैं पुस्तक बेचने का काम बहुत काल तक कीया। पुनः १८९६ में आपने लुहारी दर्वाजा के अंदर पुस्तकों की अपनी दुकान खोली, पुस्तकों का छापना और इन का बेचना एक ऐसा कार्य है कि यदि इस के करने वाला चाहे तो इस पंजाबी कहावत "नाले पुण्य नाले फलयां" के अनुसार आप भी अपना गुज़ारा अच्छी तरह कर सकता है और लोगों को भी बहुत सा लाभ पहुंचा सकता है, लाला राम दित्ता मल ने ऐसा ही कीया और अब भी कर रहे हैं और आशा है कि आगे भी करेंगे, आप ने महाभारत जैसे उत्तम और धर्म के सागर ग्रंथ और रामायण जैसी पवित्र पुस्तक को लखनौ के प्रसिद्ध उर्दू कवीशर मुन्शी द्वारका प्रसाद उफ़क़ से बहुत सा धन देकर उर्दू अक्षरों में करवा कर छपवाया और बहुत थोड़ा दाम रक्खा उन ग्रंथों से जैसा कि आशा थी हिंदू जाति ने बहुत लाभ उठाया

जहां इस देश में इन ग्रंथों को कोई जानता नहीं था जहा इन की कथाओं को केवल बड़े बड़े विद्वान पंडित ही करके अपने थोड़े से श्रोताओं को सुना सकते थे अब कोई ही ऐसा स्थान होगा जहां यह ग्रंथ न हों, एक पुरुष इन को पढ़ कर दूसरे को, पढ़ने के लिये देदेता है, और जगा जगा पर थोड़ा सा उर्दू पढ़े हुये मनुष्य इन ग्रंथों को लेकर श्रोताओं को सुना कर आनन्द देते हैं और आप भी आनन्द पाते हैं ॥

अब लाला साहिब ने हिंदी जानने वाले पुरुषों और स्त्रियों के हितार्थ उसी उपरोक्त कहावत को लेते हुये इस ग्रंथ को सरल हिंदी में मुझ से करवा कर प्रकाशत कीया है और इस का दाम केवल ८) इस कारण रक्खा है कि उर्दू के पुस्तकों के समान इस से भी हिंदी जानने वाले धनी और निर्धन दोनों लाभ उठा सकें, आशा है कि लाला जी की यह इच्छा भी पूर्ण होगी ॥

इस ग्रंथ में यदि मेरी ओर से कोई भूल रह गई हो तो पाठकगण उस भूल की ओर दृष्टि न देते हुये इस से लाभ उठाने की ओर अपना ध्यान दें ॥

सालिग्राम

ओ३म्

मंगलाचरण

नमस्कार है उस पारब्रह्म, अविनाशी, सत्‌चिदानन्द परमेश्वर को जिसने इस ब्रह्माण्ड को रचकर धारण कीया हुआ है वह परम पूज्य संसार के सकल जीवों को उनके पूर्व कर्म अनुसार इस जगत में उत्पन्न करके उन कर्मों का फल देता है, वह बड़ा न्यायकारी सदैव न्याय करता हुआ किसी के साथ किसी को अन्याय नहीं करने देता यदि करे तो उस को उस का फल देता है। वह पारब्रह्म सर्वज्ञ है सब के दिलों की जानने वाला है, वह कृपालु है, और दयालू है, अजर है, अमर है नित्य है, पवित्र है, उस के स्मरण से जीव मोक्ष को प्राप्त होवे हैं, अद्वतीय है अर्थात उसके साथ का और कोई नहीं है, सकल ऋषि, मुनि, तपीश्वर, योगी, महात्मा आदि उसी का ध्यान करते चले आये हैं और अब भी कर रहे हैं, उसी का ध्यान करना सब, का परम धर्म है, वह सकल दुःखों का हरता है, सबके कामों को निर्विघ्न पूरा होने में सहायता देता है मैं भी इस उत्तम ग्रंथ को सरल और सुगम हिंदी में करने की इच्छा से उसको कर जोड़ कर नमस्कार करता हुं और प्रार्थना करता हुं कि वह मेरे इस महान कार्य्य को निर्विघ्न पूरा करे ताकि थोड़ी विद्या वाले और थोड़े धन वाले जीव भी इस से लाभ उठा सकें॥

सालिग्राम

आदि पर्व

॥ पहिला अध्याय ॥

जगत की उत्पत्ति और संक्षिप्त महाभारत

पर युग के अन्त में नैमिषारण्य क्षेत्र में जो अवध देश में एक बड़ा तीर्थ है शौनकादि बड़े बड़े विद्वान तपीश्वर बारह वर्ष में समाप्त होने वाला यज्ञ कर रहे थे कि महर्षि सूत जी के बेटे उग्रश्रवा जी भी, जो पूर्ण विद्वान, ब्रह्मचारी और तपस्वी थे तीर्थ यात्रा करते हुये वहां आ पहुंचे आपस में दण्डवत प्रणाम कर के और कुशल पूछ कर ऋषियों ने बड़े आदर के साथ उन को आसन पर बिठलाया और पूछा कि महाराज ! आप कहां से आ रहे हैं ॥

सूत जी ने कहा राजर्षि जनमेजय ने अपने पिता परीक्षित जी का सर्पों से वैर लेने के लिये सर्प यज्ञ रचा हुआ था वहां व्यास जी की आज्ञा से वैशम्पायन जी भारत सम्बन्धी विविध भांति की सुन्दर और धर्म शिक्षा देने वाली कथायें सुना रहे थे हम भी वहां उन के सुनने के लिये कुछ काल ठहरे रहे।

पुनः तीर्थ यात्रा करते हुये पंचक नाम पुण्य तीर्थ से जहां कौरों और पाण्डवों का युद्ध हुआ था और जहां अब ब्राह्मणादि उत्तम पुरुष रहते हैं होते हुये आप लोगों के दर्शनों के लिये यहां आये हैं आप के दर्शनों से हमारा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ है क्योंकि आप सब बड़ी आयू वाले ब्रह्मरूप हैं और आप के चित्त शुद्ध और तेज सूर्य के समान हैं और अभिषेकित होकर अग्नि में हवन कर रहे हैं ॥

शौनकादि ऋषियों ने बड़े प्रसन्न होकर कहा महाराज वैशम्पायण जी से जो कुच्छ आपने श्रवण किया है कृपा कर के वही आप हम को भी सुनाईये ॥

सूत जी ने पारब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार कर के कहा मैं व्यास जी के पवित्र इतिहास को जिस को कवियों ने पहिले भी कहा था अब भी कहते हैं और आगे भी कहेंगे सुनाता हुं आप सुनिये ॥

॥ जगत की उत्पत्ति ॥

आदि में केवल अंधेरा ही था उस में जगत का बीज अविनाशी ज्योति स्वरूप बड़ा अंडा उत्पन्न हुआ, वह अंडा चिकना और ऐसा अद्भुत था कि उस का वर्णन नहीं किया जा सकता और न ही वह चितवन में आ सकता है वह अंडा ऐसा चमकीला था कि उस पर दृष्टि नहीं ठहर सकती थी सब प्रकार के छोटे बड़े भले बुरे जीवों का केवल वही एक निवास स्थान था ॥

कहा जाता है कि संसार में जिस ब्रह्म को सनातन और

ज्योति स्वरूप कहते हैं वह ब्रह्म उस अंडे को रचकर उस में स्वयं प्रवेश कर गया ॥

उस अण्डे से जगत के रचने वाले रजो गुण प्रधान ब्रह्मा जी, जगत् के पालन करने वाले सतो गुण प्रधान विष्णु महाराज जी और जगत् के संहार करने वाले तमो गुण प्रधान शिवजी उत्पन्न हुये, मनु, प्राचेतस, दक्ष, दक्षसुत, २१ प्रजापति (१४ मनु और मरीच्यादि, ७ ऋषि) आदित्य, विश्वे देवा, अश्वनीकुमार, अष्टवसु, यक्ष, साध्य, पितर पिशाच और गुह्यक उत्पन्न हुये, इस के पीछे ब्रह्म ऋषि, राज ऋषि, पृथ्वी, अप (जल), तेज, वायू, आकाश, दिशा, सम्वत्सर षट ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, रात्रि दिन आदि जो वस्तु देखने में आती हैं उसी अंडे में से उत्पन्न हुई और प्रलय समय उसी में लय हो जाती हैं यह संसार इसी रीती से सदा रचा जाता है और पुनः लय हो कर घूमा करता है ॥

पुनः उसी अण्डे से नीचे लिखे ३३ देवता उत्पन्न हुये जो इस समय ३३ करोड़ कहे जाते हैं ॥

८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ इन्द्र, १ प्रजापति । दिव्यःपुत्र, वृहधानु, रवि चक्षु, ऋचीक भानु, विभावसू, अर्क, आशावह, सवित, आत्मा और सह्य यह १२ सूर्य उत्पन्न हुये, इन सब में सह्य जो सब से छोटे थे सब से श्रेष्ठ हुये हैं उन के हां देव भ्राट पुत्र हुआ उस का पुत्र सुभ्राट हुआ । सुभ्राट के तीन पुत्र एक दशज्योति दूसरे शातज्योति और तीसरे सहस्र ज्योति उत्पन्न हुये । दश ज्योति के दश सहस्र, शत ज्योति के एक लक्ष और सहस्र ज्योति के दश लक्ष पुत्र उत्पन्न हुये ।

उन्हीं दश लक्ष पुत्रों के वंश से कौरव, यदु, भरत, ययाति, इक्ष्वाकू इत्यादि वंश हुये हैं ॥

सब भूतों के वास स्थान, तीन प्रकार के रहस्य कर्म उपासना और ज्ञान आदि कांड, धर्म अर्थ और काम के देने वाले अनेक शास्त्र स्मृति, नीति, मीमांसा, कोक, लोकयात्रा विधान यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद और गांधर्व वेद यह सब उन्ही से उत्पन्न हुये। वेद व्यास जी ने इन सब बातों को योगाभ्यास से जाना था। उन के चित्त में यह विचार हुआ कि विना लिखे यह ज्ञान संसार के जावों को और हमारे शिष्यों को लाभ नहीं पहुंचावे गा इस कारण जिस प्रकार हो इस को लिखा जावे। अभी वह यह चितवन कर ही रहे थें कि ब्रह्मा जी उन के सन्मुख आ प्रकट हुये। व्यास जी ने सब ऋषियों सहित उन को प्रणाम कीया और बड़े सुन्दर आसन पर सत्कार और आदर से विठलाया और विनय पूर्वक कहा महाराज! मैंने यह भारत इतिहास काव्य में रचा है, इस में वेदों उपनिषदों के सब उपदेश, पुराणों का विचार, भूत भविषत, वर्तमान तीनों कालों के लक्षण, बुढ़ापा, मृत्यु और रोग इन तीनों के होने न होने का निश्चय सब प्रकार के धर्म और आश्रम, और उन के लक्षण, चारों वर्णों का विधान, तप, ब्रह्मचर्य्य की क्रिया और सूर्य चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्र और तारादि का युगों के अनुकूल प्रमाण, चारों वेदों और वेदांत विद्या, न्याय, वैदक, पशु जीवों आदि का वर्णन, देवताओं और मनुष्यों का जन्म, सब तीर्थ, पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन, और सागर का व्याख्यान, धनुर्वेद से युद्ध का करना लोक यात्रा और जो कुच्छ वस्तु हैं सब का वर्णन कीया है

परंतू इस के लिखने के लीये कोई योग्य लेखिक नहीं मिलता॥

ब्रह्मा जी ने कहा हम तुम को इस ज्ञान के जानने से तपस्वी मुनीयों में सब से बड़ा जानते हैं और तुम्हारे जन्म ही से तुम्हें वेद के कहने वाला मानते हैं, तुमने महा भारत को काव्य में कहा है, इस कारण यह काव्य ही कहावेगा, परंतू यह काव्य ऐसा होगा कि अन्य कवि इस की प्रशंसा करने में इस प्रकार अशक्त रहेंगे जिस प्रकार अन्य तीनों आश्रम वाले गृहस्थाश्रम की प्रशंसा नहीं कर सकते, अब आप इस के लीये गणेश जी का ध्यान कीजीये॥

जूं ही व्यास जी ने गणेश जी का ध्यान किया वह आ बराजे, व्यास जी ने उन को आसन दे कर बिठलाया और यथार्थ पूजन करने के पीछे कहा॥

महाराज मैंने भारत को काव्य में रचा है में बोलता जाउंगा आप संसार के उपकार के लिये उस को लिखते जाईये।

गणेश जी ने कहा यदि तुम बराबर बोलते जाओ और बीच में रुको न तो हम लिखने को तत्पर हैं।

व्यास जी ने कहा बहुत अच्छा परन्तू आप भी बिना अर्थ समझे न लिखना॥

गणेश जी ने कहा बहुत अच्छा॥

दोनों के आपस में वचन हो गये इधर व्यास जी बोलने लगे उधर गणेश जी ने लिखना आरम्भ किया॥

इस पुस्तक में व्यास जी ने कहीं कहीं ८८०० श्लोक ऐसे कूट और कठिन लिखवाये कि व्यास जी के कथनानुसार

उन का अर्थ या तो व्यास जी जानते थे या शुकदेव जी को मालूम था संजय जी के जानने न जानने में संदेह है यद्यपि गणेश जी पूर्ण विद्वान थे परन्तू उन को भी इन के विचारने में कुच्छ काल ठहरना पड़ता था ॥

जब गणेश जी विचार करते, उतने में व्यास जी और बहुत से श्लोक रच लेते, यह महाभारत इसी प्रकार से रचा और लिखा गया, अंधे संसार को अज्ञान रूपी अंधकार से निकालने के लिये यह भारत ज्ञान रूपी नेत्रों को खोलने वाली सलाई है, और अर्थ धर्म और मोक्ष चाहने वालों के अन्धेरे को हटाने के लीये सूर्य रूप है ॥

दूसरा अध्याय इस भारत रूपी वृक्ष का वीज है पौलोम और आस्तीक कथा इस की जड़, सृष्टि की उत्पत्ति की गाथा इस वृक्ष के वड़े वड़े गुदे, सभा और वन पर्व पक्षियों के निवास के घोंसले, और अठारह पर्वों में जो छोटे २ पर्व हैं इस की अरणी, विराट और अद्योग पर्व इस की सार मज्जा है, भीष्म पर्व शाखा, द्रोण पर्व पत्ते, कर्ण पर्व श्वेत फूल, शाल्य पर्व इन फूलों की सुगन्धि, स्त्री पर्व छाया, शांति पर्व फल, अश्व मेध पर्व इस फल का रस, आश्रम पर्व इस वृक्ष के नीचे वैठने का स्थान, मौशल पर्व (संक्षेप श्रुतियों का निरुपण) इस की बड़ी वड़ी शाखा, और इस की उत्तम उत्तम कथाओं के सुनने वाले महात्मा पुरुष इस वृक्ष के फल खाने वाले पक्षी हैं॥

श्री व्यास जी ने अपनी माता सत्यवती और भीष्म पितामह की आज्ञ से विचित्र वीर्य और चित्रागद की स्त्रियों से तीन पुत्र

धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर कुरुवंश के चलाने वाले उत्पन्न किये और आप तपस्या करने के लिये वनों को चले गये ॥

इन तीनों के अपने पुत्र पौत्रों के सहित अनेक सुख भोग कर परमगति को प्राप्त होने पर श्री व्यास जी ने इस महा भारत को संसार में प्रकट कीया और राजा जनमेजय के जज्ञ में किसी विघ्न के दूर करने के लीये अपने शिष्य वैशम्पायन द्वारा हज़ारो ब्रह्मणों के वींच में सब को सुनवाया ॥

इस में कुरू वंश का सारा वृत्तांत, गंधारी की धर्म शीलता, विदुर की बुद्धि, कुन्ती का धैर्य, वासुदेव का महात्म्य, पांडवों की सत्यता और धृतराष्ट्र के पुत्रों की दुष्टता का पूरा २ वर्णन कीया गया है ॥

व्यास जी ने पहिले २४००० शलोक बनाये और अपने बेटे शुक जी और दो शिष्यों को पढ़ाय पुनः १५० श्लोकों में यह पहिला अनुक्रमणिका अध्याय बनाया फिर साठ लाख शलोकों में कहा। इन में से पन्द्रह लाख शलोक देवल मुनि ने पितृ लोक में, तीस लाख नारद जी ने देवताओं को और चौदह लाख शुक्राचार्य ने यक्ष, गान्धर्व और राक्षसों को सुनाय और एक लाख शलोक वैशम्पायन जी ने मनुष्यों को सुनाये वह एक लाख यह हैं ॥

महाभारत के युद्ध में अधर्मरूपी वृक्ष की जड़ धृतराष्ट्र जिस की मति से सर्व नाश हुआ दुर्योधन जो क्रोध द्वेष और निन्दा से भरा हुआ था वृक्ष की पीढ़, कर्ण, शकुनि और शल्य वृक्ष की शाखा, दुशाशनादिक वृक्ष के फल फूल, और इन के साथी राजे

उस वृक्ष पर वास करने वाले पक्षी हैं ॥

इधर धर्म रूपी वृक्ष की जड़ श्री कृष्ण, युधिष्ठ उस की पीड़, अर्जुन गुद्दे, भीम शाखा, नकुल और सहदेव उस के फल फूल हैं ॥

॥ युद्ध का संक्षेप वृत्तांत ॥

राजा पांडू ने अपनी बुद्धि बल द्वारा बहुत से देश जय कीये एक समय वह अपनी दोनों स्त्रियें माद्री और कुंती को साथ लेकर मेध्यारण्य वन में शिकार खेलने गये वहां एक मृग रूपी मुनि को अपनी स्त्री से भोग करते हुये बिना इस बात को जाने मार दिया जिस ने मरते समय राजा को शाप दिया कि जब तू भी अपनी स्त्री से भोग करेगा डर जायेगा ॥

इस शाप से डर कर राजा पांडू अपने डेरे में आये और समय पाकर अपनी स्त्रियों से भोग करके भलोक सधार गये ॥

राजा पांडू के जीते जी उसी वन में धर्म विधि से पांच पुत्र उत्पन्न हुये । धर्मराज वायु और इन्द्र के वीर्य से कुंती के गर्भद्वारा युधिष्ठ, भीम और अर्जुन, अश्वनीकुमार के वीर्य से माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव। इन के जात कर्म आदि संस्कार भी वहीं वन में हुए कुच्छ काल पश्चात माद्री भी मृत्यु को प्राप्त हुई, यह पांचों अपनी माता कुंती के साथ उस वन के ऋषि मुनियों की रक्षा में रहने लगे इन के बड़े होने पर ऋषि इन को इन की माता कुंति सहित राजा धृतराष्ट्र के पास ले गये और उस को कहा । यह जटाधारी और ब्रह्मचारी बालक राजा पांडू के पुत्र हैं इन को आप अपने पास रख कर पुत्रों के समान पालीये

इन लड़कों को देख कर कौरव पुत्र और पुरवासी बोले कि यह पांडु के पुत्र नहीं दीख पड़ते राजा पांडु ऐसा कहा था कईयों ने कहा यह पुत्र निस्सन्देह पांडु पुत्र हैं इन की माताओं के पतिव्रत धर्म से इन में तेज अधिक है कई कुतर्की यह कहने लगे कि राजा पांडु को मरे बहुत काल हुआ है यह थोड़ी थोड़ी अवस्था के पुत्र किस प्रकार उन के पुत्र हो सकते हैं बहुत से लोग उन से हित करके यह कहने लगे कि आप का आना शुभ हो क्योंकि हमने अपने स्वामी राजा पांडु की संतान अपनी आखों देखली इन लोगों को पांचों पांडवों ने भी कहा कि हम भी धन्य हैं जो तुम लोगों के पास आये हैं। तब चारों ओर से शब्द होने लगा और दिगपाल देवताओं ने जय शब्द कह कर कहा कि यह राजा पाडु के ही पुत्र हैं इस में संदेह का कोई स्थान नहीं। अकाश से फुलों की वर्षा हुई, वाजे गाजे वजने लगे और आकाश वाणी हुई सब के संदेह मिट गये और सब लोगों ने प्रसन्न हो कर आनन्द से बड़ा शब्द कीया॥

पांडु पुत्र सम्पूर्ण वेद और शास्त्र पढ़ कर निर्भय होकर आनन्द से हस्तिनापुर में रहने लगे युधिष्ठर की पवित्रता, भीम सेन का धैर्य, अर्जुन का पराक्रम, नकुल और सहदेव की दीनता, और कुन्ती की घर के बड़ों की सेवा देख कर पुर के सब लोग प्रसन्न हुये। जब अर्जुन ने स्वयम्वर में मछली को वेध कर द्रौपदी को जीता वह धनुष धारियों में पूज्य माने जाने लगे उन की ओर कोई शत्रु दृष्ट भी नहीं कर सकता था इस के पीछे अर्जुन ने सब राजाओं पर जय पाकर युधिष्ठर से राजसू

यज्ञ कराया जिस में बहुत सा अन्न और दक्षिणा दी गई॥

राजा युधिष्ठर ने जरासंध और शिशुपाल जैसे बड़े बड़े घमण्डी राजाओं को श्री कृष्ण जी की नीति और अर्जुन और भीम के बल से नष्ट कर दिया था, इन के हां से और अन्य कई पराजय कीये हुये राजाओं के हां से युधिष्ठर को अर्जुन द्वारा सोना, चांदि, मणि, गौ, घोड़े, हाथी, रथ और नाना प्रकार के बहु मुल्य वस्त्र, तम्बू, डेरे, अच्छे २ सुन्दर मृगचर्म मिले युधिष्ठर की इस बढ़ती हुई प्रतिष्ठा, मान और ऐश्वर्य को दुर्योधन देख कर ईर्षा से जल भुन गया॥

यज्ञ सभा को देख कर उस की ईर्षा आगे से भी बढ़ गई उस यज्ञ स्थान में दुर्योधन को भूल से गिरते हुये देख कर भीमसेन को हंसी आई इस हंसी से दुर्योधन को बड़ा क्रोध हुआ और वह उस क्रोध दाह से नाना प्राकर के भोग भोगते हुये और नाना रत्न अपने कोश में रखते हुये दिन प्रति दिन निर्बल और पीला पड़ने लगा॥

धृतराष्टर ने अपने पुत्र का यह हाल देख कर उस को प्रसन्न करने के लीये उस के कथनानुसार धोखे का जुआ खेलने की सम्मति दी इस से श्री कृष्ण जी को बड़ा क्रोध हुआ परन्तु उन्हो ने इस पर कुच्छ अधिक ध्यान न दीया। भीष्म पितामह, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य ने बहुत समझाया परन्तु किसी ने कोई न मानी, और परस्पर युद्ध में क्षत्रि कुल का नाश हो गया अन्त में पाण्डवों की जय हुई धृतराष्टर ने संजय से यह बुरा हाल सुन कर और दुयर्धोन कर्ण और शकुनी की

सम्मति को समझ कर वहुत काल ध्यान करके संजय से कहा कि तुम को मेरी बुद्धि की निन्दा नहीं करनी चाहिये तुम सकल शास्त्र जानते हो तुम्हारी सम्मति सब कामों में सदैव ली जाती है तुम निश्चय जानो कि मेरी इच्छा न लड़ाई की थी और न कुल के नाश की मेरे लिये मेरे अपने पुत्र और पांडु पुत्र एक समान थे मेरी विशेष प्रीति किसी में न थी परन्तु मैं बूढ़ा और अन्धा होने के कारण उन के आधीन था मेरे पुत्र क्रोधी थे मेरी निन्दा करते थे इस कारण दुर्योधन की खोटी सलाह को मान लीया करता था और पुत्र जान कर उस के मोह में फस जाता था मैंने तो पहिले ही जान लीया था कि मेरे पुत्रों की जीत न होगी ॥

पहिले अर्जुन ने सकल राजाओं के मध्य में मछली को वेध कर स्वयम्वर में द्रोपदी को जीता और फिर द्वारका से सुभद्रा को ले आया किसी यादव ने उस को रोका तक नहीं पुनः उस ने कृष्ण और वलदेव की सहायता से खांडव वन को जला कर अग्नि देव को तृप्त कीया जब इन्द्र वर्षा द्वारा इस अग्नि को शांत करने आया तो अर्जुन ने वाणों से उस को भगा दीया ॥

पांचों पांडव कुन्ती सहित लाक्षा ग्रह में जलने से वच गये और विदुर जी ने उन की रक्षा की ॥

पहिले अर्जुन ने वड़े वड़े राजाओं में द्रोपदी को जीता, पांचाल देश के वड़े वड़े राजाओं से पाडवों की मित्रता हुई ।

भीमसेन ने जरासंध मगध देश के बड़े प्रतापी राजा को बिना शस्त्र हाथों से मार डाला। पुनः सर्व भूमि के राजाओं को जीत कर उन्होंने राजसूय यज्ञ किया। हमारे पुत्रों ने अधर्म से रजस्वला धर्म में केवल एक वस्त्र पहिरे हुये रोती हुई द्रोपदी को उस के बालों से पकड़ कर सभा से खैंचा और दुष्ट ब्बरी दुशाशन ने इस को लज्जित करने के लीये उस का वस्त्र पकड़ खैंचा और उस वस्त्र का पार व पार न पाकर स्वयं लज्जित हो गया और उस को नग्न न कर सका। फिर शकुनी ने जूये में युधिष्टर से सारा राज जीत लीया। वन को जाते समय युधिष्टर के छोटे भाई अपने बल को देख देख कर दांत पीसते थे परंतु उस की इच्छा के विना कुछ करना अधर्म जानते थे॥

युधिष्टर के वन को जाते समय उस के साथ सहस्रों ब्राह्मण और भिक्षा भोग लगाने वाले तपस्वी जन और महात्मा लोग भी गये। अर्जुन ने किरातरूप महादेव जी से युद्ध करके उन को प्रसन्न कीया और पशुपात महा अस्त्र पाया। पुनः देव लोक में जाकर उसने इन्द्र से बड़े बड़े दिव्य अस्त्रों के चलाने की विद्या सीखी॥

पुनः अर्जुन ने देवलोक में कालकेय और पौलोम जाति के राक्षसों को जो वर पाने के कारण देवताओं से न हारते थे मार कर इन्द्र से मित्रता की और वह कुशल पूर्वक वहा से लौट कर आया। फिर पांडव कुबेर के मित्र बन कर, उस देश में गये जहा कोई मनुष्य नहीं जा सकता॥

हमारा पुत्र दुर्योधन कर्ण का कहना मान कर वनवासी पांडवों को अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिये घोष ग्रामों में रथों के वास्ते बैल खरीदने गया रास्ते में उस को गन्धर्वों ने पकड़ कर बंदी ग्रह में डाल रक्खा जहां से अर्जुन ने युद्ध करके उस को छुड़ाया ॥

धर्मराज जी यक्षरूप धारण कर के वन में आये और जो कुच्छ युधिष्ठर से पूछा उस का यथोचित उत्तर पाया, पांडव विराट पुरी में द्रौपदी सहित गुप्त रहे और कोई भी उन को न पहचान सका, अकेले अर्जुन ने विराट राजा के देश में उन लोगों को जो हमारी ओर में श्रेष्ठ गिने जाते थे रथ से भग्न कर दीया उस के इस पराक्रम को देख कर विराट के राजा ने अपनी कन्या उस को देदी जिस का विवाह उस ने अभिमन्यु अपने पुत्र के साथ कीया, युधिष्टर के वनवासी और दुःखी होते हुये भी सात अक्षोहिणी दल उस की सहायता में होगया, वासुदेव जी भी जिन की एक पग यह पृथ्वी कही जाती है पांडवों के हित में हो गये। नारद जी ने हम से कहा था कि हमने ब्रह्म लोक में भी श्री कृष्ण और अर्जुन को नर नारायण रूप से देखा था। श्री कृष्ण जी ने कौरवों के पास आकर उन को बहुत समझाय कि वह ऐसा उपद्रव न करें परंतु उन्होंने एक न,मानी वरन कर्ण और दुर्योधन ने श्री कृष्ण जी को कैद करने की ठानी और उन्हों ने उन को अपना भयंकर वैराट रूप दिखाया, श्री कृष्ण जी ने लौटते समय कुन्ती को रथ के पास खड़े देख कर उस को धैर्य दीया और दूसरे किसी से न बोले।

श्री कृष्ण जी और भीष्म पितामह जी ने पांडवों को आशीर्वाद दी कि वह युद्ध में जय पावें, कर्ण भीष्म पितामह से विरोध मान कर यह कह कर रण में से चला गया कि जब तक आप लड़ेंगे मैं शस्त्र को हाथ न लगाउंगा ॥

इस समय इस महा युद्ध में बड़ी महिमा वाले श्री कृष्ण जी, बड़े भाक्रम वाला अर्जुन और बड़े गुणवाला गंडीव धनुष तीनों एक स्थान में एकठे हो गये। अर्जुन मोह से व्याकुल होकर रथ के पास बैठ गया और गंडीव को रख कर युद्ध से मन हटाने लगा, श्री कृष्ण ने उस को अपनी देह में सब लोक दिखला कर उसका मोह हटा दीया और पुनः युद्ध के लीये तत्पर कीया ॥

भीष्म पितामह युद्ध में दस सहस्र रथी नित्य मरते थे परंतू पांडव कुल का कोई मुख्य पुरुष इन में नहीं मरता था। भीष्मपितामह ने अपने मरने का उपाय आप ही बतला दीया और यही उपाय पांडवों ने उस के मारने के लीये बरता। अर्जुन ने नपुंसक शिखंडी को आगे करके भीष्म पितामह को मार लीया, भीष्म पितामह जो बहुत वृद्ध और महा पराक्रमी थे अर्जुन के अनेक भकार के पर लगे हुये बाणों से वेधित होकर रथ से गिड़ पड़े और बाणों की शय्या पर शयन कीया और अर्जुन से जल मांगा, अर्जुन ने बाण से पृथ्वी छेद कर जल दीया, वायू, सूर्य और चन्द्रमा युद्ध में पांडवों की दहिनी ओर रहते थे और हमारे साथिओं को अनेक भकार से रोकते थे, यद्यपि द्रोणाचार्य बड़ी उत्तम अस्त्र विद्या से युद्ध करते थे परन्तु

पांडवों में से कोई न मरता था अर्जुन को मारने के लीये सात महारथी एक स्थान एकत्र हो कर उस से युद्ध करने लगे उस ने उन सातों को मार डाला उस महा सेना के अभेद्य व्यूह रचना में जिस की रक्षा शस्त्र लेकर द्रोणाचार्य आप कर रहे थे अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र घुस गया वहां सब महारथीयों ने मिल कर अधर्म से उस को मार डाला और बड़े प्रसन्न हुये और अर्जुन को न मार सके ॥

हमारे पुत्रों को अभिमन्यु के मारे जाने की खुशी करते हुये देख कर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं अपने पुत्र के मारने वाले जयद्रथ को न मार सकूंगा तो अग्नि में जल मरुंगा और उस ने अपनी वह प्रतिज्ञा सत्य कर दिखाई, अर्जुन ने अपने प्यासे घोड़ों को रण में खोल कर जल पिलाया और पुनः रथ में जोता फिर जब उस के घोड़े थक गये तो वह रथ को थाम कर उस के पास बैठ गया उस समय अवसर पाकर बहुत से वीर उस को मारने गये परन्तु उस ने बैठे बैठे ही सब को मार कर हटा दिया ॥

हाथियों की बड़ी सेना को जिसको लेकर द्रोणाचार्य युद्ध कीया करते थे अकेला सात्यकी मारकर निर्विघ्न श्रीकृष्ण और अर्जुन के पास गया। कर्ण ने भीमसेन को धनुष की कोर से मारा और बहुत से कटु वचन कहता हुआ चला गया उसे मार नहीं डाला ॥

अर्जुन ने द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और मद्रदेश के राजा के देखते देखते जयद्रथ को मार डाला परंतु

किसी को सामर्थ न हुई कि उसको बचावे ॥

इन्द्र से जो शक्ति कर्ण को इस प्रतिज्ञा पर मिली थी कि जिस एक पुरुष पर तू इसको चलावेगा वह अवश्य मर जावेगा और जिस शक्ति को कर्ण ने अर्जुन के मारने के लिये रख छोड़ा था श्रीकृष्ण जी ने कर्ण के चित्त को भरमा कर उस शक्ति को घटोत्कच दैत्य पर चलवा कर उसे व्यर्थ करा दीया ॥

धृष्ट द्युम्न ने द्रोणाचार्य को रथ के पास बिना अस्त्र अकेले बैठे देखकर अधर्म से मार डाला। नकुल ने मंडल बांध बांध कर अश्वत्थामा से बराबरी का युद्ध कीया। द्रोणाचार्य के मरने पर अश्वत्थामा ने पांडों के मारने के लीये नारायण अस्त्र छोड़ा परंतू उनका अंत न आया ॥

भीमसेन ने दुशासन को मार कर सब के सामने उसका लहु पीया पर उसको ऐसा करने से कोई भी न रोक सका ॥

तब कर्ण सा शूर भी मारा गया और निर्भय अर्जुन का बाल भी कोई न उखाड़ सका, युधिष्ठर ने युद्ध में अश्वत्थामा, कृतवर्मा और शल्य को जो कृष्ण से लड़ने की ठान रहे थे जीत लीया, शकुनी को जो जुए और लड़ाई की जड़ था सहदेव ने मार डाला, मेरा पुत्र दुर्योधन युद्ध से थक कर कमल के तालाब में उस का पानी रोक कर अकेला छुप कर सो रहा और श्री कृष्ण ने उस के पास जाकर युद्ध करने को ललकारा और वह उठ कर भीम सेन से गदा युद्ध करने लगा और मंडल बांध कर लड़ने पर भी श्री कृष्ण ने उसे अधर्म युद्ध से मरवाया, दुर्योधन ने अश्वत्थामा आदि से पांचाल देश के राजा

और द्रोपदी के सोते हुये पुत्रों के मरवाने का भयानक और अपयश देने वाला काम कराया ॥

भीमसेन क्रोधित होकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़ा उसने आगे से ब्रह्म अस्त्र चलाया जो भीम सेन के बदले वन में एक सींक को लगा उस अस्त्र को अर्जुन ने स्वस्ति जय कह कर अपने अस्त्र से गिरा दीया और अश्वत्थामा की चोटी की मणि छीन ली अश्वत्थामा ने उत्तरा का गर्भ गिराने के लिये ब्रह्म अस्त्र को पुनः छोड़ा तब व्यास जी और श्री कृष्ण ने उस को शाप दीया ॥

जब यह सब बातें हुई तो मैंने समझ लीया था कि हमारे पुत्र हार जायेंगे, मेरे लिये मेरे पुत्र और पांडव एक समान हैं इस कारण पांडवों की जय भी मेरी ही जय है परन्तु गंधारी को मरन पर्यन्त बड़ा दुःख रहा क्योंकि इस युद्ध में उस के पुत्र पौत्र, पिता, भाई आदि सब मारे गये, यह बड़ा कठिन काम कर के पांडवों ने अपना राज्य अकंटक कर लीया ॥

बड़े दुःख और क्लेश की बात है कि युद्ध में १८ अक्षोहिणी सेना और बड़े २ महारथी और शूरवीर कट कर मर गये ॥ केवल दश आदमी बचे उन में से हमारी ओर के केवल तीन हैं और बाकी सात पांडवों के ॥

इस दृष्य को देख कर मेरी आखों के आगे अंधेरा होता है और शरीर कांपने लगता है और मेरा ज्ञान भी जाता रहा है यह कथन करते धृतराष्ट्र को मूर्छा होगई ॥

मूर्छा हटने पर धृतराष्ट्र ने कहा कि अब मैं भी मरना

चाहता हूं क्योंकि अब इस संसार में मेरा जीना निष्फल है ॥

जब धृतराष्ट्र इस प्रकार विलाप करते व्याकुल होकर सर्प के समान लेटने लगे संजय ने कहा हे राजन् आपने तो व्यास और नारद जी से बड़े २ राजाओं की कथायें सुनी हैं। वह कैसे कैसे राजा हो गुज़रे हैं वह कैसे प्रतापी थे जिन्हों ने पृथ्वी जीत कर बड़े बड़े यज्ञ कीये और ब्राह्मणों को अनंत दक्षिणा दे कर प्रसन्न कीया और जिन का यश आज तक संसार में हो रहा है परंतु यह सब के सब अंत को काल वश हो गये। देखो शैव्य, सुहोत्र, रंतिदेव, बाह्लीक, कान्तीवान, दमन, शार्यति, अजित, नल, विश्वामित्र, अम्बरीष, मरूत, राजा मनु, इक्ष्वाकु गयभरत, श्री राम चन्द्र, शशिविन्दु, भागीरथ, कृतवीर्य, जनमेजय और राजा ययाति जिसने यज्ञ में देवताओं का पूजन कीया और जिस के यज्ञ मंडल की सीमा पर लगाये हुये वृक्ष अब तक बने हैं, यह चौबीसों राजा अपने अपने समय पर काल वश हो गये, नारद जी ने शैव्य राजा के पुत्र शोक हटाने के लिये इन्ही चौबीस राजाओं का बल पराक्रम, धन, धान्य, सेना आदि का वृत्तांत सुनाया था ॥

इन राजाओं से पहिले और बड़े बड़े महारथी, बलवान, महात्मा और गुणवान राजा हुये हैं यथा पुरू, कुरू, यदू, श्वेत, वृहद्गुरु, उशीनर, शतरथ, कुकदुलि, द्रुह्, द्रुम, दम्भोद्भव परोवेन, सागर, संकृतिनिमि, अजेय, परशु पुण्ड्र, शम्भुदेवृध, देव सुप्रतिम, इत्यादि बड़े बड़े राजा हुये हैं जो आप के पुत्रों के समान नाश हो गये और जिन राजाओं के यश, पराक्रम,

बुद्धि, दान, सत्य, शुद्धता, दया आदि गुणों का कवियों ने कीर्त्तन कीया है वह भी इस असार संसार से चल बसे हैं तात्पर्य यह है कि आज तक मृत्यु को किसी ने नहीं जीता सब इस से हारते चले गये हैं, आप के पुत्र तो बड़े क्रोधि, लोभी और अधर्मी थे उन का शोक करना आप को योग्य नहीं ॥

हे धृतराष्ट्र आप तो बड़े बुद्धिमान और शास्त्रों के जानने वाले हैं आप को मोह नहीं चाहिये, यह पूर्व कर्मों का फल है जो अवश्य भुगतना पड़ता है और अनेक उपाय करने से भी नहीं टल सकता, दुःख, सुख, ऐश्वर्य और दरिद्रता सब कर्मों के अनुसार होते हैं, हे राजन् तेरे पुत्रों ने अपने पूर्व कर्मानुसार यह सब कुछ कीया और मृत्यु को प्राप्त हुये इस कारण तुझ को शोक करना उचित नहीं। इस से राजा की व्यकुलता दूर हुई ॥

व्यास जी ने इस भारत में शोक ग्रस्त मनुष्यों के शोक हटाने वाला उपनिषद वर्णन कीया है और बड़े बड़े विद्वान और कवि लोग भी कहते हैं कि भारत का थोड़ा सा पाठ भी बहुत से पापों से बचाता है क्योंकि इस में देवता, देव, ऋषि, ब्रह्म ऋषि, यक्ष और नागों इत्यादि की कथायें हैं और श्री वासु देव भग्वान जो सत्य, पवित्र, पाप नाशक, भाग्य के उदय करने वाले पारब्रह्म, अचल, चेतन्य, सनातन, अध्यातम, हिरण्यगर्भ, न्यायकारी, अजर, अमर, अभय, नित्य हैं इन का भी कीर्तन है जो मनुष्य इस पहिले अध्याय का पाठ धर्म से करेंगे [illegible] पापों से बच जावेंगे। यह

अध्याय अनुक्रमणिका अध्याय कहलाता है जो आस्तिक पुरुष इस को महां कष्ट में भी सुनेगा उस का वह कष्ट हट जावेगा ॥

दूसरा अध्याय

—:०:—

कुरुक्षेत्र का महातम्य, अक्षौहिणी का वर्णन, और पर्व, ॥

त्रेता और द्वापर युग की संधि में परशुराम जी ने जो सब शस्त्र धारियों से उत्तम हुये हैं बड़े क्रोधित होकर वार वार क्षत्रिकुल को नाश कर के पांच कुंड उन के लहु से भरे और उन के क्रोध से स्नान करके लहु से अपने पित्रों का तर्पण किया, ऋचीकादि उन के पित्रों ने इस तर्पण को उन के सन्मुख आकर लिया और प्रसन्न होकर कहा कि हम तेरे पराक्रम और पितृ-भक्ति से वहुत प्रसन्न हुये हैं जो तेरी इच्छा हो हम से मांगो ॥

परशुराम ने कहा कि मैंने क्रोध से जो क्षत्रियों का नाश कीया है उस का पाप मुझ को न लगे और यह पांचों कुण्ड सदैव तीर्थ वने रहें ॥

पितरों ने कहा वहुत अच्छा ऐसा ही होगा परंतू आगे के लीये तुम भी शांत चित्त हो कर रहो और किसी को मत मारो ॥

उसी समय से परशुराम जी ने क्षत्रियों का मारना छोड़

के कारण से समंत पञ्चक के नाम से इस समय तक विख्यात हैं यह देश बड़े पवित्र हैं वहां की पृथ्वी एक सम है और कलियुग और द्वापर की सन्धी में अठारह अक्षौहिणी इकट्ठे हो कर कौरव और पांडवों का बड़ा युद्ध हुआ था, इस अठारह अक्षौहिणी के उस स्थान में कट मरने और पांच कुंडों के होने से इस देश का नाम समंत पंचक हुआ। यह देश तीनों लोकों में विख्यात है और बड़ा रमणीक और देखने के योग्य है॥

अक्षौहिणी का व्योरा।

हाथी	रथ	घोड़ा	पैदल	नाम
१	१	३	५	पत्ति
३	३	९	१५	सेना मुख
९	९	२७	४५	गुल्म
२७	२७	८१	१३५	गण
१७	८१	२४३	४०५	वाहिनी
२४३	२४३	७२९	१२१५	पृतना
७२९	७२९	२१२७	३६४५	चमू
२१७१	२१८७	६५६१	१०९३५	अनी
२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	अक्षौहिणी

कौरो और पांडवों की इस प्रकार की अठारह अक्षौहिणीया उस समंत पंचक पृथ्वी पर इकट्ठी होकर नष्ट हो गई॥

इस युद्ध में दुर्योधन की ओर से भीष्मपितामह ने १० दिन द्रोणाचार्य ने ५ दिन कर्ण ने २ दिन, शल्य ने २ पहर युद्ध कीया दुर्योधन और भीमसेन का २ पहर गदा युद्ध हुआ और उसी दिन रात के समय अश्वस्थामा कृतवर्मा और कृपाचार्य ने

कहा कि हम ने इस ऋषिपुत्र को अपना उपाध्याय और पुरोहित बनाया है जो आज्ञा यह दें बिना विचारे उस का पालन करना । यह आज्ञा देकर राजा जनमेजय तक्षशिला देश को विजय करने को गये और उसको विजय कीया ॥

धौम नाम एक ऋषि थे, वह केवल जल के आधार पर रहते थे । उन के उपमन्यु, आरुणि और वेद नामक तीन शिष्य थे, ऋषि ने अरुणि शिष्य की गुरुभक्ति की परीक्षा के लिये उस को आज्ञा दी कि अमुक खेत में जल बहुत भर जाता है तु जा कर उस की मेडों को इतनी ऊंची करदे कि बहुत जल न भरने पावे यदि जल बहुत भर जावेगा तो बीज गल जावेगा । अरुणि उस खेत पर गया और उस की मेडों को ऊंची करने लगा परंतु वह जल प्रबल होने के कारण रुक न सका, वह शिष्य बराबर उस काम में लगा रहा, जब उस ने देखा कि जल किसी प्रकार से नहीं रुकता तब वह उस जल के जाने के रास्ते पर मेड बना कर आप लेट गया और अपने शरीर से उस जल को रोके रक्खा और यह जान कर कि यदि यह काम ना होगा तो गुरु जी मुझ को अयोग्य समझेंगे वहां से न उठा ॥

कुच्छ काल पश्चात ऋषि ने दूसरे शिष्यों से पूछा कि पांचाल देश का रहने वाला अरुणि कहां है ।

शिष्यों ने कहा महाराज ! आपने ही उस को खेत का जल रोकने को भेजा हुआ है ॥

ऋषि आप उस खेत के पास गये और अरुणि अरुणि कह कर पुकारा ॥

अरुणि गुरू की आवाज़ को सुन कर पानी के जाने के रास्ते से निकल कर गुरू के पास आया और प्रणाम करके कहा महाराज क्या आज्ञा है ॥

गुरू ने पूछा तूं कहां था और अब कहां से आया है ॥

अरुणि ने कहा महाराज वह जल किसी प्रकार से रुकता नहीं था मैंने अपना शरीर आगे देकर उसको रोका हुआ था अब आपकी आवाज़ सुन कर उस से निकल कर आया हूं जो आज्ञा हो सो करूं ॥

ऋषि उस की गुरू भक्ति को देखकर प्रसन्न हुये और कहा तेरा नाम उद्दालक प्रसिद्ध होगा, तेरा दोनों लोकों में कल्याण होगा और गुरु सेवा के प्रभाव से सब वेद और शास्त्र कंठाग्र होंगे अब जहां तेरी इच्छा हो वहां चला जा, वह गुरु से वर दान पाकर अपने पंजाब देश को चला गया ॥

ऋषि ने अपने दूसरे शिष्य उपमन्यु को वन में गाय चराने की आज्ञा दी और वह नित्य प्रति गाँओं को चरा लाता, यह शिष्य बहुत मोटा था एक दिन ऋषि ने उस से पूछा कि तुम क्या भोजन करते हो जिस से तुम इतने मोटे होगये हो ।

उपमन्यु ने कहा महाराज ! नगर से भीख मांगने जाता हुं । जो कुच्छ वहां मिलता है उसे खालेता हुं ॥

ऋषि ने कहा जो भिक्षा मांग कर लाया करो वह सब हमारे सन्मुख रखा करो और जब तक हम आज्ञा न दें तब तक मत खाया करो ॥

उस दिन से उपमन्यु जो भीख मांग कर लाता वह गुरू के सन्मुख रख देता और ऋषि उस को खाने की आज्ञा न

देते वह वहां से फिर चला जाता ॥

कुछ दिन पीछे उपमन्यु को वैसा ही मोटा देख कर ऋषि ने कहा कि तुम जो भीख माग कर लाते हो वह तो हम ले लेते हैं तुम क्या खाते हो॥

उपमन्यु ने कहा पहिले जो भिक्षा मांग कर लाता हुं वह आप को दे जाता हुं और पुनः जाकर भीख मांग कर आप आहार करता हुं ॥

ऋषि ने कहा तुम यह अनुचित करते हो क्या दोबारा मांगते हुये तुम्हे लज्जा नहीं आती, ऐसा करोगे तो पुनः किसी को भी भीख न मिलेगी॥

उपमन्यु ने कहा महाराज! बहुत अच्छा अब मैं दोबारा भीख मांगने के लिये कभी न जाऊंगा॥

वह नित्य गौओं को चरालाता और सायं समय आकर गुरू को दण्डवत करता॥

एक दिन गुरू जी ने फिर पूछा कि उपमन्यु जो भीख मांग कर तुम लाते हो वह तो हमें दे देते हो तुम किस से निर्वाह करते हो ॥

उपमन्यु ने कहा महाराज! आप की गौओं का दूध पीकर पेट भरता हुं ॥

ऋषि ने कहा हमारी आज्ञा के विना हमारी गौओं का दूध पीना तुमारे लिये उचित नहीं यह तो चोरी है ॥

उपमन्यु ने कहा महाराज! बहुत

गुरु जी ने प्रसन्न होकर कहा कि अश्वनी कुमार के वर अनुसार तेरा कल्याण हो। यह कहकर ऋषि ने उस को आज्ञा दी कि अब तुम अपने घर जाओ ॥

तब ऋषि ने वेद नाम तीसरे शिष्य को आज्ञा दी कि तू हमारे घर में कुच्छ काल सेवा कर तब तेरा कल्याण होगा ॥

वह शिष्य बहुत भूख प्यास और नाना प्रकार के कष्ट सहता हुआ बहुत काल तक गुरू के घर में सेवा करता रहा और गुरू की अशीर्वाद से ज्ञानी हो कर अपने घर को गया और गृहस्थाश्रम को ग्रहण कीया ॥

इस वेद के तीन शिष्य हुये उस ने अपने चेलों से कभी कोई काम न लिया ॥

कुच्छ दिन पीछे राजा जनमेजय और राजा पौष्यन ने वेद को अपना उपाध्याय बनाया वह उपाध्याय एक यज्ञ कराने लिये कहा बाहर चले और अपने शिष्य उत्तंक को बुला कर कहने लगे कि हमारे घर का सब कार्य उचि अनुचित जो कुच्छ भी हो तुम करना और जब तक हम लौट कर न आवें तब तक बराबर करते रहना ॥

उत्तंक सब काम करने लगे, एक दिन गुरू कुल की स्त्रियों ने उत्तंक को बुला कर कहा कि तुम्हारी उपाध्याइन ऋतु गामी हुई हैं ऐसा करो कि इस ऋतु का फल व्यर्थ न जाय ॥

उत्तंक ने कहा मैं स्त्रियों के कहे ऐसा अधर्म नहीं करूंगा और ऐसा अकर्म करने की गुरू जी ने भी आज्ञा नहीं दी थी ॥

जब उपाध्याय यज्ञ करा कर घर में आये तो उत्तंक का यह

कुमारों की स्तुति कर उन की कृपा से तेरे नेत्र अच्छे होजायेंगे ॥

उपमन्यु ने अपने गुरु की आज्ञा को मान कर वेदों की ऋचाओं से अश्वनी कुमार देव वैद्यों की स्तुति की। अश्वनी कुमार भी उसी प्रमात्मन् सर्वशक्तिमान, अविनाशी प्रमेश्वर ही का नाम है वेद व्यास जी ने ऐसा कहा है ॥

उपमन्यु की स्तुति से अश्वनी कुमार बहुत प्रसन्न हुये और प्रत्यक्ष उस के सन्मुख होकर कहा "उपमन्यु तू इस अपूप को पान करले ॥

उपमन्यु ने कहा मैं विना भेंट किये गुरु के कोई वस्तु नहीं खा सकता इस कारण इस अपूप को भी उन की आज्ञा लिये विना नहीं खाऊंगा ॥

अश्वनी कुमार ने कहा पहिले तेरे गुरु ने हमारी स्तुति की थी हमने उसको अपूप खाने को दिया था उसने उसको विना गुरु की भेंट कीये पान कर लिया था तू भी खाले ॥

उपमन्यु बोला महाराजा आपकी आज्ञा है परंतू मैं गुरुजी की भेंट दिये विना नहीं खा सकता ॥

अश्वनी कुमार उस की गुरु भक्ति से बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि तेरा कल्यान होगा और तेरे नेत्र खुल जायंगे और तेरे गुरु के दांत लोहे के समान काले और तेरे दांत सोने के समान हो जायेंगे ॥

ऐसा कहकर अश्वनी कुमार तो अंतर्ध्यान होगये और उपमन्यु की आंखों से दीखने लगा और वह अपने गुरु के पास गया और दण्डवत करके सब हाल उसको सुनाया।

फिर एक दिन गुरू ने पूछा कि तुम अपना पेट किस प्रकार भरते हो ॥

उपमन्यु ने विनति की महाराज! बछड़े दूध पीने के पश्चात जो झाग छोड़ते हैं उस को पान कर के निर्वाह करता हूं ॥

गुरू ने कहा बछड़े तेरी यह चाल देख कर दूध डाल देते होंगे यह बात तुम मत किया करो, नहीं तो बछड़े लट जावेंगे ॥

शिष्य ने कहा महाराज! बहुत अच्छा ऐसा भी न करूंगा ॥

एक दिन उपमन्यु को बहुत भूख लगी वन में से आक के पत्ते खा लिये इन पत्तों के खाने से उस की आंखों की ज्योति जाती रही और वह अंधा हो गया। गौओं के पीछे चलते चलते वह एक कुंये में गिर पड़ा ॥

रात होने पर जब उपमन्यु गुरू के पास न पहुंचा तो गुरू ने विचारा कि हम ने उस का भोजन हर प्रकार से रोक दिया था इस कारण वह क्रोध कर के वन में रह गया होगा ॥

ऐसा विचार करते हुये अपने अन्य शिष्यों को साथ लेकर ऋषि उपमन्यु को ढूंडने के लिये गये और वन में जाकर उपमन्यु उपमन्यु कह कर बुलाने लगे ॥

उपमन्यु अपने गुरू की आवाज़ सुन कर बोला महाराज! मैं कुयें में गिरा हुआ हुं, भूख के मारे आक के पत्ते खा गया था उन्हों ने मुझ को अंधा कर दिया है ॥

गुरु ने कहा हे उपमन्यु! तू देवताओं के वैद्य दोनों अश्वनी

वृत्तान्त सुन कर बहुत प्रसन्न हुये और उस को बुला कर कहा कि तुम ने धर्म से हमारी सेवा की है हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं और अब हम तुम को अशीर्वाद देते हैं कि जो इच्छा तुम करो गे सो पूरी होगी ॥

उत्तंक ने कहा महाराज गुरु दक्षिणा के लिये मुझे आज्ञा दीजिये क्या लाऊं क्योंकि गुरु दक्षिणा न देने वाला शिष्य और गुरु दक्षिणा न लेने वाला गुरु दोनो प्रेत होते हैं इस पर गुरु ने कहा कि कुच्छ दिन और ठहरो ।

कुच्छ दिन पीछे उत्तंक ने गुरु जी से फिर कहा कि महाराज अब आज्ञा दीजिये कि गुरु दक्षिणा क्या लाऊं ॥

गुरु ने कहा कि अपनी गुरु पत्नी के पास जाकर उस से पूछो जो कुछ वह कहे सो लाओ ॥

उत्तंक उपाध्यायनी के पास गया और कहा कि गुरु जी ने मुझे आप के पास भेजा है और कहा है कि जो गुरु दक्षिणा माता जी कहें मैं वह ला कर दूं अब जो आप आज्ञा दें सो मैं करूं ॥

उपाध्यायनी ने कहा कि राजा पौष्य की स्त्री के कान के कुंडल आज के चौथे दिन मुझे लाकर दो मैं उस दिन उन कुंडलों को पहिन कर ब्राह्मणों को परोसूंगी यदि तुम उस दिन तक कुंडल न लासके तो तुम्हारा अकल्याण होगा ॥

उत्तंक राजा पौष्य की ओर चला रास्ते में उस को एक बड़ा लम्बा चौड़ा आदमी एक लम्बे चौड़े बैल पर चढ़ा हुआ मिला उस ने उत्तंक से कहा । तुम इस बैल के गोबर को खालो उस ने कहा मैं नहीं खाऊंगा । तब बैल के स्वार ने कहा कि

रानी उस को देख कर खड़ी हो गई और दंडवत करके कहा आप का आना शुभ हो मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥

उतंक ने कहा मैं गुरु दक्षिणा के लिये आप के कानों के कुंडल लेने आया हूं ॥

रानी ने उस को गुरुभक्त और पात्र देख कर कानों से दोनों कुंडल उतार कर दे दिये और कहा कि इन कुंडलों को सर्पों का राजा तक्षक नाग लेना चाहता है तुम सावधानी से लेजाना ॥

उतंक ने कहा मैं गुरुभक्त हूं तक्षक मुझे धोखा नहीं दे सकता ॥

तब उतंक राजा पौष्य के पास आया और कहा मैं तुम [illegible] प्रसन्न हूं ॥

राजा पौष्य ने कहा सत्पात्र भाग्य से मिला करता है [illegible] भी हूं थोड़ा काल ठहर जाइये भोजन करके जाना ॥

उतंक ने कहा मुझे शीघ्र जाना है जो कुछ भोजन त्यार हो सो ले आओ ॥

राजा ने ठंडा भोजन लाकर उतंक के आगे परोस दिया ॥

उस भोजन में बाल देखकर उतंक ने कहा कि यह अशुद्ध भोजन है हे राजन तूने बाल मिला हुआ अशुद्ध भोजन मुझे दिया है इस कारण मैं शाप देता हूं कि तू अंधा हो जायगा ॥

राजा ने कहा तुम निर्दोष अन्न को दोष लगाते हो इस कारण तुम भी अपुत्र होगे ॥

रानी उस को देख कर खड़ी हो गई और दंडवत करके कहा आप का आना शुभ हो मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥

उत्तंक ने कहा मैं गुरु दक्षिणा के लिये आप के कानों के कुंडल लेने आया हुं ॥

रानी ने उस को गुरुभक्त और पात्र देख कर कानों से दोनों कुंडल उतार कर दे दीये और कहा कि इन कुंडलों को सर्पों का राजा तक्षक लेना बहुत चाहता है तुम सावधानी से लेजाना ॥

उत्तंक ने कहा मैं गुरुभक्त हुं तक्षक मुझे धोखा नहीं दे सकता ॥

तब उत्तंक राजा पौष्य के पास आया और कहा मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं ॥

राजा पौष्य ने कहा पात्र ब्राह्मण भाग्य से मिला करता है [illegible] अतिथि भी हैं थोड़ा काल ठहर जाइये भोजन करके जाना ॥

उत्तंक ने कहा मुझे शीघ्र जाना है जो कुछ भोजन त्यार हो सो ले आओ ॥

राजा ने त्यार भोजन लाकर उत्तंक के आगे परोस दिया ॥

उस भोजन में बाल देखकर उत्तंक ने कहा कि यह अशुद्ध भोजन है हे राजन् तूने बाल मिला हुआ अशुद्ध भोजन मुझे दिया है इस कारण मैं शाप देता हुं कि तूं अंधा हो जायगा ॥

राजा ने कहा तुम निर्दोष अन्न को दोष लगाते हो इस कारण तुम भी अपुत्र होगे ॥

उत्तंक ने कहा कि राजन् तुम शापतो देते हो पर अपने अन्न को नहीं देखते कि यह शुद्ध है या अशुद्ध ॥

राजा उत्तंक के पास गया और बाल मिला हुआ भोजन देख कर कहा कि निश्चय यह भोजन अशुद्ध है मैंने अज्ञानता से इस को विना देखे परोस दिया है आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये ताकि मैं अन्धा न होजाऊं ॥

उत्तंक ने कहा हमारा शाप झूठा नहीं हो सकता परन्तु इतना हो सकता है कि यदि तुम अन्धे हो जाओगे तो पुनः शीघ्र अच्छे हो जाओगे और जो शाप तुमने हमको दिया है उस को तुम भी दूर करो ॥

राजा ने कहा हम में अपने शाप को दूर करने की सामर्थ नहीं है क्योंकि ब्राह्मण का मुख बड़े तीक्षण छुरे के समान और मन माखन के समान होता है अर्थात शीघ्र पिगल जाता है और क्षत्रि का हृदय तो बड़ा कठोर होता है और वह मुख कोमल वचन बोलता है ॥

उत्तंक ने कहा हमने अशुद्ध अन्न को देख कर शाप दीया था और तुमने बिना देखे अशुद्ध अन्न के हमको भी शाप देदिया था इस कारण आप का शाप अनुचित है ॥

उत्तंक वहां से सीधा अपने गुरू के आश्रम की ओर चला रास्ता में क्या देखता है कि एक सन्यासी नंगा शरीर किये हुये चला आता है, वह कभी दीखने लग जाता है और कभी लोप होजाता है उत्तंक उन कुण्डलों को पृथ्वी पर रख कर थोड़ी दूर जल लेने को गया उसी समय वह कपट रूप सन्यासी लपट कर आया और कुंडलों को लेकर भाग गया ॥

उत्तंक ने शीघ्रता से आचमन कीया और दिल में गुरू और देवता को नमस्कार करके उस के पीछे दौड़ा और उस को पकड़ लीया, वह छली सर्प का रूप धारण करके उसी स्थान एक बिल में घुस गया ॥

उत्तंक दुःखी होकर उस बिल को खोदने लगा परंतू जब वह न खुदा तो उस को और अधिक कष्ट हुआ ॥

इन्द्र ने उस ब्राह्मण को दुःखी देख कर अपने वज्र को आज्ञा दी कि वह उस की सहायता करे। वज्र उत्तंक की लकड़ी में प्रवेश कर गया और उस बिल को फोड़ डाला। उत्तंक उस बिल में घुस गया और अनेक प्रकार के सहस्रों, मान्दिर, हर्म्य, वलभी और निर्यूह आदि क्रीड़ा के स्थान देखता हुआ नाग लोक में पहुंचा और नागों की बड़ी स्तुति की परंतू उन्हों ने उस की ओर तनक ध्यान न दीया ॥

उत्तंक की दृष्टि दूसरी ओर जा पड़ी तो देखता क्या है कि दो स्त्रियां वेमावाला यंत्र खड़ा करके काले और श्वेत सूत से कपड़ा बुन रही हैं और उन्हीं के पास एक चक्र है उस में बारः आरे लग रहे हैं और छः बालक खड़े हुये उस चक्र को घुमा रहे हैं और उस चक्र के पास एक बहुत सुन्दर घोड़ा खड़ा है और उस घोड़े के ऊपर एक बड़ा तेजस्वी पुरुष सवार है। उत्तंक ने वेद मंत्रों द्वारा उस पुरुष की बड़ी स्तुति की जिस से वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उस ने कहा कि तुझ को जो कुच्छ इच्छा हो सो मांग ॥

उत्तंक ने कहा महाराज ! मैं यह चाहता हूं कि यह सारे नाग मेरे वश में होजायें ॥

घोड़े के स्वार ने कहा इस घोड़े की गुदा में फूंक दे ।

जूंही उत्तंक ने उस घोड़े की गुदा में फूंक मारी उस के सम्पूर्ण अंगों से अग्नि और धूआं निकलने लग पड़ा । उस अग्नि और धुंये से नाग लोग बहुत व्याकुल हुये और तक्षक भी दोनों कुण्डल हाथों में लिये हुये उत्तंक के सन्मुख आया और विनति पूर्वक वह कुंडल उस को दे गया । उत्तंक उन कुंडलों को ले कर चिंता करता हुआ वहां से भागा ताकि पूरे समय पर उपाध्यायनी के पास उन को पहुंचा देवे । उस स्वार ने उस को उदास और भागता हुआ देख कर कहा कि तू इस घोड़े पर स्वार होजा यह तुम को क्षण भर में वहां पहुंचा देगा ॥

उत्तंक ने उस घोड़े पर स्वार हो कर उस को एड़ी लगाई और वह क्षण भर में अपने गुरू के घर के समीप पहुंच गया । उस समय उपाध्यायनी स्नान कर के अपने बालों को कंघी से सुधार रही थीं और उत्तंक को न आया हुआ जान कर शाप देने को थीं कि उत्तंक ने पहुंच कर प्रणाम किया और दोनों कुंडल गुरुपत्नी को दे दिये ॥

उस ने कुंडल लेकर उत्तंक को आशीर्वाद दी और कहा कि तेरा कल्याण होगा और तू सिद्धि पावेगा ॥

उत्तंक वहां से चल कर गुरू के पास गया और दंडवत की, गुरू ने आशीर्वाद दे कर उस से पूछा कि इतनी देर कहां लगी ॥

उत्तंक ने गुरू जी को आदि से लेकर अंत तक सारा वृत्तांत कह सुनाया और फिर पूछने लगा कि महाराज वह दोनों स्त्रियां जो पट बुनती थीं वह कौन हैं, चक्र क्या है और उस

में वारह आरे क्या हैं और फिराने वाले ६ वालक कौन हैं और वह घोड़ा और उस का स्वार कौन है और जाते समय जो एक वैल और वह मनुष्य जो उस पर स्वार था वह कौन है और उस ने मुझे गोवर क्यों खिलाया था ॥

गुरू ने कहा वह दोनों स्त्रियां धाता और विधाता थीं धाता चैतन्य ब्रह्म की शक्ती है जो तीनों लोकों को चैतन्य कर रही है और विधाता विकारवान् माया है श्वेत और काले सूत्र दिन रात अर्थात माया मोह रात और आत्म ज्ञान दिन, वह चक्र प्रजापति रूप वर्ष है, वारह आरे वारह महीने हैं और ६ वालक ६ ऋतू और घोड़े पर स्वार पुरूष आचार्य रूप ईश्वर और घोड़ा अग्नि देव था, वैल ऐरावत हाथी और उस का स्वार इन्द्र, इन्द्र मेरा मित्र है इस कारण उस ने तुम को गोवर जो अमृत है पिलाया कि तुम नाग लोग में जाकर कुंडल ला सको अव तू अपने घर जा तेरा कल्याण होगा ॥

उत्तंक अपने गुरू को नमस्कार कह कर तक्षक पर क्रोध करता हुआ हस्तिनापुर को आया और राजा जनमेजय की सभा में पहुंचा, उस समय राजा जनमेजय तक्ष शिला देश को जीत कर मंत्रियों के साथ वात चीत कर रहे थे ॥

उत्तंक ने सभा में जा कर राजा को जय की वधाई दी और कुच्छ काल ठहर कर राजा से कहा कि जो काम आप को करना है वह आप नहीं करते ॥

राजा ने कहा प्रजा पालन करके अपना धर्म करता हूं आप मुझ से और क्या करवाना चाहते हैं ?

उत्तंक ने कहा महाराज जिस दुरात्मा तक्षक ने आपके पिता को विना अपराध मारा है उस से बदला लेने के लिये कुच्छ कर्म कीजिये, आप सर्प सत्र यज्ञ करके उस दुष्ट को जलती हुई अग्नि में भस्म कर पिता से उऋन हूजीये, मेरे गुरु के काम में भी उसने विघ्न डाला था मैं भी आप के इस काम में प्रसन्न हुंगा आप शीघ्र उस यज्ञ की त्यारी कीजिये ॥

चौथा अध्याय

—:०:—

कश्यप जी से कद्रू और विनता का विवाह और अरुण और गरुड़ जी की उत्पत्ति

देव युग में प्रजापति के कद्रू और विनता दो बेटीयां थीं उन्हों ने उन दोनों का विवाह कश्यप जी से कर दिया, वह दोनों पति के हां जा कर प्रीति से रह कर पति की सेवा करने लगीं, एक समय कश्यप जी ने उन दोनों को कहा कि तुम्हें जो इच्छा हो सो वर मांगो। कद्रू ने कहा महाराज ! मेरे बराबर पराक्रम वाले मेरे हां सहस्र पुत्र हों, विनता बोली कि महाराज मेरे केवल दो पुत्र हों परंतु कद्रू के पुत्रों से बल पराक्रम में अधिक हों, कश्यप जी ने कहा ऐसा ही होगा। समय पाकर दोनों के गर्भ ठहर गया, कश्यप जी यह कह कर कि इन गर्भों का अच्छी तरह से ध्यान रखना तपस्या करने के लिये वनको चले गये। समय पाकर कद्रू से सहस्रों सर्प और विनता से अरुण और गरुड़ जी उत्पन्न हुये ॥

पांचवां अध्याय

—:०:—

समुद्र का मथा जाना, चौदह रत्नों का प्रकट होना और उन का बांटा जाना ॥

सुमेरु पर्वत अन्य सारे पर्वतों से ऊंचा पर्वत है जिस की सुनैहरी चमक दमक से कहना पड़ता है कि विधाता ने वास्तव में एक सोने के पहाड़ ही को ज्योति के सांचे में ढाल दीया है इस पर्वत में नाना प्रकार के रत्नों की खानें हैं, सकल रोगों की औषधियां हैं, देवताओं के निवास स्थान हैं और इस की ऊंचाई इतनी है कि इस की एक एक चोटी आकाश से बातें करती है एक दिन वहां देवता आनन्द में मग्न हो कर दिल बहला रहे थे कि इधर उधर की बातों में अमृत का चर्चा छिड़ गया, सब की धुन बंधी कि अमृत निकालना चाहिये, पर निकले क्यों कर, यह टेढ़ी खीर थी अब अकल के घोड़े दौड़ाने लगे, विष्णु भगवान भी वहां बिराजमान थे उन्हों ने कहा अमृत का निकालना बहुत सुगम है यदि देवता और दैत्य दोनों मिल जुल कर समुद्र मथ डालें, इधर समुद्र मथा गया उधर अमृत निकल आया, और केवल अमृत ही नहीं वरन ऐसे रत्न निकलेंगे कि कहना ही क्या है ॥

यह सुन कर देवता और दैत्य: दोनों मन्द्राचल पर्वत पर जुट गये लाख ज़ोर लगाया पर पर्वत न हिला अन्त में शेषनाग जी से परार्थना की, इन के लीये बात ही क्या थी मन्द्राचल को

उठाया और समुद्र के किनारे पर पहुंचा दीया अब रस्से की आवश्यक्ता पड़ी इतने बड़े पहाड़ की मथानी के लीये रस्सी कहां से आय पस वासुकि नाग (शेष नाग के भाई) से काम निकाला गया, मुकटराज अर्थात श्री विष्णु जी के केशप रूप (कच्छ अवतार) से प्रार्थना की गई कि वह अपनी पवित्र पीठ पर मन्द्राचल को रोकें उन्हों ने पर्वत को पीठ पर रोका वासुकि नाग मन्द्राचल के गिर्द लिपट गया, पूंछ देवताओं ने पकड़ी मूंह दैत्यों के हाथ में था, मथानी चली समुन्द्र मथा जाने लगा वासुकि नाग के मुख से उष्ण वायू की धौंकनी सी चलने लगी, विष के फेण निकलने लगे इस दशा को देख कर राक्षस कांपने लगे उधर समुद्र से भी भ्यानक गरगराहट निकली जलचरों के प्राणों का नाश हो रहा था और वह मृत्यू को प्राप्त हो रहे थे, मन्द्राचल के वृक्षों से इतने फूल झरे कि मथने वाले उन के नीचे दब गये वृक्षों की डालें एक दूसरी से रगड़ २ कर अग्नि प्रचंड कर रही थीं इस अग्नि से पर्वत के पक्षी दग्ध हो गये, वृक्षों का गोंद पिघल पिघल कर झरने के समान पर्वत से बहता था यहां तक कि समुद्र के पानी का रंग दूध सा हो गया, देवता मथते मथते थक गये, दम फूलने लगा, ब्रह्मा जी विष्णु भगवान से बोले, देवता सत छोड़ चले हैं, हाथ पांव में बल नहीं रहा, निराश हो बैठे हैं आप इन को सामर्थ दें तो काम सिद्ध हो। विष्णु जी ने प्रार्थना को स्वीकार कर के देवताओं को विशेष बल दीया, पुनः मथने लगे ज़ोर लगाया अन्त को आशा पूर्ण हुई और निम्न लिखित चौदह रत्न निकले ॥

१—लाख करणाधारी प्रसन्न आत्मा और उज्वल चन्द्रमा

२–श्वेत वस्त्र धारण कीये हुये लक्ष्मी ॥

३–सुरा देवी ॥

४–श्वेत घोड़ा ॥

५–कौस्तुमणि जिस को श्री विष्णु भगवान ने अपने गले में धारण कीया ॥

६–धन्वन्तर जिस के एक हाथ में श्वेत कमण्डल में अमृत था॥

७–अमृत ॥

८–ऐरावत हाथी जिस के चार दांत थे ॥

९–कालकूट अर्थात विष ॥

१०–रम्भा ॥

११–कल्प वृक्ष, वैकुण्ठ का वह पवित्र वृक्ष है जो हर वस्तु जिस की इच्छा की जाय दे देता है ॥

१२–शंख– रत्नों से जड़ा हुआ जिस की ध्वनि से त्रलोकी गूंज जाती थी ॥

१३–धनुष ॥

१४–मदिरा ॥

इन को देख कर सब मोहित होगये, लक्ष्मी के सौंदर्य को देख कर राक्षसों की राल ही टपक पड़ी अमृत के वास्ते मूंह में पानी ही भर आया, राक्षस कहते थे कि अमृत और लक्ष्मी हमें मिले, यह हमारे हैं, और देवता अपनी बताते थे, ऐरावत हाथी को इन्द्र ने अपनी सवारी के लीये रखलिया दैत्यों और राक्षसों का आपस में युद्ध होने लगा, तलवारें निकल पड़ीं, तीर चलने लगे, विष्णु भगवान ने सोचा कि युद्ध से मरें तो

" विष क्यों दें, वह बात करो कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे नारायण ने बड़ा अद्भुत मोहिनीरूप स्त्री का धारण कीया और दैत्यों के पास खड़े हो कर उन के मन को मोहि लिया और कहा कि इन रत्नों के लीये क्यों लड़ते हो लाओ मैं फ़ैसला कर दूं जिस को जो दूं स्वीकार करे, झगड़े में क्या लाभ, राक्षस जो मोहिनी मूरत पर मोहित हुये हुये थे बोले, जो आप करें हमें स्वीकृत है ॥ विष्णु जी को चिन्ता थी कि काल कूट विष किस को दीया जाय यह सोच कर कि शिवजी पर काल कूट विष का कुच्छ असर न होगा यह शिवजी को दे दीया, शिवजी ने आनन्द हो कर उसको पान कर लीया ॥

सुरा और कल्प वृक्ष वैकुण्ठ में भेजे गये और मदिरा राक्षसों को दी गई जिस को पी कर वह बेसुद्ध होगये ॥

सुरपत इन्द्र देवताओं के राजा थे उची शरवा घोड़ा और ऐरावत हाथी उन को दीया गया ॥

लक्ष्मी जी को विष्णु ने अपने गले लगा लीया और कौस्तभ मणि भी अपने गले डाल लीया ॥

अमृत की बारी आई तो देखते आवाज, राहु भी राक्षसों की पंगति में से उठ कर देवताओं के जत्थे में आ बैठा और अमृत के घूंट भर लीये, सूर्य और चन्द्र राहु को पहचान गये और विष्णु जी की मोहिनी मूरत से कहा आपने कुच्छ पहचाना यह कौन है ॥

मोहनी मूरत क्रोध में होगई सुदर्शन चक्र चलाया तो सिर पृथक होगया और उड़ कर आकाश पर पहुंचा और शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा परंतु अमृत के प्रभाव से मरा नहीं वह दोनों राहु, केतु

के नाम से आजतक प्रसिद्ध हैं और वैर मान कर सूर्य्य चन्द्रमा को अबतक ग्रसते हैं चौदा रत्न जिस जिस के भाग में थे उस को मिल गये परंतू अमृत देवताओं को पच गया ॥

इस के उपरांत क्षीर समुद्र के किनारे दैत्यों और देवताओं में बड़ा घोर तुमुल युद्ध होने लगा और श्री नारायण ने भी अपना मोहिनी रूप छोड़ कर उन दैत्यों को अनेक शस्त्रों से भयभीत कीया और सहस्त्रों का नाश हुआ सहस्त्रों समुद्र में डूब मरे और सहस्त्रों पहाड़ों में जा छुपे ॥

तब देवता मन्द्राचल को उस के स्थान पर लेगये और वहां टिका दीया और जय पाकर स्वर्ग को चले गये और अमृत के घड़े को रक्षा सहित रखने के लीये इन्द्रादी देवताओं ने भग्वान नर को दीआ ॥

छटा अध्याय

—:०:—

कद्रू का द्रोह, बिनता का कद्रू से हारना और गरुड़ जी की उत्पत्ति ॥

चौथे अध्याय में वर्णन हो चुका है कि कद्रू और बिनता ने उची शरवा को देखा और पूजा की इसी के सम्बन्ध में लोभ हर्षण ऋषीश्वर कहते हैं कि कद्रू ने विनता से पूछा कि सूर्य के घोड़े का रंग क्या है ॥

विनता–सिर से पाओं तक सर्वथा श्वेत ॥

कद्रू—नहीं तुम भूलती हो, पूंछ अवश्यमेव काली है ॥

विनता बोली—अच्छा कल चल कर देखेंगी जो हार जाय वह दासी बने ॥

कद्रू जानती थी कि मैंने श्वेत को काला कहा है, मेरी हार होगी उस ने अपने बेटों से कहा कि सूर्य के घोड़े की पूंछ को लिपट जाओ, नहीं तो मैं हार जाऊंगी और दासी बनना पड़ेगा इन में से बहुत से सर्पों ने माता का कहना न माना और इन को कद्रू ने शाप दीया कि तुम सारे अग्नि में जल जाओ से ऐसा ही हुआ और वह जनमेजय के यज्ञ में भस्म होगये। अन्य बेटों ने सोचा कि शाप अग्नि में दग्ध करेगा और माता को भी दासी बनना पड़ेगा इस कारण जिस प्रकार हो सके माता का कहना मान लीया जाय उन्हों ने सूर्य के घोड़े की पूंछ को लिपटने का वाक माता को दे दीया ॥

कश्यप जी को भी खबर पहुंच गई कि कद्रू ने मेरे बहुत से पुत्रों को अग्नि में जलने का शाप दीया है इस दुःख से उन का कलेजा तड़प उठा ब्रह्मा जी भी वहां आगये और आपने ढारस दी कि किसी का इस में कोई दोष नहीं मेरी इच्छा ही ऐसी थी यह सर्प मनुष्य जाती को दुःख देते हैं ब्रह्मणों को डसे हैं इन को ऐसा शाप होना ही उचित था यह कह कर ब्रह्मा जी ने कश्यप जी को विष हरने वाली विद्या सिखलाई और आप पधार गये ॥

जब सवेरा हुआ कद्रू और विनता दोनों सूर्य के घोड़े को देखने के लीये घर से चलीं रासता आकाश में था वहां से समुद्र को देखा जो वायू से उठी हुई लहरों से शोभायमान मगर आदि

सहस्रों जीवों से भरा हुआ बड़ा गहरा भयानक सब प्रकार के रत्नों की खान वरूण और नागों का निवास स्थान संहारमयीक नदियों का मालिक पाताल की अग्नि असुर और भयंकर जीवों के रहने का आलय अव्यय योगनिद्रा से सेवित विष्णु भग्वान के शयन का स्थान वज्र से डरे हुये मौनाक पर्वत को अभय करने वाला, युद्ध से भागे हुये दैत्यों का परायण कल्याण रूप अगाध अपार चारों ओर से अत्यंत पूर्ण और अनन्त था ॥

यह दृशय देखते हुये यह दोनों ठिकाने पर पहुन्च गई उधर शाप से भयभीत पुत्र उच्ची श्रवा की पूंछ से जा लिपटे सूर्य्य के रथ पर दृष्टि पड़ते ही विनता देखती है कि ऊची श्रवा की पूछ काली है अचम्बा सा होगया चकित रह गई कि दिन रात कैसे, वचन हार चुकी थी, बात का पास था, कद्रू की दासी वन कर रहने लगी ॥

विनता के दूसरे पुत्र गरुड़ जी थे उन का पराक्रम अतुल और तेज सब दिशाओं में उज्याला करने वाला था जहां चाहें तहां जावें और जो रूप चाहें उस के धारण करने में सामर्थ थे रूप उन का अति डरावना और तेज अग्नि की राशि के समान था, थोड़े दिनों में बड़े होकर आकाश में गये उन के अत्यन्त घोर शब्द करने वाले भयानक और्व अग्नि के समान प्रकाश स्वरूप को देख कर सब देवता भयभीत हुये और कांपते हुये अग्न देवता के पास जाकर सविनय प्रार्थना की ॥

अगन देव डरो नहीं, गरूड़ जी तुम्हारे रिपू नहीं मित्र हैं, सहायक हैं देवताओं की सहायता करने वाले, हा राक्षसों

के अवश्य विरोधी हैं, इस प्रकार ढारस देकर सब देवताओं का साथ लीया और सब गरूड़ जी की यूं स्तुति करने लगे ॥

आप ऋषि हो सब मंत्रों के जानने वाले हो महा भागी हो देवहो, पक्षी गण के ईश्वर हो, प्रभू हो नाश करने वाले हो, सूर्य हो, परमेष्टी हिरण्य गर्भ हो, प्रजा पति हो, इन्द्र हो, हयग्रीव अवतार हो, बाण हो जगतपति हो मुख हो, ब्रह्मा हो, विज्ञानी हो अग्नि हो पवन हो धाता विधाता हो विष्णु हो अहंकार हो सनातन हो, अमृत हो, यशवान हो, सूर्य आदि का तेज हो, बुद्धि वृद्धि हो रक्षण रूप हो, मोक्ष रूप हो, अपने तेज से जलाते हो, भयंकर हो, काल के भी काल हो अग्नि के समान तेजस्वी हो बिजली की सी चमक रखने वाले हो आकाश गमन हो कार्य्य कारण रूप हो, वर के दाता हो अजित पराक्रमी हो हम सब देवते आप की शरण आये हैं आप अपने इस तेज स्वरूप से हमारी रक्षा करो आप से डर कर सब देवता भागने वाले हैं इस कारण से आप क्रोध का त्याग कर जगत की रक्षा करो। आप के वज्र समान शब्द से सब दिशायें अकाश स्वर्ग पृथ्वी कांप रहे हैं और हम सब का हृदय धड़कता है अब आप कृपा करो और इस स्वरूप को गुप्त करो यह सुन गरुड़ जी ने अपने तेज का संहार कीया ॥

जिस समय समुद्र मथागया था राहु भी अमृत पीने के लीये देवताओं में आगया था, सूर्य और चन्द्र ने विष्णु भगवान को बता दीया था कि यह राक्षस है इस कारण से राहु सूर्य और

चन्द्र में वैर मान कर उन को ग्रसने लगा तव सूर्य्य ने विचार किया कि हमने देवताओं के उपकार के लिये राहु का नाम वताया था वह अव हम को वैर भाव से ग्रसता है और सव देवता देखते हैं परन्तू कोई सहायता नहीं करता हम भी अपने तेज से सव लोकों को कल भस्म कर देंगे ऐसा विचार कर सूर्य्य अस्त हो गये॥

ऋषि लोग यह जान कर देवताओं के पास गये और उन सव को साथ लेकर ब्रह्मा जी के पास जा कर प्रार्थित हुये कि महाराज आप सच कहते हैं सूर्य्य का ऐसा ही विचार है, परन्तू हम ने उस का प्रवंध पहले ही से कर दीया है और वह यह कि कश्यप जी के अरुण नाम वड़े तेजस्वी पुत्र को पूर्व में वैठा दिया है वह सूर्य्य का सार्थी वन कर अपने तेज से सूर्य्य के तेज को हरेगा ऐसा ही हुआ और देवताओं की रक्षा हुई॥

सातवाँ अध्याय

—:o:—

विनता की दासी की दशा। गरुड़ जी को छुड़ाने की चिन्ता और अमृत लाने की वात चित॥

एक समय गरुड़ जी विनता और कद्रू के पास वैठे हुये थे वार्तालाप में नाग लोक की कथा छिड़ गई कद्रू गरुड़ जी की सुतीली माता विनता से वोली कि नाग लोक की शोभा देखने

को दिल चाहता है ले चलो और दिखलाओ ॥

विनता ने कद्रू को अपने कंधों पर चढ़ा लीया और अपनी माता की आज्ञा से गरुड़ जी ने सर्पों को अपनी पीठ पर बिठा लिया और वहां से सूर्य्य के सन्मुख होकर चले, सूर्य्य के तेज से सब सर्प मूर्छित होगये कद्रू यह देख कर दुखित हुई और राजा इन्द्र का ध्यान कर के उस से यूं प्रार्थित हुई :—

महाराज ! आप देवताओं के शिरोमणी हैं, महाराज अधि-राज हैं सहस्राक्ष हैं, शचीपति हैं हमारे बड़े रक्षक, बहुत जल को उत्पन्न करने का सामर्थ रखने वाले मेघ हैं ॥

वायू, अग्नि, बिजुली, बादलों को फैलाने वाले हैं, घोर वज्र गरजने मेघ लोकों के संहार करने वाले और रचने वाले हैं। सब प्राणीयों का चैतन्य आत्मा हैं मैं आप को नमस्कार करती हूं, मुझ पर दया कीजीये पानी बरसा कर मेरे कलेजे की तप्त को बुझाइये और मेरे पुत्रों को सूर्य के तेज से बचाईये ॥

इन्द्र ने कद्रू की विनय को सुन कर आकाश को नीली घटाओं से ढाप दीया और बादलों के परस्पर मिलने से बिजुली चमकने लगी और अमृत रूपी जल बरसने लगा, इस जल के बरसने से सूर्य का तेज घट गया और सारे सर्प प्रसन्न हो गये वह जल रसातल तक पहुंच गया और पृथ्वी जल से ढकी गई और सर्प माता के साथ सुख पूर्वक रमणीय द्वीप में जा पहुंचे ॥

गरुड़ जी की स्वामी थी वहां से जो उड़े तो मकरावास द्वीप में पहुंचे और लवणासुर- और मनोरम कानन को देखा समुद्र अपनी लहरों से उस वन को सींच रहा था अनेक पक्षी चित्र विचित्र बोलीयां बोल रहे थे अनेक प्रकार के फल फूलों के वृक्षों की पंक्तियां लग रही थीं और फूलों की गंध से सारा वन महक रहा था, तालाबों में कंवल फूल शोभा दे रहे थे और उन के ऊपर भंवर गूंजते हुये एक कंवल का रस लेकर दूसरे का आनन्द लेते थे, इस दृश्य से कद्रू के पुत्र सर्प बड़े प्रसन्न हो कर बोले, हे आकाश में चलने वाले गरुड़ ! तुमने बहुत से द्वीप देखे हैं अब हम को उस द्वीप में ले चलो जो इस द्वीप से भी रमणीक हो ॥

यह सुन कर गरुड़ जी अपनी माता विनता से पूछने लगे कि माता क्या कारण है कि सर्प मुझे भृत के समान पुकारते हैं जो जी में आता है करवाते हैं मैं कान नहीं हिलाता, दिल ही दिल में कुढ़ कर काम कर देता हुं ॥

विनता—बेटा क्या कहुं, कद्रू से एक शर्त लगाई थी उस ने धोखे से मुझे जीत लिया था अब प्रण का पालन करना है दासी बनी हुई हुई हुं ॥

यह सुन कर गरुड़ जी दुःखित हो कर सर्पों के पास गये और उन से कहा कि यदि मेरी माता का दास भाव हट जावे तो जो वस्तु तुम मांगोगे मैं तुम को ला दूंगा ॥

सर्प बोले कि तुम अमृत लाओ उस के लाने पर तुम और तुम्हारी माता दास भाव से छूट जाओगे ॥

———

॥ आठवां अध्याय ॥

—:०:—

अमृत लाने के लीये गरुड़ जी का जाना।

गरुड़ जी– (माता से) अमृत लाने को तत्पर हुं पर भूख के मारे प्राण निकल रहे हैं, क्या खाऊं ॥

विनता—भोजन की क्या कमी है, समुद्र में निषाद ही निषाद रहते हैं, सब का भोग लगाओ, पर देखना कहीं किसी ब्राह्मण को न चट कर जाना कि लेने के देने पड़े, ब्राह्मण मनुष्य मात्र के गुरू हैं, तनिक कोप करें, सूर्य्य का तेज ठण्डा पड़ जावे, धुखती हुई आग तेजमय मुख के सन्मुख राख हो जा पड़े ॥

गुरुड़ जी—ब्राह्मण की पहिचान क्या है? उस का रूप शील और प्राक्रम कैसा है और वह कभी सौम्य दर्शन और कभी अग्नि सदृश प्रकाश क्यों कर कर लेता है ॥

विनता–हे पुत्र! भक्षण करते समय जो पुरुष तेरे गले को अग्नि के समान जलावे और कंठमें ऐसी पीड़ा करे जैसे मछली का कांटा गले में छिद जाने से होती है और जो पेट में जाने पर पचे नहीं उसे श्रेष्ठ ब्राह्मण जानियो अब जाओ ईश्वर तुम्हें सहाई हों, मैं बैठ कर तुम्हारा रास्ता देखती हुं ॥

गरुड़ जी माता से आज्ञा ले कर उड़ गये और पवन के समान आकाश मार्ग से निषाद आलय को चले और, देखा कि निषादों के झुण्ड के झुण्ड चले आते हैं गरुड़ जी अपने पैरों

की वायु से वृक्षों को हिलाया और इतनी धूल उड़ाई कि अन्धेरा ही अन्धेरा हो गया अपना मुख फैला कर रास्ता रोक बैठ गये उस समय निषाद अपने घरों को जारहे थे धूल के अन्धेरे में किसी को न दीख पड़ा और सब के सब उन के मुख में चले गये तब गरुड़ जी ने अपना मुख बन्द कर लीया ॥

जब गरुड़ जी ने मुख बंद कर लीया तो उन का गला जलने लगा उन्हों ने जान लीया कि कोई ब्राह्मण निषादों के साथ पेट में चला गया है वह बोले कि हे ब्राह्मण देवता तुम बाहर चले आओ ॥

ब्राह्मण बोला मेरी स्त्री भी मेरे साथ है मैं उस को छोड़ कर क्यों कर निकलूं तब गरुड़ जी ने कहा कि तुम उस को भी अपने साथ लेकर शीघ्र बाहर निकल आओ ॥

यह सुन कर वह ब्राह्मण अपनी स्त्री को साथ लीये गरुड़ जी के मुख से बाहर निकल आया और गरुड़ जी को अशीर्वाद दे जिधर जाना था चला गया ॥

तत्पश्चात गरुड़ जी अपने परों को फहराय कर आकाश को चले और रास्ते में कश्यप जी से मिले और उन को प्रणाम कर के कुशल सुनाई ॥

कश्यप जी ने आशीर्वाद दे कर पूछा कि पहिले भोजन की कुशलता कहो ॥

गरुड़ जी बोले । माता और भाई कुशल से हैं, भोजन न्यून मिलता है । आज माता जी की आज्ञा से सहस्रों निषादों को भक्षण कीया है परंतु तृप्ती नहीं हुई अब मैं अपनी माता को दासी भाव से छुड़ाने के लिये सर्पों का भेजा हुआ अमृत लेने

जाता हूं। आप वहां कोई ऐसा पदार्थ बतलाइये जिस को खा कर तृप्त हो जाऊं और अमृत ला सकूं॥

कश्यप जी ने कहा कि यह देखो एक सरोवर है यह बड़ा पवित्र है और देवलोक में भी विख्यात है उस में एक लम्बा चौड़ा कछुवा रहता है और एक बहुत बड़ा हाथी इस तालाब के तट पर आया करता है पिछले जन्म के वैर से कछुवा हाथी को देख कर पानी के ऊपर आ जाया करता है और हाथी भी उस को देख कर पानी में चला जाया करता है और फिर क्रोध कर के दोनों में बड़ी लड़ाई होती है, पिछले जन्म में कछुवा विभावसु नाम महा क्रोधी ऋषि था और हाथी सुप्रतीक नाम उस ऋषि का छोटा भाई था धन के बाटने के झगड़े में आपस में क्रोध कर शाप देने के कारण बड़ा भाई छोटे के शाप से कछुवा और छोटा भाई बड़े के शाप से हाथी हो गया है। हे पुत्र यह दोनों आपस में एक दूसरे को मारना चाहते हैं तू इन को भक्षण कर के अपनी क्षुधा को मिटा और अमृत लेने को चला जा॥

कश्यप जी ने अशीर्वाद दी और चलते बने॥

अब गरुड़ जी उस सरोवर के किनारे पहुंचे, इस के निर्मल जल में अनेक प्रकार के जन्तु क्रीड़ा कर रहे थे, हाथी भी आ पहुंचा और कछुवे ने भी अपने आप को बाहिर निकाला और दोनों आपस में गुच्छम गुच्छा हो गये॥

गरुड़ जी ने एक पंजे से हाथी को और दूसरे से कछुवे को पकड़ लीया और आकाश का मार्ग लेते हुये सुमेरू पर्वत पर

अलंवती तीर्थ के देव वृक्षों के पास जा पहुंचे। उन वृक्षों की सुनहैरी शाखायें गरुड़ जी के परों की वायु से वेग से हिलने लगी और वृक्ष इस भय से कि गरुड़ जी हम को तोड़ न डालें डर गये ॥

तब गरुड़ जी अन्य बड़े बड़े लम्बे चौड़ वृक्षों के पास गये जिन की शाखायें वैडूर्य मणि की थीं और उन में रुपहले सुनहले फल लगे हुये थे और वह अत्यन्त चमकीले थे अर्थात जैसे देवताओं के सूक्ष्म प्रकाश वान शरीर होते हैं वैसे वहां के वृक्ष भी सूक्ष्म शरीर वाले और ज्योति मय थे ॥

गरुड़ जी को देख कर एक वृक्ष बोला कि मेरी यह शाखा बहुत लम्बी है इस पर बैठ कर आप इस हाथी और कछुवे को खा लीजीये ॥

गरुड़ जी उस वृक्ष की शाखा पर जिस पर पहिले ही सहस्रों पक्षी बैठे हुये थे और जिस के पत्तों से बड़ी प्रसन्न हो रही थी बैठ गये और वह शाखा गरुड़ जी के बैठते ही टूट गई ॥

गरुड़ जी के पंजे तो हाथी और कछुवे से रुके ही हुये थे उस शाखा को उन्हों ने अपने मुख से पकड़ लीया और वहां से चल पड़े। उन के इस कर्म्म को जो देवते भी न कर सकते थे देख कर उन ऋषियों ने उस आकाश में बड़े भारी बोझ को लेकर उड़ने वाले पक्षी का नाम गरुड़ रक्खा ॥

गरुड़ जी कछुवे आदि को लीये हुये पर्वतों को हिलाते अनेक देशों में फिरे परंतु उस शाखा के रखने का कहीं भी कोई स्थान न पाया ॥

पुनः घूमते हुये गन्ध मादन पर्वत पर जहां कश्यप जी तपस्या कर रहे थे पहुंचे ॥

कश्यप जी उस दिव्यरूप आकाश में अति वेग से उड़ने वाले बल वीर्य से भरे हुये पहाड़ के तुल्य अति भ्यानक स्वरूप वाले रौद्र अग्नि के समान प्रकाशवान देव आदि से न जीते जाने वाले पहाड़ों को फोड़ने और समुद्र का जल सुखा देने वाले मृत्यु के समान दर्शन वाले अपने पुत्र को देख कर यूं बोले हे पुत्र! जल्दी मत करीयो सूर्य्य कीं किरणों का भोजन करने वाले बाल खिल्य ऋषि तुझे क्रोध से भस्म कर देगें ॥

पुनः कश्यप जी ने उन ऋषियों से कहा कि हे तपोधन! गरुड़ जी का यह आरम्भ प्रजा के हितार्थ है वह बड़ा कर्म्म करना चाहते हैं आप कृपा कर के इन को आज्ञा दें ॥

यह सुन कर बाल खिल्य ऋषि उस शाखा को छोड कर तपस्या के लिये हिमालय को चले गये ॥

गरुड़ जी ने कश्यप जी से पूछा कि महाराज अब ऐसा स्थान बताइये जहां मैं इस शाखा को छोड़ दूं ॥

कश्यप जी ने कहा कि बर्फ के पहाड़ पर जहां मनुष्य आदि जीव नहीं हैं इस को छोड़ दो ॥

तब गरुड़ जी उस पर्वत की ओर चले और थोड़ ही काल में वहां पहुंच कर उस लम्बी और मोटी शाखा को पिता जी के बताये अनुकूल उस पर छोड़ दीया, उस शाखा के गिरने से उस पर्वत की चोटीयां जो मणि और कांचन के सदृश थीं

फट गई और सोने की प्रभा वाले बहुत से वृक्ष उस शाखा से टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़े और पर्वत के हिलने से उस के ऊपर के वृक्षों के फूल गिरे जिन से फूलों की वर्षा होगई ॥

उस शाखा को छोड़ कर अब गरुड़ जी ने उसी पर्वत के शिखर पर बैठ कर उस हाथी और कछुवे का भोग लगाया ॥

अब वहां से उड़ कर गरुड़ जी देवलोक को चले, देवताओं को भयभीत अपशकुन दीख पड़े, डर से इन्द्र का वज्र प्रज्वलित हो गया। दिन से धूसर ज्वाला सहित उल्का गिरने लगे, आठ वसु ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, साध्य, गण और मरुद्गण आदि देवतों के शस्त्र परस्पर भिरने लगे। इस सब को देख कर इन्द्र बहुत घबराय और बृहस्पति जी से यूं बोले ॥

महाराज हम को कोई ऐसा शत्रु नहीं दीख पड़ता जो हमारा सामना करसके यह क्या कारण है ऐसे घोर उत्पात दिखाई देते हैं ॥

बृहस्पति जी ने कहा कि हे इन्द्र तेरे अपराध और प्रमाद और बाल खिल्य ऋषियों के तप के कारण से कश्यप जी का बड़ा पराक्रमी आकाश में चलने वाला पुत्र तुम से अमृत छीनने को आता है वह अमृत छीन ले जा सकता है और संसार के जो असाध्य कार्य हैं वह उन को भी कर सकता है ॥

बृहस्पति जी की यह बात सुन कर इन्द्र आदि सब देवता चौकन्ने हो गये और सब अपने अपने शस्त्र ले कर अमृत की रक्षा के लिये खड़े हो गये ॥

—:०:—

नवमां अध्याय

—:०:—

गरुड़ जी का अमृत लेने को जाना, युद्ध, देवताओं की हार, गरुड़ जी की जय, और उन का अमृत ले आना, गरुड़ पर विष्णु भगवान का आरूढ़ होना, इन्द्र से मित्रता, सांपों को अमृत का न मिलना, विनता का दासत्वभाव से छुटकारा।

जब गरुड़ जी हाथी और कछुवे को भक्षण करके अमृत लेने के लीये स्वर्ग को गये और वहां सब देवताओं को अमृत की रक्षा के लीये युद्ध करने को तत्पर पाया तो वह उन से युद्ध करने लग गये, देवता गरुड़ जी को देख कर कांप उठे और चारों ओर से अस्त्र शस्त्र मारने लगे, सब से पहिले गरुड़ जी ने भौमयात्मा नाम विश्व कर्मा को जो विजली और अग्नि के समान तेज रखता था, अपने नख और चांच से घायल करके गिरा दीया, इस के पीछे अपने परों से धूल उड़ा कर अन्धेरा कर दीया जिस से एक दूसरे को कोई न देख सकता था अन्य देवताओं को पर और चोंच मार कर घायल कर दीयां, इन्द्र ने वायू को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र इस धूल को हटा कर अंधेरे को दूर करो । वायू ने ऐसा ही कीया । उज्याला होने पर इन्द्रादि देवताओं ने गरुड़ जी पर नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र चला कर उन को ढांप दीया ॥

गरुड़ जी ने उन के अस्त्र शस्त्रों को कुछ न जाना और तीर तलवार खाते देवताओं के बीच में से निकल कर आकाश मे जा पहुंचे और बादल के समान गरजने लगे और देवताओं को अपने पर और चोंच से मार कर व्याकुल करते जाते। साध्यगण और गांधर्व पूर्वदिशा की ओर अष्ट वसु और रुद्र दक्षण की तरफ वारुण और सूर्य्य पश्चम की ओर और पराक्रमी अश्वनी कुमार उत्तर की ओर भाग गये। बाकी देवता युद्ध कर के गरुड़ जी से पराजय हुये॥

पुनः अग्नि ने अपना उग्र रूप धार कर चारों ओर से ज्वाला बरसाई, गरुड़ जी ने अपने शरीर में एक सहस्र मुख करके प्रथम नदियों को पीलिया पीछे उन नदियों को छोड़ कर अग्नि को शांत कर दीया और अपना स्वरूप बहुत छोटा कर लीया और ऐसे वेग से चले जैसे नदियां समुद्र में जागिरती हैं, वहां पहुंच कर देखा कि अमृत के बर्तन के गिर्द लोहे का एक बड़ा तेज़ चक्र घूम रहा है॥

गरुड़ जी उस की प्रभा सूर्य्य के समान देख कर उस के चारों ओर घूमने लगे और बहुत ही छोटा स्वरूप धार कर उस चक्र के आरों की संधी में होकर अन्दर चले गये। वहां जाकर क्या देखते हैं कि दो सर्प जिन का तेज अग्नि सा, जिन्हा बिजली के समान, आंखें क्रोध से भरी हुई और ऐसे विषधारी कि जिसकी ओर दृष्ट करें तत्काल उसको भस्म कर डालें उस अमृत को पी रहे हैं। गरुड़ जी ने तत्क्षण आंधी चलादी सर्पों की आंखें चुंध्या गईं, उन को कुछ दिखाई न दीया। गरुड़ जी ने अमृत के उस घड़े को उठा लीया और वहां से घर की ओर चल पड़े॥

सूर्य्य के सन्मुख होकर आगे बढ़े ही थे कि विष्णु भग्वान से सामना हुआ जो इनके पराक्रम, साहस और बल को देखकर प्रसन्न हुये और कहा कि वर मांग।

गरुड़ जी ने कहा कि मैं आप की ध्वजा में रहूं, अमृत पीये विन अजर अमर होजाऊं, विष्णु भग्वान ने कहा ऐसा ही होगा॥

तब गरुड़ जी ने कहा मुझे कोई सेवा बतलाइये, विष्णु भग्वान ने कहा कि तुम हमारे वाहन बनो॥

गरुड़ जी ने कहा ऐसा ही होगा॥

अब नारायण ने गरुड़ को अपनी ध्वजा में रक्खा और गरुड़ जी नारायण के वाहन हुये॥

गरुड़ जी को अमृत के घड़े को लाये हुये जाते देख कर इन्द्र ने अपना वज्र चलाया उस वज्र को सह कर गरुड़ जी हंसते हुये वोले कि मुझे इस वज्रपात से तनक भी कष्ट नहीं हुआ परंतू हे इन्द्र तेरे वज्र का और उस ऋषि का जिस की हड्डीयों से यह वज्र बना है मान रखने के लीये अपना एक पर छोड़ता हुं॥

गरुड़ जी के इस पर की सुन्दरता को देख कर लोगों ने उन का नाम सुपर्ण रक्खा, इन्द्र गरुड़ जी के अतुल पराक्रम को देख कर बोला कि मैं तेरे बल के जानने का इच्छक हुं और तेरा मित्र बना चाहता हुं॥

गरुड़ जी ने इन्द्र को कहा कि हम ने तुम को अपना मित्र बनाया और तुम ने जो हमारा बल पूछा यद्यपि साधू लोग अपने बल और पराक्रम की आप स्तुति नहीं करते पर तुम्हें मित्र जान

कर हम कहते हैं हमारा बल अप्रमाण और असह्य है, हम इस पृथ्वी को सकल बोझ के सहित और साथ तुम को भी एक पर में लटका कर ले जा सकते हैं॥

इन्द्र बोले कि आप सच कहते हैं आप जो चाहें कर सकते हैं अब आप हमारे मित्र बनीये और यदि इस अमृत से आप को कुच्छ कार्य न हो तो इस को हमारे पास ही रहने दीजीये क्योंकि जिस किसी को आप अमृत देंगे वह भी हम को बाधा करेगा॥

गरुड़ जी बोले मैं अमृत किसी को नहीं दूंगा एक कारण से मैं इसे लीये जाता हुं। आज जहां मैं इस को रख दूं तुम वहां से उठा लाना॥

इन्द्र बोले बहुत अच्छा आप हम से वर मांगीये॥

गरुड़ जी ने कद्रू के पुत्रों की धूर्त्तता और छल कपट और अपनी माता के दासी होने का सारा वृत्तांत इन्द्र को कह सुनाया और यह भी कहा कि यह सर्प मेरे भक्ष हों॥

इन्द्र बोले ऐसा ही होगा, मैं अब आप के संग चलता हुं जहां आप अमृत रखेंगे मैं उठा लाऊंगा॥

गरुड़ जी ने अपनी माता के पास पहुंच कर सर्पों से कहा लो तुम्हारे कहने के अनुसार हम अमृत ले आये हैं तुम सब स्नान करके इसको ग्रहण करलो हमारी शर्त पूरी हुई और हमारी माता अब दासी नहीं रहीं॥

सर्प अमृत लेनी की लालसा से झट स्नान करने को गये इतने में इन्द्र उस घड़े को उठा कर लेगये। जब सर्प स्नान करके

आये तो वहां अमृत न पाकर जाना कि इन्द्र अमृत हर लेगया है और यह हमारे छल छिद्र का बदला है तब उन कुशाओं को जिन पर अमृत रक्खा हुआ था चाटने लगे। जिस से सर्पों की दो जिव्हा होगई। इसी समय से अमृत का स्पर्श होने के कारण कुशा पवित्र मानी गई है ॥

तब गरुड़ जी अपनी माता सहित उस वन में बहुत काल तक प्रसन्नता पूर्वक विहार करते रहे ॥

सूत जी ने कहा हे ऋषियो ! जो मनुष्य गरुड़ महाराज के इस महात्म्य को सदा सुनेगा और अच्छे ब्राह्मणों की सभा में पढ़ेगा वह निश्चय गरुड़ जी की कृपा से स्वर्गवास पावेगा ॥

दसवां अध्याय

—:०:—

प्रधान प्रधान नागों के नाम, शेष जी का तपस्या करना, ब्रह्मा जी का उन को वर देना, शेष जी का धरती को अपने फण पर धारण करना, और सर्पों का अपनी माता के शाप से बचने का विचार ॥

सौनक ऋषि बोले हे सूत आपने कद्रू विनता के वर पाकर उन के पुत्र उत्पन्न होने की कथा तो कह सुनाई अब कृपा करके प्रधान प्रधान नागों के नाम वर्णन कीजिये ॥

सूत जी—सर्पों के बहुत नाम होने से सारे नहीं कह सकता,

मुख्य और प्रधान प्रधान कहता हूं। पहिले तो शेष जी उत्पन्न हुये, फिर वासकि, ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालिय, मणि नाग, अपूर्ण नाग, पिञ्जरक नाग, एलापत्र, वामन, नील, अनील, कल्माष, शबल, आर्यक, उग्रक, वलिशिख, निष्टानक, हेमगुह, नहुष, पिंगल, बाहुकर्ण, हस्तिपद, मुद्गरपिंडक, कंबल, अश्वतर, कालीयक नाग, दूसरा कूष्मांडक, वृक्षदोनों, संवर्तक, जिन को पद्मम नाग भी कहते हैं, शंखमुख, क्षेमक, पिंडारक, करवीर, पुष्पदंष्ट्र, विलक, बिल्वपांडर, मूखकाद, शंखशिर, पूर्णभद्र, हरिद्रक, अपराजित, ज्योतिक, श्रीवह, कौरव्य, धृतराष्ट्र, शंखपिंड, विरजा, सुबाहु, शालिपिंड, हस्तिपिंड, पिठरक, सुमुख, कौणपाशन, कुठर, कुंजर, प्रभाकर, कुमुद, कुमुदाक्ष, तित्तिरि, हलिक, कर्दम महानाग, बहुमूलक नाग, कर्कर, अकर्कर, कुंडोदर महोदर, आदि क्रम से उत्पन्न हुये ॥

शौनक जी बोले हे सूत पुत्र! आपने नागों के नाम तो बतलाये यह कहिये कि उन सर्पों ने अपनी माता कद्रू के शाप को जान कर क्या कीया ॥

शेष जी अपनी माता कद्रू को छोड़ कर बड़ा तप करने लगे, केवल वायू खा कर रहते थे और जितेन्द्रि हो कर सावधानी से व्रत करते थे, पहेल गन्ध मादन में रहे पुनः बद्रका आश्रम में जा रहे, फिर गो कर्ण और पुष्कर वन और हिमालय में जा ठहरे, उन के उग्र तप को देख कर ब्रह्मा जी वहां आये और शेष जी को जिन की देह सूख गई थी तप में बैठा देख कर यूं बोले ॥

हे शेष तेरे उग्र तप से सारा संसार तप रहा है हम तुझ पर प्रसन्न हुये हैं जो तेरी इच्छा हो वह हम से मांग ॥

शेष जी बोले हे पिता ब्रह्मा मेरे सब भाई मंद बुद्धि हैं आपस में द्वेष और ईर्षा रखते हैं विनता माता से भी वह वैर रखते हैं और आकाश में चलने वाला हमारा भाई बड़ा बलवान गरुड़ जो है उस से भी वैर रखते हैं इस कारण मेरी इच्छा है कि मैं उन का मुख न देख सकूं और मैं अब तप में ही अपने शरीर को दूंगा, मैं चाहता हुं कि इस शरीर को छोड़ने पर मेरा उन से किसी प्रकार का भी समागम न हो ।

ब्रह्मा जी बोले हम तेरे भाईयों की कुचाल को भले प्रकार जानते हैं और कद्रू ने सर्पों के नाश होने का जो शाप दीया है वह भी हम पर विदत है । उस के दूर होने का यत्न भी हम ने पहिले कर रक्खा है । तू इस की कुछ भी चिन्ता न कर । तेरी जो इच्छा हो वह हम से मांग ले, तु बुद्धिमान है और धर्म्मात्मा है ॥

शेष जी बोले, हे ब्रह्मा जी मेरी बुद्धि धर्म्म अन्तः करण के निरोध और तप में रहे ॥

ब्रह्मा जी–तेरी इच्छा मेरे दिल भाई है, मैं प्रसन्नता पूर्वक वरदान देता हुं परंतु अब मेरी एक बात मान, वह यह कि अब तू प्रजा के हित के लीये इस डामा डोल पृथ्वी को समुद्र पर्वत और वनों सहित अपने सिर पर रख कर अचल कर ॥

शेष जी–आप वरदाता प्रजापति, महिपति और जगतपति हैं मैं आप की आज्ञा का पालन करूंगा आप इस पृथ्वी को मेरे सिर पर रख दीजीये ॥

ब्रह्मा जी ने कहा तुम इस पृथ्वी के नींच चले जाओ यह तुम को आगे जाने को स्वयं ही रासता दे देगी, पस शेष जी बिल के रासते से घुस कर पृथ्वी के नींचे पहुंच गये और पृथ्वी को समुद्र पर्वत आदि सहित अपने सिर पर रख लीया ॥

अब ब्रह्मा जी ने शेष नाग जी से कहा कि तुम ने जो पृथ्वी को अपने सिर पर उठा लीया है इस से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हुं तू आज से नागों में उत्तम गिना जावेगा और मेरे और इन्द्र के समान पूजा जावेगा फिर ब्रह्मा जी ने शेष जी और गरुड़ जी की मित्रता करा दी ॥

वासुकि नाग ने जब अपनी माता का शाप सुना तो सब सर्पों को बुला कर कहा कि अब कोई ऐसा मन्त्र विचारो जिस से यह शाप हम पर किसी प्रकार का असर न कर सके, अन्य शापों के हटाने के बहुत से यत्न हैं पर माता के शाप का कोई उपाय नहीं दीखता, ब्रह्मा जी ने भी जिन के सन्मुख माता जी ने यह शाप हम को दीया है उन को ऐसा करने से मना नहीं कीया, इस से हम को निश्चय है कि यह शाप हम को अवश्यमेव नष्ट कर देगा, हमें चाहिये कि हम कोई ऐसा उपाय सोचें जिस से राजा जनमेजय के यज्ञ की अग्नि से बच जावें ॥

इस पर सब मुखिया २ सर्प विचार करने लगे एक ने कहा कि हम में से एक को ब्राह्मण बन कर जनमेजय के पास जाना चाहिये और उस से यह वर मांगना चाहिये कि तेरा यज्ञ सम्पूर्ण न हो दूसरे ने कहा कि हम में से कोई मनुष्य बन कर राजा के पास

जावे और उस के हित का मन्त्री वन कर उसे कहे कि तू यज्ञ न कर। और दोनो लोकों के वहुत भयभीत दोष दिखला कर उस के यज्ञ करने की सलाह को हटा दे। या राज यज्ञ में जो सर्प सूत्र के जानने वाला उपाध्याय हो उस को कोई विषधारी साप काट खाय जव वह मर जावेगा तो यज्ञ न होगा। यदि कोई दूसरा सर्प सत्र यज्ञ का वधान करने वाला आवे तो उस को भी काट कर यम पुरी में पहुंचाया जावे। तीसरा वोला यह वात मूर्खता की है ब्रह्म हत्या अधर्म्म है। आपत्ति काल में ऐसा काम करना चाहिये जिस का फल धर्म्म हो न कि उलटा अधर्म। चौथा वोला कि हम लोग विजली और वादल वन कर ऐसा गरजें और वरसें कि यज्ञ की अग्नि ही न जलने पाये। और कुछ सर्प रात के समय यज्ञशाला में जाकर यज्ञ के पात्रों को चुरा लावें, या उस यज्ञ में वहुत से सर्प चल कर वहां वैठे हुये मनुष्यों को विष्टा और मूत्र से अपवित्र करदें। पांचवां वोला कि ऋत्विज वन कर राजा के हां चलो और उलटा यज्ञ करा कर उस से दक्षिणा मांगो, छटे ने सम्मति दी कि जव राजा स्नान करने जावे उस को पकड़ कर इस लोक में ले आवें, सातवां उचरा कि राजा को काट खायें वह मर जावेगा और यज्ञ न होगा॥

सव नागों ने अपनी अपनी सम्मति देकर वासाकि नाग से कहा कि आगे जो कुच्छ आप का विचार हो सो कहिये वासुकि नाग वहुत काल तक अपने मन में विचारता रहा और पुनः वोला कि तुम में से एक की सलाह भी हमारे पसन्द नहीं, इन में से किसी में कल्याण नहीं दीखता। आओ कश्यप

जी के पास चलें और जो आज्ञा वह दें वह करें ॥

एलापत्र नाग ने कहा कि यज्ञ अवश्य होगा राजा जनमेजय पाडव वंश का है उस के यज्ञ में विघ्न नहीं पड़ सकता। दैव हत प्राणी को दैव ही का आश्रय लेना चाहिये। अन्य यत्न करने से कुच्छ नहीं बन सकता। हम सब दैव हत हैं इस कारण हम को दैव का ही आश्रय लेना चाहिये जिस समय माता जी ने शाप दीया था उस समय मैं माता जी की गोद में था उस के शाप को सुन कर सब देवता माता जी को कहते थे कि तू बड़ी तीक्षण है ॥

वह देवता ब्रह्मा जी के पास गये और कहा कि महाराज इस संसार में कद्रू से बढ़ कर ऐसा कौन क्रूर होगा जो अपने प्यारे पुत्रों को ऐसा शाप देगा। आपने भी पास होते हुये ऐसा शाप देने से उस को न रोका वरन यह कहा कि ऐसा ही होगा ॥

ब्रह्मा जी ने कहा कि इस संसार में सर्प बहुत हो गये हैं और वह बड़े विषधारी हैं प्राणी मात्र को दुःख दे रहे हैं इस कारण हम ने उन के नाश होने के शाप को नहीं रोका, परन्तू उन्ही सर्पों का नाश होगा जो काटने का स्वभाव रखने वाले नीच और पापी हैं और धर्म्मातमा सर्पों को यावर ऋषि के कुल का जरत्कार नामी ऋषि का पुत्र आस्तीक छुड़ा देगा ॥

देवताओं ने पूछा कि जरत्कार ऋषि ऐसा महात्मा पुत्र किस स्त्री से उत्पन्न होगा। ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया कि

वह, ऋषि वसुकि नाम की उसी नाम की बहिन के गर्भ से उत्पन्न होगा ।

हे वासुकि आप सर्पों की आपत्ति को दूर करने के लिये अपनी जरत्कार नाम बहिन को भिक्षा मांगते हुये जरत्कार नाम सुव्रत ऋषि को दे दीजिये ॥

एलापत्र नाग की यह बात सुन कर सारे सर्प बहुत प्रसन्न होकर अच्छा अच्छा कहते लगे। वासुकि नाग भी प्रसन्न हो कर जरत्कार को अपनी रक्षा में रखने लगा ॥

इस के कुच्छ दिन पीछे देवता और दैत्यों ने वासुकि नाग को रस्सी बना कर समुद्र को मथा और उस को ब्रह्मा जी के पास ले गये और कहा कि महाराज यह हमारा मित्र है। इस को अपनी माता के शाप का भयरूपी ज्वर दिन रात चढ़ा रहता है आप भी इस जाति के सर्पों का हित चाहते हैं इस लीये आप कृपा करके इस के मन का दुःख दूर करीये ब्रह्मा जी ने कहा कि एलापत्र ने जो कहा है वही होगा। वासुकि यह सुन कर घर को आया और सर्पों को एकत्र करके उन को सारा वृतांत सुनाया और कहा कि जाओ जरत्कार ऋषि को ढूंडो और उस का पता लगने पर जिस समय उस को विवाह की इच्छा हो मुझे खबर दो

॥ ग्यारवां अध्याय ॥

—:०:—

राजा परीक्षित को शृङ्गी ऋषि का शाप और तक्षक नाग से उस की मृत्यु ॥

उग्र श्रवा जी ने कहा कि एक समय पांडवों के वंश में परीक्षित नामी एक महा प्रतापी राजा हुआ है। उस को भी अपने पिता महा के समान आहेर खेलने का बहुत शौक था, नित्य प्रति मृग वराह आदि को मार लाया करता था, एक दिन उस ने एक मृग को बाण से मारा, वह उड़ता हुआ कहीं चला गया राजा ने उस की बहुत ढूंढ भाल की पर कुछ पता न लगा, अंत को उस की भाल में एक बड़े घने जंगल वन में दूर जा निकला भूख और तृषा ने उस को व्याकुल कर दिया था, थोड़ी दूर पर उस ने एक आश्रम देखा उस में एक बड़े ऋषि जो बछड़ों के दूध पीते में उन के मुख से जो झाग निकलती थी उस झाग को चाट कर निर्वाह करते वास करते थे वह उस आश्रम में गया, ऋषि मौन धारे हुये तपस्या कर रहे थे राजा ने कहा ॥

महाराज मैं अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित हुं मेरे बाण से विधा हुआ मृग मिलता नहीं है आप ने तो इधर जाते नहीं देखा ॥

मुनि ने मौन व्रत के कारण कुछ उत्तर न दिया ॥

राजा ने क्रोध करके एक मरे हुये सर्प को अपने धनुष की कोट से उठा कर ऋषि के गले में डाल दिया, ऋषि इस

पर भी कुच्छ न बोला और राजा कुच्छ काल तक उन को उसी अवस्था में देखता रहा फिर क्रोध को शांत कर के मुनि को उसी अवस्था में छोड़ कर अपने नगर को चला आया ॥

मुनि जी का शृंगी नाम एक पुत्र था जो बहुत तीक्ष्ण, तेज धारी, महा प्रतापी, बड़े व्रत वाला, महा क्रोधी और दुःख से प्रसन्न होने वाला था, राजा के जाने के पीछे वह ब्रह्मलोक से ब्रह्मा जी की आज्ञा लेकर आ रहा था रास्ता में उस के कृशन नाम एक मित्र ने हंसते हंसते किसी बात पर क्रोध कर के कहा तुम क्यों घुमण्ड करते हो तुम्हारा पिता कैसा तेजस्वी और तपस्वी है कि राजा परीक्षित ने मरा हुआ सांप उस के गले में डाला और उस ने उस को श्राप तक नहीं दिया क्या इसी पर तुम ब्रह्मज्ञानी और सिद्ध बने बैठे हो ॥

शृंगी ऋषि को बहुत क्रोध हुआ और कृशन से पूछा कि पिता जी ने राजा का क्या बिगाड़ा था जो उस ने ऐसा किया मुझ से तुम सत्य सत्य कहो और मेरे तप का बल देखो ॥

कृशन ने सारा वृत्तात राजा परीक्षित के वहां जाने इत्यादि का शृंगी ऋषि को कह सुनाया ॥

शृंगी यह वृत्तांत सुन कर बहुत दुःखी हुआ और क्रोध से लाल आंखे करके आचमन कीया और राजा परीक्षित को शाप दिया कि जिस पापी और ब्राह्मणों का निरादर करने वाले राजा ने मेरे पिता के कंधे पर मरा हुआ सर्प धरा है उस को सर्पों का राजा तक्षक जो बड़ा क्रोधी और विषधारी है आज की सातवीं रात

को मेरे वाक्य वज्र से प्रेरित होकर काट कर यम पुरी में पहुंचा देगा ॥

शृंगी ऋषि यह शाप देकर सीधे अपने आश्रम में आये और अपने पिता के गले में मरा हुआ सांप लटकता हुआ देख कर रो पड़े और अपने पिता से कहा ॥

आप के इस अपमान को सुन कर मैंने राजा को यह शाप दीया है कि आज की सातवीं रात उस को तक्षक काट कर यमलोक को पहुंचावेगा ॥

यह सुन कर उसके पिता शमीक ऋषि ने कहा। हे पुत्र तैंने यह काम हमारी इच्छा के विरुद्ध कीया है तपस्वियों का यह धर्म्म नहीं है हम उस के देश में बसते हैं और वह हमारी रक्षा करता है हमारी ओर से राजा पर सदा क्षमा होनी चाहिये ॥ जो राजा धर्म्म से रक्षा न करे तो हम लोग धर्म्म पूर्वक कोई कर्म नहीं कर सकते और धर्म्मात्मा राजा की रक्षा में रह कर बड़े २ धर्म कर सकते हैं उन धर्म्मों में से कुछ भाग राजा को भी मिलता है इस कारण राजा तो सदैव क्षमा के योग्य है और यह परीक्षित तो अपने दादा के समान प्रजा पालन और धर्म रक्षा करने के कारण विशेषतः क्षमा के योग्य है, उस से हमारा यह अपमान केवल भूख प्यास के कारण दुःखी होने और मेरे मौन व्रत को न जानने के कारण हुआ है। मनु महाराज ने लिखा है कि मनुष्यों का पालन करने और धर्म से राज्य करने वाला राजा दस वेद पाठी ब्राह्मणों के बराबर है तैंने अच्छा नहीं कीया जो ऐसे राजा को शाप दिया है ॥

शमी ऋषि ने शृंगी ऋषि से इस प्रकार कह कर सोचा कि अब जो कुच्छ होना था वह तो होगया कमान से निकला हुआ तीर और मुख से निकला हुआ शब्द फिर कर नहीं आ सकते, शृंगी ऋषि का शाप खाली नहीं जावेगा वह अवश्यमेव पूरा होगा अब ठीक यह है कि राजा को इस से सूचित कीया जावे ताकि वह अज्ञात ही में न मारा जावे। आपने सौम्य स्वभाव वाले गौर मुख नाम शिष को बुलाया और कहा कि अभी जाओ और राजा परीक्षित को खबर कर दो कि शृंगी ऋषि ने तुम को इस प्रकार शाप दिया है ॥

गौर मुख तत्काल ही राजा के पास पहुंचे और सारा वृत्तांत विस्तार पूर्वक कह सुनाया ॥

राजा इस वात को सुन बहुत दुःखी होकर पश्चातापी हुआ कि मैंने ऐसे योग्य ऋषि का अपमान क्यों कीया ॥

राजा परीक्षित ने गौर मुख को विदा कीया और ऋषि को कहला भेजा कि आप इसी प्रकार कृपा किया करें ॥

तब राजा ने मंत्रियों को बुला कर सलाह करके एक खंब का एक मन्दिर ऐसा वनवाया कि और जीवों की तो क्या गति है वायू भी वहां न जा सकती थी राजा उस में जा बैठा और चारों ओर बड़े बड़े रक्षक नीयत कर दिये और बड़े २ वैद्य और विष हिटाने वाली नाना प्रकार की औषधियें और बड़े २ मंत्र सिद्ध करने वाले ब्राह्मणों को रक्षा के लिये इकत्र किया ताकि पहिले तो तक्षक वहां आ ही न सके और यदि आ भी जाए तो काट न सके और यदि काट भी जाए तो मंत्र

द्वारा विष को झट पट उतार दिया जावे, राजा अपने राज काज को भी वहीं करने लगा ॥

जब सातवां दिन आया तो कश्यप ऋषि इस हाल को सुन कर यह विचार करते हुये अपने तपस्या स्थान से चले कि आज राजा तक्षक के विष को अच्छा करके अपनी इच्छानुकूल धन आदि पदार्थ लूंगा, रास्ते में तक्षक वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारे हुये उन को मिले और उन से पूछा कि आप आज इतनी जलदी जलदी कहां जाते हैं ?

कश्यप जी ने कहा कि आज राजा परीक्षित को सर्पों के राजा तक्षक ने डसना है और मैं उस को उस के विष से अच्छा करूंगा ॥

ब्राह्मण ने कहा तक्षक तो मैं ही हुं मेरे काटे हुये की चकित्सा नहीं है मैं इस सामने वाले वृक्ष को काट कर जला डालूं तो क्या तुम उस को पुनः हरा कर सकते हो ॥

कश्यप जी ने कहा, हां ! क्यों नहीं । हाथ कंगण को आरसी क्या ॥

तक्षक ने उस वड़ के वृक्ष को काटा और वह वृक्ष विष की अग्नि से जल कर राख हो गया ॥

इधर कश्यप जी उठे और उन्हों ने उस सारी राख को एक जगा एकट्ठा कीया और फिर अपनी विद्या द्वारा उसे हरा भरा कर दीया ॥

तक्षक कश्यप जी का यह काम देख कर चकित रह गया और बोला कि आप सामर्थवान् है राजा की आयु अब

पूर्ण हो चुकी है यदि आप की मंत्र विद्या वहां न चली तो आप का अपयश होगा, आपने जो कुच्छ राजा से मांगना है वह आज मुझ से मांग लीजिये मैं आप को दे दूंगा इस के अतिरिक्त मैं आपको दुर्लभ पदार्थ भी दूंगा आप यहां ही से लौट जाईये ॥

कश्यप जी दिल में प्रसन्न होगये और सोचा कि यहां ही धन मिलता है, तक्षक से कहा, लाओ धन दो मैं लौट जाता हूं, तक्षक ने धन दिया और कश्यप जी राजा की आयु क्षीण जान कर वहां ही से लौट गये ॥

तब तक्षक वहां से हास्तिनापुर गया और राजा को बड़े बड़े मन्त्र और विष हरने वाली औषधीयों से रक्षित सुन कर अपने काम की सिद्धि का ढंग सोचने लगा, तब उस ने नागों को बुलाय कर कहा कि तुम लोग तपस्वियों का रूप धारण कर के राजा को आशीर्वाद दे कर जल कुशा और फल दो, नागों ने वैसा ही कीया ॥

राजा ने वह जल कुशा और फल लेकर अपने पास रख लिये और उन तपस्वी रूप नागों को धन देकर विदा किया और अपने भाई बंधो और मंत्रियों को बुला कर कहा कि तपस्वीयों के लाये हुये सुंदर फलों का आप भी भोग लगाओ और हम भी लगाते हैं ॥

सारे मंत्री उन फलों को उठा कर खाने लगे राजा ने भी एक फल उठा लीया जिस को तोड़ते ही एक लाल रंग का काली आंखों वाला कीड़ा दृष्ट पड़ा राजा ने उस को हाथ में लेकर कहा कि अब सूर्य अस्त होने का समय है अब विष

का तो भय हमको है ही नहीं, यही कीड़ा हमको काटकर मुनि के वचन को सत्य करे, जूंही कीड़े को राजा ने अपनी ग्रीवा पर रक्खा उसने तक्षक का रूप धार लीया और राजा के गिरद लिपटता हुआ ऐसा गरजा कि जैसे बिजली गरजती है उसने उसी समय राजा को डसा, उस घोर शब्द को सुन मंत्री गण भाग गये और राजा मृत लोक को सधार गया और तक्षक बिजली के समान कड़कता और चमकता हुआ आकाश में लोप होगया ॥

तब सब ब्राह्मणों, राज पुरोहितों और मंत्रियों ने मिल कर राजा के प्रलोक सम्बन्धी कर्म को कीया और अच्छा शुभ महुर्त देख कर उस के पुत्र जनमेजय को राज तिलक दिया, जनमेजय यद्यापि अभी बालक था परंतु राज काज में अपने पितामहा राजा युधिष्ठर के समान राज शासन करने लगा मंत्रियों ने उस के तेज को देख कर काशी के राजा की वपुष्टमा नाम कन्या के साथ उस का विवाह कर दिया जनमेजय ने उस को पाकर कभी दूसरी स्त्री की ओर दृष्टि नहीं की ॥

बारहवां अध्याय

—:०:—

संतान हीन होने के कारण पायवर ऋषियों पर आपत्ति, जरत्कार का विवाह, पति पत्नि का वियोग और आस्तीक की उत्पत्ति ॥

जरत्कार ऋषि भी बड़े भारी तप में लग गये केवल वायू

को आहार बना रक्खा था, और दिन रात पृथ्वी पर तीर्थादिकों में फिरते रहते जहां रात पड़ती उस को वहीं काट लेते, इस से उन की देह सर्वथा सूख गई, आप फिरते २ एक स्थान में पहुंचे वहां क्या देखते हैं कि कुच्छ मनुष्य एक गढ़े में नीचे मुख किये खस के एक ‾ म्भे के साथ लटक रहे हैं, उन को उन पर दया आई और ःन के पास जाकर पूछा कि तुम लोग कौन हो और क्यों इस प्रकार लटक रहे हो इस खम्भे की अब केवल एक जड़ बाकी है उस को भी एक चूहा अपना बिल निकालने के लिये काट रहा है उस के कट जाने पर तुम सब नीचे गिर पड़ोगे, तुम अपनी आपत्ति का हाल कहो यदि वह मेरे तप के किसी भी भाग से हट सके तो मैं देने को तत्पर हुं ॥

वह लोग बोले कि आप ब्रह्मचारी हैं और हमारी आपत्ति पर तरस खाकर हमारी रक्षा करना चाहते हैं परंतु तप के फल से कुच्छ नहीं हो सकता हमारे अपने पास भी तप का फल है। हमारी यह गति सन्तान के नष्ट होने से हो रही है, हम लोग पायवर ऋषि हैं हमारे केवल एक पुत्र जरत्कार नामी है वह बड़ा विद्वान, वेदों का ज्ञाता और बड़ा तपस्वी है परंतू उस की स्त्री नहीं, जिस प्रकार खस के इस एक खम्भे को चूहा काट कर नष्ट कर रहा है और यह खम्भा गिर कर नाश को प्राप्त होगा इसी प्रकार जरत्कार को महा काल रूपी चूहा दिन रात भक्षण कर रहा है इस के काल वश होने से हमारा वंश नष्ट हो जावेगा, यदि आप हम पर सच मुच दया रखते हैं तो आप जहां जरत्कार जी को मिलें हमारी यह दशा दर्शा दें उन को ऐसा उपदेश करें कि वह अपना विवाह कर लें

चमकता था और दिन प्रतिदिन ऐसा बढ़ता गया जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है ॥

एक दिन जरत्कार अपनी स्त्री की जाघ पर सिर रख कर सोगये जब सायंकाल हुआ और सूर्य अस्त होने लगा जरत्कारी ने यह विचारा कि सन्ध्या का समय होगया है यदि मुनि जी को जगाती हूं तो मुनि जी मुझ पर क्रोध करेंगे और जो न जगाऊं तो सन्ध्या छूट जाने से धर्म का पालन न होगा, इस पर विचार करते हुये उस के मन में यह आया कि धर्म का लोप होना बड़ा दोष है, तब वह अपनी मधुर वाणी और कमल समान हाथों से अपने प्राण पति को जगाती हुई कहने लगी—महाराज अब सायंकाल होगया है सूर्य अस्त होने वाला है उठकर सूर्य्य को अंजुली दीजिये ॥

जरत्कार क्रोध से भरे हुये उठे और स्त्री से बोले कि तैंने मेरा बड़ा अपमान कीया है ॥

स्त्री बोली महाराज मैंने आप का अपमान नहीं कीया आप के धर्म को लोप समझ कर आप को जगाया है ॥

जरत्कार बोले सूर्य मेरी अंजुली लीये विना कभी अस्त नहीं हो सकते । हम ऐसे अपमान के स्थान में नहीं रह सकते अब हम तुम को छोड़ते हैं तुम अपने भाई के पास रहो और कुच्छ शोक न करो ॥

जब जरत्कार चलने लगे तो उन की स्त्री रोने लगी कंठ सूख गया दोनों कर बांध कर नम्रता से बोली ॥

महाराज आप को उचित नहीं कि मुझ को छोड़ जायें मैं

निरअपराध और धर्मरत हुं मुझे वासुकि ने पुत्र के लीये आप को दीया था वह भी अभी नहीं हुआ अब वह मुझे क्या कहेगा।

जरत्कार बोले तू इस बात की चिन्ता मत कर तेरे एक पुत्र होगा जो बड़ा तेजस्वी, बलवान, सूर्य के समान तेज रखने वाला और सुन्दर उत्पन्न होगा ॥

यह कह कर जरत्कार जी वन की ओर चले गये और जरत्कारी रोती पीटती अपने भाई के हां चली गई और जा कर सारा हाल कह सुनाया ॥

वासुकि इस बात को सुन कर बहुत दुःखी हुआ और बोला कि तू जानती है मैंने किस लीये तुझे जरत्कार को दीया था जो उस महात्मा से तेरे एक पुत्र उत्पन्न हो वह हम सब सर्पों की रक्षा करे। मुझे बतला कि तुझे उस महात्मा से गर्भ हुआ है कि नहीं। मैं तेरे पति के लाने के लीये उस के पीछे नहीं जा सकता क्योंकि उन का स्वाभ उग्र है ऐसा न हो कि मुझ से अप्रसन्न होकर मुझ को शाप दे दें, उन्हों ने चलते समय जो कुच्छ तुझ को कहा वह बतला कर मेरी चिन्ता दूर कर ॥

जरत्कारी बोली मैंने चलते समय उन से पुत्र के हेतू पूछा था वह अस्ती कह कर चले गये उन का कहा हुआ कभी भी झूठ नहीं हुआ और न हो सकता हैं उन के कथन अनुकूल पुत्र होगा और तुम्हारा मनोर्थ अवश्य सिद्ध होगा ॥

यह सुन वासुकि और सब नाग बहुत प्रसन्न हुये और नाना प्रकार की की लेकर अपनी बहिन का पूजन कीया ॥

यदि ऐसा न करेंगे तो वह स्वयं भी मरने के पीछे नरक में पड़ेंगे और हम को भी नरक में डालें गे क्योंकि विना सन्तान तरना कठिन है ॥

जरत्कार बोले-महाराज आपका पापी और दंडदेने के योग्य पुत्र मैं ही हुं मेरा ही नाम जरत्कार है मैं विवाह तो न करता पर आपके इस दुःख को देख कर करलूंगा पर ऐसी स्त्री से करूंगा जिसका नाम मेरे सा हो और उसका भरण पोषण मुझे न करना पड़े में ऐसी स्त्री से पुत्र उत्पन्न करूंगा ॥

यह कहकर वह वहां से चल दीये और ऐसी स्त्री ढूंडने में लग गये पर ऐसी स्त्री कहां मिले अंत दुःखी होकर वन में चले गये और धीरे २ कहने लगे ॥

में अपने पितरों का दुःख हरने के लिये पितरों के कहे अनुकूल अपना विवाह करना चाहता हुं मुझ दरिद्री को कोई अपनी कन्या जिस का भरण पोषण मुझे न करना पड़े और जिस का नाम मेरे सा हो भिक्षा में दे ॥

वासुकि नाग के भेजे हुये सर्पों ने जरत्कार के जब यह शब्द सुने तो वह भागे २ वासुकि नाग के पास आये और कहा कि महाराज जरत्कार अब विवाह की इच्छा रखते हैं और जरत्कारी नाम की स्त्री ढूंडते फिरते हैं ॥

यह सुन कर वासुकि नाग अपनी बहिन को वस्त्र आदि पहना कर जरत्कार के पास लेगया और कहा कि इस कन्या को आप स्वीकार कीजिये ॥

जरत्कार ने कहा कि मैं ऐसी स्त्री चाहता हुं जिस का नाम

मेरे नाम सा हो और जिसके भोजनादि का प्रबन्ध मुझे न करना पड़े ॥

वासुकि नाग ने कहा कि महाराज मैं अपनी बहिन का पालन पोषन आप करूंगा आप इस बात की चिन्ता न करें इस का नाम भी जरत्कारी ही है ॥

जरत्कार बोले कि मैं इस शर्त पर इस को स्वीकार करता हुं कि यदि इस ने मेरी कोई आवज्ञा की तो मैं इस को छोड़ दूंगा ॥

वासुकि ने इस शर्त को भी मान लीया और कहा कि आप इस के साथ विवाह कीजीये ॥

जरत्कार जी वासुकि के साथ उस के घर चले गये और वेद विधि से उस का पाणि ग्रहण कीया ॥

वासुकि ने उन के रहने के लीये एक बहुत सुन्दर घर दीया और खान पान आदि के सारे सामान उस में रख दीये ॥

जरत्कार अपनी स्त्री सहित उस ग्रह में गये और उस से कहा कि मेरी इच्छा के विपरीत कुच्छ न करना यदि करोगी तो मैं तुम को छोड़ कर चला जाऊंगा ॥

जरत्कारी ने कहा कि मैं सदैव आपकी इच्छा के अनुकूल चलूंगी । तब यह दोनों आनन्द पूर्वक रहने लगे जरत्कारी हर समय इस बात का ध्यान रखती थी कि पति की इच्छा सदैव पूरी होती रहे और वह उस पर प्रसन्न रहें । समय पाकर जरत्कारी को गर्भ हुआ और वह गर्भ अग्नि समान

समय पाकर अच्छे लग्न में जरत्कारी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम आस्तीक रक्खा गया क्योंकि उस का पिता जरत्कार उसकी माता से अस्ति शब्द कहते हुये बन को चला गया था ॥

जब आस्तीक मामा के ग्रह में बड़ा हुआ उसने च्यवन ऋषि से सब वेद और वेदांग पढ़ लीये और नागों की रक्षा में रह कर आनन्द पूर्वक नाग लोक में विचरने लगा वह सब सर्पों को शिवजी के समान सुख देता और उसके कारण सर्प जनमेजय के सर्पयज्ञ से निर्भय हो कर रहने लगे ॥

तेहरवां अध्याय

—:o:—

राजा जनमेजय का अपने मंत्रियों से अपने पिता के मरने का हाल पूछना और सर्प यज्ञ करने की ठानना ॥

एक समय राजा जनमेजय ने अपने मन्त्रियों को बुलाया और कहा कि मेरे पिता के मरने का सारा वृत्तांत मुझे विस्तार पूर्वक कह सुनाओ ताकिं में सुन कर कल्याण करूं ।

मन्त्रियों ने कहा महाराज आपके पिता प्रजा का पालन भले प्रकार कीया करते थे। चारों वर्णों की धर्म से रक्षा करते थे। बड़े पराक्रमी और न्यायी थे। वह किसी से आप वैर न रखते थे और न ही उन के बहुत वैरी थे प्रजा पति के

समान थे और सब से एक सा भाव रखते थे, उन के राज्य में चारों वर्ण अपना अपना धर्म सावधान हो कर करते थे, विधवा स्त्रियें, दीन, अनाथ, और अंगहीन पुरुषों का पालन पोषण करते थे, उन्हों ने कृपाचार्य से धनुर्विद्या सीखी, गोविंद भक्त शास्त्र नीति के जानने वाले जितेन्द्रिय और बुद्धिमान थे, साठ वर्ष उन्हों ने इस पृथ्वी पर राज्य किया और फिर परलोक सधार गये पुनः मंत्रियों ने राजा के अहेर खेलने के वास्ते जाने, मृग को तीर मारने और मृग के भाग जाने, राजा के उस के पीछे जाकर मौन व्रत धारण किये हुये ऋषि से पूछने उन के कुछ न बोलने उस पर राजा का उन के गले में मरा हुआ साप डालने और इस वृत्तांत को सुन कर उस के पुत्र शृंगी ऋषि के शाप देने, मुनि को राजा के पास अपना शिष भेज कर शाप की खबर देने राजा के शाप की निवृत्ति का उपाय करने कश्यप के राजा को अच्छा करने के विचार से आने और रास्ता में तक्षक के मिलने और तक्षक के वड़ के वृक्ष को काट कर राख करने और कश्यप के उस वृक्ष को एक लकड़हारे सहित वैसा हरा भरा करने और तक्षक से धन आदि लेकर लौट जाने और राजा के फल खाने और तक्षक के काटने और राजा के मरने का सारा वृत्तांत कह सुनाया ॥

जनमेजय ने कहा कि मैं अपने पिता का बदला तो अवश्य लूंगा पर वन में तक्षक और कश्यप जी की जो बात चीत हुई वह तुमने कहां से सुनी उस का वृत्तांत मुझे विस्तार पूर्वक सुनाओ ।

मंत्रियों ने कहा महाराज यहां को एक लकड़िहारा वड़ के

उस वृक्ष पर लकड़ियां काटने के वास्ते चढ़ा हुआ था उस को न तक्षक ने देखा और न ही कश्यप जी ने, तक्षक के काटने पर उस वृक्ष के साथ वह भी भस्म होगया था और उसके साथ ही फिर जीवत भी हो गया था॥

राजा जनमेजय यह हाल सुनकर शोकातुर होगये नेत्रों से अश्रु धारा वहने लगी और क्रोध से दोनों हाथ मल मल कर बोले॥

मैं उस तक्षक को जिसने मेरे पिता को छल से डसा है अवश्य दंड दूंगा क्योंकि उस का धर्म ऋषि के शाप को पूरा करने के लीये केवल डसने का था न कि कश्यप जी को जो मेरे पिता को अच्छा करने आये थे रासता में ही लौटा देने का॥

॥ चौदवां अध्याय ॥

—:o:—

राजा जनमेजय का सर्प यज्ञ, सर्पों का भस्म होना और तक्षक का बचना॥

राजा जनमेजय ने अपने परोहितों और ऋषियों को बुला कर कहा कि तक्षक ने विना किसी अपराध के हमारे पिता को काट कर अपनी दुष्टता दिखाई है इस लीये मैं भी चाहता हुं कि अपने पिता का बदला लेने के लीये उस तक्षक को उस के भाई बंधूओं सहित जलती हुई आग्नि में जलाऊं, आ

ऐसा कर्म करा सकते हैं या नहीं ॥

ऋषियों ने कहा महाराज पुराणों में इस के लीये सर्प सत्र यज्ञ लिखा है; हम वह यज्ञ कराना जानते हैं और केवल आप ही उस के करने की सामर्थ रखते हैं ॥

राजा जनमेजय ने कहा मैं उस यज्ञ को आवश्य करूंगा आप उस की सामग्री एकत्र कीजीये ॥

ऋषियों ने सब से पाहिले इस यज्ञ के लीये योग्य पृथ्वी शोधी और उस पर यज्ञ शाला बनवाई इस के पीछे वस्त्र धन धान्य आदि सारी यज्ञ की सामग्री एकठी की और वेद के जानने वाले बहुत से ऋषि लोग इकठे हुये। ऋषियों ने सर्प सत्र यज्ञ का फल पाने के लीये राजा को दीक्षा दी और राजा ने उन को वर्ण कीया ॥

यज्ञ आरम्भ होने से पहिले शिल्प शास्त्र के जानने वाले यज्ञ शालाओं के बनाने वाले शिल्प कारों ने एक शकुन देख कर कहा कि एक ब्राह्मण के कारण यह यज्ञ सम्पूर्ण न होगा ॥

इस बात को सुन कर राजा ने चौकी दार और पहरे नीयत कर दीये और उन से कहा कि कोई पुरुष हमारी आज्ञा के बिना यज्ञ शाला की धर्ति में पाओं न रखने पावे ॥

अब यज्ञ होने लगा ब्राह्मण अपने अपने कर्मों पर लग गये ऋषियों ने जिनके कपड़े धूम्र से काले और आखें लाल हो गई थीं मंत्रों द्वारा अग्नि में हवन आरम्भ कीया और अग्नि मुख में सर्पों का आवाहन कीया ॥

देखते देखते सब जाति के करोड़ों बूढ़े, बाल, युवक,

छोटे बड़े सर्प दूर दूर से तड़पते लेटते विष घोलते हुये उस अग्नि कुंड में गिर गिर कर भस्म हो गये ॥

इस यज्ञ भृगु वंश के चण्ड नाम ब्राह्मण जो वेद के बड़े ज्ञानी और तपस्वी थे आहोता अर्थात हवन कराने वाले थे। जैमिनि जी जो बड़े विद्वान और वृद्ध थे वह साम वेदी ऋत्विज थे सांगर जी ब्रह्मा और पिंगल ऋषि यजुर्वेदी ऋत्विज् थे और व्यास जी अपने शिष्यों सहित महाराज उद्दालक, प्रमतक, श्वेत केतु, पिंगल, असित, देवल, पर्वत, आत्रेय, कुंड, जठर, कालघंट, वातस्य, श्रुत श्रवा, देव शर्म्मा, मौडल्य, समसौरभ और वेद के जानने वाले अन्य बहुत से ब्राह्मण थे ॥

इस यज्ञ में जो सर्प गिर कर जलते रहे उनकी चर्वी की नदी उस अग्नि कुण्ड से वह निकली और चारों ओर सर्पों के जलने की दुर्गन्ध फैल गई ॥

तक्षक इस यज्ञ का हाल सुन कर इन्द्र के पास भागा गया और अपनी रक्षा के लिये उस की शरण चाही ॥

इन्द्र ने उस को शर्ण देकर कहा कि तू भय मत कर यहां तुझ को यज्ञ बाधा नहीं कर सकता हम तेरे वास्ते ब्रह्मा जी से पहिले ही कह चुके हैं, तब तक्षक निर्भय हो कर सुख के साथ वहां रहने लगा ॥

इधर वासुकि नाग को जिस का परिवार अब बहुत थोड़ा रह गया था मोह हुआ जिस से दुःखी होकर उसने अपनी बहिन से कहा, राजा जनमेजय यज्ञ कर रहा है उस से मेरी देह में जलन उठी है चक्र आते हैं और हिरदय फटा जाता है क्योंकि मैं भी अब उस यज्ञ की घोर अग्नि में पड़ जलूंगा, यह

वही समय आया है जिस के लिये मैंने तुझ को जरत्कार को दिया था अब तू अपने पुत्र को जो वेद वेदांग पढ़ चुका है बुला कर उस को कहो कि कुटम्ब सहित हमारी रक्षा करे, तेरा पुत्र उस यज्ञ को निश्चय बंद कर सकता है क्योंकि ब्रह्मा जी पहिले ही यह बात कह चुके हैं ॥

जरत्कारी ने अपने पुत्र आस्तीक को बुला सर्प यज्ञ का सारा हाल सुनाया और कहा कि वासुकि की रक्षा करो ॥

आस्तीक ने कहा बहुत अच्छा मैं आप लोगों को शाप से छुड़ाऊंगा मैं अभी जनमेजय के पास जाता हुं और उसे अपनी वाणी से प्रसन्न कर के उस का यज्ञ बंद कराता हु ॥

वासुकि इस बात को सुन कर भय रहित और प्रसन्न हुये और बाकी सांप भी शांत चित हो गये ॥

जब आस्तीक जी यज्ञ शाला के समीप पहुंचे तो द्वारपाल ने कहा कि विना आज्ञा राजा जनमेजय किसी को यज्ञ शाला में जाना नहीं मिलता आप यंहा ठहरें मैं अभी अन्दर जा कर खबर देता हुं ॥

द्वारपाल भीतर राजा के पास गया और आस्तीक जी के यज्ञ शाला में आने की इच्छा राजा पर प्रकट की ॥

राजा ने कहा अच्छा आने दो ॥

आस्तीक जी ने यज्ञ मंडप में पहुंच कर राजा और ऋषियों की बहुत स्तुति की और कहा महाराज मैं अपने वंश की रक्षा चाहता हुं ॥

राजा ने ऋत्विजों से कहा कि तक्षक अभी तक नहीं आया

उस को शीघ्र बुलाना चाहिये ।

ऋत्विज बोले महाराज वह इन्द्र पुरी में अभिमान से बैठा हुआ है इन्द्र ने उस को कहा है कि तुम निर्भय हो कर हमारे यहां रहो यहां मंत्र कुच्छ नहीं कर सकते ॥

तब राजा जनमेजय बहुत क्रोधित हुये और ऋत्विजों से कहा कि वह मंत्र पढ़ो जिस से इन्द्र तक्षक सहित यहां चला आवे ॥

ऋषियों मुनियों ने वह मंत्र पढ़ने आरम्भ कीये इन्द्र को चिन्ता हुई । बस वह तक्षक को लेकर स्वर्ग से चले, कुच्छ काल देवेन्द्र आकाश में दुखित रहे पुनः उस यज्ञ को देख भयभीत हो तक्षक को छोड़ चलते बने । उन के चले जाने पर तक्षक मंत्र से सब घमंड भूल गया और व्याकुल होता हुआ अग्नि कुंड के पास पहुंचा ॥

उस को देख कर ऋत्विजों ने कहा महाराज आप का कार्य सिद्ध हो गया है आप अब इस ब्राह्मण को वर दीजीये ॥

राजा ने उस ब्राह्मण को बुला कर कहा महाराज वर मांगीये आप जो कुछ मांगोगे सोई मैं दूंगा ॥

आस्तीक जी तक्षक की दशा देख रहे थे और समझ रहे थे कि अब अग्नि वश होता है राजा से यूं बोले ॥

यही वर दान मांगता हुं कि अभी यज्ञ बंद कीया जावे और अभी से सर्पों की प्राण हत्या रोकी जावे और कोई जलने न पावे ॥

राजा ने कहा महाराज सोना, चांदी, रत्न, धर्ति आदि

जिस चीज़ की इच्छा आपको हो मुझ से मांगिये और हमारे यज्ञ को न रोकिये ॥

आस्तीक ने कहा हमको और किसी चीज़ की इच्छा नहीं है केवल आपका यज्ञ बंद करना चाहते हैं हमें सोना चांदी आदि से क्या काम ॥

इस पर ऋत्विजों, ऋषियों और अन्य मंत्रियों ने राजा से कहा कि सर्व नाश किसी का नहीं करना चाहिये आप इस ब्राह्मण को दान दीजिये और यज्ञ को बंद कर दीजिये ॥

राजा ने मान लीया और ब्राह्मण को वर दान दिया और यज्ञ को बंद कर दिया । तक्षक के प्राण बचे आस्तीक राजा को आशीर्वाद देता हुआ तपोवन को चला और सब ऋषि भी अपने २ आश्रमों को पधारे ॥

कहा है कि जो जन सर्प सत्र यज्ञ की कथा सुनेगा उस पर किसी भी विष का कभी असर न होगा ॥

पंद्रवां अध्याय

—:०:—

राजा जन्मेजय के कैरो पांडवों के वृत्तांत सुनने की इच्छा ॥

सर्प सत्र यज्ञ में बहुत से ऋषि वहां आये हुये थे इन में वेद व्यास जी भी थे यह वही वेद व्यास जी हैं जिन्हों ने वेदों को चार भागों में बांटा है और पुराणों उप पुराणों को

सच्चा है और इस के कारण विष्णु का अवतार माने गये, राजा जनमेजय ने इन का बहुत सत्कार किया, सोने के नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुये संहासन पर आप को आसन देकर आपका पूजन कीया और यज्ञ का अभिप्राय बतलाते हुये प्रार्थना की ॥

" महाराज मेरे बड़ों का सारा हाल मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये और यह भी बतलायें कि श्री कृष्ण जी ने जो बड़े ज्ञान वान होने के अतिरिक्त समीपी संबन्धी भी थे इस महां युद्ध को जिस से सारा वंश नष्ट हो गया है क्यों न रोका ॥

व्यास जी ने कहा पृथ्वी नाथ जो होनी है वह कभी टलती नहीं श्री कृष्ण महाराज ज्ञानी जान थे सब कुच्छ जानने वाले थे और सर्व शक्तिमान थे उन्हों ने संसार के व्यवहार से बहुतेरा चाहा कि यह युद्ध न हो परंतु पृथ्वी पर पापों का बहुत भार होगया था उस को इन से हलका करना आवश्यक था, इस कारण उन की इच्छा हुई और यह युद्ध हुआ ॥

यह कह कर व्यास जी ने अपने शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा की कि वह राजा जनमेजय को कौरों और पांडवों का सारा वृत्तांत सुनावें ॥

सोलवां अध्याय ॥

—:o:—

॥ महाभारत की कथा का सार ॥

वैशम्पायन जी ने गुरू और ब्राह्मणों को नमस्कार कीया

और जनमेजय से कहा कि मैं महात्मा व्यास जी के बनाये हुये इतिहास को प्रसन्नता पूर्वक कहता हुं आप सुनीये क्योंकि आप सुनने योग्य हैं ॥

राजा पांडू के वन में परलोक गमन करने के पीछे उन के पुत्र हस्तिनापुर में गये और थोड़े काल में वेद और धनुष विद्या पढ़कर बड़े प्रवीण हो गये, उनकी सुन्दरता, उनका धैर्य्य, उत्साह, जितेन्द्रता और बल देख कर पुर वासी बड़े प्रसन्न हुये परंतू धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि पुत्र उन को देख कर घायल पक्षी के समान तड़पते थे और इस विचार में रहते थे कि बस चले तो इन की समाप्ती कर डालें, एक बार भीम सेन को विष दे दी भीम सेन उस को पचा गये और गंगा तट पर प्रमाण कोटि घाट पर जा सोये दुर्योधन ने वहां ही उन के हाथ पाओं बन्धवाकर उन को गंगा में बहा दिया वह वीर जागने पर बंधन तोड़ कर फिर चला आया और सो रहा तब दुर्योधन ने उस को विषधारी सर्पों से कटवाया पर वह न मरा विदुर जी पांडवों की रक्षा इस प्रकार करते थे जैसे इन्द्र मनुष्यों की करता है दुर्योधन ने कई प्रकार के गुप्त और प्रगट उपाय उन के मारने के लीये कीये परंतू पांडवों का बाल बींगा न हुआ, तब उस ने शकुनी और कर्ण की सम्पति से धृतराष्ट्र की आज्ञा ले कर पांडवों को वारणावत नगर को भिजवाया और वहां उन को लाक्ष ग्रह में रहने के लीये जगह दी पांडव वहां गये और एक वर्ष तक रह कर उस के पीछे विदुर जी के कहने के अनुसार जो पांडवों को हस्तिनापुर से चलते समय उस ग्रह से बचने का उपाय बता आये थे उस घर में आग लगाय पुरेचन को जलाय

आप अपनी माता सहित सुरंग की राह से निकल गये और दुर्योधन के भय से अपने आप को प्रगट न होने देने के कारण रात को चल दीये और रास्ते में हिंडब नाम राक्षस को मारा और उस की बहिन हिंडबा को भीमसैन ने ग्रहण कीया, हिंडबा से घटोत्कच उत्पन्न हुआ वहां से चल के पांडव चक्रापुरी नगर में एक ब्राह्मण के घर ब्रह्मचारी बन कर बसे और भीमसैन ने वहां के मनुष्यों को बक नाम एक राक्षस को जो उन को मार डाला करता था मारकर पुरवासीयों को सुख दीया, इस के पीछे पाञ्चाल देश के राजा की कृष्णा नामी कन्या का स्वयम्बर सुन कर वहां गये और द्रोपदी को पाकर एक वर्ष तक वहां रहे ॥

इस के पीछे जब वह प्रगट होगये तो हस्तिना पुर गये वहां भीष्म पितामह और धृतराष्ट्र ने उन को कहा कि तुम खांडव प्रस्त नगर में जाकर बसो ॥

पांडव उन के कथनानुसार सब प्रकार के रत्न लेकर अपने सुहृद् जनों के साथ खांडव नगर में जा कर अपने शस्त्र बल के प्रताप से बहुत से राजाओं को वश में करके रहने लगे भीमसैन ने पूर्व अर्जुन ने उत्तर नकुल ने पश्चिम और सहदेव ने दक्षिण दशाओं के सब राजों पर विजय पाली, तब युधिष्ठिर ने अर्जुन को जो प्राणों से भी प्यारा था किसी कारण से बन को भेज दिया, जहां उसने बारह वर्ष तक बास किया वहां से अर्जुन द्वारका चले गये और श्रीकृष्ण जी की छोटी बहिन सुभद्रा को हर कर ऐसे शोभायमान हुये जैसे विष्णु जी लक्ष्मी सहित शोभायमान होते हैं, तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ मिलकर खांडव बन को जला कर अग्नि देवता को

तृप्त कीया और वासुदेव की सहायता से इन्द्र के वन को भस्म कर दीया ॥

अग्नि देव प्रसन्न हो कर अर्जुन को गांडीव धनुष, दो तरकश जिन का वान कभी खाली नहीं जाता और एक रथ जिस की ध्वजा पर हनुमान जी की मूर्ति थी दीया और अर्जुन ने मय नाम दैत्य को अग्नी में जलने से वचा लीया उस ने इस के वदले पांडवों को एक वहुत सुंदर रत्न जड़ित सभा वना दी उस सभा में दुर्योधन ने लोभ कीया और पीछे शकुनी के साथ जुआ खेल कर युधिष्ठ को छल कर सर्वस्व हर लीया और वारह वर्ष का वनो वास दीया पांडव वारह वर्ष तक तो वन में रहे तेरहवें वर्ष में विराट नगर में गुप्त रहे और चौदहवें वर्ष में युधिष्ठ ने वन से लौट कर अपना सव धन और राज मांगा और उस के न मिलने के कारण युद्ध हुआ उस युद्ध में पांडवें ने क्षत्री कुल को मार कर राजा दुर्योधन को मारा और सम्पूर्ण राज्य ले लीया ॥

राजा जनमेजय ने कहा कि महाराज मैं चाहता हुं आप मुझे यह सारी कथा विस्तार पूर्वक सुनावें क्योंकि मैं जानना चाहता हुं कि इतने वलवान होते हुये भी अर्जुन आदि ने क्यों कर कौरों के दीये हुये दुख सहे और उन को न मारा ॥

सतारवां अध्याय

—:०:—

वैशम्पायन जी का महाभारत का महात्म्य कहना

वैशंपायन जी ने कहा हे राजा मैं व्यास जी का बनाया हुआ एक लाख श्लोक का सम्पूर्ण महाभारत आप को सुनाता हुं आप एकाग्रचित हो कर सुनीये इस कथा के सुनने और सुनानें वाले दोनों ब्रह्म लोक पाकर देवताओं के समान होजाते हैं यह महाभारत वेदों के समान पवित्र, उत्तम और सब के सुनने के योग्य है क्योंकि सब ऋषियों ने इस की प्रशंसा की है, इस के पढ़ने से मनुष्य को अर्थ काम मोक्ष सम्बन्धी बुद्धि और ज्ञान प्राप्त होती है ॥ और मनुष्य के सब पाप नाश हो जाते हैं और आगे को वह पाप करने से बच जाता है, जय चाहने वाले को जय होती है वह पृथ्वी को जीत कर शत्रुओं को मारता है, संतान चाहने वालों को संतान प्राप्त होती है, जो राजा और रानी इसको सुने उनके वड़ा वीर पुत्र अथवा वड़ा भाग्वान कन्या होती है ॥

यह व्यास कृत महा भारत धर्म शास्त्र अर्थात मोक्ष शास्त्र है इस के सुनने और सुनाने वाले स्वयं सत कर्म चारी और सत्य वक्ता होते हैं और उन की संतान आज्ञा कारी और सेवा करने वाली होती हैं उन के पास व्याधि नहीं आती यह शास्त्र मनुष्यों को पुण्य आयू यश और धन वढ़ने के लीये कहा गया है इस के

श्रोता को उत्तम जन्म मिलता है और चतुर मास में जो इस को सुनता है उस के सब पाप दूर होजाते हैं ॥

श्री व्यास जी महाराज ने इस को नीयम करके तप में स्थित हो तीन वर्ष में बनाया था इस कारण सुनाने वालों को भी नियम धरके कहना और सुनाना चाहिये, धर्म की इच्छा वालों को इसे अवश्य सुनाना चाहिये क्योंकि इस से सिद्धि मिलती है। जैसे भोग इस इतिहास के सुनने से मिलते हैं स्वर्ग गति से नहीं मिलते। इस के सुनने सुनाने वालों को राजसू यज्ञ का फल मिलता है और इस पुस्तक के दान करने वाले को सारी पृथ्वी के दान देने का फल मिलता है ॥

॥ अठारवां अध्याय ॥

—:o:—

व्यास जी की उत्पत्ति और कौरों पांडवों के युद्ध के मुख्य २ राजाओं के जन्म की कथा ॥

वैशम्पायन जी ने कहा हे राजा पूर्व काल में पूरूवंश का एक बड़ा धर्मात्मा राजा वसु नाम करके था उस को आहेर खेलने का बड़ा शौक था समय पाकर वह राज्य छोड़ कर उग्र तप में लग गया उस के तप को देख कर इन्द्र को शंका हुई और वह सब देवताओं को साथ लेकर राजा के पास आये और साम

वचन कह कर उस को तप से हटाया । पहले देवताओं ने कहा राजा आप का यह धर्म नहीं है आपका तो पहिले ही क्षत्री धर्म है जिस के द्वारा सारे प्राणीयों की यथावत रक्षा होती है। पुनः इन्द्र ने कहा हां राजा आप को राजनीति के अनुसार चल कर लोक का पालन करना चाहिये ऐसा करने से तुम को पुण्य और सनातन लोक मिलें गे। हम स्वर्गवासी हैं आप पृथ्वी वासी अब आप मेरे मित्र हो कर इस पृथ्वी पर और जो चंदेरी नाम सुन्दर देश है और जहां पशु धन धान्य और रत्न इत्यादि पदार्थ हैं और जहां धर्मिक और शीलवान मनुष्य और बड़े संतोषी साधू लोग रहते हैं, कोई झूठ नहीं बोलता सब गुरुभक्त हैं पुत्र पिता से पृथक नहीं रहते बैल को धुरी में नहीं जोतते सब वर्णों के लोग अपने अपने धर्म में आरूढ़ रहते हैं मैं तुम को अपना विमान जो देवताओं के योग्य है और स्फटिक के समान उजला है देता हु इस पर चढ़ कर तुम नर रूप धारी देवतों की तरह विचरो और यह बजन्ति माला जिस के कमल कभी मुरझाते नहीं इसको पहर कर जब लड़ाई में जाओ यह शस्त्रों से तुम्हारी रक्षा करेगा, जो कोई इस को पहरे हुये तुम्हें देखे गा वह तुम को धन्य कहेगा ॥ इन्द्र ने बांस की एक लाठी भी राजा को दी और कहा कि इस लाठी को साधारण लाठियों के समान न जान लेना हर सम्बत के बीतने पर तुम इस लाठी को पृथ्वी में गाड़ कर मेरा आवाहन इस में करना और मणि भूषण आदि षोड़श उपचार से मेरा पूजन करना ॥

इन्द्र की आज्ञानुसार राजा चंदेरी में जा बसा और

दूसरे दिन ही उस ने उक्त रीति के अनुसार इन्द्र का पूजन कीया ॥

इन्द्र ने कहा जो राजा चंदेरी के राजा के समान मेरी पूजन करेगा उस के लक्ष्मी और विजय होगी और उस के देश में सदा आनन्द रहेगा, उत्तम राजाओं के यहां उस समय से आज तक इन्द्र का पूजन उसी प्रकार से होता है ॥

राजा चंदेरी भी हर सम्वत की समाप्ति पर इन्द्र का पूजन उस रीति से करने लगे। इन्द्र इस से बड़े प्रसन्न हुये तब राजा के ग्रह में पाच बड़े पराक्रमी और तेजस्वी पुत्र हुये जिन में से एक का नाम बृहद्रथ जो मगध देश में विख्यात है दूसरे का नाम प्रत्यग्रह तीसरे का नाम कुशंब जिस को मार्गी वाहन भी कहते हैं चौथे का नाम मावेल्ल और पांचवें का यदुआ था इन पांचों को राजा ने पृथक २ देशों का राज देकर राजा बना दीया ॥

यह पांचों भाई अपने अपने राज्य में अपने अपने नामों के नगर बसाकर राज्य करने लगे उन पांचों के अलग अलग पांच वंश हुए ॥

राजा वसु इन्द्र के दीये हुये विमान पर चढ़ कर आकाश में फिरा करते थे और उन के पास गंधर्व और अप्सरा आती थीं इस कारण उन का नाम उपरिचर विख्यात होगया ॥

चंदेरी नगर के समीप शुक्ति मति नाम एक नदी बहती थी उस नदी को कोलाहल नामी पर्वत ने काम के वश हो कर रोका राजा ने कोप से उस पर्वत को लात मारी और उस में

एक विवर हो गया उस की राह वह नदी वह निकली कोलाहल के संगम करने से उस नदी के गर्भ ठहर गया और एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई नदी ने राजा की प्रीति के कारण वह दोनों राजा के अर्पण कर दिये राजा ने लड़के का नाम वसु भद्र रख कर उस को अपना सेना पति बना लिया और गिरी की उस कन्या को अपनी पत्नी बनाया ॥

वह गिरीका समय पाकर ऋतुवती हुई परंतु जिस दिन वह ऋतु स्नान करने को थी उस दिन पितरों ने राजा को कहा कि मृग मार कर बन से ला कर श्राद्ध करो, उन की आज्ञा पा कर राजा बन को चला गया ॥

जब राजा बन में पहुंचा तो क्या देखता है कि वसन्त ऋतु ने उस वन को अत्यन्त शोभायमान बना रक्खा है, नाना प्रकार के मीठे फल देने वाले वृक्ष जैसे कि अशोक चम्पक, आम, आतिमुक्त पुन्नाग, बकुल, दिव्यपाटल, पाटल, नारिकेल, चन्दन, अर्जुन आदि लहलहा रहे हैं चारों ओर भौंरे गूंज रहे हैं और कोकिलाओं के झुण्ड जहां तहां मधुर बोलीयां बोल रहे हैं ॥

राजा का मन इन से कामातुर हो गया और उस को गिरि का रूप याद आगया इस समय राजा एक अशोक वृक्ष के पास पहुंचा हुआ था राजा उस वृक्ष के नीचे बैठ गया और मैथुन के आनन्द को पाने लगा, कुछ काल पीछे उस राजा का वीर्य गिर पड़ा, उस वीर्य को राजा ने वृक्ष के पत्ते में ले लीया और इस विचार से कि मेरा वीर्य और मेरी सुकुमार स्त्री का ऋतु

काल व्यर्थ न जाय अपने विमान में बैठे हुये श्येन नाम पक्षी से कहा यह मेरा वीर्य है इस को शीघ्र ले जा कर मेरी स्त्री गिरिका को दे दे । वह पक्षी उस वीर्य को ले कर वहां से उड़ा रास्ते में उस पक्षी को उस की जाति के दूसरे पक्षी ने देखा और उस वीर्य युक्त पत्ते को मांस समझ कर उस के सामने आया दोनों चोंच से लड़ने लगे और वह वीर्य यमुना में गिर पड़ा ॥

जहां वीर्य गिरा था वहां दैव योग से अद्रका नाम एक अप्सरा जो एक ब्राह्मण के शाप से मछली हो गई थी यमुना में फिरती हुई वहां आ पहुंची और उस वीर्य को निगल गई, दस मास बीतने पर उस मछली को धीमड़ों ने पकड़ लिया और उसका पेट चीरने पर उस में से एक कन्या और एक पुत्र निकला उन को देख कर धीमर आश्चर्यवान हो गये और उन दोनों को राजा के पास ले जा कर अर्पण कीया ॥

राजा ने उस लड़के को ले लीया और वह बड़ा धर्म्मात्मा और सत्य संकल्प हुआ और उस का नाम मतस्य राजा हुआ । वह अप्सरा जो शाप से मछली हो गई थी और भगवान ने उस को यह कहा था कि जब तू दो मनुष्यों को उत्पन्न करलेगी उस समय तू इस शाप से छूट जावेगी धीमरों के पेट काटने पर दिव्यरूप धारण करके आकाश को चली गई ।

राजा ने उस कन्या को जो बड़ी गुणवान् और रूपवती थी धीमरों को देकर कहा कि यह तुम्हारी कन्या हो ॥

धीमरों ने उस को अपनी कन्या के समान पाला और

उस का नाम सत्यवति रक्खा परंतु उस का जन्म मछली के पेट से होने के कारण थोड़े दिनों तक उस का नाम मत्सगन्धनी रहा ॥

जब वह कन्या बड़ी हुई अपने पिता की आज्ञा से पिता की नाव को महात्माओं की सेवा के लीये यमुना में चलाया करती थी एक दिन पाराशर ऋषि जी तीर्थ यात्रा करते हुये वहां आ पहुंचे और उस कन्या के सुन्दर स्वरूप मृदु मुसक्यान को देख कर उस पर मोहित होगये और जब नाव में पहुंचे तब काम वश होकर बोले कि हे कल्याणी तू मेरे साथ रमण कर ॥

कन्या बोली महाराज वार पार दोनों ओर ऋषि गण खड़े हुये हैं उन के देखते हुये मेरा आप का समागम क्यों कर हो सकता है ॥

यह सुन कर पाराशर जी ने ऐसा निहार प्रगट कीया कि चारों ओर महा अन्धकार छा गया ॥

सत्यवति उस अन्धकार को देख कर चकित हो गई और उन को बड़ा तपस्वी जान कर बोली महाराज मैं अभी कन्या हुं और मेरा धर्म मुझे अपने पिता की आज्ञा के अनुसार चलना है आप के साथ समागम करने से मेरा कन्याभाव चला जावेगा पुनः मैं पिता के घर क्योंकर जा सकूंगी और जीऊंगी । इस बात को आप विचार कर लीजिये और फिर जो इच्छा हो सो कीजिये ॥

मुनीश्वर प्रीति पूर्वक बोले जो मैं कहुं सो तू कर तेरा कन्या

आव न जायेगा और जो वर तूने मांगना है सो मांग मेरा कहा कभी झूठ नहीं होता ॥

सत्य वती ने कहा महाराज मेरी देह सुगन्धित हो जाये मुनीश्वर ने उस को मनो वांछित वर दीया और उस की देह बहुत सुगन्धित हो गई इस से उस का नाम गंधवति विख्यात हुआ जब मनुष्यों ने उस की देह की गंध को एक योजन से सूंघा तो उस का नाम योजन गंधा रक्खा गया ॥

तब पाराशर जी ने उस यमुना द्वीप में उस कन्या से भोग किया और उस कन्या ने तुरन्त गर्भ को धारण कर के उसी द्वीप में व्यास जी को उत्पन्न कीया व्यास जी उत्पन्न होते ही वहां से तप करने को चले और माता को कह गये जिस समय तू याद करेगी मैं आ जाऊंगा यमुना के द्वीप में उत्पन्न होने के कारण व्यास जी का द्वैपायन नाम आज तक प्रसिद्ध है ॥

व्यास जी का नाम व्यास उस समय रक्खा गया जब उन्हों ने ब्राह्मणों पर कृपा कर के मनुष्यों की आयु और शक्ति को और युगों के अन्त में धर्म की हानि देख कर वेद का विस्तार और विभाग कीया उन चारों वेदों और पांचवे इस महाभारत को व्यास जी ने सुमंतु, जैमनि, पैल और वैशम्पायन आदि शिष्यों और अपने पुत्र शुकदेव को पढ़ाया, संसार में वैशम्पायन द्वारा यह महाभारत प्रकट हुआ ॥

भीष्म जी बड़े पराक्रमी, तेजस्वी और यशस्वी हुए हैं गंगा के गर्भ से अष्टवसुओं के अंश द्वारा राजा शातनु के पुत्र थे और धर्मराज शूद्र योनी में अवतार लेकर विदुर के नाम से प्रसिद्ध

हुये उन को शूद्रयोनी में इस कारण अवतार लेना पड़ा कि उन्हों ने अणीमांडव नाम एक बड़े यशस्वी ब्रह्म वेत्ता और वेद पाठी ऋषि को चोरी का झूठा दोष देकर सूली पर चढ़वाया था जब वह यमराज के पास पंहुचे तब ऋषि ने कहा कि संसार में हम ने बिना एक छोहरी को तिनके से छेदने के कोई पाप नहीं कीया था क्या वह छोटा सा पाप हमारी इस उग्र तपस्या से भी नष्ट नहीं हुआ, ब्राह्मण का वध करना उस को पीड़ा देना और उस का अपमान करना सब संसारी जीवों के वध से अधिक है इस कारण हम तुम को शाप देते हैं कि तुम पृथ्वी पर जाकर शूद्रयोनि में जन्म लो। तब व्यासजी से मुनियों के समान संजयसूत उत्पन्न हुये और कुन्ती के गर्भ से कुमार अवस्था में सूर्य के वीर्य से कुण्डल और कवच धारण कीये हुये कर्ण प्रकट हुये, जगत तारण श्री विष्णु भगवान ने देवकी और वसुदेव के यहां अवतार लीया। सात्यक के वंश में सात्यकी और हार्दिक के वंश में कृतवर्मा बड़े पराक्रमी अस्त्र शास्त्र विद्या में अति निपुण उत्पन्न हुये॥

भारद्वाज ऋषि का वीर्य पर्वत की खोह में गिरने से द्रोणाचार्य और गौतम ऋषि का वीर्य शरस्तंबपर गिरने से अश्वत्थामा की माता और कृपा चार्य प्रकट हुये और द्रोणाचार्य के हां अश्वत्थामा बड़ा वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। द्रोणाचार्य को मारने के लीये अग्नि के सामान तेज रखने वाला धनुषबाण लीये हुये धृष्टद्युम्न और बहुत ही सुंद्री कृष्णा होम की अग्नि में से निकले। फिर प्रह्लाद के शिष्य नग्नजित और सुबल उत्पन्न हुये। दैव

के कोप से इन की सन्तान धर्म नाशक हुई और गांधार देश के राजा सुबल के शकुनि नाम पुत्र और गांधारी नाम कन्या हुई उस का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ और उस के हां दुर्योधन आदिक सौ पुत्र हुये ॥

व्यास जी से विचित्र वीर्य की स्त्री के गर्भ से धृतराष्ट्र और पांडु और शूद्रयोनि से विदुर जी जो धर्मात्मा और निष्पाप थे उत्पन्न हुये ॥

इस के पीछे राजा पांडु की दो स्त्रियों से पांच पुत्र भये जो देवताओं के तुल्य प्राक्रमी थे । एक का नाम युधिष्टर दूसरे का नाम भीमसेन, तीसरे के अर्जुन चौथे का नकुल और पांचवें का सहदेव था ॥

धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदिक सौ पुत्र हुये । इन में से कर्ण, दुश्शासन, दुःसह, दुर्मर्षण, विकर्ण, चित्र सेन, विविंशति, जय, सत्यव्रत, पुरूमित और वैश्या पुत्र युयुत्सु महारथी थे । सुभद्रा श्री कृष्ण जी की बहिन के गर्भ से अभिमन्यु पांडवों का पोता उत्पन्न हुआ । द्रौपदी के भी पांचों पांडवों से युधिष्टिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से सुतसोम, अर्जुन से श्रुत कीर्ति, नकुल से सत्तानीक और सहदेव से श्रुतसेन बड़े सुन्दर पुत्र हुये । हिडम्बा राक्षसी के गर्भ से भीमसेन का घटोत्कच नाम एक पुत्र हुआ । राजा द्रुपद के शिखंडी कन्या हुई जिस को स्थून नाम यक्ष ने अपना पुरुषत्व दे कर पुरूष कीया ॥

उन्नीसवाँ अध्याय ॥

—:०:—

असुरों का पृथ्वी पर जन्म लेना, पृथ्वी का उन के अधर्म से दुःखी होकर ब्रह्मा जी के पास जाना और ब्रह्मा जी का सब देवताओं को पृथ्वी का भार हटाने के लिये जन्म लेने की आज्ञा देना ॥

वैशम्पायन जी ने कहा हे राजा यह कथा जो मैं अब तुम को सुनाता हुं केवल देवताओं को ही मालूम है और कोई इस से विज्ञ नहीं। जब जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी इक्कीस बेर क्षत्रियों का नाश कर के शांति [illegible] वनों में तप करने को चले गये तो सब क्षत्रियों की स्त्रीयां ऋषियों के पास गईं और कहा महाराज ऐसा कीजिये जिस से क्षत्रियों का वंश इस पृथ्वी पर रहे। ऋषियों ने ऋतु स्नान करने पर उन के साथ भोग करके उन को वीर्य दान दीया परंन्तू किसी ने भी काम वश हो कर उन के साथ भोग नहीं कीया। उन वीर्यों से हज़ारों बड़े २ पराक्रमी क्षत्रि पुत्र उत्पन्न हुये और कन्या भी उत्पन्न हुईं और थोड़े ही समय में धर्म करने से वह क्षत्री लोग ऐसे बढ़े कि सम्पूर्ण पृथ्वी उन से भर गई। उन के शरीर निरोग और आयू बहुत बड़ी होती थी क्योंकि यह शास्त्र की आज्ञा अनुकूल स्त्रियों के साथ ऋतु स्नान पर संगम करते थे काम वश हो कर इन में से कभी भी कोई अपनी स्त्री के पास न जाता था ॥

राजा लोग न्याय और धर्म से सब काम करते थे और धर्म से ही दण्ड देते थे इस लिये चारों वर्ण उन के राज्य में आनन्द पूर्वक रहते थे, वर्षा समय पर होती थी और कभी दुर्भिक्ष नहीं होता था, कोई स्त्री छोटी अवस्था में व्याही नहीं जाती थी। पुरुष युवावस्था में स्त्रियों से भोग करते थे, बाल अवस्था में कभी कोई न मरता था, क्षत्रि लोग ब्राह्मणों को बड़ी बड़ी दक्षिणा देकर यज्ञ कराते थे और ब्राह्मण भिक्षा धन लीये वेद पढ़ाते थे, बनिये बैलों से खेती करते थे पर छोटे बैलों से काम न लेते थे और उन का पालन करते थे, गौओं का दूध जो उन के बच्चों से बचे अथवा जब उन के बच्चे घास दाना खाने लग जाते थे पीते थे, बनिये कभी कम न तोलते थे और न ही खोटे बाटों से सौदा देते थे॥

फल फूल अपने २ ऋतु में अच्छे प्रकार से होते थे और गौ और स्त्री अपने अपने समय पर बच्चा जनती थीं, इस प्रकार सकल जगत में सुख और आनन्द ही था॥

जब इस प्रकार से पृथ्वी पर सत्य युग व्याप रहा था, उन दैत्यों ने जो देवताओं से युद्ध में हार कर स्वर्ग से निकाल दीये गये थे पृथ्वी पर आ जन्म लीया और वह मनुष्य, घोड़ा, हाथी, गाय, बैल, ऊंट, भैंस, गधा, और मृगादि योनियों में पड़े, तब दिति और दनु के पुत्र दैत्यों ने राजाओं के गृह में जन्म लीया॥

थोड़े ही समय में यह दैत्य समुद्र तक सारी पृथ्वी में फैल गये और अधर्म करने लगे जिस से ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को बहुत दुःख हुआ॥

पृथ्वी उस दुःख को न सहकर ब्रह्मा जी के पास गई, उस समय ब्रह्मा जी की सभा में उत्तम २ ब्राह्मण, बड़े २ ऋषि, सम्पूर्ण देवता, गंधर्व और अप्सरा बैठी हुई थीं वहां पहुंच कर ब्रह्मा जी को वंदना की और लोक पालों सहित शर्णागत होकर अपनी व्यवस्था सुनाई। परंतू ब्रह्मा जी जो सारे जगत के रचने वाले, स्वयंभू, प्रधानात्मा, और ईश हैं पृथ्वी का हाल पीहले ही से जान गये और उस से बोले। हे पृथ्वी मैं जानता हुं जिस कारण से तू यहां आई है अब तू जा मैं तेरे काम के लीये देवताओं को नियुक्त करता हुं। यह कह कर ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को विदा कीया और देवताओं को आज्ञा दी कि पृथ्वी का भार दूर करने के लिये तुम लोग अपने अंश से मृत्यु लोक में जन्म लो और गंधर्व अप्सराओं को भी बुला कर यही आज्ञा दी ॥

देवता ब्रह्मा जी की आज्ञा को मान कर शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारने वाले, तीक्षण प्रभा वाले, पद्म नाभ, प्रजापति के पति, देव, सूर नाथ, महाबली, श्री वत्सांक, ऋषि केश, और सब देवताओं से पूजित श्री विष्णु भग्वान के पास वैकुंठ धाम में गये और विनय की कि आप भी हमारे साथ पृथ्वी का भार उतारने के लीये जन्म लीजिये, विष्णु भग्वान ने कहा बहुत अच्छा ऐसे ही करेंगे ॥

॥ बीसवां अध्याय ॥

—:०:—

सुर असुर दैत्य दानव गंधर्व और अप्सराओं के अंश अवतारण की कथा ॥

तब सब देवताओं ने अपनी अपनी रुचि के अनुकूल स्वर्ग से पृथ्वी में जा कर ब्रह्म ऋषि और राजा ऋषियों के वंश में अवतार धारण कीया और सकल दैत्यों दानवों और राक्षसों को मार डाला और दैत्य इत्यादि इन को बाल अवस्था में भी न मार सके ॥

राजा जनमेजय ने कहा महाराज मैं इन सब की कथा विस्तार पूर्वक सुना चाहता हुं ॥

वैशम्पायन जी ने कहा राजा सुनिये मैं आप की इच्छा के अनुसार सारी कथा विस्तार पूर्वक कहता हूं ॥

सब से पहिले ब्रह्मा जी के ६ मानसी पुत्र १ मरीची २ अत्रि ३ अंगिरस ४ पुलस्त्य ५ पुलह ६ क्रतुया हुये ॥

मरीची के कश्यप जी पुत्र हुये और कश्यप जी से यह सब सृष्टि हुई ॥

दक्ष के १३ कन्यायें—१ अदिति, २ दिति, ३ दनु, ४ काल, ५ दनायु, ६ सिंहका, ७ क्रोधा, ८ माधा, ९ विश्वा, १० विनता, ११ कपिला, १२ मुनि, १३ कद्रू उत्पन्न हुई, इन सब का विवाह कश्यप जी से हुआ और उन के अनगिनत पुत्र

और पौत्र हुये, आदिति के बारह सूर्य जिन को भुवनेश्वर भी कहा जाता है और जिन के नाम १ धाता २ मित्र ३ अर्यमा ४ शक्र ५ वरुण, ६ अंश, ७ भग, ८ विवस्वान, ९ पुषा १० सविता, ११ त्वष्टा, १२ विष्णु हैं उत्पन्न भये इन सब में से छोटे आदिति गुण में सब से अधिक हुये, दिति के हां हिरण्य कशिपु नाम बड़ा प्रतापी एक पुत्र हुआ और उस के हां १ प्रह्लाद, २ संह्राद, ३ अनुह्राद, ४ शिवि और ५ वाष्कल हुये, प्रह्लाद के तीन पुत्र विरोचन, कुंभ और निकुंभ हुये विरोचन का एक बड़ा प्रतापी बलिनाम पुत्र हुआ, बलि के हां सुबान नाम पुत्र हुआ यह शिवजी का बड़ा भक्त था इस कारण इस का नाम महा काल भी है और दनु के चालीस पुत्र हुये उन में से विप्रचित्त शंबर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी दुर्जय, दानव, अयः शिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, कनुमान, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति वृषपर्वा. अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुड, एकपाद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचन्द्र, कपट, शरभ, शालभ, सूर्य और चन्द्रमा विख्यात हैं, जो सूर्य और चन्द्र देवताओं में गिने जाते हैं वह अन्य हैं ॥

दनु के पुत्र जिन के सन्तान हुई वह एकाक्ष, मृतपवीर, प्रलंब, नरक, वातापी, शत्रुतपन, महाअसुर, शठनाम, गविष्ठ वनायु, दीर्घ जिव्हा दानव हैं। इन के असंख्य पुत्र पौत्र हुये। सिंहिका के १ राहु, २ सुचन्द्र, ३ चन्द्रहंतार, ४ चद्र प्रमर्दन पुत्र हुये और क्रोधा के क्रूर स्वभाव रखने वाले अगणित पुत्र पौत्र हुये ॥

इन के पीछे दनायु के चार पुत्र विक्षर, बल, वीर और वृत्र सब दानवों में उत्तम हुये। काला के चार पुत्र विनाशन, क्रोध, क्रोध हंता और क्रोध शत्रु बड़े बलवान और काल के समान संहार करने वाले हुये।

इन असुरों के ऋषि पुत्र शुक्र जी उपाध्याय हुये और शुक्र के चार पुत्र त्वष्टा, अधर, अत्रि और दो और जो सूर्य के समान तेजस्वी और ब्रह्मलोक में रहकर असुरों के यज्ञ कराने वाले थे हुये॥

विनता के पुत्र तार्क्ष्य, अरिष्ट, नेमि, गरुड़, अरुण, आरुणि, और वरुण कद्रू के पुत्र शेष, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक थे॥

उन के पीछे मुनि देवि के यह सोलह पुत्र उत्पन्न हुये १ भीमसेन, २ उग्रसेन, ३ सुपर्ण, ४ वरुण, ५ गोपति, ६ धृतराष्ट्र, ७ सूर्यवर्चा, ८ सत्यवाक, ९ अर्कपर्ण, १० प्रयुत, ११ भीम, १२ चित्तरथ, १३ शालि शिरा, १४ पर्यन्द, १५ कलि और १६ नारद॥

पुनः प्रधा के ७ पुत्री और १० पुत्र उत्पन्न हुये उन के नाम यह हैं पुत्री १ अनवद्या, २ मनुवंश, ३ असुर, ४ मार्गणप्रिया, ५ अरुपा, ६ सुभगा, और ७ भासी, पुत्र १ सिद्ध २ पूर्ण, ३ बर्हि, ४ पूर्णायु, ५ ब्रह्मचारी, ६ रतिगुण, ७ सुपर्ण, ८ विश्वावसु, ९ भानु, और १० सुचन्द्र, प्रधा के यह पुत्र देव गंधर्व कहलाते हैं॥

पुनः प्रधा के देव ऋषियों से अप्सराओं के वंश उत्पन्न

हुये उन के नाम यह हैं अलंवुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरूणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनि, सुवाहु, सुरता, सुरजा और सुप्रिया और गंधर्वों में अतिवाहु हाहा हु हु और संवरू वड़ नामी हुये ॥

इक्कीसवां अध्याय

—:o:—

देवता, असुर, धर्म, अधर्म और पशु पक्षियों के उत्पन्न होने की कथा॥

ब्रह्मा जी के ६ पुत्र मरीच, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतुये हुए और शिवजी के ११ यह पुत्र हुए १ मृग २ व्याध, ३ सर्पनि ऋति, ४ अजकपाद, ५ आहिर्बुध्न्य, ६ पिनकी ७ दहन, ८ ईश्वर, ९ कपाली, १० स्थाणू, ११ भग ॥

अंगिरा के तीन पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त्त वड़े व्रतधारी हुए और पुलस्त्य जी के मनुज, व्याघ्र, वानर, राक्षस, किन्नर और यक्ष हुए। और मृग पुलह जी के शालभासिंह किंपुरुष, व्याघ्र, ईहा हुए। कृतु जी के पुत्र वालखिल ऋषि जो बड़े सत्य व्रत धारी और सूर्य के साथ चलने वाले हैं और अपत्रि जी के हां वेद के जानने वाले वड़े २ महां ऋषि उत्पन्न हुए ॥

उसी समय ब्रह्मा जी के दाहिने अंगूठे से दक्ष ऋषि और बायें अंगूठे से दक्ष की स्त्री उत्पन्न हुई इन दोनों से पचास

कन्या उत्पन्न हुईं जो बड़ी सुन्दर थीं और जिन में से १० का विवाह उन्हों ने उन के बड़े होने पर धर्म राज से और २७ का चन्द्रमा से १३ का कश्यप जी से वेद विधि अनुकूल कर दीया, धर्मराज जी को जो कन्या दी गईं उन के नाम कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति हैं और ब्रह्मा जी ने धर्म के दश द्वार इन्हीं को कहा है ॥

और जो २७ कन्या चन्द्रमा को दी थीं वह समय के क्रम से लोक यात्रा में नक्षत्रों में फिरा करती हैं और जो अश्विनि, भरणी, रोहिणी आदि कहलाती हैं ॥

प्रजापति के ८ पुत्र जो वसु भी कहलाते हैं उन के नाम धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास हैं ॥ इन में से धर और ध्रुव धूम्रा से, चन्द्रमा मनस्वी से, श्वसन श्वासा से, अहरता से हुताशन शंडली से प्रत्यूष और प्रभास से प्रभाता उत्पन्न हुए । तब धर के द्रविण हुतहव्य और ध्रुव के काल और चन्द्रमा के वर्चा और मनोहरा के शिरस-प्राण और रमण और अह के ज्योति, शम, शांत और मुनि और अग्नि के पानु कुमार जी जो कृत्तिकाओं से उत्पन्न होने के कारण कार्तिकेय के नाम से विख्यात हुए और अनिल के शिवा स्त्री से मनोजव और अविज्ञात गति और प्रत्यूष के देवल और प्रभासा के बृहस्पति की बहिन से जो ब्रह्मवादिनी और योग युक्त थी विश्वकर्मा जी उत्पन्न हुए जो पत्थर और गृह इत्यादि बनाने की विद्या में बड़े निपुण हुए हैं और जिन्हों ने नाना प्रकार के नए नए बनावटी पत्थर

बनाने की विधि बतलाई और जिन विधियों से आज पर्यंत लाखों पुरुष पत्थर बना कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और जिन्हों ने देवताओं के लिये उत्तम उत्तम स्थान और विमान् बनाए ॥

चन्द्रमा के पुत्र वर्चा के वर्चस्वी पुत्र और कार्तिकेयजी के शाख विशाख और नैगमेय पुत्र और प्रत्यूष के पुत्र देवल के क्षमावान् और मनीषी पुत्र हुए ॥

ब्रह्मा जी के दहने स्तन को फोड़ कर नर रूप धारण किये हुए धर्म उत्पन्न हुए जिन के शम, काम और हर्ष नाम के मनोहर और तेजस्वी पुत्र हुए, इन तीनों का विवाह प्राप्ति, रति और नन्दा नाम स्त्रियों के साथ हुआ ॥

मरीचि के पुत्र कश्यप जी कश्यप के सुर और असुर उत्पन्न हुए यह सृष्टि के कारण कहलाते हैं ॥

त्वष्टा नामी स्त्री से सूर्य के अश्विनी और कुमार दोनों आकाश में उत्पन्न हुये और आदिति के इन्द्र आदि बारह पुत्र उत्पन्न हुये उन में से सब से छोटे विष्णु हैं ॥

देवताओं के गण और पक्षों के नाम । रुद्रगण, मरुद्गण, साध्यगण, भार्गवपक्ष, वसुपक्ष, विश्वेदेवा, विनता के पुत्र गरुड़ और अरुण, बृहस्पति जी आदित्यों में गिने जाते हैं दोनों अश्विनि कुमार गुह्यक और सब औषधि और पशु और मनुष्य इन का कीर्तन करने से दुःखों से छूट जाते हैं ॥

भृगु जी ब्रह्मा के हृदय को फार कर निकले, उन के पुत्र कवि और कवि के शुक्र नामी पुत्र हुआ जो वर्षा अवर्षा भय और अभय सूचक कार्यों के लिये ब्रह्मा जी से नियुक्त होने

के कारण चौदह भवनों में घूमते हैं और जो योग सिद्धि से दो रूप धर कर सुरों और असुरों के गुरू हैं ॥

भृगु जी का च्यवन नामी पुत्र बड़ा तेस्वी और धार्मिक हुआ जिस ने बड़े क्रोधित हो कर गर्भ से गिर कर अपनी माता को असुर से छुड़ाया ॥

भृगु जी का विवाह मनु की कन्या से हुआ जिस से और्व ऋषि बड़े तेजस्वी और पराक्रमी उरू को तोड़ कर उत्पन्न हुए इन के पुत्र ऋचीक हुये और ऋचीक के जमदग्नि, जमदग्नि के चार पुत्र उत्पन्न हुये उन चारों में से सब से छोटे परशुराम जी थे जो बड़े गुणवान् सब शास्त्रों में निपुण और पृथ्वी के सकल क्षत्रियों के नाश करने वाले थे ॥

और्व ऋषि के १ सौ पुत्र थे उन में जमदग्नि सब से बड़े थे इन की सन्तान इतनी हुई कि सारी पृथ्वी पर फैल गई ॥

पुनः ब्रह्मा जी के दो पुत्र धाता और विधाता हुये यह दोनों मनु जी के संग रहते हैं उन की बहिन कमल में रहने वाली लक्ष्मी थी उसके हां आकाश में चलने वाले मानसी पुत्र हुये। वरूण के हां बड़ी स्त्री से बल नामी एक पुत्र और सुरा नामी पुत्री जिस को देख कर देवता परम आनन्द पाते हैं हुये॥

अन्न के अभाव से जब प्रजा भूखी मरने लगी और प्रबल निर्बल को भक्षण करने लगे तब सब जीवों का नाश करने वाला अधर्म उत्पन्न हुआ। उस का विवाह निर्ऋतिनामी स्त्री के साथ हुआ इन के तीन पुत्र भय महाभय और मृत्यु नामी

राक्षस सदा पाप कर्मों में लगे रहने वाले उत्पन्न हुये मृत्यु के कोई स्त्री अथवा पुत्र नहीं हुआ ॥

ताम्रदेवी के पांच पुत्री कांकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्र और शुकी उत्पन्न हुईं। कांकी के उल्लू नाम के पक्षी श्येना के श्येन नाम के पक्षी, भासी के भास और गृध्र नाम के पक्षी, धृतराष्ट्र के सब प्रकार के हंस और चक्र वाक नाम पक्षी और शुकी के तोता नाम के पक्षी उत्पन्न हुए ॥

दक्ष की क्रोधा नाम पुत्री के मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और सुरसा नाम नौ पुत्रीयां उत्पन्न हुईं, मृगी से सब मृग, मृगमन्दा से रीछ और स्मर भद्रनाम देव नाग, ऐरावत हाथी। हरि से वानर और लंगूर, शार्दूली से सिंह, व्याघ्र और द्वीपी मांतंगी से हाथी, श्वेता से दिग्ज उत्पन्न हुये ॥

सुरभि के चार पुत्री रोहिणी, गंधर्वी, विमला और अनला हुईं, रोहिणी के गौ, बैल, गंधर्वी के घोड़े, विमला के खजूर, नारयल आदि सात प्रकार के वृक्ष और अनला के शुकी नाम पुत्री हुई, सुरसा के कंकनामी पुत्र हुआ ॥

अरुण की स्त्री श्येना के महा बली संपाति और जटायू उत्पन्न हुये, सुरसा से नाग कद्रु से सर्प और विनता से गरुड़ और अरुण हुये ॥

बाईसवां अध्याय ॥

—:०:—

कुरुवंश के चलानें वाले राजा दुष्यन्त का वन में आहेर खेलने जाना ॥

राजा दुष्यन्त ने जो कुरुवंश का सब से पहिला राजा हुआ है अपने बल और पराक्रम से पृथ्वी को एक ओर से समुद्र की सीमा तक और दूसरी ओर से म्लेच्छों के देश की अवधि तक जीत कर अपने वश में कर लीया था, उस के राज्य में चारों वर्णों के लोग अपने अपने वर्ण का धर्म पालते थे, कभी कोई चोरी न होती थी, कोई पाप के समीप न जाता था, एक दूसरे से कोई वैर द्वेष न रखता था वरन सब लोग परस्पर प्रीति रखते थे, धन धान्य बहुत होता था, पशु भी बहुत होते थे, झूठ बोलना कोई जानता नही था मानो पृथ्वी पर स्वर्ग था ॥

यह राजा बहुत बलवान था, गदा आदि शस्त्रों से युद्ध करने में अत्यन्त निपुण था और हाथी घोड़े आदि की स्वारी भी बहुत अच्छी जानता था उस का बल विष्णु के समान और तेज सूर्य के तुल्य अनूप था, प्रजा उस को बहुत चाहती थी और वह प्रजा का पालन धर्म से करता था ॥

एक समय राजा दुष्यंत बहुत सी चतुरंगिनी सेना और बड़े बड़े शूर वीर जो खंग शक्ति आदि अनेक शस्त्र लीये हुए थे साथ लेकर वन में आहेर खेलने गया। वहां उस ने नाना

प्रकार के जीवों यथा मृग, हाथी, रीछ आदि को मार डाला, कई जीव वन में से निकल कर थल में पानी की आशा पर दौड़ गये और वहां पानी न मिलने के कारण तड़प तड़प कर मूर्छित हो गये और राजा की सेना द्वारा मारे गये सेना के आदमीओं को भूख लगी और उन्हों ने उन को भून कर खाया ॥

चलते चलते राजा एक दूसरे वन में गया जो वड़ा शुन्य था पुनः वहां से चल कर एक और वन उसे मिला जहां शीतल मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी अनेक रंगों के फूल खिल रहे थे, कोयल आदि बहुत से पन्नी मीठी मीठी बोलियां बोल रहे थे, वृक्षों की छाया बहुत ही घनी थी, भौंरे जहां तहां गूंज रहे थे ऐसा कोई वृक्ष न था जिस पर फल फूल और भौंरे न थे ॥

राजा इस अद्भुत शोभा को देखता हुआ आगे को चला रास्ते में वृक्षों से फूल झड़ २ कर उस के ऊपर पड़ते थे मानो वृक्ष राजा के ऊपर फूल वर्षा रहे थे राजा पक्षियों की चहचहाहट को सुनता, सफल वृक्षों की झुकी हुई डालीयों पर गूंजते हुये भौंरों की शोभा को देखता, फूल रूपी वस्त्रों को पहने हुये वृक्षों की सुगन्धी को सूंघता, इन्द्र की ध्वजा के समान ऊंचे वृक्षों की डालीयों के आपस में मिलने की शोभा को देखता हुआ उस वन में जाता था, थोड़ी दूर जा कर उसने उस वन में एक अति सुन्दर आश्रम जिस के समीप नाना प्रकार के वृक्ष लगे हुये थे, पक्षी गण मधुर बोलीया बोल रहे थे और अग्नि कुण्डों में अग्नि जल रही थी देखा, यह आश्रम

मालती नदी के तट पर वालखिल्य सन्यासियों और बहुत से मुनियों के गणों से भरा हुआ था. राजा ने उस आश्रम को प्रणाम कीया और उस नदी के वृक्ष पक्षी और मृग आदि की शोभा से प्रसन्न होता हुआ उस की ओर जाकर उस आश्रम के पास पहुंचा ॥

वहां पहुंच कर क्या देखता है कि वह नदी उस आश्रम के किनारे से लगी हुई शब्द करती हुई वह रही है, चकवाक आदि जल पक्षी और जल के जीव किलोलें कर रहे हैं और वानर, रीछ, किन्नर, शार्दूल, सर्पराज और मतवाले हाथी भी क्रीड़ा कर रहे हैं और उस नदी के तट पर एक आश्रम कश्यप जी का बना हुआ है और वहां बहुत से मुनिगण बैठे हुये हैं उस आश्रम की शोभा नदी के कारण ऐसी थी जैसे बद्रिका आश्रम की गंगा से है, राजा को अभिलाषा हुई कि आश्रम में चल कर कश्यप जी का दर्शन करें। उस ने अपनी सेना के मनुष्यों को कहा कि तुम जब तक हम लौट कर न आवें यहां ठहरो और आप राजचिन्हों को हटा कर अपने साथ मंत्री और परोहित को लेकर उस आश्रम को गया. और वहां की शोभा को देख कर भूख प्यास भूल गया। जब आश्रम के भीतर पंहुचा तो क्या देखता है कि वहां यज्ञ हो रहा है ऋषि और ब्राह्मण लोग ऋगवेद, साम वेद, यजुर्वेद और अथर्वण वेदों के मंत्रों को पदक्रम घन आदि अलंकारों से पढ़ रहे हैं और कोई संहिता का पठ कर रहा है ॥

बहुत से ऋषि लोग जो यज्ञों की क्रियाओं में निपुण, न्याय तत्व और आत्म विज्ञान में सम्पन्न, समाहार में विशारद थे

और मोक्ष धर्म अपनी बात को स्थापन करना दूसरे के मत को खंडन करना और सिद्धांत मत को कहना इन के परम ज्ञाता शब्द और छन्द की निरूक्ति को जानने वाले. काल का ज्ञान करने कर्म गुण और वानर और अन्य पक्षियों की बोलीयां समझने वाले द्रव्य वाले और बड़े बड़े ग्रंथों का विचार करने वाले थे आपस में वार्तालाप कर रहे हैं, राजा ने उन की वाणी को सुन कर और अनेक ब्रह्मणों को उत्तम उत्तम आसनों पर बैठे हुये जप और होम में परायण और देव मन्दिरों की पूजा को देख कर समझा कि मैं इस समय ब्रह्मलोक में हूं ॥

तेईसवां अध्याय

—:०:—

राजा दुष्यन्त का शकुन्तला से मिलाप ॥

राजा मंत्री और परोहित को उसी स्थान छोड़ कर आप उस जगा के अंदिर गया और वहां किसी को न पाकर ऊंची आवाज से बोला यहां कोई है । इस आवाज़ को सुन कर एक परम सुन्द्र कन्या लक्ष्मी के सदृश तपस्वी के वेष में भीतर से निकली और राजा को देख कर उस का सत्कार और यथा योग्य पूजन करके उस को आसन पर बिठाया और क्षेम कुशल पूछने के उपरांत मन्द मन्द मुसकान के साथ बोली कहिये क्या काम है जो आज्ञा हो सो कीया जावे ॥

राजा ने उसकी मीठी बोली को सुन कर कहा मैं कण्व ऋषि के दर्शनों को यहां आया था, वह कहां गये हैं ॥

उस कन्या ने जिस का नाम शकुंतला था कहा मेरा पिता ऋषि वन से फल फूल लेने गया हुआ है तुम यहां कुछ काल ठहरो वह अब आता ही होगा ॥

राजा ने उस से पूछा कि तू कौन है, किस की बेटी है और कहां से और किस लीये इस वन में आई है, तेरे दर्शन मात्र ही से मेरा मन मेरे वस में नहीं रहा उस को तूने हर लिया है ॥

उस कन्या ने हंसते हुये बड़े मीठे शब्दों में कहा महाराज! मैं धैर्यवान, धर्मज्ञ, तपस्वी कराव ऋषि की पुत्री हूं ॥

राजा ने कहा कि लोक पूज्य ऋषीश्वर महाराज तो उर्द्ध्वरेता कहलाते हैं अर्थात उन का वीर्य नीचे नहीं उतरता और ऐसा कहते हैं कि चाहे धर्म अपनी कृत्य से डोल जावे परंतु शंसित व्रत ऋषि अपने व्रत से कभी नहीं डोलता, तू किस प्रकार ऋषि की पुत्री है ॥

शकुंतला ने कहा महाराज मैंने अपने जन्म का हाल जो एक ऋषि के पूछने पर करावऋषि के मुख से सुना है आप से कहती हुं श्रवन कीजीये ॥

किसी समय में विश्वामित्र ने बड़ा उग्र तप कीया था उस तप को देख कर इन्द्र को भय हुआ कि उस का आसन न छीना जावे, इन्द्र ने मैनका अप्सरा को बुला कर कहा कि हम तुझ को सब अप्सराओं से विशेष गुण वाली समझते हैं तू हमारा एक काम कर ॥

मैनका ने कहा महाराज आप वह काम बतलाये यदि

मेरी शक्ति में हुआ तो मैं उस के करने का यत्न करूंगी ॥

इन्द्र ने कहा, आज कल विश्वा मित्र ऋषि बड़ा उग्र तप कर रहे हैं मुझ को भय है कि मेरा आसन न छिन जावे तू उन के पास जा और अपने स्वरूप, यौवन, मीठे बोल आदि से ऋषि के चित्त को ऐसा लुभाले कि वह तपस्या से हट जावे। तेरे ऐसे करने से मेरा बड़ा उपकार होगा ॥

मैनका ने कहा महाराज आप जानते हैं कि विश्वा मित्र ऋषि बड़े तेज धारी, तपस्वी और क्रोधी हैं जब आप उनसे डरते हैं तो फिर मैं उनसे किऊं न डरूं, वह विश्वा मित्र जी ही हैं कि जिन्हों ने वशिष्ट जी के सारे पुत्र मार डाले और तप के बल से क्षत्री से ब्राह्मण बने ॥

कौशकी नाम नदी को प्रगट कीया और पुनः जब वह ऋषि तपस्या करने को किसी पहिले समय में चले गये थे और उस समय दुर्भिक्ष पड़ जाने पर राज ऋषि मतंग ने उन के कुटंब की स्त्रियों का पालन कीया था तब तपस्या से लौट कर आने पर ऋषि ने उस नदी का नाम पारा रक्खा था और मतंग का यज्ञ कराया था उस यज्ञ में आप सोम पीने को भयभीत हो कर गये थे ॥

इन्ही विश्वामित्र ने क्रोध में आकर दूसरे लोक की रचना करने को नक्षत्रों को बनाया था, भला ऐसे तेज धारी और तपस्वी ऋषि से मुझ को डर क्या न होवे। आप कोई ऐसा उपाय करीये जिस से मुझे विश्वामित्र जी क्रोध से न जलावें क्योंकि वह अपने तप के बल सब लोगों को जला सकते हैं

पृथ्वी को अपने पाऊं के वल कंपा सकते हैं और मेरू पर्वत को उठा कर फेंक सकते हैं और सब दिशाओं को घुमा सकते हैं जिन के तेज और प्रभाव से यमराज, चन्द्रमा, महर्षि, विश्वे देवा और वाल खिल्य ऋषि आदि डरते हैं उन के सन्मुख मुझ सी स्त्री की क्या सामर्थ है जो कुछ कर सके। आप मेरी सहायता के लिये वायु और काम देव को भी मेरे साथ भेजीये ताकि वायु मेरे कपड़ों को उड़ा कर मुझे नग्न करदे ॥

इन्द्र ने वायु और काम देव को आज्ञा दी कि तुम मेनका के साथ जाकर इस की सहायता करो ॥

मेनका इन दोनों को साथ लेकर इन्द्र का काम करने के लीये विश्वामित्र जी के पास गई॥

॥ चौबीसवां अध्याय ॥

—:०:—

शकुंतला के जन्म की कथा और उस का राजा से गंधर्व विवाह॥

मेनका इन्द्र से विदा हो कर वायु और कामदेव को साथ लेकर डरती डरती विश्वामित्र जी के आश्रम में पहुंची और उन को प्रणाम करके क्रीड़ा करने लगी उस समय वायू ने उस के वस्त्र उतार दीये और वह नंगे बदन वस्त्र पकड़ती हुई विश्वामित्र के सन्मुख आई ॥

इधर काम देव ने अपना काम आरम्भ कीया, ऋषि

जी के मन में जा घुसे और ऋषि जी को वश में करलीया, ऋषी जी ने उस को बुला कर उस के साथ भोग कीया, मैनका उन के साथ बहुत दिनों तक रही और वह दोनों आपस में विवहार करते रहे, समय पाकर मालती नदी के तट पर उस अप्सरा को एक कन्या हुई जिस को मैनका ने उस नदी के तट पर डाल दीया और आप इन्द्र लोक को चली गई ॥

इस कन्या के समीप वहां के पक्षी आ बैठे और उस को परों से ढांप लीया ताकि मास आहारी जीव उस को न खा जावें. दैव योग से कण्व ऋषि भी सन्ध्योपासन करने के निमित्त उस नदी के तट पर आ निकले, और उस कन्या को पक्षियों से रक्षा किये हुये देख कर उस को अपने आश्रम में ले आये और उस को पुत्री मान कर उस का पालन कीया ॥

धर्म शास्त्र तीन प्रकार के पिता बतलाता है एक वह जो जन्म दे दूसरा वह जो प्राण दे और तीसरा वह जो अन्न दे ॥

इस कारण हे राजा कण्व ऋषि मेरे पिता हैं और मैं उन को पिता मानती हुं मेरा नाम उन्हों ने शकुंतला इस लीये रखा था कि मुझे शकुंत अर्थात पक्षियों ने अपनी रक्षा में रखा हुआ था ॥

राजा दुष्यंत ने कहा हे शकुंतला तेरे जन्म का हाल सुनने से मुझ को निश्चय हो गया है कि तू राज पुत्री है इस कारण मैं चाहता हुं कि तू मेरी पत्नि होजा और जो कुछ तू मुझ से कहे मैं करूं । सुवर्न की माला, उत्तम वस्त्र, सुंदरी,

कुंडल, नाना प्रकार के रत्न, मृगचर्म और सम्पूर्ण राज्य जो कुछ तुझ को चाहिये ले और मेरी भार्या हो, विवाहों में एक गन्धर्व विवाह है इस समय मेरे साथ तू वह विवाह करले ॥

शकुंतला ने कहा मेरा पिता जो वन में फल लेने गया हुआ है अभी आजाएगा और मेरा विवाह आपके संग अवश्य कर देगा ॥

राजा ने कहा मैं तुझ पर मोहित हो गया हुं और मेरा चित्त तुझ में ही लगा हुआ है देख आत्मा ही भाई है और आत्मा ही से आत्मा की गति है इस से तुझ को आत्मा का आत्मा दान धर्म से करना चाहिये ॥

मनु महाराज ने धर्म शास्त्र में आठ प्रकार के विवाह कहे हैं १ ब्रह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्राजापत्य, ५ आसुर, ६ गंधर्व, ७ राक्षस और ८ पैशाच, इन में से पहिले चार ब्राह्मण को करने चाहिये, पहले से छटे तक क्षत्री राजाओं को, वैश्य और शूद्रों को केवल असुर विवाह करना उचित है। मध्य के पांच विवाहों में तीन धर्म रूप और दो विवाह अधर्म रूप हैं, पिशाच और असुर विवाह कभी नहीं करना चाहिये ॥

हे शकुंतला मैंने तुझ से यह धर्म की गति कही है क्षत्रियों को गंधर्व और राक्षस विवाह करना धर्म रूप है। मैं इस समय काम के वश होरहा हुं और तू भी काम देव के वश में है हमारे तेरे गंधर्व विवाह होने में कुछ ऐसा दोष नहीं तू इस को मान ले ॥

शकुंतला ने कहा महाराज यदि यह धर्म का मार्ग है और

इस में कुच्छ अधर्म नहीं है तो मैं अपनी आत्मा का दान इस नियम पर कर सकती हुं कि जो पुत्र मेरे उत्पन्न होवे वह युवराज कीया जावे ॥

राजा ने कहा वहुत अच्छा ऐसा ही होगा ॥

तब राजा ने उस का हाथ पकड़ लीया और उस के साथ भोग कीया और कहा मैं तुझ को अपनी सेना भेज कर अपने राज मन्दिर में बुलवालूंगा और यह सोचता हुआ कि कराव ऋषि आकर क्या कहेंगे अपने नगर में पहुंचा ॥

जब कुच्छ काल पश्चात कराव जी अपने आश्रम में आए तो शकुंतला लज्जा के मारे पिता के सन्मुख नहीं गई ॥

कराव जी अपनी दिव्यदृष्टी से उन सब बातों को जान गए और शकुंतला को बुला कर कहा कि तैंने मेरा निरादर कर के एकांत में पुरुष के साथ भोग कीया है परन्तु इस में तैंने कुच्छ अधर्म नहीं कीया क्योंकि यदि क्षत्री पुरुष स्त्री काम के वश हो कर विना मंत्रों के गंधर्व विवाह कर लें तो उन का कोई दोष नहीं है राजा दुष्यंत तेरा पति हुआ है वह नरों में उत्तम धर्मात्मा और महात्मा है उस से तेरे एक बड़ा प्रतापी पुत्र होगा वह इस पृथ्वी का राज्य समुद्र की सीमा तक करेगा और उस चक्रवर्ती राजा की सेना सदा अप्रतिहत रहेगी ॥

तब शकुंतला ने ऋषि के हाथों से फल फूल ले लीये और उन को रख कर उन के चरण धोये और जब ऋषि अपने आसन पर बैठ गये तब बोली ॥

महाराज मैंने राजा दुष्यन्त को अपना पति कर लीया है

आप उस राजा और उस के मंत्री पर कृपा कीजीये ॥

कण्व ऋषिने कहा मैं उस के साथ तेरा सम्बन्ध होने से बड़ा प्रसन्न हुं अब तेरी जो इच्छा हो सो मांग ॥

शकुंतला ने केवल यही मांगा कि इस वंश के राजा सर्वत्र धर्मात्मा हों और अखंड राज्य करें ॥

पचीसवां अध्याय

—:०:—

शकुंतला के पुत्र होना, कण्व ऋषि का उस को दुष्यन्त के घर भेजना, राजा का उस को ग्रहण न करना, आकाश वाणी के होने पर राजा का उस को ग्रहण करना और उस के पुत्र को राज्य अभिषेक करना ॥

राजा दुष्यंत अपनी राजधानी में पहुंच कर शकुंतला को सर्वथा भूल गया, इधर काल व्यतीत होने पर शकुंतला को दीप्त अग्नि के समान बड़ा तेजस्वी पुत्र हुआ, कण्व ऋषी ने उसके जाति कर्म इत्यादि संस्कार विधि पूर्वक कीये, उस बालक की देही सिंह के समान थी, दांत उजले और चमकीले थे हाथों में शंख चक्र गदा और मत्स्य आदि रेखा पड़ी हुई थीं और वह देवताओं के पुत्रों के समान शीघ्र बड़ा होगया, बाल्यावस्था में ही वह सिंह, हाथी, बाराह, रीछ और भैंसों आदि को पकड़ कर ले आता और मुनि के

आश्रम के समीप वृक्षों के साथ उन को बांध रखता और कभी कभी उन पर चढ़ कर इधर उधर दौड़ता फिरता, वन के वासियों ने इस लीये उस का नाम सर्वदमन रख छोड़ा था॥

कण्व ऋषी ने उस के यह काम देख कर विचारा कि अब यह युवराज होने के योग्य होगया है उस ने अपने शिष्यों से कहा कि तुम शकुंतला को उस के पुत्र सहित राजा दुष्यन्त के हां छोड़ आओ, क्योंकि स्त्रियों का पिता के गृह में रहना कीर्ति, धर्म और शील का नाश करता है॥

शिष्य शकुंतला और उस के पुत्र को लेकर हस्तिनापुर को चल दीये और राजा के पास पहुंचा कर अपने आश्रम को लौट गये॥

शकुंतला ने न्याय के अनुसार राजा की पूजा की और कहा आप को स्मरण होगा कि कण्व ऋषी के आश्रम में मेरा और आप का संगम हुआ था और आप ने उस समय मेरे साथ यह प्रतिज्ञा की थी कि तेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा उस को युवराज करूंगा। सो यह पुत्र आप के वीर्य से मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है आप इस को युवराज कीजीये॥

राजा ने कहा मुझे याद नहीं कि मेरा तेरे साथ धर्म, काम और अर्थ से किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ था, हे दुष्टा तू कौन है यहां से चलीजा और जो कुच्छ तेरे मन में आवे सो कर॥

यह सुन कर शकुंतला को अति दुःख हुआ और वह

अचल सी हो गई, क्रोध से उस के नेत्र रक्त हो गये, होंठ फड़कने लगे और राजा की ओर तिरछी दृष्टी से देखने लगी और अपने भर्ता राजा को भले प्रकार पहचान कर अपने तप के तेज को धारण करके दुःख और क्रोध से बोली ॥

हे राजन् ! सारा वृत्तांत जानने पर भी आप प्राकृत जीवों के समान कहते हैं कि हम को कुछ याद नहीं आप का हृदय झूठ और सत्य को जानता होगा क्योंकि आप अपना अपमान करते हैं आप को उचित है कि धर्म को साक्षी करके ऐसी वात कहें जिस में कल्याण हो, जो मनुष्य अपनी कृत्य को भूल कर अन्यथा वात करता है वह सब पापों का कर्त्ता होता है, आप यह समझे बैठे हैं कि आप वहां अकेले थे और आप को वहां वचन देते हुये किसी ने नहीं देखा, परंतु आप यह नहीं जानते कि ईश्वर प्रमात्मा अंतर्यामी जो सदैव सब के हृदय में विराजमान रहता है सब कुछ जानता है, इस के अतिरिक्त सब देवता, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, जल, दिन, रात धर्म इत्यादि हर समय मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मों को देखते हैं और उनके साक्षी है, आप जो अपने कीये हुये कर्मों को न मान कर अपना अपमान करते हैं देवते आप का कल्याण नहीं करेंगे और इससे आप का आत्मा भी कल्याण कारक न होगा, मैं आप की पति व्रता स्त्री आप के पास आई हुई हूं आप सब के सन्मुख मेरा तिरस्कार करते हैं और मेरी विनती पर कुच्छ ध्यान नहीं देते क्या आप सुनते नहीं हैं ? यदि आप मेरी वात को न मानेंगे तो आप का शिर सौ टुकड़े होकर खिल जायगा ॥

हे राजन्! पुत्र स्त्री के आत्मा से उत्पन्न होता है और उस पुत्र के पिता और सब पित्रों को पुन नाम नरक से उद्धार करने से पुत्र कहते हैं ।

स्त्री वही है जो चार पुत्रों वाली और पति व्रता हो और अपने पति को प्राणों के समान चाहे। स्त्री मनुष्य की अर्धांगी (आधी देह) है अर्थ, धर्म और काम की दाता और संसार से तारण का मूल है जिन मनुष्यों के स्त्री होती है वे क्रियवान गृहस्थी आनन्द के करने वाले और लक्ष्मीवान होते हैं ॥

हे राजन्! अकेले में स्त्री ही मनुष्य की सखा होती है और यही दुःख को दूर कर के धर्म के कामों में अपने पति का हित करती है जिस स्त्री नहीं होती उस का कोई विश्वास नहीं करता। मनुष्य अपनी स्त्री से उत्पन्न हुये पुत्र को देख कर वैसा ही प्रसन्न होता है जैसे वह अपने मुख को दर्पण में देख कर आनन्द पाता है। मनुष्य दुःख और व्याधि से पीड़ित हो कर जब स्त्री को देखता है वह उन को भूल कर आनन्द में होजाता है। मनुष्य क्रोध में बैठा हुआ हो स्त्री के सन्मुख आने से वह क्रोध इस प्रकार से जाता रहता है जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धेरा जाता रहता है ॥

हे राजन्! स्त्रियां ही मनुष्य के जन्म का कारण हैं। यदि स्त्रियां न होतीं तो ऋषि, मुनि, महात्मा, शूर वीर, राजे महाराजे भी कदापि न होते। देखो मनुष्य धूल से लिपटे हुये अपने पुत्रों को गोद में लिटाते हैं क्या कारण है कि आप अपने इस पुत्र का निरादर करते हैं ॥

हे राजन्! जिस समय मैंने इस पुत्र को जन्म दिया था उस समय आकाश वाणी हुई थी कि यह बालक एक सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाला होगा ॥

हे राजन्! आप मुझ को छोड़ देंगे तो मैं उसी आश्रम में चली जाऊंगी परन्तु आप इस बालक को अवश्य अपने पास रखिये इसका त्याग करना आप को उचित नहीं ॥

राजा ने उत्तर दिया मैं तेरे पुत्र को नहीं जानता स्त्रियां सदैव झूठ बोला करती हैं तेरे कथन पर कौन विश्वास करेगा, तेरी माता निर्दयी और बंधकी है जिस ने तुझ को हिमालय पर्वत के शिखर पर छोड़ दिया था और तेरा पिता भी वैसा ही है जो अप्सरा को देख कर उस पर मोहित होगया, जो तेरा पिता महर्षियों में श्रेष्ठ है और तेरी माता अप्सराओं मे उत्तम है तो तू क्यों पुश्चली के समान बात करती है, तेरी यह बातें विश्वास के योग्य नहीं है। क्या ऐसी बातें मेरे सन्मुख करते हुये तुझे लज्जा नहीं आती, जा यहां से चली जा। कहां वह महर्षि विश्वामित्र, कहां वह अप्सरा मेनका और कहां तू दीन तपसिन, यह तेरा पुत्र जो इतना बलवान् और इतना बड़ा शरीर रखने वाला है इस थोड़े काल में क्यों कर ऐसा हो गया है। तू केवल दैव इच्छा और काम से मेनका के उत्पन्न हुई होगी, तेरी सब बातें झूठी हैं मैं उन्हें नहीं मानता, जहां तेरा जी चाहे चली जा ॥

शकुंतला ने कहा, हे राजन! तुम अपने बेल के समान छेद को नहीं देखते और दूसरे के सरसों के बराबर छेद पर

दृष्टि करके उस की निन्दा करते हो ॥

मैनका देवताओं में गिनी जाती है और देवता उस के साथ रहते हैं मेरा जन्म तुम से कहीं उत्तम है क्योंकि तुम वो केवल पृथ्वी पर चलने वाले हो और मैं आकाश में भी विचर सकती हुं। मैं महेन्द्र, कुवेर, यम और वरूण के घर भी जा सकती हुं। यह सच है जो मनुष्य कुरूप होता है जब तक वह अपने कुरूप को दर्पण में न देख ले अपने आप को दूसरे से रूपवान् समझता है। परन्तू जब वह उस को देख लेता है तब वह उस अंतर को जान लेता है। स्वरूवान दूसरों का कभी भी अपमान नहीं करते और जो दुर्वचन वोलते हैं, वह नीच हैं मूर्ख दूसरे की अच्छी बुरी वातों को सुन कर उन में से बुरी वातों को इस प्रकार ग्रहण कर लेता है जैसे कूकर दूसरी सब चीजों को छोड़ कर केवल विष्ट को खा जाता है ॥

ज्ञानी पुरुष उन्हीं वातों में से अच्छी वातें इस प्रकार निकाल लेता है जैसे हंस दूध से पानी को पृथक कर के दूध पी जाता है। दुष्ट जन दूसरों को गाली दे कर ऐसा ही प्रसन्न होता है जैसे साधू किसी को सत उपदेश दे कर आनन्द को पाता है, जैसे संत लोग अपने से वड़े को नमस्कार कर के प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार मूर्ख जन सज्जनों को गाली दे कर खुश होते हैं ॥

हे राजन्! जो मनुष्य दोष को नहीं समझते वह सदैव आनन्द में रहते हैं और मूर्ख जन दूसरों के दोष को ताका करते हैं और सारे जगत को अपना सा जानते हैं। भला इस से

बढ़ कर संसार में और क्या हँसी की बात होगी कि बुरा मनुष्य अच्छों को बुरा कहे। क्रोधी और अधर्मी मनुष्य से नास्तिक भी डरता है तो जो पुरुष आस्तिक है वह तो अवश्य ही डरेगा। जो पिता अपने पुत्र को छोड़ देता है देवता उस की लक्ष्मी को हर लेते हैं और वह परलोक में भी सुगति को नहीं पाता॥

हे राजन्! पित्रों ने भी कहा है कि पुत्र कुल और वंश का स्थापन करने वाला है इस कारण पुत्र कभी भी त्यागने योग्य नहीं है॥

मनु जी महाराज ने अपने धर्मशास्त्र में पांच प्रकार के पुत्र कहे हैं एक जो अपनी स्त्री से उत्पन्न हों, दूसरे जो गोद लीये जावें, तीसरे जो पुत्र भाव से लीये जावें, चौथे जिन का पालन कीया जावे और पाचवें जिन के उपनयन आदि संस्कार कीये जावें, पुत्र मन की प्रीति को बढ़ाते हैं और पित्रों को नरक से बचाते हैं इस कारण हे राजन्! आपको उचित है कि आप कदापि अपने पुत्र का त्याग न करें ऐसा कपट करना आप जैसे नरेन्द्र सिंह को योग्य नहीं॥

हे राजन् शास्त्रों में कथन है कि सौ कूओं से एक बावली, सौ बावली से एक यज्ञ और सौ यज्ञों से एक पुत्र और सौ पुत्रों से सत्य श्रेष्ट है, सौ अश्वमेध और सत्य बोलना इन दोनों के फलों को रख कर तराजू में तोला तो सत्य बोलना अधिक ठहरा, सब वेदों के जानने और सकल तीर्थों के करने से सत्य बोलना उत्तम है, संसार में सत्य के समान कोई

धर्म नहीं है, सत्य ही सब से बड़ा नीयम और व्रत है, आप को सत्य प्रण को छोड़ना उचित नहीं है, और यदि आप को असत्य ही से प्यार है तो मैं चली जाऊंगी मैं आप सरीखे असत्यवादी का संग नहीं करना चाहती, आप के परलोक गमन करने पर मेरा यह पुत्र सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करेगा ॥

यह कह कर शकुंतला तो चली गई और उसी समय यह अकाश वाणी हुई ॥

"हे राजा दुष्यंत माता केवल गर्भ के स्थापन करने का स्थान है और पिता पुत्र है जो जिस से उत्पन्न हुआ वह वही है तु शकुंतला का अपमान मत कर और अपने पुत्र को अपने पास रख कर उस का पालन कर क्योंकि अपने वीर्य से उत्पन्न हुआ २ पुत्र अपने पित्रों को यम लोक से छुड़ाता है शकुंतला ने सत्य कहा है यह गर्भ तेरा ही है और निश्चय पुत्र पिता की दूसरी देह होती है वह लोग बड़े मंदभागी होते हैं जो जीते पुत्र को त्याग कर आप जीते हैं हम आज्ञा देते हैं कि तुम इस अपने पुत्र को पालो और इस का नाम भरत रखो" ॥

राजा प्रसन्न हुआ और अपने मन्त्री और पुरोहित आदि से बोला कि क्या तुम लोगों ने भी देववाणी को सुना है? हम ने तो पहिले ही जान लिया था कि यह हमारा ही पुत्र है परंतु लोक निन्दा के भय से उस को ग्रहण नहीं कीया था अब इस के ग्रहण करने में हमें कोई दोष नहीं दीखता ॥

राजा ने अपने पुत्र को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण कीया और उस के जन्मादि का संस्कार करके उस को गोद में लीया

और उस का माथा चूम कर उस ने अपने हृदय से लगाया जिस से राजा को परम आनन्द हुआ ॥

तब राजा ने शकुंतला से आदर पूर्वक कहा ॥

"हे पत्नि मेरा तेरा सम्बन्ध लोक के परोक्ष में हुआ था मैंने जो कुछ तुझ को कहा है लोक भय से कहा है तू मुझे क्षमा कर और जो अनुचित बातें तूने मुझ को क्रोध में आकर कहीं हैं उन को मैं क्षमा करता हुं ॥

इस के पीछे राजा ने उस को अपनी प्यारी पटरानी कह कर सुन्दर वस्त्र भूषण और भोजन आदि दीये और उस अपने पुत्र का नाम भरत रख कर उसको युवराज बनाया" ॥

भरत बड़ा चक्रवर्ती राजा हुआ है उस ने अपने बल से सारी पृथ्वी के राजाओं को जीत कर अपने वश में कीया और बड़ा यश पाया ॥

इस राजा ने कण्व ऋषि द्वारा गोवितत और अश्वमेध यज्ञ कराये और बहुत सा धन कण्व ऋषि को दीया इसी राजा के नाम पर इस देश का नाम भरत है और जितने बड़े बड़े राजा आजतक इस देश में हुए हैं वह सब इसी के वंश में हुए हैं, बहुत से ब्राह्मण और देवता भी इस वंश में हुए हैं उन सब का वृत्तांत नहीं कीया जा सकता उन में से मुख्य २ वंश के चलाने वालों का कुच्छ वर्णन यहां लिखा जाता है ॥

छब्बीसवां अध्याय

—:०:—

दक्ष प्रजापति, वैवस्वतमनु, भरत, कुरू, अजमीढ़ यादव और कौरव आदि वंशों की उत्पत्ति ॥

प्राचेतस के दस बड़े तेजस्वी, महर्षि, संत और पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न हुये उन के मुख से उत्पन्न हुई अग्नि ने सब वनों को भस्म कर दीया। उन से दक्ष प्रजापति हुए और दक्ष से सारी प्रजा उत्पन्न हुई। वीरणी स्त्री से एक हज़ार बड़े तेज धारी पुत्र हुए उन को नारद जी ने मोक्ष विद्या और सांख्य ज्ञान पढ़ाया ॥

पुनः दक्ष के पचास पुत्री हुई जिस में से प्रजा उत्पन्न करने के लिये १० धर्मराज को १३ कश्यप जी को औ २७ चन्द्रमा को विवाह दीं। कश्यप जी की १३ स्त्रियों में से आदिति जो सब से बड़ी थी उस से इन्द्रादिक बारह आदित्य और विवस्वत उत्पन्न हुए और विवस्वत के यम राज पुत्र हुए। सूर्य के मनु और यम यह दो पुत्र भी हुए, उन में से मनु जी बड़े उत्तम बुद्धिवान और धर्मात्मा थे इन के वंश में उत्पन्न होने वाले मानव कहलाते हैं, ब्राह्मण और क्षत्री दोनों इन्हीं मनु जी से उत्पन्न हुए हैं। इन ब्राह्मणों ने वेदों को अंगों सहित पढ़ा ॥

१ वेनु, २ धृष्णु, ३ नरिष्यंत ४ नाभाग, ५ इक्ष्वाकु, ६ कारूष, ७ शर्याति, ८ प्रषध्र और ९ नाभाग ऋषि यह नौ क्षत्री राजा और दसवीं इला नाम पुत्री क्षत्रि कुल में हुए। पुरूरवा

ने तेरह समुद्रों के द्वीपों का राज्य कीया और अपने वल से अन्धा हो कर ब्राह्मणों के धन को छीन लीया जिन्हों ने बहुत कुच्छ हाय पुकार की परंतू उस ने कुच्छ न सुना सनत्कुमार आदि ऋषियों ने राजा को ब्राह्मणों के साथ ऐसा अत्याचार करने से वहुत रोका परंतू उस ने एक न मानी और वह उन के शाप से शीघ्र नष्ट हो गया ॥

यह राजा गन्धर्वलोक से अग्नि को लाया और तीन प्रकार के यज्ञों के लीये उस की स्थापना की ॥

इस राजा का समागम उर्वशी अप्सरा से हुआ जिस से इस के आयूधीमान, अभा वसु, दृढ़ायु, वनायु, शतायु और नहुष छे पुत्र हुये वृद्ध शर्मा, रातिगय, और अनेनस को स्वर्भानवी, और आयु के पुत्र कहते हैं ॥

राजा नहुष बड़ा वीर और पराक्रमी हुआ और उस ने वड़े धर्म से राज्य कीया, इस राजा के छे पुत्र यति ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव हुये इन में से यति तो योगाभ्यास में स्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि होगये और ययाति ने सारी पृथ्वी पर राज्य कीया इस के राज्य में धर्म का बहुत वल रहा और यज्ञों से पितरों और देवताओं की बड़ी भक्ती और पूजा हुई, इस राजा की दो स्त्रियें एक देवयानी और दुसरी शार्मिठी से चार पुत्र हुये, यदु और तर्वसु देवयानी से और दुह्य और पुरू शर्मिष्ठा से, यह चारों पुत्र बड़े पराक्रमी धनुर्धारी और गुणवान थे, राजा ययाति बहुत काल तक सुख के साथ राज्य करके वृद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ, राजा

ने एक दिन अपने चारों पुत्रों को बुला कर कहा कि बहुत यज्ञ करने के कारण शुक्र ने मुझ को शाप दीया है कि तू कामातुर होजा इस से मुझे काम देव पीड़ा देता है यदि तुम में से कोई एक अपनी जवानी देकर मेरा बुढ़ापा लले तो मैं उस को अपना सारा राज्य दे दूंगा तीन बड़े पुत्रों ने इस बात को न माना परंतू सब से छोटे चौथे पुरू नामी पुत्र ने कहा महाराज बहुत अच्छा आप मेरी जवानी ले कर भोग करीये और मैं आप का बुढ़ापा ले कर राज्य करूंगा ॥

राजा ने अपने तपो बल से अपने बुढ़ापे को अपने पुत्र पुरू के शरीर में प्रवेश कर दीया और उस की जवानी को आप ले लीया पुरू अपने पिता का बुढ़ापा ले कर राज्य कर ने लगा और ययाति उस की जवानी ले कर स्त्रियों में विहार करने लगा, राजा ने वन में बहुत सी स्त्रियों से भोग कीया और चैत्ररथ वन मे विश्वाची से भी भोग कीया परंतू उस का काम देव तृप्त नहीं हुआ तब राजा को ज्ञान हुआ कि यह काम देव बड़ा प्रबल है इस को कभी कोई इस प्रकार से नहीं जीत सकता जितना इस की ओर ध्यान दो उतना ही बढ़ता है इस को सब पृथ्वी पशु, कीट, पुरूप, स्त्री, आदि भी तृप्त नहीं कर सके जैसे अग्नि में घृत डालने से वह बढ़ती है इसी प्रकार इस की ओर ध्यान देने और भोग करने से यह बढ़ता है इस कारण उचित है कि मैं इस की ओर से चित्त को हटालूं ॥

मनुष्य ब्रह्म को तभी पाता है जब मन वाणी और कर्म से कभी कोई पाप नहीं करता, न वह किसी से भय करता है और न उस से कोई डरता है और न किसी से द्वेष और न ही

किसी की इच्छा करता है ऐसा विचार करते हुए राजा ने अपने मन को विषय की ओर से हटा लीया और अपने पुत्र से उस की जवानी देकर अपना बुढ़ापा लेकर और उस को राज्य देकर कहा कि तू मेरा पुत्र है तुझ से जो वंश होगा वह पौरव वंश कहलाऐगा ॥

यह कह कर राजा भृगुतुंग स्थान में जाकर तपस्या करने लगा और अनशन महाव्रत को करके अपनी स्त्री सहित स्वर्ग वास हुआ ॥

राजा जनमेजय ने कहा हे वैशंपायन जी राजा ययाति ने शुक्र की दुलर्भ कन्या को किस प्रकार पाया, मैं इस वृत्तात को विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूं ॥

वैशंपायन जी ने कहा हे राजन्! एक समय देवता और दैत्यों में तीनों लोक के राज्य करन का इच्छा से परस्पर बड़ा वैर बढ़ गया देवताओं ने दैत्यों को जीतने के लीयं बृहस्पति जी को और दैत्यों ने देवताओं की जय करने के लीये शुक्र जी को आचार्य बनाया, इन में बड़ा युद्ध हुआ और इस युद्ध में जो दैत्य मारे गये थे उन को शुक्र जी ने अपनी संजीवनी विद्या से जीवत कर लीया और वह पुनः देवताओं से युद्ध करने लग गये। जो देवता उस युद्ध में मारे गए उन को बृहस्पति जी जीवत न कर सके क्योंकि वह यह विद्या न जानते थे। इस से देवताओं को बड़ा दुःख हुआ और वह घबरा कर बृहस्पति जी के बड़े पुत्र कच के पास गये और कहा जिन दैत्यों को हम युद्ध में मार डालते हैं शुक्र जी उन को अपनी विद्या से जिला लेते हैं, सो आप कोई ऐसा उपाय करीये जिस से वह विद्या हाथ

आवे, हमारी सम्मति है कि तुम अभी युवक हो शुक्र के पास जाओ वह इस समय वृष पर्वा दैत्य के पास रहते हैं और दैत्यों की रक्षा करते हैं। उन की खूब सेवा करके उन से संजीवनी विद्या को सीख आओ हमें निश्चय है कि तुम अपने शील स्वभाव, चतुराई, मीठी बोली और धर्म से शुक्र और उन की पुत्री देवयानी को प्रसन्न करके संजीवनीविद्या सीख लोगे॥

कच ने देवताओं से कहा कि मैं ऐसा ही करूंगा और वह वहां से चल कर वृषपर्वा के पास जाकर शुक्र के पास पहुंचा और दंडवत करके कहा महाराज मैं अंगिरस ऋषि का पोता और वृहस्पति जी का पुत्र हुं आप के पास आप का शिष होने के लीये आया हुं। मैं शिष हो कर वहुत काल तक आप की सेवा करूंगा और यहां ही आप के पास ब्रह्म चर्य विधान को करूंगा॥

शुक्र जी ने कहा वहुत अच्छा तू पूजन योग्य है॥

कच वहां ठहर गया और शुक्र जी के उपदेश कीये हुये ब्रह्मचर्य व्रत को करने लगा और उस ने शुक्र जी और उन की कन्या देवयानी की अच्छी तरह सेवा की। कच ने अपनी युवावस्था में नाचने गाने वजाने और फल फूल आदि ला कर देने से देवयानी को वहुत प्रसन्न कर लीया था॥

देवयानी भी उस के साथ प्यार कर के एकांत में क्रीड़ा करने लगी, कच वहुत काल तक ऐसा करता रहा॥

एक दिन समय पाकर दैत्यों ने कच को वन में गाय चराते पाकर मार डाला और उसके शरीर के टुकड़े २ करके

कुत्तों और गीदड़ों को खिला दिये ॥

जब संध्या हुई और गायें बिना कच के घर को लौट आईं देवयानी ने संदेह करके शुक्र जी से कहा कि महाराज आप अग्नि होत्र कर चुके और सूर्य अस्त होगया अभी तक कच नहीं आया ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने उस को मार डाला है यदि वह न आया तो मैं भी अपने प्राण त्याग दूंगी ॥

शुक्र जी ने कहा तू घबरा मत मैं अभी कच को बुलाता हूं, यह कह कर उन्होंने संजीवनी विद्या के प्रयोग की समाप्ती पर कच को बुलया, वह सब जीवों का पेट फाड़ कर बाहर निकल आया ॥

देवयानी ने पूछा तू कहां गया था कच ने कहा मैं गायें चरा कर वन में एक वृक्ष के तले बैठा हुआ था कि एक ओर से कुच्छ दैत्य आगये उन्हों ने मुझ से पूछा कि तू कौन है मैंने अपना नाम और पता बतला दिया इस पर उन्हों ने मुझ को पकड़ कर मार डाला और मेरे शरीर के टुकड़े करके कुत्तों इत्यादि को खिला दीये । अब शुक्र महाराज जीकी संजीवनी विद्या की शक्ति से जीवत हो कर पुनः यहां आ गया हूं ॥

पहिले के समान कच फिर फल फूलों से देवयानी की सेवा करने लगा और देवयानी भी उस पर फिर प्रसन्न हो कर प्रेम पूर्वक उस के साथ एकांत में क्रीड़ा करने लगी ॥

फिर एक दिन देवयानी ने उस को वन से फूल लाने के लीये भेजा दैत्यों ने उस को वहां पहचान लीया उन्हों ने उस को मार कर पिष्ठ सा करके समुन्दर में डाल दीया ॥

जब देर होने पर वह न आया तो देवयानी ने फिर शुक्र जी से कहा जिन्हों ने उस को संजीवनी विद्या द्वारा पुनः बुलाया, बुलाते ही वह जल में से निकल कर चला आया और सब हाल कह सुनाया ॥

इस के पीछे दैत्यों ने तीसरी वेर कच को मार कर भस्म कर डाला और उस भस्म को वारूणी के साथ शुक्र जी को पिला दीया, जब समय हो चुकने पर वह न आया तब देवयानी ने शुक्र से फिर कहा कि मैने कच को फूल लाने को भेजा था वह अभी तक नहीं आया जान पड़ता है कि फिर उसे किसी ने मार डाला है। महाराज उस के विना मेरे प्राण भी नहीं बचेंगे ॥

शुक्र जी ने कहा हे देवयानी! कच मर कर अब प्रेत होगया है हमने उस को कई वार जिलाया वह वेर वेर मारा जाता है। तू क्यों इतना रोती और चीखती है, हमारे प्रभाव से तुझ को ब्राह्मण, इन्द्र सहित आवसु, अश्वनी कुमार, असुर सारे जगत के जीव नमस्कार करते हैं, कच अब नहीं जी सकता और कदापि जीवे भी तो पुनः मारा जावेगा ॥

देवयानी ने कहा कि वह ऋषि संतान है उस के मरने से ऋषि के कुल का नष्ट होता है मैं उस के लीये क्यों कर चिंता न करूं, इस के अतिरिक्त वह ब्रह्मचारी, तपोधन का रखने वाला, सब कामों में चतुर और मेरा परम प्यारा है। यदि वह नहीं जीवेगा तो जिस लोक को वह जावेगा मैं भी

उसी लोक को चली जाऊंगी ॥

देवयानी की उक्त बात सुन कर शुक्र जी ने दैत्यों को बुलाया और कहा कि तुम लोग हम से भी द्वेष रखते हो और हमारे शिष्यों को मार डालते हो. ऐसा जान पड़ता है कि तुम लोग हम को भी अपब्रह्मंश कीया चाहते हो जैसा आप नित्य खोटे और रौद्र कर्म कीया करते हो वैसे हम से कराया चाहते हो ऐसा पाप अब आगे मत होवे क्योंकि ब्रह्म हत्या तो इन्द्र को भी जला देती है ॥

तब शुक्र जी ने कच को बुलाया, वह धीरे से शुक्र जी के पेट में बोला, शुक्र जीने पूछा हमारे पेट में तू किस प्रकार चला गया है ॥

कच बोला, महाराज दैत्यों ने मुझ को मार कर के मद्य में मिला कर आप को पिला दिया था, आप की कृपा से मुझे सब कुछ याद है परंतु पेट से निकलने से आपके मरने और आप के तप के क्षय होने का भय है और उस के भीतर रहने से मुझ को बड़ा कष्ट है, इस से बढ़ कर आप में देवी, ब्राह्मी और असुरा तीनों माया स्थित हैं मैं क्यों कर उन को उल्लंघन कर सकता हूं ॥

शुक्र जी ने देवयानी से कहा अब मैं क्या करूं कच विना मेरे मरे मेरे पेट से नहीं निकल सकता ॥

देवयानी ने कहा कच का मरना और आप का उपघात यह दोनों मुझ को अग्नि के समान जलाते हैं दोनों में से मेरा कल्याण किसी में नहीं ॥

शुक्र जी ने कच से कहा कि जो तू कच रूपी इन्द्र नहीं है तो मैं तुझ को संजीवनी विद्या देता हुं तू पेट से निकल कर मुझ को जीवत करलीजो तू मेरा शिष है और मैं तेरा गुरू हुं विश्वास घात मत कीजीयो मेरे पेट में गया हुआ ब्राह्मण के विना दूसरा कोई नहीं निकल सकता ॥

कच संजीवनी विद्या पाकर अपने गुरू शुक्र जी के पेट को फाड़ कर पूर्ण मासी के चांद के समान वाहिर निकल आया और शुक्र जी को उस विद्या द्वारा जीवत करके उन को नमस्कार कीया और विनय पूर्वक बोला ॥

महाराज मुझ को आप ने संजीवनी विद्या दी है आप मेरे माता पिता के समान हैं मैं आप के साथ कभी द्रोह नहीं करूंगा। क्योंकि गुरू का निरादर करने वाले और उस के साथ द्रोह करने वाले नरक गामी होते हैं ॥

इस समय शुक्र जी ने सुरापान को जिस से उन का ज्ञान नष्ट हो गया था और वह ठगाई में आ गये थे याद कीया और वड़े क्रोधित हो कर कहा कि मैं सव ब्राह्मण और अन्य लोगों को सुना कर यह मर्यादा वांधता हुं कि आज के दिन से जो ब्राह्मण मद्य पान करेगा वह धर्म रहत हो कर इस लोक में निंदित कीया जावेगा और उस को ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा ॥

पुनः शुक्र जी ने सव दानवों को बुला कर कहा कि कच ब्राह्मण जो हमारे पास रहता है महात्मा और ब्रह्मभूत है

और मुझ से संजीवनी विद्या पा कर मेरे तुल्य प्रभावशाली है ॥

यह सुन कर सब दानव आश्चर्य करते हुए अपने अपने घरों को चल दीये और कच ने भी वहां रह कर नियत समय पूरा करके अपने घर जाने की आज्ञा मांगी ॥

सत्ताईसवां अध्याय

—:०:—

देवयानी का कच को पाणीग्रहण करने को कहना, कच का न मानना, दोनों का आपस में शाप देना और देवयानी और शर्मिष्ठा का विवाह ॥

जब कच घर को जाने लगे तो देवयानी ने उन को रोक लीया और कहा तुम अंगिरस ऋषि के पौत्र और बृहस्पति जी के पुत्र स्वयं तपस्वी, तेजस्वी, और विद्वान हो आप के पिता और पितामह हमारे पिता के मान्य हैं मैं आप को एक बात कहना चाहती हुं आप उस को अपने व्रत के समय मेरे वर्ताव पर ध्यान कर के मान लो ॥

वह बात यह है कि मेरी प्रीति को जो मैं तुम से रखती हुं पूर्ण करने के लीये मेरा पाणी ग्रहण करो ॥

कच ने कहा हे देवयानी तू मेरे गुरू की पुत्री है और गुरू जी को प्राणों से अधिक प्यारी है मेरे लीए जैसे गुरू जी महाराज पूज्य और मान्य हैं वैसे ही तू भी पूज्यनीय है ॥

इस कारण तुमे मुझ को ऐसी बात न कहनी चाहिए ।!

देवयानी ने कहा कि जैसे तुम्हारे पितामहा मेरे पिता के मान्य हैं वैसे ही तुम भी मेरे मान्य हो, जब दैत्यों ने तुम को बार बार मार डाला था मन तुम को जिलाने के लीए (उस समय) जो जो काम कीए थे और जो प्रीति मुझ को तुम से है इन सब को याद करो और मुझ निर अपराध का त्याग मत करो ॥

कच बोला तू मुझ से वह काम कराना चाहती है जो मेरे करने के योग्य नहीं है तू मेरे लीए गुरू से भी अधिक माननीय है कारण यह कि गुरू पिता होता है इस से तू मेरी भग्नि है मैं तेरे पास बहुत सुख से रहा हूं अब तू मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे जाने की आज्ञा दे और सदैव मुझ को धर्म से याद कर ॥

देवयानी ने कहा तू मुझ को धर्म और कामार्थ में मांगती हुई को त्याग करता है इस कारण तेरी विद्या सफल न होगी ॥

कच ने कहा देवयानी ! तू ने मुझ को कामासक्त होकर शाप दीया है तुझे कदापि ऐसा न करना चाहीये था मैंने जो कुछ तुम को कहा था वह सारा धर्मानुकूल था। मुझे ऐसा काम करने की गुरू जी ने भी आज्ञा नदी थी तैंने यह शाप मुझ निर्दोष को धर्म के विरुद्ध अपनी इच्छा से दीया है मैं भी शाप देता हूं कि तुझ को प्राणी ग्रहण के लीये ऋषि पुत्र नहीं मिलेगा। यह विद्या मुझ को सफल न होगी तो जिन को मैं सिखलाऊंगा उन को तो फली भूत हो जा ॥

यह कह कर कच जी चल दीये और स्वर्ग में अपने पिता

के घर पहुंच गये वहां आप की राह इन्द्रादि देख रहे थे उन्हों ने कहा तुम ने हमारा बड़ा काम कीया है संसार में तुम्हारा यश होगा और यज्ञों में तुम्हें भाग भी मिला करेगा ॥

सब देवताओं ने कच से संजीवनी विद्या सीख ली और कृतार्थ रूप और मरने से निर्भय होकर इन्द्र के पास गये और उस को कहा ।

महाराज अब पराक्रम करने का समय है चल कर सब शत्रुओं को मार डालना चाहिए ॥

इन्द्र सब देवतों के साथ वहां से चले रासता में एक सरोवर पर जिस में बहुत सी स्त्रियें स्नान कर रही थीं उन की दृष्टी पड़ी इन्द्र ने वायू होकर उन स्त्रियों के वस्त्रों को उड़ा दिया जब वह जल से बाहर आई उन्हों ने शीघ्रता में जो वस्त्र जिस के हाथ आया वही पहन लीया देवयानी के वस्त्र वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा ने पहन लिये इस कारण दोनों में कलह होने लगी ॥

देवयानी ने कहा हे शर्मिष्ठा शिष्य हो कर तुम ने मेरे वस्त्रों को क्यों पहन लीया है तेरे लीये यह अच्छी बात नहीं ॥

शर्मिष्ठा ने कहा तेरा पिता नीचे खड़ा हो कर नौकरों के समान मेरे पिता की जो बैठा रहता है या सोया रहता है स्तुति कीया करता है मुझ में और तुझ में बड़ा अंतर है, तू भिखारी दान लेने वाले और स्तुति करने वाले की बेटी और मैं स्तूयमान दाता और कभी किसी से कुछ न लेने वाले की

पुत्री हूं, री भिखारिन चाहे तू रो, छाती पीट या क्रोध कर, मैं तुझ को कुच्छ नहीं जानती तू विना शस्त्र और निर्धन हो कर मुसायुध से वैर बांधती है॥

शर्मिष्ठा ने क्रोध में आकर देवयानी को कुयें में डाल दीया और यह विचार कर कि वह मर गई है अपने घर को चली गई॥

इधर से राजा ययाति जो उस वन में शिकार खेल रहे थे प्यास बुझाने के लीये उस कूंये पर पानी लेने के वास्ते आये और उस परम सुन्द्र कन्या को उस में देख कर उस से पूच्छा कि तू कौन है और इस घास फूस से भरे हुये कूंए में क्यों पड़ी है॥

देवयानी ने कहा मैं शुक्र जी की जो देवताओं से मारे हुये दैत्यों को जिला देते हैं बेटी हुं मेरे पिता को मेरी इस दशा की खबर नहीं है, हे राजन्! तुम बड़े कुलीन पराक्रमी और यशस्वी हो मेरे दाहिने हाथ को पकड़ कर मुझे इस कूंएं में से निकाललो॥

राजा ययाति ने उस को ब्राह्मणी जान कर दाहिना हाथ पकड़ कर उस कूंए से वाहर निकाल दीया और शीघ्र अपने घर को चल दिया॥

जब राजा चला गया तो देवयानी ने अपनी दासी घूर्णिका को जो वहां पहिले से आगई थी कहा कि तू मेरे पिता के पास जा और उस को यह सारा वृत्तांत कह दे और यह भी कह दे कि मैं अब वृषपर्वा के नगर में जाकर नहीं रहुंगी॥

पूर्णिका दासी उदास हो कर शुक्र जी के पास आई और वन में देवयानी और शर्मिष्ठा की लड़ाई, देवयानी के कूप में डाले जाने और पुनः राजा ययाति से निकाले जाने का कुल वृत्तांत कह सुनाया और देवयानी का संदेसा भी शुक्र जी को दे दीया ॥

शुक्र जी इस हाल को सुन कर बहुत दुःखी हुए और वन में जाकर अपनी पुत्री से मिले और उस को कहा ॥

मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार दुःख और सुख पाता है तैंने कोई अपराध किया होगा जिस से तेरी यह गति हुई है॥

देवयानी ने कहा कि मैंने कुछ अपराध कीया या न कीया परन्तु वृषपर्वा दैत्य की बेटी शर्मिष्ठा ने जो बात मुझ को कही है वह आप सुन लीजिये मैं कहती हुं ॥

शर्मिष्ठा ने बड़े क्रोध से नेत्र लाल कर करके बड़े घमण्ड से मुझ को बार बार कहा कि तू भिखारी, स्तुति करने वाले और दान लेने वाले की बेटी है और मैं स्तूयमान, दाता और राजा की पुत्री हुं सो हे पिता यदि मैं ऐसी ही हुं जैसी कि शर्मिष्ठा ने मुझे कहा है तो मैं शर्मिष्ठा को प्रसन्न करूंगी और उस को सखी भाव से देखूंगी ॥

शुक्र जी ने कहा बेटी तू स्तुति करने वाले और दान लेने वाले की बेटी नहीं वरन स्तूयमान की बेटी है तेरे पिता की हर कोई स्तुति करता है, वृषपर्वा, इन्द्र और राजा ययाति इस बात को भले प्रकार जानते हैं वह जानते हैं कि मेरा ऐश्वर्य, बल निर्द्वंद्व और अचिन्त्य ब्रह्म है, ब्रह्मा जी ने हम से

कहा हुआ है कि स्वर्ग और पृथ्वी में जो वस्तू दीखती हैं उस के तुम ईश्वर हो हम ही पृथ्वी पर जल वर्षा कर सब औषधियों को पुष्ट करते हैं ॥

अट्ठाईसवां अध्याय

—:०:—

शुक्र जी का देवयानी को क्रोध न करने की शिक्षा देना, आगे से उस का शुक्र जी को उत्तर देना और शर्मिष्ठा का देवयानी की दासी बनना ॥

शुक्र जी ने कहा हे बेटी ! जो मनुष्य दूसरों के कहे हुए कटु वचनों को सहन कर लेता है और अपने क्रोध को घोड़े के समान रोक कर उस को शांत करता है वह सारे जगत को जीतने वाला होता है, हे पुत्री ! हर महीने में यज्ञ करने वाले और कभी क्रोध न करने वाले इन दोनों में से क्रोध न करने वाला उत्तम ठहरेगा। जब दो बालक आपस में लड़ते हैं तो उन के माता पिता उन के साथ किसी प्रकार का भी बर्ताव नहीं करते क्योंकि बालक बल अबल को नहीं जानते ॥

देवयानी ने कहा कि यद्यपि मैं अभी बालका हुं परंतू मैं सब धर्म और क्रोध के करनें न करने के बल अबल को जानती हुं, जब शिष्य अपने धर्म के विपरीत काम करने लगे तब शिष्य

के अपराध को क्षमा करने और उन बुरे चाल के मनुष्यों में रहना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥

ज्ञानी लोग अभिजनों की निन्दा करने वाले मनुष्यों में रहना अच्छा नहीं जानते परंतु इस के उलट ही को अच्छा समझते हैं। शर्मिष्ठा की बातें अभी तक मेरे हृदय को अग्नि के समान जला रही हैं। निर्धनों को धनवान् शत्रु की सेवा करना किसी प्रकार से भी अच्छा नहीं है, तीन लोकों में इस से बढ़ कर और कोई बुराई नहीं है इस से मरना अच्छा है ॥

शुक्र जी देवयानी की बात को सुन कर क्रोध से भरे हुए वृषपर्वा के पास गये और उग्र स्वरूप हो कर उस से बोले ॥

क्या तुम नहीं जानते कि अधर्म करने का फल शीघ्र नहीं मिलता किंतु अधर्म करने वाले की जड़ को वह शनै शनै काटता जाता है जिन कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिलता पुनर्जन्म में उन का फल भुगतना पड़ता है और जो पुनर्जन्म में भी न भुगते जावें वह अन्य जन्मों में भुगतने पड़ते हैं तात्पर्य अधर्म कीये हुए का फल अवश्य भुगतना पड़ता है। तुमने पहिले हमारे कच नाम शिष्य को जो गुरुभक्त, पुण्यात्मा, सेवक और उत्तम ब्राह्मण था मार कर हमें खिला दीया और अब तुम्हारी पुत्री शर्मिष्ठा ने हमारी पुत्री देवयानी का अपमान कीया है हम तुम को भाईयों सहित छोड़ कर अब चले जावेंगे और तुम्हारे देश में नहीं रहेंगे तुम अपने कीये हुए अपराध को नहीं मानते और हम को झूठा समझते हो ॥

वृषपर्वा ने कहा मैं आप को झूठा और अधर्मी कभी नहीं समझता आप तो धर्मात्मा और सत्यवादी हैं आप मुझ से अप्रसन्न न हुजीये, यदि आप हम को छोड़ कर चले जावेंगे तो हमारा ठिकाना कहीं नहीं हम लोग भी समुद्र में डूब मरेंगे ॥

शुक्र जी ने कहा तुम चाहे समुद्र में डूबो चाहे कहीं जाओ मैं अपनी प्राण प्यारी पुत्री देवयानी का अपमान नहीं देख सकता यदि तुम ने मुझ को अपने पास रखना है तो जैसे हो सके देवयानी को प्रसन्न करो उस की प्रसन्नता में मेरी प्रसन्नता है, मेरा जीवन भी उसी के हर्ष में है मैं तुम्हारी कुशलता वैसे ही चाहता हूं जैसे वृहस्पति जी इन्द्र आदि देवताओं की चाहते हैं ॥

वृषपर्वा ने कहा महाराज असुरों का जो कुच्छ धन, धान्य, हाथी, घोड़े आदि पृथ्वी पर हैं, उस सब के और सब दैत्यों के आप ही ईश्वर हैं ॥

शुक्र जी ने कहा यदि ऐसा ही है तो तुम देवयानी के पास जाओ और जिस प्रकार भी वह प्रसन्न हो उस को प्रसन्न करो ॥

वृषपर्वा और शुक्र जी उसी समय देवयानी के पास गये और शुक्र जी ने सारी वार्तालाप जो वृषपर्वा की उन के साथ हुई थी उसको कह सुनाई ॥

देवयानी ने कहा कि अच्छा हो कि यह सारी बात दैत्यों का राजा अपने मुख से मुझ को कहे ॥

वृषपर्वा दैत्यों के राजा ने कहा देवयानी दुर्लभ से

दुर्लभ पदार्थ जो तू मागेगी मैं तुझ को दूंगा, तू प्रसन्न हो और क्रोध को छोड़ ॥

देवयानी ने कहा मैं यह चाहती हूं कि तेरी पुत्री शर्मिष्ठा अपनी हज़ार दासीयों सहित मेरी दासी बन के मेरे पास रहे और जहां मुझ को मेरा पिता देवे वह भी मेरे साथ दासी बन कर अपनी दासिओं को साथ लेकर जावे ॥

उसी समय वृषपर्वा ने धात्री को आज्ञा दी कि जाओ शर्मिष्ठा को शीघ्र यहां ले आओ और उस से कहो कि देवयानी जो कुच्छ कहे वह करे ॥

धात्री ने शर्मिष्ठा के पास जाकर उस को कहा कि शुक्र जी देवयानी के कारण तेरे पिता और भाई बन्धुओं को छोड़ कर जाते हैं यदि तू अपनी कुल का हित चाहती है तो देवयानी के पास जा और जो कुछ करने के लीए तुझे वह कहे सो कर ॥

शर्मिष्ठा ने कहा मैं देवयानी के पास जाती हूं और जो कुच्छ आज्ञा वह करेगी मैं उस को मानूंगी, शुक्र जी न जावें यहीं रहें ॥

शर्मिष्ठा अपनी हज़ार दासीयों को ले कर पालकी में बैठ कर नगर से बाहर गई और देवयानी के पास पहुंच कर कहा मैं अपने पिता की आज्ञा से तेरे पास आई हूं जो कुछ तू कहेगी मैं करूंगी और जहां तेरा पिता तुझ को देगा मैं दासी बन कर अपनी सारी दासियों सहित तेरे साथ जाऊंगी ॥

देवयानी ने कहा तू तो स्तुयमान की बेटी है और मैं भीख मांगने वाले, दान लेने वाले और स्तुती करने वाले की पुत्री हुं तू मेरी दासी क्यों कर बनगी ॥

शर्मिष्ठा ने कहा मैं जाती भाईयों के हित के लीए तेरी दासी हो कर जहां तेरा पिता तुझे देगा वहां ही तेरे साथ जाऊंगी ॥

शर्मिष्ठा के दासी होने की प्रतिज्ञा करने पर देवयानी ने कहा । मैं अब प्रसन्न हो कर नगर में चलती हु आप का विद्या बल और विज्ञान नश्चय सफल है ॥

शुक्र जी भी अपनी पुत्री को प्रसन्न देख कर उस के साथ नगर को गये ॥

उनतीसवां अध्याय

—:०:—

राजा ययाति का देवयानी से विवाह ॥

समय पाकर एक दिन देवयानी और शर्मिष्ठा हज़ारों दासीयों सहित उसी वन में गई और वहा क्रीड़ा करती और फल फूल खाती इधर उधर विचर रही थीं कि उधर से राजा ययाति शिकार खेलता हुआ प्यास बुझाने के लीये आ निकला और देवयानी और शर्मिष्ठा आदि सब स्त्रियों को देखा । उस समय देवयानी परम सुन्द्र रूप धारण कीये हुये मुसकराती हुई हज़ारों दासीयों के बीच में बैठी हुई थी और शर्मिष्ठा उस

की सेवा कर रही थी ॥

राजा ययाती ने उनके समीप जाकर कहा कि यह जो दो अति सुन्दर कन्यायें सहस्त्र दूसरी कन्याओं के मध्य में बैठी हुई हैं मैं उन दोनों के गोत्र और नाम सुना चाहता हुं ॥

देवयानी नें कहा—मेरा नाम देवयानी है और मैं दैत्यों के गुरू शुक्र जी की कन्या हूं और वह दैत्यों के राजा वृपपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा नाम है, वह मेरी दासी है जहां में जाऊंगी वह मेरे साथ जायेगी ॥

राजा ने कहा कि यह राजपुत्री तेरी दासी क्योंकर बनी ॥

देवयानी ने उत्तर दीया आप को इस के पूछने में क्या लाभ इसकी एक विचित्र कथा है, कर्मों की गति न्यारी होती है यह उस के कर्मों का फल है, आपका रूप और वेप राजाओं का सा प्रतीत होता है और बोली ब्राह्मणों की सी जान पड़ती है आप अपना नाम और गोत्र बतलाईये और यह भी बतलाईये कि आप कहां से अब आरहे हैं ॥

राजा ने कहा हमारा नाम ययाति है हम राजा नहुप के पुत्र हैं हमने ब्रह्मचर्ज को पूर्ण करके सम्पूर्ण वेद को पढ़ा है और हम शिकार खेलते हुए प्यास के बुझाने के लीये यहां आए हैं ॥

देवयानी ने कहा आप मेरा पाणी ग्रहण कीजिये और मैं इन सहस्त्र दासीओं और शर्मिष्ठा सहित आप के आधीन हुं ॥

राजा ने कहा देवयानी तू शुक्र जी की पुत्री है मैं तेरे साथ विवाह करने के योग्य नहीं ॥

देवयानी । ब्राह्मणों से क्षत्री उत्पन्न हुए हैं और ब्राह्मण और क्षत्री दोनों मिले हुए भी हैं आप तो ऋषि के समान हैं और ऋषि पुत्र हैं । आप को मेरा पाणी ग्रहण करना अनुचित नहीं है ॥

राजा-यूं तो चारों वर्ण ब्रह्मा जी की एक ही देह से उत्पन्न हुए हैं परंतू धर्म चारों के भिन्न भिन्न हैं ब्राह्मण सब से श्रेष्ठ हैं ॥

देवयानी-पाणी ग्रहण का धर्म यह है कि जो सब से पहिले हाथ पकड़े वही पति होता है आपने ही सब से पहले कूप में से निकालते हुए मेरा हाथ पकड़ा था मैं आप से ही विवाह करूंगी, मैं तपस्विन हुं अब कोई दूसरा मुझ से विवाह नहीं कर सकता ॥

राजा-ब्राह्मण से विषधर सर्प और अग्नि से भी अधिक डरना चाहिये क्योंकि सर्प के काटने, हत्यार के लगने और विष के सेवन से एक ही आदमी मरता है परंतू ब्राह्मण के कोप से सारा देश नष्ट हो जाता है, इस कारण मैं ब्राह्मण से सब से अधिक डरता हुं हां यदि तेरा पिता प्रसन्न हो कर तुझ को मेरे साथ व्याह दे तो मुझ को इस में कोई उज़र न होगा ॥

देवयानी-आप तभी विवाह करें जब मेरा पिता आप को

मुझे देवे परंपु युं भी विवाह करने में आप को कोई दोष नहीं हो सकता क्योंकि मुझ से तुम विवाह की इच्छा नहीं करते वरन मैं तुम से विवाह करना चाहती हूं ॥

देवयानी ने धात्री को उसी समय पिता की ओर भेज कर उन्हें वहां बुला लीया, उन के आने पर राजा ने उन को दण्डवत की ॥

देवयानी ने कहा पिता जी! यही राजा ययाति हैं जिन्हों ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझ को कूएं से निकाल कर मेरे प्राण बचाये थे मैं इन से ही विवाह करूंगी आप मुझे राजा जी को दे दीजीये ॥

शुक्र जी ने कहा, हे राजा मैं अपनी यह प्यारी पुत्री आप को देता हूं आप इसको ग्रहण कीजीए ॥

राजा ने कहा महाराज! ऐसा कीजीए जिस से वर्णशंकर के उत्पन्न होने का दोष मुझ पर न आवे ॥

शुक्र जी ने कहा मैं तुम को अधर्म से छुड़ाता हुं तुम अपनी इच्छानुकूल मुझ से वर मांगो और देवयानी से विधि पूर्वक विवाह कर के प्रति पूर्वक रहो। इस शर्मिष्ठा का भरण पोषण भी अच्छी तरह से करना पर इस के साथ सोना मत॥

राजा ययाती देवयानी को विवाह कर शर्मिष्ठा और उस की सहस्र दासीओं और बहुत सा दहेज लेकर अपने नगर को चले आये ॥

तीसवां अध्याय

—:०:—

देवयानी और शर्मिष्ठा के राजा ययाति से एक एक पुत्र होना ॥

राजा ने देवयानी को तो राज मंदिरों में रक्खा और उस की सम्मति से शर्मिष्ठा को उस की दो सहस्र दासीओं सहित अशोक वटिकों के पास एक घर में वास दीया ॥

शर्मिष्ठा के भोजन आदि का पूरा पूरा प्रबन्ध कीया गया और वह वहाँ आनन्द पूर्वक रहने लगी ॥

इधर देवयानी को समय पाकर मासिक धर्म होने पर गर्भ ठहरा जिस से उस के पहिला पुत्र उत्पन्न हूआ ॥

उधर शर्मिष्ठा भी जवान हो गई और ऋतू काल होने पर वह विचारने लगी कि मेरा अभी तक किसी से विवाह नहीं हुआ अब ऐसा करना चाहिये कि मेरा ऋतु वती होना व्यर्थ न जावे ॥

देवयानी के हां तो पुत्र भी हो गया है और मेरी युवा अवस्था यूं ही जा रही है अच्छा हो कि किसी समय राजा के यहां अकेले आने पर मैं भी उन से कहुं कि मुझे भी वह विवाह लें ॥

दैवयोग से एक दिन राजा ययाति शर्मिष्ठा को देखने के

लीये अशोक वाटिका में गये। शर्मिष्ठा ने उन को अकेले देख कर हाथ बांध कर कहा। महाराज आप के ग्रह की स्त्रियों को चन्द्र, इन्द्र, विष्णु, यम और वरुण भी नहीं देख सकते हैं आप मेरे भी रूप कुल को और शील स्वभाव को जानते हैं मैं आप से प्रसन्नता पूर्वक वीर्य दान मांगती हुं ॥

राजा ने कहा हे शर्मिष्ठा मैं तेरा शील स्वभाव और कुल इत्यादि को अच्छी तरह से जानता हुं तेरे रूप में भी किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है परंतु देवयानी के विवाह के समय उस के पिता ने मुझे कहा था कि शर्मिष्ठा के साथ तुम कभी मत सोना इस कारण मुझे यह काम करना उचित नहीं ॥

शर्मिष्ठा ने कहा हे राजन! क्रीड़ा, स्त्री के पास, प्राण के भय में, विवाह और जब सब धन जाता हो इन पांच दिशाओं मे झूठ बोलने से पाप नहीं होता। जो मनुष्य साक्षी हो और पूछने पर किसी बात को मिथ्या जान कर झूठ बोले तो वह पतित हो कर नरक में पड़ता है ॥

राजा ने कहा राजा प्रजा को शिक्षा देने वाला होता है इस कारण जो राजा झूठ बोलता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। मैं दुख में पड़ने पर भी झूठ नहीं बोलना चाहता ॥

शर्मिष्ठा ने कहा हे राजन! सखीयां बहिनें होती हैं और अपने और अपनी सखी के पति दोनो एक ही होते हैं आप मेरी सखी के पति हैं इस कारण मेरे भी स्वामी हैं ॥

राजा ने कहा कि हमारा व्रत है कि हम से जो कोई

मनुष्य कुछ मांगता है उस को हम नहीं देते हैं तू भी जो चाहती है मांग हम देंगे ॥

शर्मिष्ठा ने कहा मैं चाहती हुं कि आप मुझे अधर्म से बचावें यदि आप से मेरे पुत्र होंगे तो मैं अच्छे धर्म को करूंगी । हे राजन् ! स्त्री, दास और पुत्र यह तीनों अधन कहे जाते हैं इन के पास जो कुछ होता है वह उस का होता है जिस के पास वह हों । मैं देवयानी की दासी हुं और वह आप की स्त्री है इस से मैं भी आप ही की हुं आप को चाहिये कि मुझ को देवयानी के समान प्रीति से रक्खें ॥

राजा ने कहा तू सत्य कहती है और उस का हाथ पकड़ कर उस को गले से लगा लीया और बड़े आनन्द में हो दोनों ने संगम कीया । इस संगम से शर्मिष्ठा को गर्भ ठहर गया और समय व्यतीत होने पर देवताओं के कुमारों के समान उस के हां एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

एकतीसवां अध्याय

—:o:—

शर्मिष्ठा से पुत्र होने पर देवयानी का क्रोधित होकर अपने पिता के पास जाना, उन का राजा ययाति को वृद्ध होजाने का शाप देना, और राजा का अपने सब से छोटे पुत्र से जवानी को बदलना ॥

देवयानी ने जब शर्मिष्ठा के हां पुत्र होने का हाल सुना

तो चकित सी रह गई और उस के पास जाकर पूछा कि तूने काम के वश हो कर यह पुत्र किस से लीया है। शर्मिष्ठा ने कहा मेरे यह पुत्र एक महात्मा वेद के जानने वाले ऋषि से उत्पन्न हुआ है उस से मैंने धर्म्म अनुकूल वीर्य की याचना की थी। देवयानी ने कहा यह बात तो अनुचित नहीं परंतू तू उस महात्मा का नाम और गोत्र बता॥

उस ने कहा कि यदि यह पुत्र तुझ को ब्राह्मण से हुआ है तो मैं भी प्रसन्न हुं और यह दोनों हंसती खेलती अपने अपने घरों को चली गईं॥

यदु और तुर्वसु दो पुत्र देवयानी के हो गये और शर्मिष्ठा के द्रुह्यु अनु और पुरू तीन पुत्र हुए॥

समय पाकर एक दिन देवयानी राजा के साथ वन को गई और शर्मिष्ठा के पुत्रों को खेलते हुए देख कर अचम्भे में आ गई और राजा से पूछा कि यह किस के बालक हैं, इन का रूप और तेज तो आप के सदृश है॥

देवयानी ने उन लड़कों को अपने पास बुला कर उन से पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है और तुम किस के पुत्र हो ?

उन लड़कों ने राजा की ओर उंगली करके कहा कि यह हमारे पिता हैं और हमारी माता का नाम शर्मिष्ठा है॥

लड़के माता पिता का नाम बतला कर दौड़ कर राजा के पास आए परंतु राजा ने देवयानी के भय से उन को गोद में न लीया और वह रोते हुएं अपनी माता के पास चले गए,

और राजा इस बात से बहुत लज्जित हुए ॥

देवयानी ने शर्मिष्ठा से कहा कि तूने मुझ से झूठ बोला और कहा कि यह पुत्र एक वेद के जानने वाले ब्राह्मण के हैं मेरी दासी होकर तूने यह काम मेरी आज्ञा के बिना क्यों कीया है ॥

शर्मिष्ठा ने कहा मैंने तुम से ऋषी का नाम लीया था सो सत्य है और मैं तुम से डरती क्यों, मैंने धर्म और न्याय के विरुद्ध कोई काम नहीं कीया, जब से तुमने राजा में पति का भाव माना था तभी से मैंने भी राजा को अपना पति मान रक्खा था क्योंकि जो अपनी सखी का पति होता है वह अपना भी पति होता है, क्या तुम यह नहीं जानती कि तुम ब्राह्मणी होने के कारण मेरी पूज्य हो और राजा तुम से भी मेरा अधिक पूज्य है ॥

देवयानी ने राजा को कहा तुमने मेरा बड़ा अनादर कीया है अब मैं यहां नहीं ठहरूंगी, ऐसा कह कर वह अपने पिता की ओर चल पड़ी और राजा भी उस के पीछे उस को मनाता हुआ चल पड़ा, शुक्र जी के स्थान पर पहुंच कर दोनों ने यथोचित वंदना की और बैठ गए ॥

देवयानी ने शुक्र जी से कहा हे महाराज ! धर्म अधर्म से जीता गया है निचली पदवी वाला ऊपर की पदवी पर होगया है, देखिये यह राजा धर्मात्मा विख्यात है, परंतु इसने आपकी आज्ञा को भंग करके और मर्यादा को छोड़ कर शर्मिष्ठा से तीन पुत्र उत्पन्न कीये हैं और मुझ अभागन के अभी तक

केवल दो ही पुत्र हुए हैं ॥

शुक्र जी ने कहा हे राजन् ! तुमने धर्म को छोड़ कर अधर्म से प्रीति की है इस से तुम शीघ्र ही वृद्ध हो जाओगे ॥

राजा ने कहा मैंने यह कर्म कामवश होकर नहीं किया किन्तु धर्म रूप वीर्य दान दिया है, महाराज ! जो मनुष्य वीर्य दान नहीं देता वह ब्रह्म हत्यारा कहलाता है. यह काम मैंने अधर्म के भय से कीया है ॥

शुक्र जी ने कहा यह सत्य है परन्तु मेरे आधीन होकर बिना मेरी आज्ञा तुमने यह काम कीया है इस कारण तुम मिथ्या चार करने से पाप के भागी हुए ॥

शुक्र जी के शाप से राजा उसी समय वृद्ध होगया ॥

राजा ने अपने बुढ़ापे को देख कर शुक्र जी से विनय की महाराज मैं देवयानी के यौवन से सदा अतृप्त रहूंगा कृपा करके ऐसा कीजिये कि जिस से यह वृद्धावस्था मुझ को न सतावे ॥

शुक्र जी ने कहा मेरा कहा झूठा नहीं हो सकता हां तुम इस अवस्था को किसी युवक के साथ बदल सकते हो ॥

राजा ने कहा महाराज यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपनी अवस्था को अपने पुत्र के साथ बदल लूं ॥

शुक्र जी ने कहा तुम हमारा ध्यान करके अपनी अवस्था को अपने पुत्र के साथ बदल लो जो पुत्र तुम्हे अपनी अवस्था बदल देगा वह दीर्घ आयू वाला, कीर्तिमान और बहुत संतान वाला होगा ॥

राजा ययाति ने घर आकर अपने सब से बड़े पुत्र यदु को बुला कर कहा हे पुत्र तुम्हारे नाना शुक्र जी के शाप से मैं वृद्ध होगया हूं परंतु मेरा मन अभी विषय भोग से तृप्त नहीं हुआ तुम अपनी युवावस्था हमको दे दो और हम से बुढ़ापा लेलो कुच्छ काल पश्चात हम पुनः यह बदल लेंगे ॥

यदु ने कहा महाराज बुढ़ापे में भोजन पान नहीं पचता शरीर निर्बल होने के कारण नाना प्रकार के कष्ट होते हैं, नेत्रों की ज्योति घटजाती है। दांत निकलजाने के कारण भोजन का स्वाद नहीं आता, सिर और डाढी मूछों के बाल श्वेत हो जाने से मनुष्य कुरूप होजाता है, इस अवस्था में आलस्य बढ़ जाने से कुच्छ काम नहीं हो सकता। मैं अपनी जवानी दे कर आपका बुढ़ापा नहीं ले सकता, मुझ से अधिक प्यारे आप के और पुत्र भी हैं उनके साथ बदला करलें ॥

राजा ने कहा तू मेरा पुत्र होकर मेरी आज्ञा नहीं मानता इस कारण तुझे राज्य नहीं मिलेगा और न ही तेरी संतान राज्य कर सकेगी ॥

पुनः राजा ने तुर्वसु नाम पुत्र को बुला कर वही बातें कहा उस ने भी न माना। राजा ने उस को यह शाप दीया ॥

हे पुत्र ! तू ने मेरा कहना नहीं माना इस कारण जिस प्रजा पर तू राज्य करेगा वह शीघ्र नाश हो जावेगी और तू ऐसे पापी जीवों पर राज्य करेगा जो मांसाहारी पशुओं के समान रहने वाले और गुरू की स्त्री से व्यभचार करने वाले होंगे ॥

पुनः राजा ने शर्मिष्ठा से उत्पन्न हुए द्रुह्यु नाम पुत्र को बुला कर उसी प्रकार कहा उसने भी बुढ़ापे के दोष बतलाते हुए ऐसा करना न माना ॥

इसको राजा ने शाप दीया कि चूंकि तूने मेरी इच्छा पूरी नहीं की इस कारण तेरी इच्छा भी कभी पूर्ण न होगी ॥

फिर चौथे पुत्र अनु को बुला कर कहा कि तू ही मेरा कहना मान और मुझे अपनी जवानी दे कर मेरा बुढ़ापा लेले ॥

उसने कहा वृद्ध मनुष्य अपवित्र बालकों के समान स्वयं असमर्थ और दूसरों के आधीन भोजन खाने वाला होता है और समय पर अग्नि में आहुति भी नहीं डाल सकता इस कारण मैं ऐसा नहीं कर सकता ॥

राजा ने इस को शाप दीया कि तू वृद्ध हो जा। तेरे पुत्र युवावस्था में ही मर जाया करेंगे और कोई अग्नि होत्र न कर सका करेगा ॥

तब राजा ने अपने सब से छोटे पूरू नाम पुत्र को बुला कर कहा कि तू मेरा सब से प्रीय पुत्र है तू मेरे बुढ़ापे को ले कर अपनी जवानी दे दे ताकि मैं भोग भोग कर अपना चित्त प्रसन्न करूं ॥

पूरू ने कहा पिता जी मैं आप का पुत्र हूं मेरा धर्म आप की आज्ञा मानना है जवानी क्या प्राण चाहें तो देने को तत्पर हूं ॥

राजा बहुत प्रसन्न हुआ और अपने पुत्र को वर दीया कि तेरी प्रजा सदैव मनों वांछित फल पाया करेगी ॥

तब राजा ने शुक्र जी को याद करके अपने बुढ़ापे को पुरू की देह में प्रवेश कर दीया ॥

बत्तीसवां अध्याय

—:०:—

राजा ययाति का पुत्र से यौवन लेना, पुत्र को राज्य दे कर आप तपस्या के लीये वन में जाना और वहां मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्ग में जाना ॥

राजा ययाति अपने छोटे पुत्र से यौवन ले कर अपनी इच्छा-नुसार भोग करने लगे, विश्वाची अप्सरा से नन्दन वन में जा कर भोग किया और मेरू पर्वत पर अलकापुरी में जाकर आनन्द में रह कर पुनः घर को आये और पुरू से कहा मैंने तेरे यौवन द्वारा अपनी इच्छानुसार सम्पूर्ण पदार्थों को भोगा परंतू यह काम देव शांत नहीं होता वरन जैसे अग्निमें आहुती डालने से अग्नि बढ़ती जाती है ठण्डी नहीं होती इसी प्रकार विषय की इच्छा भी विषय के गोभ को भोगने से न्यून नहीं होती वरन बढ़ती जाती है। पृथ्वी पर विषय की तृष्णा किसी की कभी पूरी नहीं होती, देखो मैं बहुत काल से विषय में आसक्त हुं परंतू मेरी तृष्णा नहीं गई यह तृष्णा प्राणों के नाश करने वाली है इस कारण इस को अवश्य छोड़ देना चाहिये इस संसार में दुःख ही दुःख हैं मैं अब इस को छोड़ कर ब्रह्म में चित्त लगा कर वन में वास करूंगा। हे पुत्र मैं तुझ से बहुत प्रसन्न हुं तू अब अपनी अवस्था को ले और राज्य कर ॥

राजा ने पुरू को यौवन दे दीया, और बुढ़ापा उस से ले लीया ॥

तब राजा ने पुरू को राजतिलक देने के लीये ब्राह्मण आदिकों को बुलाया और कहा कि मैं अपने छोटे पुत्र को राज्य दीया चाहता हुं ॥

ब्राह्मण आदिकों ने कहा बड़े पुत्र के होते हुए छोटे पुत्र को राज्य तिलक होना शास्त्र के अनुकूल नहीं, पुरू से बड़े और चार भाई हैं तिलक सब से बड़े पुत्र यदु को जो शुक्र जी का दोहित्र है होना चाहिये, मर्यादा भी यही है, आप को मर्यादा और धर्म का उल्लंघन नही करना चाहिये ॥

राजा ययाति ने कहा कि मेरे बड़े चारों पुत्रों ने मेरी आज्ञा नहीं मानी थी और पुरू ने उस को पालन कीया था और मेरा बड़ा हित कीया था जो पुत्र अपने माता पिता की आज्ञा नहीं पालता वह पुत्र पुत्र नही है शुक्र जी ने भी मुझ से कहा था कि जो पुत्र तुम्हारी आज्ञा को माने वही राजा हो इस लीये सब से मेरी यही प्रार्थना है कि राज तिलक पुरू को दीजीये ॥

पुरवासीओं ने कहा महाराज गुणवान और माता पिता की आज्ञा पालन करने वाला छोटा पुत्र भी उन बड़े पुत्रों से जो आज्ञा न माने राज्य के सर्वथा योग्य होता है। पुरू ने आप का हित करके आपकी आज्ञा का पालन कीया है और शुक्र जी महाराज की भी यही आज्ञा है आप निस्संदेह उस को राज्य दीजीये हम इस में प्रसन्न हैं ॥

राजा ने पुरू को राज्य सौंपा और आप तपस्या करने के

लिये तपस्वी ब्राह्मणों के साथ वन को चला गया ॥

यदु से यादव, तर्वसु से यवन, दुह्य से भोज और अनु से म्लेच्छ उत्पन्न हुए और पुरू से वह वंश चला जिस वंश में आप का जन्म हुआ है ॥

राजा ययाति वन में जा कर बान प्रस्थ मुनि होगए और कंद मूल फल आदि का भोजन करके शांसित ब्रत जितेन्द्रय रह कर थोड़े काल में मर कर स्वर्ग वास होगये जहां वह बहुत दिनों तक सुख पूर्वक रहे, पुनः इन्द्र की आज्ञा से कर्मों का फल भोगने के लिये पृथ्वी पर गिरा दीए गए ॥

जनमेजय ने कहा कि राजा ययाति सूर्य के समान तेजस्वी और कुरुओं के कुल के बढ़ाने वाले थे मैं उन के स्वर्ग और पृथ्वी के सम्पूर्ण चारित्र और स्वर्ग से गिराये जाने का कारण विस्तार पूर्वक सुना चाहता हुं ॥

हे राजन्! राजा ययाति ने वन में जा कर कन्द मूल खाकर तपस्या की और अनेक कर्म कर के देवताओं और पितरों को प्रसन्न कीया ॥

बहुत काल तक शांति आत्मा और क्रोध रहत रह कर बान प्रस्थ अग्नि में होम शिला बृत्ति और अतिथि पूजन आदि आचरण कीये कुछ काल केवल जल पीकर और पुनः कुच्छ काल केवल वायु आहार करके पंचाग्नि ताप कर और छ महीने केवल एक पैर से खड़े रह कर तपस्या की और पुनः शरीर को त्याग कर स्वर्ग को गये ॥

सुना गया है कि राजा ययाति स्वर्ग में जा कर देवता आदि से पूजित हो कर रहने लगे और ब्रह्मलोक और देव लोक में आनन्द पूर्वक घूमने लगे ॥

बहुत दिन पीछे एक दिन राजा का इन्द्र से मिलाप हुआ बातों में इन्द्र ने पूछा कि तुम ने अपने पुत्र पुरू को राज देते समय क्या शिक्षा दी थी ॥

राजा ने कहा हमने पुरू को राज देते समय यह शिक्षा दी थी कि तुम मध्य देश (गंगा और यमुना के बीच जो देश है) का राज्य करो और प्रांत देशों का राज्य अपने भाईयों को देदो, क्रोधी से क्रोध न करने वाला, क्षमा न करने से क्षमा करने वाला, पशुओं से मनुष्य और मूर्खों से विद्वान सदैव श्रेष्ठ होता है, इस कारण तुम को चाहिये कि जो कोई क्रोध में तुमको गाली भी दे तो तुम उस को क्षमा करो, क्षमा करने से क्रोधी का संहर होजाता है और उस को क्षमा करने वाला पाता है, दुःखी को कभी दुःख न देना, न कभी किसी को कठोर वचन कहना, हीन पुरुष्यों की सहायता से शत्रु के जीतने की कभी इच्छा न करना और कभी कोई ऐसी बात न करना जिस से मनुष्यों को दुःख पहुंचे, जो मनुष्य दुःख देने वाली तीक्षण और कांटों के समन चुभने वाली बात किसी को कहते हैं उन का कल्याण कभी नहीं होता और वह सदैव दरिद्र रहते हैं। तुम को हर समय सत्पुरुषों की संगति में रहना चाहिए और उन की चाल पर चलना चाहिए यदि उन के मुख से कोई मर्यादा रहित बात निकल भी जाए तो

क्षमा करना चाहिए, जो आदमी साधू होता है वह असाधू के बाण रूपी वचनों को सुन कर उस से बदला लेने का विचार नहीं करता, मनुष्यों पर दया करना, दान देना और मीठे वचन बोलना इन के कठोर वचन सहना, पुजने योग्य मनुष्य का सदैव पूजन करना और सुपात्र को सदैव दान देना और कभी भी किसी से कुच्छ न मांगना यह तुम्हारा धर्म है ॥

बत्तीसवां अध्याय

—:०:—

राजा ययाति का स्वर्ग से गिरना और अष्टक ऋषि से वार्तालाप ॥

इन्द्र ने राजा ययाति से पूछा कि तुम अपनी तपस्या को किस की तपस्या के तुल्य जानते हो ॥

राजा ने कहा देवता, मनुष्य, गांधर्व और माहर्षि आदि में से मैं किसी की तपस्या को अपनी तपस्या के बराबर नहीं समझता ॥

इन्द्र ने कहा राजन्! तुम ने बिना जाने अभिमान से भरे हुए वचनों से सब का अपमान कीया है इस से तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया है अब तुम स्वर्ग से पृथ्वी पर गिराय जाओगे ॥

राजा ने कहा यदि मेरे इस अभिमान से मुझे पृथ्वी पर

गिराया जाता है तो कृपा कर के मुझे ऐसे देश में डालिये जहां सज्जन पुरूष रहते हों ॥

इन्द्र ने कहा बहुत अच्छा ऐसी ही जगा गिराय जाओगे परंतू आगे के लीये ध्यान रक्खो कि कभी अभिमान न करना ॥

तब राजा ययाति स्वर्ग से पृथ्वी पर गिराय गए ॥

राजा को आकाश से पृथ्वी पर आते देख कर अष्टक नाम बड़े राज ऋषि ने पूछा तुम कौन हो जो इन्द्र का सा स्वरूप धारण कीये हुए सूर्य के समान आकाश से चले आते हो। तुम्हारे ऊपर से गिरने से हमें आश्चर्य हुआ है तुम इस का कारण वतलाओ, कि तुम्हारे समान यहां आगे भी सत्पुरुष और संत लोग हैं तुम यहां आनन्द से रहो ॥

राजा ययाति ने कहा मैं नहुष का पुत्र और पुरु का पिता राजा ययाति हूं पुण्य के क्षय होजाने से स्वर्ग से गिराया गया हूं, मैं आप सब लोगों से आयू में बड़ा हूं इस कारण मैंने प्रणाम नहीं किया क्योंकि जो मनुष्य विद्या, तप और आयू में बड़े होते हैं वह द्विजन्माओं के सदा पूज्य हैं ॥

अष्टक ने कहा आयू में बड़ा होने से मनुष्य बड़ा नहीं होता है हां विद्वान और तपस्वी मनुष्य सदैव पूज्य और बड़ा होता है ॥

ययाति ने कहा धर्म कर्म का नाश करने वाला और नरक में डालने वाला पाप है यह जान कर संत लोग अपने संत भाव

को छोड़ कर असंतों के कर्मों के अनुसार काम नहीं करते, मेरे पास पुण्य रूपी बहुत सा धन था जो अभिमान करने से जाता रहा अब मैं चेष्टा करने से उस को नहीं पा सकता, मेरी समझ में ऐसा ही आता है, जिस की ऐसी समझ होती है वही विशेष ज्ञानी कहलाता है ॥

संसार में बड़ा धनाढ्य वह मनुष्य है जो यज्ञ करे, वेद शुक्त विद्या पढ़े और मोह छोड़कर तपस्या करके स्वर्ग को जाय। मनुष्यों को चाहिए कि वेदों को पढ़ें। धन पाने से बहुत प्रसन्न न हों, अहंकार न करें और प्रारब्ध को अपनी बुद्धि से अधिक बलवान जाने, सुख और दुःख दोनों दैव के आधीन हैं, सुख के पाने में हर्ष और दुःख के होने में विषाद कदापि न करें, हे अष्टक! न मुझे मोह है और न ही मुझे कभी किसी प्रकार का मानसी दुःख होता है जिस दशा में विधाता ने मुझे रक्खा है मैं उसी में प्रसन्न हूं। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, और जरायुज यह सब परारब्द के क्षय होने पर अपने आदि कारण में जा मिलते हैं इस कारण हे अष्टक मैं सुख और दुःख दोनों को अनित्य जान कर किसी बात का सन्ताप नहीं किया करता ॥

अष्टक ने कहा हे राजन् आपने स्वर्ग में रह कर जिन जिन लोकों में जो जो पदार्थ भोगे हैं वह कृपा पूर्वक कहिए क्योंकि आप धर्म की बातें नारद जी के समान कहते हैं ॥

राजा ययाति ने कहा हम सर्वभौम हैं तप के बल से हमने बड़े बड़े लोकों को जीता था और बहुत काल तपस्या कर के स्वर्ग पाया था पहले हम इन्द्रपुरी में रहे, तब हम प्रजा

पति के लोक में वसे और फिर बहुत दिन तक ब्रह्मा जी के पुर में आनन्द से वास कीया पुनः नन्दन वन में रहे जहा इछा पूर्वक अछे अछे पदार्थों का भोग करते रहे ॥

अष्टक नें कहा आप नन्दन वन में इतना काल रह कर पुनः इस पृथ्वी पर आये इस का क्या कारण है ?

ययाति ने कहा जिस प्रकार इस पृथ्वी पर धनवान को धन के नष्ट होजाने पर भाई बन्धू छोड़ देते हैं इसी प्रकार पुण्य के क्षीण होने पर देवता भी स्वर्ग में मनुष्य का त्याग देते हैं ॥

अष्टक ने कहा महाराज मेरे चित्त में बड़ा संदेह उत्पन्न हो गया है स्वर्ग में पुण्य किस प्रकार क्षीण हो जाते हैं उत्तम पुरुष कौन होते हैं और पुण्यवान् मनुष्य किस के धाम को जाते हैं ॥

ययाति ने कहा मनुष्य पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी रूपी नरक में पड़ता है और गृद्ध और कुत्ते आदि जीवों के भोजन के लीये संसार में जन्म ले कर बेटा बेटी आदि से अपने परिवार को बढ़ाता है इस कारण मनुष्य को चाहिये कि दोष युक्त और निंदित कर्म कभी न करें ॥

अष्टक ने कहा उस को गृद्ध आदि जीव खा जाते हैं तो उस की देह किस प्रकार से होती है और जो आपने भौम नाम नरक कहा है क्या वह पृथ्वी ही है ॥

ययाति ने कहा मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार पृथ्वी

पर जन्म लेता है और जन्म लेने पर जो कोई परलोक का विचार न करके अपनी आयु यों ही गँवाता है वह इस पृथ्वीरूपी नरक में पड़ता है स्वर्ग से गिरायजाने पर साठ हजार अस्सी वर्ष में जावे इस पृथ्वी पर आता है और यहां आने पर उस को बड़ी बड़ी डाढ़ वाले राक्षस खा जाते हैं ॥

अष्टक ने कहा जब जीव को राक्षस खा जाते हैं तो वह सब इन्द्रियों से युक्तदेह से गर्भ में क्योंकर वास कर सकता है ॥

ययाति ने कहा पुरुष का जल रूप वीर्य स्त्री के रज से मिल कर कर्म के अनुसार योनि में प्राप्त हो कर गर्भ हो जाता है वनस्पति औषधि, पृथ्वी, वायु. आकाश, चौपाय और द्विपद आदि सब गर्भ ही से उत्पन्न होते हैं ॥

अष्टक ने कहा जीव अपने जीवरूपी शरीर से ही माता के गर्भ में रहता है या दूसरी देह धर कर वास करता है और नेत्र कान आदि इन्द्रियां और ज्ञान उस को कौन देता है ॥

ययाति ने कहा स्त्री के रजस्वला होने पर पुरुष के योनि गत वीर्य को कर्म फल के अनुसार वायु गर्भ स्थान में खैंच लेता है और पांचों तन्मात्राओं से अधिकार पाकर उस गर्भ को क्रम से बढ़ाता है, जब गर्भ बढ़ कर पूरा हो जाता है तब वह उत्पन्न हो कर मनुष्य कहलाता है और कानों से सुनता, आखों से देखता, नाक से सूंघता, जिव्हा से स्वाद लेता, त्वचा से स्पर्श करता और मन से वेदभाव जानता है यह सब विषय इस शरीर में उपाधिरूप हैं ॥

अष्टक ने कहा मनुष्य मरने के पीछे जला या गाड़

दिया जाता है या उस को दूसरे जीव खा जाते हैं वह फिर किस आत्मा से चैतन्य हो जाता है ॥

ययाति ने कहा जीव आत्मा स्वप्न के समान शब्द करके अपने पाप और पुण्य को साथ ले कर स्थूल शरीर को छोड़ कर सूक्ष्म शरीर को धारण करलेता है। तब पुण्य आत्मा जीव अच्छी योनि में जन्म लेते हैं ॥

अष्टक ने कहा तप सेवा विद्यादि में से कौन सा ऐसा पदार्थ है जिस से मनुष्य को अच्छे लोक मिलते हैं ॥

ययाति ने कहा सन्त लोगों ने स्वर्ग को जाने के यह रास्ते बतलाए हैं १ तप, २ दान, ३ शम, ४ दम, ५ लज्जा, ६ सुधापान और ७ सब जीवों पर दया, जो मनुष्य विद्या प्राप्त करके अपने आप को बड़ा पंडित जानता है और अपनी विद्या के बल द्वारा दूसरे मनुष्यों के यश को नाश करता है उस की अच्छी गति नहीं होती और न ही उस की विद्या उस को सफल देती है। संसार में मनुष्य को अभय करने वाले चार पदार्थ हैं १ अग्नि होत्र करना, २ मौन धारण करना ३ वेद पढ़ना और ४ यज्ञ करना और इन्हीं चारों को अभिमान के साथ करने से बड़ा भय होता है इस कारण किसी प्रकार का अभिमान नहीं करना चाहिए ॥

तेतीसवां अध्याय

—:०:—

अष्टक का राजा ययाति से गृहस्थ आदि आश्रमों का धर्म पूछना और राजा ययाति को अष्टक और प्रतर्दन ऋषि का पुण्य देना और उस का स्वीकार न करना ॥

अष्टक ने राजा ययाति से पूछा ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी के कौन कौन धर्म हैं ॥

ययाति ने कहा ब्रह्मचारी का धर्म है कि गुरू की आज्ञा से पढ़े, २ विना कहे गुरू का काम करे, ३ गुरू से पीछे सोये, ४ सोकर गुरू से पाहिले उठे, ५ जितेन्द्रिय रहे, ६ मीठा बोले, ७ धैर्य रक्खे, ८ सावधान रहे और ९ स्वध्याय में प्रीति रक्खे। इन कर्मों से ब्रह्मचारी को मोक्ष मिलती है ॥

गृहस्थी को मोक्ष देने वाले यह चार कर्म हैं १ धर्म से लाये हुए धन से यज्ञ करना, २ दान देना, ३ अतिथि को भोजन देना और ४ विना दीये किसी की चीज़ को न लेना ॥

वानप्रस्थी के यह छः कर्म हैं १ अपने आप लाई हुई चीज़ का भोजन करना, २ कभी पाप न करना, ३ जीव मात्र को दुःख न देना, ४ वन में बसना, ५ दूसरों को देना और नियत आहार करना ॥

संयासी के यह कर्म हैं, १ उद्यम करके न खाना, २ गुण

वान होना, ३ जितेन्द्रिय रहना, ४ विरक्त स्वभाव होना, ५ गृहस्थ से दूर रहना, ६ देवालय आदि स्थानों में सोना और देशांतरों में अकेले घूम कर गृहस्थियों को सत्य धर्म का उपदेश देना ॥

अष्टक ने पूछा मौनी और मुनी कौन होते हैं ॥

ययाति ने कहा मुनी दो प्रकार के होते हैं एक वह जो वस्ती को छोड़ कर वन में वास करते हैं और दूसरे वह जो वन को त्याग कर वस्ती में रहते हैं ॥

अष्टक ने पूछा उन दोनों में क्या भेद है कृपा कर के विस्तार पूर्वक कहिये ॥

ययाति ने कहा, वन में रहने वाला वह मुनी है जो वन में रह कर वन के फल इत्यादि खा कर निर्वाह करता है और वस्ती की किसी चीज़ को नहीं लेता और वस्ती में रहने वाला वह मुनी है जो केवल एक वस्त्र ओड़ कर विना अपने घर और आग के वस्ती में रहे, हे अष्टक! इस लोक में सिद्धी उन्ही को मिलती है जो सब कर्म और कामनाओं को छोड़ कर मौन हो कर स्थित हो जाते हैं ॥

जो मुनी शुद्ध चित्त और शुद्ध कर्म करने वाले हैं उन का सदैव सत्कार करना चाहिये और जो मुनी तपस्या करते करते ऐसा दुर्बल हो गया हो और उस में केवल हाड़ रह गये हों और निर्द्वंद्ध हो कर मौन में स्थित हो वह मुनि संसार को जीत कर प्रलोक को विजय करता है ॥

अष्टक ने फिर राजा से पूछा कि आपने दो प्रकार के मुनि

कहे हैं उन में से पहिले किस को मुक्ति मिलती है ॥

ययाति ने कहा वनवासी और योगी दोनों मुक्ति पाने के अधिकारी हैं परंतू ब्रह्मज्ञानी को शीघ्र मुक्ति मिलती है योगी को देह में मिलती है और जो योगी तपस्या करते छोटी अवस्था में काल वश होजाता है उस को पुनर्जन्म में पुनः योग करने से मुक्ति मिलती है, परंतू कर्मों का फल अवश्य भुगतना पड़ता है ॥

अष्टक ने कहा तुम को किसने दूत बना कर भेजा है, तुम कहां से आये हो कहां जाओगे और कहां तुम्हारा स्थान है ॥

ययाति ने कहा मैं पुण्य के क्षीण होने से स्वर्ग से पृथ्वी पर गराया गया हुं और इन्द्र की कृपा से आप से सत्पुरूषों में गिराचहाता हुं ॥

अष्टक ने कहा कि तुम पृथ्वी पर मत गिरो और यह बतलाओ कि स्वर्ग और आकाश में हमारे कितने लोक हैं ॥

ययाति ने कहा जितने गौ, घोड़ा, आदि जीव इस पृथ्वी पर हैं स्वर्ग में तुम्हारे उतने ही लोक हैं ॥

अष्टक ने कहा तुम पृथ्वी पर मत गिरो हम तुम को अपना पुण्य देते हैं उस से तुम हमारे लोकों में जा कर आनन्द से रहो ॥

ययाति ने कहा हमारा धर्म दान देना है दान लेना नहीं हम आप का दान नहीं ले सकते ॥

अष्टक के पास बैठे हुये दूसरे सत्यपुरुष प्रतर्दन ने कहा स्वर्ग और आकाश में मेरे कितने लोक हैं ॥

ययाति ने कहा स्वर्ग में तुम्हारे बहुत से लोक हैं वह सब सुख के देने वाले और शोक को हटाने वाले हैं मैं हर एक में सात सात दिन रह कर उनका पार नहीं पा सका ॥

प्रतर्दन ने कहा आप हमारा पुण्य लेकर हमारे लोकों में आनन्द पूर्वक रहीये ॥

ययाति ने कहा बराबर के तेजधारी राजाओं को विपत्ति पड़ने पर भी एक दूसरे से पुण्य आदि कोई वस्तू नहीं मांगनी चाहिये जो कर्म आज तक किसी ने नहीं कीया वह मैं क्यों करूं ॥

चौतीसवां अध्याय

—:०:—

वसुमान और शिव का राजा ययाति को पुण्य देना और उस का स्वीकार न करना और उन के साथ बैठ कर स्वर्ग में जाना ॥

वसुवान तीसरे सत्य पुरुष ने राजा ययाति से पूछा स्वर्ग और आकाश में हमारे कितने लोक हैं ॥

ययाति ने कहा पृथ्वी आकाश दिश आदि में जितने लोक हैं उतने ही स्वर्ग और आकाश में तुम्हारे लोक हैं वह सारे तुम्हारी राह देख रहे हैं ॥

वसुमान ने कहा राजन् ! यदि तुम दान में दूषण मानते हो तो हम तुम को यह सब लोक एक तिनके के बदले में देते हैं तुम उन को ले कर आनन्द से उन में वसो ॥

ययाति ने कहा मैं ऐसा झूठा लेन देन नहीं करता, ऐसा लेन देन आज तक किसी धर्मी ने नहीं कीया ॥

वसुमान ने कहा यदि तुम मोल लेना अच्छा नहीं जानते तो हम तुम को यों ही देते हैं, तुम उन लोकों में जा कर वास करो हम उन में कदापि न जायेंगे ॥

इस समय शिव नाम राजा ने जो वहां ही था राजा ययाति से पूछा कि स्वर्ग में हमारे कितने लोक हैं ॥

ययाति ने कहा तुम ने किसी साधू महात्मा का मन और वाणी से कभी अपमान तक नहीं किया इस कारण तुम्हारे बड़े बड़े लोक हैं ॥

शिव ने कहा आप को मोल लेना नहीं भाता तो आप हमारे लोकों को वैसे ही ग्रहण कीजिये ॥

ययाति ने कहा हे शिव मेरी इच्छा किसी दूसरे के लोक में रहने की नहीं है और न ही मैं दूसरे की वस्तु को अच्छा जानता हूं ॥

अष्टक ने कहा यदि तुम किसी एक का पुण्य नहीं लेना चाहते तो हम सब अपना अपना पुण्य आप को देते हैं, हमारे सब के लोकों में तुम जा कर रहो ॥

ययाति ने कहा आप लोग मेरे लिए वह यत्न कीजिए

जो मेरे योग्य हो क्योंकि मैं ऐसा काम कभी भी नहीं करूंगा जो आगे किसी ने न कीया हो ॥

इस समय क्या देखा जाता है कि बहुत चमकते हुए स्वर्ण से बने हुए पांच रथ स्वर्ग से उतर रहे हैं अष्टक ने ययाति से पूछा यह किस के रथ हैं ॥

ययाति ने कहा आप लोगों को लेने के लिए यह पांचों रथ स्वर्ग से आए हैं ॥

अष्टक ने कहा इन पर चढ़ कर आप स्वर्ग को पधारिए हम भी समय पर आप के पास आजायेंगे ॥

ययाति ने कहा हम को देव लोक का रासता दीख पड़ता है इस कारण हम तुम को साथ ले कर चलेंगे ॥

तब वह पांचों उन पांचों रथों पर सवार होकर स्वर्ग को चले ॥

रास्ते में अष्टक नें राजा से कहा कि मैं जानता था कि सब से आगे मेरा रथ चलेगा क्योंकि इन्द्र मेरे मित्र हैं परंतु देखो राजा शिब का रथ हम सब से आगे जा रहा है ॥

ययाति ने कहा राजा शिब के तुम सब से आगे जाने का यह कारण है कि वह दानी, तपस्वी, धर्मात्मा, सत्यवादी, लज्जावान, लक्ष्मी वान सौम्य और प्रजा पालक है और उसको जो कुच्छ धन मिला उस ने देवताओं के नाम पर दे दिया ॥

पैंतीसवां अध्याय

—:०:—

पुरू वंश के राजाओं के नाम ॥

राजा पुरू के तीन पुत्र प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व बड़े महारथी पौष्टि नामक स्त्री से उत्पन्न हुए इन तीनों में से प्रवीर का वंश चला उस के हां शूरसेनी नाम रानी से मनस्यु नामक पुत्र हुआ जिस ने समुद्रों तक पृथ्वी की रक्षा की, मन्सयु से शक्त, संहनन और वाग्मी नामी तीन पुत्र सौवीरी रानी से और मिश्रकेशी रानी से अन्तरभानु आदि बड़े शूर वीर पुत्र हुए ॥

रौद्राश्व के हां अप्सराओं से बड़े धनुर्धारी, शूर वीर, ज्ञानी और यज्ञ करने वाले यह दश पुत्र हुए १ ऋचेयु, २ कक्षेयु, ३ कृकणायु, ४ स्थंडलेयु, ५ वनेयु, ६ जलेयु, ७ तेजेयु, ८ सत्येयु, ९ धर्मेयु और १० सन्नतेयु। इन में से सब से बड़े ऋचेयु के हां अनाधृष्टि नामी इन्द्र के समान बड़ा पराक्रमी पुत्र हुआ, अनाधृष्टि के गृह में मतिनार बड़ा धर्मात्मा पुत्र हुआ इस ने अश्वमेध और राजसूय यज्ञ कीये, मतिनार के १ तंसु, २ महान, ३ अतिरथ और ४ दुह्य चार बड़े पराक्रमी पुत्र हुए ॥

इस से आगे पौरव वंश तंसु से चला, इस राजा के हां ईलन नाम पुत्र सकल पृथ्वी को जीतने वाला हुआ ॥

ईलिन के रथंतरी नाम स्त्री से १ दुष्यंत २ शूर ३ भीम ४ प्रवसु और ५ वसु पांच पुत्र हुए इन में से दुष्यंत सब से श्रेष्ठ

हुआ इस राजा के हां शकुंतला रानी से बड़ा प्रतापी, धर्मात्मा और वंश चलाने वाला भरत नामी पुत्र, हुआ भरत ने तीन रानिया कीं और उन तीनों से तीन २ पुत्र हुए इन पुत्रों में से राजा के समान कोई भी योग्य न था इस लीये वह सब मरवादीये गए, भरत ने योग्य पुत्र के लीये भरद्वाज से यज्ञ कराया और उस के भुमन्यु नाम पुत्र हुआ ॥

भुमन्यु के दिवरथ हुआ और दिवरथ के हा पुष्करिणी के गर्भ से १ सुहोत्र, २ सहोता, ३ सुहवि, ४ सुयजु और ५ ऋचीक पाच पुत्र । इन से सब से बड़े सुहोत्र ने बड़े आनन्द से राज्य किया ॥

इस राजा के राज्य में मनुष्य और खेती आदि बहुत बढ़े, इस ने राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ करके हाथी घोड़े आदि से राज्य को सकल पृथ्वी पर बढ़ाया ॥

सुहोत्र के हां एक्ष्वाकी रानी के गर्भ से अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरूमीढ़ नामी तीन पुत्र हुए इन में से राजा अजमीढ़ बड़ा श्रेष्ट हुआ और उस ने धूमिनी, नीली और केशिनी तीन रानियों से विवाह कीया इन में से धूमिनी के ऋक्ष नीली के दुष्यंत और परमेष्टी और केशिनी के जन्हु व्रजन और रूपिण नाम पुत्र हुए ॥

इन में से दुष्यंत और परमेष्टी के वंश वाले पंजाब देश में आगये और जन्हु के कुशिक और व्रजन और रूपिण के बड़े भाई ऋक्ष के संवर्ण नाम पुत्र हुआ, सवर्ण के राज्य में वर्षा न होने के कारण प्रजा बहुत क्षय होगई, इसी समय पाचाल

के राजाओं ने दश अक्षोहाणि सेना ले कर संवर्ण पर चढ़ाई की और युद्ध में उस को जीत कर उस का राज्य अपने राज्य में मिला लिया ॥

संवर्ण भयभीत हो कर अपनी राना, मंत्री, पुत्र और दूसरे मित्रों को साथ ले कर सिंधू के जंगल में पहाड़ के पास जा कर वसा, वहुत काल पीछे एक दिन विशिष्ट जी वहां जा पहुंचे संवर्ण ने उन को वड़े सत्कार के साथ विठला कर उन का यथा योग्य पूजन कीया और कर बांध कर विनति की महाराज मैं अपना राज्य पाने के लीये यज्ञ करना चाहता हुं आप मेरे परोहित वनीये ॥

वशिष्ट जी ने पुरोहित होना स्वीकार किया और राजा संवर्ण को साम्राज अभिषेक किया ॥

तव राजा संवर्ण ने सव क्षत्रिया को जीत कर अपने आधीन किया और अपने राज्य को पाकरं वड़े वड़े यज्ञ किये ॥

संवर्ण के तपती नाम रानी से जो सूर्य की कन्या थी कुरु नाम वड़ा धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ, उस के नाम से कुरु देश विख्यात हुआ और उसी ने अपनी तपस्या से कुरुक्षेत्र को पवित्र किया ॥

वाहिना रानी से उस के १ अविक्षित, २ अविष्यंत ३ चैत्ररथ, ४ मुनी और ५ जनमेजय पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥

इन में से अविक्षित के १ परीक्षित, २ शवलाश्व, ३ आदिराज, ४ विराज, ५ शाल्मलि, ६ उचैश्रवा, ७ भंगकार, और ८ जितारि पुत्र हुए ॥

आगे इनके बहुत से वंश हुए, परीक्षित के सात पुत्र १. जनमेजय २ कक्षसेन, ३ उग्रसेन ४ चित्रसेन ५ इन्द्रसेन, ६ सुषेण और ७ भीमसेन हुए और यह सातों बड़े वीर और धर्मात्मा थे ॥

जनमेजय के आठ पुत्र १ धृतराष्ट्र २ पंडु, ३ वाह्लीक, ४ निषध, ५ जाम्बूनद,६ कुंडोदर, ७ पादति और ८ वसाति, हुए ,यह आठों बड़े पराक्रमी और मनुष्यों का हित चाहने वाले थे ॥

इन में धृतराष्ट्र को राज मिला और उसके यह ११ पुत्र हुए १ कुंडिक, २ हस्ती, ३ वितर्क, ४ क्राथ, ५ कुण्डिन, ६ हविश्श्रवा, ७ इन्द्राभ, ८ भुमन्यु, ९ प्रतीप, १० धर्मनेत्र और ११ सुनेत्र, इन सबों में से प्रतीप, धर्मनेत्र और सुनेत्र बड़े विख्यात हैं पुनः इन तीनों में से प्रतीप बड़ा अनूप राजा हुआ है ॥

प्रदीप के तीन बड़े प्रतापी महारथी पुत्र हुए इन के नाम यह हैं.१ देवापि, २ शांतनु और तीसरे वाह्लीक। इन में से पहले ने धर्म की प्राप्ती के लिये वनवास लिया और शांतनु और वाह्लीक ने राज सम्भाला ॥

छत्तीसवां अध्याय

—:०:—

राजा महाभिष को गंगा जी को नंगी देखने के कारण ब्रह्मा जी का शाप देना, राजा का प्रदीप के हां जन्म लेकर शांतनु नाम से प्रसिद्ध होकर शिकार खेलते एक स्त्री को गंगा तट पर नंगे देखना ॥

महाभिष राजा बड़ा सत्यवादी और पराक्रमी इक्ष्वाकु राजा के वंश में हुआ है उस ने बहुत से यज्ञ करके राजा इन्द्र को बहुत प्रसन्न किया और मर कर स्वर्ग में बहुत आनन्द से रहने लगा एक समय वह राजा ब्रह्मा जी की सभा में जहां सब देवता, बड़े बड़े राज ऋषी और महर्षि बैठे थे बैठा हुआ था, उस समय वहां गंगा भी आई । वायू के वेग से उस का वस्त्र उड़ गया और वह नंगी होगई, सब देवताओं और ऋषियों ने अपना अपना मुख नीचे कर लिया परंतु राजा महाभिष उस की ओर देखता रहा, इस पर ब्रह्मा जी ने उस को शाप दिया कि तू पृथ्वी पर जन्म लेकर मनुष्य योनी पावेगा और शरीर त्यागने पर पुनः इस लोक में आवेगा ॥

राजा ने अपनी इच्छा से राजा प्रादीप के ग्रह में जन्म लिया और गंगा भी उस राजा का ध्यान धरती हुई वहां से लौटी, गंगा को रास्ते में अष्ट वसु देवता मिले, जो अति उदास थे, गंगा जी ने उन से उन की उदासी का कारण पूछा,

उन्हों ने कहा कि वशिष्ठ जी संध्या में लगे हुए थे हम पास से चुपके से चले आये इस अपराध के लिये उन्हों ने हम को शाप दिया है कि तुम नर देह धारण करो यह शाप अब किसी प्रकार से टल नहीं सकता हम चाहते हैं कि तुम पृथ्वी पर देह धारण करो हम सब तुम्हारे उदर में जन्म लेंगे, हम संसारी स्त्रियों के उदर में वास करना उचित नहीं समझते ॥

गंगा ने कहा बहुत अच्छा। परंतु आप पिता किस को बनाया चाहते हैं ॥

वसुओं ने कहा राजा प्रदीप के हां शांतनु नाम पुत्र होगा। यदि वह हमारा पिता हो तो अच्छा है ॥

गंगा ने कहा मैं निष्पाप हुं मैं अवश्य उस राजा का प्रिय और तुम्हारे मन की इच्छा पूरी करूंगी ॥

वसुओं ने कहा कि जिस समय हम उत्पन्न हों हम को उसी समय अपने जल में बहा देना ताकि हम उस योनि में न रहें ॥

गंगा ने कहा बहुत अच्छा, परंतू उस राजा के हां मेरे गर्भ से एक पुत्र तो अवश्य रहना चाहिये ॥

देव वसु ने कहा मैं राजा के गृह में रहना स्वीकार करता हुं परंतू मैं विवाह आदि संसारिक विवहार नहीं करूंगा वरन ईश्वर भक्ति को अपना कर्तव्य जानूंगा ॥

एक समय राजा प्रदीप हरिद्वार स्नान की इच्छा से गये वहां गंगा तट पर बैठे हुये थे कि गंगा जी अत्यंत सुन्दर रूप में राजा की दहिनी जांघ पर आ बैठीं ॥

राजा ने कहा तू कौन है और क्या चाहती है ॥

गंगा ने कहा, मैं तुम को दिल से चाहती हुं, तुम मुझे अंगीकार करो ॥

राजा प्रदीप ने कहा तुम युवक मेरी कन्या के सम और मेरी दहिनी जांघ पर बैठने के कारण मेरी बेटी के समान हो क्यों कि यह जांघ पुत्र, पुत्री और पुत्र की वहु के लिये है स्त्रीयों के बैठने के लिये बांई जांघ है यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारा विवाह अपने पुत्र शांतनु के साथ करदूं ॥

गंगा ने कहा बहुत अच्छा परंतू इतनी बात का प्रण चाहती हुं कि जो कुछ काम मैं करूं तुम्हारा पुत्र उस के करने से मुझ को न रोके ॥

समय पाकर राजा प्रदीप के हां राजा महाभिष ने जन्म लिया और शांत अवस्था में होने के कारण राजा ने इस का नाम शातनु रक्खा और वह पूर्व कर्मानुसार उत्तम २ कार्य करने लगा ॥

जब शांतनु बड़ा हुआ तो राजा ने बुला कर उसको कहा कि हम ने तेरे लीये पाहिले से एक स्त्री वर रक्खी है यदि वह किसी समय अकेले में तेरे पास आजावे तो उस का तिरस्कार मत कीजीयो और उस को किसी काम के करने से मत रोकीयो वह तेरे साथ बहुत प्रीति से रहेगी वह बड़ी दिव्यरूप स्त्री है ॥

राजा प्रदीप अपने पुत्र को यह कर अपनी स्त्री सहित तपस्या करने के लिये वन को चले गये और शांतनु उन के

स्थान मे राज्य करने लगा ॥

एक दिन राजा शांतनु शिकार खेलने के लिये वन में गया। वहुत से जीवों को मारता हुआ गंगा तट पर पहुंचा। वहां उस ने एक अति सुन्दर, अकेली बैठी हुई स्त्री को देखा, दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे और तृप्त न हुए। राजा ने बड़ी मीठी स्वर से उस को कहा कि तू देवी, गंधारी, अप्सरा, यक्षी, पन्नगी और मनुषी में से कौन है, मैं चाहता हु कि तू मेरी भार्या हो कर मेरे गृह में रहे ॥

गंगा ने कहा मैं तेरी पटरानी इस नियम पर हो सकती हूं कि जो कुच्छ भला या बुरा मैं करूं उस से मुझ को न रोकना और न हीं मुझे कभी अप्रिय (कटु) वचन कहना जब ऐसा करोगे मैं उसी समय तुमको त्याग दूंगी ॥

राजा ने कहा वहुत अच्छा मुझे यह नीयम स्वीकार है ॥
इधर गंगा भी इस नियम के माने जाने पर प्रसन्न हुई ॥

अब राजा आनन्द से उस के साथ काम कलोल करके रहने लगा वह उस से कभी भी कोई वात न पूछता था, जो उस के दिल में आता वह करती, उस के शील स्वभाव और एकांत की सेवा आदि गुणों को देख कर राजा उस से वहुत प्रसन्न रहता था और वह दोनों वहुत प्रेम और स्नेह से रहते थे और दोनों नें एक दूसरे के मन को वश में कर रक्खा था ॥

गंगा के राजा से पहिला पुत्र उत्पन्न हुआ वह देवताओं के सदृश था उत्पन्न होते ही उस मे उस को गंगा

की धार में यह कह कर कि मैं तुझ को प्रसन्न करती हुं डाल दिया ॥

इसी प्रकार जब उस के हां पुत्र उत्पन्न होता वह उसको यही शब्द कह कर गंगा में डाल आती, राजा इस काम को देख कर और अपने वचन को जो वह उस से कह चुका था याद करके चुप हो रहता ॥

इसी प्रकार जब वह सात पुत्र गंगा में डाल चुकी और आठवां उत्पन्न हुआ और वह उस को भी उसी प्रकार गंगा में डालने चली तो राजा ने उस को पकड़ लिया और कहा कि तू स्त्री है या चंडालनी और हत्यारि तूने सात पुत्र गंगा में डाल कर मार डाले हैं अब इस पुत्र को मत मार ॥

गंगा ने कहा यह लो अपना पुत्र सम्भालो मैं इस को नहीं मारती परंतु निबन्ध के टूट जाने के कारण आज से मैं आप को त्यागती हुं मैं जन्हु की पुत्री गंगा हुं मैं देवताओं के कुच्छ काम करने के लीये आप के साथ रही थी सो काम कर लिया है, यह कह कर गंगा स्वर्ग में चली और वह पुत्र राजा शातनु के पास रहा और उस का नाम देवव्रत रक्खा गया ॥

सैंतीसवां अध्याय

—:o:—

राजा शांतनु का अपने पुत्र देवव्रत को लेकर युवराज बनाना, उस का अपने पिता के प्रिय करने को मरने तक ब्रह्मचर्य रखना और अपने पिता के लिये सत्यवती को लाना और सत्यवती का राजा से विवाह ॥

राजा शांतनु बड़ा धर्मात्मा, बुद्धिमान, सत्यवादी, दानी, क्षमावान, तेजधारी, धीर्यवान, प्रजा का पालन करने वाला, सब राज लक्षणों से युक्त और बड़ा यशस्वी था, प्रजा भी यथा राजा तथा अस्तु थी ॥

इस के गुणों को देख कर अन्य सारे राजा इस को राजाधिराज की पदवी दे कर आप भय, बाधा और शोक रहित हो कर जीवन व्यतीत करने लगे ॥

इस की राज्यधानी हस्तिनापुर और राज्य समुद्रों तक था राजा द्वेष रहित था इस के समय में कोई जीव मारा नहीं जाता था और वह धर्म के अनुसार दंड दे कर राज्य करता था इस के राज्य में प्रजा धर्म से रहती थी और कोई झूठ का नाम न जानता था और दुःखी और अनाथ जो होते थे उन का पालन कीया जाता था ॥

यह राजा एक दिन शिकार खेलता हुआ गंगा तट पर पहुंचा और उस में थोड़ा जल देख कर सोचने लगा कि यह

उत्तम पहिले के समान भर कर क्यों नहीं बहती, इस का कारण जानने के लिये वह नदी में आगे बढ़ा, वहां क्या देखता है कि एक बड़ा तेजस्वी बालक शस्त्रों का प्रयोग कर रहा है और उसी ने गंगा के जल को अपने बाणों से रोक रक्खा है लड़के के इस कर्म को देख कर राजा अचम्बे में हो गया और वन में वास करने के कारण उस को न पहचान सका ॥

लड़के ने राजा को जान लिया और वह उस जगह जल में समा गया, राजा को शंका हुई कि हो न हो यह मेरा पुत्र है उस ने जल के पास जाकर गंगा से कहा कि हमारे पुत्र को हम को दिखा दो ॥

गंगा ने तत्काल सुन्दर स्वरूप धरा और दहिने हाथ से भीष्म को पकड़े हुए जल से बाहिर निकल आई और कहा कि यह वही लड़का है जो मेरे हां तुम से आठवां हुआ था इसने वेदों को अंगों सहित वशिष्ट जी से पढ़ा है, परशुराम जी से अस्त्र शस्त्र विद्या सीखी है, शुक्र और बृहस्पति जी के पास जो विद्या थी वह भी इसने अध्यन करली है । तू अब इस को अपने साथ ले जा ॥

राजा शांतनु अपने पुत्र को अपने साथ लेकर हस्तिनापुर में आया और उस को अपना युवराज बनाया । देवव्रत ने राज्य का ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया कि सब कुटंबी, प्रजा और मंत्री प्रसन्न हो गये और राजा आनन्द पूर्वक उस के साथ रहने लगा ॥

चार वर्ष पीछे एक दिन राजा के दिल में शिकार की

उमंग हुई वह यमुना के तट पर वन में चला गया वहां से उस को बड़ी तेज़ गंध आई, राजा को यह जानने की इच्छा हुई कि यह गंध कहां से आती है। इस की खोज में इधर उधर घूमते हुये यमुना के तट पर धीमरों की एक बड़ी रूपवति कन्या पर उस की दृष्टि पड़ी उस ने विचारा, हो न हो इसी कन्या से यह गंध आती है॥

राजा उस के पास गया और उस से गंध आते हुये जान कर उस से पूछा तू कौन है, किस की पुत्री है और यहां क्यों बैठी है॥

उस कन्या ने कहा मैं धीमरों की पुत्री हूं अपने पिता की आज्ञा से धर्मार्थ नाव चलाती हूं॥

राजा उस के स्वरूप और गंध से उस पर मोहित हो गया और उस के पिता के पास जा कर कहा कि यह कन्या हम को दे दो॥

उस के पिता ने कहा, राजन्! कन्या तो देने के लिये ही होती है इस के देने से मुझे क्या उज़र हो सकता है क्योंकि आप के सदृश वर हम को कहां मिलेगा पर मेरी एक प्रार्थना है यदि आप उस को स्वीकार करें तो मैं दे दूं॥

राजा ने पूछा वह क्या है?

उस के पिता ने कहा आप के वीर्य से जो पुत्र इस कन्या से हो वह आप के पीछे राज करे॥

राजा यद्यपि उस कन्या को उन धीमरों से ले सकता था परंतू धर्म उस को ऐसा करने से रोकता था वह उस को ध्यान

में रखता हुआ अपने राज भवन में चला आया और उस की प्राप्ति के लिये विचार करता हुआ दिन प्रति दिन पीला और निर्बल होने लगा ॥

राजा नित्य उस कन्या के ध्यान में बैठा रहता और घोड़े आदि की स्वारी भी छोड़ बैठा था ॥

देवव्रत राजा के पुत्र ने राजा की इस दशा को देख कर राजा से कहा महाराज ! आप इस शोच का कारण बतलाये इतने राजे आप की आज्ञा पालन करने पर तत्पर हैं और मैं भी जो कुच्छ मुझ से हो सकेगा उस काम के पूरा करने में यत्न करूंगा ॥

राजा ने कहा तू मेरा एक ही पुत्र है यद्यपि तू बड़ा शूर वीर, शस्त्रधारी, धर्मात्मा और सौ पुत्रों से अच्छा पुत्र है परंतू संसार में एक पुत्र के होने न होने को एक सा मानते हैं, मुझे यह नित्य शोच रहता है कि यदि तू किसी समय युद्ध में मारा गया तो हमारा वंश लोप हो जायेगा, हमारा जीवन यों ही जायेगा ॥

देवव्रत बड़ा बुद्धिमान था तत्काल राजा के शोच का कारण जान गया और वृद्ध मंत्री से सम्मति भी ली, जिसैं ने कहा कि राजा अमुक धीमर की कन्या से विवाह करना चाहता है ॥

देवव्रत बूढ़े मंत्रीयों को साथ ले कर उस धीमर के पास गया और उस को कहा कि तू अपनी कन्या का विवाह हमारे पिता के साथ कर दे ॥

धीमर ने देवव्रत को आदर से बिठलाय कर उस की यथा योग्य पूजा कर के कहा कि आप से वीर और विद्वान का आना सिर माथे पर परंतु आप इतना तो सोचोय कि हमारे दीन होने के कारण इस दीन कन्या की सन्तान को आप के राज घरों में कौन पूछेगा ॥

देवव्रत ने कहा कि हम आप राज नहीं करेंगे जो सन्तान इस कन्या से होगी वह राज सिंहासन पर बैठेगी ॥

धीमर ने कहा आप तो सत्यवादी, धर्मात्मा हैं अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान रख कर राज्य नहीं करेंगे परंतु आप की जो संतान होगी वह इस कन्या की संतान को राज से हटा कर राज संभाल लेगी ॥

देवव्रत ने कहा हम तुम्हारी बात को समझ गये हम प्रण करते हैं कि हम सम्पूर्ण आयू ब्रह्मचर्य से व्यतीत करेंगे और कदापि विवाह नहीं करेंगे क्योंकि हम को बिना पुत्र ही स्वर्ग मिल जावेगा ॥

धीमर ने बहुत प्रसन्न हो कर कन्या ला कर देवव्रत को देदी और देवव्रत ने सत्यवती से कहा माता रथ पर स्वार हो कर घर को चलो, उस को साथ लेकर वह हस्तिनापुर में आये और उसको अपने पिता को दे दीया ॥

देवताओं ने देवव्रत पर आकाश से फूल बरसाये और कहा कि इस ने भीष्मव्रत किया है इस कारण आज से इस का नाम भीष्म होगा ॥

सारे राजाओं ने भीष्म की उस प्रतिज्ञा को सुन कर उस की प्रशंसा की और राजा शांतनु ने बहुत प्रसन्न हो कर यह वर दान दिया कि जब तूं चाहेगा तब ही तेरी मृत्यु होगी ॥

अड़तीसवां अध्याय

—:०:—

राजा शांतनु का विवाह, चित्रांगद व चित्र वीर्य की उत्पत्ति, राजा का देहांत, चित्रांगद का युद्ध में मारा जाना और भीष्म जी का वचित्र वीर्य को गद्दी पर बिठा कर उस की ओर से धर्म से राज्य करना ॥

राजा शांतनु सत्यवती से विधि पूर्वक विवाह कर के आनन्द पूर्वक उस के साथ रहने लगे, थोड़े दिनों में उस के एक पुत्र हुआ उस का नाम चित्रांगद रक्खा गया पुनः कुच्छ काल पश्चात दूसरा पुत्र हुआ उस का नाम वचित्र वीर्य हुआ, यह दोनों पुत्र अभी बालक ही थे कि राजा शांतनु का देहांत हो गया, इस समय भीष्म जी ने अपनी माता जी की सम्मति से चित्रांगद को राज्य तिलक दिया, उस ने अपने बल और पराक्रम से सब राजाओं को जीत लिया और अपने आप को सब से बड़ा जानने लगा, मनुष्य तो एक ओर रहे देवताओं और गन्धर्वों को भी यह तुच्छ जानने लगा, एक दिन शिकार खेलते हुये कुरुक्षेत्र में गंधर्व राज से भिड़ भेड़ हो गई, दोनों ओर

से तीर बरसने लगे चित्रांगद रण में रहा और गांधर्व राज उसे मार कर स्वर्ग को चल दीये ॥

भीष्म जी ने चित्रांगद का प्रेतादि कर्म करा कर वचित्र वीर्य को जो अभी छोटा ही था राज्य तिलक करा दिया जिस ने भीष्म जी की सम्मति से राज्य का शासन किया और भीष्म जी ने भी उस का पालन उत्तम रीति से किया ॥

उनतालीसवां अध्याय

—:०:—

भीष्म जी का काशी के राजा की तीन कन्याओं का लाना उन में से दो का विवाह अपने भाई वचित्र वीर्य से करना और वचित्र वीर्य का बिना संतान मरना ॥

वचित्र वीर्य की बाल्यावस्था में भीष्म जी सत्यवंती की सम्मति से राज्य का पालन करते रहे और उस के तरुण होने पर उसको राज्य दे दिया और उसके विवाह का विचार करने लगे ॥

इधर से काशी से समाचार मिला कि वहा का राजा अपनी तीनों कन्याओं का जो अप्सराओं के समान रूपवती हैं स्वयम्बर किया चाहता हैं, भीष्म जी भी काशी पहुंचे और स्वयम्बर में आए हुए राजाओं के मध्य में जा व्राजे, जब सब राजाओं की वंशावली पढ़ी जाने लगी तो भीष्म जी से

उन तीनों कन्याओं को रथ पर विठा लिया और काशी राज आदि सब राजाओं से कहा, संसार में विवाहों में से एक राक्षस विवाह है उस में कन्या को स्वयम्बर से बल द्वारा हरा जाता है और राजाओं को यही विवाह करना उचित है, हम इन तीनों कन्याओं को हर कर लिए जाते हैं तुम्हारी जो इच्छा हो करो हम युद्ध के लिए भी तत्पर हैं, इतना कह कर भीष्म जी ने रथ को हांक दिया ॥

यह देख कर सब उपस्थित राजाओं के शरीर में कोप की अग्नि प्रचंड हो गई और वह दांतों को पीसते हुए उठ खड़े हुए और अपने भूषण वस्त्रों को फेंक कर, कवच और अस्त्र शस्त्र धारण कर क्रोध से टेढी भौं और लाल २ नेत्र कर रथों पर स्वार हो भीष्म जी के पीछे दौड़ कर उन से युद्ध करने लगे ॥

राजाओं ने मिल कर भीष्म जी पर सहस्त्रों तीर चलाये जिन को उन्हों ने अपने तीरों से रास्ते में ही रोक लिया और रथ तक एक तीर भी न पहुंचने दिया, पुनः उन सब राजाओं ने भीष्म जी को चारों ओर से घेर लिया और इस प्रकार तीर चलाये जैसे पर्वत पर मेंह बरसता है। भीष्म जी ने उन बाणों को भी अपने बाणों से रोका और राजाओं को तीन २ बाण मारे उधर से राजाओं ने भीष्मजी पर पांच पांच बाणों का वार किया भीष्मजी ने उन बाणों को काट कर पुनः दो दो बाण और प्रत्येक राजा को मारे, तलवार, बरछी कवच आदि अस्त्रों से एक बड़ा युद्ध भीष्मजी और उन

राजाओं में हुआ, अंत में भीष्मजी प्रबल रहे और सब राजा पराजय होकर भाग निकले ॥

राजा भीष्म जी रथ को लिये अपनी राज्यधानी की ओर चले, अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि राजा शाल्व स्त्री की कामना से मत्त हाथी के समान बड़े क्रोध से दांत पीसता हुआ भीष्म जी के पीछे पहुंचा और दूर से ही ललकार कर कहा, खड़ा रह, ॥

भीष्म जी ने उस के इन शब्दों को सुन कर बड़े क्रोध से निर्भय कालाग्नि के समान धनुष्बाण हाथ में ले कर अपने रथ को लौटाया और दोनों सन्मुख हो कर और गरज गरज कर युद्ध करने लगे, और वह राजा लोग जो पहिले भाग गये थे वहां आकर इन का युद्ध देखने लगे ॥

राजा शाल्व ने भीष्म जी को बाणों से ढक दिया यह देख कर भागे हुए राजा उस की सराहना करने लगे । इस श्लाघा को सुन कर भीष्म जी को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन राजाओं को बाणों से छेद डाला, पुनः शाल्व पर के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से उस के रथ के घोड़ों और सारथी को मार डाला, भीष्म की जय हुई, राजा शाल्व अपने देश को गया और वहां जाकर धर्म से राज्य करने लगा और बाकी राजा लोग भी अपने अपने नगरों को पधार गये ॥

महा पराक्रमी भीष्म तीनों कन्याओं को रथ में बिठलाये हुए नद, पर्वत आदि फांदते हुए हस्तिनापुर में पहुंचे और राज भवन में जा कर माता सत्यवती से कहा कि काशी

राज की यह तीनों कन्या वचित्र वीर्य के लिये लाया हुं ॥

सत्यवती ने कहा बेटा तुम धन्य हो, यह तुम्हारा ही काम था, इन का विवाह वचित्र वीर्य से कर के अपनी इच्छा पूर्ण करो ॥

इस बात को सुन कर काशी राज की बड़ी कन्या अम्बा ने कहा, भीष्म जी मैं इस समय आप के आधीन हुं, आप धर्मात्मा हैं आप से एक बात कहने की आज्ञा चाहती हु ॥

भीष्म जी ने कहा निर्भय हो कर कहो ॥

अम्बा ने कहा कि मेरा पिता मेरा वरदान राजा शाल्व को दे चुका है और मैं भी अपना दिल उस को दे चुकी हुं आप न्याय कीजीये और मेरी छोटी दोनों बहिनों का विवाह अपने भाई के साथ कर दीजीये ॥

भीष्म जी के दिल में यह बात असर कर गई और उन्हों ने उसी समय ब्राह्मणों को बुला कर अम्बा का विवाह शाल्व के साथ कर दिया और उन को काशी नरेश के हां भेज दिया ॥

तत्पश्चात दूसरी दो कन्याओं अंबका और अंबालका का शास्त्र की मर्यादा से वचित्र वीर्य से विवाह कर दिया, गया वचित्र वीर्य और उस की दोनों सुन्दर स्त्रियें बड़े आनन्द पूर्वक रहने लगे, सात वर्ष तक वह इन के साथ रंग रलीयां मनाते रहे परंतू आठवें वर्ष उन को राज यक्ष्मा रोग ने आ घेरा, वैद्यों और अन्य बुद्धिमानो ने बहुत इलाज कीये परंतू कुच्छ न बन पड़ा

और वह उसी वर्ष में इस लोक को छोड़ कर वैकुंठवासी हुए भीष्म जी को उन के मरने का अत्यंत शोक हुआ ॥

चालीसवां अध्याय

—:०:—

सत्यवती का भीष्म जी को विचित्र वीर्य की स्त्रियों से संतान उत्पन्न करने को कहना और उन का न मानना ॥

सत्यवती अपने पुत्र के मरने से बहुत काल अत्यंत शोक में रही अंत को एक दिन विचार आया कि संतान न होने से राज्य कौन सम्भालेगा और वंश का नाश होगा, यह विचार कर उसने भीष्म जी से कहा ! हे भीष्म तू सब शास्त्रों का जानने वाला है, बुद्धिमान है, मैं तुझ से एक बात कहा चाहती हूं ॥

भीष्म जी ने कहा माता जी कहिये, मैं उस पर विचार करूंगा ॥

सत्यवती ने कहा विचित्र वीर्य बिना संतान मर गया है और उस की दोनों रानियां जो बहुत सुन्दर और अभी तरुण हैं पुत्र होने की इच्छा रखती हैं। तू मेरी आज्ञा से धर्म कर और इन दोनों को वीर्य दान दे जिस से कौरवों का वंश अस्त न होजाये, और पिंड दान के लुप्त होने से पितृ लोक न डूबें ॥

भीष्म जी ने कहा आप का यह कहना सत्य है परन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की हुई है और जो व्रत लिया हुआ है वह तुम पर भले प्रकार से विदित है । मैं उस प्रतिज्ञा को तोड़ नहीं सकता और न उस व्रत को टाल सकता हूं । मैं सत्य के लिए त्रिलोकी और देवताओं का राज्य और इस से भी जो अधिक पद हो त्याग करने पर तत्पर हूं, पृथ्वी गंध छोड़ जाये, जल रस को त्याग दे तो त्याग दे, ज्योति रूप से पृथक होजाये तो होजाये, वायु अपने स्पर्श से भिन्न होजाये तो होजाये, परंतु मैं सत्य नहीं छोड़ूंगा ॥

सत्यवती ने कहा हे धर्मात्मन् मैं तेरे सत्य धर्म को जानती हूं और मुझे तेरी प्रतिज्ञा भी जो तैंने केवल मेरे कारण की थी याद है परंतु कोई ऐसा प्रबंध कर जिस से कौरव वंश आगे चले ॥

भीष्म जी ने कहा जैसे क्षत्रियों की स्त्रियों ने अपने वंश के चलाने के लिए ऋषियों से वीर्य दान लेकर क्षत्री वंश को चलाया था यदि उसी प्रकार यह तेरी बहुयें व्यास जी से जो आशा है कि मान जावेंगे वीर्य दान ले कर वंश की बढ़ती करनी चाहें तो अच्छा होगा, मैं क्षत्रियों का वृत्तांत तुम को सुनाता हूं तू लोक व्योहार और धर्मज्ञ ज्ञानी पुरोहितों से उस को निश्चय करा ले ॥

इकतालीसवां अध्याय

—:०:—

ब्राह्मणों के वीर्य से क्षत्रियों के वंश की उत्पत्ति ॥

पूर्व काल में परशुराम जी ने अपने पिता के वध का बैर लेने के लिये २१ वार क्षत्रियों से युद्ध कर के पृथ्वी पर उन का लेश मात्र न रहने दिया क्षत्रियों की स्त्रियों ने वेद पारग ब्राह्मणों के साथ संगम कर के संतान उत्पन्न की और उन से पुनः क्षत्रियों के वंश पृथ्वी पर चले ॥

वेदों में भी वर्णन है कि क्षेत्र में उत्पन्न हुआ पुत्र उसका होता है जिस का वह पुत्र हो अर्थात जिस स्त्री का विवाह जिस पुरुष से हुआ हो उस स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह उसी विवाहित पुरुष का होता है ॥

पुराणों और इतिहासों में बहुत सी ऐसी कथायें हैं जिन से वेद के इस वाक्य की पुष्टी होती है ॥

———

बयालीसवां अध्याय

—:०:—

व्यास जी का सत्यवती के स्मर्ण करने पर आना ॥

भीष्म जी ने कहा हे माता तुम भी किसी उत्तम ब्राह्मण को धन देकर वचित्र वीर्य की स्त्रियों के हां संतान उत्पन्न

करने के लिये बुला भेजो ॥

सत्यवती हंसती हुई लज्जा सहित भीष्म जी से बोली, तुम्हारा कहना सत्य है हमारे कुल में तू धर्म और सत्यरूप है मैं अपना वृत्तांत भी सुनाती हु सुनिये ।

मेरे पिता ने एक नाव धर्मार्थ रखी हुई थी और मुझे उस पर नियत करते हुए यह आज्ञा दे रखी थी कि जब कोई महात्मा पार जाना चाहे उस को तू पार उतार दिया कर, मैं उस काम को बहुत दिनों तक करती रही एक दिन वहां पराशर मुनि आ गये मैं उन को नाव में बैठा कर पार ले चली जब यमुना के मध्य में पहुंचे तो मेरा यौवन देख कर वह कामासक्त हो गये और मुझे संगम करने को कहा, मैंने पिता के भय और ऋषि के शाप के डर से कुच्छ उत्तर न दिया, उस महात्मा ने अपने तेज से वहां अंधेरा कर मेरे साथ संगम किया, मेरी देह में पहिले मछली की सी बू आती थी, ऋषि ने उस दुर्गन्ध को हटा कर यह सुगन्ध डाल दी, जाते समय उन्हों ने कहा कि तू हमारे इस गर्भ को यमुना के टापू में छोड़ देना, तू पहिले के सामान कन्या हो जायेगी मैंने वैसा ही किया और मैं कन्या हो गई, वह गर्भ गिरते ही बड़ा हो कर पिता के साथ चला गया और मुझे कह गया कि जब कभी तुझ को कोई विपत्ति आकर पड़े तू मुझे याद करीयो मैं उसी समय वहां आ पहुंचुगा, सो मेरा वह पुत्र परम तपस्वी, महायोगी और सत्यवादी है उस ने वेदों को चार भागों में बांटा है इस कारण उस का नाम व्यास हुआ है, वह मेरी और तेरी आज्ञा को मान कर विचित्र वीर्य की स्त्रियों के अवश्य संतान उत्पन्न करेगा

जो तू कहे तो मैं उस को स्मर्ण करूं ॥

भीष्म जी ने कहा माता जी जो कुच्छ आपने विचारा है वह हमारे वंश के हित के लिये विचारा है आप व्यास जी को स्मर्ण कीजिये ॥

सत्यवती जी ने व्यास का ध्यान किया, वह वेद पढ़ते हुए तत्क्षण माता जी के सन्मुख आ खड़े हुए ॥

सत्यवता ने आप का यथा योग्य पूजन किया और बहुत दिनों पीछे मिलने से पुत्र स्नेह होने के कारण आंखों में अश्रुभर कर मिली, व्यास जी की आंखों में भी अश्रु भर आये ॥

व्यास जी ने माता को प्रणाम किया और कहा मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिये आया हूं तुम अपना प्रयोजन कहो ॥

सत्यवती ने कहा, तुम मेरे प्रथम पुत्र हो, चित्रांगद और विचित्र वीर्य तुम से पीछे होकर निरसंतान काल वश हो गये हैं भीष्म जी ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हुआ है मेरी यह इच्छा है कि तुम विचित्र वीर्य की रूपवती, तरुण और पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्रियों से मेरी आज्ञा और भीष्म जी की प्रार्थना से वंश के बढ़ाने के लिये कुल के योग्य संतान उत्पन्न करो ॥

व्यास जी ने कहा हे माता तू अपर अर्थात प्रवृत्त और निवृत्त दोनों धर्मों को जानती है इस कारण तेरी बुद्धि धर्म में रहती है, मैं तेरी आज्ञा को मान कर अपने छोटे भाई

की स्त्रियों को मित्रा, वरुण के समान पुत्र दूंगा परंतू तू अपनी उन बहूओं को कह दे कि वह एक वर्ष तक व्रत करें क्योंकि बिना व्रत मेरे पास कोई स्त्री नहीं आ सकती ॥

सत्यवती ने कहा वर्ष का काल बहुत है कोई ऐसा उपाय कीजिये जिस से यह कार्य शीघ्र सिद्ध हो जाय क्योंकि राज सम्भालने के योग्य इस समय कोई नहीं ॥

व्यास जी ने कहा यदि ऐसी ही जलदी है तो अपनी बहुओं को कह दे कि वह स्नान करके, सुन्दर भूषण वस्त्र पहन कर मेरा रासता देखती रहें और जिस समय मैं उन के पास जाऊं वह मुझ से किसी प्रकार की ग्लानी न करें वरन्न प्रीति पूर्वक मेरे साथ रमण करें ॥

सत्यवती अपनी दोनों बहुओं के पास गई और उन को उपदेश दे कर इस काम के लिये तत्पर कर लिया ॥

तेतालीसवां अध्याय

—:०:—

व्यास जी का विचित्र वीर्य की स्त्रियों धृतराष्ट्र और पांडु को और एक दासी से विदुर जी को उत्पन्न करना ॥

जब विचित्र वीर्य की स्त्री अम्बा ने ऋतु स्नान किया तो सत्यवती ने उस को कहा कि आज तेरे पास शयन के समय तेरा देवर आवेगा वह अपने अंश से तेरे पुत्र उत्पन्न करेगा ॥

अम्बा अपने शयन स्थान में भीष्म आदि अच्छे पुरुषों का ध्यान कर रही थी कि व्यास जी वहां आ पहुंचे, वह उन की कपिल जटा अग्नि के समान जलती हुई आंखें और भूरी मूछों को देख कर डर गई और आंखें बंद कर लीं, व्यास जी ने उस के साथ समागम किया परंतु डर के मारे वह उन का दर्शन न कर सकी, व्यास जी के बाहर आने पर सत्यवती ने पूछा बेटा इस का पुत्र कैसा गुणवान होगा ॥

व्यास जी ने कहा इस के हां बड़ा पराक्रमी, तेजधारी राजर्षि और बड़ा बुद्धिमान पुत्र होगा, अम्बा ने आंखें बंद रक्खी हैं इस कारण नेत्रों से हीन होगा, और इस के सौ पुत्र होंगे ॥

सत्यवती ने कहा अंधा राजा कुरुवंश के योग्य नहीं है इस कारण आप दूसरा पुत्र दीजिये जो वंश को बढ़ावे ॥

व्यास जी ने कहा बहुत अच्छा। ऐसा ही होगा ॥

समय बीतने पर अम्बा के अंधा पुत्र उत्पन्न हुआ और उस का नाम धृतराष्ट्र रक्खा गया ॥

कुछ काल बीतने पर विचित्र वीर्य की दूसरी स्त्री अंबालिका ने जब ऋतु स्नान किया तो सत्यवती ने व्यासजी को पुनः याद किया ॥

व्यास जी पहिले ही स्वरूप में अम्बालिका के पास भी गये, वह इन के स्वरूप को देख कर डर गई और भय से पीत वर्ण हो गई, व्यास जी ने उस के साथ संगम किया और बाहर चले आये ॥

सत्यवंती ने कहा बेटा इस के पुत्र का हाल कहो ।।

व्यास जी ने कहा तेरी बहु डर कर पीत वर्ण (पांडू) होगई थी इस कारण यह उस का पुत्र पीला होगा और पांडु के नाम से जगत में पुकारा जायगा, परंतु यह बड़ा वीर, धर्मिक, पराक्रमी और न्यायकारी होगा ।।

पुनः सत्यवती ने तीसरा पुत्र मांगा, व्यासजी तथास्तु (ऐसा ही होगा) कह कर चले गये ।।

दिन पूर्ण होने पर अंबालका के बड़ा वीर परंतु पीत वर्ण का पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम पांडु प्रसिद्ध हुआ ।।

सत्यवती ने विचारा कि अंबका का पुत्र अंधा हुआ है इस कारण अच्छा हो कि उस को एक पुत्र और हो, उसने व्यास जी से पाहिले ही कह कर हां करा ली थी पस अंबका को भी समझाया कि अब जब व्यास जी आवें तो आनन्द से आंखें सन्मुख रख कर प्रेम करना ।।

सास से तो बहु ने हां करदी परंतु जब व्यास जी आये अपनी एक दासी को सोलां शृंगार से सजा कर उन के पास भेज दिया ।।

वह दासी व्यास जी के पास मुसकराती हुई गई ।।

व्यास जी ताड़ गये, परंतु उस को भी उस समय उन्हों ने निराश न भेजा और कहा कि जा तेरे हां बड़ा धर्मात्मा और बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न होगा ।।

जब समय पूर्ण हुआ तो उस दासी के हां पुत्र उत्पन्न हुआ उस का नाम विदुर रक्खा गया ।।

चौतालीसवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर के उत्पन्न होने पर सब राज्य में आनन्द होना, भीष्म जी का उनको पुत्रवत पालना और उन का बड़े हो कर शस्त्र विद्या में निपुण होना और धृतराष्ट्र का विवाह ॥

इन तीनों पुत्रों के उत्पन्न होने पर भीष्म जी को बड़ा आनन्द हुआ और सारे राज्य में राज कर्मचारी और प्रजा ने उत्सव मनाया, बाजे गाजे बजे और हर ओर से बधाई और जय का शब्द सुनाई देने लगा, ब्राह्मणों को दक्षिणा में बहुत सा धन मिला और अनाथों की हर प्रकार से सहायता की गई ॥

यह तीनों लड़के अकट्ठे खेलते, अकट्ठे ही पढ़ते और अकट्ठे ही भोजन पाते। थोड़े ही समय में इन तीनों ने वेदों को अंगों सहित पढ़ लिया। इधर धृतराष्ट्र की सुन्दरता और बल प्रसिद्ध हुआ, उधर पांडु का बाण चलाना विख्यात हुआ और विदुर जी के शास्त्रज्ञ होने को सब ने माना ॥

धृतराष्ट्र जन्म से अंधे होने के कारण राज गद्दी पर न बैठाय जा सके इन का विवाह गंधार (कंधार) के राजा सुबल की कन्या से हुआ जिन से इन के १०० सौ पुत्र हुए ॥

पैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

दुर्वासा ऋषि का कुंती को देववशी कर्ण मंत्र देना, कुंती का उस मंत्र से सूर्य को वश करके बुलाना, सूर्य का उस से भोग करके कर्ण को उत्पन्न करना ॥

राजा कुंतीभोज जो शूरसेन का फुफेरा भाई था उस के संतान न होती थी उसने शूरसेन से कहा कि मुझ को अपनी संतान दे राजा शूरसेन ने उस के साथ प्रतिज्ञा की कि अब जो संतान होगी वह आप को दे दूंगा, शूरसेन के इस बार एक अति सुन्दर कन्या हुई उस का नाम पृथा रक्खा गया और राजा कुंतीभोज को दे दी गई, उस ने उस को अच्छी तरह पाला और जब वह तरुण हुई तो राजा ने उस को कहा कि जो अतिथि ब्राह्मण यहां आया करे तू उन की सेवा किया कर ॥

जो अतिथि ब्राह्मण आता पृथा प्रीति सहित उस की सेवा किया करती ॥

एक दिन दुर्वासा ऋषि घूमते घूमते वहां आ निकले, पृथा ने बड़े प्रेम से उन की सेवा की जिससे वह उस पर बहुत प्रसन्न हुये और चलते समय उस को वशी करण मंत्र बतला कर कह गये कि इस मंत्र से जिस देवता को तू बुलावेगी वह तेरे पास चला आवेगा और उस के प्रभाव से तेरे पुत्र होगा ॥

पृथा ने इस बात को सुन कर आश्चर्य किया और इस की परीक्षा के लिये सूर्य देवता को बुलाया ॥

सूर्य देवता वहां आये और पूछा कि मुझे किस लिये बुलाया है ॥

पृथा उस को देख कर चकित रह गई और कहा महाराज मुझे एक ब्राह्मण ने मंत्र दिया था उस की परीक्षा आप पर की है मैं आप को प्रणाम करती हुं आप क्षमा करें और अपने लोक को पधारें ॥

सूर्य ने कहा हम जानते हैं कि दुर्वासा ऋषि ने तुम को यह मंत्र दिया है, अब तू हमारे साथ संगम कर नहीं तो हम को वृथा बुलाने का दोष तुम्हें लगे गा ॥

पृथा ने कहा मैं अभी कंवारी हुं इस काम से मेरा कन्यात्व भाव जाता रहे गा और मेरी और मेरे वंश की लोक निंदा होगी ॥

सूर्य ने कहा हमारी कृपा से तेरा कन्यात्व भाव नहीं जाये गा तब उन दोनों ने संगम किया ॥

समय व्यतीत होने पर पृथा के पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा शूर वीर, और कुंडल और कवच धारण किये हुये था ॥

पृथा ने मन में विचारा कि इस को क्या करूं, लोक निन्दा और पिता आदि के भय से उस को एक संदूक में बंद करके नदी में बहा दिया ॥

सूत जी उस नदी में स्नान कर रहे थे उन्हों ने उस संदूक को पकड़ लिया और खोलने पर एक अति सुन्दर

बालक देख कर बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि उन के हां कोई संतान न थी। वह उस को अपने ग्रह में ले आये और अपनी धर्म पत्नी को देकर कहा कि ईश्वर ने हम को यह पुत्र दिया है तू इस का पालन पोषण निज पुत्र जान कर कर, धन सहित उत्पन्न होने के कारण उस बालक का नाम वसुषेण रक्खा गया ॥

यह बालक बड़ा होने पर प्रसिद्ध वीर और शास्त्र विद्या का पूर्ण विद्वान हुआ और इतना दानी हुआ कि ब्राह्मण जो कुछ भी उस से मांगते थे वह उन को देता था ॥

इस की उदारता यहां तक बढ़ गई कि एक समय इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर के उस से कुंडल और कवच मांगे यद्यपि यह दोनों चीजें उस के शरीर के साथ उत्पन्न होने के कारण उस से जुड़ी हुई थीं उस ने उन को शरीर से पृथक करके उस को देदी इस पर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उस को एक बरछी दे कर कहा कि यह बरछी जिस को तू मारे गा वह अवश्य मर जायेगा, इस समय से उस का नाम वैकर्त्तन कर्ण हो गया ॥

छियालीसवां अध्याय

—:o:—

पृथा (कुंती) का स्वयम्बर, उस का राजा पांडू को जयमाल पहिराना और उन दोनों का विवाह करके अपने नगर में आना ॥

पृथा अत्यंत सुन्दर शीलवान और गुणवान थी उस के

यह गुण देख कर कई एक राजाओं ने उस को मांगना चाहा परंतु राजा कुंती भोज ने उस के स्वयम्बर रचने की ठानी और देश देश के राजा इकट्ठे किये। पृथा पांडु राजा पर उस का सिंह समान रूप, बड़ी बड़ी आंखें और चौड़ी छाती देख कर मोहित हो गई और कामासक्त हो कर उस ने उस के गले में जयमाल डाल दी, यह देख कर बाकी सब राजा अपने अपने यानों में सवार हो कर अपने अपने देशों को चले गये तब राजा कुंतिभोज ने पृथा का विवाह राजा पांडु से विधि पूर्वक कर दिया और बहुत सा धन, घोड़े आदि दे कर उन को विदा किया ॥

राजा पांडु उन सब को ले कर बड़ी सज धज से धूम धाम के साथ अपने नगर में आये और राज भवन में प्रवेश किया ॥

सैतालीसवां अध्याय

—:०:—

राजा पांडु का माद्री से विवाह ॥

भीष्म जी ने विचारा कि राजा पांडु का दूसरा विवाह किया जाये इस काम के लिए वह वृद्ध मंत्री और ब्राह्मण महर्षियों और चतुरंगी सेना को साथ लेकर मद्र देश को गये, वहां का राजा उन को आगे से मिलने के लिए आया और सब को बड़े आदर और सन्मान से नगर में ले जा कर और उत्तम २ आसनों पर बिठा कर उनका यथा योग्य पूजन किया,

और पूछा कि आप का आना किस प्रयोजन से हुआ है ॥

भीष्म जी ने कहा हमने सुना है कि आप की वहिन यशस्विनि अभी कारी है राजा पांडु के साथ उस का विवाह करने के लिये उस को मांगने आये हैं ॥

राजा ने कहा तुम से श्रेष्ट हम को और कौन मिलेगा हमें यह वात स्वीकृत है ॥

राजा पांडु का विवाह माद्री के साथ होगया और भीष्म जी सब को अपने साथ ले कर बड़ी आन वान से अपने नगर में आये ॥

कुच्छ काल हस्तिना पुर में रह कर राजा पांडु इर्द गिर्द के देशों को विजय करने के लिए वहुत सी सेना ले कर चले और उन सब राजाओं को जीत कर अपने वश में कर लिया। जो राजा इन के साथ युद्ध करने में मारे गये उन का देश पांडू ने अपने वश में किया और उन का धन, घोड़े, हाथी, सैना आदि और अन्य वश किये हुये राजाओं का दिया हुआ धन आदि लेकर राजा पाडू प्रसन्न होता हुआ अपने नगर को आया ॥

भीष्म पांडू का यह हाल सुन कर सब राज कर्म चारियों, मंत्रीयों और पुरवासियों को साथ ले कर राजा पांडू को लाने के लिये आगे गया और घोड़े, हाथी, मणि, पशु, रत्न, रथ, गो, चांदी आदि को देख कर वहुत प्रसन्न हुआ ॥

राजा पांडू भीष्म के आने का हाल सुन कर रथ आदि से उतर पड़ा और भीष्म के चर्णों में गिर कर अन्य लोगों का यथा योग्य सन्मान किया, नगर में वहुत दिनों तक बाजे

गाजे की धूम धाम रही, राज भवनों में मंगलाचार गाये जाते रहे और वहुत बहुत परितोषिक लोगों को मिलते रहे ॥

अड़तालिसवां अध्याय

—:०:—

राजा पांडु का अपनी रानी को साथ लेकर बन में शिकार खेलने को जाना और विदुर जी का राजा देवक की कन्या से विवाह ॥

राजा पांडू अपना राजपाठ भीष्म धृतराष्ट्र आदि को साप कर आप अपनी दोनों रानीयों को ले कर हिमालय पर्वत के नीचे कैलाश के वन में शिकार खेलने को चला गया, वहां वन में वह रानीयों सहित ऐसा घूमता था जैसे एरावत हाथी अपनी हथनियों के साथ क्रीड़ा करता हुआ विचरता है, धृतराष्टर की आज्ञा से उस वन ही में उस को सब प्रकार की आवश्यक चीजें पहुंच जाया करती थीं ॥

भीष्म जी ने सुना कि राजा देवक के ब्राह्मण के वीर्य से शूद्र योनी में उत्पन्न हुई हुई एक वहुत सुन्दर कन्या है भीष्म जी उस राजा के हां से उस कन्या को ले आये और विदुर के साथ उस का विवाह कर दिया ॥

उनचासवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र के गंधारी से १०० पुत्र और एक कन्या और एक वैश्या के युयुत्सु नामी पुत्र का उत्पन्न होना ॥

एक समय व्यास जी क्षुधा और श्रम से व्याकुल गंधारी के पास पहुंचे, उस ने उन की वहुत अच्छी तरह से सेवा की वह वहुत प्रसन्न हुए और वोले कि वर मांग ॥

गंधारी ने कहा महाराज मैं चाहती हुं कि मेरे पति के सामान मेरे सौ पुत्र हों ॥

व्यास जी ने कहा ऐसा ही होगा ॥

समय पा कर धृतराष्ट्र से उसे गर्भ हुआ ॥

उस अंतर में गंधारी ने सुना कि कुंती के हां एक वड़ा सूर्य के समान तेजधारी पुत्र उत्पन्न हुआ है, इस से उस को वड़ी चिंता हुई और वह अकेले में जा कर पीटने लगी उस की चोट से उस के एक मांस का पिण्ड लोहे का सा उत्पन्न हुआ गंधारी उस को फेंकने लगी कि व्यास जी आ पहुंचे और उस पिंड को देख कर गंधारी से कहा कि यह क्या वात है ॥

गंधारी ने कहा महाराज मैंने कुंती के हां पुत्र उत्पन्न होने का हाल सुन कर वड़े दुःख से अपनी छाती को पीटा था उस की चोट से मेरे यह मास का पिंड उत्पन्न हुआ है, आपने मुझे सौ

पुत्र होने का वरदान दिया था ॥

व्यास जी ने कहा मेरा कहा कभी मिथ्या नहीं हो सकता. जैसा मैंने तुमसे कहा था वैसा ही होगा, अब एक सौ घड़े घी के भरवा कर ऐसे स्थान में रक्खो जहां उन को कोई छू न सके और इस पिंड को पानी से सींचो, इस के सींचते ही अंगूठे २ भर के एक सौ टुकड़े हो गये और व्यास जी ने उन सब घरों में एक एक टुकड़ा रखवा दिया और गंधारी को कहा कि प्रत्येक घड़े को इतने २ दिनों में उघाड़ना, वह पिंड उन घड़ों में बढ़ते रहे और क्रम से पहिले दुर्योधन उत्पन्न हूआ, युधिष्ठर पहिले जन्मने के कारण इस से बड़ा था, दुर्योधन के जन्म के दिन ही भीम सेन का भी जन्म हुआ ॥

दुर्योधन जन्मते ही रोने लगा उस के रोने को सुन कर गधे रेंकने लगे, गीदड़ रोने लगे वायू बड़ वेग से चलने लगी और अंधेरा सा हो गया, धृतराष्ट्र ने सारे कर्मचारियों, ब्राह्मणों और कुटंबीयों को बुला कर कहा कि युधिष्ठर पहिले जन्म लेने के कारण राज सिंहासन पर बैठेंगे और युधिष्ठर से पीछे हमारा यह पुत्र भी राज्य करे गा, परंतु दुर्योधन के जन्मने पर गधे और गीदड़ आदि का जो शोर हुआ है इसका क्या कारण है ॥

विदुर जी और अन्य सब ब्राह्मणों ने इस पर विचार किया और राजा से कहा कि यह बड़ा अपशकुन है यह बालक बड़ा होने पर अपनी कुल का नाश करेगा इस का त्याग देना उचित है शास्त्रों में लिखा है कि जिस एक के पीछे कुल का

नाश होता हो उस एक को त्याग देना चाहिये जिस कुल के कारण सारा ग्राम नष्ट होता हो उस कुल को निकाल देना उचित है और जिस ग्राम से देश की हानी होती हो तो उस ग्राम को छोड़ कर देश को बचा लेना चाहिये और जिस पृथ्वी के कारण प्राण जाते हों उस को त्याग देना अच्छा है ॥

विदुर जी और अन्य ब्राह्मणों ने बहुतेरा समझाया परंतू धृतराष्ट्र ने एक न मानी। पुनः क्रम से बाकी ननावे पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई यह पुत्री भी गाधारी की इच्छा से उत्पन्न हुई थी ॥

गंधारी को गर्भ के समय में क्लेश होने के कारण एक वैश्या ने धृतराष्ट्र की बड़ी सेवा की थी उस वैश्या से युयुत्सु नाम बड़ा बुद्धिवान पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

पचासवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्रों के नाम ॥

१ दुर्योधन २ युयुत्सु, ३ दुशासन, ४ दुःसह, ५ दुःशल, ६ जलसंध, ७ समसह, ८ विंद, ९ अनुविंद, १० दुर्द्धर्ष, ११ सुबाहु, १२ दुःप्रहर्षण, १३ दुर्मर्ष, १४ दुर्मुख, १५ दुःकर्ण, १६ कर्ण, १७ विविंशति, १८ विकर्ण, १९ शल, २० सत्व, २१ सुलोचन, २२ चित्र, २३ उपचित्र, २४ चारुचित्र, २५

शरासन, २६ दुर्मद, २७ दुर्विगाह, २८ विवत्सु, २९ विकटानन, ३० ऊर्णनाभ, ३१ सुनाभ, ३२ नंद, ३३ उपनंद, ३४ चित्रबाण, ३५ चित्रवर्मा, ३६ सुवर्मा, ३७ दुर्विमोचन, ३८ अयोबाहु, ३९ महाबाहु, ४० चित्रांग, ४१ चित्रकुंडल, ४२ भीमवेग, ४३ भीमबल, ४४ बलाकी, ४५ बलवर्द्धन, ४६ उग्रायुध, ४७ सुषेण, ४८ कुण्डधार, ४९ महोदर, ५० चित्रायुध, ५१ निषंगी, ५२ पाशी, ५३ वृन्दारक, ५४ दृढवर्मा, ५५ दृढक्षत्र, ५६ सोम, ५७ कीर्ति, ५८ अनूदर, ५९ दृढसंध, ६० जरासंध, ६१ सत्यसंध, ६२ सहस्रवाक, ६३ उग्रश्रवा, ६४ उग्रसेन, ६५ सेनानी, ६६ दुष्पराजय, ६७ अपराजित, ६८ कुडशायी, ६९ विशालाक्ष, ७० दुराधर, ७१ दृढहस्त, ७२ सुहस्त, ७३ वातवेग, ७४ सुवर्चस, ७५ आदित्यकेतु, ७६ बहवाशी, ७७ नागदत्त, ७८ अग्रयायी, ७९ कवची, ८० क्रथन, ८१ कुण्ड, ८२ कुण्डधार, ८३ धनुर्द्धर, ८४ वीरउग्र, ८५ भीमरथ, ८६ वीरबाहु, ८७ अलोलुप, ८८ अभय, ८९ रौद्रकर्मा, ९० दृढरथाश्रय, ९१ अनाधृष्य, ९२ कुण्डभेदी, ९३ विरावी, ९४ प्रथम, ९५ प्रमाथी, ९६ दीर्घरोम, ९७ पराक्रमी, ९८ दीर्घबाहु, ९९ व्यूढोर, १०० कनकध्वज, १०१ वीरजा. इन सब से छोटी दुःशाला नाम कन्या ॥

धृतराष्ट्र ने इन सब पुत्रों को वेद शास्त्र पढ़ाये और अस्त्र शस्त्र विद्या भी सिखलाई और उन के गुण रूपानुकूल रखती हुई स्त्रियों के साथ उन का विवाह किया और अपनी कन्या दुःशाला का विवाह जयद्रथ के साथ किया ॥

इक्यावनवां अध्याय

—:०:—

राजा पांडू का शिकार खेलते हुए मृग रूपी ऋषि को संगम करते मारना और उस का राजा को शाप देना ॥

राजा पांडू नित्य प्रति उस वन में शिकार खेला करते एक दिन उस ने एक मृग को एक हिरनी से मैथुन करते हुए देखा और अपने सुन्हैरी पर लगे हुए पांच बाणों से उन को छेद डाला, जब राजा उन के पास गया तो क्या देखता है कि वह मृग बड़ा तपस्वी और तेजस्वी ऋषि है, उस ने दिन को मैथुन करने के कारण मृग रूप धारण कीया हुआ है ॥

मृग बोला हे राजन् ! कामी, क्रोधी, पापी और निर्बुद्धि मनुष्य भी ऐसा कुकर्म नहीं करते तुम ने ऐसी धर्म कुल में उत्पन्न होते हुए ऐसा कुकर्म क्यों कीया है ॥

राजा ने कहा क्षत्रियों का धर्म शिकार खेलना और शत्रुयों को मारना है देखो रघूवंशी रामचन्द्र जी ने भी मृग मारा था तू हमारी निन्दा क्यों करता है ॥

मृग बोला । शूर वीर लोग सोये हुए, कामासक्त और प्रमत्त वैरी को भी नहीं मारते ॥

पांडू ने कहा राजा लोग मृग को जिस दशा में देखते हैं

मृग ने कहा मैं अपने मारे जाने से मृग मारने वालों की निन्दा नहीं करता परंतू यह कहता हुं कि तुम ने मैथुन करते हुए मुझे क्यों मारा क्योंकि उस समय बड़ा आनन्द होता है मैंने इस मृगी के संतान के लिये मैथुन कीया था परंतू तुम ने उस को निष्फल कर दिया, कौरव वंशी राजा बड़े विक्रमी होते आये हैं और तुम भी उसी वंश से हो और सम्पूर्ण शास्त्र धर्म और स्त्रियों के भोगों को जानते हो परंतू तुम को ऐसा नहीं करना चाहिये था, मैं किंदम नाम मुनि हुं इस वन में कंद मूल खा कर अपना निर्वाह करता हुं आज मैंने मनुष्य की लज्जा से मृग रूप धारण करके मृगी से भोग किया था परंतू तुम ने हमारे परमानन्द को नाश कर के हम को दुःख दिया है मैं भी तुम को शाप देता हुं कि तुम भी इसी प्रकार स्त्री के विषय के सुख में होने पर मृत्युरूपी दुःख को पाओगे ॥

बावनवां अध्याय

—:०:—

राजा पांडू का अपनी रानीयों सहित वन में जाकर तपस्या करना ॥

राजा पाडू उस मुंनि को छोड़ कर अपने स्थान पर आये और शोक करते हुये कहने लगे कि सत्य पुरुषों के कुल में उत्पन्न हुये मनुष्य भी अंतःकरण को अशुद्ध करने वाले कामादिक दुष्कर्मों को करके दुर्गति को प्राप्त होते हैं मैंने

सुना है कि मेरा पिता बड़े धर्मात्मा के वीर्य से उत्पन्न हुआ था और कामासक्त होने के कारण छोटी अवस्था ही में मर गया और मुझे व्यास जी ने उत्पन्न किया, अब मेरी बुद्धि अनीत और हिंसा करने वाली होगई है इस कारण सब बंधुओं को छोड़ कर अपने पिता व्यास जी के समान मोक्ष का साधन करने में चित लगाऊंगा और ब्रह्मचार्य हो कर रहूंगा और वनस्पति आदि खा कर जिस आश्रम में मेरी इच्छा होगी वास करूंगा, पृथ्वी पर सोना. किसी को बुरा न कहना और न किसी से बुरा भला सुनना किसी की बात पर हर्ष शोक न करना, अपनी बुराई भलाई को एक सा समझना, नमस्कार और आशीर्वाद से प्रयोजन न रखना, न किसी को हंसना, न किसी पर क्रोध करना, नित्य आनन्द में रहना, सब जीवों का हित करना, किसी प्राणी को न मारना, सब को अपने सम देखना, दस पांच घरों से भीख मांग कर लाना, यदि न मिले तो भूखे ही सो रहना, थोड़ा भोजन करना, मरने और जीने दोनों को एक सा जानना, चित्त की मलिनता को शुद्ध करना, सब पापों से दूर रहना, किसी बंधन के पास न जाना, वायु के समान सब से मिलना परंतु किसी के वश में न रहना, सूर्य के समान सब को एक सा लाभ पहुंचाना, इन सब कर्मों को करके देहांत तक निर्भय मार्ग का आश्रय ले कर रहूंगा ॥

हे कुंती और माद्री शाप से संतान उत्पन्न करने में सम्मर्थ होने के कारण मैं अब ग्रहधर्म करने के योग्य नहीं रहा तुम दोनों हस्तिनापुर में जा कर विदुर भीष्म आदि के पास

रक्खो और उन को कहदो कि पांडू सब कुछ त्याग कर वन को चला गया है ॥

रानीयों ने कहा यहां और भी ऐसे आश्रम है जिन में आप हमको अपने साथ रख कर तपस्या कर सकते हैं हम दोनों भी इन्द्रियों को वश कर के स्वर्ग में भी आप को अपना पति पाने की इच्छा से तपस्या करेंगी यदि आप हम को अकेली छोड़ देंगे तो हम दोनों उसी समय प्राण त्यागदेंगी ॥

राजा ने कहा यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो बहुत अच्छा ॥

तब राजा ने अपने और अपनी स्त्रियों के सब वस्त्र भूषण उतार कर ब्राह्मणों को बांट दिये और उन को कहा तुम हस्तिनापूर में जा कर कह दो कि राजा पांडू संसार के सब सुखों को छोड़ कर अपनी स्त्रियों सहित वन को चला गया है, यह सुन कर सब नौकर रोते हुये हस्तिना पुर में आये और वह सारा हाल राजा धृतराष्ट्र आदि से कह सुनाया, राजा धृतराष्ट्र ने उस हाल को सुन कर बड़ा शोक किया और खाट पर सोना और आसन पर बैठना छोड़ दिया ॥

इधर राजा पांडू अपनी स्त्रियों को साथ ले कर नागशत पर्वत पर पहुंचा वहां से चैल रथ वन, काल कूट और हिमाचल पर्वतों पर होता हुआ गंधमादन पर्वत पर पहुंचा, इस स्थान से सिद्ध पुरूष और बड़े २ ऋषियों से रक्षित होता हुआ इन्द्र द्युम्न तालाब और हंस कूट पर्वत पर होता हुआ श्रृंग पर्वत पर

तिरपनवां अध्याय

—:०:—

पांडु का ऋषियों से संतान के लिये उपाय पूछना और कुंती द्वारा किसी उत्तम ब्राह्मण से संतान उत्पन्न करने का उत्तर पाना ॥

शृंग पर्वत पर तप करते करते राजा पांडु सब ऋषियों को प्रीय होगया, कोई ऋषि उसको मित्र समान, कोई भाई की तुल्य और कोई पुत्रवत समझता था और उस का तप यहां तक बढ़ा कि वह ब्रह्म ऋषि के नाम से पुकारा जाने लगा, एक समय वहां के सब ऋषि और तपस्वी आमावस्या के दिन ब्रह्मा जी के दर्शनों को चलने लगे, उन को जाते हुये देख राजा ने पूछा आज आप सब लोग इकट्ठे होकर कहां जाते हैं। ऋषियों ने कहा आज स्वर्ग लोक में देव ऋषियों और पित्रियों का मेला है सो हम लोग उस मेले में ब्रह्मा जी के दर्शनों को जाते हैं, राजा पांडू को भी स्त्रियों सहित अपने साथ चलने के लिये उद्यत हुआ देख कर उन ऋषियों ने कहा कि हे पांडू! स्वर्ग का रास्ता तेरे जाने के योग्य नहीं इन स्त्रियों को बड़ा कष्ट होगा क्योंकि हमने उत्तर की ओर हिमालय पर्वत पर जाने के समय बहुत से कठिन कठिन स्थान देखे थे और रासते में देवता गंधर्व और अप्सराओं के निवास स्थान भी हैं जहा सैकड़ों विमान फिरा करते हैं और अनेक प्रकारों के स्वरों से गाना हुआ करता है, कुबेर के बड़े बड़े रमणीक और अति सुन्दर बागीचे, पर्वतों की बड़ी

बड़ी कंदरा हैं जिन पर सदैव बरफ रहने से कोई जीव और वृक्ष नहीं रह सकता, वहां तो केवल वायु भक्षी ही जासकते हैं अन्य किसी में वहां जाने की सामर्थ नहीं ॥

राजा पांडू ने कहा सुनने में आया है कि संतान हीन मनुष्यों को स्वर्ग नहीं मिला करता हमारे हां भी सन्तान नहीं इससे हम को नित्य दुःख रहता है और पितृऋण से मुक्त न होने के कारण सदैव यह संदेह बना रहता है कि हमारी देह के अंत होने पर हमारे पित्रों का भी नाश हो जायेगा ॥

संसार में मनुष्य पर चार ऋण रहते हैं १ देवऋण, २ पितृ ऋण, ३ ऋषि ऋण, ४ मनुष्य ऋण, इन चारों ऋणों को उतारे विना मनुष्य को कदापि स्वर्ग नहीं मिलता, यज्ञ करने से देव ऋण, वेद पढ़ने से ऋषि ऋण, अहिंसा से मनुष्य ऋण और पुत्र श्राद्ध से पितृ ऋण, पहिले तीनों ऋण तो मैं उतार चुका हूं परंतु चौथा ऋण बाकी है इस ऋण से मुक्त होने का आप कोई उपाय बतलाइये ॥

ऋषियों ने कहा हम अपनी दिव्य दृष्टी से जानते हैं कि तुम्हारे हां देवताओं के समान पुत्र होंगे इन के लिये तुम यत्न करो ॥

राजा पांडू ने कुंती को एकांत में बुला कर कहा कि विना संतान यज्ञ, तप और ज्ञान पवित्र नहीं होता, वरन निष्फल होता है इस कारण मरने के पीछे मुझ को अच्छे लोक नहीं मिलेंगे मैं तो ऋषि के शाप से संतान उत्पत्ति कर नहीं

सकता तू संतान उत्पत्ति का कोई उपाय कर, धर्म शास्त्र में १२ प्रकार के पुत्र लिखे हैं ६ पुत्र बंधुदायाद और ६ पुत्र अबंधुदायाद, बंधुदायाद पुत्र यह हैं १ स्वयं जात जो व्याहता स्त्री के पति से हो २ प्रणीत जो व्याहता स्त्री के किसी महात्मा की कृपा से हो, ३ परि क्रीति, जो बीर्य मोल ले कर व्याहत स्त्री के हो ४ पौनर्भव, जो ऐसी व्याहता स्त्री के जिस का व्याह पहिले किसी और से हुआ हो पहिले पति से उत्पन्न हुआ हो ५ कानीन, जो व्याह होने से पहिले कन्या पन में हुआ हो ६ कुंड जो व्यभिचार से व्याहता स्त्री को हो ॥

अबंधुदायाद यह पुत्र हैं १ दत्त, जो माता पिता ने दे दिया हो, २ क्रति, जो धन दे कर मोल लिया हो, ३ कृत्रिम, जो स्वयं आजाय और कहे कि मैं तुम्हारा पुत्र हु ४ सहोढ़ जो ऐसी स्त्री से उत्पन्न हो जो विवाह समय गर्भवति हो ५ ज्ञातिरता, जो उत्तम भाई बांधवों से अपनी स्त्री से उत्पन्न कराया जाये और ६ हीन योनी धृत जो हीन जाति की स्त्री से उत्पन्न हो ॥

आपत्ति काल में देवर से भी पुत्र लिया जाता है, स्वयंभु मनु जी ने भी कहा है कि श्रेष्ठ मनुष्यों से उत्पन्न हुआ जो पुत्र है वह अपने वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र से अधिक धर्म फल का देने वाला है ॥

हे कुंती मैं अपने आप को पुत्र उत्पन्न करने के असमर्थ पा कर तुझको आज्ञा देता हूं कि तू किसी सदृश या श्रेष्ठ पुरुष से संतान उत्पन्न कर ॥

चौवनवां अध्याय

—:०:—

कुंती का अपने पतिव्रत धर्म को छोड़ने से निषेध करना और व्युषिताश्व के पुत्र होने की कथा कहना ॥

राजा पांडू की उक्त बातें सुन कर कुंती ने कहा महाराज आप को उचित नहीं था कि मुझ सी पतिव्रत स्त्री को ऐसा कहते मैं तो दूसरे मनुष्य के पास मन से भी नहीं जाना चाहती, मैं तो आप के साथ ही स्वर्ग में जाऊंगी आप ही मेरे साथ धर्म रूपी संगम करें । मुझे इस विषय की एक कथा याद है जो मैं आप को सुनाती हूं ॥

पहिले समय में पुरू के वंश में व्युषिताश्व एक राजा था उस ने सोम और अग्नि होम आदि अनेक प्रकार के यज्ञ कर के देवताओं और ऋषियों को प्रसन्न किया और ब्राह्मणों को बहुत बहुत दक्षिणा दी उस राजा को अश्वमेध यज्ञ करने पर दश हाथीयों का बल मिला और वह परम तेजस्वी हो गया, उस ने अपने बल से समुद्र तक पृथ्वी को जीत कर चारों दिशाओं के राजाओं को बांध कर अपने वश में कर लिया, उस का विवाह राजा कक्षीवान की अति सुन्दर भद्रा नाम कन्या से हुआ वह कुच्छ काल उस के साथ प्रेम से रहा उस का प्रेम बहुत बढ़गया और वह दिन रात उस से काम चेष्टा करता रहता इस से उस को राज्यक्ष्मा का रोग होगया और वह

उसी रोग से मर गया इस से उस की स्त्री को महां दुःख हुआ और वह उस के सिर को गोद में रख कर विलाप करती हुई कहने लगी कि हे पति इस संसार में पति विना स्त्री का जीना व्यर्थ है पति रहत स्त्री का मरना ही अच्छा है इस कारण आप मुझ को अपने साथ ले चलो मैं आप के विन एक क्षण भर भी जीया नहीं चाहती मैंने अपने किये का फल पाया है मैंने पूर्व जन्म में चकवा चकवी को पृथक किया था उस पाप के फल से मेरा आप का व्योग हुआ है आज से मैं आप के व्योग में सब सुखों को छोड़ कर कुशा के विछौने पर सो कर आप के दर्शनों को ताका करूंगी हे महाराज मुझ दुःखी और विलाप करती हुई पर कृपा करो और मुझे धैर्य दो ॥

इस विलाप पर गुप्तवाणी हुई कि तू उठ मैं तेरे पुत्र उत्पन्न करूंगा, जब तू ऋतु स्नान कर चुके गी मैं अष्टमी और चौदश की रात्रि को तेरी सेज पर आऊंगा ॥

वह पति व्रता यह सुनते ही उठ वैठी और उस के उस मृतक से तीन शाल्वनाम और चार भद्र नाम पुत्र उत्पन्न हुए, हे राजन् ! आप भी अपने योग वल से मेरे मानसिक पुत्र उत्पन्न कीजिए ॥

पचपनवां अध्याय

—:०:—

पांडू का कुंती को प्राचीन धर्म कह कर किसी उत्तम ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न करने को तत्पर करना और देव आकर्षणमंत्र मिलने पर कुंती का उस से यह पूछना कि मैं किस देवता को बुला कर संतान उत्पन्न करूं ॥

राजा ने कहा राजा व्युषितश्व देवताओं के तुल्य था, मैं तुम को माहात्मा ऋषियों का कहा हुआ धर्म तत्व कहता हूं तू उस को सुन पहिले स्त्रियों के लिए कोई मर्यादा न थी जहां चाहें तहां व्यभिचार करती थीं उन के इस का दोष नहीं लगाता था, अब वह धर्म नहीं रहा है इस देश से अब वह मर्यादा उठ गई है इस का कारण यह हुआ है कि उद्दालक नाम महर्षि के श्वेतकेतु नाम एक बेटा था उसकी माता को एक दिन एक ब्राह्मण विषय करने के लिये पकड़ कर ले चला, श्वेतकेतु को इस से बड़ा क्रोध हुआ उस को क्रोधित देख कर उस के पिता ने कहा हे पुत्र ! चारों वर्णों में पुराना यही धर्म चला आया है स्त्रियां स्वेच्छाचारी हैं तू क्रोध मत कर ।

श्वेतकेतु ने इस पुराने धर्म को अच्छा न जान कर मर्यादा बांध दी कि आज से जो स्त्री व्यभिचार करेगी उस को गर्भ हत्या के समान पाप होगा और जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के

साथ भोग करेगा और जो स्त्री पती से आज्ञा दी हुई संतान उत्पन्न करने के लिए अन्य पुरुष के पास न जायेगी उन दोनों को भी यही पाप होगा उस समय से मनुष्यों में यह मर्यादा चली हुई है परंतु अन्य जीवों में अभी तक वही धर्म चला आता है ॥

यह भी सुनने में आया है कि राजा सौदास की स्त्री ने अपने पति की आज्ञा से पुत्र उत्पन्न करने के निमित्त वशिष्ट जी के साथ संगम किया था जिस से उसके अश्मनाम पुत्र उत्पन्न हुआ था और तुमपर यह भी विदित है कि कुरुवंश की वृद्धि के लिये हमारा जन्म भी व्यास जी से हुआ है इस कारण हे प्रिये तुझे उचित है कि तू भी हमारी धर्म युक्त बात को मान ॥

ऋतु काल होने पर पति को स्त्री के साथ अवश्य संगम करना चाहिये ॥

पतिव्रता स्त्री को उचित है कि पति जो कुच्छ उसको कहे उस को वह उचित अनुचित देखे बिना अवश्य करे, मैं तुझ को आज्ञा देता हु कि तू किसी तपस्वी ब्राह्मण के द्वारा संतान उत्पन्न कर तेरे कारण से मुझ को पुत्र रखने वालों की सी गति प्राप्त होगी ॥

कुंती ने राजा की बातों को सुन कर कहा महाराज जब मैं अपने पिता के घर कन्या थी उन की आज्ञा से अतिथियों की सेवा किया करती थी एक समय वहां बड़े भयानक और प्रशंसा के योग्य व्रत के करने वाले दुर्वासा ऋषि आगये मैंने अच्छी तरह

से टहल कर के उन को प्रसन्न किया उन्हों ने मुझ को देवताओं के बुलाने की आकर्षण शक्ति दान की और मुझे एक मंत्र बतलाया और कहा कि इस मंत्र से जिस देवता को तू बुलावेगी वह आ कर तेरे वश में हो जायगा चाहे उस से तेरा कुच्छ काम हो या न हो और उस देवता से तेरे पुत्र भी उत्पन्न होगा सो अब वह समय आगया ब्राह्मणों का वह वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता अब पुत्र उत्पन्न करने के लिये जिस देवता को बुलाने की आप आज्ञा दें उस को मैं बुलालूं ॥

राजा ने कहा तू आज ही धर्मराज को बुला वह सब में धर्मवान हैं उन के अंश से उत्पन्न हुआ पुत्र भी धर्मात्मा होगा और अधर्म न करेगा ॥

छप्पनवां अध्याय

—:०:—

कुंती से युधिष्ठ, भीम सेन और अर्जुन की उत्पत्ति ॥

कुंती ने दुर्वासा ऋषि के बतलाय हुये मंत्र को विधि पूर्वक पढ़ कर धर्मराज का आवाहन किया जो विमान पर बैठे हुये तुरंत वहां आ पहुंचे और हंस कर कुंती से पूछा तू क्या चाहती है ॥

कुंती ने भी हंसते हुये ही उत्तर दिया कि चार पुत्र चाहती हुं ॥

धर्मराज ने कुंती के साथ समागम किया और उस से गर्भ ठहर गया, समय बीतने पर शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि, ज्येष्ठा नक्षत्र तुला लग्न, अभिजित महुर्त, मध्याह्न समय पुत्र उत्पन्न हुआ उस के उत्पन्न होते ही आकाश वाणी हुई कि यह पुत्र धर्मात्माओं में श्रेष्ट, मनुष्यों में उत्तम, बड़ा पराक्रमी और सत्य वादी राजा होगा, राजा ने उस का नाम युधिष्ठिर रक्खा ॥

राजा ने पुनः कुंती से कहा बल में बड़ा होने से क्षत्रि कहा जाता है तू दूसरा पुत्र किसी बलवान से उत्पन्न कर ॥

कुंती ने स्नान आदि कर पुनः वह मंत्र जपा और वायू देवता को बुलाया जो मृग पर आरूढ़ हुए हुए आये और हंसते हंसते कुंती से पूछा तू क्या चाहती है, कुंती ने लज्जा से कहा आप कृपा करके मुझे एक पुत्र ऐसा दीजीये जो बड़े शरीर वाला बड़ा बलवान और सब के घमण्ड को तोड़ने वाला हो ॥

वायू देवता ने कुंती के साथ भोग किया और उस के प्रभाव से उस के अत्यन्त पराक्रमी पुत्र भीम सेन उत्पन्न हुआ इस समय आकाश वाणी हुई कि यह बालक सब में श्रेष्ठ होगा ॥

कहाजाता है कि एक दिन कुंती भीमसेन को गोद में लिये बैठी थी उधर से एक व्याघ्र आता हुआ दिखाई दिया कुंती जो उस के रोकने को उठी तो भीमसेन उस की गोद से पत्थर पर गिर पड़ा उसके पत्थर पर गिरते ही उस पत्थर के टुकड़े टुकड़े होगये, जिस दिन भीमसेन उत्पन्न हुआ उसी दिन हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के दुर्योधन उत्पन्न हुआ था ॥

तब राजा पांडू ने विचारा कि देवताओं के समान पराक्रमी एक पुत्र और हो तो अच्छा है, सुना जाता है कि इन्द्र देवताओं का राजा है और बड़ा ही पराक्रमी है उस से वैसा ही पुत्र होगा ॥

राजा पांडू ने कुंती को एक वर्ष तक व्रत करने को कहा और आप भी इन्द्र की तपस्या करने लगा। बहुत काल बीतने पर इन्द्र प्रसन्न हुआ और आकर राजा से बोला ॥

हे राजन् मैं तुझ को ऐसा पुत्र दूंगा जो तीनों लोक में प्रसिद्ध होगा वह शत्रुओं का नाश करके सब भाइयों को प्रसन्न करेगा ॥

राजा पांडू ने कुंती से कहा अब तू इन्द्र को बुला और उस से पुत्र उत्पन्न कर ॥

कुंती ने मंत्र द्वारा इन्द्र का आवाहन किया जो तुरंत ही चले आये और उन्होंने कुंती से समागम किया ॥

गर्भ के पूर्ण काल होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ और उस का नाम अर्जुन रक्खा गया ॥

अर्जुन के उत्पन्न होने पर आकाश वाणी हुई।

हे कुंती तेरा यह पुत्र बड़ा तेजस्वी, यशस्वी और पराक्रमी होगा तुझ से इस को अधिक प्रीति होगी और यह भद्र, कुरू सोम, चंदेरी और काशी आदि सब देशों के राजाओं को जीत कर अपने आधीन करेगा और इस के बाहु बल से अग्नि देवता खांडव वन को जला कर प्रसन्न होंगे, यह तीन अश्वमेध यज्ञ

करेगा, महादेव जी को प्रसन्न करके उन से पाशुपात अस्त्र लेगा और इन्द्र की आज्ञा से निवातकवच नाम दैत्यों को मार कर स्वर्ग से सब अस्त्र विद्या लायेगा और ब्राह्मण की नष्ट हुई हुई लक्ष्मी को फिर देगा ॥

इस आकाश वाणी को सुन कर कुंती, राजा पांडु और उस स्थान में जो ऋषि आदि रहते थे बहुत प्रसन्न हुये और आकाश से फूलों की वर्षा हुई और नगारों और बाजों के शब्द हुये ।

तब राजा ने कुंती से कहा एक पुत्र और जनों ॥

कुंती ने उत्तर दिया कि आप तो सब धर्म जानते हैं संसार में तीन पुत्र होना तो आपद्धर्म में गिना जाता है चौथे पुत्र के होने से स्त्री को स्वैरिणी और पांचवें से व्यभिचारिणी गिना जाता है आप मुझ से और पुत्र उत्पन्न करने के लिये किस धर्म से कहते हैं ॥

सत्तावनवां अध्याय

—:०:—

राजा पांडु की माद्री नामी स्त्री के गर्भ से अश्वनी कुमारों से दो पुत्रों का उत्पन्न होना और पांचों पांडवों के नाम करण संसकार

एक समय राजा पांडु और माद्री एकांत में बैठे बातें कर रहे थे कि

प्राण पति कुंती के पुत्र होने से आप और कुंती तो पुत्रवत हो गये परंतु मेरी गोद में पुत्र न होने से मेरा दिल जलता रहता है मैं तो कुंती से यह बात कहते हुये लज्जित होती हूं यदि आप कृपा करके कुंती को यह कहें कि वह अपने मंत्र अभ्यास से किसी देवता को बुला कर मुझे भी पुत्र दिला दें तो मेरा बड़ा प्रिय होगा ॥

राजा पांडू ने कहा हमारे हृदय में भी दिन रात यही विचार रहता था परंतु तुझे इस कारण से नहीं कहते थे कि तू माने या न माने हम अब यत्न करेंगे कि तेरी इच्छा भी पूर्ण हो, कुंती हमारी बात को अवश्य मान लेगी ॥

कुछ दिनों पीछे राजा पांडू ने कुंती को एकांत में बुला कर कहा संसार में कीर्ति सब को भाती है और अपकीर्ति से हर कोई डरता है. मंत्र सिद्धि से तूने अपने लिये मेरे कहने के अनुकूल देवताओं से संतान ली परंतु यदि माद्री के संतान न हुई तो लोक में तेरी निन्दा होगी इस कारण से तू माद्री को किसी देवता से मंत्र सिद्धि द्वारा संतान दिलवाकर उस के दुःख को दूर कर ॥

कुंती इस बात से बहुत प्रसन्न हुई और उस को अपने पास बुला कर वह मंत्र बतला दिया और कहा कि इस मंत्र से जिस देवता को तू बुलावेगी वह आकर तेरे पुत्र उत्पन्न करेगा ॥

माद्री ने उस मंत्र को सीख कर दो पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से दोनों अश्वनी कुमारों को मंत्र द्वारा बुलाया, वह

दोनों मंत्र के प्रभाव से चले आए और माद्री से उन्हों ने संगम कीया और चलते बने इस से माद्री के दो पुत्र नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए ॥

इन के उत्पन्न होने पर आकाश वाणी हुई कि यह दोनों पुत्र बड़े स्वरूप वान, तेजस्वी, भाग्यशील और सर्वगुण सम्पन्न होंगे ॥

इस के उपरांत वहां रहने वाले ऋषियों और अन्य महात्मा पुरुषों ने उन पांचों लड़कों को आशीर्वाद दे कर वेद रीती अनुसार उन का नाम कर्ण संसार किया और यह पांचों इसी पर्वत पर राजा पांडू और अपनी माताओं के साथ आनन्द पूर्वक रहे और बड़े हुए ॥

अठावनवां अध्याय

—:०:—

राजा पांडू का माद्री के साथ भोग करने से मरना और माद्री का उसके साथ सती होना

वसंत ऋतु थी नाना प्रकार के फल और फूल उस बन के वृक्षों को लग कर उन को शोभायमान कर रहे थे, फूलों की सुगन्धि उन के समीप रमण करने वालों के दिलों को मग्न कर रही थी राजा पांडू भी इस समय माद्री को संग लिये इस स्थान में सैर कर रहे थे चलते चलते एक ऐसा

स्थान आगया जहां शीत जल पर्वत से निकल रहा था. राजा माद्री के संग उस स्थान के अद्भुत दृश्य को देखने के लिये बैठ गया उस को बैठे अभी थोड़ा ही काल हुआ था कि उस ने कई प्रकार के पक्षी गण वहां देखे जो बड़े मीठे स्वर से बोल रहे थे इस सारे दृश्य से राजा का मन कामासक्त होगया और शाप को भूल कर राजा ने माद्री का हाथ पकड़ लिया, माद्री ने बहुतेरा रोका परंतु कामदेव राजा पर प्रबल हो चुके थे राजा ने एक न सुनी और बलात्कार माद्री को धरती पर गिरा कर उस के साथ भोग किया ॥

ऋषि के शाप ने अपना काम करना था झट राजा के प्राण निकल गये माद्री रोने चिल्लाने लगी पर अब क्या बनता था इस रोने धोने को सुन कर कुंती अपने बच्चों सहित उन के पास आई परंतु माद्री ने उस को कहा तू इन बालकों को छोड़ कर अकेली आ, वह अकेली गई और राजा को धरती पर पड़े हुये देख कर माद्री से बोली मैं राजा से सदैव बची रहती थी क्या तुझ को शाप का ध्यान न रहा, माद्री ने कहा मैंने राजा को बहुतेरा रोका परंतु राजा ने एक न मानी यह सब होनहार के काम हैं ॥

कुंती ने कहा अच्छा जो कुछ होना था वह होगया अब तू इन सारे बालकों का पालन पोषण कर और इन को सम्भाल मैं राजा के साथ सती होती हुं ॥

माद्री ने कहा राजा मेरे संग भोग करने के कारण मरा है अभी राजा की मुझ से तृप्ति नहीं हुई इस कारण जम पुरी में उस को तृप्त करने के लिये उस के साथ मेरा जाना ही

उचित है दूसरे तू मेरे बालकों को पाहिले ही अपने बालकों के समान जानती है इस से उन का तेरी रक्षा में रहना ही अच्छा है ॥

राजा का उसी स्थान में दाह संसकार किया गया और माद्री उस के साथ सती होगई ॥

उनसठवां अध्याय

—:०:—

पांडु के पुत्रों और कुंती को लेकर ऋषियों का हस्तिनापुर में आना और उन को धृतराष्ट्र को ॥ देकर चले जाना ॥

राजा को मरे जब कुछ दिन होगये तो उस पर्वत के रहने वाले सब ऋषि एक आश्रम में इकट्ठे हुये और आपस में सलाह करने लगे कि राजा पांडु राज जो पाट के सुखों को छोड़ कर बहुत काल से यहां रहते थे काल वश होकर अपने पांचों पुत्रों को, उनकी माता सहित छोड़ कर यमपुरी में चले गये हैं हमारा धर्म है कि उन के इन पुत्रों को माता सहित उनके सम्बन्धीयों के हां हस्तिनापुर में पहुंचा दें ॥

इस बात को सारे ऋषियों ने मान लिया और वह सब के सब उन लड़कों और उन की माता को साथ ले कर हस्तिनापुर की ओर चल पड़े, रास्ता यद्यपि कठिन और दुस्तर था परंतु उन बालकों और माता को तनक भी कठिनाई न हुई ॥

हस्तिनापुर पहुंच कर ऋषियों ने द्वारपाल से कहा राजा धृतराष्ट्र को सूचित कर दो कि बहुत से ऋषि आप को मिलने के लिये आए हैं ॥

द्वारपाल ने राजा को खबर दी ॥

इधर ऋषियों के आने की खबर पाकर सब पुरवासी उन के दर्शनों के पाने के लिये भागे आए वहां एक बड़ा मेला सा हो गया ॥

राजा धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर, सत्यवती, कौशल्या, गंधारी, सोमदत्त, बाह्लीक, धृतराष्ट्र के सब पुत्र और राज पुरोहित उन ऋषियों को स्वागत करने के लिये आए और उन को प्रणाम करके सभा मण्डप में ले गए, जब सब लोग अच्छी तरह से अपने अपने आसनों पर बैठ गए तो भीष्म जी ने उन ऋषियों का यथा विधि सत्कार कीया और उन के सन्मुख कर जोड़ कर खड़े होकर उन से कहा महाराज यह सब राज्य और देश आप का ही है आप इन को ग्रहण कीजिये ॥

तब उन ऋषियों में से एक वृद्ध ऋषि ने कहा राजा पाण्डु जो संसार के सुखों को छोड़ छाड़ कर शात शृंग पर्वत पर तपस्या करने के लिये चलागया था आज १७ दिन हुये मरकर स्वर्ग लोक को चलागया है उस की छोटी स्त्री अपने पति व्रत धर्म का पालन कर ने के लिये उस के साथ सती हो गई है और उस की बड़ी स्त्री कुंती को और उस के पांचों पुत्रों को हम साथ लेकर यहां आये हैं तुम इन को अपने पास रख कर अपने पुत्रों के समान इन का पालन पोषण करो ॥

वह ऋषि इन को छोड़ कर अपने स्थान को चलेगये ॥

राजा पांडू का प्रेत कर्म विदुर जी ने किया और राजा की और माद्री की अस्थियां बड़े मान के साथ गंगा में परवाह दी गई ॥

साठवां अध्याय

—:०:—

सत्यवती का तपस्या करके बन में प्राण त्यागना पांडवों और कौरुवों का परस्पर खेलना, दुर्योधन का भीमसेन को विष देकर नदी में डाल देना, भीमसेन का नागों के देश में जाना और वहां से सहस्र हाथी के बल देनेवाले रस को पीना ॥

अपने पोते पांडू की मृत्यु से सत्यवती को बड़ा शोक हुआ, उस को दिन रात इसी शोक में ग्रस्त देख कर व्यास जी ने कहा माता संसार असार है इस में किसी को भी स्थिति नहीं यह समय तो अच्छा है अब आगे जो समय आने वाला है वह बहुत बुरा है कुरूओं की अनीति से देश और कुटम्ब का नाश होगा इस से तुझ को असाध्य दुःख होगा अच्छा है कि तू वन में जा कर तपस्या कर और वहां ही अपने प्राण त्याग ॥

व्यास जी की इस बात को सुन कर सत्यवती ने व्यास जी को बहुत अच्छा कह कर विदा किया और आम्बिका के पास जाकर कहा तेरे पुत्र पौत्रों के अन्याय से सारे देश और कुटम्ब का नाश होने वाला है इस कारण यदि तेरी इच्छा हो तो मैं

कौशल्या को जो पुत्र के शोक से बहुत दुःखी है लेकर वन को चली जाओ अम्बिका आप भी उन के साथ चलने को उद्यत हो गई और वह वन में जाकर कठिन तप करने लगीं और वहां तप करके वह स्वर्ग को चली गईं ॥

इधर पांचों पांडव आनन्द में खेलते कूदते बड़े होगये ॥

जब पांडव और धृतराष्ट्र के पुत्र खेला करते तो पांडव सर्वदा उन से जीत में रहते. अकेला भीमसेन ही उन सब को दौड़ने में, निशाने लगाने में और अन्य सारी खेलों में हरा दिया करता था, वह उन को पकड़ कर कभी छिपा जाता और कभी उन के साथ लड़ाता, कभी उन को पकड़ रखता और पुनः छोड़ देता, उन को पकड़ कर धरती पर घसीटता जिस से उन के कंधे और जांघ छिल जाती थीं । जल में खेलते हुये वह उन में से दस दस को पकड़ कर गोता देता और जब कभी वह किसी वृक्ष पर फल तोड़ने चढ़ते तो उस वृक्ष को हिला देता और वह लड़के और फल नीचे गिर पड़ते । धृतराष्ट्र के पुत्र इस से इस कारण सदा ईर्षा और द्वेष रखते. और वह भी उन से ईर्षा रखता था ॥

एक दिन दुर्योधन ने विचारा कि भीमसेन बड़ा बलवान है और हम सब को सर्वदा सताता रहता है इसको छल से सोते समय गंगा में डाल दिया जाये तो भय मिट जायगा पुनः अर्जुन और युधिष्ठिर को मारना मेरे लिये कठिन नहीं, उन दोनों को मार कर मैं आनन्द से राज्य करूंगा, ऐसा विचार कर दुर्योधन ने गंगा के एक स्थान प्रमाणा कोटि नाम पर . बड़े

बड़े डेरे और तम्बू लगवाये और चतुर मनुष्यों से भोजन, दूध आदि बनवाए और पाडवों से कहा कि चलो वहा चल कर क्रीडा करें ॥

युधिष्टर ने कहा बहुत अच्छा ॥

वह सब घोड़े, हाथी, रथ आदिकों पर स्वार होकर वहा से चले और वनों में से होते हुए वहां पहुंच कर डेरों में जा बिराजे ॥

थोड़े समय पीछे सब के वास्ते नाना प्रकार के भोजन बने बनाए आ पहुंचे और सब खाने बैठ गये। भीम सेन के आगे काल कूट मिला हुआ भोजन लाकर रक्खा गया जिस को वह आनन्द से खा गया और दुष्ट दुर्योधन उस को खाते देखता रहा ॥

भोजन कर चुकने पर सब भाईयों की सम्मति हुई कि आज की रात यहा ही काटी जावे, जल क्रीड़ा करते करते सायंकाल होगया और सब भाई बहुत थक गये ॥

भीमसेन को कुच्छ तो थकावट हुई और कुच्छ उस विष ने उस पर अपना असर किया और वह वहां लेट गया और ठंडी ठंडी वायु लगने से सो गया ॥

दुर्योधन ने वन में से बेल आदि लाकर भीमसेन के सब अंगों को बांधा और उस को उठवा कर अथाह जल में गिरवा दिया ॥

नीचे गिरने से भीमसेन नाग लोक में चला गया और वहां उस को बड़े २ विषधर सर्पों ने काटा इन सर्पों की विष

ने काल कूट विष का असर दूर कर दिया और उसने चैतन्य होकर सारे बंधन तोड़ डाले और सर्पों को मारने लगा, बहुत से सांप मरगये और बहुत से भाग कर अपने राजा वासुकि के पास गए और कहा महाराज एक मनुष्य नाग लोक में आगया है हमने उस को काटा पर उस पर विष का कुच्छ असर नहीं हुआ, वासुकि उन के साथ वहां गया, अर्यक नाम नाग कुंती का पिता उस के साथ था उस ने उस को झट पहचान लिया और वह उस से लिपट गया और कहा यह मेरा दौहित है ॥

वासुकि ने कहा इस को क्या देना चाहिये अर्यक ने कहा महाराज यदि आप इस पर प्रसन्न हैं तो इस को वह रस दीजिए जिस के पीने से इस में दश सहस्र हाथी का बल हो जाए, वासुकि ने उस रस के भरे हुए कुंड भीमसेन को बतला दिये, वह आठ कुंडों का रस पीगया और आनन्द से नागराज की बतलाई हुई सेज पर सो गया ॥

इकसठवां अध्याय

—:o:—

भीमसेन के न मिलने पर कुंती और युधिष्ठर का चिंता करना, विदुर जी का उनको धैर्य देना, भीमसेन का आठवें दिन हस्तिनापुर में पहुंचना और विदुर

जी का उनको यह सम्मति देना कि वह विष देने की बात किसी पर प्रगट न करें ॥

प्रातःकाल होते ही सब भाई अपनी २ स्वारी पर चढ़ कर यह सोचते हुए चल पड़े कि भीमसेन आगे चला गया होगा जब हस्तिनापुर पहुंचे तो युधिष्ठर ने कुंती को नमस्कार करके पूछा कि यहां भीमसेन तो नहीं आया, क्या तैंने उस को किसी काम पर तो नहीं भेजा मुझे शीघ्र बतला, कहीं वहीं तो नहीं रहगया जहां वह सो रहा था, यह सुन कर कुंती उच्च स्वर से रोने लगी और बोली कि मैंने भीमसेन को नहीं देखा है तू आप छोटे भाईयों सहित जा कर उसको ढूंढ ॥

तब कुंती ने विदुर जी को अपने पास बुलाया और कहा कि कल यह सारे भाई उद्यान में गये थे और तो सब लौट कर आगये हैं परंतु भीमसेन नहीं आया दुर्योधन उस से सदैव द्वेष रखता है कहीं उस ने तो उस को वहां ही नहीं मार डाला ॥

विदुर जी ने कहा तू चिंता मत कर और ऐसा मत कह यदि दुर्योधन यह बात सुन लेगा तो तेरे सारे पुत्रों को मरवा डालेगा, भीमसेन आवेगा और तुझ को आनन्द देगा ॥

कुंती विदुर जी की यह बात सुन कर अपने पुत्रों को साथ ले कर घर में बैठ कर चिंता करने लगी ॥

आठवें दिन उस रस के पचजाने पर भीमसेन की आंख खुली, इस समय उस के शरीर में अतुल बल होगया था

नागों ने कहा अब तुम यहा के दिव्य जल से स्नान कर के अपने घर जाओ तुम्हारे भाई तुम्हारी चिंता करते होंगे ॥

तब भीम सेन ने स्नान कर के उत्तम २ वस्त्र धारण किये और गले में माला डाल कर नागों के दिये हुये भोजन और विष के नाश करने वाली औषधि खाई। नागों ने उस को गहने और रत्न देकर जल के बाहर जहां वह डेरा लगा था पहुंचा दिया ॥

भीम सेन वहा से उठ कर सीधा घर को आया और बड़े भाई और माता को नमस्कार कर के छोटे भाइयों को प्यार दिया, माता और सारे भाई उस से बड़े हर्ष से मिले और आनन्द में बैठ गये ॥

भीम सेन ने दुर्योधन के भोजन में विष देने और अपने नाग लोक में जाने इत्यादि का सारा वृत्तात उनको सुनाया ॥

युधिष्ठर ने कहा इस हाल को कोई भी किसी पर प्रगट न करे और उस समय से वह सब सावधानी से रहने लगे ॥

बासठवां अध्याय

—:o:—

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा की उत्पत्ति, और कृपाचार्य का शरद्वान ऋषि से और द्रोणाचार्य का परशुराम जी से अस्त्र विद्या पा कर आचार्य पदवी पाना ॥

महर्षि गौतम के एक पुत्र शरद्वान थे वह धनुप विद्या

को वेद विद्या से दिल देकर पढ़ते थे उनके हां वन में जानपदी नाम कन्या से एक पुत्र और एक कन्या हुई, शरद्वान जी इन को छोड़ कर कहीं चले गए और वह वहां ही अपनी माता के पास पढ़ते रहे ॥

एक दिन राजा शांतनु शिकार खेलते हुये उस वन में पहुंचे उसके कर्मचारीयों ने उन दोनों लड़के और लड़की को हाथों में तीर कमान लिये इधर उधर घूमते देखा और राजा के पास जाकर इस बात की खबर दी, राजा ने उन दोनों को अपने पास बुलवा लिया और अपने नगर में लाकर उन को अपने पुत्रों के समान पालने लगा और लड़के का नाम कृपा और लड़की का नाम कृपी रक्खा ॥

शरद्वान यह सुन कर कि उस के पुत्र और पुत्री दोनों राजा शांतनु के पास हैं उस के पास आए और अपने पुत्र कृपा को धनुर्विद्या, अस्त्र विद्या और गुप्त विद्या पढ़ाने लगे, कृपा ने उन विद्याओं को थोड़े ही काल में अपने पिता से सीख लिया और वह उन में बड़ा निपुण होगया और आचार्य पदवी पाकर कृपाचार्य हुआ. इस कृपाचार्य से पांडवों धृतराष्ट्र के पुत्रों और यादव वंश आदि के राजाओं न इन विद्याओं को सीखा ॥

भरद्वाज ऋषि एक दिन गंगातट पर बैठ कर तपस्या कर रहे थे कि घृताची नामी अप्सरा वहां स्नानार्थ आई इस के सुन्दर स्वरूप को देख कर वह उस पर मोहित हो गये और वह दोनों प्रेम से वहां रहने लगे, समय पाकर उन के हां एक पुत्र

उत्पन्न हुआ जिस का नाम उन्हों ने यज्ञ के द्रोण पात्र के नाम पर द्रोण रख दिया, बड़े होने पर द्रोण जी सम्पूर्ण वेद और वेदांगों को पढ़ कर पंडित हो गये और आचार्य की पदवी पाकर द्रोणाचार्य हुये पुनः उन के पिता ने उन को अग्नि वेश मुनि के पास भेज दिया जहां से द्रोणाचार्य जी ने अग्नेय अस्त्रों की विद्या सीखी। पांचाल देश का राजा पृपत भरद्वाज जी का बड़ा मित्र था उस के हां द्रुपद नाम एक पुत्र था यह द्रुपद और द्रोणाचार्य इकट्ठे खेला करते थे॥

समय व्यतीत होने पर पृपत परलोक सधार गये और उन का पुत्र द्रुपद पांचाल का राजा हुआ। इधर भरद्वाज जी भी स्वर्ग वास हो गये और द्रोणाचार्य जी अपने पिता के आश्रम में तप करने को चले गये जहां उन्हों ने बड़ा उग्र तप किया था॥

भरद्वाज जी द्रोणाचार्य को स्वर्ग वास होते आज्ञा दे गये थे कि वंश की वृद्धि के लीये किसी अच्छे वंश की कन्या से विवाह कर लेना इस आज्ञा का पालन करने के लिये द्रोणाचार्य जी ने कृपाचार्य की कृपया नामी बहिन से जो बड़ी धर्मात्मा थी विवाह कीया। इन के हां एक पुत्र उत्पन्न हुआ इस समय घोड़े ने शब्द कीया इस से इस लड़के का नाम अश्वत्थामा रखा गया द्रोणाचार्य अपने इस पुत्र को देख कर बहुत प्रसन्न होते और आश्रम में आनन्द से रहते॥

कुच्छ दिनों पीछे द्रोणाचार्य जी यह सुन कर कि महेन्द्र पर्वत पर परशुराम जी जो अस्त्र शस्त्र की विद्या में अति निपुण

हैं ब्राह्मणों को अपना सब धन दिया चाहते हैं उन के पास गये और कहा महाराज मैं भरद्वाज जी का पुत्र आप से कुछ लेने आया हूं ॥

परशुराम जी ने कहा तेरा आना शुभ हो तू ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है तू मुझ से क्या चाहता है ॥

द्रोणाचार्य बोले महाराज मैं अनन्त धन की इच्छा से आप के पास आया हूं ॥

परशुराम जी ने कहा मेरे पास सोना चांदी आदि जो द्रव्य था वह मैं ब्राह्मणों को बांट चुका हूं और समुद्र पर्यन्त पृथ्वी मैंने कश्यप जी को देदी है अब मेरे पास केवल मेरा शरीर और अनेक अस्त्र रह गये हैं इन में से जो मांगो वह मैं दे दूंगा ॥

द्रोणाचार्य जी ने कहा महाराज मुझ को आप संहार प्रयोग और रहस्य सहित सम्पूर्ण अस्त्र दे दीजिये ॥

परशुराम जी ने द्रोणाचार्य को अशेष अस्त्र और बाण विद्या संहार प्रयोग और रहस्य सहित सिखलादी ॥

द्रोणाचार्य जी यहां से बहुत प्रसन्न हो कर अपने परम प्यारे मित्र पांचाल के राजा द्रुपद के पास आये ॥

तिरसठवां अध्याय

—:०:—

द्रोणाचार्य का द्रुपद के पास जाकर अपनी

लड़कपन की मित्रता जताना, राजा का उस का तारिस्कार करना, उस का क्रोधित होकर हस्तिनापुर में आना, भीष्म जी का उस की बाण विद्या में निपुणता सुन कर उस को अपने हां टिकाना और उस का वहां आने का कारण बतलाना ॥

द्रोणाचार्य ने द्रुपद के पास पहुंच कर उस को अपनी पुरानी मित्रता याद कराई परंतु राजा राज्य मद में अंधा हुआ हुआ था उस ने उस को कहा कि मेरे जैसे राजा को तुझ जैसे कंगाल से क्यों कर मित्रता हो सकती है ॥

द्रोणाचार्य को इस बात पर क्रोध आया और वह चुपके से वहां से चल कर हस्तिनापुर को चले आये और वहां जाकर कृपाचार्य के ग्रह में छुप कर रहने लगे और कुछ काल तक वहां इसी प्रकार छुप कर रहे ॥

एक दिन कुरू वंश के सब लड़के एक अंधे कुएं के पास गुल्ली डंडा खेल रहे थे कि उन की गुल्ली उस कुएं में जा पड़ी, वह बार बार उस कुएं में देखते और पीछे हट जाते, द्रोणाचार्य जी उस कुएं के समीप एक स्थान पर सन्ध्या कर रहे थे, वह हंस पड़े और बोले कि तुम अच्छे क्षत्रियों के पुत्र हो कि कुएं से गुल्ली नहीं निकाल सकते। आओ मैं तुम्हारी गुल्ली और अपनी अंगूठी कुएं में डाल कर बाणों से मंत्र द्वारा निकाल देता हुं तुम को हमें भोजन देना होगा । यह कह कर उस ने अपनी अंगूठी को कुएं में डाल दिया ॥

युधिष्ठर ने कहा यदि तुम इन को निकाल दोगे तो कृपाचार्य की सलाह से तुम्हें शीघ्र भिक्षा मिल जाया करेगी ॥

द्रोणाचार्य ने कुछ सींकों को निकाला और मंत्र से एक सींक से गुल्ली को छेद कीआ उस सींक में दूसरी सींक डाल दी और इस प्रकार सींकें डालते हुये उन को कुएं के मुख के बराबर करके गुल्ली को ऊपर खेंच लिया ॥

लड़के उस का यह काम देख कर बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि महाराज अब अंगूठी को भी निकालीये ॥

द्रोणाचार्य ने धनुष बाण पकड़ा और अंगूठी को उस से वेध कर झट बाहर निकाल लिया ॥

यह देख कर वह सब लड़के चकित से रह गये और उन्हों ने कहा महाराज आप इस विद्या में अद्वतीय हैं आपको हमारी नमस्कार हो, आप अपना जो काम हम से कहेंगे वह हम करेंगे ॥

द्रोणाचार्य जी ने कहा तुमने जो यहां देखा है वह भीष्म जी से जाकर कह दो बस यही हमारा काम है ॥

लड़के भीष्म जी के पास गये और उस ब्राह्मण ने जो कुछ वहां किया था वह उन्हों ने भीष्म जी को कह सुनाया ॥

भीष्म जी ने इस हाल के सुनते ही जान लिया कि वह द्रोणाचार्य है और यह विचार कर कि इन लड़कों को अस्त्र विद्या सिखाने में वह बहुत अच्छे रहेंगे वह उन के पास गये और सत्कार पश्चात् पूछा कि आप का इस ओर आना क्योंकर हुआ है ॥

द्रोणाचार्य ने कहा बहुत दिन हुये में अग्नि वेश महा ऋषि के पास बाण विद्या सीखने के लिये गया था उन्हीं दिनों में वहां पांचाल देश के राजा का पुत्र द्रुपद भी बाण विद्या सीखने को वहां आया करता था इकट्ठे पढ़ने के कारण मेरी उस की परम मित्रता हो गई, इस समय उस ने मुझ से प्रण किया था कि जब मैं राज गद्दी पर बैठूंगा तो राज के सब काम में तुझ को सौंप दूंगा और सारा राज्य तेरे आधीन रहेगा ॥

विद्या पाने पर वह अपने नगर को गया और मैं अपने घर को चला गया और वहां जाकर अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये मैं ने एक धर्मात्मा कन्या से विवाह किया जिस से मेरे हां सूर्य के समान तेजस्वी और बड़ा पराक्रमी पुत्र अश्वत्थामा उत्पन्न हुआ ॥

बाल्यावस्था में अश्वत्थामा धनाढ्य मनुष्यों के बालकों को दूध पीता देख कर घर में आकर दूध मांगता और दूध न मिलने के कारण रोता, मुझे इस से बहुत दुःख हुआ करता, गाय लेने के लिये मैंने कई घर फिरे परन्तु मुझे कहीं से भी गाय न मिली उस की माता जल में चूर्ण घोल कर उस का दूध बना दिया करती और वह उसी को आनन्द से पी लिया करता और धनाढ्य मनुष्यों के बालकों में जा कर कहता कि आज मैंने भी दूध पीया है ॥

वह बालक इस से उस को ठट्ठा करते और कहते कि द्रोणाचार्य को धिक्कार है कि वह अपने लड़के के दूध के लिये धन

नहीं पाता और उस का लड़का बनावटी दूध पीकर अपने आप को दूध पीने वालों की गनणा में लाकर खेलता है ॥

मैंने इस निन्दा को बुरा जाना और अपनी पुरानी मित्रता और उस के वचन को याद करके अपनी स्त्री और पुत्र को साथ लेकर पांचाल देश के राजा द्रुपद के पास पहुंचा और उस से मिलने पर वह मित्रता जतलाई ॥

द्रुपद मेरी बात को सुन कर हंस कर मुझ से इस प्रकार बोला जैसे कोई किसी तुच्छ आदमी से बोलता है और मुझे कहा कि तू मुझे मूर्ख दीखता है जो मुझ को अपना मित्र बतलाता है पुरानी पहचान समय बीतने पर जाती रहती है, मेरी तेरी मित्रता केवल लड़कपन में थी क्या तू यह नहीं जानता कि वेद पाठी की वेद पाठ रहित से, रथ पर स्वार की पैदल से, धनी की निर्धन से, पंडित की मूर्ख से, शूरवीर की कायर से, राजाओं की ऐसे मनुष्यों से जो राजा नहीं हैं कभी मित्रता नहीं होती, मित्रता की शोभा तो सदैव बराबर वालों में ही हुआ करती है, मित्रता समय पाकर नाश भी हो जाया करती है यह कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो नाश न हो इस कारण तू पुरानी मित्रता छोड़ दे, और मुझे याद नहीं कि मैंने तेरे साथ राज्य के विषय में कोई प्रतिज्ञा की हो, यदि एक आध दिन के वास्ते भोजन की इच्छा हो तो वह तुम को दिया जा सकता है ॥

द्रुपद की यह बातें सुन कर मुझ को बड़ा क्रोध हुआ, मैं वहा से स्त्री और पुत्र को लेकर चल दिया और अब

अपने मनोरथ को पूरा करने के लीये शिष्यों को ढूंडता हुआ यहां आया हूं जो आज्ञा आप दें सो मैं करूं ॥

भीष्म जी ने कहा आप धनुष को उतार कर बैठीये और इस कुरूकुल में सब से पूजित होकर सब लड़कों को अस्त्र विद्या सिखाईये, हमारे पास इस समय जो कुछ राज्य और धन है उस को और हम सब को भी अपना जानीये, हमारे आहो भाग्य हैं कि हम को आप मिल गये हैं जो कुछ इच्छा आपकी हो वह हम से काहिये हम उस को तत्काल ही पूरा करने का यत्न करेंगे ॥

चौसठवां अध्याय

—:o:—

द्रोणाचार्य का सब लड़कों को अस्त्र विद्या सिखाना, उन की अस्त्राभ्यास में परीक्षा और अर्जुन का सब से जीत कर गुरू से ब्रह्मशर अस्त्र पाना ॥

द्रोणाचार्य जी को निवास के लीये एक मनोहर स्थान धन आदि सहित दिया गया और भीष्म जी ने अपने सब पौत्रों को अस्त्र विद्या सीखने के लिये उन का शिष्य बना दिया, द्रोणाचार्य बड़े प्रेम से उन सब लड़कों को अस्त्र विद्या देने लगे। एक दिन एकांत में उन्हों ने अपने शिष्यों से कहा हमारे मन का जो मनोरथ है क्या सिक्षा समाप्त करने पर

तुम में से कोई उस को पूरा करेगा, इस बात को सुन कर सब कुरू वंशी चुप हो रहे ॥

कुछ देर पीछे अर्जुन ने कहा महाराज मैं आपके उस काम को पूरा करूंगा ॥

यह सुन कर द्रोणाचार्य ने बड़े प्रेम से अर्जुन को अपनी छाती से लगा लीया और बहुत २ प्रसन्न हुआ। उसने पांडवों को सम्पूर्ण अस्त्र विद्या सिखलादी ॥

अंधक वृष्णी आदि अनेक वंश के राजा लोग अस्त्र विद्या सीखने के लिये वहां आकर द्रोणाचार्य जी के शिष्य बने और सूत जी का बेटा कर्ण भी इसी अभिप्राय से वहा आया करता था परंतु वह दुर्योधन से पुष्टी पाकर अर्जुन से द्वेष किया करता थां परीक्षा होने पर अर्जुन सब से बढ़ गया और गुरू जी इस कारण सब में से उस का अधिक मान करने लगे॥

द्रोणाचार्य जी सब शिष्यों को एक ही आंख से देखा करते और सब को एक सी विद्या सिखाते, यदि अपने पुत्र को कोई रहस्य की बात बतलानी होती तो उस को खुले मूंह का घड़ा और शिष्यों को तंग मूंह के घड़े देकर पानी लाने को कहते, उन का पुत्र अपने घड़े को भर कर सब से पाहिले आजाता और उस समय में वह उस को रहस्य बतला देते, अर्जुन भी वरूणास्त्र से घड़े को शीघ्र भर कर गुरू पुत्र के साथ ही आजाता इस कारण अर्जुन सब गुणों में गुरू पुत्र के बराबर ही रहता था, गुरू जी भी अर्जुन की सेवा और उस के अस्त्र अभ्यास से उस पर प्रसन्न रहते थे॥

द्रोणाचार्य जी ने अर्जुन को एक दिन अस्त्राभ्यास करते हुये देख कर रसोईये को बुला कर कहा कि तू अर्जुन को अंधेरे में भोजन करने को कभी न देना, रसोईया सदैव इस बात का ध्यान रखता था, एक दिन जब अर्जुन रसोई खारहा था वहां का दीपक बुझ गया और अर्जुन का हाथ अंधेरा होने पर भोजन पर न पड़ा बरन इधर उधर पड़ा इस से उस को विचार आया कि अंधेरे में भी अस्त्राभ्यास करना चाहिये और वह रात का भी अभ्यास करने लग गया, रात को उस के धनुष का शब्द सुन कर द्रोणाचार्य जी उस के पास आये और बड़े प्रेम से उस को अपनी छाती से लगा कर कहा मैं तुझ को धनुर्धारीयों में सब से श्रेष्ठ बना दूंगा ॥

द्रोणाचार्य संसार में इतने विख्यात हुये कि सब देशों के राजा और उन के लड़के अस्त्र विद्या के सीखने के लिये उन के पास आते ॥

एक दिन हिरण्य धनुष नाम धीमरों के राजा का बेटा एकलव्य नाम भी उन के पास बाण विद्या सीखने के लिये आया द्रोणाचार्य ने धीमर होने के कारण उस को अपना शिष्य न बनाया और वह लड़का उन को मन से गुरू मान कर और नमस्कार कर के बन को चलागया, और वहां उस ने मट्टी ले कर द्रोणाचार्य की एक मूर्ती बनाई और बड़ी गुरू भक्ती से बाण का अभ्यास करने लगा और थोड़े ही दिनों में वह अच्छा बाण चलाने लगगया ॥

एक दिन द्रोणाचार्य की आज्ञा से सब कौरव और पाडव शिकार खेलने के लिये एक बन में गये उन के पीछे एक

मनुष्य शिकार का सामान और एक कुत्ता लेकर गया वह कुत्ता वन में घूमने लगा और घूमते घूमते धीमर राजा के पुत्र एकलव्य के पास पहुंचा, और उस को देख कर भौंकने लगा उस ने उस कुत्ते के मूंह पर इकठे सात बाण मारे वह कुत्ता भागा हुआ पांडवों के पास पहुंचा, कुत्ते के मूंह पर इकठे सात बाण लगे हुये देख कर वह चकित रहगये और सब के सब बाण मारने वाले की ढूंढ में लग गये, और उस को पालिया, और पहचान न सकने पर उस से पूछने लगे कि तू कौन है और किस का शिष्य है॥

उस ने कहा मैं हिरण्य धनुष्य धीमर का बेटा और द्रोणाचार्य जी का शिष्य हुं और यहां बाण विद्या में अभ्यास किया करता हुं॥

धीमर की यह बात सुन कर सब चुप चाप वहां से चले आये और गुरू जी से यह सारा वृत्तांत कह सुनाया, अर्जुन ने द्रोणाचार्य जी को एकांत में ले जाकर कहा महाराज आपने मुझ को एक दिन बड़ी प्रीति से छाती से लगा कर कहा था कि मेरे सब शिष्यों से तू अधिक होगा फिर निषाद पति का एकलव्य नामी बेटा मुझ से अधिक पराक्रमी किस प्रकार से होगया॥

द्रोणाचार्य इस बात को सुन कर विचार में पड़ गये और उन सब शिष्यों को लेकर उस वन में गये और उस जटाधारी और फटे पुराने कपड़े पहने हुये एकलव्य को देख कर वहां ठहर गये॥

एकलव्य ने द्रोणाचार्य जी को झट पहचान लिया और गुरू के समान उन की पूजा की ॥

द्रोणाचार्य जी ने कहा यदि तू मेरा शिष्य है तो मुझ को गुरू दक्षिणा दे ॥

एकलव्य वड़ा प्रसन्न हुआ और वोला महाराज जो कुछ आप आज्ञा देंगे मैं वड़ी प्रसन्नता से करूंगा ॥

द्रोणाचार्य ने कहा तू अपने दाहिने हाथ का अंगूठा मुझ को देकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर ॥

एकलव्य ने उसी क्षण अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काट कर गुरू को दे दिया और उसी समय वह अपनी उंगलीयों से खैंच कर वाण चलाने लगा परंतु अंगूठा न रहने से हाथ की वह लाघवता जाती रही । ऐसा करने से द्रोणाचार्य ने अपने उस वचन को जो उस ने अर्जुन को यह कह कर दिया था कि मेरे शिष्यों में तुझ से कोई अधिक न होगा पूरा किया और अर्जुन इस से वहुत प्रसन्न हुआ ॥

गदायुद्ध में दुर्योधन और भीमसेन ने सव से वढ़ कर अभ्यास कीया नकुल और सहदेव ने तलवार के अभ्यास में सव को पीछे छोड़ा, युधिष्ठर रथ हांकने में सव से आगे वढ़ गया, अश्वत्थामा ने सव रहस्यों में अधिकता पाई और अर्जुन सव वातों में अवतीर्ण हो गया । इन के इन सव गुणों को देख कर धृतराष्ट्र के पुत्र इन से द्वेष रखते ।

द्रोणाचार्य ने चाहा कि अव इन सव की एक दिन परीक्षा ली जाये इस के लीये उस ने एक दिन नियत कीया

उस दिन उस ने लकड़ी की एक बतक लेकर उस को एक वृक्ष से लटका दिया और उन सब से कहा कि जिस समय हम कहें तुम सब अपने २ धनुष में बाण लगा कर इस बतक की ओर लक्षभेदन करने को खड़े रहो और जब हम पुनः आज्ञा दें तभी बाण मार कर उसका सिर काट डालो ॥

सब से पहिले उस ने युधिष्ठिर को बुलाया और कहा कि अपने बाण को वृक्ष पर बैठी हुई बतक की ओर संधान कर जब मैं कहूं तब बाण छोड़ना युधिष्ठिर ने वैसा ही किया और इसी तरह उस की ओर धनुष ताने खडा रहा, द्रोणाचार्य ने पूछा तुझे बतक दिखाई देती है या नहीं युधिष्ठिर ने कहा हां महाराज दीखती है, दो घडी पीछे फिर पूछा कि बतलाओ अब तुम्हें क्या क्या दीखता है, युधिष्ठिर ने कहा महाराज वह बतक और वृक्ष, आप और सब भाई मुझे दीख रहे हैं ॥

द्रोणाचार्य ने अप्रसन्न हो कर कहा हट यह निशाना तुझ से नहीं होगा, इस के पीछे उस ने अपने अन्य सारे शिष्यों को बारी बारी बुला कर इसी प्रकार उन की परीक्षा ली और सब से वैसा ही उत्तर पाकर बहुत अप्रसन्न हुये और उन को पीछे हटा दिया॥

अब द्रोणाचार्य जी ने अर्जुन को बुला कर कहा तू इस बतक पर निशाना बांध और जब हम कहें तब निशाना लगा अर्जुन ने वैसा ही किया और निशाने बांधे खड़ा रहा दो घड़ी पश्चात द्रोणाचार्य ने पूछा तुझ को क्या क्या दीखता है अर्जुन

ने कहा महाराज मुझ को केवल बतक दीख रही है गुरू ने कहा बाण को अभी और ताने रख, फिर दो घडी बाद पूछा कि अब तू क्या देख रहा है, अर्जुन ने कहा महाराज अब केवल बतक की ग्रीवा ही दीख रही है और कुछ नहीं दीखता गुरू ने कहा शीघ्र बाण को छोड़ दे ॥

अर्जुन ने गुरू की आज्ञा मान कर बाण छोड़ा ही था कि उस बतक की गर्दन कट कर वृक्ष के नीचे आ पडी इस से द्रोणाचार्य जी बहुत ही प्रसन्न हुये और जान गये कि अब हमारा मनोरथ पूरा हो गया ॥

एक दिन द्रोणाचार्य जी सब शिष्यों को साथ लेकर गंगा स्नान को गये जल में उतरते ही उन की जांघ को एक मगर ने पकड़ लिया यद्यपि वह आप उस मगर को कुचल कर उस से अपनी जांघ छुड़ा सकते थे परंतु अपने शिष्यों की परीक्षा का उन को यहां भी विचार आगया उन्होंने शिष्यों से कहा कि मगर को मार कर मुझ को छुड़ाओ ॥

अर्जुन ने पांच बाण मार कर उस के पांच टुकड़े कर दिये और वह मगर जांघ से पृथक हो गया । बाकी सब शिष्य उस से डर कर इधर उधर हो गये ॥

अर्जुन के इस काम से द्रोणाचार्य जी बहुत प्रसन्न हुये और उस को महा बलवान और पात्र जान कर ब्रह्मशर नाम अस्त्र प्रयाग संहार सहित दिया और कहा कि युद्ध में शत्रु के बिना इस को किसी मनुष्य पर मत चलाना क्योंकि यह थोड़ा आधार पाने से जगत को भस्म कर देगा ॥

पैंसठवां अध्याय

—:०:—

द्रोणाचार्य का धृतराष्ट्र से कह कर राज पुत्रों की परीक्षा के लिये रंग भूमि बनवाना और नियत दिन पर उन सब का वहां जाकर अपना अपना अस्त्राभ्यास दिखाना ॥

एक दिन द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र से सभा में जहां मंत्रियों और कर्मचारीओं के अतिरिक्त बाह्लीक, कृपाचार्य, भीष्म, विदुर, सोम दत्त और व्यास जी भी बैठे हुए थे जाकर कहा आप के सब पुत्र अब अस्त्र विद्या में निपुण हो गये हैं और अपना अभ्यास जो उन्हों ने हम से पाया है दिखाना चाहते हैं आप उन की शस्त्र शिक्षा को देखिये ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हम ऐसा करने के लिये तत्पर हैं जिस घड़ी जिस दिन और जिस स्थान इस कार्य के लिये जो जो सामान आप को चाहिये आप हम से कहिये हम भी चाहिते हैं कि इस विद्या के जानने वाले आप की दी हुई शिक्षा को देखें और साथ ही धृतराष्ट्र ने विदुर जी को आज्ञा दी कि द्रोणाचार्य जी के साथ जाकर जो वह कहें सा करें और करावें ॥

विदुर जी द्रोणाचार्य जी को साथ लेकर सभा से बाहर आये और सम धर्ति की ढूंड भाल में लगे और नदी के तट पर वृक्षों, झाड़ियों आदि से रहित एक सम धर्ति चुन कर अच्छी

तिथि और नक्षत्र में वहां वाली कर्म कराया और उस पर मंडप जिस की सजावट देखने ही के योग्य थी बनवाया, राजाओं, मंत्रियों, कर्मचारियों, प्रजा के धनाढ्य और कंगाल मनुष्यों के लिये यथायोग्य स्थान बनवाये. राज कुल की स्त्रियों के लिये पृथक् एक ऊंचा स्थान बनवाया और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लाकर वहा पर रख दिये और नगर में डोंडी पिटवा दी कि अमुक दिन अमुक स्थान पर राज पुत्रों की अस्त्र विद्या में परीक्षा होगी ॥

नियत दिन पर धृतराष्ट्र सुन्दर मोतियों की माला, सुवर्ण के आभूषण और बहु मुल्य चमकते दमकते वस्त्र पहिने हुए भीष्म जी, कृपाचार्य और मंत्रियों को साथ लिये हुये उस सजी हुई रंग भूमि में आये और राजवंश की स्त्रियां गंधारी, कुंती आदि अपनी २ दासीयों सहित वहां आई, नगर के धनाढ्य, कंगाल, ब्राह्मण, क्षत्री आदि भी वहां आंपहुंचे और सब अपने २ स्थान पर बैठ गये और एक बहुत आनन्द देने वाला बाजा बजने लगा ॥

द्रोणाचार्य जी श्वेत माला, जनेऊ और वस्त्र पहिने हुये मस्तक पर श्वेत चंदन लगाये हुये अपने पुत्र अश्वत्थामा को साथ लेकर आ बैठे ॥

समय आने पर द्रोणाचार्य जी ने देव पूजा की और ब्राह्मणों ने मंगल रूपी मंत्र पढ़े और युधिष्ठ आदि सब शिष्य अपने अपने अस्त्र शस्त्रों को धारण किये हुये रंग भूमि में गये और अपना अपना अस्त्राभ्यास दिखाने लगे ॥

पहिले उन्हों ने घोड़ों पर चढ़ कर अनेक प्रकार से बाणों द्वारा निशाने लगाने की हस्त क्रिया दिखाई और पुनः हाथी रथों आदि पर बैठ कर तिरछे ऊंचे और घूमते हुये निशानों के लगाने में अड्डागा, मंडल, जाना, आना आदि अनेक चालें दिखाईं, तलवार ढाल ले कर अनेक चालों के प्रयोग किये और अपनी अपनी चतुरता, शोभा, निडरता और शीघ्रता दर्शाई, भीमसेन और दुर्योधन ने अपनी २ गदा लेकर मस्त हाथियों के समान गर्जते हुये दाहिने बायें मंडलों सहित गदा युद्ध की चालें दिखलाईं ॥

इन सब के कर्मों को कुंती गंधारी से और विदुर जी धृतराष्ट्र से कहते जाते थे ॥

—:०:—

छठछठवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन और दुर्योधन की गदा युद्ध में और अर्जुन की सब अस्त्रों में परीक्षा, कर्ण का अपना अस्त्राभ्यास दिखाना और अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध ॥ मांगना ॥

अब दुर्योधन और भीमसेन का गदा युद्ध होने लगा इस समय दोनों के पक्षपाती कोलाहल करने लगे दुर्योधन के प्रबल होने से उस के पक्षपाती पुकारते भीमसेन को मार लिया और भीमसेन के प्रबल होने पर उस के पक्षपाती पुकार उठते दुर्योधन हार गया वह दोनों युद्ध में ऐसे डटे कि कथन

नहीं हो सकता यही जान पड़ता था कि जिस के मस्तक पर चोट आई वह चल बसा ॥

इस पर द्रोणाचार्य घबरा गये और उन्हों ने उचित समझा कि इन को अब पृथक २ कर दिया जाये उन्हों ने अपने पुत्र अश्वत्थामा को आज्ञा दी कि बीच में जाकर इन को रोक दे वह रंग भूमि में गया और बहुतेरा यत्न उन को रोकने का किया परंतु उन दोनो ने उस की बात पर तनक ध्यान न दिया अंतम द्रोणाचार्य जी ने स्वयं जा कर उन को इस युद्ध से हटाया । इस समय वहां बड़ा कोलाहल मच रहा था कोई कुछ कहता था कोई कुछ, ऐसी दशा को देख कर स्वयं द्रोणाचार्य जी सिंह समान गरजते हुये रंग भूमि में गये और सब से पुकार कर कहा तुम लोग शांत होकर अर्जुन का अभ्यास देखो ॥

द्रोणाचार्य के यह सब्द सुन कर सब मनुष्य अर्जुन की ओर देखने लगे उस के सिर पर जराऊ मुकट, शरीर पर चमकते हुए वस्त्र, कंधे पर बाणों से भरा हुआ तर्कस, हाथों की उंगलियों में चमड़े के मोजे मानों आकाश से इन्द्र देव उतर कर आये हैं इस दृश्य को देख कर कुन्ती इतनी प्रसन्न हुई कि उस के पयोधरों से दूध की धारा बहने लगी और सब वहां बैठे हुये मनुष्य उच्च स्वर से अर्जुन की शोभा करने लगे ॥

धृतराष्ट्र ने इस कोलाहल को सुन कर विदुर जी से पूछा कि यह उच्च शब्द कैसा और किस लीये हुआ है ॥

विदुर जी ने कहा महाराज पांडु का पुत्र अर्जुन अब

रंग भूमि में आया है इस को देख कर सब लोग आनन्दित हुये है ॥

धृतराष्ट्र बोला धन्य हैं मेरे भाग्य कि कुंती के पुत्र ऐसे हुए हैं, अर्जुन ने रंग भूमि में आते ही अग्नि अस्त्र को छोड़ कर चारों ओर अग्नि वर्षा दी और पुनः वरुण अस्त्र को छोड़ कर शीघ्र ही उस अग्नि को शांत कर दिया वायव्यान से वायु और पर्जन्य अस्त्र से चारों ओर बादल ही बादल प्रकट कर दिये। पुनः भौमास्त्र को छोड़ कर वह स्वयं पृथ्वी में घुस गया और पुनः अंतर्द्धान अस्त्र से अंतर्द्धान हो गया। वहां बैठे हुये लोग यह सब कुछ देख कर वाह वाह कर रहे थे ॥

पुनः वह अपने करतब दिखाने लगा, क्षण में छोटा क्षण में बड़ा हो जाता, क्षण में रथ की धुरी पर, क्षण में रथ के भीतर और क्षण में धरती पर खड़ा हो हो कर अनेक अस्त्र चलाता और बड़े २ निशाने करता ॥

उस रंग भूमि में लोहे का एक शूकर एक भ्रामक यंत्र पर रखा हुआ था उस यंत्र पर घूमते हुये शूकर के मुख में एक साथ पांच बाण मार कर उस का घूमना बन्द कर दिया और रस्सी से लटकते हुए बैल के सींग के भीतर इकीस बाण छेद दिये और पुनः उस में से उन को निकाला इसी प्रकार उस ने तलवार और गदा चलाने के बहुत से बहुत अद्भुत करतब दिखाये ॥

यह सारे करतब दिखला कर अर्जुन ने द्रोणाचार्य के पास आकर दंडवत की और उन्हों ने उस को छाती से लगा

लिया। हर ओर से वाह वाह, करतव हों तो ऐसे हों, यह सब से बढ़ गया है इत्यादि शब्द आने लगे और लोग वाग घरों के चलने की त्यारी करने लगे कि इतने में कर्ण सिंह के समान गरजता हुआ रंग भूमि में आ खड़ा हुआ और द्रोणाचार्य और कृष्ण को तिरस्कार से प्रणाम किया। वहां के सब लोग देखने के लिये कि यह कौन खड़ा हुआ है उठ खड़े हुये॥

तब कर्ण ने कहा हे अर्जुन इस समय जो करतव तू ने कीये हैं हम इस से भी अधिक करतव लोगों को दिखाते हैं तू अभिमान मत कर॥

इस बात को सुन कर सब मनुष्य जहां तहां थे वहीं ठहर गये अर्जुन को इस से कुच्छ लज्जा और साथ ही क्रोध भी हुआ॥

कर्ण ने द्रोणाचार्य की आज्ञा लेकर वह सारे करतव जो अर्जुन ने किये थे कर के लोगों को दिखलाये, इन को देख कर दुर्योधन ने सब भाईयों सहित प्रसन्न होकर कर्ण को छाती से लगा लिया और कहा अच्छा हुआ कि तू आगया, तू मान तोड़ने वाला है मेरा जो राज्य और सम्पत्ति है वह सब तेरा है जिस प्रकार तेरी इच्छा हो उस को भोग॥

कर्ण ने कहा हमारी तुम्हारी जो मित्रता है वह सब कुछ है, हम अब अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध करना चाहते हैं ताकि जान पड़े कि हम दोनों में से कौन बढ़ कर है॥

इस समय कर्ण का बूढ़ा पिता अधिरथ पसीने से भरा हुआ

कांपता कांपता वहां पहुंचा कर्ण ने उस को देखते ही अपना शिर उन के पाओं पर रख दिया और उस ने बड़े हर्ष से शिर को उठाकर उस को छाती से लगा लिया और उस के मस्तक को चूमा ॥

भीमसेन ने उस को सूत का बेटा जान कर कहा तू मनुष्यों में नीच होनेके कारण अर्जुन से युद्ध करने योग्य के नहीं वरन अपने कुल के अनुसार तुझ को दण्ड ग्रहण करना चाहिये. तू इस शोभा के भी योग्य नहीं जैसे कुत्ता चतुर और योग्य होने पर भी यज्ञ में भाग पाने के योग्य नहीं हो सकता ॥

यह सुन कर कर्ण क्रोध से भर गया होंठ फटकने लगे, और स्वास ले ले कर आकाश में सूर्य की ओर देखने लगा, इधर दुर्योधन बड़े क्रोध से भाइयों के बीच में से उठ कर बोला, भीमसेन ठीक नहीं कि तू कर्ण से ऐसी बात कहे क्षत्री वही है जो बल में अधिक हो वर्ण गुण कर्म से होता है जन्म से नहीं कई क्षत्री ब्राह्मण होगये और कई ब्राह्मण क्षत्री, कर्ण बड़ा योग्य है, सुन्दर है, क्षत्री है और इस कारण इस मान्य के उस को दिया गया है योग्य है। इस से सारे दर्शकों में कोलाहल मच गया और सूर्य अस्त होगया ॥

दुर्योधन कर्ण का हाथ अपने हाथ में लिये एक ओर चले गये और भीष्म जी और द्रोणाचार्य, सब पांडवों सहित अपने डेरों में जा आजे ॥

और प्रजा के लोग कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की और कोई दुर्योधन की प्रशंसा करते हुये अपने अपने घरों को गए ॥

कुंती कर्ण की यह दशा देख कर पुत्रवत गुप्त परीति

करने लगी दुर्योधन को अर्जुन का जो भय था वह कर्ण की मित्रता से जाता रहा और युधिष्ठर को यह जान पड़ा कि कर्ण के समान धनुषधारी संसार भर में कोई नहीं है ॥

कर्ण ने इस समय को दुर्लभ जान कर दुर्योधन से बहुत बहुत बातें कहीं जिन से दुर्योधन की प्रसन्नता की सीमा भी न रही ॥

सतासठवां अध्याय

—:०:—

द्रोणाचार्य का सब कौरव और पांडवों से राजा द्रुपद को पकड़ कर ला देने की गुरु दक्षिणा मांगना उन का द्रुपद से युद्ध करना और अर्जुन का उस को पकड़ कर ले आना ॥

द्रोणाचार्य ने दोनों कुरू और पांडवों को एक दिन बुला कर कहा कि अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो चुकी है तुम हमें नीयमानुसार गुरू दक्षिणा दो ॥

उन्हों ने कहा महाराज, जो आज्ञा आप करें हम गुरु दक्षिणा में उस का पालन करने को तत्पर हैं ॥

गुरू ने कहा हमारी गुरू दक्षिणा यही है कि पांचाल देश के राजा द्रुपद को पकड़ कर हमारे पास ले आओ ॥

उन्हों ने झट रथों को त्यार करवाया और द्रोणाचार्य जी को एक रथ में विठला कर वाकीयों में आप स्वार हुए और सेनाओं में से वीर वीर पुरुष अपने साथ लेकर पांचाल देश की ओर चले और द्रुपद के नगर में पहुंच कर उस को कहला भेजा कि हम तुझ से युद्ध करने को आये हैं ॥

द्रुपद यह सुन कर अपने भाईयों और सेना सहित वाण छोड़ता हुआ नगर से वाहर निकल आया ॥

इधर से यह सब रथों से उतर कर उस पर वाण वरसाने लगे ॥

अर्जुन द्रोणाचार्य से यह कह कर कि कौरव द्रुपद को नहीं पकड़ सकेंगे इन को अपने वल अस्त्र की परीक्षा कर लेने दो पीछे मैं उस को पकड़ कर आप के पास ले आऊंगा नगर से आध कोस की दूरी पर ठहर गया था ॥

राजा द्रुपद ने कौरवों की सेना में घुस कर वाण मारते मारते दुर्योधन, कर्ण, विकर्ण और अन्य राज पुत्रों को व्याकुल कर दिया और उन की सेना के छक्के छुड़ा दिये ॥

दुर्योधन, विकर्ण, सुवाहु, दीर्घलोचन और दुशाशन आदि ने भी क्रोधित हो कर द्रुपद को वाणों से छेद दिया परंतु राजा द्रुपद के तीक्ष्ण वाणों का वल अधिक था कौरव मन में हार गए और उन की सेना भी अपना दिल छोड़ वैठी ॥

द्रुपद की प्रजा भी लट्ठ और मूसल आदि भांति भांति के हथ्यार ले कर शंख वजा वजा कर कौरवों की सेना से लड़ने लगी, दोनों दलों में वड़ा युद्ध हुआ, कौरव और उन की

सेना द्रुपद के वाणों और नगर के वासीयों के प्रहारों से व्याकुल हो हो कर हा हा कार करते हुये पाडवों की ओर भागे ॥

उन की यह दशा देख कर अर्जुन प्रसन्न हो गया और गुरू जी के पाओं को छू कर रथ पर बैठ कर द्रुपद के नगर की ओर चलने लगा युधिष्ठर को वहा छोड़ा, भीमसेन को सेना के आगे लगाया और नकुल और सहदेव को सेना की रक्षा पर नीयत किया ॥

जब वहा से द्रुपद के नगर को चले भीमसेन जी (गदा से) जो उन के आगे आता उस का चूरण कर देते, हाथी उन के गदा से मर मर कर गिरते, कई हाथीयों के लहू वहने लगा, बहुत से हाथीयों के माथे फट गए और बहुतों की टागें टूट गई, पुनः भीम सेन ने घोरों, रथों और प्यादों पर हाथ डाला उस के गदा से वह सब ऐसे भागने लगे जैसे बन में ग्वाले की लाठी से पशु भागते हैं ॥

इधर भीमसेन तो द्रुपद की सेना को रोक रहा था उधर अर्जुन ने रथ को बढ़ा कर राजा द्रुपद के सन्मुख जा कर बाणों की वर्षा करके रथ, हाथी, प्यादे और स्वारों को मार मार कर गिरा दिया, यह देख पाचाली सृंजय लोगों ने बड़े क्रोध से बाण मार मार कर और सिंहनाद कर करके अर्जुन का रथ चारों ओर से बाणों से छाय दिया, अर्जुन उन के सिंहनाद को न सह सका और अपने तीक्षण बाणों की वर्षा से सब को व्याकुल करके भगा दिया, उस समय अर्जुन ने हाथ को

ऐसा चलता किया कि वाण लेने और छोड़ने में अन्तर नहीं जाना जाता था ॥

सत्यजित राजा द्रुपद को साथ लेकर अर्जुन पर लिपटा उसने आगे से उनको वाणों से ढक दिया और द्रुपद की सेना में यह बात फैल गई कि अर्जुन द्रुपद को इस तरह पकड़ना चाहता है जिस तरह सिंह हाथीयों में से गजराज को पकड़ता है, सत्यजित द्रुपद को अर्जुन से बचाने लगा, अर्जुन और द्रुपद एक दूसरे की सेना को मार मार कर भाग रहे थे, सत्यजित के पास आते ही अर्जुन ने दश वाण मार कर उस के मर्म स्थानों को छेद डाला और सत्यजित ने सौ वाण मार कर उसे ढक दिया ॥

अर्जुन ने अपने धनुष के प्रत्यंचा को और चढ़ा लिया और तीक्ष्ण वाण मार कर सत्यजित का धनुष काट डाला ॥

सत्यजित ने झट दूसरा धनुष लिया और उस से वाण मार २ कर अर्जुन को घोड़े रथ और सराथी सहित व्याकुल कर दिया ॥

अर्जुन ने पुनः सत्यजित पर वार किया और शीघ्र ही अपने वाण से सत्यजित का धनुष काट कर उस के सारथी और घोड़ों को मार डाला तब सत्यजित ने अर्जुन के सन्मुख आना छोड़ दिया ॥

पुनः राजा द्रुपद अर्जुन पर वाणों की वर्षा करने लगा अर्जुन ने इस समय उस का धनुष और ध्वजा काट डाली और पांच वाणों से उस के रथ के सारथी और घोड़ों को मार कर

हाथ में तलवार लेकर द्रुपद के पकड़ने के लिये उस के रथ पर चढ़ गया और उस को पकड़ लिया, यह देख कर द्रुपद की सेना भाग निकली और अर्जुन उस को पकड़े हुये उस की सेना से बाहर चला आया ॥

अब बाकी राजकुमार द्रुपद की सेना को मारने लगे परंतू अर्जुन ने उन को ऐसा करने से यह कह कर कि द्रुपद से हमारी कोई शत्रुता नहीं यह राजाओं में श्रेष्ट और हमारी कुल से सम्बन्ध रखता है हमें गुरू दक्षिणा देने के लिये केवल उस को पकड़ना था सो हम ने पकड़ लिया है अब चलो गुरू जी को गुरू दक्षिणा दें रोक दिया ॥

भीमसेन जी ने युद्ध करना बंद कर दिया और राजा द्रुपद को मंत्रीयों सहित पकड़ कर गुरू जी के पास ले जा कर उन के सन्मुख खड़ा कर दिया ॥

द्रोणाचार्य जी ने राजा द्रुपद से कहा मैंने तेरे देश को आज जीत लिया है अब तू जीता हुआ ही पकड़ा गया है क्या तू अब मुझ से पुरानी मित्रता का फल चाहता है या नहीं, यह कह कर द्रोणाचार्य बहुत हंसे और पुनः कहा हम ब्राह्मण सदैव दयावान होते हैं तू अपने प्राणों का भय मत कर, बालपन की मित्रता के कारण अब मैं तेरे साथ मित्रता किया चाहता हुं परंतू तुझ को याद होगा कि तूने मुझे कहा था कि मित्रता बराबर वालों में होती है अर्थात राजाओं की मित्रता राजाओं से होती है इस कारण गंगा के दक्षिण

के ओर के देशों में तू राज्य कर और उस के उत्तर के देशों में मैं राज्य करूंगा ॥

द्रुपद ने कहा पराक्रमी और महात्माओं के लिये कुछ आश्चर्य की वात नहीं है इस में मैं भी प्रसन्न हुं और आप से सदैव प्रीति चाहता हुं ॥

द्रोणाचार्य ने शिष्यों को आज्ञा दी कि द्रुपद को छोड़ दो और उन्हों ने तत्क्षण उस को छोड़ दिया ॥

द्रुपद ने द्रोणाचार्य जी को अपना आधा राज्य वांट दिया मकंदी और कपिल्य नगर इन के आधीन कर दिये और दक्षिण के सव नगरों का राज्य द्रुपद आप करने लगा ॥

द्रोणाचार्य जी ने अहिछत्र नाम नगर को अपनी राज्य-धानी वनाया और द्रुपद ब्रह्मवल से अपनी हार मान कर इस सोच में हुआ कि द्रोण से वदला ले इस चिंता में वह सव काम छोड़ वैठा और ऋषियों और मुनियों के आश्रमों में फिरने लगा किसी ने कोई युक्ति न वताई ॥

राजा एक दिन याज और उपयाज के आश्रम में पहुंचा और उन से विनय की कि वह द्रोण से वदला लेने की युक्ति वतावें उन्हों ने कहा हे राजा तू पुत्रेष्टि यज्ञ कर जिस से तेरे हां एक वड़ा वलवान और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा वह द्रोण को मारेगा ॥

द्रुपद ने उस यज्ञ को किया और इस से उस को धृष्टद्युम्न नाम एक पुत्र और कृष्णा नामी एक महा रूपवती कन्या हुई, इस लड़के ने द्रोणाचार्य से अस्त्र विद्या प्राप्त की और कन्या

द्रोपदी के नाम से पुकारी गई, इसी पुत्र के हाथों युद्ध में द्रोणाचार्य का वध हुआ। एस ही यज्ञ में भीष्म के मारने के लिये काशी राज की बड़ी पुत्री अम्बी ने शिखण्डनी का जन्म धारण किया ॥

अठसठवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र पाना और उस का इस से बड़े बड़े राजाओं को जीत कर धन लाना और पांडवों की इस बढ़ती को देख कर धृतराष्ट्र का उदास होना ॥

धृतराष्ट्र ने जब देखा कि युधिष्ठर सुधा, क्षमावान, दयवान प्रजा पालक और सुकर्मा है तो उस ने उस को युवराज बना दिया ॥

युधिष्ठर ने थोड़े ही दिनों में अपने विनयादि गुण और प्रजा के समाधान से अपने पिता से अधिक यश पा लिया, गदा युद्ध और तलवार में जो न्यूनता रह गई थी भीमसेन ने उस को बल राम जी से पूरा किया, अर्जुन को ब्रह्मास्त्र मिल चुका था, सहदेव नीति में निपुण हो चुके थे नकुल ने भी चित्रयोधीरथी नाम पा लिया था ॥

अब इन की इच्छा हुई कि इधर उधर के देशों को जीत कर अपने आधीन करें, सब से पहिले सौवीर नाम उत्तर दिशा के

राजा की बारी आई अर्जुन ने इस से आकर युद्ध किया और युद्ध में उस को जीत कर मार डाला, पुनः दत्ता मित्र और सुमित्र नाम राजाओं को भी जीत कर यम लोक में पहुंचाया ॥

इस के पीछे अर्जुन ने भीमसेन को अपने साथ लिया और दक्षिण दिशा को निकले, रासता में जो राजा मिला उस को मार कर उस का धन सम्भाला और इस प्रकार वह बहुत धन अपने साथ हस्तिना पुर में लाये ॥

पांडवों के इस सारे महत्व को देख कर धृतराष्ट्र अकस्मात ही पांडवों की ओर से बिगड़ गया और ऐसा बिगड़ा कि बिना नींद रातें इसी विचार में काटने लगा ॥

एक दिन उस ने अपने कणिक नाम मंत्री को बुला कर कहा पांडव दिन प्रति दिन बढ़ रहे हैं मैंने तुम को संधि और विग्रह का निश्चय करनेके लिये बुलाया है इस विषय में जो कुच्छ तुम्हारी समझ में आवे सो कहो ॥

कणिक ने कहा राजन् राज नीति में इस विषय पर जो कुच्छ लिखा है वह मैं आप के सन्मुख कहता हुं ॥

राजा को उचित है कि हर समय दंड देने के लिये तत्पर रहे, सदैव अपना पराक्रम प्रकट करता रहे. अपना भेद गुप्त रखे और किसी पर उस को प्रकाश न होने दे, दूसरे का भेद सदैव लेता रहे, राजा सदैव ऐसी रीति से रहे कि उस से सदैव सब डरते रहें, शत्रु को अपना छिद्र न देखने दे वरन् शत्रु के छिद्र आप देख ले, कभी कोई काम अधूरा न छोड़े, हर एक काम को पूरा कर के छोड़े, शत्रु को कभी बाकी न

रहने दे, यदि शत्रु भाग गया हो तो उस को ढूंड कर मार दे या जिस समय वह मिले उस समय उस को यम लोक में पहुंचावे ॥

यदि शत्रु निर्बल भी हो तौ भी उस को न छोड़े, यदि शत्रु बलवान हो तो चुपका हो रहे और समय पाने पर उस का नाश करे साम दाम, दंड और भेद आदि उपायों से शत्रु को सदैव वश में रक्खे ॥

यदि शत्रु दीन हो कर शरण में आए तो भी उस का नाश करे और उस के जो पक्षी हों उन को भी उस के साथ ही यम पुरी को पहुंचावे ॥

जिस राजा के छिद्र को शत्रु देखता है वह कभी रक्षित नहीं कहा जा सकता, शत्रु चाहे छोटा भी हो उस से सदैव डरना उचित है, अग्नि होत्र करके अथवा साधु का वेष बना कर जिस प्रकार हो सके अपना विश्वास करा कर शत्रु का नाश करके अपना काम निकाल लेना चाहिये ॥

शत्रु की स्तुति कर के उस को शिर पर चढ़ाय कर जब अवसर मिले मार डाले, शत्रु चाहे नम्रता से भी बोले उस पर दया नहीं करनी चाहिये, साम दाम, दण्ड और भेद इन चारों उपायों से जिस एक से अथवा दोनों तीनों या चारों से शत्रु को अवश्य मार देना चाहिये ॥

धृतराष्ट्र ने कहा इन चारों उपायों से शत्रु को किस प्रकार मारना चाहिये विस्तार पूर्वक बतलाये ॥

कणिक ने कहा इस कथा से जो मैं आप को सुनाता

हुं सब कुच्छ आप जान लेंगे ॥

किसी समय एक शृगाल ने एक व्याघ्र, एक चूहे, एक भेड़िये और एक न्योले से मित्रता की और उन के साथ वन में रहने लगा एक दिन एक हिरन चरता हुआ उस के स्थान के निकट चला आया शृगाल ने अपने आप को उस के पकड़ने को असमर्थ पाकर व्याघ्र को कहा कि आपने इस हिरन के मारने का कई वार उपाय किया परंतु वह आप से न मर सका, यदि यह हमारा मित्र चूहा उसके पाओं को काट कर उस को लंगड़ा कर दे तो वह सुगमता से आप से पकड़ा जाय और फिर उस के मरने पर हम सब आनन्द पूर्वक उस को खायें ॥

यह सुन कर चूहे ने हिरन की टांगों को काटा जिस से वह भाग न सका व्याघ्र ने उस को तुरंत पकड़ लिया और मार डाला शृगाल, उस हिरन के पास जा बैठा और सब से कहा तुम सब स्नान करके आओ हम सब इकठे बैठ कर इस को आनन्द पूर्वक खायेंगे, वह सब स्नान करने को चले गये और शृगाल अपने मुख को चिंता युक्त बना कर वहां ही बैठ गया, व्याघ्र स्नान करके पहिले पहुंचा और शृगाल को चिंता में बैठा देख कर उस से पूछा कि तू तो बड़ा चतुर बुद्धिमान और पंडित है किस बात की चिंता कर रहा है आज तो हमने हिरन को खा कर आनन्द पूर्वक वन में विहार करना है ॥

शृगाल ने कहा चूहे ने मुझे अभी ऐसी बात कही है कि उस को सुन कर मुझे बड़ी ग्लानी हो गई है और मेरा चित्त इस मृग के खाने को नहीं चाहता, चूहा कहता है

कि सिंह के बल को धिक्कार है जो आज मेरे द्वारा मारे हुये हिरन को खा कर अपना पेट भरेगा ॥

व्याघ्र ने कहा यदि उस ने ऐसा कहा है तो मैं इस हिरन को कदापि नहीं खाऊंगा वरन अपने बल द्वारा जो भोजन मुझे मिलेगा मैं उस को आहार करूंगा, यह कह कर व्याघ्र जीवों को मारने के लिये वन को चला गया ॥

इतने में चूहा आ गया शृगाल ने उस को कहा भाई न्योला मुझ से यह कहता था कि मुझ को मृग का मांस अच्छा नहीं लगता मैं तो चूहे को मार कर खाऊंगा यह सुनते ही चूहा वहां से भाग कर अपने बिल में जा घुसा ॥

इस अवसर में भेड़िया भी स्नान कर के वहां आ गया शृगाल उस से बोला हे मित्र न जाने आज व्याघ्र किस बात पर तुझ से क्रुद्ध हुआ हुआ है वह अपनी स्त्री सहित अभी आने वाला है तुम्हारे विचार में जो आवे सो करो वह भी डरता हुआ वहां से भागा ॥

पुनः न्योला आया शृगाल ने कहा पहिले हम से युद्ध करो यदि तुम जीत गए तो हिरन को खा लेना, न्योले ने कहा जब तुम ने बाकी तीनों को भगा दिया है तो मैं तो बेचारा निर्बल और दीन हुं मेरी क्या सामर्थ्य है कि आप के सन्मुख आऊं। यह कह कर वह भी चलता बना ॥

कणिक ने कहा महाराज उस शृगाल ने इस प्रकार उन सबों को ठग कर और स्वतंत्रता से बैठ कर उस हिरन का भोग लगाया जो राजा इस प्रकार से आचरण करता है वह स्वतंत्रता से सुख भोगता है ॥

राजा को उचित है कि वह सदैव नीति वरते और डर-पोक को डर दिखाकर, शूरवीर को नम्रता से, लोभी को द्रव्य से और अपने बराबर के और अपने से निर्बल को पराक्रम से अपने वश में करे। पुत्र, मित्र, स्त्री, भाई, पिता अथवा गुरू जो कोई शत्रु से जा मिले उस को यम भूमि को पहुंचावे और जो गुरू अभिमानी होकर कार्य अकार्य का विचार न करे उस को भी मारे अथवा मरवा डाले॥

यदि राजा को शत्रु के सन्मुख क्रोध आ जावे तो उस क्रोध को हंसी में बदल दे, शत्रु की निन्दा जब तक वह जीता है कभी न करे, उस से कभी अप्रिय (कड़वा) वचन न कहे, शत्रु को शांत वचनों से अपना विश्वास दिवावे, धर्म मार्ग पर चलने से राजा के ऐसे सब अपराध और दोष इस प्रकार से छिप जाते हैं जैसे काली घटाओं में बड़े बड़े पर्वत लोप हो जाते हैं।

राजा को चाहिये कि शत्रु को मार कर उस के घर को जलादे और अधम, नास्तिक और चोरों को अपने राज्य में न बसने दे।

जब शत्रु आवे उस को आगे से लेने जावे, उत्तम आसन पर बिठावे और यदि धन देने की आवश्यक्ता हो तो वह भी देदे और जब पूरा पूरा विश्वास हो जावे तब अवसर पाकर मार डाले॥

राजा को विश्वासी और विश्वास घाती किसी का भी विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि विश्वासी की काटी हुई

जड़ कभी हरी नहीं होती है। दूत जो हों उन को बिना परीक्षा नहीं रखना चाहिये चाहे वह अपने सम्बन्धी हों चाहे अन्य पुरुष हों। परीक्षित दूतों को तपस्वियों, साधूओं और अन्य वेषों में शत्रु के देशों में, क्रीड़ा के स्थानों में, मंदिरों में, मद्य बिकने वाले स्थानों में, बाज़ारों में, बड़ी बड़ी गलीओं में, तीर्थों में, चबूतरों पर, कूओं पर, वेश्याओं के घरों के समीप और अन्य स्थानों में जहां जहां मनुष्य इकट्ठे होते हों विचार पूर्वक नियत करना चाहिये॥

राजा को उचित है कि सब के साथ नम्रता से और हंस कर बोले और हृदय को सदैव कठोर रक्खे और समय पर भयंकर काम भी कर डाले॥

जो राजा अपना वैभव चाहता है उस को यह चार बातें अवश्य करनी चाहियें:—सौगंद खाना, शांत रहना, हाथ जोड़ना और चरण छूना॥

अर्थ, धर्म और काम इन तीनों के लिये तीन प्रकार की पीड़ा होती है और तीनों के फलों का भी यही फल है परंतु राजा को चाहिये कि इन के फल को तो शुभ जाने और पीड़ा को छोड़ दे, धर्मात्मा अर्थी और कामी इन तीनों को पीड़ा हुआ करती है॥

राजा को शांत स्वभाव और शुद्धात्मा ब्राह्मणों से जिन के समीप तक घमंड न गया हो मंत्र करना चाहिये, वह दीनात्मा का उद्धार चाहे कठिन हो चाहे सुगम जिस प्रकार हो सके करे और सामर्थ होने पर आश्चर्य का आचरण करे। जब तक

कोई संकट न पड़े मनुष्य को अपना कल्याण कारी मार्ग नहीं दीखता। उस संकट से बचने पर उस को यथावत ज्ञान हो जाता है ॥

यदि शत्रु तिरस्कृत बुद्धि हो तो पहिले उस को कथा सुना सुना शांत करना चाहिये, यदि वह निर्बुद्धि है तो उस का झूठा आदर करके शमन करे यदि पंडित है तो धन दे कर उस को प्रसन्न करे शत्रु से मिलाप करके उस से भय न रखना हानी कारक है ॥

शत्रु की सेना चाहे कैसी थकी हुई हो या भूखी प्यासी हो उस का नाश कर देना उचित है, यदि किसी का कोई काम हो तो वह काम पूरा नहीं करना चाहिये उस में कुछ न्यूनता रहने देनी चाहिये ताकि वह काम वाला अपने आधीन रहे क्योंकि काम के पूरा हो जाने पर वह कभी साथी नहीं रहता, जब कोई काम करना हो गुप्त ही रहे आरम्भ के समय अन्य पर प्रकट हो, यदि कोई डर आने वाला हो तो उस के हटाने का पहिले ही से यत्न करना चाहिये। जो राजा दंड से वश किये हुए शत्रु पर अनुग्रह करता है वह गर्भ धारण की हुई खच्चर के समान नाश हो जाता है जो काम करना हो वह पहिले ही विचार लिया जाए यदि बिना विचार किया जाएगा तो वह अधूरा रह जाएगा, जो राजा शत्रु को छोटा जान कर छोड़ देता है वह उस वन के समान नाश हो जाता है जो अग्नि की एक चंगारी से सारा का सारा जल जाता है, शत्रु को वाईदों में ही टरकाना चाहिये शीघ्र

कुच्छ नहीं देना चाहिये ॥

हे राजन्! पांडव आदि को जिन को आप अपना शत्रु जानते हैं नीति अनुकूल अपने वश में रखीये, वह बड़े शूर वीर हैं, आप अपने आप को उन से बचा रखीये ताकि पीछे किसी बात का पछतावा न रहे ॥

कणिक यह नीति कह कर अपने घर को चला गया और धृतराष्ट्र चिंता में पड़ कर सोचने लगा ॥

उनहत्तरवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का भीमसेन को विष देना और वासुकि नाग की कन्या द्वारा उस का बचना और उस से उस का विवाह ॥

रात दिन दुर्योधन को यही चिन्ता रहती थी कि जिस तरह हो सके भीमसेन को यम पुरी में पहुंचाया जावे, एक वार वह पहिले उस को विष देकर गंगा में डाल चुका था अब पुनः उस ने उस के मारने का विचार किया और अवसर ढूंडने लगा। एक दिन जब बाकी चारों भाई कहीं बाहर गए हुए थे और भीमसेन अकेला घर में बैठा हुआ था दुर्योधन उस के पास आया और बड़ी मीठी मीठी बातें करके उस को अपने साथ ले गया, वहां पहुंच कर दुर्योधन ने उस के आगे अच्छे २ भोजन रख दिये यद्यपि दुर्योधन भीमसेन को आगे

एक बार विष दे चुका था परंतु भीमसेन ने इस बात का कुच्छ विचार न कीया और झट पट वह सब भोजन खा गया कुच्छ काल पीछे जब उस विष ने अपना असर कीया तो उस का शरीर शीत, श्वास बंद और नाडी चलने से रह गई। प्रातः काल होते ही धृतराष्ट्र को भीम की इस दशा की खबर हुई राजा भयभीत हुआ हुआ वैद्यों को साथ लिये हुए वहां पहुंचा और उन से पुच्छा कि क्या रोग है सब ने कहा विष प्रतीत होती है अभी श्वास है, राजा ने शरीर शीत देख कर उन के कथन पर ध्यान न किया और कहा कि लोथ को जल में प्रवाह देना आवश्यक है, भीमसेन के भाईयों को और उस की माता को इस दशा की खबर तक न दी गई और लोथ गंगा जी में वहा दी गई वहते वहते वह पाताल में पहुंची वहां वासुकि नाग की कन्यायें रमन कर रही थीं उन में से एक कन्या अहलमती की उस पर दृष्टी पड़ी उस ने दासीयों को बुला कर आज्ञा दी कि उस शव को पकड़ लाओ वह सब दौड़ पड़ीं और शव को वहां ले आईं जहा अहलमती थी, जब उस कन्या ने उस का मुख देखा वह उस पर मोहित होगई और कहा हाय इस में प्राण नहीं ॥

अहलमति को उस के माता पिता ने श्रीपारवती के पूजन की आज्ञा दी हुई थी ताकि इस को उत्तम पति मिले और वह सदैव सुहाग भोगती रहे, वह सचे दिल से पारवती का पूजन किया करती थी एक दिन पूजा के लिये ताज़ा पानी न मिल सका पूजा अवश्य करनी थी बासी पानी से ही पूजा की गई इस का फल यह हुआ कि गौरां जी ने आज्ञा दी कि हम से मिलो ॥

अहलमती भीमसेन को लेकर घर आई और पुराने कपड़े का एक गेंद बना कर अमृत कुंड में फेंक दिया और निकालना चाहा, अमृत कुंड के रक्षकों ने ऐसा करने से रोका वह कहती थी हम अपना गेंद अवश्य लेंगे और रक्षक कहते थे हम नहीं देंगे इस पर बहुत काल तक झगडा होता रहा अंत को अहल मति की बात को रक्षकों ने मान लिया और गेंद को अच्छी तरह से निचोड कर अहल मति को दे दिया, अभी उस गेंद में अमृत की तरावट बाकी थी अहल मति ने भीम सेन के मुख में वह डाल दी और उन्हों ने आखें खोल दी ॥

भीम सेन आंखें खोलते ही चकित से रह गए और विचारने लगे कि यह क्या मैं देखता हूं, न वह दुर्योधन का स्थान और न वह भोजन, मैं यहां कैसे आगया, अहल मती को जो सन्मुख खड़ी थी पूछा तुम कौन हो, यह स्थान किस का है, इस नगर का क्या नाम है, मुझे यहां कौन लाया है और उस का क्या कारण है ॥

मैं अहलमती इस देश के राजा वासुकि नाग की कन्या हूं इस देश का नाम नाग लोक है, आप गंगा में बहते आरहे थे कि मेरी दृष्टी आप पर पड़ गई मैं ने आप को वहां से निकाला और यहां लाकर, आप को अमृत से इस दशा में लाई हु श्री पारवती जी की कृपा से मुझे आप के दर्शन हुए हैं अब आप यहां रहिये और आनन्द कीजिये ॥

भीम सेन, आप का धन्यवाद करता हुं कि आप ने मेरे प्राण बचाए इस के पलटे में जो सेवा मुझे आप कहें मैं

करने के लिये तत्पर हुं ॥

अहल मती—यही चाहती हुं कि आप यहां रहीये और मुझे सदैव आनन्द में रखीये और यदि अनुचित न हो तो अपने वंश, नगर आदि का हाल बतलाईए ॥

भीम सेन—जम्बू द्वीप के राजा पांडू का पुत्र हुं, पांचों पांडवों में भीम सेन एक नाम आपने सुना होगा, वही में हुं चचेरे भाईयों ने द्वेष से विष दे दिया है, इस से पहिले भी एक बार विष दे चुके हैं मैं बल के भरोसे पर विष की परवाह नहीं करता और जो कुच्छ वह देते हैं खा लेता हुं विष से अभी तृषा नहीं हटी मूंह सूख रहा है, कहो तो इन कुण्डों से प्यास को बुझाऊं ॥

अहल मती—इस बात का नाम न लो, अमृत कुण्डों के रक्षक सांप हैं और वह सांप ऐसे विषधारी हैं कि यदि वह किसी को काट दें तो वह विष कभी न उतरे, कृपा कर के प्यास को रोको और तनक ठहरो मैं पानी का प्रबन्ध कर देती हुं ॥

भीम सेन—मुझ से तो प्यास नहीं रुकती, चाहे कुछ हो मैं अमृत कुंण्डों में जा कर अपनी प्यास बुझाता हुं ॥

अहल मति ने बहुतेरा रोका परंतू भीम सेन ने एक न मानी, वह झट अमृत कुंड में कूद पड़ा और अमृत पीना आरम्भ कर दिया सांप काटने को आय भीम सेन ने एक डण्डा उठा कर जो हाथ दिखाए तो बहुत से सांप वहीं मर गये कईयों को चोटें आईं और कई भाग कर दुहाई देते रोते

पीटते राजा वासुकि के पास पहुंचे और कहा महाराज एक बड़ा लम्बा ऊंचा और मोटा राक्षस नागलोक में आ गया है उस ने सांपों को मार कर धरती पर बिछा दिया है और अमृत पी रहा है ॥

राजा वासुकि ने उन को ढारस दी और कहा कि वह राक्षस नहीं है पवन का पुत्र और राजा युधिष्ठर का भाई भीम सेन है जाओ तुम युधिष्ठर की दुहाई दो, इस पर वह कुच्छ नहीं कहेगा ॥

सांप दौड़ते हुए अमृत कुण्डों के पास आये और राजा युधिष्ठर की दुहाई दी ॥

भीम सेन दुहाई सुन कर हंसता हुआ कुंड से निकला ही था कि राजा वासुकि वहां आ पहुंचा और भीम सेन को आदर पूर्वक अपने स्थान पर ले गया, अपनी सुन्दर कन्या अहल मती का उस के साथ विवाह कीया और बहुत से रत्न, भूषण और उत्तम २ वस्त्र और अन्य पदार्थ साथ दिये ॥

सतारवां अध्याय

—:०:—

सहदेव की ज्योतिष विद्या का चमत्कार, नाग लोक से अहल मती और भीम सेन का हस्तिना पुर में आना, पांडवों को आनन्द और

दुर्योधन को चिंता ॥

जब युधिष्ठर को भीम सेन दृष्ट न पड़ा तो उस को बड़ी चिंता हुई वह बराबर तीन दिन तक उस की ढूंढ में रहा परंतु उस का कहीं भी पता न चला, सब भाई मिल कर सोच रहे थे कि भीम सेन कहां चला गया है सहदेव ने जो ज्योतिष विद्या में पूर्ण विद्वान था समय की कुंडली बनाई और ग्रहों को देख कर भाईयों से कहा कोई डर की बात नहीं भीम सेन जी इस समय नाग लोक में हैं एक सुन्दर स्त्री हाथ आई है और बहुत सा धन भी मिला है ग्रहों का योग था वह छूट गया अब कुच्छ चिंता नहीं ॥

सहदेव ने कहा यह सारी दुष्टता दुर्योधन की है उसने भोजन में विष डलवा कर उसको खिला दिया और जब वह उस विष से व्याकुल हुआ तो उसको गंगा में डलवा दिया वैद्य कहते रहे गए कि भीमसेन अभी मरा नहीं, इस में अभी प्राण हैं और औषधि देने से अच्छे होने की आशा है परंतु दुर्योधन ने एक न मानी और उन वैद्यों को टरका दिया और जितने पुरुष वहां थे उनको डांट दिया कि यह भेद जरा भी खुला तो बाल बच्चों तक नष्ट कर दूंगा ॥

यह सुन कर युधिष्ठर को सुध आई और विचार कि दुष्ट अपनी दुष्टता सदैव किया करते हैं, हमारे अपने दिन यदि अच्छे है तो दुर्योधन की दुष्टता हमारा कुच्छ नहीं बिगाड़ सकती, उसने चिंता को दूर किया और दूतों को भेजा कि नाग लोक में जा कर भीमसेन को ले आवें, दूत तत्क्षण वहां से चल कर नाग लोक में राजा वासुकि के सन्मुख

हाज़िर हुए और युधिष्ठिर आदि भाईयों का संदेसा दिया ॥

राजा वासुकि ने अपनी कन्या और जमाई को बहुत सा धन, ज़ेवर, वस्त्र आदि दे कर बड़ी धूम धाम से हस्तिनापुर को भेजा ॥

भीमसेन जी के हस्तिना पुर पहुंचने पर युधिष्ठिर आदि चारों भाई बड़े प्रसन्न हुए, अह्लमती को कुंती आदि सब रानीयों ने छाती से लगाया और उस का यौवन आदि देख कर सब प्रसन्न हुई. धन, वस्त्र ज़ेवर आदि जो वह साथ लाये थे उनको देख कर सब चकित रह गए ॥

इधर दुर्योधन को भी भमिसेन जी के आने और अपने साथ एक सुन्दर स्त्री और बहुत सा धन इत्यादि लाने की खबर मिली, वह इस खबर को सुनते ही शोक में अचेत होगया और विचारने लगा कि सोचा था क्या और हो क्या गया, हमने तो भीमसेन को मार डाला था परंतु वह जीता हुआ लौट आया है और साथ ही ऐसी सुरूपा स्त्री और इतना धन अपने साथ लाया है ॥

इकहत्तरवां अध्याय

—:०:—

कर्ण का परशुराम जी के पास जा कर अपने आप को ब्राह्मण कुमार बतला कर उन से शस्त्र विद्या सीखना और भेद के खुलने पर

परशुराम जी से शाप ले कर हस्तिना पुर में लौट जाना ॥

कर्ण ने जब रंग भूमी में अपना कर्तब दिखलाया था उस समय उस की आयू केवल पन्द्रह वर्ष की थी, इस अवस्था में द्रोणाचार्य जी से जो विद्या प्राप्त करली थी यह उसी का काम था, विना अर्जुन के और कोई भी उस के सन्मुख न ठहर सकता था, कर्ण को अपने बल का इतना घमण्ड होने पर भी अर्जुन के बल आदि का भय था और वह इस चिंता में था कि जिस प्रकार हो सके अर्जुन के सम होने के लिये परशुराम जी के पास जाऊं ॥

इस विचार को लेते हुए वह एक दिन परशुराम जी के आश्रम में पहुंचा और ब्राह्मणवत दंडवत की, और कहा ॥

महाराज मैं ब्राह्मण कुमार हूं, सेवा करने की इच्छा है और शस्त्र विद्या सीखना चाहता हूं ॥

परशुराम जी ने कर्ण को ब्राह्मण जान कर रख लिया और विद्या सिखलाने लगे ॥

कर्ण ने थोड़े ही समय में परशुराम जी से सम्पूर्ण विद्या सीख ली ॥

एक दिन परशुराम जी किसी आवश्यक काम के लिये आश्रम से चले, कर्ण भी साथ थे चलते चलते एक ऐसे रमणीक स्थान में पहुंचे जहां नाना प्रकार के सुन्दर फूल बड़े बड़े सुन्दर वृक्षों में लगे हुए अपनी सुगंधी से सारे स्थान को सुगन्धित कर रहे थे, नाना प्रकार के पंछी मीठी मीठी

बोलियां बोल कर मन मोह रहे थे, धरती पर सब्ज़ रंग की मखमल के फर्श के समान कोमल घास उग रही थी और मंद मंद वायु उन फूलों की सुगंधि को सारे स्थान में फैला कर वहां के जीवों को आनन्द दे रही थी, वहां परशुराम जी को भी नींद आने लग गई कर्ण ने झट अपनी जांघ पर उन का सिर रख लिया और वह सो गये ॥

इतने में एक कीड़ा जो जोंक के समान था कर्ण की जांघ को लिपट गया और काटने लगा, उस से बहुत सा लहू निकला और कर्ण को बहुत दुःख हुआ परंतु उसने उसकी ओर तनक ध्यान न दिया और अपनी जांघ पर गुरुजी का सिर रख कर बैठा रहा और ज़रा भी न हिला, कीड़ा उसको काटता रहा यहां तक कि लहू परशुराम जी की पीठ से जा लगा, उस गरम गरम लहू के लगने से वह चौंक पड़े, देखा तो धरती लहू से लाल हो रही है और कर्ण की जांघ से लहू बह रहा है, परशुराम जी कर्ण के धैर्य को देख दंग चकित रह गये और कहा धन्य है परंतु धर्म से कहो कि तू ब्राह्मण ही है या कोई और, मुझे कुच्छ संदेह है, यदि तू ब्राह्मण होता तो इतना धैर्य न करता ऐसा जान पड़ता है कि तू ब्राह्मण नहीं है क्षत्री है और तूने केवल शस्त्र विद्या सीखने के लिए झूठ बोला है, तू सच कह कौन है ॥

कर्ण, कर बांधे हुए पैर पैरों सिर धर कर महाराज आप विष्णु का अवतार हैं, मैं निस्संदेह क्षत्री हूं. केवल विद्या सीखने के लिए झूठ बोला है, क्षमा कीजिए यदि मैं अपने

आप को ब्राह्मण न कहता तो आप कभी भी मुझे अपने पास रहने की आज्ञा न देते और न ही इतनी विद्या सिखलाते, आप की कृपा हुई अब मैं इतनी विद्या सीख गया हूं कि एक अकेला बड़ी भारी सेना को इन बाणों से काट सकता हूं, मैंने जो झूठ बोला है केवल विद्या की प्राप्ती के लिए बोला है ॥

परशुराम जी कर्ण के इन शब्दों से बहुत प्रसन्न हुये, उन्हों ने अपने क्रोध को बहुत रोका परंतु सारा क्रोध न रुका, अंत में उन्हों ने कहा, दोष तो तुम्हारा बड़ा भारी है परंतु थोड़ा दंड देता हूं मेरा तुझ को यह शाप है कि आगे पीछे तो तू सब से बढ़ कर रहेगा परंतु युद्ध के समय जब तुझे इस विद्या के प्रगट करने की आवश्यक्ता होगी जो कुछ तूने मुझ से सीखा है वह तुझे काम नहीं देगा ॥

यह सुन कर कर्ण कांपता हुआ गुरू जी के चरणों पर गिर पड़ा और कर बांध कर विनती की महाराज मुझ से पाप हुआ है क्षमा कीजिये शाप फेर लीजिये ॥

परशुराम जी ने कहा हम जो कह दें वह कभी झूठ नहीं होसकता अब ईश्वर का धन्यवाद कर कि बच गया है नहीं तो न जाने क्या होता, इतने पर ही बात टल गई है ॥

कर्ण उदास चित्त गुरू जी के चरणों को छूकर वहां से हस्तिना पुर में आया और पुनः द्रोणाचार्य से विद्या सीखने लगा दुर्योधन कर्ण को देख देख कर बड़ा प्रसन्न होता था, उस का यह विचार था कि जो कुछ भी है इस पृथ्वी पर कर्ण ही है, यह राज्य की रक्षा करने वाला, यही अर्जुन से

बली और यही रण में जीतने वाला है, इससे वह कर्ण को सदैव प्रसन्न रखने का यत्न करता रहता था, इसके पलटे में कर्ण पांडवों से वैर रख कर दुर्योधन को प्रसन्न रखता था ॥

बहत्तरवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन के बुलाने से इन्द्र के ऐरावपत हाथी का आना और उस का पूजन ॥

कंवार की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हस्तिना पुर वासी और समीप के नगरों के लोग हाथी का पूजन कीया करते थे, इस दिन के आने पर सब लोग स्त्री पुरुष एकत्र हुए और एक बड़ा मेला लग गया, दुर्योधन के सब हाथी खूब सजाए गए, कौरवों के राज मन्दिरों की सजावट अपना चमक दमक दिखा रही थी, और उन की स्त्रियों ने भी बहुत सुन्दर और बहु मुल्य वस्त्र पहने हुए थे, अकस्मात अर्जुन अपनी माता कुंती के पास पहुंचे क्या देखते हैं, माता ने मैले कुचैले वस्त्र पहने हुए हैं और उदास हो कर बैठी हुई है ॥

अर्जुन ने कर बांध कर कहा माता जी आज के शुभ दिन इस उदासी और मैले कुचैले वस्त्रों का क्या कारण है ॥

कुंती ने कहा, तुम पांचों अनाथ, मैं दुख्यारी दीन विधवा यदि आज तुम्हारे पिता होते तो आज मुझे भी सुहाग में राग रंग की सूझती तुम जाओ, खेलो, मुझे इसी तरह रहने दो, त्योहार आनन्द में होने से होता है सो राजा धृतराष्ट्

बेटे बहुओं को ले कर मना रहे हैं मेरा भी राजा सुभाग होता तो यह दशा क्यों होती ॥

अर्जुन ने कहा माता जी मेरे होते आप को यह विचार उचित नहीं, राज्य हमारा है या किसी और का, जब चाहें लेलें मैं आप का एक बेटा कौरवों के सौ बेटों पर प्रबल हूं। यदि आज्ञा हो तो पूजा के लिये अभी इन्द्र का ऐरावपत हाथी आप के सन्मुख ला कर खड़ा कर दूं, उस के सामने यह हाथी किस गिनती में है ॥

कुंती ने कहा पुत्र, यदि तुम में ऐरावपत हाथी के लाने की सामर्थ है तो देखते क्या हो शीघ्र लाओ, मैं उसी की पूजा कर लूंगी ॥

[illegible]न ने कहा यह कोई बड़ी बात नहीं मैं ऐरावपत को अभी [illegible] आप इतने में हाथ मुंह धोकर अच्छे वस्त्र पहनिये ॥

[illegible]रानी कुंती इस से प्रसन्न होगई और अर्जुन को कहा बहुत अच्छा ॥

अर्जुन द्रोणाचार्य के पास आकर और उनकी आज्ञा ले कर मंत्र पढ़ते हुए एक तीर मारा तो इन्द्र लोक में हल चल मच गई। सारे देवता भाग भाग राजा इन्द्र के पास गए और कहा महाराज अर्जुन ने ऐरावपत को याद किया है ॥

इन्द्र ने कहा मैं ऐरावपत को नहीं भेजूंगा ॥

देवताओं ने कहा महाराज अर्जुन आप का पुत्र है, आप से चाहे वह कुछ न कहे, पर हमें कष्ट होगा और अवश्य होगा ॥

इन्द्र ने कहा यदि आप इतना डरते हैं तो ऐरावपत को ले जाईये, पर तुम यह नहीं जानते कि वह मृत लोक पर पाओं नहीं रख सकता ॥

देवताओं ने कहा, इस बात का प्रबन्ध हम कर लेंगे, हम आप उस के साथ जायेंगे और फट पट लौट आयेंगे ॥

सब देवता ऐरावपत को अपने साथ लिये हुए हस्तिनापुर में आये सारे नगर में धूम मचगई कि अर्जुन ने अपनी माता के पूजन के लिये राजा इन्द्र से ऐरावपत हाथी मंगा लिया है, सब लोग, स्त्री, पुरुष लडका लड़की, वृद्ध युवक, देखने के लिये दौड़े, महारानी कुंती भी प्रसन्न होती हुई आई और ऐरावपत के दर्शन कर के उस की पूजा की ॥

ऐरावपत हाथी के पाऊं धरती से हाथ भर ऊंचे रहे, भूल चांद और सूर्य के समान चमक रही थी ॥

नगर के सब लोगों ने ऐरावपत का पूजन किया और कहते हुए अपने अपने घरों को चले, धन्य हैं अर्जुन जि ने आज हमें ऐरावपत के दर्शन कराये, कुंती यह सब कुच्छ देख कर बहुत ही प्रसन्न हो रही थी पर दुर्योधन अपने सब भाईयों सहित जलते और कुढ़ते थे और कहते थे कि हमारे इतने बड़े ऐश्वर्य होने पर भी अनाथ और दीन पांडव आज के उत्पत में भी हम से अच्छे रहे, ॥

तिहत्तरवां अध्याय

—:o:—

ऐरावपत हाथी को देख कर दुर्योधन के क्रोध का बढ़ना, पुरवासियों का युधिष्ठर को राज्याभिषेक कराने के लिये धृतराष्ट्र को कहना और दुर्योधन का उस को राज्य न मिलने का उपाय ढूंडना, और वरणावत में पुरोचन द्वारा लाख भवन बनवा कर पांडवों को वहां भिजवाना ॥

ऐरावपत हाथी के आने और लोगों से अर्जुन की शलाघा से दुर्योधन का क्रोध और भी बढ़ गया ॥

और युधिष्टर की योग्यता, उस का सदैव सत्य भाषण, न्याय युक्ति इत्यादि गुण देख कर पुरवासियों ने धृतराष्ट्र से प्रार्थना की कि राज्य सिंहासन पर युधिष्ठर को बिठलाया जावे, धृतराष्ट्र ने इस बात को मान लिया ॥

जब यह खबर दुर्योधन को हुई तो वह क्रोध की अग्नि से जल उठा, झट धृतराष्ट्र के पास जाकर बोला, आप अंधेर कर रहे हैं सर्पों को पाल कर हमारा नाश कर रहे हैं क्या कणिक की नीति ने आप पर यही असर किया है, क्या हम से भीख मंगवानी है, आप राज के अधिकारी थे आप के नेत्र हीन होने से पांडू को राज मिला था, अब उस के पुत्रों का

क्या अधिकार है, अब राज्य हमारा है और हम को मिलना चाहिये ॥

धृतराष्ट्र विचार में पड़ गया, एक ओर अपने पुत्र हैं और दूसरी ओर भतीजे और न्याय परंतू साथ ही दुर्योधन की वह बातें भी हैं जो वह पिता को कहता है। उस ने भीष्म जी विदुर जी से गुप्त सम्मति की ठहराई ॥

गुप्त में बात चीत होते हुए यह बात छिड़ी कि वह राजा पांडू के पुत्र हैं उन का अवश्य अधिकार है कोई उत्तम युक्ति निकालनी चाहिये जिस से झगड़ा न उठे ॥

भीष्म जी ने कहा मेरी सम्मति में यदि आधा आधा राज्य बांट दीया जाये तो अच्छा रहेगा ॥

विदुर जी ने भी भीष्मजी की सम्मति की पुष्टी की

धृतराष्ट्र ने कहा मेरे विचार में भी यही अच्छा इस से प्रति दिन के झगड़े मिट जायेंगे, यह बात वहां निश्चित होगई और धृतराष्ट्र ने राज मंदिर में आकर दुर्योधन को अपने पास बुलाया और कहा ॥

पांडो भी राज्य के अधिकारी हैं, मैं न्याय को नहीं छोड़ सकता मेरा विचार है कि आधा राज्य उन को दिया जावे और आधा तुम को, इस में प्रजा भी प्रसन्न रहेगी और तुम में भी कोई झगड़ा न होगा ॥

दुर्योधन ने कहा आप मालिक हैं जो दिल में आये कीजिए, यदि आधा आधा राज्य ही बांटना है तो बांटिये

मैं राज्य नहीं करूंगा इस से मेरे लिये भीख मांगना अच्छा है ॥

धृतराष्ट्र ने कहा क्या तुम्हारे विचार में पांडवों का कुच्छ अधिकार नहीं ॥

दुर्योधन ने कहा, अधिकार होने या न होने की बात पृथक है, यदि आप को उन पर दया आती है तो थोड़ा बहुत दे दीजिये हम सहन कर लेंगे ॥

कई दिनों तक पिता पुत्र में इसी प्रकार की बातें होती रहीं अंत को धृतराष्ट्र को मानना पड़ा कि पांडवों को कुच्छ थोड़ा बहुत दे दिला कर टाल दिया जाये ताकि दिन प्रति दिन [illegible]गड़े होते हैं वह न हों बस उसने वारणावर्त का देश [illegible] भाग उन को देना ठहराया ॥

[illegible]र्योधन ने यह बात धृतराष्ट्र को मना कर कर्ण, दुशाशन और शकुनि से मेल किया और उन के साथ यह ठहराई कि इन पांचों भाईयों को कुंती सहित जला दिया जाये, इस बात के लिये पुरोचन मंत्री नियत किये गये और उन को कहा गया कि हमारे पिता ने युधिष्ठर को अपने चारों भाईयों और माता सहित वारणावर्त नगर में जा कर रहने की आज्ञा दी है तुम शीघ्र वहां जाओ और जितना धन लगे लगाकर उस नगर के निकट एक राज भवन बनवा कर त्यार करो उस राजभवन की दीवारों में जो मिट्टी लगवाओ पानी के स्थान उस मिट्टी में घृत, तेल, राल, सन्न और अन्य शीघ्र जलने वाली चीजें डलवाना और उनके ऊपर खूब सफाई

कराना जिस से पहचानी न जासके और अग्नि के प्रज्वलित करने वाली चीज़ें उस राजभवन के चारों ओर रखवा देना और उस भवन को चारों ओर से ऐसा सजा देना कि उसके देखते ही उस में निवास को चित्त चाहे और जब पांडव वहां पहुंचें उनको बड़े सत्कार और आदर से लेजा कर पूजन करना और स्वारी और सेज आदि सुख के सब सामान वहां रखना, जब पांडव अपनी माता सहित वहां रहने लगें तो अवसर पाकर द्वार की ओर से उस को आग लगा देना वह उस में जल जायेंगे और हमें कोई दोष न देगा, इस सब काम के बदले हम तुम को जो कुच्छ तुम चाहोगे देंगे, परंतू इतना याद रहे कि यह भेद किसी पर प्रगट न होने पाये ॥

परोचन ने कहा महाराज बहुत अच्छा ऐसा ही [illegible] और वह उसी समय खच्चर आदि की स्वारी करके वारणा[illegible] नगर की ओर चल पड़ा और वहां पहुंच कर ग्रह बनवाना आरम्भ कीया ॥

इधर यह भेद कहीं विदुर जी पर प्रगट हो गया वह कुंती के पास गए और उन्हों ने उस को इस से ज्ञात कीया और साथ ही उन के लिये एक बड़ी नाव त्यार कराई ताके उस लाख ग्रह को आग लगने पर वह नाव द्वारा पार हो जांवें ॥

जब वारणावर्त में वह राज भवन त्यार हो गया तो दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा महाराज अब आप पांडवों को वहां जाने के लिये आज्ञा दीजीये ॥

धृतराष्ट्र ने युधिष्टर को बुला भेजा और उस के आने पर

उस को सन्मान से बिठला कर कहा, मैं तुम सब को अपने पुत्रों से भी अच्छा जानता हुं और नहीं चाहता कि तुम कभी भी मुझ से पृथक हो परंतू यह जो तुम में आय दिन की अन बन रहती है इस का मुझ को बड़ा भय है मैं डरता हुं कि किसी दिन इस अन बन का फल खोटा न निकले इस कारण मैं उचित समझता हुं कि थोडे काल के लिये तुम वारणावर्त में जा बसो और वहां का राज्य करके अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत करो मैं शीघ्र ही तुम को वहा से बुला लूंगा ॥

राजा युधिष्ठर ने कहा, मैं आप को अपने पिता से अधिक मानता हुं इस कारण कभी हो सकता है कि आप की आज्ञा पर न चलूं आप की आज्ञा सिर आंखों पर है, यद्यपि आप [illegible] से पृथक होने को जी नहीं चाहता परंतू आप की [illegible] न मानना भी पाप समझता हुं यह कहते हुए वह [illegible] चले और अपने भाईयों के पास आकर चलने के लिये उन को त्यार कीया ॥

दूसरे दिन चलने की सब त्यारीयां होगई, रथ, घोड़े आदि साथ हुये कुंती भी एक रथ में हो बैठी, थो[illegible] सेना भी साथ चल पड़ी, नगर के सेठ साहूकार, दूर तक साथ गये युधिष्ठर ने बड़ी कठनाई के साथ कह सुन कर उन को लौटाय और पांचों भाई कुंती और सेना सहित आगे को चले ॥

इधर जब वारणावर्त के वासियों को यह पता लगा कि पांडवों को इस परांत का राज्य मिला है और वह यहां आरहे हैं तो वह बहुत प्रसन्न हुये और जब पांडव अभी नगर से दूर ही थे तो वह उनको आगे से लेने के लिये

आये और वडी धूम धाम से वाजों गाजों के साथ उनको नगर में ले गये ॥

जव युधिष्टर ने उस राजभवन में जो दुर्योधन ने उनके लिये त्यार कराया था पाओं रक्खा तो उधर से एक छींक पडी जिस को सुनते ही सहदेव ने तत्क्षण कहा कि शगुन ठीक नहीं हुआ वह राजभवन ऐसा सजा हुआ था कि युधिष्टर सा राजा और उसके भाई भी उस को देख कर चकित रह गये, पुरोचन ने उन सव को उस भवन का एक एक कोना तक दिखलाया वह सारा दिन भवन के देखने में व्यतीत हो गया ॥

चौहतरवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी का पांडवों के पास एक खनिक भेजना, सुंरग की त्यारी, पांडवों का लाक्षा ग्रह को आग लगा कर पुरोचन को भस्म कर सुरंग के राह निकल जाना, और उन का गंगा जी के पार जाना ॥

एक दिन जव युधिष्टर अपने भाईयों से बैठा बातें कर रहा था एक मनुष्य उन के पास पहुंचा और कहा महाराज मुझे विदुर जी ने भेजा है मैं खनिक हुं और धरती खोदने आदि विद्या को अच्छी तरह से जानता हुं, दुर्योधन ने परोचन

को लिखा है कि कृष्ण पक्ष द्वादशी को इस लाखग्रह को जिस में आप वास करते हैं रात्रि के समय जला कर आप सब को भस्म कर डालें, आप के कल्याणार्थ जो काम मुझ से हो सकता हो आज्ञा कीजिये ॥

युधिष्ठर ने कहा मैं तुम को अच्छी तरह जानता हूं तुम विदुर जी के परम मित्र हो और कोई ऐसा हाल नहीं जो विदुर जी तुम से लुप्त रखते हों इस कारण तुम हमारे भी मित्र हो तुम हम को इस अग्नि से बचाने का कोई उपाय करो और वह उपाय ऐसा हो कि परोचन को उस की खबर तक न हो ॥

खाणिक ने कहा बहुत अच्छा कुच्छ चिंता न कीजिये [illegible]ा होगा, उस ने उस ग्रह से दूर स्थान पर एक कच्चा म[illegible]न बना दिया और उस के अंदर से सुरंग खोदनी आरम्भ कर दी, उस सुरंग को वहां धरती के बीचों बीच उस लाक्ष ग्रह में ले आया और वहां एक द्वार बना दिया ताकि परोचन जो सदैव मकान में इधर उधर फिरता रहता है पता तक न लगे ॥

पांडव वहां ऐसे ढंग से रहते और बाहर शिकार खेलने जाते कि परोचन को संदेह तक न था कि उस के दुष्ट भाव को वह जानते हैं ॥

जब उनको इस प्रकार रहते हुये एक वर्ष के लग भग हो गया तो पुरोचन यह बात जान कर बहुत प्रसन्न हुआ कि युधिष्ठर आदि उस पर पूरा पूरा विश्वास रखते हैं, इस अवसर में दुर्योधन की नीयत की हुई तिथी भी समीप आ रही

धन पाने की खुशी हो रही थी युधिष्ठर ने अपने भाईयों से सलाह की कि आज रात्रि को इस लाख ग्रह को आग लगा कर और पुरोचन को इस में जला कर सुरंग के रास्ता निकल चलें। कुंती को भी इस सलाह से खबर दोगई और सब ने उस को मान लिया ॥

कुंती ने उसी दिन रात्रि में भोजन दान देने के बहाने से ब्राह्मणों को स्त्रियों सहित बुलाया और उन को भोजन खिला कर घरों को भेज दिया, दैव इच्छा और काल की प्रेरणा से उस समय एक निषादिनि अपने पांचों पुत्रों सहित भोजन की इच्छा से वहां आई और बहुत सा भोजन करके वहां ही सो रही, जब आधी से अधिक रात्रि होगई और सब मनुष्य सो गये तब भीमसेन ने उस ग्रह के उस [illegible] में अग्नि लगा दी जहां पुरोचन सो रहा था और [illegible] और आग लगा कर पांचों भाई अपनी माता को साथ लि[illegible] हुए उस सुरंग के रासता से बाहर निकल गये, जब उस स्थान से बड़ी २ लपटें उठने लगीं और शब्द होने लगा, सब पुर वासी जाग उठे और उस के चारों ओर खड़े हो कर शोक करने लगे और कहने लगे कि दुर्योधन की सलाह से इस दुष्ट पुरोचन ने पांडवों के साथ विश्वासघात करके उन को जला दीया है और भाग्य वश से आप भी उन्हीं के साथ जल गया है, यह ग्रह उस ने इसी हेतु से बनवाया था ॥

जब पांडव कुंती सहित गंगा तट पर चलते चलते कुच्छ दूर तक पहुंचे तो रास्ते में उन को वह पुरुष मिला जिस को [illegible] ने [illegible] दे कर उन को पार करने के लीये भेजा

था, उस ने उन को कहा मुझ विदुर जी ने आप के पास भेजा है आप इस नाव पर बैठिये और गंगा जी के पार हो जाईये उन्हों ने वैसा ही कीया और उस पुरुष से विदुर जी का संदेसा ले कर और विदुर जी के लिये अपना संदेसा दे कर उसे भेज दिया और आप गुप्त वेष धारण कर के शीघ्र आगे को चल दिये ॥

पचहत्तरवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र का पाडवों के जल जाने का हाल सुन कर उन का कर्म करना, पाडवों का एक बड़े घन बन में बड़ी चिंता करना, भूख प्यास से दुःखी होना, और भीम सेन का पानी लेने जाना ॥

जब वह लाक्षा ग्रह सारा जल गया तो पुरवासी वहां आये और उन्हों ने पाडवों की लोथों के निकालने के लिये उस को फोलना आरम्भ कीया पहिले उन को परोचन की लोथ जली हुई मिली, पुनः निषादनी और उस के पाचों पुत्रों के जले हुए शरीर उन्हों ने देख कर समझा कि यह पाडवों और कुंती के शरीर हैं, इन सबों को उन्हों ने गंगा में बहा दिया और धृतराष्ट्र को पत्र द्वारा इस सारी घटना की सूचना देदी ॥

धृतराष्ट्र उस पत्र को पढ़ कर विलाप करने लगा और बोला कि मेरा पांडू भाई आज मरा है, उस ने कुछ मनुष्यों को वरणावर्त में वहुत सा धन देकर भेजा और उन को कहा कि वहां पहुंच कर उन के नाम के वड़े वड़े स्थान वनवाओ और उन के निमित्त जो कुछ करना चाहो सो करो, हस्तिना पुर वासीयों ने इन के मरने का हाल सुन कर वहुत ही शोक किया, विदुर जी जो गुप्त में सव कुछ जानते थे प्रगट में उन के साथ इस लिये शोक करते रहे कि कहीं उन को कोई शक न पड़ जाये, दुर्योधन सव के सन्मुख तो वड़ा शोक कर रहा था परंतु मन में इतना प्रसन्न हो रहा था कि उस का वर्णन नहीं हो सकता, धृतराष्ट्र ने समय और मर्यादा के अनुकूल उन सव का क्रिया कर्म आरम्भ कर दी ॥

इधर यह सव कुछ हो रहा था उधर वह पांचों अपनी माता सहित नक्षत्रों का सहारा लेते हुये दक्षिण की ओर चले और एक वड़े घने वन में पहुंचे. इस समय भूख प्यास और नींद ने उनको वहुत सता रक्खा था, इस दशा में भी वह चलते रहे और एक ऐसे वन में पहुंचे जहां न कोई पक्षी था और न जल, इस वन में वड़े वड़े जीव जंतु रहते थे, यहां यह पांचों भाई प्यास से व्याकुल हो गये और कुंती को भी वहुत प्यास लगी इस कारण वह आगे न चल सके और वहां ही लेट गये, कुंती ने पानी मांगा, भला पानी वहां कहां था, माता की आज्ञा, वस भीमसेन ने कान लगाया सारसों के वोलने का शब्द सुनाई दिया, भाईयों को उसने कहा आप सव माता को ले कर यहां [illegible] इधर से सारसों के [illegible]

सुनाई दे रहे हैं इधर अवश्य पानी होगा मैं जाता हूं और पानी ले कर अभी आता हूं ॥

भीमसेन सारसों के शब्दों को सुनता हुआ उस ओर चला और दो कोस की दूरी पर पहुंचने पर उसको एक बड़ा सुन्दर स्वच्छ जल से भरा हुआ सरोवर दृष्ट पड़ा, पहिले उस सरोवर में उस ने आप स्नान किया और पुनः एक वस्त्र को उस में भिगो कर वहां से चला और भाइयों और माता के पास पहुंच कर उन को जल दिया. वह जल पी कर वहां सो रहे और भीमसेन जाग कर उनकी रक्षा करता रहा ॥

छियत्तरवां अध्याय

—:०:—

हिडम्ब राक्षस का वन में पांडवों को देख कर अपनी बाहिन को उन के मार कर लाने के लिये भेजना, उस का भीमसेन पर मोहित होना, राक्षस का आप वहां जाना और भीमसेन से लड़ना ॥

उस वन में जहां यह भाई अपनी माता सहित ठहरे हुए थे उस से थोड़ी दूरी पर शाल के एक पेड़ पर हिडम्ब नाम एक राक्षस जो बड़ा पराक्रमी, मनुष्यों का मांस खाने वाला, डरावनी शकल, लाल नेत्र, हर समय क्रोध से भरा हुआ रहता था उस ने इन सब को वहां देख कर अपनी बाहिन से कहा कि

बहुत काल हुआ है मुझे मनुष्य मांस नहीं मिला तू वन में जा और उन को पकड़ कर लेआ ताकि मैं आनन्द से उन का मांस खाऊं और लहु पीऊं ॥

वह राक्षसी उस स्थान पर जहां पांडव उतरे हुए थे गई और चारों भाईयों और कुंती को सोते हुए और भीम सेन को जागते हुए देख कर भीम सेन के सुन्दर स्वरूप पर मोहित हो कर दिल में विचारने लगी कि यह पुरुष मेरे साथ विवाह करने के योग्य है, मैं अब इस के साथ विवाह करूंगी और भाई का बताया कुकर्म कदापि भी न करूंगी, मैं अब से इस को अपना पति धारती हुं। यदि मैं इस को अपने भाई के पास ले जाऊं तो वह इसको मार कर खाने से एक बार वस हो जावेगा और इसके न मरने से मैं जीवन पर्यंत इस के साथ रमण करूंगी ॥

उस राक्षसी ने उसी समय उत्तम उत्तम वस्त्र और गहने पहने और मुसकराती हुई भीमसेन के पास गई और उस को कहा ॥

तू कौन है, कहा से आया है यह मनुष्य जो इस प्रकार निडर होकर इस वन में सो रहे हैं यह कौन हैं और यह सुन्दर स्त्री जो आनन्द पूर्वक ऐसी सोई हुई है जैसे कोई अपने ग्रह में सोता है कौन है और तेरा इन के साथ क्या सम्बन्ध है, यह वन हिडंब राक्षस का है, जो मनुष्य इस वन में आते हैं वह राक्षस उनको मार कर खा जाता है, मैं उस की बहिन हूं उस ने मुझे भेजा है कि तुम सब को पकड़ कर

उसके पास ले जाऊं ताकि वह तुम को मार कर खाये परंतु मैं तेरे सुन्दर स्वरूप को देख कर तुझ पर मोहित हो गई हूं और मैंने प्रण कर लिया है कि मैं बिना तेरे किसी दूसरे से विवाह नहीं करूंगी ॥

अब तू मेरे साथ विवाह कर और चल हम दोनों रमणीन स्थानों में चलें और वहां आनन्द में रहें ॥

भीम सेन ने कहा ऐसा कौन अधर्मी होगा जो सुख से सोती हुई माता और भाइयों को राक्षस के लिए छोड़ कर तुझ कामवश स्त्री के साथ जाएगा। मैं इन की रक्षा करूंगा और उस राक्षस को यदि वह यहां आ जावेगा जीता नहीं छोड़ूंगा ॥

राक्षसी ने कहा अच्छा तू इन सब को जगा दे मैं अपने भाई से लड़ने में तुम सब का साथ दूंगी ॥

भीम सेन ने कहा मैं तेरे भाई के भय से इन सुख की नींद सोए हुओं को नहीं जगाऊंगा, राक्षस, गंधर्व, मनुष्य और यक्षादि कोई भी मेरे बल के सन्मुख नहीं ठहर सकता तेरे मन में जो आवे सो कर चाहे यहां ठहर चाहे चली जा और अपने भाई को भेज दे ॥

जब हिडंब की बहिन को उस के पास लौट कर आने में देर हुई तो उस को बड़ा क्रोध हुआ और वह उस क्रोध में भरा हुआ आप उन की ओर चलो, राक्षसी ने उस को आते देख कर भीम सेन से कहा तू इन सब को जगा दे मैं इन को और तुझ को अपनी पीठ पर बिठला कर आकाश मार्ग से चल कर बचा लूंगी ॥

भीमसेन ने कहा तू डरती क्यों है यह तो अकेला ही है यदि बहुत से राक्षस भी हों तो भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, तेरे देखते देखते ही मैं इस को मार डालूंगा, मेरा बल अभी तुझ को मालूम नहीं परंतु इस के यहां आने पर तुझ पर प्रगट हो जायगा ॥

हिडंबा ने कहा मैंने तुझ से इस लिए ऐसा कहा है कि मनुष्य सदैव राक्षस से डरा करते हैं ॥

उन की यह बातें हो ही रही थीं कि वह राक्षस भी उधर से आगया और अपनी बहिन को अति सुन्दर वस्त्र अभूषण पहने हुये और भीमसेन से हंसते हंसते बातें करते हुये देख कर बोला कौन है जो मेरे भोजन में विघ्न कर सके। ए हिडंबा! क्या तू मेरे क्रोध को भूल गई है और निडर होकर मुझे हानी पहुंचाती हुई मनुष्य चाहने लगी है, धिक्कार है तुझ को, तैंने राक्षसों के कुल को कलंक लगाया है, अब मैं उनके साथ तुझ को भी मार डालूंगा, इतना कहते ही वह हिडंबा को मारने के लिए दौड़ा ॥

यह देख कर भीमसेन डपट कर हंसते हुये बोला खबरदार बहुत चिल्ला कर सोते हुए मनुष्यों को मत जगा पहिले इधर मेरे सन्मुख आ और अपना बल मुझे दिखला, अपकार करने पर भी स्त्री पर कोई हाथ नहीं उठाता तूने हमारे मारने के लिये इस को भेजा था परंतू वह यहां मुझ को देख कर काम वश हो गई है इस में इस का कोई दोष नहीं, मेरे सन्मुख तुझे स्त्री पर हाथ उठाना उचित नहीं। तू भी

अकेला है और मैं भी अकेला हूं आ पहिले मेरे साथ युद्ध कर अभी तेरे सिर को पीस डालता हूं, आज तुझ को मार कर मैं इस वन को राक्षस रहित कर दूंगा जिस से मनुष्य यहां निर्भय हो कर फिरा करेंगे ॥

राक्षस ने कहा वृथा गर्जने से क्या लाभ यदि तू अपने आप को मुझ से बलवान समझता है तो आकर मुझ से लड़, पहिले तुझ को मार कर खाऊंगा और पुनः इन सोतों को जगा कर मारूंगा । इस अपनी बहिन को भी जिसने मेरा बड़ा अप्रिय किया है जीता नहीं छोडूंगा, यह कहता हुआ वह भीमसेन की ओर बढ़ा और उस पर अपना हाथ डालने ही लगा था कि उसने राक्षस को भुजा से पकड़ लिया और घसीटता हुआ दूर तक ले गया, तब वह राक्षस भीमसेन को चिपट गया और बड़े ऊंचे शब्दों से चिल्लाने लगा, भीमसेन उस को घसीट कर और दूर ले गया ताकि उसके शब्दों से सोये हुए न जाग उठें, वहां जा कर उन दोनों ने बड़े बड़े वृक्षों को तोड़ लिया और खूब लड़ने लगे उन के शब्द से युधिष्ठिर आदि जाग उठे और हिडंबा सी सुन्दर स्त्री को अपने सन्मुख खड़ा देख कर चकित रह गए । कुंती ने पूछा तू कौन है कहां से आई है और किस काम के लिए आई है ॥

हिडंबा ने कहा यह वन हिडंब राक्षस का है, मैं उस की बहिन हूं, उस ने मुझ को आप सब को पकड़ कर लाने के लिये यहां भेजा था मैं यहां आकर तुम्हारे पुत्र का दिव्य

स्वरूप देख कर उस पर मोहित हो गई हुं, मैंने मन से उस को अपना पति संकल्प कर के वहुत यत्न कीया कि अपने साथ ले जा कर किसी रमणीक स्थान म आनन्द करूं परंतु ले जा न सकी, जब देर हो गई और मैं अपने भाई के पास जो मनुष्यों को खा जाया करता है न पहुंची तो वह आप यहां चला आया, तुम्हारा पुत्र (मेरा पति) उस को खेंच कर दुर ले गया है और वह दोनों वहां खूब लड़ रहे हैं ॥

यह सुनते ही वह भाई दौड़े और वहां पहुंचे जहा वह दोनो लड़ रहे थ । अर्जुन ने कहा भीमसेन इस राक्षस को मारो हम तुम्हारी सहायता के लिये आ पहुंचे हैं और अभी इस को मार डालते हैं, हमें यह मालूम न था कि तुम राक्षस से लड़ रहे हो ॥

भीम सेन ने कहा अच्छा यही है कि तू खड़ा हो कर देखता रहे मैं अकेला ही इस को मार डालूंगा ॥

अर्जुन ने कहा इस वन में यद्यपि हम ने रहना नहीं परंतु उन मनुष्यों के हितार्थ जो प्रायः यहा आया करते हैं इस को मार देना ही अच्छा है इस कारण इस को शीघ्र ही मार डालो ॥

अर्जुन के यह शब्द सुन कर भीम सेन ने उस राक्षस को हाथों पर उठा लिया और इधर उधर घुमाने लगा और बोला अरे नीच तू मांस खा खा कर इतना लम्बा और पुष्ट हुआ हुआ है क्या अब तू नहीं मरेगा मैं तुझे मार कर इस वन को अकंटक करूंगा ॥

अर्जुन ने कहा यदि इस का मारना तुझ को दुस्तर दीख पड़ता है तो तू इस को छोड़ कर इधर हो जा और आराम कर मैं अभी इस को यम पुरी में पहुंचाता हुं ॥

यह सुनते ही भीमसेन को अति कोप हुआ और उस ने उस राक्षस को धरती पर ज़ोर से दे मारा और ऊपर से पशु की सी मार मारने लगा ॥

राक्षस ऊंचे २ चिल्लाने लगा, भीम सेन ने उस के हाथों को पैर से दबा कर बीच में से दो कर डाले, इस से वह मर गया, चारों भाई उस को मरा हुआ देख कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हों ने भीमसेन का बड़ा सत्कार किया ॥

अर्जुन ने भीमसेन से कहा ऐसा प्रतीत देता है कि यहा से निकट ही कोई नगर है वहां सब चले चलें, वह वहां से नगर की ओर चले और उन्हों ने हिडंबा को भी अपने साथ ले लिया ॥

सतत्तरवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का हिडंबा राक्षसी से विवाह और घटोत्कच की उत्पत्ति ॥

भीमसेन ने हिडंबा राक्षसी को अपने पीछे आते देख कर कहा अरी राक्षसी क्या तू इस प्रकार से मोह डाल कर मुझ से अपने भाई का बदला लेना चाहती है, यदि ऐसा है

तो तू भी वहां ही जा जहां तेरा भाई गया है ॥

युधिष्ठर ने कहा स्त्री पर हाथ डालना धर्म नहीं यदि यह राक्षसी क्रोध भी करे तो हमारा क्या बिगाड़ सकती है ॥

हिडंबा ने कुंती और युधिष्ठर के आगे हाथ बांध और नेत्रों में आंसू भर कर कहा, हे माता मैंने आप के पुत्र के दिव्य स्वरूप को देख कर अपने भाई को अपने नेत्रों से मारे जाते देखा और अपना ग्रह आदि सारा छोड़ा आप मुझ पर कृपा कीजिए और अपने पुत्र को आज्ञा दीजिए कि वह मेरे साथ विवाह कर के मुझे प्रसन्न करे ॥

युधिष्ठर ने हिडंबा की बात को मान कर उस से कहा दिन के समय तू जहां चाहे इस को ले जा कर आनन्द भोग परंतु रात को इस को हमारे पास रहना होगा ॥

भीमसेन ने जो भाई की बात को कभी उल्लंघन न करता था कहा हे हिडंबा मैं तेरे पास तब तक जाया करूंगा जब तक तेरे पुत्र न हो ॥

हिडंबा ने इस बात को स्वीकार कर लिया और वह दोनों दिन के समय रमणीक स्थानों में जा कर विहार करते और रात्रि को पांडवों के पास आजाते । समय पाकर उस राक्षसी से भीमसेन का एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम घटोत्कच इस लिए रक्खा कि उस का सिर घट के समान था, अब हिडंबा को भीमसेन ने कहा कि तेरे साथ मेरी प्रतिज्ञा पुत्र के उत्पन्न होने तक थी सो पूरी हुई अब तू भी जहां तेरा दिल चाहे चली जा ॥

अठहत्तरवां अध्याय

—:०:—

रास्ता में पांडवों को व्यास जी का मिलना उन को एक चक्रापुरी में बसाना, उन का ब्राह्मण के घर में वास करना और भीमसेन का बक राक्षस को मारना ॥

अब यहां इन पांचों ने कुंती सहित अपना वेष बदल कर तपस्वीयों का स्वरूप बना लिया, जटा बढ़ा लीं, मृग चर्म और वृक्षों की छाल के वस्त्र धारण कर लिए और मत्स्यनि गत, पांचालु और कीचक आदि देशों के रमणीक स्थान वन और नदियों को देखते हुए आगे चले तो क्या देखते हैं चारों वेदों के वक्ता श्री व्यास जी एक स्थान में विराजमान हैं उन्हों ने माता सहित दंडवत की और कर बांध कर उन के सन्मुख खड़े हो गए ॥

व्यास जी ने उन को देख कर कहा हम तुम्हारा यह सब दुःख पहिले ही से जानते हैं, धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अधर्म से तुम सब को देश से निकाला है, तुम कुच्छ चिंता मत करो, इस सब दुःख का परिणाम सुख होगा, यद्यपि तुम और धृतराष्ट्र के बेटे मुझे एक से हो परंतु मनुष्य दीन बालकों पर सदैव स्नेह करते हैं इस कारण मुझ को तुम से अधिक स्नेह है। अब मैं तुम से हित करना चाहता हूं और उस हित से कहता हूं कि अब तुम इस चक्रा पुरी में

गुप्त हो कर इस ब्राह्मण के घर में रहो और जब तक हम न आवें तब तक यहां से और कहीं को न जाना हम एक मास के भीतर तुम्हारे पास आ जावेंगे, पुनः व्यास जी ने कुंती से कहा हे पुत्री तेरा पुत्र युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा और प्रतापी है थोड़े काल में यह अर्जुन और भीमसेन की सहायता से समुद्र तक सारी पृथ्वी जीत कर राज्य करेगा, सब राजा इस के आधीन होंगे और यह बड़े २ राजसूय आदि यज्ञों को करके अपने बाप दादा के राज्य को सुख पूर्वक भोगेगा ॥

पांचों पांडव अपनी माता सहित रात्रि को उस ब्राह्मण के घर में रहते और दिन को उस नगर के रमणीक स्थानों और तालावों आदि में फिरते और भिक्षा मांगते जितनी भिक्षा उन को मिलती वह कुंती को लाकर देदेते कुंती उस भीख के दो भाग कर देती एक भाग वह भीमसेन को दे देती और दूसरा भाग वह चारों पुत्रों को और अपने लिए रखती, उन के गुणों को देख कर पुर वासी उन से बहुत प्रीति करने लगे ॥

एक दिन चारों भाई तो भीख मांगने चले गये और भीमसेन माता के पास रह गया, उस दिन ब्राह्मण के घर में बड़ा शोक हो रहा था वह इस कारण कि उस नगर के बाहर एक राक्षस रहता था जो क्रम से नगर के हर एक घर से एक मनुष्य लेता था उस दिन उस ब्राह्मण के घर से एक जन ने जाना था, उस शोक में सब पड़े हुये थे ब्राह्मण

कहता था मैं जाऊं, उस की स्त्री कहती थी मैं जाऊंगी, उस का बालक कहता था मुझे जाने दो, और कन्या कहती थी मेरा जाना उचित है, इस वार्तालाप को कुंती ने सुना था वह उस ने भीमसेन को सुना कर कहा कि आज इन के स्थान में उस राक्षस के पास तुम जा कर इस ब्राह्मण के उस उपकार का जो इस ने हम को अपने घर में रख कर किया है बतला दो ॥

भीमसेन ने भी यह सारी वार्ता सुनी और माता से कहा इन को कह शांति करें, इन में से कोई न जाये उस राक्षस के पास आज मैं जाऊंगा और उस का नाश करके इस नगर वासीयों को सदैव के लिये इस दुष्ट से छुड़ाऊंगा ॥

मा पुत्र ने इस बात को ठीक करके कुंती ने ब्राह्मणी के पास जा कर उस को कहा ॥

हम ने तुम्हारा दुःख समझ लिया है तुम उस की कुछ चिंता मत करो मेरा पुत्र आप के स्थान में आज उस राक्षस के पास जावेगा ॥

ब्राह्मणी ने कहा, यह कदापि नहीं हो सकता, कि अतिथि घर में आवे और हम उसको ऐसे स्थान में भेज दें जहां मारा जायें ॥

भीमसेन ने कहा माता हम पांच भाई हैं यदि हम में से एक न रहेगा तो हमारी माता बाकी चारों में अपना दिल लगा कर प्रसन्न रहेगी तुम्हारा तो एक ही पुत्र है, यदि वह

गया तो तुम्हारे तो प्राण ही न रहेंगे, मुझ को भेज दो मैं समझ लूंगा ॥

ब्राह्मणी ने कहा बेटा वह राक्षस ऐसा वैसा नहीं, काल को भी पाय तो खा जाय, हाथी के हाड़ भी गृह चढ़ा जाता है इस ने सारे नगर के मनुष्य खा कर इस को खाली कर दिया है, मैं तुझ को भेज कर अपने माथे पर कलंक का टीका लगाना नहीं चाहती ॥

भीमसेन ने कहा, माता जी आप आज्ञा दें और देखें कि मैं क्या करता हूं ईश्वर चाहेगा तो उस के मेरे सन्मुख आते ही हड्डी पसली चूर चूर कर डालूंगा ॥

ब्राह्मणी और ब्राह्मण दोनों ने मिल कर भीमसेन को बहुतेरा डराया और समझाया परंतु वह यही कहता रहा कि मैं अभी उस राक्षस के पास जाकर उस की समाप्ती करके इस नगर को उस से छुड़ाऊंगा ॥

पहिले उस ब्राह्मण और ब्राह्मणी को केवल अपनी ही चिंता थी अब तीसरी भीमसेन की भी चिंता पड गई ॥

प्रातः काल होते ही भीम सेन उस ब्राह्मण के पास आया और कहा चलो मिठाई आदि ले चलो मैं अभी तेरे पीछे आता हूं और देखता हूं यह राक्षस आज क्या करता है ॥

पुरवासी मिठाई और खिचड़ी का छकड़ा लाद कर ब्राह्मण की राह देख रहे थे, भीमसेन वहां पहुंचे और उन लोगों से कहने लगे कि ब्राह्मण के स्थान आज छकड़े के साथ उस राक्षस के पास हम जायेंगे यह कह कर वह उस छकड़े के ऊपर बैठ गया और मिठाई और खिचड़ी खा

कर छकड़े को खाली करके पेट पर हाथ फेरने लगा और इधर उधर से गोबर और मट्टी लाकर उस छकड़े को भर दिया और उस स्थान की ओर चले जो राक्षस ने इस काम के लिये नियत कर रखा था, वक राक्षस डकार मारता और गरजता हुआ वहा पहुंचा, छकड़ा देखा तो न मिठाई है और न ही खिचड़ी, गोबर है या मट्टी, यह देख कर उस को बड़ा क्रोध हुआ उस की आखें लाल हो गई और वह बिजली के समान गर्जता हुआ भीमसेन की ओर आया, भीमसेन यही चाहता था कि राक्षस पहले वार करे, जूंही वह समीप आया भीमसेन सिर पर जा पहुंचा दोनों बलवान थे खूब गुत्थम गुत्था होगये, बहुत काल तक यह दशा रही अंत को राक्षस का दम फूल गया, भीमसेन ने उस समय उस को उठा कर चक्र दीये और धरती पर डाल दिया, राक्षस की पीठ अभी धरती पर लगी ही थी कि भीमसेन उस की छाती पर चढ़ बैठा और ऐसे रगड़े दिये कि हड्डीयां चूर होगई और उस ने वहीं प्राण दे दिये। भीमसेन ने उस का सिर काट कर नगर के दरवाज़े पर लटका दिया ताकि नगर वासीयों को इस की मौत का पता लग जाय, उस राक्षस के संबन्धी भयभीत होकर भीमसेन के पास आये और उस से क्षमा चाही ॥

भीमसेन ने कहा इस निबंध पर क्षमा देता हूं कि तुम में से कोई आगे कभी भी ऐसा कुकर्म न करे। सब ने ऐसी प्रतिज्ञा की और भीमसेन उन को क्षमा दे कर ब्राह्मण के घर आया और वहा का सारा वृत्तांत कह सुनाया, वह सब प्रसन्न हुए और भीमसेन को अशीर्वाद दे दे कर उस के बल की वृद्धि

के लिये ईश्वर से प्रार्थना की ॥

इस राक्षस के मारने से उस नगर में उनकी बहुत चर्चा होने लगी पांडवों ने इस भय से कि कहीं भेद न खुल जाय वहां अधिक काल ठहरना उचित न जाना और ब्राह्मण को सूचित करके उस नगर से चले गए ॥

नगर बासीयों ने जब राक्षस के सिर को नगर के दरवाज़े पर लटका हुआ देखा तो वह बहुत अचम्भे में हो गए और एक दूसरे से कहने लगे कि इस को मारने वाला आज इस नगर में कौन आगया है, वह सब ब्राह्मण के घर पर गए और उस से पूछा कि यह काम किस ने किया है ब्राह्मण ने कहा रात को पांच भाई अपनी माता सहित यहां आये थे उन में से एक ने यह काम किया है, वह अब यहां से चले गये हैं और न मालूम किधर गए हैं, लोग बहुत प्रसन्न हुए और उन की ढूंड में इधर उधर भागे परंतू कुछ पता न चला ॥

उन्नासीवां अध्याय

—:o:—

व्यास जी के कथनानुसार पांडवों का कंपल नगर को जाना और रास्ता में द्रौपदी के स्वयम्बर का शुभसमाचार सुनना और अर्जुन का गंधर्व पर्णी से युद्ध ॥

पांडव जब बक राक्षस को मार कर चले तो रास्ते

में व्यास जी उन को मिले। भीमसेन की शलाघा की और कहा तुमने राक्षस से उस ब्राह्मण को और उस नगर के अन्य वासियों को सदैव के लिए बचा कर बहुत उपकार किया है अब तुम सब कंथल नगर में चले जाओ और वहां रहो, वहां तुम को बहुत सा धन मिलेगा और बहुत चीज हाथ आयेंगी जो किसी ने देखी न हों और पुनः तुम को अपना राज मिलेगा ॥

व्यास जी तो यह कह कर चलते हुए और पांडवों ने कंथल नगर की राह ली, पांचाल (पंजाब) देश रासता में था, इस देश के अच्छे २ स्थानों में रमण करते हुए उन को दो ब्राह्मण मिले जिन्हों ने उन को पांचाल देश के राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी के स्वयम्बर का सुसमाचार सुनाया इस को सुन कर पांडव चुप हो रहे और गंगा के किनारे किनारे रात्रि के अंधेरे में आगे चले, अर्जुन रासता दिखलाने के लिए एक जलती लकड़ी हाथ में लिए आगे आगे चल रहा था, गंगा में अंगार पर्ण नाम गंधर्व जो एकांत में स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा कर रहा था, पांडवों के पांओं की आहट को सुन कर बड़े क्रोध से भर गया और धनुष को टंकार कर बोला, आधी रात का समय यक्ष गंधर्व और राक्षसों के घूमने का समय है इस समय जो अज्ञानी मनुष्य घूमने निकलते हैं हम और राक्षस उन को पकड़ लेते हैं। ठहरो क्या तुम मुझ को नहीं जानते यह वन मेरा है और यहीं गंगा तट पर मेरे रहने का सुन्दर स्थान बना हुआ है यहां कोई रात्रि के समय नहीं आता तुम आने वाले कौन हो ॥

अर्जुन ने कहा समुद्र, हिमालय और गंगा पर जाने के लिए रात्रि, दिन, संध्या और सवेरा किसी समय जाने न जाने का बंधन नहीं है वह मनुष्य दुर्बल होंगे जो तुझ से डर कर चले गये होंगे और पुनः इधर न आते होंगे हम इस समय भी तुझ को घर्षण कर सकते हैं। गंगा यमुना, सरस्वती, वितस्था, सर्यू, गोमती और गंडकी यह सातों नदियां पवित्र हैं इन का जल अति उत्तम है गंगा जी स्वर्ग में अलकनन्दा नाम से, वैतरणी नाम से पितृ लोक में और गंगा नाम से मृत्यलोक में विख्यात हैं और तीनों लोकों को पवित्र करती हैं तू हम को इसके तट पर आने से क्यों रोकता है हम तेरे रोके से कदापि न रुकेंगे ॥

अंगार पर्ण यह शब्द सुन कर बड़े क्रोध में हो गया और उसने बड़े तीक्ष्ण सर्पों के समान बाण अर्जुन पर बरसाये अर्जुन ने उन सब को जलती लकड़ी से जो रासता देखने के लिए उसके हाथ में थी घुमा घुमा कर व्यर्थ कर दिया और कहा मैं अस्त्र जानने वाला क्षत्री हूं मुझे तुझ से किसी प्रकार का भय नहीं है तू मुझ से छल मत कर ॥

तब अर्जुन ने अपना अग्नेय अस्त्र उस गंधर्व पर छोड़ दिया जिस से उस का रथ जल गया और वह अचेत हो कर नीचे को मुंह किए हुए गिर पड़ा और अर्जुन उस को बालों से पकड़ कर अपने भाईयों के पास ले गया ॥

उस की स्त्री जिस का नाम कुंभीनसी था युधिष्ठर की शरण में भागी भागी गई और दोनों कर बांधकर सविनय बोली

महाराज यह मेरा पति है कृपा करके इस को छोड़ दीजिये ।

युधिष्ठर ने कहा हे अर्जुन, रण में तुम ने इस को जीत लिया है इस की स्त्री इस का जीवन दान मांगती है इस को छोड़ दो ॥

अर्जुन ने उस को छोड़ दिया और कहा जाओ फिर कभी ऐसा अभिमान मत करना और किसी को किसी प्रकार का दुःख न देना ॥

गंधर्व ने कहा मैं आज से अपना नाम अंगार पर्ण न बताऊंगा न ही अपने बल की बड़ाई करूंगा और न ही कभी किसी को दुःख दूंगा, अपने आप को चित्ररथी नहीं वरन दग्ध रथी कहा करूंगा, मैंने जो गंधर्वी माया विश्वासु से पाई है अर्जुन को सिखाना चाहता हूं, इस विद्या में यही गुण है कि जो कुछ कोई देखना चाहे उस को आंख से देख सकता है इसी विद्या से हम अदृश्य चीजों को देख कर आकाश में चल सकते हैं और मनुष्यों से अधिक देवताओं में गिने जाते हैं, मैं तुम को और तेरे भाइयों को गंधर्वों के देश में उत्पन्न हुए हुए घोड़े जो मन के वेग के समान चलने वाले, देवताओं और गंधर्वों की स्वारी के हैं, जो कभी वृद्ध नहीं होते, न बहुत चलने से थकते हैं और अस्त्रों से मर कर जी उठते हैं दूंगा ॥

अर्जुन ने कहा तू हम को भय से जो कुछ देना चाहता है वह हम नहीं लेंगे क्योंकि इस प्रकार से कुछ लेना हम अधर्म समझते हैं ॥

गंधर्व ने कहा बड़े मनुष्यों के साथ मिलने से प्रीति अवश्य हो जाता है और मैं तो अपने प्राण दाता की प्रीति से यह विद्या देता हुं और तुम से भी अग्नेयास्त्र लेना चाहता हुं, तुम को प्रीति के कारण प्रति दान देना अवश्य उचित है ॥

अर्जुन ने कहा हम तुम को अस्त्र देकर घोड़े लेंगे और तुम से मित्रता करेंगे परंतू तुम हम को पहिले यह बताओ कि तुम ने हम वेद जानने वालों को रात्रि में आते हुए देख कर रोका क्यों था ॥

गंधर्व ने कहा, हे तापत्य तुम ने हवन नहीं कीया था और न ही तुम्हारे आगे कोई ब्राह्मण था हम ने तुम्हारे कुरू कुल के पूर्व पुरुषों का यश, यक्ष, राक्षस, गंधर्व उरग, दानव नारद आदि ऋषियों से सुना है और तुम्हारी कीर्ति भी मुझे सब मालूम है परंतू बलवान पुरुष जब स्त्री के संग हो तो वह दूसरे मनुष्यों को सन्मुख नहीं देख सकता, हमारा बल रात्रि को अधिक होता है हमने स्त्री के संग होने से तुम पर कोप कीया था और तुम को रोका था यदि तुम ब्रह्मचारी न होते तो हम को युद्ध में कदापी न जीत सकते यदि स्त्री वाला अथवा कामासक्त कोई क्षत्री होता। वह हमको कभी न जीत सकता, ऐसा क्षत्री इस प्रकार से निशाचरों को जीत सकता है कि वह अपने आगे पुरोहित को चलावे और उस के पीछे आप चले ॥

राजाओं को पुरोहित का करना आवश्यक है परंतु पुरोहित ऐसा ब्राह्मण किया जावे जो जितेंद्रिय, वेद पाठी,

वेद के सब अंगों का जानने वाला, पवित्र, सत्यवादी, धर्मात्मा और शुद्ध अंतःकरण हो, जिस राजा का ऐसा पुरोहित होगा वह युद्ध में अवश्य जय पाकर मरने पर स्वर्ग में वास पावेगा ॥

राजा को अलब्ध वस्तु की प्राप्ति, लब्ध वस्तु की रक्षा, ऐश्वर्य के पाने और पृथ्वी के जीतने के लिये ऊपरोक्त गुणों वाले पुरोहित का अपने पास रखना और उस के मत पर चलना अति अवश्यक है ऐसा करने से राज्य अटल रहता है॥

अस्सीवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का गंधर्व से तापत्य बुलाने का कारण पूछना, तपती का वियोग और राजा संवर्ण का मूर्छित होना, तपती का राजा को पुनः दर्शन देना और राजा को कहना कि मुझे पाने के लिये सूर्य का अराधन कर

अर्जुन ने कहा हे गंधर्व तुम्हारे हम को तापत्य शब्द से पुकारने का क्या कारण है हम तो कौन्त्य हैं ॥

गंधर्व ने कहा हे अर्जुन मेरे आप को तापत्य कहने की एक लम्बी चौड़ी कथा है मैं कहता हूं ॥

सूर्य देवता की तपती नाम पुत्री थी वह सावित्री से छोटी और बड़ी तपस्वनी थी उस का स्वरूप ऐसा सुन्दर था

कि वैसा किसी देवी, आसुरी, यक्ष, अप्सरा, नागनी और गंधर्वी का न था उस का हर एक अंग सडौल और निर्दोष था, नेत्र काले और बड़े २ थे, सूर्य ने उस के विवाह के लिए तीनों लोक में वर ढूंढा परंतु उस के सदृश कोई वर न पाकर उस का चित्त बड़ा उद्विग्न हुआ ॥

इन्हीं दिनों में कुरु वंश के राजा ऋतु के बलवान पुत्र ने सूर्य का आराधन किया, सूर्य उस की भक्ति, उपवास, पवित्रता, असावधानता, निरहंकारता, नियम विधि पूर्वक पूजा कृतिज्ञता और धर्म से बहुत प्रसन्न हुए और उस के अत्यंत सुन्दर स्वरूपवान होने से उस को तपती का योग्य वर जान कर उस का विवाह तपती से करना चाहा ॥

एक दिन राजा स्वर्ण पहाड़ों में शिकार खेलने गया वहां उस का घोड़ा थक गया और भूखे प्यासे होने के कारण वहां ही मर गया ॥

राजा वहां से थोड़ी दूर ही पैदल गया था कि उस की दृष्टी एक कन्या पर पड़ी जो वहां अकेली बैठी हुई थी, राजा वहां खड़ा हो गया और विचारने लगा कि यह या तो लक्ष्मी है या सूर्य से गिरा हुआ कोई उस का भाग है, राजा इस को असदृशी जान कर काम अग्नि से पीड़त हो कर आसक्त हो गया और कुछ देर चिंता करके यों बोला ॥

हे सुन्दरी तू कौन है किस की बेटी है और इस निर्जन बन में क्यों अकेली फिरती है तेरे अंग निर्दोष हैं मुझे तेरे सदृश देवी, असुरी, यक्षा, राक्षसी, नाग कन्या, गंधर्व और

मानुषी कोई दृष्ट नहीं पड़ती जितनी स्त्रियां मैंने आज तक देखी और सुनी हैं उन में तेरे सदृश कोई नहीं थी, तेरे चंद्र मुख को देख कर मुझ को काम देव ने बहुत सताया है ॥

यह सुन कर वह कन्या कुच्छ न बोली और वहीं बादलों में बिजली के समान लोप हो गई ॥

राजा मोह में फंसा हुआ रोता रोता उस को इधर उधर ढूंडने लगा और उस को वहां न पा कर बड़ा दुःखी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥

राजा की यह दशा देख कर कन्या ने उस को पुनः दर्शन दिया और हंसते हुए बहुत मधुर बाणी से कहा। राजन्! तुम सकल पृथ्वी पर विख्यात हो तुम को किसी के साथ इतना मोह करना उचित नहीं ॥

राजा उस के मीठे शब्द सुन कर और उस को अपने सन्मुख खड़ा देख कर उठ खड़ा हुआ और बोला हे सुन्दरी मैं तुझ से प्रीति करता हूं तुझ को भी मुझ से प्रीति करनी उचित है, यदि तू ऐसा न करेगी तो मैं काम अग्नि से जल कर प्राण त्याग दूंगा, मुझ को काम रूपी सर्प ने डस डाला है इस से यह प्राण अब तेरे ही आधीन हैं मैं तेरी कृपा के बिना अब किसी प्रकार नहीं जी सकता, मेरा प्रेम तुझ से बढ़ गया है तुझे उचित है कि तू भी मुझ से प्रेम कर और मेरी काम अग्नि को अपने प्रेम रूपी जल से ठंडा कर के मुझ को गंधर्व विवाह जो सब से श्रेष्ठ विवाह है द्वारा अपना आत्मदान दे कर काम देव के प्रचंड बाणों से बचाले ॥

कन्या ने कहा हे राजन्! मैं कन्या हुं और स्वाधीन नहीं हु यदि तुझे मेरे साथ ऐसा ही प्रेम है तो मेरे पिता से मुझ को माग ले जब वह तुझ को दे देगा और मुझे आशा है अवश्य दे देगा तो मैं तेरी पत्नी हो कर रहुंगी॥

इकासीवां अध्याय

—:o:—

राजा संवर्ण का वशिष्ट जी को याद करना, उन का आना और सूर्य के पास जा कर तपती को ला कर राजा संवर्ण से उन का विवाह करना॥

उसी समय राजा का मंत्री सेना सहित उस को ढूंढता हुआ वहां आ पहुंचा और उस को पृथ्वी पर पड़ा हुआ देख कर तुरंत उस के पास गया और पुत्रवत स्नेह से उस को पृथ्वी से उठा लिया, और कहा राजन् किसी बात का भय मत करो। वृद्ध मंत्री यह समझे हुए था कि राजा भूख प्यास और थकान से इस प्रकार पृथ्वी पर पड़ा है उस ने उस के मुख को ठंढा जल लगाया और शिर पर भी पानी डाला। कमलों का मुकुट बना कर उस के सिर पर धरा जो धरते ही सूख गया॥

कुछ समय पीछे जब राजा को सुध आई तो उस ने मंत्री को आज्ञा दी कि तुम अकेले मेरे पास रहो और सेना को भेजदो, जब सेना वहां से चली गई तो राजा वहां खड़ा हो कर ऊंचे मुख करके सूर्य की आराधना करने लगा

और अपने पुरोहित वशिष्ट ऋषि का अपने मन में ध्यान किया वशिष्ट जी अपनी दिव्य चक्षु से राजा के अभिप्राय को जान गये और बारहवें दिन वहां पहुंच कर राजा का कार्य करने को उस के देखते २ आकाश मार्ग से सूर्य के पास गये और कर बांध कर खड़े हो कर उस से कहा मैं वशिष्ट हूं ॥

सूर्य ने कहा बहुत अच्छा आप का आना शुभ है, क्या काम है, मैं आप का कठिन से कठिन काम भी करूंगा ॥

वशिष्ट जी ने कहा महाराज मैं आप की अपनी कन्या को जो सावित्री से छोटी है राजा संवर्ण के लिए मांगने आया हूं, महाराज ! वह राजा बड़ा बुद्धिमान, धर्मात्मा, पराक्रमी, सुन्दर स्वरूप, तेजधारी और कीर्तिमान् है और आप की पुत्री के साथ विवाह के योग्य है ॥

सूर्य ने तपती को वशिष्ट जी के साथ कर दिया और वशिष्ट जी उस को अपने साथ ले कर राजा के पास आए और राजा ने उस का पाणी ग्रहण वेद विधि के साथ उस वन में कीया और वशिष्ट जी से आज्ञा लेकर उसी वन में रह कर तपती के साथ विहार करने लगा और मंत्री को आज्ञा दी कि तू जाकर राज्य का प्रबंध कर ॥

राजा बारह वर्ष तक तपती के साथ उसी वन में रहा इधर उस के राज्य में वर्षा न होने के कारण प्रजा दुःखी हो कर इधर उधर भाग गई ॥

पुनः वशिष्ट जी राजा के पास आये और उस को अपने साथ उस के राज्य में ले गये, राज्य में प्रजा बसी और राजा वहां तपती के साथ आनन्द करता रहा ॥

बयासीवां अध्याय

—:०:—

गंधर्व का वशिष्ट जी का संक्षेप वृतांत कहना अच्छे ब्राह्मण को पुरोहित बनाने की सम्मति देना, वशिष्ट का विश्वामित्र का मंत्री और सेना सहित बुला कर नंदनी गाय के प्रभाव से अलभ्य पदार्थ भोजन कराना, विश्वामित्र का उस गाय को बल से लेना, गाय का न जाना, और उस का राज्य छोड़ कर ब्राह्मण भाव को पाना ॥

अर्जुन ने गंधर्व से कहा यदि आप को हमारे पुरुषाओं के पुरोहितों के सम्पूर्ण वृत्तांत याद हों तो हम को वह सुनाओ ॥

गंधर्व ने कहा मुझे उन का जो हाल याद है मैं वह सुनाता हुं। वशिष्ट जी ब्रह्मा जी के मानासिक पुत्र और अरून्धति के पति थे उन्हों ने अपने तप से काम और क्रोध को अपने वश में कीया हुआ था, यद्यपि विश्वामित्र ने उन के सौ पुत्रों को मार कर उन का बड़ा भारी अपराध किया था परंतु उन्हों ने क्रोध तक न किया और न हीं उन से कभी बदला लेना विचारा। यद्यपि वह अपने मृत पुत्रों को जीवत कर सकते थे परंतु उन्हों ने काल की मर्यादा का उलंघन नहीं कीया इक्ष्वाकु वंश के राजाओं ने उन को अपना पुरोहित

बना कर बड़े यज्ञ कार्य और सारी पृथ्वी जीत ली, हे अर्जुन तू भी वेद के जानने वाला, सत्यवादी, धर्मात्मा और गुणवान पुरोहित ढूंड, इस से सारी पृथ्वी पर तेरी जय होगी ॥

अर्जुन ने कहा हे गंधर्व विश्वामित्र और वशिष्ठ जी का परस्पर वैर क्यों कर हुआ विस्तार पूर्वक कहो ॥

गंधर्व ने कहा कान्य कुब्ज देश के राजा कुशिका का गाधि नामी एक पुत्र था उस के हां विश्वामित्र नामी एक बड़ा पराक्रमी पुत्र हुआ उस के पास बहुत सी सेना थी, एक दिन राजा शिकार खेलता हुआ ऐसे वन में पहुंचा जिस में जल बहुत थोड़ा था, वहां उसने बहुत से मृगों और वराहों को मारा ॥

इस से वह थक गया और उस को बहुत प्यास लगी, प्यास से दुःखी हो कर वह इधर उधर कोई आश्रम ढूंढने लगा, ढूंढते २ वह वशिष्ठ जी के आश्रम में जा पहुंचा, उन्हों ने उस का बड़ा आदर किया और पाद्य अर्घ्य आचमन आदि से उस की पूजा की और उसको सेना सहित निमंत्रन किया ॥

जब सेना मंत्री आदि भोजन खाने के लिए आसनों पर बैठ गय तो वशिष्ठ जी ने अपनी कामधेनु गाय से हर प्रकार के भोजन यथा दुग्ध, षट् रस, चाटने के पदार्थ, और चूसने वाली चीजें ले कर उन के आगे पुरोस दीं, वह उन सब चीजों को आनन्द से खाते हुए विचारते कि इस वन में यह सब पदार्थ कहां से आगए हैं तब वशिष्ठ ने उन को बहुत से सुन्दर २ वस्त्र और रत्न घर लेजाने के लिए दिए, विश्वामित्र को पता

लग गया कि यह सब कुच्छ इस कामधेनु गाय से लिया गया है राजा उस गाय को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और वशिष्ट जी से बोला महाराज यह गाय आप मुझ को दे दीजिए, और इस के बदले में मुझ से अर्बध गाय अथवा सारा राज्य ले लीजिए ॥

वशिष्ट जी ने कहा राजन्! यह गाय नन्दनी है और देवता, पितर, अतिथि और यज्ञ के काम की है इस को हम तेरे सम्पूर्ण राज्य के बदले में भी नहीं दे सकते ॥

विश्वामित्र ने कहा तुम वेद पाठी बल हीन ब्राह्मण हो और मैं बलवान् क्षत्री हूं यदि मेरी गाये के बदले में मुझ को यह गाय न दोगे तो मैं बलात्कार तुम से यह गाय छीन कर ले जाऊंगा ॥

वशिष्ट जी ने कहा यदि तुझ में बल है तो जैसे तेरी इच्छा हो कर और गाय लेजा ॥

विश्वामित्र ने उस गाय को खुलवा लिया और उस को लेजाने लगा परंतु वह वहां से न मिली, राजा ने उस को कोड़े मरवाये परंतु वह उस पर भी न चली और मुख ऊंचे कीये हुए रम्भाती हुई वाशिष्ट जी के सन्मुख जा खड़ी हुई ॥

वाशिष्ठ जी ने कहा मैं तेरे रम्भाने के शब्द को सुनता हुं पर मैं क्या करूं विश्वामित्र तुझ को बल से लिये जाता है। क्षत्रियों का बल बल ही है और ब्राह्मणों का बल केवल क्षमा, मैं क्षमा को नहीं छोड़ सकता तू अपना भला बुरा देख ले ॥

गय ने कहा महाराज क्या मुझे आपने त्याग दीया है, यदि आप ने मुझे त्याग दिया है तो मुझे बल से कोई नहीं लेजा सकता ॥

वशिष्ट जी ने कहा मैं तुझ को त्यागता नहीं यदि तुझ में यहा रहने की सामर्थ है तो रह, देख यह मनुष्य तेरे बछड़े को एक मोटी रस्सी बांधे लिये जाते हैं ॥

उस गाय ने उसी समय कान ऊंचे करके रौद्र स्वरूप हो, लाल २ नेत्र कर बादल की गरज के समान रंभाकर विश्वामित्र की सब सेना को डरा दिया और चारों ओर भाग भाग कर सींगों से मार मार कर दूर भगा दिया और क्रोध कर कर के अपनी पूंछ से अंगारे बरसाये जिन से उस की सेना जलने लगी, उस समय उस गाय ने अपनी पूंछ से पल्हव, ऐसने द्रावड, और शक, योनि से यवन गोबर से शबर, पार्श्व से पौराड, किरात, यवन सिंहल, बर्बर और खस और फेन से चिबुक, पुलिग, चीनी, हुणक, रपन और बहुत प्रकार के म्लेच्छ उत्पन्न किये, यह म्लेच्छ क्रोध के मारे हुये, नाना प्रकार के आयुध लेले कर विश्वामित्र की सेना से लड़ने लगे, एक एक म्लच्छ ने पाच पाच सात सात सैनिकों को पकड़ लिया जिस से विश्वामित्र की सब सेना उस के देखते देखते भागने लगी म्लच्छों ने बाणों से उस सेना को अधमुई कर डाला और वह चिल्लाती हुई बिना किसी रक्षक के भागती हुई तीन योजन की दूरी पर चली गई। विश्वामित्र कुछ न कर सका और मुंह ताकता रह गया और कहने लगा क्षत्री के बल को धिक्कार,

है, ब्रह्म तेज का बल ही केवल बल है ॥

उसने सकल राज, लक्ष्मी और भोगों को छोड़ दिया और वन में तप करने लगा, उस के कठिन तप से सब लोग त्रस्त हो गए और उस ने ब्रह्मभाव को पाकर इन्द्र के साथ साम किया ॥

बयासीवां अध्याय

—:०:—

विश्वामित्र का कल्माष पाद नाम राजा से जो शाप से राक्षस हो गया था वशिष्ट के सौ पुत्रों को मरवाना, वशिष्ट जी का क्रोध करके अपने मरने का उपाय करना, किसी प्रकार से न मर कर अपने आश्रम को आते हुए रासता में अपने पुत्र की वधू को मिलना और उस से उस के गर्भवती होने का समाचार पाकर मरने से निवृत होना और राजा कल्माष पाद का शाप छुड़ा कर उस को पुत्र देना ॥

गंधर्व ने कहा हे अर्जुन इक्ष्वाकु वंश में कल्माष पद नाम का बड़ा तेजस्वी राजा था वह एक दिन वन में शिकार खेलने लिये गया और वहां के मृग वाराह आदि बहुत से जीवों को

मार कर थक जाने के कारण घर को लौटा, रास्ता में एक ऐसा स्थान मिला जहां केवल एक ही आदमी चल सकता था, उस स्थान पर चलते हुए वशिष्ट का सब से बड़ा पुत्र शक्ति उस को मिला वह बड़ा महात्मा और तपस्वी था, राजा ने उस को कहा रासता छोड़ दो हम को जाने दो शक्ति ने कहा तुम हट जाओ मैं चला जाऊं दोनों में से कोई न हटा राजा ने शक्ति को राक्षसों के समान निर्दयी हो कर कोड़ा मारा, शक्ति उस कोड़े से मूर्छित हो गया और क्रोधित हो कर उसने उस राजा को शाप दिया तू नीच राजा है तैंने राक्षस सम हो मुझ तपस्वी को मारा है इस कारण तू आज से मनुष्य भक्षी राक्षस हो जा और पृथ्वी पर घूमा कर, उसी समय विश्वामित्र जी जो उसे अपने यजमान बनाया चाहते थे पिछले वैर भाव से गुप्त स्वरूप धारण कर के आए और उन दोनों का विवाद देखने लगे, जब उन्हों ने देखा कि वशिष्ट जी का पुत्र बड़ा तेजस्वी और तपस्वी होने के कारण प्रबल है तो वह अन्तर्धान हो गए॥

शक्ति का प्रसन्न करने के लिये राजा उस की स्तुति करने लगा इस समय विश्वामित्र ने अपने काम की सिद्धि के लिये किंकर नाम राक्षस को अपने मंत्र बल से आज्ञा दी कि तू राजा के शरीर में जा कर प्रवेश कर उस राक्षस ने वैसा ही किया, विश्वामित्र जी तो यह काम करके चलते बने और राजा उस राक्षस के प्रवेश करने से अचेत सा हो गया और वहां से घर को चला, रासता में उस से एक भूखे ब्राह्मण ने मास सहित भोजन मांगा राजा ने कहा तुम यहां ठहरो

मैं अभी लौट कर आता हूं और तुम को तुम्हारी इच्छानुकूल भोजन कराता हूं, वह ब्राह्मण वहीं, ठहरा रहा, राजा सुख के साथ अपने भवन में पहुंचा जब आधी रात हुई राजा को अपनी प्रतिज्ञा जो उस ब्राह्मण के साथ की थी याद आई उस ने उसी समय रसोइये को बुलाया और कहा अमुक स्थान पर एक ब्राह्मण बैठा हुआ मेरा रास्ता देख रहा होगा तू मास और अन्न ले कर उस को भोजन के लिये देआ ॥

रसोया यह सुन कर मास ढूंढने लगा परंतु उस समय उस को मास कहीं भी न मिला, उस ने राजा से कहा महाराज इस समय किसी जगह मास नहीं मिल सकता है ॥

राजा ने राक्षस से आविष्ट होने के कारण कहा आदमी का मास बना कर लेजा, रसोया कसाईयों के स्थान पर गया और वहा से नर मास लाकर और उस को अच्छे प्रकार से बना कर अन्न सहित उस तपस्वी ब्राह्मण को देने के लिए ले गया ॥

वह तपस्वी ब्राह्मण अपनी दिव्य दृष्टी से इस बात को जान गया और बोला कि उस नीच राजा ने मुझे अभोज्य अन्न दान किया है ऐसे पदार्थ के खाने की उसी की बुद्धि होगी और जैसा शक्ति ने कहा है वैसा ही यह नर मास भक्षी भयंकर राक्षस हो कर पृथ्वी पर फिरा करेगा॥

तब वह राजा दो ऋषियों से शाप दिए जाने के कारण बुद्धि हीन हो गया और थोड़े ही काल में हृदय में प्रवेश किए हुये राक्षस से हार कर राक्षसी स्वभाव वाला हो गया ॥

एक दिन घूमते घूमते राजा का शक्ति से फिर मेल हो गया राजा ने कहा तूने मुझ को शाप देकर राक्षस बनाया है इस लिए मैं पहिले तुझ को ही खाता हूं तब उसने शक्ति को मार डाला और इस प्रकार खा गया जिस प्रकार शेर बकरी को मार कर खा जाता है ॥

तब विश्वामित्र ने उस राक्षस राजा को आज्ञा दी कि तुम वशिष्ट जी के सारे पुत्रों को इसी प्रकार मार कर खा जाओ उस नीच ने वैसा ही किया और सिंह के समान वशिष्ट के सौ पुत्रों को मार कर खा गया, वशिष्ठ जी यह देख कर बहुत दुःखी हुये और विश्वामित्र को कुच्छ न कहा और अपना मरना अंगीकार किया और मेरु पर्वत के सब से ऊंचे शिखर पर जाकर वहां से अपने आप को नीचे गिरा दिया परंतु वह पहाड़ की शिला उन के लिए रुई होगई और वह न मरे, तब उन्हों ने अग्नि में जल जाना विचार करके वन में एक स्थान लगी हुई अग्नि में घुस गए परंतु उन के पाओं डालते ही वह अग्नि शांत होगई पुनः उन्हों ने अपनी गर्दन के साथ एक बड़ी शिला बाधी और अपने आप को समुद्र में डाल दिया, समुद्र ने उन को लहरों से अपने किनारों पर डाल दिया पुनः वह बहुत दुःखी होकर अपने आश्रम को चले आए ॥

तिरासीवां अध्याय

—:o:—

वशिष्ट जी का अपने आप को मारने के

लिये कई नदीयों में डालना और न मर सकना, उन का अपने आश्रम को लौटते हुए रासता में अपने बड़े पुत्र शक्ति की वधू से मिलना और उस को गर्भवती जान कर मरने का विचार छोड़ देना ॥

जब वशिष्ट जी अपने आश्रम में आये और वहां अपने पुत्रों को न देखा तो बड़े दुःखी हुए और पुनः मन में विचार कर एक नदी के तट पर पंहुचे वह नदी उस समय बहुत चढ़ी हुई थी और अपनी लहरों से अपने किनारे पर उगे हुए वृक्षों को उखाड़ कर बहाय लिये जाती थी, वशिष्ट जी ने अपने सब अंगों को रस्सीओं से बांधा और डूबने के लिये उस में गिर पड़े. परंतू उस नदी ने उन के वह बन्धन खोल कर उन को बाहर सूखे स्थान में डाल दिया, वशिष्ट जी ने पाशों के खुल जाने के कारण उस नदी का नाम विपाशा पुकारा पुनः वह कई स्थानों पर्वतों आदि पर फिरते हुए हेमवती नदी के किनारे पहुंचे, इस नदी में बड़े मगरमच्छ रहते थे वशिष्ट जी ने अपने आप को इस में गिरा दिया वह नदी उन को अग्नि तुल्य ब्राह्मण जान कर शतधा हो कर बहने लगी इस से इस नदी का नाम शतद्रू हुआ तब वह बड़े दुःखी हो कर बोले कि मौत भी मुझ को नहीं आती और अपने आश्रम को चल पड़े जब वह अपने आश्रम के निकट पहुंचे तो उन के बड़े पुत्र शक्ति की अदृश्यंती नाम स्त्री उन को मिली और वह उन के पीछे चल पड़ी वशिष्ट जी

ने पूछा तू कौन है और मेरे पीछे क्यों आती है ॥

अदृश्यंती ने कहा महाराज मैं आप के बड़े पुत्र शक्ति की वधू हूं ॥

वशिष्ट जी ने पूछा हे पुत्री यह कौन है जो वेद का अंगों सहित पाठ कर रहा है ऐसा पाठ तो हमारा बड़ा पुत्र शक्ति ही कर सकता था अदृश्यंती ने कहा महाराज यह आप के पुत्र का गर्भ है मेरी कोष में वह बारह वर्ष से पाठ कर रहा है ॥

यह सुन कर वशिष्ट जी की चिंता जाती रही और यह जान कर कि हमारे अभी संतान है वह बहुत प्रसन्न हुए और उन्हों ने मरने से चित्त हटा लिया, जब थोड़ी दूर और आगे चले तो उन को विजन बन में कल्माष पाद राक्षस बैठा हुआ मिला वह वशिष्ट जी को पुत्र वधू के साथ आते हुए देख कर क्रोध से भरा हुआ उन को खाने को दौड़ा उस को देख कर अदृश्यंती बहुत डर गई और वशिष्ट जी से कहने लगी महाराज देखिये यह दुष्ट राक्षस डंडा उठाय हुए हमें मार कर भक्षण करने की इच्छा से चला आ रहा है आप हमें बचाइये ॥

वशिष्ट जी ने कहा हे पुत्री यह राक्षस नहीं है यह राजा है इस का नाम कल्माष पाद है और शाप के कारण ऐसा हुआ हुआ है, जब वह राक्षस वशिष्ट जी के समीप आया तो उन्हों ने हुंकार से उस को रोक दिया और मंत्र युक्त जल छिड़क कर उस को शाप से छुड़ा दिया ॥

राजा को उस के शरीर में से राक्षस के चले जाने से

ज्ञान हो गया और वह दोनों कर बांध कर वशिष्ट जी के सन्मुख खड़ा हो कर बोला महाराज मैं आप का यजमान और सुदास का पुत्र हूं जो आज्ञा मेरे लिए हो सो करूं॥

वशिष्ट जी ने कहा अपने राज्य में जा और भले प्रकार से उस का प्रबंध कर, और ब्राह्मण का अपमान कभी मत करना वरन सदैव उस का आदर और मान करना॥

राजा ने कहा महाराज आप की आज्ञा को मान कर मैं सदैव ब्राह्मणों का मान करूंगा और उन का पूजन अपना धर्म जानूंगा परंतु मैं चाहता हूं कि आप मुझे एक पुत्र दीजिए ताकि मैं इक्ष्वाकू वंश से अऋण हो जाऊं॥

वशिष्ट जी ने कहा बहुत अच्छा मैं तुझ को एक पुत्र दूंगा और वह उस के साथ अयोध्या पुरी को चले गए॥

जब अयोध्या वासियों ने सुना कि उन का राजा बहुत काल पीछे वशिष्ट जी को साथ लिए आरहा है तो वह बहुत प्रसन्न हुए और उन को लेने के लिए दूर तक आगे गये, नगरी में आते ही ग्रह ग्रह में वधाई होने लगी और जय के नगारे बजने लगे, सड़कों पर छड़काओ होगया और बहुत सी ध्वजायें लटकाइ गई इस से राजा बहुत प्रसन्न हुआ, राजा की रानी वशिष्ट जी के पास गई जिन्हों ने उस को पुत्र दिया और आदर सन्मान सहित वहां से चले, समय होने के वाद उस के पुत्र हुआ जिस का नाम असमक रखा गया॥

चौरासीवां अध्याय

—:०:—

वशिष्ट जी के पौत्र उत्पन्न होना, उस का बड़े होकर अपने पिता का मरण राक्षस से सुन कर क्रोध से सम्पूर्ण लोकों के नाश करने की इच्छा करना और वशिष्ट जी का उस को भार्गवों के नाश होने का इतिहास कहना

वशिष्ट जी जब अपने आश्रम में पहुंचे तो उन की पुत्र वधू अदृश्यंती के हां पुत्र उत्पन्न हुआ उन्हों ने उस के जात कर्म आदि संस्कार करके उस का नाम पराशर रक्खा, वह बालक वशिष्ट जी को ही अपना पिता समझता था और सब बर्ताव पिता के समान करता था, एक दिन उस ने अपनी माता के सन्मुख वशिष्ट जी को पिता कह कर पुकारा उस के मीठे शब्दों को सुन कर अदृश्यंती की आखों से अश्रू बह निकले और उस से कहने लगी बेटा तेरे पिता को राक्षस ने बन में खा लिया था यह तो तेरे पितामह हैं तू इन को तात कह कर मत पुकारा कर ॥

पराशर को बड़ा क्रोध हुआ और उस ने विचारा मैं सम्पूर्ण लोक का नाश कर डालूंगा ॥

वशिष्ट जी अपनी दिव्य दृष्टि से उस के इस विचार को जान गये और उस के उस विचार को हटाने के लिये उन्हों ने उसे नीचे लिखी कथा सुनाई ॥

हे पुत्र कृतवीर्य नाम एक बड़ा श्रेष्ठ राजा था, भार्गव

लोक उस के पुरोहित थे उन से उसने सोम यज्ञ कराए और उन को वहुत सा धन देकर तृप्त किया, वह राजा स्वर्ग में गया उस के पुत्रों को एक समय धन की आवश्यक्ता हुई वह यह जान कर कि भार्गवों के पास वड़ा धन है, उन के पास धन मांगने को गये वहुत से भार्गवों ने तो उन राजाओं को धन दे दिया और वहुतसों ने उन के भय से पृथ्वी में गाड दिया और कईयों ने ब्राह्मणों को दान कर दिया, तव एक राजा ने एक भार्गव के घर की पृथ्वी को खुदवाया और उस में से वहुत सा द्रव्य मिला इस से उस राजा को वड़ा कोप हुआ और उसने सारे भार्गवों को पकड़ा और शरणागत होने पर भी वाणों से मार डाला और सकल पृथ्वी पर घूम २ कर यहां तक किया कि भार्गव का गर्भ तक न रहने दिया भार्गव कुल की स्त्रियां हिमाचल पर्वत पर चली गईं उन में एक स्त्री वान्तेरू नाम थी उसने अपने पति की कुल की रक्षा करने के लिए क्षत्रियों के भय से अपने गर्भ को वांई जांघ में रक्खा हुआ था वह गर्भ वड़ा तेजस्वी था। किसी स्त्री ने भय से क्षत्रियों से जाकर उस गर्भ की खवर दे दी क्षत्री उस गर्भ का नाश करने के लिए भी वहां गये गर्भ जांघ को फाड़कर उसी समय दोपहर के सूर्य के समान चमकता हुआ वाहर निकल आया उस के तेज से उन सब क्षत्रियों की दृष्टी जाती रही और वह अंधे होजाने के कारण पर्वतों पर इधर उधर टकराते हुए दृष्टि पाने के लिए उस ब्राह्मणी की शरण में गए और वड़ी नम्रता के साथ दोनों कर वांध कर वोले यदि तू कृपा करे करे तो हम सव अधर्मी अपने अपने घरों को चले जावें हम

सब अपराधी हैं तू हम पर कृपा कर और हम को हमारी दृष्टी दे कर हमारी रक्षा कर ॥

पचासीवां अध्याय

—:०:—

भार्गवों के वंश में एक बड़े तेजस्वी पुत्र का उत्पन्न होना, उस का सब लोकों को नाश करने की इच्छा करना और पितृलोक से पित्रों का आकर उस को ऐसा करने से मना करना ॥

उस ब्राह्मणी ने उन राजाओं की बिनति सुन कर कहा, मैं तो तुम लोगों से प्रसन्न हुं परंतु मेरा यह पुत्र जिस के सकुल पुरषाओं को तुम लोगों ने मार डाला है तुम पर अप्रसन्न है और इसी ने तुम को अंधा किया है तुम इस की स्तुति करो यही तुम्हें दृष्टी दे सकता है ॥

वह सब राजा लोग एकत्र हुये और हाथ बांध कर उस तेजस्वी लड़के के सन्मुख खड़े हो करें बिनति करके बोले हे महाराज हम दीनों पर कृपा कीजिए और हमारे अपराध क्षमा कीजिए ॥

उस ने उन सब पर कृपा की और वह अपने नेत्र पा कर अपने २ घरों को चले गये ॥

उस बालक का नाम उरु से उत्पन्न होने के ... इस

संसार में और्व विख्यात हुआ, उस लड़के ने अपने कुटम्बियों के नाश होने का हाल सुन कर बदला लेने के लिए बड़ी उग्र तपस्या की और सम्पूर्ण लोकों के नाश करने का विचार किया उस के इस विचार को जान कर उस के पितर पितृलोक से आए और उस से कहा हे पुत्र तेरे तप के प्रभाव को सब जानते हैं तू अपने क्रोध को शांत कर और इन लोकों पर दया कर हम सब बड़ी आयू होने के कारण संसार में रह कर दुःखी हो गये थे और आप अपना नाश क्षत्रियों के हाथों से चाहते थे और जो धन हमारे मकानों के खोदने से नि ला था वह हमने स्वयं ही क्षत्रियों से वैर करने के लिए अपने मकानों में गाड़ा था हम को धन की कुच्छ इच्छा न थी, हम को तो स्वर्ग की इच्छा थी और हमने यह विचार इस लिए किया था कि आत्म हत्या पाप है उस से सत गति नहीं होती, तैंने जो विचार किया है वह हमें बुरा मतीत देता है, तू इस पाप के करने का विचार छोड़ दे ॥

छिआसीवां अध्याय

—:०:—

और्व का पित्रों के समझाने से लोकों को नाश करने का विचार त्यागना और की हुई प्रतिज्ञा के पूरा करने का उपाय पित्रों से पूछ कर अपने आप को शांत करना ॥

पित्रों के उपदेश को सुन कर और्व ने कहा कि मैंने क्रोध

कर के लोगों को मारने की जो प्रतिज्ञा की है वह क्यों कर पूरी होगी, मैं उस को झूठा नहीं कर सकता यदि मैं ऐसा करूंगा तो क्रोध मेरे अंगों को इस प्रकार से जलादेगा जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को जला देती है, जो मनुष्य कार्य सहित क्रोध को शांत करता है वह अर्थ धर्म और काम की रक्षा नहीं कर सकता, राजाओं का धर्म नीचों को दंड देना और श्रेष्ठों की रक्षा करना है इन नीच क्षत्रियों ने निर्दोष और श्रेष्ठ भार्गवों का यहां तक नाश कर दिया कि उन के जो गर्भ थे वह भी न छोड़े मुझे भी जब मैं माता के गर्भ में था वह नीच क्षत्री मारने के लिए आये और मैंने उस समय माता के रोने और चिल्लाने का शब्द सुन कर क्रोध करके यह प्रतिज्ञा की थी। आश्चर्य की बात यह है कि उन नीचों को किसी ने रोका तक नहीं कि तुम ऐसा अपराध क्यों करते हो ॥

जब तक संसार में पाप का निषेद करने वाला कोई नहीं होता तब तक सब मनुष्य पाप करते हैं और जब पाप कर्म का निषेद करने वाला होता है तब कोई पाप नहीं करता जो मनुष्य समर्थ होने पर पापी को दंड नहीं देता वह भी पाप का भागी होता है इस कारण मैं सब लोकों को पापी जान कर उन पर क्रुद्ध हुं और आप की आज्ञा का यथावत पालन नहीं कर सकता, मैं इन सब को दंड देने की सामर्थ रखता हूं यदि इन को दंड न दूं तो पाप का भागी ठहरता हूं और मेरे क्रोध की अग्नि जो मैंने सब लोगों को जलाने के लिए रची थी और जो अब तीक्षण हो रही है रोकने पर मुझे ही जला डाले गी, मुझे मालूम है कि आप

सब इन लोकों का हित चाहते हैं, परंतु अब कोई ऐसा विधान बतलाइये जिस से उन का और मेरा दोनों का कल्याण हो ॥

पित्रों ने कहा सब लोक जलमय कहे गये हैं तू अपने क्रोध को समुद्र में छोड़ दे इस से तेरी प्रतिज्ञा भी पूर होजायगी। और संसार का नाश भी न होगा ।

और्व ने वैसा ही किया, हे पाराशर तू भी क्षमा कर और शांत हो ॥

—:o:—

सत्तासीवां अध्याय

—:o:—

पाराशर ऋषि का सब राक्षसों को भस्म करने के लिये यज्ञ करना और पूलस्त्यादि ऋषिओं का उस को ऐसा करने से रोकना ॥

वशिष्ट जी के समझाने से पाराशर ऋषि ने लोकों के नाश करने के विचार को छोड़ दिया और अपने पिता शक्ति का मरण याद कर के राक्षसों के मारने वाला यज्ञ रच दिया, विशष्ट जी ने इस विचार से कि सम्भव है कि वह न माने उसे इस यज्ञ विषय में कि बालक, वृद्ध, युवक किस प्रकार के राक्षस मारे और किस को न मारे कुच्छ न कहा, उस यज्ञ से आकाश बहुत साफ होगया और तीन अग्नियों के साथ पाराशर जी बैठे हुय चौथी अग्नि ही प्रतीत होते थे, अत्रि, पूलस्त्य क्रतू और महा क्रतू आदि राक्षस पाराशर जी को समझाने कि लिये

आये और कहा हे पुत्र क्या तेरा यह यज्ञ निर्विघ्न है क्या तू नहीं जानता कि मैं निर्दोष राक्षसों को मार रहा हुं इस महा पाप का फल कौन भोगेगा, तुझे हमारी प्रजा का नाश करना उचित नहीं है ॥

तपस्वी ब्राह्मणों को अपना अंतः करण वश में करना हीं बड़ा धर्म है शक्ति को किसी राक्षस ने नहीं मारा वह राजा जिस ने राक्षस होकर शक्री को मारा था उसी शक्री के शाप से ही राक्षस हुआ था इस कारण शक्री अपने ही दोष से स्वर्ग को गया है, इस में अन्य किसी का दोष नहीं तू धर्मात्मा है इस अधर्म कार्य को त्याग दे, पाराशर इन ऋषियों का कहना मान गये और उन्हों ने इस यज्ञ को बंद कर दिया और उस अग्नि को हिमालय के पार्श्व के वनों में डलवा दिया जहां वह आज तक उस वन में पत्थर, वृक्ष और राक्षसों को भक्षण करती हुई पूर्व पर दीख पड़ती है ॥

अट्ठासीवां अध्याय

—:o:—

गंधर्व का राजा कलमाष पाद का अपनी स्त्री को संतान के लिए वाशिष्ट जी के पास भेजने का कारण कहना ॥

अर्जुन ने पूछा हे गंधर्व ! राजा कल्माषपाद ने अपनी

स्त्री को ब्रह्मज्ञानी मुनि वशिष्ट जी के पास क्यों युक्त किया और वशिष्ट जी उस अगम्या स्त्री के पास क्यों कर गये उन्हों ने अधर्मी और अन उपकारी के साथ क्यों उपकार किया ॥

हे अर्जुन! शक्ति के शाप देने पर राजा कल्मापपाद अपनी स्त्री सहित नगर से बाहर चला गया और एक निर्जन वन में जहां नाना प्रकार के वृक्ष, लता और पुष्प लगे हुए थे और अनेक प्रकार के मृग वराह और जीव विहार करते थे पहुंचा, एक दिन जब वह उस वन में कुच्छ अहार ढूंढ रहा था वहां उसने एक ब्राह्मण को ब्राह्मणी के साथ भोग करते हुए देखा, राजा को देख कर वह दोनों भागे परंतु राजा ने दौड़ कर ब्राह्मण को पकड़ लिया, उस समय ब्राह्मणी ने कहा हे राजन् यद्यपि तू इस समय शाप के वश में है तौ भी तू सूर्यवंशी धर्मात्मा सावधान और गुरुओं की सेवा करने वाला है तुझ राजा को ऐसा अधर्म करना उचित नहीं था यह मेरा पति है और मैं ऋतु स्नान से निवृत होकर इस के पास संतान की इच्छा से आई हूं, तू इस को छोड़ दे, राजा ने एक न मानी और उस ब्राह्मण को मार कर भक्षण कर गया, वह ब्राह्मणी रोने लगी और उस की आंखों से आंसू गिरने लगे और गिरते ही वह जलती हुई अग्नि हो गये ब्राह्मणी ने क्रोध में आकर राजा को शाप दिया कि तूने मेरे प्यारे पति को मेरी कामना पूरी हुए बिना मार कर खा लिया है इस से तू भी जब अपनी स्त्री के पास जायगा मरजायगा, और जिस वशिष्ट ऋषि के पुत्र मार कर

तैंने खाए हैं उसी से जब तेरी स्त्री भोग करावेगी तब तेरे हां पुत्र होंगे यह कह कर वह ब्राह्मणी उसी स्थान में अग्नि में भस्म हो गई, यह शाप वशिष्ट जी के राजा कल्माषपाद की स्त्री के पास जाने का कारण है ॥

—:०:—

नौवासीवां अध्याय

—:०:—

पांडों का द्रौपदी के स्वयम्बर को जाना और रासता में धौम्य ऋषि को अपना पुरोहित बनाना ॥

अर्जुन ने गंधर्व से कहा तुम सर्वज्ञ हो हम को कोई ऐसा योग्य ब्राह्मण बताओ जिस को हम अपना पुरोहित बनावें ॥

गंधर्व ने कहा उत्कोचक तीर्थ पर देवल का छोटा भाई धौम्य तप कर रहा है तुम उस को अपना पुरोहित बनाओ ॥

तब अर्जुन ने उस गंधर्व को अग्नेय अस्त्र दिया और कहा कि घोड़ों को अभी तुम अपने पास रखो आवश्यक्ता पर हम आप से लें लेंगे, तब वह एक दूसर स आदर और सन्मान से पृथक हुये ॥

इस जगा स पांडव उत्कोचक तीर्थ की ओर चले वां पहुंच कर धौम्य स अपना पुरोहित होने को कहा॥

धौम्य ऋषि ने फल फूल आद से उन का सत्कार किया

और उन की पुरोलाई को अंगीकार करके उन के आगे चल पड़े उन के आगे चलने को देखकर पांडवों को निश्चय होगया कि अब उन के अच्छे दिन आगये हैं अब वह द्रौपदी को स्वयम्वर में जीत कर अपना राज्य पालेंगे ॥

पांडव अपनी माता और पुरोहित सहित चलते हुये अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि उन को बहुत से ब्राह्मण इकट्ठे जाते हुए मिले, उन ब्राह्मणों ने पूछा कि आप कहां से आ रहे हैं और कहां जायेंगे ॥

युधिष्ठर ने कहा हम पांचों भाई माता सहित चक्रापुरी नगर से आ रहे हैं ॥

ब्राह्मणों ने कहा अब तुम सब हमारे साथ राजा द्रुपद की राजधानी को चलो वहा उस राजा की कन्या का जो बड़ी सुन्दर है स्वयम्वर है उसकन्या का हर एक अंग सडौल है और उस के अंगों से एक कोश से नीले कमलों की सी गंध आती है उस स्वयम्वर में दूर दूर देशों से यज्ञ करने वाले बड़े बड़े वेद पाठी महात्मा पवित्र, व्रती, बड़े बड़े सुन्दर शस्त्र अस्त्र धारण किए हुए राजपुत्र आवेंगे और ब्राह्मणों को नाना प्रकार के धन, गौ भक्ष्य भोज्य इत्यादि मिलेंगे नट, भाट गायनाचार्य इत्यादि अपना अपना कर्तव दिखलावेंगे हम सब वहीं जाते हैं और सवयम्वर देख कर पुनः लौट कर यहां ही आजायेंगे तुम भी हमारे संग चलो, तुम्हारे सब के देवताओं के से स्वरूप हैं कदाचित द्रौपदी तुम को वरले यह तुम्हारा छोटा भाई बड़ा श्रीमान् है सम्भव है कि तुम्हारी आज्ञा से उस मां लक्ष्मी को यह जीत ले ॥

युधिष्ठर ने कहा बहुत अच्छा हम आप के साथ चलते हैं ॥

—:o:—

नब्बेवां अध्याय ॥

—:o:—

पांडवों का स्वयंबर स्थान में जा कर ब्राह्मणों के मध्य में बैठना, वहां देश देश के राजाओं का आना और धृष्ट द्युम्न का उन को प्रणाम करना ॥

जब पांडव उन ब्राह्मणों के साथ चल रहे थे तो उन की दृष्टी श्रीव्यास जी पर पड़ी उन्हों ने विधि पूर्वक उनका पूजन किया और उन से सत्कार पाकर उन की आज्ञानुसार वहां से धीरे धीरे उत्तम २ स्थानों को देखते हुए द्रुपद की राज्यधानी में जा पहुंचे और एक कुम्हार के घर में डेरा किया, यहां वह ब्राह्मण बन कर भीख मांग लाते इस कारण उन का हाल किसी पर प्रगट न हुआ ।

राजा द्रुपद की इच्छा थी कि मैं द्रौपदी अर्जुन को दूं अर्जुन के ढूंढने के लिए उस ने एक बड़ा कठोर धनुष बनावया और उस के बीच में एक भ्रामक यंत्र रखवा कर उस में एक छिद्र करवा दिया और लक्ष्य (निशाना) उस छिद्र में हो कर रक्खा यह काम उस ने इस लिए किया था कि इस को अर्जुन के बिना और कोई नहीं कर सकेगा तब राजा

द्रुपद ने सब से कह सुनाया कि जो पुरुष इस धनुप को चढ़ा कर छिद्र में से लक्ष्य भेद करेगा उस के गले में द्रौपदी जयमाल डाल कर उस को बरेगी ॥

दुर्योधन, कर्ण और अन्य कौरव भी वहां आये हुये थे और राजाओं के बीच में ऊंचे २ मंचों पर बैठे हुए थे। सब पुरवासी भी वहां सज धज कर बड़े उमंग के साथ चले आये। स्वयम्बर का स्थान नगर की ईशान कोण में बनाया गया था उस के चारों ओर कोट और खाई बनवा दी गई थी, नाना रंग के तम्बू और चंदौये लगाये गये थे, तरह तरह के बाजे बज रहे थे. चारों ओर चंदन गुलाब और केवड़े के जल से छिड़काव हो रहा था और स्थान स्थान पर अगर की सुगंध फैल रही थी, फूलों की मालाओं का कुच्छ अंत ही न था ऐसी सजावट था कि उस में जाने वाला पुरुष चकित रह जाता था ॥

सब राजा लोग अपने अपने स्थान पर बैठ गये पुरवासीयों ने अपनी जगा ली और ब्राह्मण अपने आसनों पर जा विराजे, यह पांडव भी उस सब शोभा को देखते हुए ब्राह्मणों में आकर बैठ गये, १६ दिनों तक वहा नट आदि के खेल होते रहे, सतारहवें दिन जब राजा ने देखा कि सब निमन्त्रण किये हुये राजा लोक आगये हैं तो द्रौपदी को कहा कि वस्त्र आभूषण पहिन कर और स्वर्ण की जयमाल ले कर मंडप में आये, ब्राह्मणों ने विधि पूर्वक हवन किया और स्वस्ति वाचन पढ़ा, धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी को साथ ले लिया और सब बाजों गाजों को बन्द करा कर ऊंचे स्वर से कहा ॥

तुम सब राजाओं ने कृपा पूर्वक यहां चर्णा डाल कर हमें अनुग्रहीत किया है हम आपके कृत कृत्य हैं यह धनुष और बाण रक्खे हुये हैं और अंतरिक्ष में यह मंत्र है जो पुरुष इस यंत्र के छिद्र में से इस धनुष्य को चढ़ा कर इन बाणों से लक्ष्य भेदन करेगा उस को यह द्रौपदी विवाहेगी ॥

पुनः द्रौपदी से उस ने कहा—हे द्रौपदी, देख दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःमधर्षण, विविंशति, विकर्ण, युयुत्सु, सह, दुशासन, वायुवेग, भीमवेग, उग्रायु, आदि धृतराष्ट्र के पुत्र, कर्ण, शकुनी, (कंधार के राजा के पुत्र) वृषक, वृहद्वल, अश्वत्थामा, भोज, मणिमान, राजा बृहंत, दंडधार, सहदेव, जयत्सेन, मेघ संधि, शंख, राजा विराट अपने पुत्रों सहित, सुशर्मा, सेनाविंदु, सुनाम, सुवर्चस, सुकेतु, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्य धृति, सूर्यध्वज रोचमान, नील, चित्रायुध, अशुमान, चेकितान, राजा जलसंध, विदंड, दंड, भगदत्त, दलिंग, तम्रलिप्त, पत्तन, शल्य, रुक्मांगद, सोमदत्त, राजा कांबोज, पौरव, सांव, अक्रूर, सात्याकि, कृतवर्मा, पृथु, जयद्रथ उलूक, शिशुपाल आदि पराक्रमी राजा लोग तुझे वरने के लिये आये हुये हैं इन में से जो इस लक्ष्य को भेदे उसी को तू वरियो ॥

इक्यानवें अध्याय

—:०:—

बारी बारी सब राजाओं का लक्ष्य भेद

के लिये जाना और किसी से धनुष न चढ़ने पर अर्जुन का उठना ॥

उस समय सब उपस्थित राजा अपने बल, यौवन, रूप, कुल और धन पर मत्त हाथी के समान मतवाले हो रहे थे और द्रौपदी के स्वरूप को देख २ कर उस को जीतने के लिये एक दूसरे से ईर्षा करने लगे श्री कृष्ण जी और बलदेव जी भी वहीं आ विराजे। श्री कृष्ण जी ने पांडवों को पहचान कर धीरे से बलदेव जी को दिखला दिया परंतू और किसी राजा ने उन को न पहचाना ॥

द्रौपदी के स्वरूप को देख कर सब पांडव भी काम देव के वश हो गये सब उपस्थित लोगों के दिलों में इस समय केवल द्रौपदी ही बस रही थी और हर ओर आनन्द ही आनन्द था ॥

तब सब से पहिले दुर्योधन निकले उन्हों ने धनुष के चढ़ाने का बड़ा यत्न कीया परंतू वह न चढ़ा पुनः वारी वारी सब राजा लोक उठे और धनुष के न चढ़ने से निराश होकर लज्जा से मुख नीचे किये और अपने अपने स्थानों पर जा बैठे यत्न करते हुये किसी राजा का हार टूट कर गिर पड़ा था किसी का कोई अन्य आभूषण गिर पड़ा था और कईयों की पगड़ीयां उतर गई थीं लक्ष्य भेद करना तो एक ओर रहा किसी से धनुष तक भी नहीं चढ़ा ॥

सब राजा लोग अब दिल तोड़ कर और द्रौपदी को पाने से निराश होकर हाहा कार करने लगे दुर्योधन ने कर्ण को

अपने वल की परीक्षा के लिये कहा और वह धनुप के पास गया और धनुष को शीघ्र चढ़ा लिया यह देख कर पाडव कहने लगे यह अवश्य लक्ष्य भेदेगा ॥

उस समय द्रौपदी ने चिल्लाकर कहा मैं सूत क साथ अपना विवाह नहीं करूंगी ॥

यह सुनते ही कर्ण ने धनुप को धरती पर रख दिया और क्रोध से हंसता हुआ सूर्य को देख कर अपने स्थान पर जा बैठा ॥

कुछ राजे वाकी रह गये थे पुनः उन में से शिशुपाल जो बड़ा पराक्रमी और वीर था धनुप के पास गया वह उस को उठाते ही धरती पर गिर पड़ा । राजा शाल्य और जरासंध उठे और धनुप चढ़ाते ही घुटनों के वल गिर पड़े ॥

उन ब्राह्मणों में से अर्जुन वाहर निकला उस को उठते हुये देख कर चारों ओर के लोग नाना प्रकार की वातें करने लग गये । ब्राह्मणों में से एक ने कहा जहां इतने वड़े वड़े वलवान क्षत्री राजाओं में से जो शस्त्र अस्त्र विद्या में हर प्रकार से निपुण हैं कोई राजा इस धनुष को नहीं चढ़ा सका तो यह ब्राह्मण का लड़का क्यों कर चढ़ा सकेगा, ऐसा करने से यह ब्राह्मणों की उपहंसी करायेगा, दूसरा वोला इस का इस काम के लिये जाना अच्छा नहीं, तीसरे ने कहा भाई इस ने अपने वल को जांच ही लिया होगा, चौथे ने कहा न जाने यह कौन है जो ब्राह्मण के वेष में हम में बैठा हुआ है, पाचवें ने कहा वह ब्राह्मण युवक है देखो इस की वाहें हाथी की सूंड

हिमाचल पहाड़ का सा जान पड़ता है इस की चाल सिंह के समान और पराक्रम मत्त हाथी का सा है इस के लिये यह काम कोई कठिन काम नहीं है यह अवश्य लक्ष्य भेद करेगा कोई ऐसा कार्य संसार में नहीं जो ब्राह्मण न कर सकते हों इन में बड़ा तेज होता है देखो परशुराम जी ने क्षत्रियों का २१ वार नाश किया और अगस्त मुनि जी सम्पूर्ण समुद्र को पी गये थे ब्राह्मण यह बातें कर ही रहे थे कि अर्जुन उस धनुष के पास जा पहुंचा और उस को देख कर मन में शिवजी और कृष्ण को प्रणाम किया और उस की प्रदक्षिणा करके उसे उठा लिया और पाच बाणों से लक्ष्य भेद करके बतक को यंत्र से नीचे गिरा दिया, इस के पृथ्वी पर गिरते ही चारों ओर से वाह वाह, ब्राह्मणों की जय, ठीक लक्षभेद हुआ इत्यादि शब्द उचारे गए और अर्जुन पर फूलों की इतनी वर्षा हुई कि वह सारी धरती फूलों से भर गई, तब सब ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो हो कर अपने मृगचर्मों को जय ध्वजा के तुल्य उठा लियां, बहुत से लोग प्रसन्नता में अपने अंगों को ही बजाने लग गए बाजे गाजे का बहुत ज़ोर हो गया और हारे हुए राजा लोग हाहा कार करने लगे ॥

द्रुपद ने इस विचार से कि कोई हारा हुआ राजा अर्जुन पर वार न करदे उसी समय अर्जुन की सहायता के लिये सेना को त्यार कर दिया और उस गुल गुपाड़े को सुन कर युधिष्ठर, नकुल और सहदेव को साथ लेकर डेरे की ओर चल दिया और द्रौपदी ने श्वेत फूलों की सुन्दर जयमाल, अर्जुन के गले में डाल दी, अर्जुन द्रौपदी को साथ ले कर ब्राह्मणों सहित वहां से बाहर निकल कर डेरे की ओर चल दिया ॥

बानवेका अध्याय

—:o:—

सब राजाओं का द्रुपद को मारने की सलाह करना, द्रुपद का ब्राह्मणों की शरण में जाना और अर्जुन और भीमसेन का युद्ध के लिये त्यार होना और पांडवों का सब राजाओं को जीत लेना ॥

ब्राह्मण को कन्या दी हुई जान कर सब राजा लोग द्रुपद पर बड़े क्रोधित हुए और एक दूसरे से कहने लगे कि इस राजा ने हम को यहां बुला कर हमारा बड़ा निरादार किया है क्या हम सब में से कोई भी उस के साथ व्याहे जाने के योग्य नहीं है, क्षत्रियों के स्वयम्वर में ब्राह्मणों का काम ही क्या था, इस राजा ने हम को बिना किसी कारण के दुःख दिया है उचित है कि इस को और इस के पुत्र को मार डाला जाय और इस कन्या को जिस के कारण हमारा सब का अपमान हुआ है अग्नि से जला दिया जाये, ब्राह्मण हमारे पूज्य हैं और जो कुछ हमारे धन आदि हैं वह सब उन का है इस कारण उस ब्राह्मण को हम कुछ नहीं कहना चाहिये, द्रुपद को अवश्य मार कर दंड देना चाहिये ताकि पुनः कोई राजा स्वयम्वर में ऐसा न करे, यह कह कर सब राजा लोग अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले कर राजा द्रुपद को मारने के लिये चले, द्रुपद भयभीत हो कर ब्राह्मणों की शरण में पहुंचा, भीमसेन और अर्जुन राजाओं के सन्मुख होने के

लिये खड़े हो गए, इधर भीमसेन ने एक बड़े वृक्ष को वहां से उखाड़ लिया और उस के पत्ते आदि नोच कर फेंक दिये और अपने भाई अर्जुन के पास खड़ा हो गया और अर्जुन ने धनुष बान को हाथ में ले लिया ॥

श्री कृष्ण जी जो राजाओं में थे बलदेव से कहने लगे देखो जिस ने वृक्ष तोड़ कर हाथों में लिया हुआ है वह भीमसेन है और जो धनुष को हाथ में लिये खैंचरहा है वह अर्जुन है और वह युधिष्ठर, सहदेव और नकुल हैं यह अग्नि से बच कर अब इस वेष में हैं ॥

अर्जुन और भीमसेन को युद्ध के लिये त्यार देख कर बाकी सारे ब्राह्मणों का हौसला भी बढ़ गया और वह भी अपने मृग चर्मों को हिलाते हुए बोले डरो मत हम इन के साथ हो कर लड़ेंगे ॥

अर्जुन ने कहा आप सब दूर हो कर देखते रहिये मैं अपने बाणों से इन सब क्रोध से भरे हुए राजाओं को इस प्रकार से रोक दूंगा जिस प्रकार से सांप मंत्र बल से रोके जाते हैं ॥

अब सब राजे अर्जुन और भीमसेन के ऊपर यह कह कर कि यह ब्राह्मण बध करने के योग्य हैं दौड़े, कर्ण अर्जुन से और शल्य भीमसेन से युद्ध करने लगा और अन्य सब राजा बाकी के ब्राह्मणों से लड़ने लग गए ॥

कर्ण को आगे बढ़ते हुए देख कर अर्जुन ने उस को बड़े तीक्षण बाणों से बेध डाला, कर्ण मोहित सा हो कर यब

हुए खूब लड़ने लगे कर्ण से अर्जुन बढ़ कर रहने लगा ॥

कर्ण ने विचारा कि इस के बराबर कोई योधा नहीं है तब वह भी आगे से दिल लगा कर युद्ध करने लगा, अर्जुन कर्ण की मयोग सहित बाण वृष्टी को अपने बाणों से रोक कर गरजता, उस की इस गर्ज को सुन कर सेना वाले उस की बड़ाई करने लगे और वह उस को बड़ा भाट जान कर बोला, हे विप्र मैं तुम्हारे इस युद्ध से बहुत प्रसन्न हुआ हुं आप साक्षात धनुर्वेद हैं आपने अपने आप को इस वेष में क्यों रक्खा है, मेरे क्रोध करने पर युद्ध में मेरे सन्मुख इन्द्र और अर्जुन के विना और कोई नहीं ठहर सकता ॥

अर्जुन ने कहा हम इन में से कोई भी नहीं हैं हम तो ब्राह्मण हैं हम ने अपने गुरु से ब्रह्म और पौरन्दर आदि अस्त्र पाये हैं इस कारण हम योधाओं में श्रेष्ठ और शस्त्र धारियों में उत्तम हैं, अब तुम को जीतने के लिये युद्ध कर रहे हैं ॥

कर्ण ब्राह्मण को अजेय जान कर पीछे हट गया ॥

उधर शल्य और भीमसेन का मल्लयुद्ध हुआ वह दोनों नाना प्रकार के दाउ पेच करते, कभी एक खेंच ले जाता कभी दूसरा हटा देता, कभी एक लात मारता कभी दूसरा मुष्टिक मारता इस प्रकार करते करते भीमसेन ने शल्य को उठा लिया और घुमा कर धरती पर दे मारा, शल्य लज्जित हो कर चला गया और ब्राह्मण हंसने लगे ॥

अर्जुन से कर्ण को इस प्रकार पीछे हटते हुए और

शल्य को भीमसेन से हारा हुआ देख कर सब राजा भयभीत होकर पीछे हट गए और कहने लगे कि यह ब्राह्मण बहुत श्रेष्ट हैं इन की जन्मभूमि और निवास स्थान पूछना चाहिये ॥

श्री कृष्ण जी ने सब राजाओं को कहा, तुम यह युद्ध अधर्म से कर रहे हो, स्वयम्वर का जो नियम था उस को पूरा करके उन्हों ने द्रौपदी को जीता है ॥

कृष्ण जी की इस बात को सुन कर सब राजा युद्ध को छोड़ कर अपने अपने डेरों को चले गये ॥

वाकी के लोग भी यह कहते हुये कि आज द्रौपदी को ब्राह्मण स्वयम्वर में जीत कर ले गये हैं अपने २ स्थानो को चले गये ॥

पांडवों को समय पर भिक्षा से लौट कर डेरे में न आया देख कर कुंती को बड़ी चिंता हुई और उस ने अपने मन में विचारा कि आज मेरे पुत्रों को देर हो गई है किसी राक्षस ने न रोक लिया हो या दुर्योधन ने उन को पहचान कर कहीं मरवा न डाला हो ॥

आज व्यास जी की बात झूठी होती दीखती है, कुंती इस प्रकार सोच ही रही थी कि इतने में अर्जुन और भीमसेन दोनों द्रौपदी को साथ लिए हुये आ पहुंचे और आते ही माता को कहा माता जी आज हम एक बहुत अच्छी चीज़ लाये हैं ॥

कुंती ने बिना सोचे समझे अन्दर से ही कहा बेटा उस को पांचों मिल कर खाओ ॥

जब कुंती बाहर आई और अपने पुत्रों के साथ द्रौपदी को देखा तो बड़ी सोच में पड़ गई और बोली कि मैंने बिना विचारे यह क्यों कहा कि तुम सब भाई मिलकर खाओ ॥

कुंती द्रौपदी को हाथ से पकड़ कर उस को युधिष्ठर के पास ले गई और उस को कहा हे पुत्र तू सब धर्म भली प्रकार से जानता है, तेरे भाईयों ने मुझ से आकर कहा हम भिक्षा लाय हैं मैंने बिना सोचे खाने की वस्तु जान कर कह दिया कि तुम सब मिल कर खाओ अब ऐसी युक्ति बताओ जिस से मेरा कहा भी झूठा न हो और पांचाल के राजा की इस कन्या को अधर्म न हो ॥

युधिष्ठर ने कुच्छ काल विचारने के पीछे अर्जुन से कहा हे अर्जुन द्रौपदी को तैंने स्वयम्बर में जीता है इस कारण इस का विवाह तेरे से ही शोभा देगा अब अग्नि प्रज्वालित करके इस का पाणी ग्रहण कर ॥

अर्जुन ने कहा आप मुझ को क्यों अधर्म का भागी बनाते हैं आप का यह कथन धर्म अनुकूल नहीं है पहिले आप का विवाह होना उचित है पुनः हम सब का क्रम से, हम चारों भाई और द्रौपदी आप के आधीन हैं आप जैसा उचित समझें वैसा करें परंतु उस में राजा पांचाल का यश और अधर्म न हो ॥

अर्जुन के इन भक्ति और स्नेह युक्त वचनों को सुन कर

सब भाई द्रौपदी की ओर देखने लगे उस का दिव्य स्वरूप सब के चित्त में बस गया और उस की मूर्त वहां बन गई ॥

युधिष्ठिर सब भाईयों के अभिप्राय को जान गया और साथ ही उस को व्यास जी के कहे हुये वचन भी याद आगये, उस ने यह भी विचार किया कि कहीं इस द्रौपदी पर ही हम सब भाईयों में विरोध न पड़ जाये इन सब बातों को दृष्टी में रखते हुये उस ने कहा द्रौपदी हम सब की स्त्री होगी, इस से पांचों भाई प्रसन्न हो गये ॥

कृष्ण जी उन सब राजाओं से पृथक हो कर अपने भाई बलदेव को अपने साथ लिए उस भार्गव शाला में गये और युधिष्ठर को अपने सब भाईयों के साथ बैठे हुये देख कर उन के पास चले गये और उन्हों ने युधिष्ठर और अपनी फूफी कुंती के चरण छू कर कहा, मैं कृष्ण हूं, बलदेव जी ने भी युधिष्ठर को प्रणाम करके कुंती के पाओं छुये ॥

कुंती ने कुशल क्षेम पूछ कर पूछा कि हम गुप्त रहने वालों को तुम ने क्यों कर जान लिया ॥

कृष्ण ने हंस कर कहा कहीं अग्नि भी छिपाये से छिपती है पांडवों के बिना इस काम को कौन कर सकता है यह किसी दूसरे मनुष्य का काम न था, दुर्योधन ने तो पाप किया था और तुम को अग्नि में दाह करने का प्रबंध किया था परंतु तुम्हारे भाग्य अच्छे थे इस कारण तुम बच गये, अब हम जाते हैं ऐसा न हो कि हमारे तुम्हारे पास बैठ कर बातें करने से सब राजा लोग तुम को पहिचान न लें, तुम्हारा कल्याण हो ॥

तिरानवे का अध्याय

—:०:—

धृष्ट द्युम्न का छिप कर भार्गव शाला में जाना, पांडवों की वारता सुन कर प्रसन्न होकर द्रुपद के पास लौट जाना, उस से पांडवों का हाल कहना और द्रुपद का पांडवों से जाति और कुल पूछने के लिये पुरोहित को भेजना ॥

जब पाडव द्रौपदी को जीत कर भार्गवशाला की ओर चले थे तो धृष्ट द्युम्न उन के पीछे पिछे चला गया और अपने नौकरों को शाला के बाहर चारों ओर खड़ा करके आप शाला के भीतर चला गया और वहां छिप कर एक ओर बैठा रहा ॥

सायंकाल होने पर भीमसेन आदि चारों छोटे भाई भिक्षा मांग कर लाये और युधिष्ठर के आगे रख दी, कुंती ने उस भिक्षा को द्रौपदी को दे कर कहा, इस में से जो कुछ बलिकर्म करके तू भिक्षा देनी चाहे किसी ब्राह्मण अथवा भूखे को दे दे और जो बाकी रहे उस में से आधा भीमसेन को जो सदैव बहुत खाता है दे दे और आधे के छे भाग कर के चार इन चारों भाईयों को, एक मुझ को दे दे और एक आप रख ले ॥

द्रौपदी ने बड़ी प्रसन्नता से वैसा ही किया ॥

सारे परिवार ने एकत्र बैठ कर उस भोजन को बड़े आनन्द के साथ खाया सहदेव उठे और बाहर से बहुत सी कुशा उठा लाये उस कुशा का उन्हों ने बिछौना बनाया और सब उस पर लेट गये युधिष्ठिर बीच में दो भाई उस के दायें और दो बायें लेटे कुंती सिर की ओर और द्रौपदी पाओं की ओर लेट गई, लेटने पर पांडवों ने युद्ध की बातें आरम्भ करदीं, एक अस्त्र शस्त्र चलने के नियमों को कहने लगा, तो दूसरा तलवार और गदा युद्ध की विधि का विस्तार करने लगा, तीसरे ने व्यूह रचना की कथा छेड़ दी और चौथा रथ चलाने के तरीके बतलाने लगा, वह यह कथायें करते करते सो गये और धृष्टद्युम्न यह सब कुच्छ सुन कर राजा द्रुपद के पास पहुंचा ॥

धृष्टद्युम्न के आपने पर राजा द्रुपद ने पूछा द्रौपदी को जो जन जीत कर ले गया है वह कौन है, कहीं वह शूद्र अथवा वैश्य न हो, क्षत्रि या ब्राह्मण है तो अच्छा नहीं तो यह राजा लोग जो यहां आये हुए थे मेरा बड़ा अपमान करेंगे ॥

धृष्टद्युम्न ने कहा महाराज ! जो जन द्रौपदी को जीत कर ले गया है वह जब यहां से गया तो वह ऐसे चलता था जैसे इन्द्र देवताओं में चलता है राजा लोग जब यहां से सम्मत हो कर उस को मारने के लिए गये तो उस के पास एक और मनुष्य बड़ा तेजस्वी एक बड़े वृक्ष को उखाड़ कर और यमराज काल दंड के समान उस को अपने हाथ में ले कर खड़ा हो गया उन दोनों ने

सब राजाओं को भगा दिया, वहां उन की माता और तीन भाई और थे वह दंडवत करके बैठ गये, पुनः चार जन भिक्षा को चले गये, भिक्षा लाने पर कृष्णा ने उसी भिक्षा से बलि कर्म करके कुछ ब्राह्मण को देदी और बाकी को सब ने बांट कर खाया तब एक जन जा करें कुशा लाया उस कुशा को बिछा कर सब लेट गये कृष्णा उन के पाओं की ओर सो रही, लटने पर उन्हों ने युद्ध की बात आरम्भ कीं, जो जो बातें उन्हों ने कीं वह मैंने सब सुनीं उन से तो स्पष्ट जान पड़ता है कि वह क्षत्री हैं, यदि और होते तो सेना की बातें न करते, वैश्य होते तो बनज व्यापार की कहानी छेड़ते और ब्राह्मण होते तो विद्या तप और यज्ञ की बातों को ले बैठते उन्हों ने ऐसी बातें की हैं जो बड़े बड़े योधाओं को भी करनी नहीं आतीं इस से मुझे पूरा निश्चय है कि वह क्षत्री हैं और क्षत्री भी किसी उच्च वंश के ॥

धनुष चढ़ाने से भी वह क्षत्री जान पड़ते हैं बिना क्षत्री के धनुष और कौन चढ़ा सकता है और फिर यह धनुष जिसे बड़े बड़े राजा भी नहीं चढ़ा सके, यह जो लक्षभेद किया है यह भी क्षत्री के बिना किसी और का काम नहीं मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह पांचों पुरुष लुप्त वेष में पांचों पांडव हैं आप को याद होगा कि लाक्षागृह को आग लग चुकने के पीछे यह सुना गया था कि पांडव आग से बच कर निकल गये हैं ॥

यह सुन कर राजा द्रुपद बहुत प्रसन्न हुआ और नौकर

से कहा पुरोहित जी से जाकर कहो कि वह इस स्थान में चर्ण पायें, पुरोहित जी आये और राजा ने उन को कहा आप भार्गवशाला में जाइये और युक्ति द्वारा यह पूछ कर आइये कि द्रौपदी को जीतने वाला पांडवों में से कोई एक है या कोई और है ॥

पुरोहित जी वहां गये और पांडवों की स्तुति कर के बोले राजा द्रुपद आप के लक्षभेद से बहुत प्रसन्न हुआ है और कहता है कि द्रौपदी को जैसा योग्य वर चाहिये था वैसा मिल गया है परन्तु राजा आप लोगों की जाति और वंश जानने की इच्छा रखता है आप कृपा कर के बतलाइये ताकि मैं राजा को बतला कर उस की प्रसन्नता को आगे सी भी बढ़ाऊं, राजा पांडु राजा द्रुपद का बड़ा मित्र था और तब ही से राजा द्रुपद की यह इच्छा थी कि मै अपनी इस कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दूंगा यदि अब दैव इच्छा से ऐसा हो गया है तो बड़ी प्रसन्नता की बात है ॥

युधिष्ठर ने भीमसेन से कहा यह राजा द्रुपद के पुरोहित होने के कारण हमारे भी मान्य हैं हमें उचित है कि इन का विशेष पूजन करें ॥

भीमसेन ने पुरोहित जी को आदर से बिठलाया और बड़ा सत्कार किया पुनः युधिष्ठर बोले, राजा द्रुपद ने स्वयम्बर में धनुष चढ़ा कर लक्षभेदने वाले को द्रौपदी देने का धर्म किया था उस में जाति वंश का कोई कथन तक नहीं था यह वीर राजा की उस प्रतिज्ञा को पूरा करके द्रौपदी को जीत लाया है और

फिर सब राजाओं से भी युद्ध करके इस को जीत चुका है इस दशा में जाति आदि के पूछने का विचार करना उचित नहीं, यह कन्या हमारे योग्य है: राजा द्रुपद की कामना पूरी होगी उस को तुम धैर्य दो, अभी युधिष्ठर यह बात कह ही रहा था कि एक और आदमी राजा द्रुपद की ओर से वहां आपहुंचा और कहा राजा ने आप के लिये यह सुन्दर रथ भेजे हैं और कहा है कि यहां आकर भोजन करीये और विधि पूर्वक कृष्णा का पाणी ग्रहण कीजिये ॥

चौरानवे का अध्याय ॥

—:०:—

राजा द्रुपद का पांडवों को भोजन के लिये बुलाना और उन की परीक्षा के लिये वहां हर प्रकार की वस्तु रखना, पांडवों का भोजन करना और शस्त्रों को देखना और उन का द्रुपद पर अपने आप को प्रगट करना, राजा का प्रसन्न होकर उन को उन का राज्य मिलने की प्रतिज्ञा देना और युधिष्ठर का राजा से पांचों पांडवों से द्रौपदी का विवाह करने को कहना ॥

युधिष्ठिर ने पुरोहित जी को विदा किया और पांचों भाई एक रथ में बैठ गए और दूसरे रथ में द्रौपदी और माता को बिठला कर राजा द्रुपद के स्थान को चल पड़े ॥

पुरोहित जी के पहुंचते ही राजा द्रुपद ने पांडवों की परीक्षा के लिये अपने स्थान में बड़ी बड़ी सुन्दर माला, कवच, ढाल, तलवार, बाण, धनुष, बरछी, आसन, रस्सी, गऊ, हल खेती करने की दूसरी चीज़ें, पत्थर फोड़ने के सब शस्त्र, नाना प्रकार की क्रीड़ा करने की चीज़ें, सुन्दर २ घोड़े लाठी, तोमर फरसा, आदि वहां रखवा दीं ॥

पांडवों के वहां पहुंचने पर राज भवन की स्त्रियां कुंती को अपने साथ बड़े आदर से रनिवास में लेगईं और राजा द्रुपद और मंत्री आदि उन को अपने साथ ले गये।

पांडव भीतर जाते ही उन बहु मूल्य आसनों पर जो वहां बिछे हुये थे बिना इस बात के विचारने के कि यह आसन राजाओं के लिये हैं जा बैठे, पुनः नाना प्रकार के राजसी भोजन चांदी के बर्तनों में परोसे हुये उन के आगे रखे गये उन को उन्हों ने बड़े स्वाद से खाया, फिर वह बाकी सब चीज़ों को छोड़ कर सीधे उस स्थान में चले गये जहां अस्त्र शस्त्र रखे हुये थे और वहां जा कर उन्हों ने एक एक अस्त्र शस्त्र को अच्छी प्रकार से देखा ॥

राजा द्रुपद यह देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और युधिष्ठिर के निकट जा कर कहने लगा मुझे इस बात का किस प्रकार से ज्ञान हो कि आप ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य या

शुद्र इन में से कौन हैं, मुझ को बड़ा संदेह हो रहा है आप कृपा करके मेरे इस संदेह को हटाइये आप के बिना इस को और कोई नहीं हटा सकता ॥

आप मुझे सत्य बतला दीजिए मैं प्रसन्न हो कर कृष्णा का विवाह विधि पूर्वक आप के साथ कर दूंगा ॥

युधिष्ठर ने कहा हे राजा द्रुपद तुम चिंता मत करो हम क्षत्री हैं और राजा पांडु के पुत्र हैं यह कुंती हमारी माता है, मैं सब से बड़ा हूं युधिष्ठर मेरा नाम है मुझ से छोटा जिस ने राजाओं को खूब पछाड़ा है भीमसेन है और जिसने लक्षभेद करके द्रौपदी को जीता है वह अर्जुन है यह दोनों सहदेव और नकुल सब से छोटे हैं ॥

आप की कन्या अच्छे कुल में गई है, आप अब किसी प्रकार की चिंता न करें ॥

राजा द्रुपद को यह बात सुन कर इतना हर्ष हुआ कि उस को सुध न रही जब हर्ष कुछ घटा और सुध आई तो उसने पूछा कि तुम नगर से क्यों कर निकले ॥

युधिष्ठर ने अपना सारा वृत्तांत जो आदि से अंत तक था राजा को कह सुनाया ॥

राजा द्रुपद ने धृतराष्ट्र की बहुत निन्दा की और युधिष्ठर को धैर्य देकर कहा हम यत्न करेंगे कि तुम्हारा राज्य तुम्हें मिल जाये, तब उसने उन को एक अति उत्तम मकान रहने के लिये दे दिया और वह सब उस मकान में जा रहे

राजा ने इन के खान पान आदि का बहुत उत्तम प्रबंध कर दिया ॥

एक दिन राजा ने युधिष्ठिर से कहा अब कोई शुभ दिन देख कर अर्जुन के साथ द्रौपदी का विधि पूर्वक विवाह कर देना उचित है ॥

युधिष्ठिर ने कहा राजन् हमारा यह नियम रहा है कि जो वस्तु हम सब या हम में से कोई लाता था तब हम पांचों मिल कर खाते अथवा उस का सेवन करते थे इस नियमानुसार इस द्रौपदी का विवाह हम पाचों के संग होना चाहिए और हमारी माता के मुख से भी यही शब्द निकल चुके हैं ॥

राजा द्रुपद ने कहा हम ने एक राजा की बहुत पटरानीयां तो आगे सुनी हैं परंतु एक रानी के पांच पति आज तक नहीं सुने यह बात लोक मर्यादा और धर्म के विरुद्ध है तुम तो ज्ञानी और धर्म्मात्मा हो तुम ऐसी बात क्यों कर कहते हो ॥

युधिष्ठिर ने कहा धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है, हम तो पहिले पुरुषाओं के मार्ग पर चलते हैं हम कभी झूट नहीं बोलते ॥

राजा द्रुपद ने कहा आज तुम, तुम्हारी माता कुंती और मेरा पुत्र तीनों इस बात पर विचार करो और जो उस विचार का फल होगा उस के अनुकूल कल हम करेंगे ॥

—:०:—

पचानवे का अध्याय

—:०:—

व्यास जी का पांडवों के पास आना और राजा द्रुपद का उन से पूछना कि द्रौपदी का विवाह पांचों पांडवों से करना धर्म है या अधर्म और व्यास जी का पांडवों की सम्मति पूछना ॥

इन दिनों में दैव इच्छा से व्यास जी वहां आपहुंचे इन को देख कर सब पांडव और राजा द्रुपद आदि खड़े होगये और उन को दंडवत कर के बड़े आदर से सुंदर आसन पर बिठलाया और आप भी बैठ गये ॥

इधर उधर की बातें करते हुये राजा द्रुपद ने व्यास जी से पूछा महाराज द्रौपदी बहुत मनुष्यों की स्त्री किस धर्म के अनुकूल हो सकती है आप ठीक २ वह बात कहिये जिस से अधर्म न हो ॥

व्यास जी ने कहा पहिले तुम सब अपनी अपनी बात कहो पुनः हम बतलायेंगे ॥

राजा द्रुपद ने कहा मैं ने आज तक कभी नहीं सुना कि एक स्त्री के पांच पति हों न किसी महात्मा ने आगे यह काम किया है मैं इस को धर्म के विरुद्ध समझता हुं विद्वानों को ऐसा अधर्म करना उचित नहीं ॥

धृष्टद्युम्न ने कहा यदि बड़ा भाई अच्छे चलन का होता

है तो छोटे भाई की स्त्री को कभी खोटी दृष्टी से नहीं देखता मेरी समझ में नहीं आता कि द्रौपदी का विवाह किसी धर्म के अनुकूल पांचों पांडवों के साथ किया जासकता हो ॥

युधिष्ठर बोला मैंने झूठ नहीं कहा है और न ही मेरी बुद्धी किसी प्रकार के अधर्म में है हमने पुराणों में सुना है जटिला नामी गौतम कुल की बड़ी धर्मात्मा स्त्री के साथ सात ऋषियों का विवाह हुआ था और वार्ती नाम एक ऋषि की पुत्री से प्रचेता नाम दश भाईयों से विवाह हुआ था शास्त्र ने गुरूओं के बचनों को धर्म रूप कहा है माता गुरूओं में गिनी गई है सो हमारी माता ने हमको आज्ञा दी कि भिक्षा के समान सब भाई इस को भोगो इस कारण मैं द्रौपदी का पांचों के साथ विवाह धर्मानुकूल समझता हूं ॥

कुंती ने कहा मैंने इन को ऐसा करने की आज्ञा दी थी युधिष्ठर सच कहता है ॥

व्यास जी ने कहा हे कुंती तू धर्म से मुक्त होगी यह धर्म सनातन है मैं इस धर्म को राजा द्रुपद से एकांत में कहूंगा और वह राजा द्रुपद का हाथ पकड़ कर उस को राज भवन के भीतर लेगये और पांडव, कुंती और धृष्ट द्युम्न भी वहां पहुंच गये व्यास जी वहां उन को एक स्त्री का बहुत पुरुषों के साथ विवाह होने का धर्म कहने लगे ॥

छियानवे का अध्याय

—:o:—

व्यास जी का राजा द्रुपद को पांडवों के पूर्व जन्म का हाल सुनाना और उस को दिव्य दृष्टी देकर पांडवों का पूर्व रूप दिखलाना और पांचों के साथ द्रौपदी का विवाह करने का उपदेश देना ॥

व्यास जी ने कहा हे राजा द्रुपद जब नैमिषारण्य में सर्पसत्र यज्ञ रचा गया था तो उस में सर्पों के प्राण लेने के लिए यमराज को नियत किया गया था उन के वहां लगे रहने से मनुष्यों के प्राण बचे रहे और मनुष्य बहुत बढ़ गये इस बढ़ती को देख कर चन्द्र, इन्द्र, वरुण, कुवेर, साध्य, रुद्र, वसु, अश्वनी कुमार आदि सब देवता भयभीत हो कर ब्रह्मा जी के पास गये और कहा महाराज हम को मनुष्यों की बढ़ती से बड़ा भय होता है ॥

देवताओं ने कहा महाराज मनुष्य भी बिन मरने से अमर होने के बराबर हो गये हैं इस कारण देवताओं और मनुष्यों में अब कुच्छ भेद नहीं रहा ॥

ब्रह्मा जी ने कहा यमराज आज कल सत्रयज्ञ में लगे

रहने के कारण मनुष्यों को नहीं मारता यज्ञ की समाप्ति पर वह मनुष्यों का नाश करेगा ॥

देवता इस बात को सुन कर प्रसन्न हुये और यज्ञ में जाकर दूसरे देवताओं के पास बैठ गए और क्या देखते हैं कि कमल बहते हुये आ रहे हैं इन को देख कर वह चकित से रह गये और इन कमलों के आने का कारण जानने के लिए इन्द्र गंगा जी के निकलने के स्थान पर गया वहां क्या देखता है कि एक स्त्री गंगा जी में स्नान कर रही है और रो रही है जो आंसू उस का गंगा जी में गिरता है वह सुनैहरा सुन्दर कमल बन जाता है, यह देख कर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और उस ने पूछा तू कौन है और क्यों रोती हैं ॥

स्त्री ने कहा मैं आगे आगे चलती हुं तू पीछे पीछे चला आ आगे चल कर मेरे रोने का कारण तुझे स्वयं ही जान पड़ेगा ॥

इन्द्र उस स्त्री के पीछे २ चला गया और थोड़ी दूर जा कर क्या देखता है कि उस पर्वत पर एक दर्शनीय पुरूष सिद्ध आसन पर बैठा हुआ एक स्त्री के साथ पासे खेल रहा है, इन्द्र ने कहा मैं देवताओं का राजा हुं और तीनों लोक मेरे वश में हैं ॥

उस देवता ने इन्द्र की अभिमान युक्त बात को सुन कर उस की ओर दृष्टि कर के देखा उस के देखते ही इन्द्र जड़ की तुल्य खड़ा का खड़ा रह गया, खेल को समाप्त करके वह

देवता उस रोती हुई स्त्री से बोला इस को हमारे पास ला जिस में इस से फिर कोई अहंकार न रहे ।

वह स्त्री इन्द्र को उस देवता के पास ले गई देवता के छूते ही वह धरती पर गिरपड़ा, इस को गिड़े हुए देख कर उस देवता ने इन्द्र से कहा फिर ऐसा कभी मत करियो तू बड़ा बलवान है इस पहाड़ को हटा कर इस विवर में हो कर भीतर चला जा वहा आगे तेरे समान और चार पुरुष हैं ।

इन्द्र पर्वत को हटा कर अंदर चला गया और वहां अपने समान चार पुरुषों को देख कर डरने लगा कि कहीं इन की तरह मुझे भी यहां ही न रहना पड़े ॥

फिर उस देवता ने क्रोध से इन्द्र को कहा तुम ने मेरा अपमान किया है इस कारण तुम भी इस गुफा में रहो, यह सुन कर इन्द्र कांपने लगा और कर बांध कर बोला महाराज आप सम्पूर्ण भवन के द्रष्टा हैं जो आप की इच्छा हो ॥

गिरी के देवता ने कहा तेरा स्वभाव प्रसाद पाने के योग्य नहीं वह चारों भी तेरे समान स्वभाव रखने वाले हैं इस कारण अब तू भी इस स्वभाव रखने के कारण इस गुफा में रहो, तुम पांचों को पृथ्वी पर जन्म ले कर बढ़े हुए मनुष्यों का नाश कर के कर्मानुसार पुनः इन्द्र लोक में आना होगा ॥

इन्द्र ने कहा महाराज हमें आप का कथन स्वीकार है हम पृथ्वी पर जन्म लेकर दिव्य अस्त्रों से मनुष्यों का नाश कर देंगे परन्तु हमारे जन्म दाता धर्म, वायु, इन्द्र, और अश्वनी

कुमार हों, पाचवें इन्द्र ने कहा स्वर्ग का प्रबन्ध करने के लिये मेरा वहां रहना आवश्यक है इस लिए मेरा वीर्य मेरे स्थान में पृथ्वी पर उत्पन्न होगा ॥

गिरी देव ने १ विश्वभुक्, २भूतधाम, ३ शिव, ४ शांति और तेजस्वी इन पांचों इन्द्रों को जिन में से पहिले चार बहुत काल से उस गुफा में बंद थे यथेष्ट वर दान दिया और उस रोती हुई स्त्री से कहा तू भी पृथ्वी पर जन्म ले कर इन पांचा की स्त्री होगी ॥

तब वह देव श्री नारायण जी के जो अगाध, अनंत, अव्यक्त, अमर और विश्वरूप हैं पास गये और उन को सारा वृत्तांत कह सुनाया ॥

नारायण ने उस को अंगीकार किया और अपने शरीर से दो रोम एक काला और दूसरा श्वेत उखाड़ कर दे दिए वह दोनों रोम अर्थात काले कृष्ण जी और श्वेत बलदेव जी के नाम से संसार में हुये और उन पांचों इन्द्रों ने कुंती और माद्री के हां जन्म ले कर पांडव सदाया, उन में से पांचवें इन्द्र के वीर्य से अर्जुन उत्पन्न हुआ और वह स्त्री द्रौपदी हुई है नहीं तो स्त्री के अग्नि कुंड से उत्पन्न होने की क्या आवश्यक्ता थी देखो उस की गंध चार कोस तक जाती है। यह द्रौपदी इन पाचों पांडवों की पहिले ही स्त्री है हे राजा मैं तुम को दिव्य दृष्टी देता हूं तुम इन पाचों पाडवों के पहिले रूप को अवलोकन कर लो ॥

राजा द्रुपद व्यास जी की दी हुई दिव्य दृष्टी से पाडवों

और द्रौपदी का पहिला स्वरूप देख कर विस्मित हो कर व्यास जी के चर्णों पर गिड़ कर बड़ा प्रसन्न हो कर बोला महाराज जैसे आप सुनने में आते हैं वास्तव में आप वैसे ही हैं ॥

व्यास जी ने कहा हे राजन् अब द्रौपदी के पहिले जन्म का हाल हम कहते हैं उस को सुनो, यह एक ऋषि की कन्या थी उस का विवाह तो होगया परंतु पूर्व कर्मानुसार उस को पति का कुच्छ सुख न हुआ और थोड़ी ही उमर में वह विधवा हो गई उस ने महादेव जी का बड़ा तप किया, महादेव जी ने प्रसन्न हो कर वर मांगने की आज्ञा दी उस ने कहा अच्छा तेरे पांच पती होंगे। स्त्री ने कहा महाराज मैंने एक पति मांगा है, महादेव जी ने कहा तैने मुझ से पांच बार कहा मुझे पती दो इस कारण मैंने तुझ को पांच पति होने का वरदान दिया है मेरा वाक्य अन्यथा नहीं हो सकता दूसरे तुझे सर्वगुण युक्त पांच पति मिलेंगे, हे द्रुपद यह कन्या तुम्हारे बड़े तप से हुई है इस के पांच पतियों का होना ब्रह्मा जी ने पहिले ही निर्मित कर रखा था सो अब तुम इस का विवाह इन पांचों के साथ कर दो ॥

सतानवे का अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का पांचों पांडवों से विवाह, श्री कृष्ण

जी का पांडवों के पास बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, धन आदि भेजना और दुर्योधन आदि राजाओं को द्रौपदी का पांचों पांडवों के साथ विवाह होने का समाचार मिलना और दुर्योधन का चिंता करना ॥

राजा द्रुपद ने विवाह की पूर्ण सामग्री मंगवाई, द्रौपदी को सुन्दर २ वस्त्र और आभूषण पहराये और पांडवों को भी सुन्दर सुन्दर वस्त्र आभूषण पहराकर द्रौपदी का पाणी ग्रहण करने के लिए अभिषेक किया, उस विवाह को देखने के लिये सब मंत्री, उच्च २ राज कर्मचारी और अच्छे २ पुरवासी वहां एकत्र हो गए और राजा का वह स्थान इस प्रकार शोभा देने लगा जिस प्रकार सायं काल के पीछे तारा मंडल के निकलने से गगन शोभा देता है ॥

तब पांडवों के पुरोहित धौम्य ऋषि ने वेदी बना कर उस के एक ओर विधि अनुकूल अग्नि प्रज्वालित कर के वेद मंत्रों से हवन किया और युधिष्ठर को द्रौपदी का पाणी ग्रहन करा कर उन दोनों से अग्नि की प्रदक्षिणा कराई, पुनः एक २ पांडव का विवाह द्रौपदी के साथ कराया गया फिर राजा द्रुपद ने बहुत सा धन, रथ, घोड़े गहनों से भरी हुई बहुत सी दासीयां इत्यादि पांडवों को दिया, यह सब कुच्छ ले कर पांडव द्रुपद नगर में ही वास करने लगे ॥

पांडवों से सम्बन्ध होने पर राजा निर्भय हो कर रहने लगा, दासीओं ने कुंती के पास आकर बारी बारी अपना नाम बतलाते हुए उस के चरण छूये द्रौपदी ने दोनों कर बांध कर कुंती को दंडवत की, कुंती ने पुत्र वधू को अशीर्वाद देते हुए कहा हे द्रौपदी ! जैसे इन्द्राणी को इन्द्र से, रोहिणी की चांद से, दमयंती की नल से, राम चन्द्र जी की सीता से, भद्र की कुबेर से, अरुन्धती की वशिष्ट से और लक्ष्मी की नारायण से प्रीति हुई है वैसी ही इन पांचों पतियों से तेरी हो, ईश्वर तेरी आयू बड़ी करे, तेरे उत्तम संतान हो, तू अच्छे २ सुख भोगे, पतिव्रता धर्म से रहे, तेरी आयू वृद्ध, बालक, अतिथि और गुरू के पूजन में गुजरे, इस कुरूजांगल देश में तेरा अभिषेक राजा के साथ हो, तु अपने पतियों के साथ अश्वमेध यज्ञ करती हुई सौ वर्ष तक सुख पावे ॥

श्री कृष्ण जी ने इस विवाह पर पांडवों को बड़े २ सुन्दर और बहु मुल्य वस्त्र घोड़े, रथ, हाथी, रत्न और धन भेजा जिन को युधिष्टर ने बड़ी प्रीति के साथ ग्रहण किया ॥

८ इस विवाह का पूर्ण समाचार उन सब राजाओं को जो स्वयम्बर में आये हुये थे पहुंच गया वह कहने लगे हमने तो सुना था कि पांडव अग्नि में जल गये हैं यह क्या हुआ, यह कहते हुए पुरोचन और धृतराष्ट्र की निन्दा करने लगे॥ दुर्योधन को इस से बड़ा दुःख हुआ वह पुरोचन को बुरा भला सुनाने लगा और कहने लगा दुष्ट ने अधूरा काम किया, दुशासन ने कहा प्रारब्ध बड़ी प्रबल होती है मनुष्य का यत्न उस के सामने कुछ नहीं कर सकता ॥

अब पांडवों को राजा द्रुपद और उस के पुत्र धृष्टद्युम्न की सहाय युक्त जान कर और अपने मनोरथ को पूरा न होता हुआ देख कर दुर्योधन का दुःख आगे से बढ़ गया और साथ ही अब उस को भय होने लग गया ॥

विदुर जी पांडवों के इस विवाह का हाल सुन कर बहुत प्रसन्न हुये और राजा धृतराष्ट्र के पास जा कर कहने लगे प्रारब्ध से कौरव कुल की वृद्धि हुई है, उस के इन वाक्यों से धृतराष्ट्र ने समझा कि दुर्योधन ने स्वयम्बर में द्रौपदी को जीत लिया है यह समझ कर धृतराष्ट्र ने कहा यह भाग्य से ऐसा हुआ है अब तुम द्रौपदी सहित दुर्योधन को हमारे पास लाओ और बड़े सुन्दर और बहु मुल्य वस्त्र भी मंगवाओ हम अपने हाथों से देंगे ॥

विदुर जी ने कहा राजन् ! द्रौपदी का विवाह पांडवों के साथ हुआ है और अब पांडव द्रुपद के हां सन्मान पा रहे हैं और उन का मेल द्रुपद के दूसरे सम्बंधी राजाओं के साथ हो रहा है ॥

धृतराष्ट्र ने कहा पांडव जैसे पांडू के पुत्र हैं वैसे ही मेरे भी पुत्र हैं मैं उन को दूसरा नहीं जानता, राजा द्रुपद के सम्बन्ध होने से अन्य राजा भी अब अवश्य उन के मित्र बन गये होंगे, अब द्रुपद से द्वेष रखना मूर्खों का काम है ॥

विदुर जी ने कहा ईश्वर करे तुम्हारी ऐसी ही बुद्धि सौ वर्ष तक रहे ॥

विदुर जी जब चले गये तो दुर्योधन और कर्ण धृतराष्ट्र के पास आये और कहने लगे हम आप के दोष को विदुर जी के सन्मुख नहीं कह सके, आप किस इच्छा से शत्रु की वृद्धि को अपनी वृद्धि मानते हैं और पांडवों की स्तुती करते हैं यह समय शत्रु के बल के नाश करने का है ऐसा न हो कि वह आ कर हम सब को भाई बंधु, सेना और पुत्र सहित मार दें ॥

अट्ठानवे का अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र का दुर्योधन और कर्ण से पांडवों के निग्रह का मंत्र पूछना, दुर्योधन का अपनी मति के अनुसार उपाय बतलाना और कर्ण का युद्ध की सम्मति देना ॥

धृतराष्ट्र ने कहा मैं विदुर जी को विश्वास दिलाने के लिये ऊपर से ऐसा करता हुं अब तुम दोनों अपनी सम्मति दो कि क्या किया जावे ॥

दुर्योधन ने कहा पहिले ब्राह्मणों से कोई ऐसा उपाय कराया जाये जिस से उन में फूट पर जावे या राजा द्रुपद को मंत्रीयों और पुत्र सहित धन आदि का लोभ देकर ऐसी बात बनाई जाये जिस से राजा द्रुपद पांडवों को त्याग दे, या कोई ऐसा पुरुष हो जो उन्हें यहां आने के अवगुण बतला कर उन की रुची इस ओर आने

से राज दे और वह सदैव वहीं रहें यहां आने का कभी नाम तक न लें और यदि इन बातों में से कोई भी न हो सके तो कोई ऐसा उपाय सोचा जाये जिस से वह द्रौपदी को त्याग दें या द्रौपदी पांडवों में फूट डलवा दे यदि यह भी न हो सके तो किसी उपाय से भीमसेन को मरवा डाला जाये क्योंकि वही उन सब में बलवान है और बाकी सब उस के आश्रय रहते हैं और उसी के बल के भरोसे पर हम को कुछ नहीं समझते उस के मरने से फिर हमें राज्य आदि के लिए कोई भी दुःख न देगा यद्यपि अर्जुन बड़ा बलवान है परंतु बिना भीमसेन के वह कर्ण का चतुर्थांश भी नहीं इस कारण भीमसेन के मरने पर पांडव बहुत निर्बल हो जायेंगे और हम को बलवान जान कर पुनः हम से राज्य नहीं मांगेंगे ॥

आप यदि उचित जानें तो कर्ण को भेज कर उन को यहां बुलवा कर किसी उपाय से नाश करा डालें, या उन के पास अति सुन्दर स्त्रियां भेज कर उन को कामासक्त करके निर्बल कर डालें ऐसा करने से द्रौपदी भी उन से मोह करना छोड़ देगी, इन सब बातों में से जिस बात में आप हमारा हित देखें वह बात करें परंतु शीघ्र करें देर न करें ताकि राजा द्रुपद से उन की प्रीति गाढ़ी न होने पावे, प्रीति होने पर फिर इन कामों में से कोई भी न हो सकेगा मेरी समझ में तो जो कुछ आया था मैंने कह दिया अब आगे कर्ण की सलाह भी लेलें ॥

निन्नानवे का अध्याय ॥

—:o:—

पांडवों के निग्रह के लिये कर्ण का युद्ध को सलाह देना और भीष्म जी का पूछने पर उन को आधा राज्य बांट देने की सम्मति देना ॥

कर्ण ने कहा हे दुर्योधन तेरी कोई सलाह भी मेरी मति में ठीक नहीं, अब समय नहीं रहा कि पांडु किसी उपाय से मरें, जब वह बालक थे और सहाय रहित होकर तेरे पास रहते थे तब तो तू उन का कुछ कर नहीं सका अब वह परदेश में रहते हैं और उन के सहायक भी द्रुपद आदि बहुत से राजा हैं अब तू उन का उपाय से क्या कर सकता है, उन की मारऺऺ अब अच्छी होगई है उन में आपस में कभी फूट नहीं पड़ सकती। क्योंकि उन पाचों की एक स्त्री है और द्रौपदी भी उन से पृथक नहीं हो सकती क्योंकि स्त्री को बहुत पति अच्छे लगते हैं और वह बहुत पति होने से प्रसन्न रहती है राजा द्रुपद आर्य व्रत होने से धन का लोभी नहीं वह पांडवों को कभी नहीं छोड़ेगा द्रुपद के पुत्र भी पिता का स्वभाव रखते हैं और पांडवों से बड़ी प्रीति रखते हैं इन उपायों में से तेरा एक उपाय भी ठीक नहीं ॥

हे दुर्योधन मैं एक युक्ति बताता हूं यदि तू वह करे तो आशा है कि तेरी इच्छा पूरी होजाये, तुझ को मालूम है कि अभी वह सारे राजे जो स्वयम्बर में आये थे द्रुपद पर अप्रसन्न

है और जो राजा द्रुपद के पक्ष में हैं अभी उन को युद्ध होने का विचार तक नहीं मेरी समझ में आता है कि हम सेना लेकर झट पट वहा चलें और द्रुपद से लड़ाई कर के पांडवों को पकड़ कर यहां ले आवें, यदि कुच्छ काल बीत गया और तू चुप रहा तो वह सब से मेल करके प्रबल हो जायेंगे तू जानता है कि श्री कृष्ण जी अपना सारा राज्य, धन और नाना प्रकार के भोग भी पाडवों के लीये त्यागने पर तत्पर हैं ॥

हे दुर्योधन पराक्रम बड़ा उत्तम पदार्थ है और राजाओं के लिये तो यह सब अन्य पदार्थों से उत्तम है देखो भरत जी ने पराक्रम ही से पृथ्वी को जीता, इन्द्र ने इसी पराक्रम से तीनों लोक पाये, पराक्रम ही शूर वीरों का धर्म है और क्षत्रियों के लिये श्रेष्ट पदार्थ है, पराक्रम कर और शीघ्र चल ताकि द्रुपद को जीत कर पाडवों को पकड़ कर यहा ले आवें और तू अटंक हो कर आनन्द से राज्य कर ॥

धृतराष्ट्र ने कर्ण की बढ़ाई की और कहा तू बड़ा शूरवीर है और शस्त्र वेत्ता है, अच्छा हो कि भीष्म, विदुर जी और द्रोणाचार्य जी का विचार भी इस बात में पूछ लिया जाये धृतराष्ट्र ने उन तीनों को बुलाने के लिये द्वारपाल को आज्ञा दी ॥

वह तीनों आये धृतराष्ट्र ने सारी बातें जो हो चुकी थीं उन के सन्मुख रख दीं और पूछा कि आप लोगों की क्या सलाह है भीष्म जी ने कहा हमारे लिये धृतराष्ट्र और पांडु दोनों एक

सम हैं हमें उचित है कि हम गंधारी और कुंती दोनों के पुत्रों की रक्षा करें मेरी समझ में तो अच्छी बात यह है कि तुम उन से मिलाप करके आपस में राज्य बांट लो आधा राज्य तुम ले लो और आधा उन को दे दो जिस प्रकार इस राज्य को तुम अपना करके देखते हो पांडव अपना मानते हैं, उन का पिता यह राज कर चुका है और उस ने इस राज्य के साथ बहुत से और राज्य जीत कर मिलाये हुये हैं, यदि तुम उन को आधा राज्य न दोगे तो हमारा सबों का कल्याण न होगा और तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी, अपकीर्ति होते हुए जीना निष्फल है, ऐसा करो जिस में कीर्ति रहे, कीर्तिवान मनुष्य संसार में अमर हो जाता है, और अपने कुल और वंश के नाम को भी विख्यात करता है. मनुष्य को उचित है कि हर एक काम अपने पुरषाओं और वंश को देख कर करे। यह पांडवों की प्रारब्ध है कि वह अपनी माता सहित दुष्ट पुरोचन के लाक्षाग्रह से बच गये, पुरोचन को तो दोष लगाने वाले लगाते ही हैं परंतु तुम को उसके सम्बन्ध में सब लोग बुरा कहते हैं उस लाक्षाग्रह के जलने के दिन से मैं अपनी आंख को उठा कर ऊपर नहीं कर सकता था अब उन का जीता निकलना तुम्हारी अपकीर्ति का नाश करने वाला है तुम को उचित है कि तुम प्रसन्नता पूर्वक उन के दर्शन करो उन के जीते जी उन के बड़ों के अंश को इन्द्र भी नहीं ले सकता क्योंकि वह सब धर्म्मात्मा हैं और एक चित्त हैं और राज्य पाने के योग्य हैं

यदि तू धर्म से मेरा हित और सब की प्रसन्नता चाहता है तो उन को बुला कर स्वयं ही आधा राज्य बांट दे ॥

एकसौ का अध्याय

—:o:—

द्रोणाचार्य और विदुर जी का भीष्म जी की सलाह की पुष्टी करना ॥

जब भीष्म जी अपनी बात को समाप्त कर चुके द्रोणाचार्य जी ने अपना कथन आरम्भ किया, हम को आपने मंत्र देने के लिये बुलाया है, मंत्री को सदैव ऐसा मंत्र देना चाहिये जिस से धर्म, अर्थ और यश तीनों बने रहें, हमारी समझ में जो कुछ भीष्म जी ने कहा है वह ठीक है आप पांडवों को बुलवा कर उन को आधा राज्य बांट दें अब शीघ्र किसी मधुर भाषी मनुष्य को द्रौपदी, पांडवों और कुंती के लिये बड़े सुन्दर, बहु मुल्य वस्त्र और रत्न आदि देकर द्रुपद नगर में उन के पास भेजा जावे और उनको कहा जावे कि यह चीज़ें धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने भेजी हैं, पांडव इन चीज़ों को ले कर राजा द्रुपद और उस के पुत्र से कहेंगे जिस से राजा को मालूम होजएगा कि आप पांडवों को मित्रवत देखते हैं इस से राजा द्रुपद उन को यहां आने की सम्मति देगा जब वह यहां आवें तो दुशाशन और विकर्ण उन को आगे से

लेने के लिए सेना सहित जावें जब पांडव यहां आ जावेंगे तो वह अवश्यमेव मंत्रियों की सलाह से अपने पिता की राह पर चलेंगे तू हमारी और भीष्म जी की सलाह को मान ले ॥

कर्ण पास बैठा था उस को क्रोध आ गया और वह बोला, हे धृतराष्ट्र यह दोनों तुम को बुरी सलाह देते हैं जो मनुष्य मन में दुष्टता रख कर ऊपर से मित्र समान बोले उस का वचन कल्याणकारी क्यों कर हो सकता है, संकट में मित्र किसी का कल्याण या नाश नहीं कर सकता है दुःख और सुख केवल प्रारब्ध के अनुसार होते हैं मनुष्य चाहे बालक, वृद्ध, ज्ञानी, अज्ञानी, सहायता सहित या रहित कैसा ही हो जहां रहता है अपने कर्मों के अनुसार भोग भोगता है हमने सुना है कि गृहनाम नगर मे मगध देश का अम्बुवीच नाम एक राजा रहता था वह राजा नेत्र आदि इन्द्रियों से रहित होने के कारण सब कामों में मंत्रियों के आधीन रहता था, कर्ण नाम एक मंत्री उसके राज्य का मालिक बन कर रहता उस मंत्री न इतना बल पाया कि कुच्छ काल में उस राजा के रत्न, वस्तु, धन, स्त्री आदि सब अपने वश में कर लिए और उस के राज्य के छीनने का भी इच्छुक हुआ और उसने राज्य छीनने का बड़ा यत्न किया परंतु न छीन सका क्योंकि जब उस अंधे राजा की प्रारब्ध में वह राज्य था वह उपाय से क्योंकर जा सकता था हे राजन्। इस प्रकार से आप को भी यह राज्य दैव इच्छा से आप की प्रारब्ध अनुकूल मिला हुआ है यह आप ही के पास

रहेगा और यदि प्रारब्ध इस के विपरीत है तो यत्न करने से भी न रहेगा परंतु इस मेरे दृष्टांत से आप को अपने मंत्रियों की साधुता, असाधुता, दुष्टता और अदुष्टता जान लेना चाहिए ॥

द्रोणाचार्य जी ने कहा अरे दुष्ट मैं तेरे दोष युक्त भाव को भले प्रकार जानता हूं तू पांडवों से वैर भाव रखने के कारण ऐसी दोष युक्त बात कहता है मैंने तो कुल का बढ़ाने वाला बड़ा हितकारी मंत्र कहा है यदि तू इस को ठीक नहीं मानता तो तू ही बता कि अच्छी सलाह क्या है यदि मेरे कहने के विपरीत किया जायेगा तो देख लेना थोड़े ही दिनों में सब कौरवों का नाश हो जावेगा ॥

इस के पीछे विदुर जी ने कहा राजन् ! तुम को वह बात करनी चाहिये जिस में बांधवों का हित हो, भीष्म जी और द्रोणाचार्य जी ने जो कुछ कहा है वह ठीक कहा है, मेरी समझ में संसार भर में इन दोनों से कोई उत्तम पुरुष नहीं है बड़े बुद्धिमान और अवस्था में वृद्ध हैं और इन्हों ने सब शास्त्रों को भी देखा हुआ है इन दोनों के समान मुझे इस समय और कोई सत्यवादी नहीं दीखता क्या तुमने कभी इन का कोई अपकार किया है जो यह तुम को खोटी सलाह देते हैं आज तक इन्हों ने कभी कोई ऐसी बात नहीं की जिस से तुम्हारा तनक भी अकल्याण हुआ हो यह दोनों धर्मज्ञ और इस लोक में श्रेष्ठ हैं और पक्षपात रहित हैं आप इन का कहना मानीये और सत्कार पूर्वक पांडवों को बुला कर आधा

राज्य बांट दीजिये, पांडव बड़े धर्मात्मा हैं भीमसेन उन में दस सहस्र हाथी का बल रखने वाला है अर्जुन को संग्राम में इन्द्र भी नहीं जीत सकता, युधिष्ठर सत्यवादी, धर्मात्मा और क्षमा वान है और नकुल और सहदेव भी रण में अजित हैं उन के मंत्री श्री कृष्ण जी हैं और पक्षपर बलदेव जी, शात्की, द्रुपद और धृष्टद्युम्न उन के संबंधी हैं इस दशा में उन का जो बल है उस को आप विचार में लाइये मेरी सम्मती में कर्ण की सलाह ठीक नहीं पांडवों का युद्ध में इस दशा में मारना कोई सुगम बात नहीं आप उन को यहां बुलवायें और उस अयश को हटाइये जो पलाक्षागृह के जलने से आपका हुआ हुआ है राजा द्रुपद हमारा पहिले से शत्रु है अब यदि पाडवों को वहां ही रहने दिया तो शत्रुता बढ़ जायेंगी उन को यहा बुला कर आधा राज्य देने पर शत्रुता के स्थान मित्रता होजायगी और मित्रता से हमारा पक्ष बड़ा होजायेगा दश ईरशा के क्षत्री बड़े बलवान हैं वह सब उसी पक्ष पर रहेंगे जिस पर श्री कृष्ण जी और जिस ओर श्री कृष्ण जी होंगे उसी ओर जय होगी, ऐसा कौन सा पुरूष होगा जो मिलाप से ठीक होते हुय काम को विग्रह करके करना चाहे, इधर तुम्हारे देश और पुरवासी सुनेंगे कि पाडव जीते हैं वह उन के दर्शन के अभिलाषी होंगे आप को उन की इच्छा का विचार करना भी उचित है, आप दुर्योधन, कर्ण, और शकुनी की बातों को जाने दें, यह अधर्मी हैं मैं आप को पहिले भी जता चुका हुं कि दुर्योधन कुल का नाश करने वाला है ॥

एकसौएक का अध्याय

—:o:—

विदुर जी का धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर द्रुपद नगर से पांडवों को लाने के लिए जाना ॥

धृतराष्ट्र पर इन तीनों महात्माओं की बातों का यह असर हुआ कि उस ने दुर्योधन और कर्ण की बातों पर तनक ध्यान न दिया और विदुर जी से कहा, भीष्म जी और द्रोणाचार्य जी ने जो कुच्छ कहा है वह मेरे कल्याण के लिए कहा है और तू भी जो कुच्छ कहता है सत्य है धर्म के अनुसार जैसा यह राज्य मेरे पुत्रों का है वैसाही पांडवों का है हे विदुर तुम से बढ़ कर मधुर भाषी और कौन होगा तुम ही द्रुपद नगर को जाओ और आदर और सन्मान के साथ पांचों भाईयों उन की माता और द्रोपदी को यहा ले आओ, पांडव और कुंती अपनी प्रारब्ध से मृत्यु से बचे हैं । प्रारब्ध ही से उन्हों ने द्रौपदी को पाया है और प्रारब्ध ही ने दुष्ट पुरोचन के लाक्षाग्रह से बचा कर हमारे कुल की वृद्धि के लिए इन को जीवत रक्खा है ॥

विदुर जी नाना प्रकार के वस्त्र, रत्न और धन आदि ले कर द्रुपद नगर में पहुंचे, और राजा द्रुपद से मिल कर दोनों ने कुशल क्षेम पूछा विदुर जी को उन के योग्य आसन दिया गया और वह उस पर बैठ गए, पांडव और श्री कृष्ण

जी ने जो उस समय पाडवों के पास आये हुए थे उन का सत्कार किया और बड़ी प्रीति के साथ उन से मिले विदुर जी ने कुछ वस्त्र इत्यादी जो वह साथ लाये थे पांडवों को दे दिये और कुछ द्रौपदी और कुंती को दे कर राजा द्रुपद से विनय पूर्वक कहा, राजा धृतराष्ट्र ने मंत्रियों सहित आप की कुशल पूछी है और वह इस संबन्ध से जो द्रौपदी के पांडवों के साथ व्याहे जाने से आप का उन के साथ हुआ है बड़े प्रसन्न हुए हैं उन को सम्पूर्ण राज्य मिलने से इतना हर्ष न होता जितना आप के साथ इस संबन्ध से हुआ है, अब आप पाडवों को मेरे साथ भेज दीजीये वह सब इन के दर्शन को इनकी राह देख रहे हैं सब कौरव कुल के मनुष्य और स्त्रियां द्रौपदी को देखने की अभिलाषी हैं ॥

एकसौदो का अध्याय

—:o:—

पांडवों का हस्तिनापुर में जाना, धृतराष्ट्र का उन को आधा राज्य बांट देना और पांडवों का इन्द्र प्रस्थ नगर बना कर रहना ॥

राजा द्रुपद ने विदुर जी से कहा, तुम बड़े ज्ञानी हो तुमने संसार की सब बातें देखी हैं और कौरवों को भी तुम भले प्रकार से जानते हो मुझ को इस सम्बन्ध से बड़ा हर्ष हुआ है परंतु इनके वहां जाने के लिए मैं अपने मुख से

कुच्छ नहीं कह सकता, यदि श्रीकृष्ण जी की और बलदेव जी की इन के वहां जाने की सम्पति हो तो मेरी ओर से कोई रुकावट नहीं ॥

युधिष्ठिर ने कहा हम सब आप के आधीन हैं आप जैसी आज्ञा दीजिएगा हम वैसा करेंगे ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा इन के वहां जाने में हम को कोई बुराई नहीं जान पड़ती आगे जैसी इच्छा राजा द्रुपद की हो॥

राजा द्रुपद ने कहा हमारी इच्छा श्रीकृष्ण जी की इच्छा के अनुसार है पांडव जैसे हमारे संबन्धी हैं वैसे ही श्री कृष्ण के भी हैं वह पांडवों का बहुत हित चाहते हैं ॥

अंत में सब की यह सम्मति होगई कि पांडवों को हस्तिनापुर में विदुर जी के साथ जाना चाहिये और वह सब श्री कृष्ण जी को साथ लिये द्रुपद नगर से हस्तिनापुर को चल दिये ॥

जब इधर उन के आने की खबर धृतराष्ट्र को मिली तो उस ने विकर्ण चित्र सेन, द्रोणाचार्य और दूसरे पुत्रों को बड़ी सेना और बाजे गाजे दे कर उन के लाने के लिये भेजा, पुरवासी बड़े हर्ष में हुए हुए नये नये वस्त्र धारण कर के और हाथों में ध्वजायें ले कर उन को लाने के लिये आगे चले गये, पांडव अपनी माता, श्री कृष्ण जी और द्रौपदी सहित उन सब के साथ बड़ी धूम धाम से नगर में आये उस दिन नगर में [illegible] देखा और उत्सव हो गया पुरवासीओं में से [illegible] देखो वह [illegible] सत्यवादी युधिष्ठिर [illegible] गया है जो आगे हम को पुत्रवत देखता था,

दूसरा बोलता था हमारे लिये तो इन के आने से राजा पांडु बन से लौट कर आया है तीसरा कहने लगा हमारे भाग अब उदय हुए हैं पांडव अब फिर हमारे सिर पर आगए हैं चौथे ने कहा ईश्वर इन को हमारे नगर में सौ वर्ष तक आनन्द से रखे इसी प्रकार से लोक नाना प्रकार के वाक्य उन की वृद्धि और शोभा में कह रहे थे ॥

जब वह सारे राजभवनों के समीप पहुंचे तो उन्हों ने धृतराष्ट्र, भीष्म जी और अन्य वृद्ध कुरूवंशियों को दंडवत की और धृतराष्ट्र की आज्ञा से राज मन्दिरों के अंदर गये और आनन्द से रहने लगे ॥

थोड़े दिन पीछे धृतराष्ट्र और भीष्म जी ने उन को अपने पास बुलाया और कहा हम चाहते हैं कि पुनः कभी विग्रह न हो खांडव प्रस्थ तुम को दिया जाता है तुम वहां जाकर अर्जुन से रक्षित हो कर इस प्रकार रहो जिस प्रकार इन्द्र से रक्षित हो कर देवता लोक रहते हैं ॥

पांडव आधा राज्य लेकर श्रीकृष्ण जी को साथ लिये खांडव प्रस्थ में पहुंचे और वहां पहुंच कर एक नगर बनाने के लिये पृथ्वी नापने लगे, पृथ्वी शांति कराने के लिये व्यास जी को सम्पूर्ण किया वह आये उन्हों ने पृथ्वी को शांत किया, नगर बसाया गया, उस के चारों ओर एक बड़ी खाई समुद्र के तुल्य गहरी बनवाई गई उस के ऊपर बड़ा ऊंचा और शोभाय-

मान कोट बनवा दिया गया, उस के बीच में बड़े सुन्दर २ राज भवन बनवाये, उस नगर के द्वार मंद्राचल पर्वत के समान ऊंचे बनवा कर उन में नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र रखवा कर उन की रक्षा के लिये द्वारपाल बिठला दिये और बड़ी ऊंची ऊंची अटारियां बनवा कर बरछीयां और तेज़ अंकुश, शतघ्नी, यंत्र जाल और लोहे के बड़े बड़े चक्र वहां रखवा दिये, बड़ी २ सड़कें निकलवा कर नगर को भागों में विभक्त कर दिया, किसी किसी भाग में छोटे छोटे उद्यान लगवाकर उन को खूब सजा दिया, जल के लिये कई प्रकार के कूयें आदि बनवा दिये गये और उस का नाम इन्द्र प्रस्थ रक्ख दिया, जब पांडव उस में बसने लगे तो वह स्वर्ग समान शोभा देने लगा ॥

बड़े २ वेद पाठी, गुणवान, ब्राह्मण सब भाषाओं के जानने वाले मनुष्य और नाना नगरों के व्योपारी अपने २ नगरों को छोड़ कर उस नगर में आकर बसने लगे, शिल्पकारों ने वहां आकर वास किया, नगर के बाहर बड़े २ रमणीक बाग बनवाकर उन में आम, संगतरा, नीम्बु, केला, चंपक लकुच, अनार, बनस्पती, आदि फलों के वृक्ष और गुलाब, चम्बा, चम्बेली, मोतिया, आदि फूलों के पौदे लगवादिये और हरे घास से बाग की धरती पर मखमल का सा फरश बिछा दिया, बड़े २ सुन्दर पक्षी मोर, कोयल, तोता, मैना, चंडोल आदि उन वृक्षों पर बास करके मीठी २ बोलियां बोलने लगे और उन बागों में जा बां ठहरने के लिए बड़े सुन्दर छोटे २ स्थान बनवा दिए, कई तालाब और बावड़ियां भी बनवा दी गईं जिन में कमल फूल

उत्पन्न हो कर उन की शोभा को बढ़ाने लगे, हंसों और चकवा चकवी ने भी वहां अपने वास स्थान बना कर उन की शोभा को दुगना किया, एक स्थान गेंद खेलने के लिए दूसरा कबडी के वास्ते तीसरा लक्ष भेद के लिए इसी प्रकार भिन्न भिन्न क्रीड़ाओं के लिए भिन्न २ स्थान बनवा दिए गये, हर प्रकार की विद्या के लिए शालाएं खोल दी गई और दुःखियों के लिए विश्राम आश्रम और रोगियों के लिए औषधालय बनवा दिए गये उस नगर को सम्पूर्ण पदार्थों से जो उत्तम २ नगरों में हुआ करते हैं भर दिया गया॥

कृष्ण जी और पांडवों को वहां बसा कर उन से विदा होकर बलदेव जी को अपने साथ ले द्वारका में चले गये॥

एकसौ तीन का अध्याय

—:०:—

नारद जी का पांडवों के पास आना और उन को उपदेश करना कि वह पांचों की एक स्त्री होने के कारण आपस में न लड़ें॥

पांडव आधा राज्य ले कर और इन्द्र प्रस्थ को बना कर बड़े न्याय और प्रबन्ध से राज्य करने लगे युधिष्ठर राज गद्दी पर बैठ गया और बाकी चारों भाई इर्द गिर्द के उन राजाओं को जो अपनी प्रजा को दुःख देते थे या इन के शत्रु थे विजय करने के लिये चल पड़े उन्हों ने बहुत से ऐसे राजाओं को जीत

कर अपना राज्य और धन इत्यादि अधिक कर लिया और धर्म परायण होकर बड़े आनन्द के साथ प्रीति पूर्वक रहने लगे, एक दिन वह बहु मुल्य राज संहासनों पर बैठ कर राज प्रबन्ध के विषय पर आपस में बात चीत कर रहे थे कि इतने में दैवात् वश नारद जी आ निकले उन को देख कर वह सब उठ खड़े हुए और युधिष्ठर ने उन को अपने सिंहासन पर बिठला कर बड़े प्रेम और भक्ति से उन की पूजा की और अपना राज उन को निवेदन किया ॥

नारद जी ने प्रसन्न होकर युधिष्ठर को आशीर्वाद दी और सब भाईयों को अपने २ आसनों पर बैठने के लिये कहा वह सब बैठ गये, द्रौपदी भी नारद जी के आने का समाचार सुन कर पवित्रता से वहां आगई और नारद जी के चर्णों को अपने दोनों हाथों से छूकर उन के सन्मुख खड़ी होगई ॥

नारद जी ने उस को बहुत २ आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दी ॥

जब द्रौपदी चली गई तो नारद जी ने उनको एकांत में पाकर कहा देखो यह द्रौपदी तुम पांचों भाईयों की स्त्री है तुम सदैव इस बात का ध्यान रखो कि तुम पांचों में इस स्त्री के कारण कभी भी किसी प्रकार का विरोध न हो क्योंकि स्त्री प्रथम तो यूंहही झगड़े का कारण होती है और फिर एक से अधिक मनुष्यों की होने से तो झगड़े का अधिक कारण बन जाती है जैसा सुंद और उपसुंद दो बड़े बलवान भाई एक तिलोत्तमा के कारण आपस में लड़ कर कट मरे ॥

युधिष्ठिर ने कहा महाराज आप हम को इन दोनों भाईयों के तिलोत्तमा के कारण लड़ कर मरने की विस्तार पूर्वक कथा सुनाइये ॥

एकसौ चार का अध्याय

—:o:—

सुंद और उपसुंद दैत्यों का तपस्या करके ब्रह्मा जी से वरदान पाना और उन का तीनों लोक विजय करना ॥

नारद जी ने कहा हे युधिष्ठिर मैं इस पुराने इतिहास को विस्तार से कहता हूं तू भाईयों सहित ध्यान दे कर इस को सुन ॥

हिरण्यकशिपु दैत्य के वंश में निकुंभ नाम एक बड़ा बली और तेजस्वी दैत्य था उस के हां बड़े पराक्रमी, क्रूर और दारुण दो पुत्र उत्पन्न हुए उन का नाम सुंद और उपसुंद हुआ यह दोनों [illegible] बड़ी प्रीति के साथ रहते थे सुंद का दुःख उपसुंद अपना मानता था और उपसुंद के दुःख को सुंद अपना जानता था ॥

दोनों एक साथ भोजन करते थे यदि सुंद कहीं गया होता तो उपसुंद के आने पर भोजन करता उन दोनों की सलाह सदैव एक होती थी यदि सुंद कुछ कहे

तो उपसुंद उस को मानना अपना धर्म जानता था, वह दोनों ने तीनों लोक विजय करने का प्रण करके राज्य को त्याग और विंध्याचल पर्वत पर जा कर बड़ा तप करने लगे, दोनों ने भूखे प्यासे रह कर जटा धार लीं, वाल्कल वस्त्र पहिन लिए और केवल वायू के आधार रहने लगे, एक पाओं पर खड़े हो कर ऊर्ध्वबाहु करके बिना सोए उन्होंने तप किया। देवताओं ने भयभीत हो कर उन के तप को भंग करने को ठान बड़ी २ सुन्दर, मन के लुभाने वाली स्त्रियां उन के पास भेजीं परन्तु उन दोनों ने उन की ओर दृष्टी तक न की और अपने तप में लगे रहे पुनः देवताओं ने उन की माता और बाहिन को बुलवा कर गिरा दिया और उन स्त्रियों ने बहुतेरी हाय पुकार की परन्तु उन दोनों ने इस पर भी अपना व्रत न तोड़ा और अपने तप में बराबर लगे रहे ॥

ब्रह्मा जी उन का यह व्रत देख कर बड़े प्रसन्न हुए और उनको वर मांगने की आज्ञा दी ॥

सुंद और उपसुंद दोनें कर जोड़ कर ब्रह्मा जी के सन्मुख खड़े हो गये और कहा महाराज हमयह वर चाहते हैं जो कुछ हमारी इच्छा हो हम वह बन जायें और हम दोनों अमर हो जायें ॥

ब्रह्मा जी ने कहा जब तुम ने तपस्या आरम्भ की थी तुम्हारे दिल में अमर होने का विचार नहीं था इस लिये तुम अमर नहीं हो सकते बाकी इच्छा जो तुम्हारी है वह हमारे वर से पूरी होगी अर्थात तुम त्रिलोकी का विजय करोगे

और यदि अमर होने के समान तुम अपनी मृत्यु का विधान मांग लो तो वह हो सकता है ॥

उन दोनों ने कहा हमारे एक दूसरे के विना हम को तीन लोकों में कोई दूसरा न मार सके ॥

ब्रह्मा जी ने कहा अच्छा यह वरदान हमने तुम को दिया अर्थात जब तुम दोनो एक दूसरे को मारोगे तभी मरोगे तीनो लोकों में तुम को और कोई न मार सकेगा ॥

यह दोनों भाई ब्रह्मा जी से यह वर पाकर तीनों लोकों से निर्भय हो गये और अपने घर में आकर अपने सम्बंधीओं को मिले वह सब इन को मिल कर बड़े प्रसन्न हुए, उन्हों ने जटें कटवा कर बड़े सुन्दर मुकुट धारण किये और उत्तम २ वस्त्र पहने ॥

उन के वर को सुन कर सब दैत्यों ने बड़ा भारी उत्सव किया नगर में नाना प्रकार के बाजे बजे, कई प्रकार की क्रीड़ायें हुईं, भोजन पान आदि का कोई अंत न रहा, हर स्थान पर गान होने लगा घर २ में स्त्रियां नाना प्रकार के गीत गाने लगीं यह उत्सव बहुत काल तक बराबर होता रहा ॥

पुनः उन दोनों दैत्यों ने तीनो लोकों के विजय करने की सलाह की और रात्रि के समय मघा नक्षत्र में बहुत सी सेना, मंत्री और अन्य राज्य कर्मचारी साथ लेकर युद्ध के लिये घर से चल पड़े ॥

वह दोनों बलवान आकाश में देवताओं के लोक में पहुंचे जब देवताओं ने उन के वर का हाल सुना तो वह स्वर्ग को

छोड़ कर ब्रह्मलोक को चले गये, इन दोनों ने पहले इन्द्रलोक को जीता, पुनः यक्ष, राक्षस, आकाश में चलने वाले देव योनियों पाताल के नागों और समुद्र में बसने वाले म्लेछों को विजय किया और फिर सारी पृथ्वी को जीत कर अपनी सेना के दैत्यों को बुला कर कहा पृथ्वी में राजर्षि और ब्रह्म ऋषि यज्ञ और हव्यकव्य आदि कर्म करके देवताओं के तेज, बल और लक्ष्मी को बढ़ाते हैं तुम उन सब यज्ञों को विध्वंस कर के उन सब को मार डालो ॥

वह क्रूर दैत्य यह आज्ञा पा कर पूर्व दिशा में समुद्र के तट पर चले गये और जो ब्राह्मण यज्ञ करते या कराते मिले उन को उन्हों ने मार डाला और उन दैत्यों ने ऋषियों की अग्नि होत्र को उठा उठा कर जल में डाल दिया ॥

ऋषियों, ब्राह्मणों और महात्माओं ने उन को शाप दिये परंतू वर दान के कारण उन के शाप फलीभूत न हुए। ऋषि इत्यादि अपने शापों को निष्फल होता हुआ देख कर भयभीत होकर अपन २ नियमों को छोड़ कर इस प्रकार से भागने लगे जैसे गरूड़ को देख कर सर्प भागते हैं। दैत्यों ने मनुष्यों के आश्रम, कलश, श्रुवे आदि सब तोड़ डाले और सारा जगत कालहत के समान हो गया, इस से संसार के सब व्यवहार यथा वेद पाठ, यज्ञ, व्यापार, हाटों का लगना, देव कार्य, विवाह, खेती, गोरक्षा इत्यादि सब बंद हो गये और पृथ्वी सुन्सान हो गई ॥

यह सब कुच्छ देख कर सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और

तारागणों को बड़ा दुःख हुआ यह दोनों दैत्य सब दिशाओं को जीत कर शत्रु रहित होकर कुरुक्षेत्र में आनन्द के साथ रहने लगे॥

एकसौ पांच का अध्याय

—:०:—

सब देवताओं और ऋषियों का ब्रह्मा जी के पास जाकर सुंद और उपसुन्द का वृत्तांत कहना और उन की आज्ञा से विश्व कर्मा का विश्व को मथ कर तिलोत्तमा को उत्पन्न करना॥

इन दैत्यों से दुःखी हुए हुए सब ऋषि, महात्मा, सिद्ध, ब्राह्मण इत्यादि ब्रह्मा जी के पास गये और प्रणाम कर के सुंद और उपसुन्द का सारा वृत्तांत कह सुनाया और रक्षा के लिये प्रार्थना की॥

ब्रह्मा जी पहिले तो क्षण भर विचार में रहे पुनः विश्व कर्मा को बुला कर आज्ञा दी कि तुम एक अत्यन्त स्वरूपवान स्त्री उत्पन्न करो॥

विश्व कर्मा ने सब सुन्दर रत्न आदि पदार्थों को मथ कर एक ऐसी दर्शनीय और स्वरूपवान स्त्री उत्पन्न की कि उस के साथ की दूसरी स्त्री पृथ्वी में न थी और नख से लेकर चोटी तक उस के सब अंग ऐसे शोभायमान और प्रभायुक्त थे कि उन में घुसी हुई दृष्टि निकलने को असमर्थ हो जाती थी

उस को देख कर सब के चित्त चलायमान हो जाते थे, ब्रह्मा जी ने उस का नाम तिलोत्तमा रखा, उत्पन्न होते ही वह स्त्री दोनों कर बांध कर ब्रह्मा जी के सन्मुख खड़ी होगई और कहा महाराज मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥

ब्रह्मा जी ने कहा तू सुंद और उपसुन्द दोनों दैत्यों के पास जा और उन के मन को मोह कर उन में आपस में लड़ाई करादे, वह ब्रह्मा जी को नमस्कार करके सब देवताओं की प्रदक्षिणा करने लगी उस समय विष्णु भगवान जी पूर्व ओर मुख करके महादेव जी दक्षिण ओर मुख करके और सम्पूर्ण देवता उत्तर ओर मुख करके बैठे हुए थे, प्रदक्षिणा करते जिस ओर तिलोत्तमा जाती सब देवता और महार्षि उसी ओर देखने लगते, महादेव जी के चारों ओर के लिये चारों मुख बन गये और विष्णु के सब अंगों में आखें हो गईं जिस से वह सहस्राक्ष कहलाये, ब्रह्मा जी के विना वहां और कोई ऐसा न था जिस की दृष्टि तिलोत्तमा पर न पड़ी हो इस से देवता निश्चित हो गये कि उन का काम इस स्त्री द्वारा आवश्यमेव पूरा हो जायगा तिलोत्तमा अपने कार्य पर गई और सब देवता अपने अपने स्थानों को पधारे ॥

एक सौ छे का अध्याय

—:o:—

तिलोत्तमा का सुंद और उपसुंद के पास जाना

और उन का उस पर कामासक्त हो कर आपस में लड़ कर मरना और पांडवों का द्रौपदी के पास रहने का नियम करना ॥

यह दोनों सुंद और उपसुंद दैत्य पृथ्वी, आकाश और पाताल तीनों लोकों को जीत कर देव, गंधर्व, यक्ष, नाग और मनुष्यों के सर्व धन आदि को लेकर निर्भय होकर बड़े आनन्द से रहने लगे वह सदैव सुन्दर सुन्दर स्त्रियों से भोग करते, नाना प्रकार के स्वादू भोजन बनवा कर खाते, वन, पर्वत, उद्यान आदि में जब जहां दिल चाहता जाकर रमण करते ॥

एक दिन यह दोनों भाई विन्ध्याचल पर्वत के ऊपर गये और वहां एक अति रमणीक स्थान पर सघन वृक्षों की लताओं में जहां नाना प्रकार के बड़े बड़े सुगंधित फूल फल रहे थे और कई प्रकार के सुंदर २ पक्षी मीठी २ बोलियां बोल रहे थे बड़े २ सुंदर आसन बिछा कर बैठ गए वहां उन्हों ने बहुत सा मद पीया और सुंदर स्त्रियें उन के सन्मुख खड़ी हो कर उन की स्तुती के गीत गाने लगीं ॥

इस समय तिलोत्तमा ने लाल वस्त्र ओढ़ कर त्रिलोकी के मोहने वाला शृंगार किया और नदी के किनारे फूल चुनती हुई धीरे २ उस ओर चली जहां वह दोनों भाई मद्य से मतवाले हो स्त्रियों का गान सुन और नाच देख रहे थे ॥

जब उन दोनो की दृष्टी उस पर पड़ी वह कामासक्त हो कर व्याकुल हो गये और दोनों तिलोत्तमा की ओर भागे सुंद ने उस को अपने दाहने और उपसुन्द ने उस को अपने बायें हाथ से

पकड़ लिया और दोनों मद्यपान, धन, ऐश्वर्य और काम देव के मद से मत्त हुये २ कहने लगे यह मेरी स्त्री है, सुन्द ने कहा यह मेरी भार्या है और तेरी बड़ी है उपसुन्द ने उत्तर दिया तेरी यह बहू है और मेरी भार्या है, इस प्रकार से झगड़ते हुये दोनों को बहुत क्रोध होगया और वह प्रीति को एक ओर छोड़ कर गुत्थम गुत्था हो गये और पुनः अपने हाथों में गदा ले ले कर युद्ध करने लगे, दोनों ने एक दूसरे को इतना मारा कि उस स्थान पर लहू ही लहू दीखने लगा, लहू के बहने से वह मूर्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े और दोनोंने प्राण त्याग दिए, वह स्त्रियां इस युद्ध को देख कर भाग गईं और सब दैत्य डर कर पाताल लोक को चले गए ॥

ब्रह्मा जी इस से बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने सब देवताओं और ऋषियों को साथ ले कर तिलोत्तमा की बड़ाई की और उस को वरदान दिया कि जिन जिन लोकों तक सूर्य का प्रकाश जाता है उन में से जहां तेरी इच्छा होगी तू वहां जा सकेगी और तेरे शरीर में ऐसा तेज रहे गा कि तुझ पर किसी की दृष्टी नहीं ठहर सका करेगी, ब्रह्मा जी इन्द्र को तीनों लोकों के राज्य पर स्थापित करके ब्रह्म लोक को चले गये ॥

हे पाण्डवो देखो इन भाईयों में आपस में कितनी गाढ़ी प्रीति थी उस प्रीति को उन्हों ने तिलोत्तमा पर तोड़ दिया और आपस में लड़ कर कट मरे, इसी कारण से मैं तुम को कहता हूं कि तुम आपस में परम प्रीति रखते हो कहीं द्रौपदी के कारण तुम में विरोध न हो जाय इस कारण यदि

तुम मेरा कथन मानो तो ऐसा उपाय करो जिस से तुम्हारा स्नेह ज्यों का त्यों बना रहे ॥

उस दिन से पांडवों ने द्रौपदी के पास एक २ वर्ष रहने का नियम किया और प्रण किया कि जो इस नियम को तोड़े वह बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी बन कर वन में रहे, नारद जी तो इस नियम को सुन कर जहां इच्छा हुई चले गये और पांडवों ने इस नियम का सदैव पालन किया जिस से उन में एक स्त्री के होने के कारण कभी विरोध न हुआ ॥

एकसौ सात का अध्याय

—:०:—

अर्जुन का एक ब्राह्मण का काम करने के लिये राज भवन के भीतर जाना और प्रतिज्ञा टूट जाने से बारह वर्ष के लिये वन को चले जाना ॥

उस इन्द्रप्रस्थ नगर में पांडव अपने अपने अस्त्रों के प्रताप से सब राजाओं को जीत कर वहां नियमानुसार रहने लगे। एक दिन एक ब्राह्मण की एक गाय चार चोर चुरा कर ले गये वह ब्राह्मण क्रोध से भरा हुआ इन्द्रप्रस्थ में दौड़ा हुआ आया और बड़े ऊंचे ऊंचे शब्दों में पुकार कर पांडवों को कहने लगा, महाराज शीघ्र आइयो मेरी गौ को

नीच चोर चुरा कर ले जा रहे हैं आप के राज्य में ऐसा अंधेर क्योंकर हो सकता है ॥

अर्जुन ने उस ब्राह्मण की हाय पुकार सुन कर उस को धैर्य दिया और कहा तुम किसी प्रकार का भय मत करो मैं अभी अस्त्र ले कर तुम्हारे संग चलता हूं, यह कह कर वह अस्त्र लेने के लिए गया परंतु जहां उस के अस्त्र रखे हुये थे वहां उस समय युधिष्ठर द्रौपदी के साथ बैठा हुआ था, अब उस को यह विचार हुआ कि यदि उस स्थान से अस्त्र लेने जाता हूं तो नियम टूटता है जिस से मुझ को बारह वर्ष का बन बास भुगतना पड़ेगा और यदि इस ब्राह्मण की गाय को नहीं बचाता तो अधर्म होता है क्योंकि क्षत्री धर्म के अनुसार मुझे इस ब्राह्मण की गाय की रक्षा करना उचित है, धर्म करना बनवास से श्रेष्ठ है वह झट राजभवन के भीतर गया और युधिष्ठर को कहला कर अपने अस्त्र ले आया और रथ पर आप बैठ उस ब्राह्मण को बिठला कर उन चोरों के पीछे गया और उन को मार कर उस ब्राह्मण को गाय देकर प्रसन्न करके अपने घर लौट आया ॥

घर में आकर उस ने सब वृद्धों को प्रणाम कर के राजा युधिष्ठर के चरणों पर हाथ रक्खा और कहा मुझे बनवास करने की आज्ञा दीजीये मैंने नियम के विरुद्ध द्रौपदी के पास बैठे हुए आप के दर्शन किये ॥

युधिष्ठर यह अप्रिय बात सुन कर बड़ा दुःखी हुआ और कहने लगा भाई तुमने धर्म का पालन करने के लिये हमारे

द्रौपदी के पास होने के समय राज भवन में प्रवेश किया है मैं इस से अप्रसन्न नहीं हूं, यदि ऐसे समय में बड़े के पास छोटा चला जाये तो कोई दोष नहीं हां इस दशा में छोटे के पास बड़े का चला जाना ठीक नहीं, हे अर्जुन मेरा कहना मान और बन को मत जा ॥

अर्जुन ने कहा महाराज मैंने आप ही से सुना है कि नियम का उल्लंघन कदापि न करना चाहिये इस से विश्वास जाता रहता है मैं सत्य धर्म को नहीं छोड़ूंगा ॥

यह कह कर अर्जुन इन्द्र प्रस्थ से बन की ओर चल पड़ा ॥

ऐकसौ आठ का अध्याय

—:०:—

अर्जुन का हरिद्वार में रह कर उलूपी नाम नाग कन्या से संगम करना, दूसरे कई तीर्थों और देशों की यात्रा करना, मणि पुर नगर में पहुंच कर वहां के राजा की कन्या से विवाह करना और उस के पुत्र होने पर वहां से चला जाना ॥

जब अर्जुन इन्द्र प्रस्थ से चले तो उन के साथ बहुत से वेद पाठी, ब्रह्म ज्ञानी, यज्ञी, ब्रह्मचारी, भगवद्भक्त, ऊर्ध्वरेता

और सुन्दर अख्यानों के कहने वाले ब्राह्मण आदि भी चल पड़े, वहां रमणीक वन, नदयां, सरोवर, देश और तीर्थों को देखते हुए हरिद्वार में जा पहुंचे और गंगा घाट पर अपना डेरा लगाया। सारे ब्राह्मण आदि अग्नि होत्र में लग गये इस से वह स्थान अत्यंत शोभायमान हो गया॥

एक दिन अर्जुन गंगा स्नान करके तर्पण करने के पीछे अग्नि होत्र करने को बाहर निकलने को ही था कि इतने में नाग राज की अलूपी नाम कन्या उस के सुन्दर स्वरूप पर मोहित हो कर उस को हर कर अपने घर में ले गई। अर्जुन ने वहां अग्नि देख कर अग्नि होत्र द्वारा अग्नि देवता को प्रसन्न कर के हंस कर उस कन्या से पूछा तेरा नाम क्या है तू किसकी पुत्री है और यह देश कौन सा है और तू मुझे यहां क्यों लाई है॥

अलूपी ने कहा मैं ऐरावत नाग के कुल में कौरव्य नागराज की पुत्री हुं तेरे सुन्दर स्वरूप पर मोहित हो कर तुझे यहां ले आई हुं और अब तेरे बिना मेरा मन किसी दूसरे को नहीं चाहता तू मुझे अंगीकार कर के प्रसन्न कर॥

अर्जुन ने कहा मैंने बारह वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत लिया हुआ है इस कारण मैं अपने में नहीं हुं मैंने कभी झूठ नहीं कहा और न ही मैं अपनी प्रतिज्ञा को तोडूंगा, तेरी इच्छा पूरी करना भी मुझे उचित है तू ही कोई ऐसी बात विचार कि जिस से तेरी कामना भी पूरी हो जाय और मेरा धर्म भी न जाय॥

अलूपी ने कहा मैं यह सब कुछ जानती हूं परन्तु मेरी कामना को पूरा करने में तुम्हारा धर्म नहीं जाता क्योंकि दुःखी की रक्षा करना भी तुम्हारा धर्म है यदि मेरे प्रसन्न करने में तुम्हारे धर्म में कुच्छ बाधा पड़ेगा तो मेरी प्राण रक्षा के फल से वह छूट जायगा यदि तुम मेरी प्रसन्नता न करोगे तो मैं प्राण दे दूंगी इस कारण यह प्राणदान का उत्तम कर्म करो मैं तुम्हारी शरण में पड़ी हूं और तुम शरण पड़े की सदैव सहायता करते रहे हो ॥

अर्जुन ने अलूपी की बात को मान लिया और रात्रि भर उस के पास रह कर उसने उस की कामना पूरी की, प्रातः काल होते ही उस ने अर्जुन को हरिद्वार पर पहुंचा दिया और यह वर देती हुई चली गई कि आज से सब जलचर तेरे वश में हो कर रहेंगे ॥

हरिद्वार से अर्जुन हिमाचल पर्वत के पार्श्व को चला और अगस्तवट और वशिष्ठ गिरि पर होता हुआ भृगुतुंग तीर्थ में पहुंचा वहां स्नान और ब्राह्मणों को बहुत सा दान करके विंदु तीर्थ पर गया पुनः यहां से पूर्व दिशा को देखने की इच्छा से पर्वत से उतर कर यात्रा की और नैमिषारण्य में उत्पलिनी नाम नदी के दर्शन करता हुआ नंदा, उपनंदा, कौशिकी, महानदी, गंगा और गया आदि अनेक तीर्थों और आश्रमों में होता हुआ अंग बंग और कलिंग नाम देशों के तीर्थों में पहुंचा और यहां भी बहुत कुच्छ दान पुण्य किया यहां से सब ब्राह्मण लोग लौट आये जो पुरुष उस के साथ

हुई उन को ले कर वह समुद्र के तट पर गया वहां से रम-णीक स्थानों को देखता हुआ महेन्द्र पर्वत पर तपस्वियों के दर्शन करता हुआ मणि पुर नगर में गया और वहां के सब तीर्थ और स्थान देखकर चित्रावाहन राजा के पास पहुंचा उस राजा की चित्रांगदा नाम एक बड़ी सुन्दर कन्या थी दैवात् नगर में विचरती हुई उस कन्या पर अर्जुन की दृष्टि पड़ गई अर्जुन उस पर मोहित हो गया और राजा के पास जाकर कहने लगा मैं क्षत्री हुं आप अपनी कन्या मुझे दे दीजीये ॥

राजा ने पूछा तू कौन है, किस का पुत्र है और कहां से आया है ॥

अर्जुन ने कहा मैं पांडव हुं और कुंती का पुत्र हुं ॥

राजा ने कहा हमारे कुल का प्रभंजन नाम एक राजा हुआ है उस ने संतान के लिये महादेव जी की तपस्या की, महादेव जी ने प्रसन्न हो कर उस को वरदान दिया तेरी एक संतान होगी, इस से हमारे पुरुषाओं के सदैव एक ही पुत्र होता रहा और वही राज्य सिंहासन पर बैठता रहा है परंतु मेरे हां केवल यही कन्या हुई है इस कन्या से जो पुत्र हो यदि तू उस को मुझे दे देना अंगीकार करे तो मैं तुझ को यह कन्या दे देता हूं ॥

अर्जुन ने इस बात को मान लिया और वहां तीन वर्ष रह कर पुत्र उत्पन्न होने पर राजा की आज्ञा लेकर अन्य देशों में घूमने के लिए चला गया ॥

एक सौ नौ का अध्याय

—:०:—

अर्जुन का दक्षिण दिशा के तीर्थों को देखने के लिए जाना और सौभद्र तीर्थ पर स्नान करते समय एक ग्राह का पांओं पकड़ना और ग्राह का अर्जुन का पैर छूने से स्त्री हो-जाना ॥

मणि पुर से चल कर अर्जुन दक्षिण दिशा में समुद्र के तट पर गया और वहां के तीर्थों को जहां बड़े २ तपस्वी रहते थे देखने लगा, उन तपस्वियों ने उस से कहा, १ अगस्त्य, २ सौभद्र, ३ पौलोम ४ कारंधम और ५ भरद्वाज इन पाचों तीर्थों पर जाना वर्जित है इस कारण वहां मत जाना ॥

अर्जुन ने उन तपस्वियों से इस का कारण पूछा ॥

तपस्वियों ने कहा इन पांचों तीर्थों में पांच बड़े २ मगर रहते हैं जो मनुष्य उस में स्नान करने जाता है वह उस को खैंच कर नीचे ले जाते हैं ॥

अर्जुन ने उन्हीं तीर्थों की राह पकड़ी और सब से पहिले सुभद्र नाम तीर्थ पर पहुंचा और उस में स्नान करने लगा, उस स्थान में रहने वाले ग्राह ने आकर अर्जुन का पांओं

पकड़ लिया, अर्जुन ने बल से खैंच कर उस को जल से बाहर डाल दिया, अर्जुन से छूते ही बाहर आकर वह ग्राह दिव्य स्त्री होगया ॥

अर्जुन ने जब उस को इस रूप में देखा तो वह बड़ा चकित हुआ और प्रसन्न हो कर उस से पूछने लगा तू कौन है, कहां से आई है और यह पाप कर्म क्यों करती है ॥

उस स्त्री ने कहा हम देवारण्य में विहार करने वाली पांच अप्सरायें हैं और कुबेर की बहुत प्यारी हैं उन बाकी की चारों में से एक का नाम सौरभेयी, दूसरी का समाची, तीसरी का बद्बुदा और चौथी का लता है एक समय हम पाचों कुबेर के घर को जा रही थीं रास्ता में एक वन में हम ने शांशित व्रत वेद पाठी को तपस्या करते देखा उस के तेज से वह वन सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था हम पाचों उस की तपस्या को भंग करने की इच्छा करती हुई आकाश से उतरीं और गाती, नाचती, मुसकराती और अनेक भाव दिखाती उस के सन्मुख गईं परन्तु उस का चित्त चलायमान न हुआ और वह बराबर अपनी तपस्या में लगा रहा. हमारे पाचों के इस आचर्ण पर उस तपस्वी ने हमको शाप दिया कि तुम पाचों ग्राह रूप धारण करके सौ वर्ष तक जल में वास करो ॥

एकसौ दस का अध्याय

—:o:—

अर्जुन का बाकी अप्सराओं को शाप से

छुड़ाना और मणि पुर होकर गोकर्ण को जाना ॥

इस स्त्री ने कहा उस शाप से हम पांचों को बहुत दुःख हुआ और हमने उस ब्राह्मण की शरण में जाकर विनति की और कहा महाराज हम पांचों ने यह अयोग्य बात अपनी अवस्था और काम से की थी आप इस को क्षमा कीजिये धर्मात्मा लोगों ने स्त्रियों को अवध्य कहा है इस कारण आप को उचित नहीं कि हम को मारें ब्राह्मण बुद्धिमान होने से प्राणी मात्र का हितकारी होता है और अच्छे लोग शरण आये की रक्षा करते हैं आप कृपा कीजीये और हमारे अपराध को क्षमा करीये ॥

हमारी बातों से वह तपस्वी ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और कहने लगा शत और शत दोनों अनंत-संख्या वाची हैं परंतु तुम्हारे लिये यह शत वर्ष सौ वर्ष ही होंगे, मेरा कहा कभी मिथ्या नहीं हुआ करता तुम्हें अवश्यमेव सौ वर्ष तक ग्राह रूप धारण करके जल में रहना पड़ेगा उस के पीछे जब तुम किसी उत्तम पुरूष का पाओं पकड़ोगी वह तुम को खेंचकर जल से बाहर ले आवेगा और उस समय तुम अपने स्वरूप को पुनः पाओगी और यह तीर्थ तुम्हारे मोक्ष होने पर नारी तीर्थ से प्रसिद्ध होंगे और उन में स्नान करने वाला पवित्र हो जायेगा हम पांचों उस ब्राह्मण को दंडवत और उसकी परिक्रमा करके बड़ी दुःखी होकर वहां से चलीं और कहने लगीं कि हम उस मनुष्य को कहां पावें जो थोड़े ही काल में हम को इस शाप से छुड़ावे ॥

नारद मुनि घूमते हुए हमारी दृष्टि पड़ गए उन्हों ने हमें उदासीन पाकर पूछा कि तुम को क्या दुःख है ॥

हम पांचों ने नारद जी को वह सारा वृत्तांत कह सुनाया उन्हों ने कहा दक्षिण के अनूप देश में पांच तीर्थ बड़े सुन्दर और रमणीक हैं तुम पांचों ग्राह रूप धारण करके उन में जा बसो थोड़े ही दिनों में पांडु का पुत्र अर्जुन नाम राजा तुम को इस शाप से छुड़ायेगा, नारद जी की आज्ञा को मान कर हम पांचों उन पांचों तीर्थों में ग्राह रूप धारण करके बास करने लगीं, अब मैं तो आप के चरणों को छूकर मुक्त हो गई हुं परंतु मेरी चारों सखियां बाकी हैं आप कृपा करके उन को भी मुक्त कीजिये ॥

अर्जुन वहां से क्रमपूर्वक उन चारों तीर्थों पर गये और उन को भी शाप से मुक्त किया और वह पांचों अपना अपना दिव्यरूप धारण कर के अर्जुन से आज्ञा लेकर चली गईं और अर्जुन उन पांचों तीर्थों को निर्विघ्न कर के मणिपुर नगर में अपनी प्यारी स्त्री चित्रांगदा के पास आया और अपनी स्त्री और बभ्रुवाहन पुत्र को जो चित्रांगदा से उत्पन्न हुआ था मिल कर गोकर्ण की ओर चला गया ॥

एक सौ ग्यारहवां अध्याय

—:०:—

गोकर्ण से अर्जुन का पश्चिम समुद्र पर

जाना, वहां श्री कृश्न से मिलना, उनके साथ द्वारका जाना, रैवत पर्वत पर उत्सव में सुभद्रा को देख कर उस पर आसक्त होकर श्री कृश्न जी की सम्मति से उस को हर ले जाना और बलदेवजी आदि का क्रोध करना ॥

गोकर्ण में पहुंच कर अर्जुन ने वहां के सुन्दर और रमणीक स्थान अवलोकन किये और वहां से पश्चिम समुद्र के किनारे पहुंच कर वहां के तीर्थ और रमणीक स्थानों को देखता हुआ प्रभास तीर्थ पर पहुंचा, श्री कृश्न जी उस का वहां आना सुन कर उस के पास गए और कुशल क्षेम पूछ कर उस वन में एक अच्छे पवित्र स्थान पर बैठ कर, इन्हों ने उस तीर्थ यात्रा का कारण पूछा, अर्जुन ने अपने से नियम टूटने का सब वृत्तांत उन को सुना दिया तब वह दोनों रैवत पर्वत पर जहां श्री कृश्न जी की आज्ञा से पहिले ही से वास स्थान बनाया गया था गए और भोजन आदि पाकर नाच और नटों का कृत्य देखने लगे, इस कृत्य के समाप्त होने पर अर्जुन ने उन नटों इत्यादि को धन आदि देकर प्रसन्न करके विदा किया और दोनों शयन स्थान में गए, अर्जुन के लिये जो शय्या वहां बिछाई गई थी वह उस पर लेट गए और श्री कृश्न जी उस देश के नद, पर्वत आदि का वृत्तांत सुनाते हुए सो गए और प्रातः काल होने पर उठ कर आवश्यक कृत्य से निवट

सुनहरी रथ पर चढ़ द्वारका को चले ॥

अर्जुन का आना सुन कर सब द्वारकावासी नगर से बाहर रास्ते में आ ठहरे और उस की स्वागत के लिये द्वारका पुरी को बहुत अच्छी तरह से सजाया, सब स्त्रियें उस को देखने के लिये झरोखों में बैठ गईं और हाथों में उन्हों ने नाना प्रकार के फूल अर्जुन पर डालने के लिये ले लिये, जब अर्जुन द्वारका में पहुंचा तो उस पर चारों ओर से फूलों की वर्षा हुई और जय जय के शब्द हर ओर से सुनाई दिये, सकल वृष्णी, अंधक और भोज वंशीयों ने उस का यथायोग्य पूजन कीया, श्री कृष्ण जी उस को अपने भवन में जहां हर प्रकार की सजावट की गई थी ले गए और वहां वह दोनो रहने लगे ॥

जब अर्जुन को वहां रहते हुए बहुत से दिन हो गये तो वहां के सब वृष्णी और अंधक वंशीयों ने रैवत पर्वत पर एक बड़ा भारी उत्सव किया जिस में उन्हों ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये, वहां बहुत से डेरे लगे हुए थे, बजंत्री अपने अपने बाजे बजा रहे थे, गन्धर्व सुन्दर २ और मनोहर गाने गारहे थे और नाचने वाले कई प्रकार के नाच दर्शकों को दिखला रहे थे, पुरवासी स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध झुण्ड बनाये हुए गमन कर रहे थे, बलदेव जी ने भी रेवती के साथ वहां दर्शन दिये और महा प्रतापी राजा उग्रसेन भी सहस्रों स्त्रियों को अपने साथ लिये हुए वहां पहुंचा, राजा के साथ सेना जो नाना प्रकार के जड़ित वस्त्र पहने

हुई थी एक अद्भुत दृश्य थी, अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु विदुरथ निष्ठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यकि, भंगकार, महारव, हार्दिक ऊद्धव, और अन्य कई प्रसिद्ध लोक अपनी अपनी स्त्रियों को साथ लिये हुए और गायकों का गाना सुनते हुए उस उत्सव में पहुंचे इस समय वह स्थान बड़ी शोभा देने लगा, श्री कृष्ण जी अर्जुन को साथ लिये हुए वहां पहुंच कर इधर उधर घूमते हुए उस शोभा को देखने लगे, अर्जुन की दृष्टी वहां वासुदेव जी की पुत्री सुभद्रा पर जो वहां अपनी सखियों के साथ विचर रही थी पड़ी उस के अत्यंत सुन्दर स्वरूप की छवि को देख कर अर्जुन कामासक्त हो गया ॥

श्री कृष्ण जी इस बात को जान गये और उन्हों ने अर्जुन से पूछा कि तू तो वनवासी है तेरा मन काम से ऐसा मथित क्यों हुआ है यह सुभद्रा मेरी बहिन है और सारण की सहोदरि और मेरे पिता वसुदेव जी की प्यारी पुत्री है यदि तू इस को चाहता है तो मैं पिता से कह दूंगा कि इसे तुझ को दे दें ॥

अर्जुन ने कहा यदि इस का विवाह मेरे साथ हो जाये तो इस में मेरा बड़ा कल्याण है, हे महाराजा अब आप कृपा कर के इस के मिलने का उपाय मुझे बताईये यदि वह उपाय मनुष्य के करने का होगा तो मैं करूंगा ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा क्षत्रियों में स्वयम्बर परम विवाह है परंतु उस में यह शंका रहती है कि क्या जाने कन्या बिन जाने बूझे किस को प्रिय माने, जो बलवान क्षत्री होते हैं वह

कन्या को हर कर ले जाते हैं यह भी शास्त्र के कथन किये हुए विवाहों में से एक विवाह है और क्षत्रि के लिये श्रेष्ठ है इस से हमारी समझ में तो यही आता है कि तुम इस को बल से हर कर लेजाओ स्वयम्बर में न जाने यह किस को वरे ॥

अर्जुन ने इस बात का श्री कृष्ण जी से पूरा पूरा निश्चय कर लिया और दूतों को युधिष्ठर के पास इस काम की आज्ञा लाने के लिये भेज दीया ॥

युधिष्ठर ने दूतों से पत्र लेकर उस को पढ़ा और अपने पत्र में इस काम की आज्ञा देदी ।

दूत जब आज्ञा पाकर अर्जुन के पास पहुंचे तो उस ने श्री कृष्ण जी को वह आज्ञा दिखलादी और सुभद्रा को रैवत पर्वत पर गई हुई जान कर एक बड़ा सुंदर रथ जिस में बड़े तीक्षण चलने वाले घोड़े जुत रहे थे लिया और कवच आदि धारण करके सब अस्त्र शस्त्र उस में रख लिये और शिकार खेलने के बहाने वहां से चल पड़ा, सुभद्रा पूजन इत्यादि कर के लौटती हुई उस को रासता में मिली उस को देखते ही अर्जुन पर काम देव के बाण असर कर गए वह रथ को उस के पास लेगया और उस को उठा कर उस में बिठा कर रथ को हांकता हुआ इन्द्र प्रस्थ की ओर चला ॥

सुभद्रा के रक्षक पुकारते और दौड़ते द्वारका में पहुंचे और धर्म सभा में जाकर सभापाल से सारा हाल कह सुना ॥

सभा पाल ने उस समय बड़े शब्द करने वाली सन्नाह बजाई

जिस का शब्द सुनते ही सब पुष्ट वृष्णि, अंधक और भोज वंशी सजे सजाये त्यार होकर आगये और आसनों पर बैठ गये, सभापाल ने अर्जुन का सुभद्रा के लेजाने का हाल उन सब को कह सुनाया ॥

वह लोग उस हाल को सुन कर सह न सके और क्रोध से लाल नेत्र कर के पुकार पुकार कर आपस में कहने लगे कवच, धनुष और तोमर आदि सब अस्त्र शस्त्र ले आओ, और रथों को जोतो अभी चल कर अर्जुन को मार कर सुभद्रा को लावें उस ने हमारा बड़ा अपमान किया है, उनके इस कोलाहल को सुन कर बलदेव जी भी बाहर निकल आये और उन सब से कहने लगे कृष्ण तो चुपका बैठा है उस के मन की बात जाने बिना तुम्हारा क्रोध करना और गर्जना निरर्थक है पहिले उस से चल कर पूछो उस की क्या इच्छा है ॥

वह सब लोग बलदेव जी की इस बात को सुन कर चुप हो गये और सभा में अपने २ आसनों पर जा बैठे ॥

बलदेव जी श्री कृष्ण जी के पास गये और उन से पूछा कि आप यह सब निरादर और अपमान देख कर चुपचाप बैठे हुये हैं इस का क्या कारण है हम सब ने आपके कहने से अर्जुन का इतना सत्कार किया और उस ने ऐसा काम किया जिस से हमारा अयश होरहा है अर्जुन ने मेरा और आपका बड़ा अनादर किया है और सुभद्रा हर कर अपनी मृत्यु का कारण बनाया है उस ने मेरे सिर पर

पाओं रखा है मैं उस के पाओं से वह वर्ताव करूंगा जो वर्ताव सर्प अपने सिर पर पाओं रखने वाले से करता है, मैं अकेला ही इस पृथ्वी को कौरवों से रहित करूंगा, बलदेव जी के यह शब्द सुन कर वृष्णि और अंधक वंशी क्रोध में आ आ कर गर्जने लगे और बलदेव जी के साथ हो गए ॥

ऐकसौ बारहवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का धर्मयुक्त बातों से यदुवंशियो का क्रोध शांत करना, अर्जुन का सुभद्रा से विवाह, श्री कृष्ण जी का इन्द्र प्रस्थ में आना, सुभद्रा से अभिमन्यु की उत्पत्ति और द्रौपदी के हां पांच पुत्रों का उत्पन्न होना ॥

जब बलदेव जी और सब वृष्णि वंशी इत्यादी अपनी २ बात कर चुके तो श्री कृष्ण जी ने कहा, अर्जुन ने हमारी कुल का अपमान नहीं किया उस ने जो कुछ किया है हमारे सन्मान के हेतु किया है क्योंकि वह जानता है कि यादव धन के लोभी नहीं जो धन देकर संबंध करूं, न स्वयम्बर में जीतना अच्छा जानता है और गौ के समान कन्यादान मांगना भी वीर क्षत्रियों को शोभा नहीं देता कन्या को मोल

लेना पाप है उस ने इन सब बातों को दोष युक्त जान कर धर्म पूर्वक सुभद्रा को हरा है अर्जुन सुभद्रा के योग्य वर है क्योंकि उसने भरत जी और शातनु के वंश में जन्म लिया है भला ऐसा कौन पुरुष होगा जो अर्जुन के साथ अपना संबन्ध न करना चाहे हमारी समझ में अर्जुन ने जो कुछ किया है वह ठीक किया है ॥

इस के अतिरिक्त अर्जुन इस समय ऐसा वीर है कि विना महादेव जी के उस को युद्ध में कोई जीत नहीं सकता तुम सब शीघ्र जाओ और मीठी २ बातें कह कर उस को लौटा लाओ, यदि तुम उस से लोगे और वह तुम सब को मार कर सुभद्रा को ले कर अपने नगर को चला गया तो थोड़े ही दिनों में तुम्हारी सम्पूर्ण कीर्ति नष्ट हो जायगी ॥

यह सुन कर वह उस के पीछे गये और उस को लौटा लाये ॥

अर्जुन के लौट आने पर उसका विवाह सुभद्रा के साथ वैदिक रीति के अनुसार बड़ी धूम धाम से किया गया और वह वहां बड़े आनन्द से एक वर्ष तक रहा। पुनः अर्जुन पुष्कर को चला गया वहां उसने बारह वर्ष में जो शेष काल रह गया था उस को पूरा किया और सुभद्रा सहित इन्द्रप्रस्थ में आया और ब्राह्मणों का पूजन करके द्रौपदी के पास गया ॥

द्रौपदी ने अर्जुन के पास जाने पर उस को बड़ी नम्रता से कहा वहीं जाओ जहां वह यादव की पुत्री है संसार में

रीति चली आती है कि नये बंधन के बाधन पुराना बंधन ढीला हो जाता है इतना कहकर वह विलाप करने लगी ॥

अर्जुन ने बड़ी मीठी २ बातें करके द्रौपदी के क्रोध को ठंडा किया और शीघ्र ही बाहर आकर सुभद्रा को गोपी सा रूप धारण करा कर राज भवन के भीतर भेज दिया उसने भीतर जाकर कुंती को दंडवत की जिसने बड़े प्यार से उस का मस्तक चूमा और उसे आशीर्वाद दी तब सुभद्रा द्रौपदी के पास गई और उस को बंदना करके कहा मैं तेरी दासी हूं। यह सुन कर द्रौपदी ने बड़े प्रसन्न हो कर कहा तेरा पति निःसं पत्न होवे, सुभद्रा ने प्रसन्न हो कर कहा ऐसा ही हो इन दोनों की यह बातें सुन कर पांचों पांडव और कुंती बड़े प्रसन्न हुए ॥

कुच्छ दिन पीछे श्री कृष्ण जी बलदेव जी सेना पति अक्रूर, उद्धव, सात्यकी कृतवर्मा, प्रद्युम्न, शम्ब, निशाठ, शंकु, चारूदेषण, झिल्ली, विपृथु, सारण गद और अन्य कई वृष्णि और अंधक वंशी बहुत सा पदायज जिस में सुन्दर २ रथ, सजे हुए हाथी और घोड़े, गौ, गहनों से भरी हुई सुंदर दासीयां आदि ये ले कर इन्द्रप्रस्थ को चले ॥

युधिष्ठर ने जब उन के आने का सुसमाचार सुना तो सहदेव और नकुल को बहुत सी सेना देकर उन के लाने के लिये भेजा, वह गये और उन सब को आदर सहित ला कर बड़े सन्मान से उतारा दिया, इस समय इन्द्रप्रस्थ की सजावट देखने के योग्य थी, हर स्थान पर जल का छड़-

आता था, पुष्प, चंदन अगर आदि की सुगन्ध हर ओर से आरही थी, नाना प्रकार की रंग बरंगी ध्वजायें लहरा रही थीं उन पर ओ३म्, जय, इत्यादि शब्द अपनी शोभा देरहे थे स्थान २ पर बड़े २ सुन्दर द्वार बने हुए थे, यहां कृष्ण आदि पहुंच कर बहुत प्रसन्न हुए ॥

युधिष्ठिर उन के वहां आने पर बलदेव जी से यथा योग्य मिले और श्री कृष्ण जी के मस्तक को चूम कर हाथ पसार कर मिले तब श्री कृष्ण जी का भीमसेन से यथायोग्य मिलाप हुआ, युधिष्ठिर सब वृष्णि और अंधक वंशियों से कृपानुसार आदर और सत्कार से मिले और वृद्ध, बालक और बराबर वालों से यथायोग्य दंडवत, नमस्कार और आशीर्वाद कही ॥

तब श्री कृष्ण जी ने वह धन आदि जो अपने साथ द्वारका से लाये थे राजा युधिष्ठिर को दिया जिस ने उस को राज्य कोष में रखे जाने की आज्ञा दी ॥

बलदेव जी साथियों को और उस द्रव्य इत्यादि को जो युधिष्ठिर ने उन को दिया था लेकर द्वारका को चले गये और श्री कृष्ण जी अर्जुन के पास रह गए और यमुना आदि पर घूम घूम कर शिकार खेलने लगे ॥

सुभद्रा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम उस के क्रुद्ध होने के कारण अभिमन्यु रक्खा गया, इस बालक की बांहें बड़ी २, छाती चौड़ी और नेत्र बड़े सुन्दर थे ॥

इस के उत्पन्न होने पर युधिष्ठिर ने गौ आदि बहुत सा

दान किया बालपन से ही अभिमन्यु को श्री कृष्ण जी और सब चाचा ताऊ बहुत प्यार करते थे श्री कृष्ण जी ने उस के चूड़ा आदि शुभ कर्म अपने हाथ से किये और बड़े होने पर उस ने चारों प्रकार की धनुर्विद्या अर्थात मंत्र मुक्त जिस के प्रयोग किये जाने पर संहार न हो पाणी मुक्त बाण आदि से युद्ध करना मुक्तामुक्त, जिस में प्रयोग और संहार दोनों हों, अमुक्ता मंत्र की साधना से और दश विधि १ आदान (बाण को लेना) २ संधान (बाण चढ़ाना) ३ मोक्ष (बाण चलाना) ४ विनि वर्त्तन (चलाये हुए बाण को लौटा लेना) ५ स्थान (संधान के समय त्रिज्य के बीच को जानना) ६ मुष्टि (तीन या चार अंगुलियों से पकड़ना) ७ प्रयोग (अंगुलियों के बीच में बाण लगाना) ८ प्रायाश्चत्त (हथेली आदि को शत्रु के अथवा अपने तीर से बचाना। ९ मंडल (घूम घूम कर रथ पर से बाण मारना) और १० रहस्य (एक ही बार में अनेक लक्ष्यों को भेदना)॥

इन के साथ ही अभिमन्यु ने ब्रह्म अस्त्रादि दिव्य अस्त्र और खंग आदि मनुष्य अस्त्र अर्जुन से सखि और युद्ध की सब क्रिया और रहस्यों को सीख कर अर्जुन के समान योग्य हो गया अर्जुन उस को इस प्रकार योग्य देख कर बड़ा प्रसन्न होता॥

द्रौपदी को भी पांचों पतियों से पांच पुत्र हुए युधिष्ठर के पुत्र का नाम प्रति विन्ध्य, भीमसेन का सुतसोम अर्जुन का श्रुतकर्मा नकुल का शतानीक और सहदेव का श्रुतसेन हुआ यह पांचों पुत्र द्रौपदी के एक २ वर्ष के अंतर में हुए पांडवों के पुरोहित

धौम्य ऋषि ने इन सब के चूड़ा कर्म आदि सब संस्कार कराये और उन के बड़े होने पर अर्जुन ने उन सब को वेद पढ़ाकर सम्पूर्ण बाण विद्या और दिव्य तथा मानुष्य अस्त्र सिखाये ॥

ऐकसौ तेरहवां अध्याय

—:०:—

पांडवों का सब राजाओं को जीत कर धर्म से राज्य करना, अर्जुन और श्री कृष्ण जी का जल क्रीड़ा करने को जाना अग्निदेव का वहां आकर उन से खांडव वन के जलाने के लिए सहायता मांगना ॥

तब पांडवों ने धृतराष्ट्र और भीष्म जी की आज्ञा लेकर और कई राजाओं को युद्ध में जीता, युधिष्ठर ने धर्म, अर्थ और काम का इस प्रकार से सेवन किया जैसे कोई अपने भाई बन्धु की सेवा करता है उस की लक्ष्मी अचल और बुद्धि ब्रह्म-परायण हो गई इस कारण से सब राजा धर्म से राज्य करने लग गए, इस राज्य में प्रजा हर प्रकार से प्रसन्न रहती किसी को कोई क्लेश न होता प्रजा युधिष्ठर से बहुत प्रीति करती क्योंकि वह उस की मनोकामना के पूरा करने के लिये हर समय तत्पर रहता, युधिष्ठर ने आयू भर में कभी अपने मुख से

अयोग्य, असत्य, असह्य और अप्रिय वचन न कहे थे वह सारे लोगों का हितकारी हो कर सुख पूर्वक रहने लगा ॥

एक दिन अर्जुन ने श्री कृष्ण जी से कहा, आजकल गरमी की ऋतु है मेरी इच्छा है कि मैं और आप दोनों अन्य सज्जनों को साथ लेकर यमुना के किनारे चलकर विहार करें, श्री कृष्ण जी ने कहा मैं भी यही चाहता हूं, इन दोनों ने युधिष्ठर से आज्ञा ली और अन्य कई सज्जनों को साथ लेकर यमुना का रास्ता लिया, वहां उन के लिये बहुत सुन्दर २ डेरे लग गये और नाना प्रकार के भोजन इत्यादि त्यार होगये वह सब वहां पहुंचकर पहिले जल क्रीड़ा करने लगे द्रौपदी, सुभद्रा और बहुत अन्य स्त्रियां भी इन के साथ थीं वह भी जल क्रीड़ा करती रहीं, जल क्रीड़ा कर चुकने पर अर्जुन और श्री कृष्ण जी एक रमणीक स्थान पर जाकर सुंदर २ आसनों पर बैठकर आपस में भूतकाल की अनेक कथायें कहने लगे उस समय उन के पास एक बड़ा लम्बा चौड़ा तरुण सूर्य के समान तेजस्वी, जटा धारी ब्राह्मण आकर कहने लगा मैं बहुत भोजन करने वाला ब्राह्मण हुं तुम दोनों से एक वार का भोजन मांगता हूं ।

अर्जुन और श्री कृष्णचन्द्र ने कहा आप के लिये कौनसा और कितना अन्न बनवाया जाय जिस से आप तृप्त हों ।

ब्राह्मण ने कहा मैं अग्नि हुं अन्न भोजन नहीं करता हुं आपको उचित है कि मुझे आप मेरे योग्य भोजन दें मैं इस खाण्डव वन को इसमें के जीव जंतुओं सहित भस्म किया चाहता हूं इस में इन्द्र का मित्र तक्षक नाग रहता है जिस समय मैं इस

को भस्म करने लगता हुं इन्द्र वर्षा करके मेरे इस कार्य को पूरा नहीं होने देता तुम इस बन में से किसी जीव को बाहर न जाने दो और इन्द्र को भी रोको कि वह मेरे इस काम में बाधा न डाले ॥

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन जी से कहा कि आप मुझे कृपा करके यह बतलाइये कि अग्नि देव खांडव बन को जिस में नाना प्रकार के जीव जंतू रहते थे क्यों जलाना चाहते थे ॥

वैशम्पायन जी ने कहा हे राजन् मैं इस का विस्तरित कथा कहता हुं सुनिये, पहिले समय में श्वेतकी नाम एक बड़ा बलवान राजा हुआ है वह बहुत से यज्ञ किया करता था और दानी भी इतना था कि उस के तुल्य दानी आज तक कोई नहीं हुआ उस का ध्यान नित्य प्रति इन्हीं दोनों बातों में रहता था एक समय उसने ज्योतिष्टोमादि साम यज्ञों को आरम्भ किया जब यज्ञ करते २ बहुत दिन होगये यज्ञ के धूम से ऋत्विज लोक व्याकुल हो कर यज्ञ बंद कर के चले गये राजा ने उन की बहुत विनति की परन्तु उन्हों ने न माना तब राजा ने उन्हीं के द्वारा और ऋषियों को बुला कर उन यज्ञों को समाप्त किया, पुनः उस ने फिर सौवर्षांतक यज्ञ करने की इच्छा की परन्तू इस यज्ञ के कराने वाला उस को कोई ब्राह्मण न मिला उस ने बहुत से ब्राह्मणों से प्रार्थना की और बहुत सा धन देने को भी कहा परन्तू किसी ने इस काम को स्वीकार न किया तब राजा ने कहा

यदि तुम यज्ञ कराने के असमर्थ हो तो मैं दूसर ब्राह्मणों से यज्ञ कराने का प्रबन्ध करूंगा उन ब्राह्मणों ने कहा हम इस कार्य को नहीं करा सकते तू शिवजी के पास जा वह तुझे यज्ञ करावेंगे ॥

वह राजा बड़ा क्रोध से भरा हुआ कैलाश पर्वत पर गया और महादेव जी की तपस्या आरम्भ की, बहुत दिन तक उस ने कुच्छ न खाया पुनः कभी बारहवें कभी पन्द्रवें दिन कुच्छ कन्द मूल बन से लाकर खाता, फिर छः मास तक ऊंचे को बांह कर के आंखे खुले हुए जड़ वृक्ष के समान अचल खड़ा रहा महादेव जी प्रसन्न हुए और उन्हों ने उस को दर्शन देकर कहा राजन् तेरी तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूं अब जो कुच्छ तू चाहे मुझ से मांग ले ॥

राजा ने दंडवत की और कहा महाराज यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यज्ञ कराईये ॥

महादेव जी हंस कर बोले यज्ञ कराना ब्राह्मण का काम है हमारा काम नहीं तुम ने हमारी बहुत तपस्या कर के हम को प्रसन्न किया है इस कारण हम उस के कराने का प्रबन्ध कर देंगे परन्तू तू पहिले बारह वर्ष ब्रह्मचर्य रह कर घी की अखंड धारा से अग्नि में हवन कर तब तेरी मनोकामना पूरी होगी ॥

राजा ने वैसा ही किया और बारह वर्ष बीतने पर पुनः महादेव जी के पास गया, महादेव जी ने कहा तू दुर्वासा ऋषि के पास जा और उसे कह वह तेरा यज्ञ करा देगा ॥

राजा अपने देश में आया और उस ने यज्ञ की सारी सामग्री इकट्ठी की और महादेव जी के पास जाकर कहा महाराज मैं कल से यज्ञ कराना चाहता हुं ॥

महादेव जी ने दुर्वासा को बुला कर कहा तुम मेरी आज्ञा से इस राजा को यज्ञ करा दो दुर्वासा ने महादेव जी की आज्ञा मान कर विधि पूर्वक राजा का यज्ञ कराया, इस यज्ञ में राजा ने बड़ी बड़ी दक्षिणा दीं जिन को ले कर दुर्वासा और अन्य ब्राह्मण अपने २ घरों को गये और राजा अपने नगर को गया इस से अग्नि देव को अजीर्ण हो गया और उसने अपने आप को तेज हीन पाकर बड़ी ग्लानी से ब्रह्मा जी के पास जा कर कहा महाराज मैं निर्बल और तेज हीन हो गया हुं ऐसी कृपा कीजिये जिस से मेरा तेज ज्यों का त्यों होजाये ॥

ब्रह्मा जी ने कहा हम जानते हैं तुमने बारह वर्ष तक अखंड धारा घृत पिया हैं इस से तुझ को अजीर्ण हुआ है तुम चिंता मत करो तुम्हारा तेज पुनः ज्यों का त्यों हो जायगा अब तुम जा कर खांडव वन को भस्म करो इस वन को तुमने पहिले भी देवताओं के शत्रुओं का निवास स्थान बनने के कारण भस्म किया था इस वन में जो जीव इत्यादि रहते हैं उन के भक्षण करने से तुम्हारे मन की ग्लानी जाती रहेगी ॥

अग्नि देव वहां से शीघ्र चल कर खांडव वन में पहुंचे और क्रोध में आ कर उस वन को प्रज्वलित कर दिया ॥

वनवासी आग बुझाने दौड़े, हाथीयों ने सूडों में पानी भर भर कर जलते वृक्षों पर डाला, किसी जीव ने धूल उड़ा कर

किसी ने पानी छिड़क कर और किसी ने और और यत्न कर के अग्नि को बुझा दिया, सात बार अग्नि देव ने इस वन को आग लगाई और सात ही बार उस के वासीयों ने उस को बुझा दिया ॥

एक सौ चौदह का अध्याय

—:०:—

अग्नि देव का अपने काम की सिद्धि के लिए ब्रह्मा जी के पास जाना और उन का उस को अर्जुन और श्री कृश्न जी के पास भेजना ॥

इस से अग्नि देव निराश होगए और उन्होने ब्रह्मा जी के पास जा कर यह सारा हाल कह सुनाया ॥

ब्रह्मा जी ने कहा हमने तुम्हारे लिए एक बात विचारी है जिस के करने से तुम क्षण भर में इन्द्र के देखते देखते खांडव वन को भस्म कर सकते हो इस समय पृथ्वी पर श्रीकृश्न जी और अर्जुन नर नारायण ने देवताओं के कार्य करने को जन्म लिया है उन की सहायता से तुम खांडव वन को भस्म कर सकोगे और वह सब जीवों आदि से तुम्हारी रक्षा करेंगे वह उन के पास आए और उन में वह वर्तालाप हुई जो पहिले किसी स्थान पर लिखी जा चुकी है ॥

अर्जुन ने कहा मेरे पास बहुत से अस्त्र हैं एक इन्द्र क्या सौ इन्द्र भी आजावें तो उन को पराजय करके पछाड़ दूंगा परंतु

मेरे बल के तुल्य धनुष नहीं है और न कोई ऐसा रथ है जिस पर मैं इतने बाण रख लूं कि संधान करते २ समाप्त न हों इस कारण सूर्य के सदृश तेजस्वी रथ और श्वेत घोड़े चाहता हूं और श्रीकृष्ण जी के पास भी नागों और पिशाचों का नाश करने के लिए अस्त्र नहीं हैं आप अपने कार्य की सिद्धि के लिए उपाय बतलावें और जो कुच्छ दे सकते हैं दें हम यथाशक्ति पूरा २ पौरष करेंगे ॥

एकसौ पंद्रह का अध्याय

—:०:—

अग्नि देव का अर्जुन को अपनी रक्षा के लिए गांडीव धनुष, दो अक्षय तर्कस और एक दिव्य रथ और श्रीकृष्ण जी को एक चक्र देना, उन दोनों से रक्षित होकर खांडव वन को भस्म करना और इन्द्र का कोप करके उन दोनों से युद्ध करना ॥

अग्नि देव ने आदिति के पुत्र जल के ईश्वर वरुण देवता को स्मरण किया और उन के तत्क्षण आन पर बड़े आदर के साथ बिठला कर कहा आप राजा सोम का दिया हुआ जो धनुष, दो तर्कस, रथ जिस की ध्वजा के ऊपर वानर का चिन्ह है और चक्र हम को दीजिए इन से अर्जुन और श्रीकृष्ण जी ने एक बड़ा भारी काम करना है ॥

वर्णा देवता ने कहा बहुत अच्छा लाता हूं और वह लेने के लिए गये, गांडीव धनुप जो बड़ा अद्भुत, किसी शस्त्र से न भेद्या जाने वाला, सब शस्त्रों को काट डालने वाला, शत्रु की सारी सेना को नाश करने वाला और जिस को सब देवता पूजते थे, दोनों तर्कस जिन के बाण कभी समाप्त न होते थे और एक रथ जिस में बड़े तीक्ष्ण घोड़े जुते हुये थे और जिस की ध्वजा पर वानर का चिन्ह था और जिस को विश्वकर्मा जी ने बनाया था अर्जुन को दिए गये और वह बाकी अस्त्र धारण करके त्यार हो गया और चक्र श्रीकृश्न जी को दे दिया गया और वह भी अर्जुन के साथ होगए और उन्हो ने अग्नि देव को कहा अब आप इस वन को भस्म कर लीजिए हम आप की रक्षा करने के लिए तत्पर हैं ॥

अग्निदेव ने उस वन को जलाना आरम्भ कर दिया चारों ओर अग्नि ही अग्नि दीखने लगे बनवासी जीव भयभीत हो गये और इधर उधर भागने लगी वन से बाहर अर्जुन और श्री कृश्न जी दोनों ओर खड़े थे जब कोई जीव बाहर निकलने लगता वह उस को अपने अस्त्रों से मार कर अग्नि में डाल देते यह देख कर वह जीव वन के बीच ही उछलते और पुनः उस में गिर कर भस्म हो जाते, इस बन की अग्नि को देख कर सब देवता ऋषियों को साथ ले कर इन्द्र के पास गये और पूछा क्या प्रलय काल आन पहुंचा है जो अग्नि सब जीवों को भस्म किये जारही है, इन्द्र सब को साथ ले कर इस वन की अग्नि को शांत करने

के लिये चल और उस वन के ऊपर आकर मेघों को आज्ञा दी कि बहुत पानी गिरा कर इस अग्नि को शीघ्र शांत कर दो मेघों ने बरसना आरम्भ किया परन्तु अग्नि का वहां इतना तेज़ था कि उतने जल से उस को कुच्छ न हुआ वरन वह जल भी जल गया इन्द्र का क्रोध और बढ़ गया और मेघों से कहा इस से बहुत अधिक जल वर्षाओ ॥

अर्जुन ने उस समय बाण मार मार कर वन को ऐसा ढक दिया था कि न उस में इन्द्र का वर्षाया हुआ जल जा सका और न ही कोई जीव आकाश का मारग बंद होने के कारण ऊपर को जा सका। तक्षक उस समय कुरूक्षेत्र को गया हुआ था और उस का पुत्र अश्वसेन वहां ही था उस ने उस में से निकलने के अनेक यत्न किये परन्तु अर्जुन और श्री कृष्ण के उपायों से उस का एक यत्न भी सफल न हुआ, उस की माता ने उस को बचाने के लिये उसको अपने मुख में ले लिया और उड़ कर वन में से निकल चली अर्जुन ने उसको बाण मार मार कर टुकड़े करके गिरा दिया, अश्वसेन निकल कर भागने लगा इन्द्र ने उस को बचाने के लिये अर्जुन के धनुष के तानते ही बालका वर्षा करके उस को मोहित कर दिया और अश्वसेन निकल कर भाग गिया, अर्जुन उस माया और अश्वसेन के छल को देख कर बड़े क्रोध में आ गया और उस समय के अंतर में जो जो जीव उड़ कर आकाश में चल गये थे अर्जुन ने उन को बाणों से नीचे गिरा कर भस्म कर डाला ॥

अग्नि देव अर्जुन और श्री कृष्ण ने उस सर्प को शाप

दिया कि तू निराश्रय और असंतान रहेगा, अर्जुन को सर्प के छल से इतना क्रोध हुआ कि उसने वहां बड़े २ तीक्ष्ण बाण छोड़ कर आकाश को छाय दिया और इन्द्र से युद्ध करने लगा इन्द्र ने भी उस पर तीव्र अस्त्र चलाये और बिजली सहित बड़े २ मेघों को उत्पन्न करके आकाश को ढांप कर अंधकार कर दिया और बहुत सा जल वर्षाने लगा ॥

अर्जुन ने झट वायव्य अस्त्र को छोड़ा जिस से सब मेघ उड़ गये बिजली की चमक नष्ट हो गई और एक क्षण में आकाश निर्मल हो गया अब अग्नि देव प्रसन्न हो गये और निर्भय हो कर सब जीवों के अंगों से निकली हुई वसा को पीकर बड़े तेज से वन को प्रज्वालित करने लगे ॥

गरुड़ और बड़े बड़े विषधारी सर्प अर्जुन और श्री कृष्ण को मारने के लिये आकाश मारग से उनके ऊपर आये परंतु अर्जुन ने अपने बाणों से उन सब को काट कर अग्नि में डाल दिया. तब असुर, राक्षस और किन्नर बड़े क्रोध से गर्जते हुये और हाथों में अयः कणप (गोलियों से भरा हुआ गोला) चक्राश्म (एक यंत्र जिस को घुमाने से पत्थर दूर तक फेंके जा सकते हैं), भुशुण्डी (चमड़े की डोरियों सहित पत्थर आदि फेंकने का एक यंत्र) और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिए हुये अर्जुन और श्रीकृष्ण को मारने के लिए वहां आए और अस्त्र शस्त्र चलाने लगे ॥

अर्जुन ने बड़े तीक्ष्ण बाण चला कर उन के सिर काट

डाले श्रीकृष्ण जी ने चक्र से दैत्यों का नाश कर दिया जब दूसरे दैत्यों ने देखा कि उन के भाई बंद नष्ट हो गये हैं वे वहां से भाग गये, इन्द्र का क्रोध और भी बढ़ा और वह हाथ में वज्र लिए हुए अपने ऐरावपत नामी श्वेत हाथी पर चढ़ कर अर्जुन के साथ लड़ने के लिए आया और देवताओं को कहा इन दोनों को मार डालो, तब यमराज ने काल दण्ड, कुबेर ने गदा, वरुण ने पाश, स्वाम कार्त्तिक ने शक्ति, अश्वनी कुमारों ने दिव्य औषधी, धाता ने धनुष, जय ने मुशल, त्वष्टा ने पर्वत, अंशु ने शक्ति, मृत्यु ने परश्वध, अर्यमा ने परिध, मित्र देवता ने चक्र, पूषा ने धनुष, सविता ने खड्ग और ग्यारह रुद्र, आठ वसु ४९ मरुत, विश्वेदेवा साध्य गण, और अन्य सब देवता अपने २ आयुधों को लेकर अर्जुन और श्रीकृष्ण चंद्र जी से युद्ध करने के लिए आए ॥

अर्जुन और श्रीकृष्ण इन सब के इस प्रकार त्यार हो कर आने पर तनक भी न डरे वरन उन सब को बाणों से मारने लगे, देवगी भागे और इन्द्र के पास पंहुचे, यह देख कर ऋषि इत्यादि आश्चर्य करने लगे और इन्द्र इन का इतना पराक्रम देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और उन से स्वयं युद्ध करने लगा, अर्जुन के बल की परीक्षा के लिए उस ने पत्थर बरसाये, अर्जुन ने उन पत्थरों को अपने बाणों से टुकड़े २ कर दिया पुनः इन्द्र ने हिमालय पर्वत की एक चोटी उठा कर गिरादी, उस को भी उसने काट डाला और टुकड़े २ कर दिया ॥

एकसौ सोलवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का इन्द्र आदि देवता और दैत्य, राक्षस, किन्नर, गंधर्व और सब वन वासीयों को जीत कर अग्नि को १५ दिन में उस वन को भस्म करने देना और बन के ६ जीवों का बचा रहना ॥

जब पर्वत की चोटी टुकड़े २ होकर गिरी तो उस बन के रहने वाले डर कर भागने के लिये बाहर निकले ज्यूं ज्यूं वह निकलते अर्जुन और श्री कृष्ण उन का नाश करते जाते देवता, दानव, राक्षस, किन्नर, और इन्द्र पहिले ही हार मान कर विमुख हो गये थे, अब इन्द्र इन दोनों को प्रसन्न देख कर इन की प्रशंसा करने लगा पुनः इन्द्र को आकाश वाणी हुई ॥

"हे इन्द्र तेरा मित्र तक्षक इस वन में नहीं है वह इस समय कुरूक्षेत्र में है तुम उस की चिंता मत करो यह दोनों पुरुष जो इस समय पृथ्वी पर अर्जुन और कृष्ण के नाम से विख्यात हैं स्वर्गवासी नर नारायण हैं, तुम उन के बल को जानते हो उन को युद्ध में जीतने वाला त्रिलोकी भर में कोई नहीं है यह दोनों सब के पूजनीय हैं, हे इन्द्र तुम देवताओं को साथ लेकर यहां से चले जाओ और वन को जलने दो इस में दैव इच्छा है ॥

इस आकाश वाणी को सुन कर इन्द्र स्वर्ग को चला गया और सब देवता भी उस के पीछे २ चले गये और अग्नि देव उस वन को निशचिंत होकर अच्छी तरह भस्म करने लगा ॥

जब उस वन के जीव बहुत आतुर होगये तो वड़ी करुणा और आर्त वाणी से रोने और चिल्लाने लगे परंतु उन के इस रोने धोने पर किसी ने ध्यान न दिया और अग्नि देव सब कुछ भस्म करके तृप्त हुये।

तक्षक के घर से जब मय नाम दानव भागने लगा तो अग्नि देव ने उस का पीछा किया मय ने बड़े दीन और नम्र शब्दों में अर्जुन से प्राण रक्षा के लिये बहुत कहा अर्जुन ने उस को कहा तू डर मत अब तुझ को कोई मार नहीं सकता यह देख कर उस को कृष्ण जी ने भी कुछ न कहा और अग्नि देव ने भी उस का पीछा छोड़ दिया।

इस वन के सकल जीवों में से केवल ६ जीव अश्वसेन, मय और शार्ंगक नाम चार पक्षी बचे ॥

एकसौ सत्रह का अध्याय

—:o:—

शार्ङ्गक पक्षियों के बचने का कारण ॥

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन जी से कहा मैं ने मय दानव और अश्वसेन के इस अग्नि देव से बचने का कारण तो

सुन लिया है अब आप कृपा करके शार्ङ्गक पक्षियों के वचने का कारण भी विस्तार पूर्वक कथन कीजिये ॥

वैशम्पायन जी ने कहा इन के वचने का यह कारण है ॥

मंदपाल नाम एक बड़ा तपस्वी और ज्ञानी ऋषि था उस ने बड़ी तपस्या करके प्राण त्यागे और पितृलोक में पहुंचा परंतु उस को वहा का फल प्राप्त न हुआ, उस ने धर्मराज के पास बैठे हुए देवताओं से इस का कारण पूछा ॥

देवताओं ने कहा संसार में मनुष्य पर बहुत से ऋण हैं तुम ने और सब ऋण तो उतारे हैं परंतु पितृ ऋण नहीं उतारा वह ऋण बिना संतान होने के नहीं उतर सकता और जब तक यह ऋण न उतरे तपस्या इत्यादि कर्मों का फल नहीं मिलता, यदि तुम यहा लोक चाहते हो तो पृथ्वी पर जा कर संतान उत्पन्न करो क्योंकि वेद में लिखा है कि पुत्र पिता को पुन्नाम नरक से तारता है ॥

मंद पाल ने संतान के लिए चिंता करते हुये बहुत संतान उत्पन्न करने वाले पक्षियों के पास जा कर जरिता नाम शार्ङ्गिका से अपना विवाह किया उस से उस के चार पुत्र उत्पन्न हुए वह ऋषि उस को छोड़ कर लपिता नाम दूसरी स्त्री के पास चला गया। जरिता इस से बहुत दुःखी हुई परंतु उस ने उन पुत्रों को खांडव वन से नहीं छोड़ा और वहा ही उन का पालन करती रही ॥

मंदपाल अपनी स्त्री लपिता के साथ घूम रहे थे कि

उन्हों ने अग्नि देव को खांडव वन के भस्म करने के हेतु जाते देखा और उस वन में रहते हुये अपने बच्चों के बचाने के लिए उन की बहुत सी स्तुति की, इस स्तुति को सुन कर अग्नि देव बड़े पसन्न हुये और कहा जो इच्छा हो सो वर मांगो ॥

मंदपाल ने हाथ जोड़ कर कहा, महाराज खांडव वन को जलाते समय मेरे पुत्रों के प्राणों को बचा लीजिये ॥

अग्नि देव ने कहा बहुत अच्छा ऐसा ही होगा ॥

एकसौ अठारह का अध्याय

—:०:—

जरिता का अपने पुत्रों को अग्नि से बचाने में असमर्थ पाकर विलाप करना, पुत्रों का उस को समझाना और उस का उन को छोड़ कर कहीं चला जाना ॥

शार्गकों के उस अग्नि से न बच सकने को जान कर उन की माता बड़े दुःख से विलाप करने लगी और कहने लगी यह अग्नि वन को भस्म करती हुई हमारी ओर आ रही है मुझे इन पक्षहीन बालकों को देख कर बड़ा कष्ट हो रहा है यह न चल सकते हैं और न ही उड़ सकते हैं मुझ में इतनी सामर्थ्य नहीं जो इन को लेकर उड़ कर कहीं चली जाऊं इन को छोड़ कर चले जाने में मेरा हृदय कांपता है हाय मैं

क्या करूं, मैं यह भी नहीं कर सकती कि एक को ले जाऊं और बाकियों को वहां रहने दूं, हे पुत्रो तुम बतलाओ तुम्हारी समझ में क्या आता है, मेरी समझ में तो यही आता है कि तुम को अपने पंखों से ढांप कर यहां ही तुम्हारे साथ जल जाऊं तुम्हारा निर्दई पिता यह कह कर चला गया था कि मेरा बड़ा पुत्र जरत्कार सारे कुटम्ब का पालन करेगा और उस से छोटा सारि स्रक संतान उत्पन्न करेगा उस से छोटा स्तम्बमित्र तपस्वि होगा और सब से छोटा द्रोण ब्रह्म ज्ञानी होगा, हाय मैं क्या करूं ॥

शार्ङ्गक पक्षियों ने अपनी माता से कहा, हे माता तू स्नेह छोड़ कर वहां चली जा जहां अग्नि का भय न हो क्योंकि तेरे जीवन रहने से तेरे और पुत्र हो जायेंगे और हमारे साथ तेरे यहां जलजाने से सारा कुल नष्ट हो जायेगा ॥

उस ने कहा पृथ्वी पर वह चूहे का बिल दीख रहा है तुम सब उस बिल में घुस जाओ मैं उस बिल के मूंह को धूल से ढांप दूंगी, जब अग्नि शांत हो जावेगी धूल को हटा कर तुम को निकाल लूंगी ॥

शार्ङ्गक बोले हमारा शरीर अभी केवल मांस का पिंडा है यदि हम बिल में जायेंगे तो चूहा हमें खा जायेगा चूहे से खाये जाने से तो अग्नि में जलना ही श्रेष्ठ है ॥

जरिता ने कहा इस बिल के चूहे को श्यन पक्षी पकड़ ले गया था इस में अब कोई नहीं तुम को बिना किसी भय के इस बिल में चला जाना चाहिए ॥

शार्ंगकों ने कहा हमने तो श्यन को चूहा ले जाते देखा नहीं यदि वह ले भी गया है तो उस में और चूहे होंगे वह हम को खा जायेंगे. यह तो हो सकता है कि वायू के फिर जाने पर अग्नि हम तक न आवे और हम बच रहें परंतु चूहे से बचना किसी प्रकार भी नहीं जान पड़ता ॥

जरिता ने कहा मैंने अपनी आखों से उस श्यन को चूहा लेजाते देखा मैं उस के पीछे गई और उस को यह कह कर आशीर्वाद दी कि तूने हमारे शत्रु को मार कर हम पर बड़ा उपकार किया है तुम स्वर्ग में शत्रु हीन हो कर आनन्द पूर्वक वास करो उस श्यन ने उस चूहे को उसी समय खा लिया था ॥

पुत्रों ने कहा, माता ! हमने इस बात को अपनी आखों नहीं देखा हम बिन देखे इस बिल में नहीं जा सकते ॥

जरिता ने कहा तुम मेरे कहने पर विश्वास करो मैंने तो अपनी आखों से देखा है जाओ इस बिल में घुस जाओ ॥

पुत्रों ने कहा हमारी समझ में इस बिल में रहना अच्छा और लाभ दायक नहीं तू इस को नहीं जानती है कि हम कौन हैं, न तू हमारी माता न हम तेरे पुत्र हैं यह माता पिता पुत्र आदि के सम्बन्ध केवल भ्रांत रूप हैं तू अभी तरुण और रूपवती है यहां से चली जा, पिता के पास जाने पर तेरे और पुत्र होजायेंगे और अग्नि में जलने से हमें शुभ लोक मिलेंगे, यदि अग्नि दूसरी ओर फिर जावे और हम बच जायें तो तू पुनः हमारे पास चली आना ॥

जरिता पुत्रों के यह शब्द सुन कर चली गई ॥

एक सौ उन्नीस का अध्याय

—:०:—

शार्ङ्गकों का अग्नि की स्तुति करना और उस का प्रसन्न होकर उन को न जलाना और वर देना ॥

जब अग्निदेव बन को भस्म करते हुए उन शार्ङ्गकों की ओर आये तो सब से बड़े भाई जरितारी ने कहा जो मनुष्य आने वाले कष्ट को देख कर जागता रहता है उसे कष्ट नहीं होता जो कष्ट के आने के समय को नहीं जानता वह बहुत कष्ट पाता है और जो मनुष्य समीप आई हुई मृत्यु को नहीं देखता उस को भी कल्याण नहीं होता परंतु सतसंग ऐसा है कि उस से सब उपाधियां दूर होजाती हैं ॥

दूसरे भाई सारिसृक ने कहा तुम धीर और मेधावी हो निश्चय यह समय हम को दुख देने वाला आया है, संसार में सब ज्ञानी और शूर वीर ही नहीं हुआ करते ॥

तीसरा भाई स्तम्बमित्र बोला बड़ा भाई पिता के तुल्य होता है और वही छोटे को कष्ट से छुड़ाता है जिस बात को बड़ा ही नहीं जानता उस को छोटा क्योंकर जान सकता है ॥

द्रोण जो सब से छोटा था बोला अग्नि प्रज्वलित रूप हो कर बन को जलाती हुई आ रही है ॥

मंदपाल के इन चारों पुत्रों ने अपने २ शब्दों में अग्नि

देव की बड़ी स्तुति की जिस से अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए और उन को कहा तुम निर्भय रहो, तुम्हारे प्राणों की रक्षा के लिए तुम्हारे पिता ने इस से पहिले ही वर मांगा हुआ है, अब तुम हम से कोई वर मांगो ॥

सब से छोटे द्रोण ने कहा महाराज यह मारजार हमें बहुत दुःख देते हैं इन का सपरिवार नष्ट करदो ॥

अग्नि देव ने कहा ऐसा ही होगा ॥

एक सौ बीस का अध्याय

—:o:—

मंदपाल का अग्नि को बढ़ते हुये देख कर पुत्रों का सोच करना, लपिता को छोड़ कर उन को देखने के लिये जाना पुनः अपनी स्त्री और पुत्रों सहित किसी और स्थान को चले जाना, इन्द्र का श्री कृष्ण और अर्जुन को वर दान देना और उन का अग्नि से विदा होकर मयदानव सहित नदी पर चले जाना ॥

यद्यपि मंदपाल अपने पुत्रों के छुड़ाने के लिए अग्नि देव से वर माग चुका था तिस पर भी अग्नि के बढ़ने से उस को उन को बड़ी चिंता हुई और उस ने अपनी दूसरी स्त्री लपिता से कहा, मेरे पुत्र अभी बालक हैं वह इस बढ़ती हुई अग्नि

से अपने आप को न बचा सकेंगे और उन की माता उन को इस प्रकार रक्षा रहित देख कर ऊपर नीचे इधर उधर उड़ती फिरती होगी और न जाने कितने दुःख में होगी ॥

लपिता ने मंदपाल से कहा तुम्हारे पुत्र तो ऋषि और तेजस्वी हैं वह अग्नि से नहीं डरते और तुमने उन की रक्षा का अग्नि देव से भी वरदान पा लिया हुआ है तुम उन की चिंता नहीं करते तुम मो मेरी सौति के पास जाना चाहते हो, जान पड़ता है कि तुम्हारी प्रीति मुझ में ऐसी नहीं है जैसी उस में है, स्नेह पात्र और सपुत्र स्त्री को छोड़ना न्याय नहीं है तुम जरिता के पास जाओ, मैं इस वन में खोटे पति की स्त्री के समान फिर कर अपने दिन काट लूंगी ॥

मंदपाल ने कहा यह काम हम काम के वश हो कर नहीं कर रहे हम को केवल अपने पुत्रों की चिंता है क्योंकि अब अग्नि बहुत बढ़ गई है जो मनुष्य पहिले हुई हुई संतान को छोड़ कर होने वाली का यत्न करता है वह बड़ा मूर्ख है, तेरी इच्छा में जो आवे सो तू कर ॥

जब जरिता के पुत्रों के स्थान से आग हट गई तो वह उन के पास आगई और उन को बचे हुये देख कर एक २ से प्यार करने लगी इसी अवसर में मंदपाल भी वहां आ पहुंचा। उस के पुत्रों न उस को देख कर दंडवत नहीं की ॥

मंदपाल जरिता और प्रत्येक पुत्र को प्यार करने लगा परंतु उन में से उस के साथ कोई भी न बोला ॥

मंदपाल ने पुनः कहा हे जरिता तू क्रम से इन का छोटा

वश होना बतला इस पर भी जब जरिता न बोली तो मंदपाल ने कहा तू बोलती क्यों नहीं मैं भी जब से तुझ से पृथक हुआ हूं सुखी नहीं रहा ॥

जरिता ने कहा आप को इन की छुटाई बड़ाई से क्या काम आप उस सुन्दर और तरुण लपिता के पास जाइये जहां इन को छोड़ कर आप पहिले चले गये थे ॥

मंदपाल ने कहा स्त्रियें के मलोक के नाश करने वाली दो ही बातें हैं एक व्यभिचार से पति से वैर करना और दूसरा भांति के होने से पति का अनादर करना, अरुन्धती ने वशिष्ट जी पर शंका करके सप्त ऋषियों में बैठे हुए उन का निरादर किया था मैं यहां केवल पुत्रों को देखने के लिए आया हूं, लपिता ने भी चलते समय मुझे ऐसा ही कहा था, पुरुष को कभी स्त्री पर विश्वास नहीं करना चाहिये पुत्रवती स्त्री भी पति से इस प्रकार वर्ताव करती है जैसा जरिता ने ऋषि के साथ किया ॥

मंदपाल की यह बात सुन कर उस के सब पुत्र पिता की सेवा करने लग गये और वह भी उन से प्यार करने लगा ॥

तब मंदपाल ने कहा कि हमने तुम्हारे प्राणों की रक्षा के लिए पहिले ही से अग्नि देव से वर मांग लिया था और तुम्हारे पराक्रम और तुम्हारी माता की धर्मज्ञता पर भी हमें भरोसा था इस कारण उस समय हम यहां नहीं आये थे तुम्हें इस बात का संताप करना उचित नहीं ॥

तब मंदपाल अपनी स्त्री और पुत्रों को अपने साथ लेकर वहां से किसी अन्य स्थान पर चला गया और अग्निदेव सब जीवों की वसा और मेदा को पीकर वन को भस्म करके तृप्त हुये और अर्जुन को दर्शन दिया ॥

इस समय इन्द्र मरुद्गणों को साथ ले कर अर्जुन और श्रीकृष्ण जी के पास आया और कहा कि तुम दोनों ने ऐसे दुष्कर काम को किया है जिस को देवता भी नहीं कर सकते थे मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं जो इच्छा हो मुझ से मांग लो ॥

अर्जुन ने कहा मुझे सम्पूर्ण अस्त्र दीजिए ॥

इन्द्र ने कहा मैं आने वाले समय को जानता हूं तुम तपस्या और युद्ध में महादेव जी को प्रसन्न करोगे तब मैं तुम को आग्नेय और वायव्य आदि सब अस्त्र दूंगा ॥

कृष्ण ने कहा मैं चाहता हूं मेरी अर्जुन की सदैव ऐसी ही प्रीति बनी रहे ॥

इन्द्र ने कहा ऐसा ही होगा और वह स्वर्ग लोक को चला गया और श्रीकृष्ण चंद्र जी और अर्जुन वहां से नदी के तट पर चले गये ॥

आदि पर्व समाप्तम् ॥

सूचना

—— :o: ——

जो सज्जन इस आदिपर्व को मोल लें वह इस उत्तम, पवित्र, धर्म्म के सागर, वीरता के कोष, नीति के भंडार, भारत के इतिहास के बाकी सत्रह पर्वों को भी जो एक से एक उत्तम हैं और जिन में पृथक २ शिक्षायें हर जाति (ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य, शूद्र) हर एक अवस्था (बाल, तरुण और वृद्ध) स्त्री और पुरुष, राजा, व्योपारी, राज्य कर्मचारी, धनाढ्य तथा कंगाल के लिये हैं लेकर भी उन से लाभ उठावें मैंने इतनी बड़ी पुस्तक का जैसी कि यह है और जिसके ८ हज़ार से अधिक पृष्ठ होने की सम्भावना है इतना थोड़ा दाम अर्थात केवल ८) इस लिए रखा है कि सर्व साधारण इस से लाभ उठावें, जो सज्जन अग्रिम मूल्य भेज देंगे उन से केवल ६) ही लिये जावेंगे उन के ६) पहुंचने पर यह आदि पर्व उन की सेवा में भेजा जावेगा और बाकी पर्व ६ मास के भीतर भीतर त्यार होने पर साथ साथ भेजे जावेंगे ॥

तू मेरी दुकान पर अन्य हर प्रकार के पुस्तक भी बिकाऊ हैं दूसरी दुकानों से सस्ते दिये जाते हैं ॥

पत्र आने पर सूची पत्र भेजा जाता है ॥

राम दित्ता मल एंड सन्ज़

पबलिशरस तथा पुस्तकों वाले

लोहारी दर्वाज़ा लाहौर

सभा पर्व

पहिला अध्याय

पांडवों के लिये सभा बनाने के वास्ते मयदानव का स्थान नियत करना ॥

मयदानव ने श्री कृष्ण और अर्जुन से हाथ बांध कर कहा महाराज आपने मेरी प्राण रक्षा की है आप मुझे अपना कोई काम बतलाईये मैं उसको करूं ॥

अर्जुन ने कहा हम तुम पर प्रसन्न हैं तुम अपने घर जाकर आनन्द पूर्वक रहो ॥

मयदानव ने कहा मैं दैत्यों का विश्वकर्मा हूं और शिल्प विद्या अच्छी तरह जानता हूं मैं चाहता हूं कि मुझ से आप की भी कोई सेवा हो ॥

अर्जुन ने कहा मेरा कोई काम नहीं जो तुम से कराऊं,

श्री कृष्ण जी के पास जाओ जो वह कहें वह करो वह भी हमारा ही काम होगा ॥

मयदानव श्री कृष्ण जी के पास गया और कहा मैं आप दोनों का कुच्छ काम करना चाहता हूं अर्जुन ने आप के पास मुझे भेजा है ॥

श्री कृश्न जी ने कुच्छ महूर्त विचार कर के कहा हे दानव यदि तू काम करना चाहता है तो ऐसा सभा मंडप बना जिस के समान संसार भर में कोई न हो और उस को देखने वाले तेरी बड़ी प्रशंसा करें ॥

मयदानव ने श्री कृश्न जी की आज्ञा को मान कर विमान प्रतिमा नाम सभा बनाने का विचार किया ॥

अर्जुन और श्री कृश्न ने मय दानव को युधिष्ठिर के पास ले जाकर सारा वृत्तांत सुनाया युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर मय दानव की पूजा की और उसको सभा बनाने की आज्ञा दी ॥

मयदानव ने वृष पर्वा दानव का चरित्र पाडवों से कहा और कुछ दिन पीछे स्वस्थ हो कर श्री कृश्न और अर्जुन की आज्ञा के अनुकूल शुभ दिन मंगल पूर्वक सैंकड़ों ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराया और धन आदि से उन को तृप्त कर के एक बड़ी महा रमणीक पृथ्वी जहां सब ऋतुओं में सुख रहे, चुन कर दश २ सहस्र चारों ओर से नाप कर सभा बनाने के लिए स्थान नियत किया ॥

दूसरा अध्याय ॥

—:o:—

श्रीकृष्ण का पांडवों से विदा होकर द्वारका को जाना ॥

श्रीकृष्ण जी को पिता से पृथक हुये बहुत काल हो गया था इस कारण उन्हों ने द्वारका जाने की इच्छा की वह कुंती के पास गये और उस के पाओं पर अपना सिर रख कर द्वारका जाने की आज्ञा मांगी, कुंती ने उन के सिर को उठा कर मस्तक को प्रीति पूर्वक सूंघा और अपनी छाती से लगा लिया पुनः वह सुभद्रा के पास गये और प्रेम भरी आंखों से उस से बहुत सी बातें कीं और उस का संदेसा लिया, फिर द्रौपदी के पास गये और उसे प्रसन्न करके आये, इस के पीछे पांडवों के पुरोहित धौम्य ऋषि के पास गये और उन के चरणों में वंदना करके पांडवों के पास चले गये ॥

यात्रा काल आने पर उन्हों ने स्नान किया और पवित्र होकर देवताओं और ब्राह्मणों से स्वास्तिवाचन सुना और दही, फल और अक्षतों का भोग लगा कर नगर से बाहर निकले ॥

शैव्य सुग्रीव नामी घोड़ों से स्वर्ण का बड़ा सुन्दर रथ जुता हुआ त्यार था, शंख, चक्र, गदा आदि अस्त्र उस में रक्खे हुये थे दारूकि सारथी को रथ से उतार कर युधिष्ठर ने बाग डोर अपने हाथ में ली, अर्जुन स्वर्ण की डंडी का चमर ले कर रथ की दाहिनी ओर चढ़ कर चमर हिलाने लगा,

भीमसेन, नकुल, सहदेव और पुरवासी रथ के पीछे हो लिए रथ हांका गया, दो कोश की दूरी पर जब पहुंचे तो श्री कृष्ण जी ने युधिष्ठर के चरणों को छूकर उन को लौटने के लिए कहा उन्हों ने उन के सिर को सूंघ कर छाती से लगा लिया और जाने की आज्ञा दी, इस के उपरांत श्री कृष्ण चंद्र जी अर्जुन आदि छोटे भाईयों से यथा योग्य मिले और उन के पास पुनः आने का नियम कर द्वारका की ओर चल दिये, जब तक वह दीखते रहे सब पांडव और अन्य लोग जो साथ गये हुए थे वहां ही खड़े रहे और उन की ओर देखते रहे, उन के अदृष्ट होने पर वह अपने घरों को लौटे और वहां आ कर उन सब साथीओं को विदा करके राज भवनों में गये ॥

उधर श्री कृष्ण जी दारूकि सारथी और सात्यकी सहित द्वारका में पहुंच कर यादवों से पूजित हुए और माता पिता आदि सम्बन्धियों से दंडवत की और पुत्र पौत्रों को गोद में ले प्यार कर रुकमणी के मंदिर में चले गये ॥

तीसरा अध्याय

—:०:—

पांडवों के लिये मयदानव का सभा बनाना ॥

मयदानव ने अर्जुन से कहा कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर मैनाक पर्वत में एक बिंदुसर है वहां मैंने वृष पर्वा दैत्यराज की सभा बनाई थी उस स्थान के निकट उस सभा

बनाने के द्रव्य (अनेक प्रकार की मणि और रत्नादिक) रखे हैं मैं वहां से वह ला कर आप की सभा बनाऊंगा, उसी स्थान पर एक बड़ा भारी गदा और देव दत्त नाम बड़ा शांख भी जिस का शब्द बड़ी दूर से सुना जाता है पड़ा है मैं उन को भी साथ ही लेता आंऊगा क्योंकि वह शंख आप के और गदा भीमसेन के योग्य है ॥

मय दानव उस स्थान पर पहुंचा और सारी सामग्री जो दैत्यों की रक्षा में वहां रखी हुई थी शंख और गदा सहित ली और इन्द्र परस्थ को लौट आया, यह बिंदुसर वही स्थान है जहां भागीरथ जी ने गंगा लाने के लिए तपस्या की थी और प्रजा पति ने अपना यज्ञ किया था ॥

शंख अर्जुन को और गदा भीमसेन को देकर वह दानव सभा बनाने लगा पूरे १४ मास में वह सभा सम्पूर्ण रीति से त्यार होगई । वह सभा ऐसी अद्भुत बनी थी कि श्रीकृष्ण की सुधर्मा नाम सभा और ब्रह्मा की सभा से भी बढ़ गई। वह सभा ऐसी शोभायमान थी कि उस में जाते ही मनुष्य की थकावट हट जाती थी ऊंची इतनी थी कि आकाश से लगी हुई जान पड़ती थी, उस के बीच में एक सरोवर बनाया गया था उस की सीढ़ियां स्फटिक से बनी हुई थीं उस में जल निर्मल रह कर मोती के सदृश झलकता था उस के चारों ओर मणियों का चौतरा बना दिया गया था उस सरोवर में जो कमल थे उन के पत्ते वडूर्य मणि के और नालें पदमराग आदि मणियों की बनी हुई थीं, नाना प्रकार की बनावटी मछलियां और

कछुये चमोली मछली के बना कर उस में डाले गये, भांत २ के बहुत सुन्दर २ पक्षी बना कर जहां तहां बैठा दिए गये और वहां वायू सदैव ही शीतल चलती थी, बहुत से मनुष्य उस सभा को देखने के लिए आये और भ्रांत से जल को थल और थल को जल जान कर गिर २ पड़े, उस के इर्द गिर्द बड़े २ सुन्दर और छाया वाले वृक्ष और बड़ी सुगंधि देने वाले पौदे लगवा दिये गये, हंस और चकवा चकवी आदि जल पर रहने वाले पक्षी वहां बसा दिए गये वायु वहां आते हुये इर्द गिर्द के सुगंधि देने वाले फूलों से सुगंधि से भर कर आती, इस सभा के त्यार होने पर मयदानव ने इस को राजा युधिष्ठर के निवेदन कर दिया ॥

चौथा अध्याय

—:०:—

सभा में प्रवेश करने के समय युधिष्ठर का ब्रह्म भोज करना, सहस्रों ऋषियों और सब राजाओं का आना, नटों, अप्सराओं, गंधर्वों, गायकों आदि का नृत्य और गायन होना और नारद जी का पांडवों से नाति संम्बंधी ॥ धर्म्म कहना ॥

सभा के त्यार होने पर उस में प्रवेश करने के लिये एक शुभ दिन नियत किया गया, दूर २ देशों से सहस्रों ब्राह्मण,

ऋषि और राजे बुलाये गये, नट, अप्सरा, गायक और गंधर्व अपनी २ विद्या दिखलाने के लिये आये यह उत्सव इतना भारी हो गया कि इन्द्रप्रस्थ में हर ओर मला सा दीख पड़ता था ॥

नाना प्रकार के भोजन, घी और शहद मिली हुई खीर, पूरी मूल फलों के अनेक शाक, मृग, वाराह और बकरी आदि के अनेक प्रकार के भांत २ के मांस और खाने पीने और चूसने आदि के अनेक पदार्थ वहां त्यार किये गये जो भोजन जिस के मन में भाता वह खाता, अप्सरायें नाच दिखातीं, गंधर्व एक ओर अपनी सुर तानते, नट अपनी कृत्य दिखलाते, गायक अपना गाना सुनाते, बजंत्री नाना प्रकार के बाजे बजाते, जहां तहां आनंद हो रहा था, ब्राह्मणों को भोजन के अतिरिक्त नवीन वस्त्र और एक गाय प्रति ब्राह्मण के लेखे से दी गई नियत महुर्त पर बड़ी धूम धाम के साथ पांचों पांडवों ने अपनी माता और सकल कुटंब सहित उस सभा में प्रवेश किया और वहां अपने २ मन भाते भवन लेकर आनन्द पूर्वक रहने लगे ॥

जब राजा युधिष्ठर राजाओं और गन्धर्वों आदि सहित सभा में बैठ गया तो अकस्मात् नारद जी भी घूमते हुए वहां आ पहुंचे और युधिष्ठर को प्रीति के साथ जय का आशीर्वाद दिया, उन को देखते ही सब पांडव और सभा में बैठे अन्य लोग खड़े हो गये और सविनय दंडवत करके उन को एक अति उत्तम आसन पर बैठाया और अर्घ पाद्य, मधूपर्क और नाना प्रकार के रत्नों से उन का पूजन किया ॥

नारद जी उन के पूजन से बहुत प्रसन्न हुए और कहा मैं राजाओं के धर्म तुम को कहता हुं यदि तुम इन में से किसी धर्म्म को नहीं जानते उस को जान लो और जिन का पालन नहीं करते उन का करो तुम्हारा राज्य इस पृथ्वी पर वृद्धि पाकर अटल रहेगा ॥

१—राजा का मन प्रसन्न होकर धर्म, अर्थ और काम में लगा रहे इधर उधर न डोले ॥

२—अर्थ से धर्म, धर्म से अर्थ, काम और प्रीति से अर्थ और धर्म को बाधा न हो ॥

३—धर्म, अर्थ और काम का समय बांट रखे अर्थात प्रातःकाल धर्म के लिये, सारा दिन अर्थ के लिये और रात काम (स्त्री से कलोल आदि) के लिये रखे ॥

४—यह छे बातें ध्यान में रखे १ दूतों और मंत्रियों को उपदेश देना, २ शत्रु को दबाने में बल दिखाना, ३ तर्क में प्रसन्न होना, ४ स्मृति, ५ भूत को शास्त्र से और भविष्य को बुद्धि बल द्वारा जानना ,और नीति शास्त्र का ज्ञान रखना ॥

५—सात उपायों की साधना, १ साम, २ दान, ३ दंड, ४ भेद, ५ मंत्र, ६ औषधि और ७ अपने और शत्रु के बल अबल का विचार ॥

६—१४ दोषों की परीक्षा, १ नास्तिकता, २ असावधानी, ३ दीर्घ सूत्रता, ४ इन्द्रियों के वश में रहना, ५ किसी बात पर अकेले विचारना, ६ ऐसे मनुष्यों के साथ विचार करना जो उलटा अर्थ देखने वाले हैं, ७ क्रोध, ८ ज्ञानियों का दर्शन, ९

निश्चित किए हुये काम को आरम्भ करना, १० सलाह को सब पर प्रगट करना, ११ मंगल कामों को न करना, १२ सब शत्रुओं पर एक ही वार चढ़ाई करना , १३ झूठ बोलना और १४ आलस्य करना ॥

७—यह चौदह बातें देखनी, १ अश्व, २ हाथी, ३ दुर्ग, ४ योधा, ५ देश, ६ कोष, ७ अधिकारी ८ शत्रु ९ शस्त्र, १० व्यवहार, ११ दूत १२ राजभवन, १३ आयव्यय, १४ रथ आदि की गणना ॥

८—राज्य का प्रबंध अपने और शत्रुओं के बल अवल को विचार कर करना ॥

९—आठ कर्म, १ खेती का प्रबंध, २ व्यापार का प्रबंध, ३ सड़कों का बनवाना और उन का ठीक रखना, ४ दुर्ग बनवाने और उन को ठीक रखना, ५ पुल बनवाने और उन को ठीक रखना, ६ बहुत खाने के कारण हाथीयों को ग्राम २ में बांधना, ७ सोना चांदी आदि धातूओं की खानों पर कर लगाना और ८ उजड़े हुये और शुन्य देशों का बसाना ॥

१०—राजा देखे कि उस की यह १३ प्रकृतियां नष्ट तो नहीं हो गई अर्थात धन का लोभ इत्यादि देकर किसी शत्रु ने तो इन को अपने वश में नहीं कर लिया, १ दुर्गरक्षक, २ सेना पति, ३ धर्माध्यक्ष, ४ चमूपति, ५ पुरोहित, ६ वैद्य, ७ ज्योतिषी, ८ अमात्य, ९ सुहृद, १० कोष, ११ राष्ट्र, १२ दुर्ग और १३ सेना ।

१३—कोई दूत, विश्वासी मनुष्य और मंत्री राजा की सलाह को प्रकाश करने वाला न होना चाहिये ॥

१४—राजा मित्र शत्रु उदासीन मनुष्यों और काल के अनुकूल संधि और विग्रह को जाने ॥

१४—जो मनुष्य न मित्र हैं और न शत्रु बनो राजा से भी और उस के शत्रु से भी मिले हुये हैं राजा उन के कर्तवों पर सदैव दृष्टी रखे ॥

१५—मंत्री राज्य का मूल होता है इस कारण शुद्ध अंतःकरण, समर्थ, बुद्धिमान, वृद्ध, कुलीन और मति रखने वाले मनुष्यों को अपना मंत्री बनावे, वह मंत्री शास्त्र में पंडित हो, सदैव रक्षा करने वाला हो और किसी से भेद न कहने वाला हो वरन सब भेदों को लुप्त रखने वाला हो, चतुर मेधावी और जितेन्द्री हो ॥

१६—मिल कर सलाह करने को उत्तम जाने केवल अकेली अपनी सलाह को तुच्छ माने ॥

१७—जिस काम में परिश्रम थोड़ा और फल अधिक हो उस को शीघ्र करे ॥

१८—जानने वालों को राज्य कर्मचारी बनावे ।

१९—राजा एक ही मनुष्य को कभी कोई अधिकार और कभी कोई अधिकार न दे ॥

२०—खेती आदि वृद्ध मनुष्यों द्वारा करावे और जहां तक हो सके पराये पुरुषों को अपना काम कृत न बनावे ॥

२१—पुत्रों के लिये ऐसा आचार्य नियत करे जो उन को

सब शस्त्रों में पंडित, धर्म उपदेश करने वाला और योधा बनाने वाला हो ॥

२२—सहस्र मूर्ख एक ओर हों और एक पंडित एक ओर हो राजा उन सब को छोड़ कर उस पंडित को ले ॥

२३—क़िलों को धन, धान्य, आयुध, जल यंत्र, शिल्प विद्या के जानने वालों और धनुष्य धारी योधाओं से सदैव पूरित रखे ॥

२४—राजा दूतों द्वारा शत्रु के इन १८ अंगों की सदैव खबर रखे ॥

१ मंत्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ चमूपति, ५ द्वारपाल ६ अंतर्देशिक, ७ कारागृह अधिकारी, ८ कोशाध्यक्ष, ९ दीवान, १० प्रदेष्टृ ११ नगरा ध्यक्ष, १२ कार्य निर्माण कर्त्ता, १३ धर्माध्यक्ष, १४ सभा पालक, १५ दंडपाल, १६ दुर्गरक्षक १७ राष्ट्रांत पालक और १८ अटवीपालक ॥

२५—राजा मंत्री युवराज और पुरोहित को छोड़ कर २४ अंक में कहे बाकी अपने अंगों की भी पूरी खबर रख ॥

२६—राज पुरोहित शिक्षा युक्त कुलीन, सब शास्त्रों का ज्ञाता, दूसरे के गुणों में दोष लगाने वाला, शास्त्र चर्चा में निपुण, श्रौत, स्मार्त्त, अग्नि युक्त विधियों, जाननेवाला, बुद्धिमान, सीधा समय परहुत और होष्यमाण वस्तु को बताने वाला हो ॥

२७—राज का ज्योतिषी ज्योतिष के सब अंगों में निपुण

ग्रहों की वाधा का हाल कहने वाला और नक्षत्रों का शुभ अशुभ फल वतलाने वाला हो ॥

२८—उत्तम कामों पर उत्तम २ मनुष्य, मध्यम कामों पर मध्यम २ आदमी और नीच कामों पर नीच २ जन नियत करे ॥

३०—प्रजा को वड़ा भारी दंड दे कर कभी दुःखी न करे ॥

३१—सेनापति, शूर वीर, बुद्धिमान, धैर्यवान, युवक पवित्र, कुलीन, प्रीतिमान और दक्ष हो ॥

३२—सेना के मुख्य २ योधा सब प्रकार के युद्धों को जानने वाले निष्कपट, जय करने वाले और सत्य कृत्य हों ॥

३३—सेना आदि का मासिक समय पर नियत तिथि पर दिया जावे ऐसा न करने से वह असंतुष्ट हो कर अनर्थ करेंगे और समय पर काम नहीं देंगे ॥

३४—शास्त्र की आज्ञा को उल्लंघन करके अपनी इच्छा के अनुसार योधाओं को कभी कोई आज्ञा न देवे ॥

३५—अपने पुरुषार्थ से वड़ा काम करने वाले का सन्मान करे और धन आदि दे कर उस का उत्साह वढ़ावे ॥

३६—ज्ञानियों और विद्वानों को पारितोषक दे ताकि प्रजा के अन्य लोग भी इन गुणों को ग्रहण करें ॥

३७—राज्य कार्य में जो मनुष्य दुख पावें अथवा अपने प्राण दे दें उन के कुटुम्बों का पालन करे ॥

३८—जो शत्रु भय से हार मान कर धन हीन होने के कारण या युद्ध में हार मान कर शरण में आजावे उस का पालन पुत्रवत करे ॥

३९—सकल प्रजा को इस प्रकार एक सम देखे जैसे माता पिता अपनी संतान को देखते हैं ॥

४०—शत्रु जब स्त्री गमन, जूआ, शिकार, मद्य, नाच, गीत, वृथा फिरना, वाद्य, निंदा और दिन में सोना आदि व्यसनों में हो तो अपने तीन बल (मंत्री, सेना और कोष, जांच कर शीघ्र उस को जीतने को जावे ॥

४१—शत्रु के योग्य २ सेना पतियों को रत्न आदि पदार्थ देकर अपनी ओर फोड़ले ॥

४२—ज्योतिषि से अपने हराने वाली पांच दैवी (१ अग्नि, २ जल, ३ व्याधि ४ दुर्भिक्ष, ५ मरण, और पांच मानुषी (१ अयुक्त, २ चोर, ३ शत्रु, ४ राजवल्लभ और ५ राजा के लाभ से प्रजा को भय होना) जान कर काल के अनुसार मंगल कृत्य कराकर यात्रा करे ॥

४३—जितेन्द्रि होने से राजा अजितेन्द्री शत्रु को शीघ्र जीत लेता है ॥

४४—जब शत्रु पर चढ़ाई करे तो १ साम, २ दाम, ३ ३ दंड और ४ भेद का अच्छी तरह वर्ताव करे ॥

४५—अपनी जड़ को पक्का करके दूसरे पर चढ़ाई करे बड़े पराक्रम से युद्ध करे और जय पाने पर सब की यथा योग्य रक्षा करे ॥

४६—सेना के आठ अंग (१ हाथी, २ अश्व, ३ योधा ४ पत्ती ५ कर्म कारक, ६ चार, ७ रथ और ८ दैशिक मुख्य और चार प्रकार के बल (१ मोल २ मैत्र ३ भृत्य और चार आटविक) रखे ॥

४७—दुर्भिक्ष, खेती बोने और खेती काटने के समय को छोड़ कर युद्ध करके शत्रु को जीते

४८—इस बात का ध्यान रखे कि उस के अधिकारी शत्रु के देश में रह कर भी अपने देश के समान परस्पर रक्षा और उस के अर्थ की साधना करते हैं ॥

४९—कोष, अन्नस्थान, वाहन, हथ्यार और लाभ स्थानों पर ऐसे पुरूप नियत करे जो उस से हित रखते हों और सदैव उस का कल्याण चाहते हों ॥

५०—अपने निज के खर्च में तीसरा भाग लगावे और उसी में स्त्री पुत्र इत्यादि का खर्च रखे और यह भी ध्यान रखे कि चाकर लोग उस खर्च में से आप न खाजावें ॥

५१—दरीद्री, स्त्राजाती, गद्दू, वृद्ध, व्योपारी और शिल्प विद्या जानने वालों की धन धान्य से सहायता करे ॥

५२—आय व्यय के लिये गणक और लेखिक रखे और समय २ पर उन से हिसाब समझता रहे ॥

५३—चतुर और हितकारी कर्म चारियों को निरापराध अपने अधिकार से न हटावे ॥

५४—लोभी और वैर भाव रखने वाले मनुष्यों को कभी किसी काम पर नियुक्त न करे ॥

५५—चोरों, लोभियों और अन्य दुष्टों से अपनी प्रजा को पीड़ा न होने दे ॥

५६—दुष्ट खेती करने वाले अपने देश में न रहने दे ॥

५७—कुएं, बावड़ियां, तालाब और जल के अन्य स्थान जिन से प्रजा को सुगमता से जल मिल जावे बनवावे ॥

५८—किसानों को बीज और अजीविका आदि के लिए धन देवे और यदि कोई दुष्ट उन की खेती को नष्ट करे तो उस को पूरा दंड दे ॥

५९—अपनी प्रजा की १ खेती, २ उस के वाणिज, ३ पशु पालन, ४ लेन देन में व्याज का व्यवहार, इन का ध्यान रखे और देखे कि यह सब काम अच्छे मनुष्यों के द्वारा होते हैं। ऐसा करने से देश की वृद्धी होती है ॥

६०—हर एक स्थान पर पांच २ शूरवीर और बुद्धिमान मनुष्य क्षेम रखने के लिए नियत करे ॥

६१—नगर की रक्षा के लिए गावों को नगर के समान और बस्तियों को गावों के समान कर दे और वहां के रहने वालों से कर ले ॥

६२—सेना साथ दे कर शूर वीरों द्वारा देश का दौरा करावे और चोर आदिकों को दंड दिलावे ॥

६३—स्त्रियों से मीठा बोले, उन की बात पर कभी विश्वास न करे और उन से अपनी गुप्त बातें कभी भी न कहे ॥

६४—देश में विघ्न पड़ा हुआ सुन कर उस का उपाय किए बिना कभी न सोये ॥

६५—रात के समय दो पहर सो कर पुनः जाग कर अपने हित की बात पर विचार करे ॥

६६—समय पर सब मनुष्यों की फरयादों को सुन और मंत्री की समति से उन का उपाय करे ॥

६७—चलते और बैठते समय अपनी रक्षा के लिए लाल वस्त्र पहने हुये और हाथ में नंगी तलवार लिए हुये मनुष्य अपनी चारों ओर रखे ॥

६८—जो मनुष्य दंड देने के योग्य हैं उन को अवश्य दंड दे ॥

६९—प्यारे कुप्यारे और पूज्यों के साथ यथा योग्य बर्ताव रखे ॥

७०—अपने शरीर के दुःख को औषधियों से और मन की बाधा को वृद्धों की सेवा से दूर करे ॥

७१—वैद्य वह रखे जो प्रीति करने वाले, हितकारी और आठों प्रकार की चिकित्साओं में प्रवीण हों ॥

७२—अपने सन्मुख आये हुए, अर्थी और याचकों को प्रीति पूर्वक देखे ॥

७३—लोभ से आश्रित मनुष्यों की अजीविका को बंद न करे ॥

७४—देखता रहे कि उस के देश और पुरवासी किसी उस के शत्रु के आधीन होकर उस से विरोध न रखें ॥

७५—देखता रहे कि उस का कोई शत्रु जिस को उस की सेना ने निर्बल कर दिया हो पुनः बहुत सी सेना एकट्ठी

करके और अन्य उपायों से प्रबल न हो जावे ॥

७६—अपने से प्रधान २ राजाओं से प्रीति रखे ॥

७७—देखे कि वह प्रधान राजा उस के लिए समय आने पर प्राण देने के लिए तत्पर हैं या नहीं ॥

७८—गुणवान् और विद्यावान् ब्राह्मणों की सदैव पूजा करे ऐसा करने से उस का कल्याण होता है ॥

७९—अपने पुरषाओं की रीति पर अर्थ, काम और मोक्ष का प्रयत्न करे ॥

८०—एकाग्र चित्त हो कर वाजपेय और पुंडरीक आदि यज्ञों के करने में बुद्धि लगावे ॥

८१—अपने वृद्ध और बड़े स्वजातीय देवता और ब्राह्मणों को देखते ही सदैव नमस्कार करे ॥

८२—हीन जाति पुरुषों के शोक और उत्तम जाती पुरुषों के क्रोध को दूर करे ॥

८३—उस के पुरोहित आदि मंगल हस्तजन सदैव स्वस्त्ययन पढ़ते रहें ॥

८४—सदैव अपनी बुद्धि को ऐसे कामों में लगावे जिन से यश, काम, धर्म और अर्थ की प्राप्ति हो, ऐसी बुद्धि वाले राजा के देश में पीड़ा कभी नहीं होती, वह पृथ्वी को जीत कर बड़ी वृद्धि पाता है ॥

८५—देखता रहे कि उस के अधिकारी लोभ वश हो कर प्रजा को उन का माल चोरी चले जाने पर मारते तो नहीं और चोर से धन लेकर उस छोड़ तो नहीं देते ।

८६—चौदह दोषों से सदैव बचा रहै, १ नास्तिकता, २ झूठ बोलना, ३ क्रोध, ४ प्रमाद, ५ दीर्घ सूत्रता, ६ स्वजातियों से न मिलना, ७ आलस्य,८ क्षिप्तचित्तता ,९ अपने अर्थ का अकेले विचार करना,१०ऐसे मनुष्यों से सलाह करना जो अनर्थज्ञ हैं ११ सलाह को गुप्त न रखना, १२ अमंगल बातें करना, १३ जिस काम को करना निश्चित कर लिया हो उस को न करना और १४ विषय में लिप्त रहना, इन दोषों के होने से बड़े बड़े राजा भी नाश को प्राप्त होते हैं।

८७—देखे कि उस का धन, वेद, स्त्री और शास्त्र सफल है अग्नि होत्र से वेद, दान से धन, रति और पुत्रों से स्त्री और शील स्वभाव से शास्त्र सफल होता है॥

८८—दूर देशों से आये हुए व्यापारियों से कर लेने के लिये हर स्थान में कर्मचारी नियत करे और देखे कि ऐसे कर्मचारी उस कर में कोई कपट तो नहीं करते॥

८९—धर्म और अर्थ के दिखाने वाले वृद्ध पुरुषों की बातें सदैव सुनता रहे॥

९०—देखे कि उस की प्रजा के लोग खेती में उत्पन्न हुए अन्न, गौओं के दूध और घृत में से भाग निकाल कर ब्राह्मणों को धर्मार्थ देते हैं॥

९१—शिल्प विद्या जानने वालों को चतुर मासा में औज़ार बनवाने के लिये धन दे।

९२—जो पुरुष राजा का उपकार करे राजा को उचित

है कि उस उपकार को मान कर सत्पुरुषों में उस का मान करे ॥

९३—घोड़े, हाथी और रथों के सेवन, लक्षण और व्यवहार को आचार्यों से विधि पूर्वक सीखे ॥

९४—राजा के घर में धनुर्वेद सूत्र, यंत्र सूत्र और नगर सूत्र का अच्छी तरह से अभ्यास हो ॥

९५—वह उन सब अस्त्र, ब्रह्म दंड और विषय योगों को जिन से शत्रुओं का नाश किया जाता है भली प्रकार से जाने ॥

९६—देश की अग्नि, सर्प, रोग और राक्षसों से रक्षा करे ॥

९७— अंधे, लूले, लंगडे, अंगहीन और अबाधव मनुष्यों का पिता समान पालन करे ॥

९८—१ निद्रा, २ आलस्य, ३ भय, ४ क्रोध, ५ तंद्रा और ६ दीर्घ सूत्रता इन छे दोषों को त्याग दे ॥

९९—अन्य देशों और अन्य राजाओं की भाषाओं को भले प्रकार समझने की योग्यता अपने में और अपने विश्वासीओं में करे ॥

१००—अपनी प्रजा के विश्वासी और सुपात्र जनों को अपने पास से धन आदि दे कर शिल्प विद्या सीखने के लिए अन्य देशों में भेजे ॥

युधिष्ठर ने यह सारे धर्म सुन कर नारद जी से बड़ी नम्रता पूर्वक कहा महाराज मैं आज से सब कर्म इन्हीं के अनुकूल किया करूंगा और उस ने उसी दिन से वैसा करना प्रारम्भ कर दिया ॥

पाचवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठिर का नारद जी से ऐसी और सभा पूछना और नारद जीका इन्द्र, यमराज, वरुण और कुबेर की सभाओंका हाल कहना ॥

युधिष्ठर ने तत्काल ही कर बांध कर नारद जी से कहा महाराज आप विश्व के सकल लोकों में घूमने वाले हैं यह तो कहिये कि आपने ऐसी शोभायमान सभा किसी और लोक में भी देखी है ॥

नारद जी ने बड़े मीठे शब्दों में कहा हे युधिष्ठर इस मनुष्य लोक में ऐसी शोभायमान और मणि जटत सभा हमने न ही कहीं देखी है और न ही सुनी है हां हम इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर और ब्रह्मा जी की सभाओं का हाल जो हमने अपने नेत्रों से देखी है आप से कहते हैं आप भाईयों सहित श्रवण कीजिए ॥

इन्द्र की सभा दिव्य, प्रकाशमान और कर्मों से जीती हुई है उस को इन्द्र ने स्वयं ही बनाया है वह सौ योजन लम्बी डेढ़ सौ योजन चौड़ी और पांच योजन ऊंची है। इच्छा के अनुसार जहां तहां ले जाई जा सकती है, यहां बुढ़ापा, शोक और ग्लानी नहीं व्यापते, वह स्थान निर्भय, शिव, कल्याण कारी और रमणीक है और वहां दिव्य वृक्ष लगे हुये हैं, इस में महेन्द्र इन्द्र अपनी शची नाम महाराणी शोभा और

लक्ष्मी के साथ अति सुन्दर माणि जटित आसन पर विराज-मान हैं। इन्द्र का शरीर लक्ष्मी, कीर्ति और प्रभा युक्त अनिर्देश्य है, वह वहां किरीट मुकुट, लाल बाजूबंद, निर्मल वस्त्र और चित्र माला धारण करके रहते हैं ॥

मरुत, सब गृहमेधी, सिद्ध, देवऋषि, साध्यगण, देवगण और मरुद् गण प्रकाशमान अति सुन्दर शरीर धारण किए और सुन्दर २ वस्त्र पहिने हुये वहां इन्द्र की उपासना करते हैं ॥

सारे देव ऋषि जो निष्पाप और अग्नि के तुल्य प्रकाश मान हैं और सोम यज्ञ के करने वाले पराशर पर्वत, सावर्णि, गालव शंख लिखत, गौरशिर, दुर्वासा, क्रोधन, श्येन, दीर्घतमा, पवित्र पाणि, सावर्णि, याज्ञवल्क्य, भालुक, उद्दालक, श्वेत केतू, तांड्य, भांडयनि हविष्मान, गरिष्ट, हरिश्चन्द्र राजा, हृद्य, उदर शांडिल्य, पराशर्य, कृपिवल, वातस्कंध, विशाख, विधाता, काल, करालदंत, त्वष्टा, विश्व कर्मा, तम्बरू आदि मुनि जिन का जन्म योनि से हुआ है इन्द्र की उपासना में उपस्थित रहते हैं ॥

वायु भक्षी, सहदेव, सुनीथ, वाल्मीक, शमीक, सत्यवाक, प्रचेता, मेधातिथि, वामदेव, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरुत, मरीच, स्थाणु, गौतम, काक्षीवान, तार्क्ष्य, वैश्वानर, कालक, वृत्तीण्य आश्रय, विष्वक्सेन, दिव्यजल, दिव्य औषधि, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, अर्थ, धर्म, काम, वज्र, मेघ, वायु, पूर्वदिशशताह, सत्ताईसों अग्नि, सामोग्नि, इन्द्राग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग,

विश्वदेवा, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, विश्वावसू, मित्रसेन, सुमनु और तरुण आदि वह ऋषि जिनका जन्म योनि से नहीं हुआ उस सभा मे इन्द्रदेव की उपासना करते हैं ॥

उस सभा में सदैव अप्सराओं का नाच होता रहता है गंधर्व, गान करते रहते हैं, नट नाना प्रकार के हंसी, स्तुति और मंगल कृत करते रहते हैं ॥

ब्रह्म ऋषि, राज ऋषि और देव ऋषि इन्द्र के वल और वृत्तासुर के मारने का पराक्रम कह कह कर उस को प्रसन्न किया करते हैं और यह सब देवता बड़े सुन्दर वस्त्र पहन कर और सुन्दर माला आदि भूषणों से अलंकृत हो कर अति मनोहर वमानों में बैठ कर वहां आया जाया करते हैं ॥

शुक्र, बृहस्पति, यज्ञ व्रत, भृगु जी और सप्त ऋषि, भी चांद के समान शोभा देते हुए विमानों में आ जा कर इस सभा की शोभा को बढ़ाते रहते हैं । इस सभा का नाम पुष्कर मालिन सभा है ॥

सूर्य के पुत्र यमराज की सभा को विश्व कर्मा ने वनाया है वह तेजमय और सौ २ योजन लम्बी और चौड़ी है उस का प्रकाश सूर्य के तुल्य है वहां न ही बहुत गरमी पड़ती है और न ही बहुत सरदी, वहां जाते ही मन अति प्रसन्न हो जाता है इस सभा में रहन से शोक निकट नहीं आता और न हीं बुढ़ापा व्यापता है और कभी भूख प्यास भी नहीं लगती ॥

इस सभा में रहने वालों में दीनता, ग्लानि और प्रति-

कूलता नहीं होती, उस में सब दैवी और मानुषी पदार्थ और भक्ष्य भोज्य, लेह्य, चोष्य और पेय आदि खाने और पीने के बड़े २ स्वादिष्ट पदार्थ सदैव मिलते हैं वहां ऐसे २ वृक्ष लगे हुये हैं कि जो फल उन से मांगा जाये वह उसी समय उत्पन्न कर के मांगने वाले के सन्मुख रखते हैं दोनो प्रकार का ठंडा और गरम जल वहां हर समय भरा रहता है, बड़े २ राज ऋषि और ब्रह्म ऋषि यमराज की उपासना किया करते हैं ॥

ययाति, नहुष पुरु, मांधाता, राजा सोमक, त्रसदस्यु, कृतवीर्य, श्रुत श्रवा, अरिष्टनेमि, कृतवेगा, प्रतर्दन, शिव, मत्स्य, पृथुलाक्ष्य, बृहद्रथ, वार्त, मरुत, कुशिक, सांकाश्य, सांकृति, ध्रुव, चतुरश्व, सहस्याश्व, कई नामों के सौ सौ राजा, तुम्हारे पिता शांतुन इत्यादि बहुत से राजा जिन्हों ने अश्वमेधादि बड़े २ यज्ञ किए हैं उस सभा में वास करते हैं ॥

सिद्ध, योगी, शास्त्र जानने वाले, पितृ गण और जो मनुष्य दक्षिणायन सूर्य में मरे हैं और काल के नियम में युक्त हैं इस सभा के सभासद हैं हे युधिष्ठर यह सभा भी बड़ी रम्य और चलायमान है विश्वकर्मा ने बड़े परिश्रम और तप से इस को बनाया है, ज्वाला और प्रकाश उस में स्वयम् हैं ॥

उग्र तपस्वी, व्रती, सत्यवादी, शांत, सन्यासी, पुण्य कर्ती और शुद्ध मनुष्य दिव्य देह धारण करके सुन्दर वस्त्र पहन कर और माला, कुंडल आदि भूषणों से अलंकृत होकर इस सभा में जाते हैं ॥

हर समय वहां सुगंधित द्रव्य जलते रहते हैं और अप्साराओं का नाच गंधर्वों के गान, नटों के हास्य और रहस्य होता रहते हैं ॥

वरुण की सभा यमराज की सभा के समान बड़ी दिव्य, प्रभायुक्त और प्रमाण में लम्बी चौड़ी है, उस ने इस को आपही जल के बीच में बनाया है इस में अनेक प्रकार के ऐसे वृक्ष हैं जिन को बड़े २ स्वादिष्ट फल सदैव लगे रहते हैं और हर एक स्थान नाना प्रकार के लाल, पीत, हरे, काले, श्वेत रत्नों से जड़ा हुआ है। वृक्षों पर कई प्रकार के सुन्दर २ पक्षी मीठी मीठी बोलियां बोल रहे हैं, वहां आनन्द ही आनन्द होता है शीत और गर्मी नहीं होते, उस सभा का रंग श्वेत है और उस में बड़े सुन्दर आसन बिछ रहे हैं। वरुण देवता अपनी साध्वी वरुणानी सहित बड़े चमकदार उत्तम वस्त्र धारण करके विराजते हैं, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, कृष्ण, लोहित, पद्म, प्रलाद, जनमेजय आदि राजे, फनधारी सर्प, अदिति के सब पुत्र सुन्दर २ माला पहने और सुगंधित चंदन लगाये हुए वरुण की उपासना करते हैं ॥

विरोचन का पुत्र राजा वलिष्ट, नरक पृथ्वी, जय, संह्राद, विप्रचित्त, काल खाज आदि नाम के दानव सुहनु शंख, सुनामसुमति, घटोदर, महापार्श्व, क्रथनपिठर, विस्वरूप, इन्द्रतापन आदि मृत्यु से मुक्त, बड़े व्रती, शूर वीर और वर दान पाये हुये दैत्य उस सभा में वरुण की सेवा करते हैं और सकल समुद्र और गंगा, कलिंदी, वेराया, नर्वदा, वेगवाहिनी,

चन्द्र भागा, शतद्रु, वशामा, सरस्वती, इरावती, वितस्ता, सिंधू, देवनद गोदावरी, कृष्णावेण, कावेरी, किंपुना, विशल्या, वैतरणी, तृतीया, ज्येष्ठला, शाणभद्र, चर्मणावती, पर्णाशा, महानदी, सरयू, वारवत्या, लांगली, सारिद्वारा, करतोया, आत्रेयीलौहित्य, लंघती, गोमती, सध्या त्रिस्रोतसा और अन्य सब नदया, तीर्थ, तालाव, कूप, झरने, तड़ाग, दिश, पृथ्वी, पर्वत और सब जलचर जीव अपने २ दिव्य सरूपों को धार करके उस में बैठे हुये वरूण की उपसना करते हैं ॥

अप्सरा और गंधर्व नाचते गाते हुये वरूण की स्तुति किया करते हैं और वरूण का मंत्री सुनाभ मंत्र देने के लिये वहां सदैव उपस्थित रहता है ॥

कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी; सत्तर योजन चौड़ी है ऊंचाई कैलाश के शिषर से अधिक है, रंग उस का श्वेत है कुबेर को यह सभा तपस्या से मिली है, उस की प्रभा चांद की प्रभा से भी अधिक है, उस में ऊंचे ऊंचे वहुत से भवन बने हुए हैं और वह भवन नाना प्रकार के सुन्दर और चमकीले रत्नों से जड़ित हैं, नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्य वहां अपनी सुगंधी फैला रहे हैं, इस में कुबेर बड़े २ सुन्दर चमकीले वस्त्र और नाना भूषण पहन कर सहस्रों स्त्रियों सहित बड़े दिव्य आसन पर बैठते हैं वहां शीत, मंद और सुगंधित वायू सदैव रहती है और अप्सराओं और गायकों के बड़े मनोहर गान होते रहते हैं ॥

सहस्रों देव ऋषि, ब्रह्मऋषि, किन्नर, माणिभद्र, श्वेत-

भद्र, गुह्यक, कशेरक, गंड, कुंड, पिशाचा, गजकर्ण, विशालक, फलकच, निकेत, चार वासा, सहस्रों गंधर्व, लक्ष्मी आदि सब वहां रह कर कुबेर की उपासना किया करते हैं ॥

उग्र धनुष और शूल के धारण करने वाले त्र्यंबक महादेव जी पार्वती सहित अपने मित्र कुबेर के पास रहते हैं ॥

विश्वासु, हाहा, हुहु, तुंबरू, चित्त सेन, चित्र रथ, और गंधर्वों के अन्य सहस्रों पति, विद्या धरों का राजा चक्र धर्मा, सैकड़ों किन्नर और भगदत्त आदि राजा और किं पुरुषों का ईश्वर, महेन्द्र, गंधमादन, हिमवान, विंध्या, कैलाश, मंदिर, मलय, दुर्दुर, सुनाभ और समेरू आदि सम्पूर्ण पर्वत, यक्ष, गंधर्व, निशाचरों सहित कुबेर का भाई विभीषण और नन्दीश्वर महा काल, दंती, विजय, तपोधिका, श्वेत प्रपम राक्षस और पिशाच यह सब सदैव कुबेर की उपासना किया करते हैं ॥

कुबेर नित्य प्रति देवेश और त्रिलोक्य भावन महादेव जी के पास जा कर उन को प्रणाम किया करता है और उन की आज्ञा पान पर उन के पास बैठ जाया करता है, इधर शिवजी भी कभी २ सखा भाव से आजया करते हैं और शंख पद्म आदि निधियों से कुबेर की उपासना किया करते हैं यह सभा अंतरिक्ष में है ॥

नारद जी ने कहा एक समय मैंने सूर्य भग्वान से

ब्रह्मा जी की सभा का वर्णन सुन कर कहा आप मुझे वह साधन बतलाइए जिस के करने से मैं भी इस योग्य होजाऊं कि उस सभा को देख सकूं, सूर्य भग्वान ने मुझे सावधान हो और अंतः करण शुद्ध कर सहस्र वर्ष ब्रह्म ब्रत धारण करने से उस सभा के देखने योग्य होना बतलाया, मैंने उस ब्रत को हिमालय की शिखर पर आरम्भ किया और उस के समाप्त होने पर सूर्य भग्वान आप अपने साथ मुझ को वहां लेगये मैंने उस को अपने नेत्रों द्वारा देखा परन्तु मैं इतनी सामर्थ नहीं रखता कि उस का पूर्ण वृत्तांत कह सकूं इस का कारण यह है कि वह सभा छिण में कोई स्वरूप धारण कर लेती है और छिण में कोई ॥

ब्रह्मा की सभा का परिणाम और स्थान नहीं कहा जा सकता उससभा में जाने वाले का मन सदैव प्रसन्न रहता है,वहां शीत और गरमी नहीं होती और भूख प्यास और ग्लानी समीप तक नहीं आती, उस सभा के खम्भे आदि नहीं हैं वह नित्य है उस का कभी नाश नहीं होता ॥

वह स्वयं प्रकाशत है और स्वर्ग के ऊपर है उस की सभा के आगे सूर्य आदि प्रकाशमान लोकों का प्रकाश अस्त हो जाता है ॥

सब सामर्थ रखने वाले श्री ब्रह्मा जी उस सभा में बैठा करते हैं और प्रजा पति अर्थात् दक्ष, प्रचेत, पुलह, कर्दम, बालखिल्य, विद्या, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध, प्रकृति और सृष्टि के कारण, आगस्त्सत्य, जमदग्नि,

भरद्वाज, मार्कण्डेय, संवर्त्त, च्यवन दुर्वासा, ऋष्य शृंग, सन्त्कुमार, असित, देवल, ऋषभ, जितशत्रु, महावीर्य, मणि, आयुर्वेद अपने आठों अंगों सहित देह धारण किए हुए, नक्षत्रों सहित चंद्र सूर्य, अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम, गन्धर्व और अप्सरायें, २७ नक्षत्र, लोकपाल, बृहस्पति, बुद्ध, मंगल, शनि, राहु और अन्य ग्रह, मन्त्र, हरिमान, वसुमान, सब देवता, मरुत, विश्वकर्मा, अष्ट वसु, पितृगण, हविष, ऋग्वेद, यजुर्वेद, शामवेद, अथर्ववेद, शास्त्र, इतिहास, उपवेद, वेदांग, यज्ञ, सोम, सावित्री, दुर्गतरणी, सात प्रकार की वाणी (प्रणव, अकार, उकार, मकार नाद, विंद और शक्ति) मेधा, धृति, श्रुति प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा, साम वेद की स्तुतियां, सब शास्त्र, नाना प्रकार की गाथा, तर्क युक्त भाष्य यह सब देह धारण किए हुए काव्य, कथा आदि, क्षण, पल, मुहूर्त, दिन, रात्र, पक्ष, षट ऋतु, वर्ष, सम्वत्सर, पांचयुग, मानुष, पित्रय, देव, कालचक्र, धर्मचक्र, आदिति, दिति, दम सुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभी, गोमती, माधा, कद्रू, रुद्राणी, लक्ष्मी भद्रा, षष्ठी, परा गांगता, ह्रीः, स्वाहा, कीर्ति, सुरा देवी, शची, पुष्टि, अरुन्धती, संवृत्ति, आशा, नियति, सृष्टिदेवी, रति, बारह सूर्य, आठ वसु, ११ रुद्र, ४८ मरुत, दोनों अश्वनीकुमार, विश्वे देवा, साध्य, गण, पित्र, राक्षस, पिशाच, दानव, नाग, गुह्यक, सुपर्ण, पशु, वरुण, कुबेर, यमराज, महादेवजी, महासेन नारायण, त्रिलोकी के सब जड़ चैतन्य ऊर्द्धरेता ऋषि, गजासन ऋषि, आदि जो कुच्छ तीनों लोक में है उस सभा में आकर ब्रह्मा जी की उपासना करते हैं और उनको प्रणाम करने के पीछे

चले जाते हैं ब्रह्मा जी उन सब से यथा योग्य मिलते हैं, यह सभा इन सब के यहां होने से अपूर्व, अति शोभायमान और अद्वतीय है ॥

छटा अध्याय ॥

—:o:—

नारद का युधिष्ठर से राजा हरिश्चन्द्र का बृत्तांत कहना और उस को राजसूर्य यज्ञ करने का उपदेश देना ॥

युधिष्ठर ने कहा हे नारद जी आप की वक्तता सब से उत्तम है आपने अन्य कई राजाओं का यम, कुवेर और वरुण की सभा में होना कथन किया है और राजा हरीशचद्र का इन्द्र की सभा में होना वर्णन किया है इस का क्या कारण है राजा हरीशचन्द्र ने वह कौन सा ऐसा धर्म किया जिस से उस को इन्द्र की सभा में स्थान मिला ॥

आप कृपा करके यह भी कहिये कि इन सभाओं में से किसी सभा में मेरा पिता भी आप से मिला या नहीं यदि मिला तो उस ने हमारे लिए आप को कोई संदेसा दिया ॥

नारद जी ने कहा इस पृथ्वी पर राजा हरिश्चन्द्र अन्य सब राजाओं से बड़ा बलवान और शस्त्र के प्रताप

स जम्बू, कुश, शाक, क्रौंच, शाल्मलि, गोमेद और पुष्कार आदि सातों द्वीपों और पर्वत वन आदि को जीत कर राज-सूय यज्ञ रचाया सब राजा धन ले ले कर उस यज्ञ में आये थे और ब्राह्मणों को भोजन देने पर नियत किये गये थे ॥

राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ में आये हुए याचकों को उन के मांगने से पांच २ गुण धन दिया था और यज्ञ की समाप्ति पर बाहर से आये हुए सब ब्राह्मणों को बहुत सा धन आदि देकर तृप्त किया था उन ब्राह्मणों ने तृप्त हो कर बड़ी प्रसन्नता से राजा को अर्शीवाद दिये थे ॥

राजसूय यज्ञ करने के कारण राजा हरिश्चन्द्र का तेज और यश बहुत बढ़ गया और उस ने साम्राज्य की पदवी पाई राजा युधिष्ठर इसी सब यश आदि ने उस को इन्द्र की सभा दिलाई जो राजा ऐसा करेंगे वह इन्द्र की सभा में स्थान पावेंगे ॥

जो मनुष्य संग्राम से भागता नहीं और वहां ही लड़ कर प्राण त्याग देता है उस को भी वही लोक प्राप्त होता है और जो पुरुष तपस्या करके अपने शरीर को त्यागते हैं वह भी वही गती पाते हैं ॥

हे युधिष्ठर तुम्हारे पिता राजा पांडू हमें उस समय मिले थे जब हम नर लोक को आ रहे थे उन्हों नें राजा हरिश्चन्द्र के विभव को देख कर हम से यूं कहा था ॥

हे नारद नर लोक में मेरे पुत्र युधिष्ठर से मिल कर कहियो

कि उस के चारों भाई जो बड़े बलवान और आज्ञाकारी हैं उस के आधीन हैं उन को साथ लेकर सारी पृथ्वी को वह जीत सकता है वह उस को जीत कर राजसूय यज्ञ करे ताकि वह आप भी इन्द्र लोक में आवे और हम पितरों को भी इन्द्र लोक में पहुंचावे ॥

हे युधिष्ठर हमने तेरे पिता का संदेसा तुझ को दे दिया है तू अब राजसूय यज्ञ कर ताकि तुझ को और तेरे पितरों को राजा हरिशचद्र के समान इंद्र लोक में जगा मिले, यह यज्ञ बहुत बड़ा है इस में बहुत से विघ्न भी हुआ करते हैं उन विघ्नों को भी तुझे अच्छी तरह से विचार कर लेना चाहिये। नारद जी ने राजा युधिष्ठर से आज्ञा ली और चल दिए ॥

सातवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ करने के लिए अपने भाई, सम्बन्धी, ऋषि और श्रीकृष्ण जी से सलाह करना ॥

अब युधिष्ठर को राजसूय यज्ञ की लग्न लग गई, बैठते, उठते, सोते, जागते इसी का विचार रहने लगा, उस ने उन सब राजाओं को जो उस के आधीन थे बुला कर उन को इस अपने विचार से ज्ञात करके इस की त्यारी की आज्ञा दी ॥

इधर प्रजा की प्रसन्नता के लिये उस ने यह नियम कर

दिया कि प्रजा में से जो कोई कुछ मांगे उस को दिया जावे। ऐसा करने से सकल प्रजा उस को अपने पिता वत मानने लगी ॥

युधिष्ठर के अनुग्रह, भीमसेन के प्रजा पालन, अर्जुन के शत्रु नाश करने, सहदेव के धर्म शासन और नकुल के नम्र स्वभाव से उस का सारा देश निर्भय, कलहरहित और धर्म में निरत हो गया। उस में समय पर वर्षा होने लगी, व्योपार बढ़ गया, गाय और अन्य पशूओं का पेट भरने लगा, राज्य का प्रबंध उत्तम रीती से होने लगा, राज कर में बहुत सी न्यूनता कर दी गई, रोग और अन्य इस प्रकार के भयों से प्रजा छूट गई, चोरी का नाम तक न रहा और किसी प्रकार का कोई उपद्रव न दीखता ॥

राजा लोग समय पर अपना वार्षिक कर विन मांगे युधिष्ठर के कोष में भेज देते और सन्धि विग्रह आदि का व्योपारीयों के समान ध्यान रखने लगे, राज्य की बहुत ही वृद्धि हो गई, गोपाल से लेकर ब्राह्मणों तक सारी प्रजा युधिष्ठर को प्यार करती थी ॥

एक दिन युधिष्ठर ने सब मंत्रीयों और भाईयों से राज सूय यज्ञ की सलाह पूछी, मंत्रीयों ने कहा आप का राज्य इस समय ऐसा है कि आप राजसूय यज्ञ करके सम्राट होने के योग्य हैं, क्षत्रियों की सब संमपात्ति इस समय आप के वश में है आप यज्ञ कीजिये हम सब आप के आज्ञा कारी हैं ॥

तब युधिष्ठिर ने इस यज्ञ के विचार को निश्चय करने के लिए अपने सब भाईयों, मंत्रियों, ऋत्वजों, धौम्य और व्यास आदि ऋषियों को बुला कर एक सभा की और कहा मेरी इच्छा सम्राट के योग्य राजसूय यज्ञ करने की है आप मुझे सम्मति दें कि मेरी यह इच्छा क्यों कर पूरी हो ॥

सभा में उपस्थित सब जनों ने कहा महाराज आप सम्राट होने के योग्य हैं आप राजसूय यज्ञ कीजिए ॥

तब युधिष्ठिर लोक का हित करने के लिए अपनी सामर्थ, धन का संचय, देश और व्यतीत और अगामी काल का अंदोलन करने लगा ताकि ऐसा न हो कि इन में से किस के न्यून होने पर किसी प्रकार का मुझे और प्रजा को दुःख हो ॥

इस के पीछे युधिष्ठिर ने अपने दूत इन्द्रसेन को श्रीकृष्ण जी को लाने के लिए भेजा ताकि इस महा कार्य के आरम्भ करने से पहिले उन की सम्मति भी ली जावे ॥

श्रीकृष्ण जी दूत के साथ ही द्वारका से चल कर इन्द्रप्रस्थ में पहुंचे और सब से यथा योग्य सत्कार पाने के पीछे, युधिष्ठिर के पास बैठ कर यज्ञ के विषय में बात चीत करने लगे, युधिष्ठिर ने कहा मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हुं उस के करने के लिए जो जो बातें चाहिये वह सब आप को मालूम हैं, यह यज्ञ वह मनुष्य कर सकता है जो सब राजाओं का स्वामी हो और जिस को सब स्थानों में मानता हो, बाकी हमारे सुहृद जन तो हम को इस यज्ञ करने के योग्य बताते हैं

परंतु मैं आप की सम्मति को सब से उत्तम जानता हूं क्योंकि अन्य सब तो नाना प्रकार के सम्बंध (स्नेह, स्वार्थ, प्रयोजन आदि) रखने के कारण दोष नहीं बताते, हमारी हां में हां मिला देते हैं आप इन सब बातों को और काम क्रोध को छोड़ कर ठीक २ कहिये ॥

आठवां अध्याय ॥

—:o:—

श्रीकृष्ण जी का राज्यसूय यज्ञ करने के लिए पहिले राजा जरासंध के मारने का उपदेश करना ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा तुम सब प्रकार से राजसूय यज्ञ के योग्य हो परंतु मुझे खटका है तो जरासंध का है जो इस समय हर प्रकार की सामर्थ रखता है और सम्राट होने की त्यारी कर रहा है राजा शिशुपाल जो सब प्रकार से बलवान है इस समय हर प्रकार से उस के आधीन हो कर उस का सेना पति होगया है और शिष्य के समान उस के पास रहता है और करुप करम और मेघ वाहन देशों का राजा दंतबक्र जो मस्तक पर दिव्य मणि धारण करने से अद्भुत मणि भी कहलाता है और बड़ा पराक्रमी और माया से लड़ने वाला है और हंस और डिम्भक नामी दोनों बड़े पराक्रमी राजा भी जरासंध के आधीन रहते हैं ॥

मुरू नामी यवनों का राजा जो पश्चिम दिशा में बलवान राजा है और भगदत्त जो राजा पांडू का मित्र है और हम से पिता के तुल्य प्रीति रखता है जिस का राज्य इस समय पश्चिम दिशा में पृथ्वी में दक्षण देश के अंत तक है इस समय यह सब जरासंध के आधीन हैं। उस दिशा में तुम्हारा मामा कुंति भोज है ॥

चंदेरी देश का राजा जो अपनी दुर्बुद्धि से अपने आप को पुरुषोत्तम मान कर शंख चक्र आदि मेरे चिन्ह धारण करता है जरासंध का आज्ञाकारी है मैंने पहिले उस को मारते मारते छोड़ दिया था ॥

बंग और पुंड देशों के राजा पौंड्रक वासुदेव और भोजवंशी राजा भीष्मक जो बड़ा बलवान और इन्द्र का मित्र है और जिस ने अपनी विद्या बल से पांड्य क्रथ और कैशिक देशों को जीता था यह भी इस समय जरासंध का बल मान रहे हैं, राजा आकृति जो परशुराम जी के समान शूर वीर है अपनी शूरता को भुला कर उसी जरासंध के वश में हो रहा है। राजा भोज कै वंशी जो उत्तर दिशा में राज्य करते थे वह अब जरासंध के भय से पश्चिम दिशा को भाग गये हैं ॥

शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल' सुकुंद, कुलिंद, कुंति, शालव्यन, कौशल, जो पांचाल और कुंती देशों के अधिपति थे, मत्स्य और सन्यस्तपाद आदि राज भी उस के डर से उत्तर दिशा को छोड़ कर दक्षिण दिशा को

चले गये हैं और पांचाल देश के अन्य राजा भी उस के डर से अपना २ राज्य त्याग कर जहां तहां चले गये हैं ॥

एक समय उग्रसेन के पुत्र कंस ने यादवों को जीत कर जरासंध की अस्ति और प्राप्ति दोनों कन्याओं से विवाह कर लिया था जरासंध को अपनी ओर जान कर वह अपनी जाती वालों को महा दुःख देने लगा था, उन्हों ने इस दुःख में मेरा स्मर्ण किया था और मैंने बलदेव को साथ लेकर कंस को मार कर जाति वालों की रक्षा की थी, यह सुन कर जरासंध एक बड़ी भारी सेना लेकर हम पर चढ़ आया था, उस की इतनी बड़ी सेना देख कर हमने अपने मंत्री, पुरोहित आदि से सलाह की कि यदि हम इस की सेना से अस्त्र शस्त्र से लड़ेंगे तो तीन सौ वर्ष तक न जीत सकेंगे इस कारण राज नीति से इस को जीतना उचित है। जरासंध को राजा हंस और डिम्भक के बल पर बड़ा भरोसा था यह दोनो राजा बड़े बलवान, योद्धा और शस्त्र से अवद्ध थे। जरासंध की सेना में एक और राजा हंस नाम का था बलदेव जी ने उस को मार कर सारी सेना में यह प्रगट कर दिया कि राजा हंस मारा गया राजा डिम्भक जो हंस का साथी था यह सुन कर दिल छोड़ बैठा और यमुना में जाकर डूब मरा, इधर हंस को यह समाचार मिला कि राजा डिम्भक दिल छोड़ कर यमुना में डूब कर मर गया है उस ने भी उस के बिना जीना व्यर्थ जान कर यमुना में कूद कर अपने प्राण त्याग दिये। इन के मरने पर जरासंध का हौंसला टूट गया और वह चुपका सा लौट

गया ॥

उस की दोनों पुत्रियां अपने पिता के पास गईं और अपना दुःख कह कर उस को कहा हमारे पति के मारने वालों से बदला लो ॥

जरासंध उनके कहने पर पुनः हम पर चढ़ आया, उसे आते हुए देख कर सब लोग डर गए और अपना अवश्य धन ले कर मथुरा की पश्चिम दिशा को चले गए और कुशस्थली नगर में रहने लगे, हम लोगों ने वहां एक ऐसा किला बनवा लिया कि विष्णुवंशी तो एक ओर रहे कायर से कायर पुरुष और स्त्रियां भी उस में हो कर लड़ सकती थीं, हम लोग वहां निर्भय हो कर रहने लगे, इस नगर के पास रैवत पर्वत है उस पर से जरासंध को जीतना बहुत सुगम था, हमारे कुल में सब भाई अठारह सहस्र हैं और आहुक के एक सौ पुत्र देवताओं के समान बलवान हैं और हम में सातरयी, कृतवर्मा आदि महारथी हैं ॥

हे युधिष्ठिर तू सब प्रकार से राजसूय यज्ञ के योग्य है केवल खटका है तो जरासंध का है जिस ने सब राजाओं को जीत कर पर्वत की कन्दरा में बन्द कर रखा है और जो महादेव जी की पूजा के लिये उन सब का बलिदान देने को है हम उसी के भय से भाग कर द्वारका पुरी में बस रहे हैं यदि तू राजसूय यज्ञ किया चाहता है तो पहिले जरासंध को मार कर उन सब राजाओं को छुड़ा, मेरी समझ में जो कुछ आया मैंने कह दिया अब तुम जो तुम्हारी बुद्धि में आय वह करो ॥

नवमां अध्याय

—:o:—

युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन और श्री कृष्ण का जरासंध को मार कर सम्राट पदवी का विचार करना ॥

युधिष्ठर ने कहा आपने जो कुछ कहा है सच कहा है हमारे संशय को दूर करने वाला आप के विना और कोई नहीं है, सब राजा लोग अपने २ घरों में अपने आप को श्रेष्ठ मानते हैं परंतु सम्राज पदवी का पाना बड़ा कठिन है जो मनुष्य दूसरों का प्रभाव नहीं जानता वह अपनी बड़ाई क्यों कर कर सकता है मेरी समझ में यह यज्ञ करके पारमेष्ठय पाना कठिन है इस से मैं यही अच्छा समझता हुं कि इन्द्रियों को रोक कर रहुं इस में मेरा कल्याण है, आप से यह सुन कर कि आप जरासंध के डर से द्वारका को चले गए हैं हमें भी उस से भय होने लग गया है परन्तु अब यह बतलाइये कि आप भीमसेन, बलदेव जी और अर्जुन से बढ़ कर और कौन है जो जरासंध को मार सके ॥

भीमसेन ने कहा जो राजा विना उद्योग के किसी काम को करता है वह बलमीक के समान दुःख पाता है और उद्योग के साथ काम करने वाला यदि दुर्बल भी हो वह बलवान् शत्रु को जीत लेता है, आलस्य न करते हुए नीति पूर्वक

उद्योग में लगना काम को सिद्ध कर देता है, श्री कृष्ण जी नीति में निपुण हैं, मुझ में बल है और अर्जुन जीतने के योग्य है हम तीनों मिल कर राजा जरासंध को सीधा कर लेंगे ॥

श्री कृष्ण ने कहा हमने सुना है कि युवनाश्व का पुत्र राजा मांधाता शत्रुओं को जीतकर, राजा भागीरथ प्रजा को पालन करके कीर्तिवीर्य तप करके, राजा भरत अपने बल से और मरुत अपनी ऋद्धि से सम्राट् पदवी को पहुंचे थे हे युधिष्ठर तुम में यह पांचों गुण हैं भला तुम को सम्राट् पद क्यों नहीं मिल सकता जरासंध ने सत्पुरुषों में सुकृत साध्या विचार करके धर्म, अर्थ और नीती से संम्राट पद्वी पाई है परन्तु वह अपनी अज्ञानता के कारण उस पद्वी पर भी तृप्त नहीं हुआ, जो राजा लोक उस के आधीन हैं वह उस से अप्रसन्न होने के कारण प्रीति नहीं करते, ८४ राजाओं को उसने पकड़ कर कैद कर रक्खा है और बाकी जो १४ राजा रह गए हैं उन को भी वह अपने वश में करना चाहता है और सदैव उस का ध्यान क्रूर कर्म की ओर लगा रहता है जो मनुष्य उस जरासंध को जीत लेगा वह उन सब राजाओं को उस से मुक्त करके संसार में यश पाकर सम्राट पद्वी का अधिकारी होगा ॥

युधिष्ठर ने कहा मैं अपने स्वार्थ के लिए तुम लोगों को वहां भेजना उचित नहीं समझता, भीमसेन और अर्जुन दोनों मेरे नेत्र हैं, और आप मेरे मन हो, मन और नेत्रों के बिना मनुष्य का जीना असम्भव है और यदि जीये तो वह जीना

क्योंकि राजा जरासंध बड़ा बलवान है और यमराज से भी अजित है, इस कारण मुझे इस स्वार्थ में अनर्थ दीखे पड़ता है मैं राजसूय यज्ञ के विचार को त्यागता हूं ॥

इतने में अर्जुन श्रेष्ठ धनुष और अक्षय तर्कस धारण किये हुए और कपिध्वज रथ पर आरूढ़ हुए हुए सभा में पहुंचा और युधिष्ठिर से कहने लगा ॥

देखो मुझे यह श्रेष्ठ धनुष आदि प्राप्त होगये हैं यह मन वांछित फल के देने वाले हैं इन को हर एक पुरुष का मिलना कठिन है श्री कृष्ण जी हमारी रक्षा के लिए हमारे संग हैं, मुझे अपने कुल के अनुसार पराक्रम करना ही अच्छा जान पड़ता है, पराक्रम से हीन मनुष्य संसार में पृथ्वी पर एक प्रकार का बोझा है क्षत्री वही है जिस की बुद्धि सदैव शत्रुओं के विजय करने में है पराक्रम ऐसा पदार्थ है कि उस में सब अवगुण छिप जाते हैं, निर्बल मनुष्य में दीनता होना और बलवान में मोह होना दोनों नाश कारक हैं जो राजा चाहता है कि उस की जय हो वह ऐसे मनुष्यों को अपने समीप कदापि न रखे मुझे तो यही अच्छा दीखता है कि हम पहिले जरासंध को मार कर सब राजाओं को उस से मुक्त करें पुनः यज्ञ में लग जायें वह मुक्त राजा लोग भी हमारे साथ हो कर हमारे यज्ञ की पूर्ति में हमारे सहायक होंगे, मेरे लिए युद्ध करके सम्राज्य पदवी लेना ऐसा ही सुलभ है जैसे शम चाहने वाले मुनियों को सन्यास्य लेना है ॥

दसवां अध्याय

—:०:—

राजा जरासंध की उत्पत्ती और उस के जरा संध नाम रखे जाने का कारण ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा कुंती के पुत्र की जैसी बुद्धि होनी चाहिये वैसी अर्जुन की है, मृत्यु प्रारब्ध से होती है जब तक जीव के दिन पूरे न हों कोई नहीं मरता और न ही किसी को कोई मार सकता है देवता भी युद्ध करने को जाया करते हैं शत्रु पर चढ़ाई अच्छे मंत्र और नीति से होनी चाहिए वरन युद्ध करने में जय होता है और यदि दोनों पक्ष समान हों और दोनों युद्ध करने वाले नीति और अच्छे मंत्र को ध्यान में न रखने वाले हों तो उस समय जय न होने का संशय रहता है। भला यह क्यों कर हो सकता है कि हम नीति पूर्वक शत्रु के पास पहुंचे और उस का नाश न हो। बुद्धिमान मनुष्यों की यह सम्मति है कि प्रबल शत्रु से व्यूह रचित सेना ले कर युद्ध न करे। यह मति मुझे अच्छी जान पड़ती है. मेरी समझ में हमें ऐसे स्वरूप में शत्रु के पास जाना चाहिये कि वह हमें पहचान न सके और उस के पास पहुंच कर वहां अपना कार्य सिद्ध करें, यदि हम इस कार्य में जरासंध से मारे भी जायेंगे तो हमारा बड़ा यश होगा और हम को स्वर्ग मिलेगा ॥

युधिष्ठिर ने कहा महाराज यह जरासंध कौन है और इतना पराक्रम इस में क्यों कर हुआ है ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा मगधदेश में बृहद्रथ नाम एक बड़ा तेजस्वी, शूरवीर, पराक्रमी, स्वरूपवान, युद्ध दर्पित और तीन अक्षोहिणी सेना रखने वाला राजा था वह ऐसा गुणवान था कि उस के गुणों की प्रशंसा पृथ्वी भर पर इस प्रकार से फैली हुई थी जैसे सूर्य की किरणें उस के उदय होने पर फैल जाती हैं उस का विवाह काशी राज की दोनों पुत्रियों से जो बड़ी रूपवति थीं हुआ, इन दोनों से उस ने यह प्रतिज्ञा की थी कि तुम दोनों के साथ मैं एकसा वर्ताव रखूंगा उन का यौवन विहार और आनन्द में व्यतीत होगया, पुत्र के लिए बहुतेरे यज्ञ आदि किए परंतु कोई पुत्र न हुआ ॥

एक समय काक्षीवत गौतम ऋषि का चंडकौशिक नाम बड़ा तपस्वी पुत्र घूमता घामता उसके नगर में आपहुंचा और एक वृक्ष के नीचे आसन लगा कर बैठ गया, नगर वासी उस के दर्शनों के लिए आने लगे राजा को भी उस के आने की खबर मिली और वह भी अपनी दोनों रानियों को ले कर उस के पास पहुंचा और रत्न आदि उस के सन्मुख रखे। ऋषि ने प्रसन्न हो कर कहा राजन्! तुम्हारी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हुं जो तेरी इच्छा हो मुझ से मांग ले ॥

राजा और दोनों रानियों ने आखों में आंसू भर कर विनय पूर्वक कर बांध कर कहा महाराज मैं मंद भागी संतान हीन हुं और राज आदि छोड़ कर वन में जाने वाला हुं ॥

ऋषि को राजा पर दया आगई और वह उसी वृक्ष के नीचे ध्यान में हो गये उसी समय उस वृक्ष पर से एक आम गिरा और मुनि जी की गोद में पड़ा उन्हों ने उस फल को अभिमंत्रित करके राजा को दे दिया और कहा लो इस फल के प्रभाव से तुम्हारे एक पुत्र होगा ॥

राजा मुनीश्वर को दंडवत करके घर में आया और उस फल के दो भाग करके उस ने एक २ भाग अपनी दोनों रानियों को दिया, रानियों ने उस को खा लिया और उन के गर्भ ठहर गया राजा को इस से बहुत हर्ष हुआ ॥

समय पूर्ण होने पर रानियों के आधे २ शरीर वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए, यह देख कर रानियों को बड़ा शोक हुआ और वह कांपने लगीं उन्हों ने उन दोनों भागों को दाइयों को देकर कहा इन को भवन के बाहर किसी स्थान में डाल आओ उन्हों ने वैसा ही किया ॥

इतने में उस स्थान पर जहां वह दाइयां उन को डाल आई थीं जरा नाम राक्षसी आई और उन दोनों भागों को खाने की इच्छा से लेजाने लगी। उस ने उन दोनों भागों को इकट्ठा कर दिया, ऐसा करते ही वह दोनों आधे २ शरीर जुड़ गये और वह एक लड़का बन गया, राक्षसी को इस से बड़ा आश्चर्य हुआ वह प्रसन्न हो कर उस को उठाने लगी परन्तु वह उस से न उठ सका और वह अपनी मुट्ठी को मुख में दे कर बादल की गरज के समान रोने लगा उस

गरज को सुन कर राजा अपने दरबारियों सहित बाहर निकल आया वह रानियां जिन की छाती दूध से भरी हुई थी भी उस स्थान पर आगई उस राक्षसी ने अपना स्वरूप स्त्री का बना लिया और बालक को उठा कर राजा के पास ले गई और कहा यह तेरा पुत्र है यह तेरी दोनों रानियों के उत्पन्न हुआ था परंतु उन्हों ने इस को त्याग दिया था अब मैं तुझे यह देती हूं, रानियों ने उस बालक को उस से लेकर अपनी छातीओं पर लिटाया और राजा ने प्रसन्न होकर उस राक्षसी से पूछा कि तू कौन है क्या तू देव कन्या है जो तूने पुत्र बचा कर मुझे दिया है ॥

राक्षसी ने कहा मैं जरा नाम राक्षसी हूं तेरे भवन में बहुत काल से वास करती हूं मैं नित्य सब मनुष्यों के घरों में रहा करती हूं मुझे ग्रह देवी भी कहते हैं जो स्त्री पुत्र सहित मेरी मूर्ति भीत पर लिख कर भक्ति से पूजा करती हैं उस के कुल की वृद्धि होती है जो ऐसा नहीं करती उस का कुल क्षय होजाता है राजन् तेरे ग्रह में मेरी पूजा बहुत उत्तम रीति से होती रही है इस से मैं तेरा उपकार चाहती थी सो अब इस तेरे पुत्र को जो दो फांकों में था मैंने उठा लिया वह ईश्वर कृपा से जुड़ कर पूर्ण लड़का होगया, यह कह कर वह वहां ही लोप हो गई ॥

राजा उस पुत्र को ले कर रानियों सहित अपने भवन में आया और उस जरा राक्षसी के द्वारा मिलने से उस का नाम जरासंध रखा ॥

ग्यारहवां अध्याय

—:०:—

चंडकौशिक मुनि का राजा बृहद्रथ के पास जाकर पूजित होना और जरासंध को आशीर्वाद देना और राजा का जरासंध को राज्य देकर तपस्या के लिये बन को चले ॥ जाना ॥

जरासंध बड़ा होने लगा राजा ने उस को योग्य राज पुत्र बनाने के लिये सब विद्यायें सिखलाने के वासते अन्य अन्य विद्या के जानने वाले आचार्य नियत कर दिये और जरासंध सब विद्याओं को प्राप्त करके योग्य होगया ॥

एक दिन फिरते २ चंडकौशिक मुनि राजा बृहद्रथ के नगर में आगये और उस नगर के बाहर एक बड़े रमणीक उद्यान में उन्हों ने अपना डेरा डाला, राजा को भी उन के आने का समाचार मिला, राजा मंत्रियों और रानियों को अपने साथ ले कर उन के पास गया और पाद्य अर्घ्य आदि से बहुत अच्छी रीति से उन का पूजन किया और अपना राज्य पुत्र सहित उन के निवेदन किया ॥

ऋषि ने राजा की पूजा को अंगीकार करके बड़े प्रसन्न होकर कहा हम दिव्य दृष्टि से तुम्हारे पुत्र की सब व्यवस्था को जानते हैं इस तुम्हारे पुत्र के ग्रह में लक्ष्मी का बड़ा

प्रकाश होगा इस के पराक्रम के आगे सब राजा लोग इस प्रकार अस्त होजायेंगे जैसे गरुड़ के आगे सब पक्षी होजाते हैं, देवताओं के छोड़े हुये अस्त्र भी इस को पीड़ा न दे सकेंगे और इस का जो शत्रु होगा वह नाश को प्राप्त होगा, यह सब राजाओं का मुकुट मणि होगा और सब राजाओं का तेज इस के तेज के सन्मुख इस प्रकार अस्त होजाएगा जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर सब तारा गण अस्त होजाते हैं, सब राजाओं की लक्ष्मी इस प्रकार से इस के घर में आवेगी जैसे वर्षा ऋतु में नदियों का जल समुद्र में चला जाता है, सब राजा लोग इस के वश में इस प्रकार से रहेंगे जिस प्रकार प्राणी वायु के वश में रहते हैं और इस को महादेव जी के दर्शन भी होंगे, मुनीश्वर ने राजा को विदा किया और आप भी उस नगर से चल कर कहीं अन्य स्थान को चले गये ॥

कुच्छ दिन पीछे राजा वृहद्रथ जरा संध को राज्य देकर अपनी दोनों रानियों सहित तपो वन को चला गया और अपना बाकी जीवन वहां व्यतीत करने लगा ॥

जरा संध ने राज्य को सम्भालते ही उस की वृद्धि का विचार कर लिया और थोड़े ही काल में उस ने बहुत से राजाओं को जीत कर अपने वश में कर लिया ॥

बारहवां अध्याय

—:o:—

श्री कृष्ण जी का अर्जुन और भीमसेन को साथ लेकर जरासंध को मारने के लिये जाना, और उस से प्रश्नोत्र करना ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हे युधिष्ठर हंस और डिम्भक दोनों यमुना में डूब कर मर चुके हैं और कंस को हम ने मार डाला था अब केवल जरासंध ही बाकी रह गया है, इस लिए इस को युद्ध में मारना मुझे असम्भव प्रतीत होता है इस लिए मल्ल युद्ध में इस के प्राण हम ले लेंगे, हम नीति अच्छी तरह से जानते हैं, भीमसेन बल में अधिक है और अर्जुन रक्षा करने वाला है हम तीनों मिल कर उस को जीत कर मार डालेंगे, हे युधिष्ठर तुम अपने इन दोनों भाइयों को हमारे साथ कर दो ॥

युधिष्ठर ने कहा महाराज आप पांडवों के नाथ हैं आप की आज्ञा मानना हमारा परम धर्म है आप इन को ले जाईये और जरासंध को मार कर उन राजाओं को जो उस ने कैद कर रखे हैं मुक्त कर दीजिये ताकि हमारा राजसूय यज्ञ हो, हम उस बात के मानने के लिये जो आप के मुख से निकले हर पल तत्पर हैं और आगे सदैव रहेंगे क्योंकि इस संसार में आप के समान हम को कोई नीति निपुण नहीं दीखता, आप आगे चलिये आप के पीछे अर्जुन और अर्जुन

के पीछे भीमसेन चलेगा इस प्रकार नीति, जय और बल तीनों के एक स्थान होने पर हमारा काम सिद्ध होगा ॥

तीनों ने ब्राह्मणों के वस्त्र पहन लिये और मगध देश की ओर चल दिये पद्म सरोवर, कालकूट पर्वत, गंडकी, महासोन सदानीरा, एक पर्वत की नदियां, सरयू, कोशला, मिथला, माला और चर्मरावती आदि नदियों पर होते हुये गंगा और शोणभद्र नदियों को उतर कर पूर्व दिशा की ओर से मगधपुर के निकट जा पहुंचे और वहा के गोरथ पर्वत पर चढ़ कर उस नगर को देखने लगे ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा अर्जुन देखो यहां से इस देश की सेना का निवा स्थान कैसा स्पष्ट दीख रहा है, इस देश में जल और पशू सदैव रहते हैं, इस के वैहार, वृषभ, ऋषि और चैत्यक पर्वत एक दूसरे से मिले हुये हैं इन के ऊंचे २ शिखर सुन्दर २ वृक्षों से सुशोभित हो रहे हैं इन वृक्षों से कैसी सुगंधी आरही है, यह वही स्थान है जहां गौतम ऋषि से एक शूद्र स्त्री और उसीनर नाम राजा की पुत्री के काक्षीवान आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे इस ऋषि की कृपा से यहां के रहने वाले क्षत्री लोग मनुवंशी कहलाते हैं ॥ पहिले समय में गौतम ऋषि के घर में अंग और वंग देशों के राजा भी आकर वास किया करते थे और यह वृक्षों की पंक्तियां जो सामने दीख रही हैं उसी गौतम ऋषिके स्थान के निकट हैं

अर्बुद, शाक्रवापी, स्वास्तिक, मणि और कौशिक नागों के रहने का यही स्थान है। यह देश ऐसा है कि यहां

सब कालों में वर्षा रहती है। ऐसे रमणीक और उत्तम देश को पाने ही से जरासंध अपने को अर्थ सिद्ध मान कर घमंड कर रहा है सो हम तीनों मिल कर उस का घमंड तोड़ डालेंगे॥

श्रीकृष्ण जी ऊपरोक्त बातें करते हुए अर्जुन और भीमसेन को साथ लेकर मगध पुर की ओर चले और नगर में पहुंच कर वहां के प्रसन्नचित्त और पुष्ट मनुष्यों को जो किसी उत्सव के कारण अच्छे २ वस्त्र और आभरण पहने हुए थे देखते हुए नगर के द्वार पर पहुंच गये और वहां से रुचिर यज्ञ स्थान के समीप पहुंच कर उस के कंगूरे गिरा दिये, वहां राजा बृहद्रथ ने वृषासुर दैत्य को मार कर उस के चमड़े की तीन भेरियां बनवाकर रखवाई थीं इन्हों ने उन को भी फोड़ डाला, इधर उधर को और जो चीजें उन की दृष्टि पड़ी उन्हों ने उन को भी फाड़ा और नगर में घुस गए॥

इसी अवसर में राजा के ज्योतिषियों और पुरोहित ने ग्रहों का स्पष्ट कर के बतलाया महाराज दिन अच्छे नहीं हैं और उन्हों ने राजा से शांति के लिये पूजन इत्यादि कराये और राजा को उपवास कराया॥

इन तीनों ने बज़ार से फूलों की माला कुंडल आदि ले कर अपने आप को उन से अलकृत किया और निडर हो कर जरासंध की सभा में जा पहुंचे। जरासंध ने पाद्य अर्घ्य से उन का पूजन करके उन का बड़ा कहा सत्कार किया और उन से कुशल क्षेमी पूछी अर्जुन और भीमसेन तो मौन

धारे रहे और श्री कृष्ण जी ने कहा यह दोनो व्रती हैं आधी रात तक किसी से नहीं बोला करते उस समय के पीछे तुम से बात चीत करेंगे ॥

जरासंध उन तीनों को यज्ञ शाला में टिका कर आप राज मंदिर में चला गया और आधी रात व्यतीत होने पर उन तीनों के पास आया और उन के अपूर्व वेष देख विस्मित हो कर उन के पास बैठ गया, ब्राह्मण का राजा जरासंध इतना भक्त था कि यदि आधी रात को भी कोई स्नातक ब्राह्मण उसे मिलना चाहे तो वह न नहीं किया करता था यह बात सकल संसार में विख्यात हो चुकी थी।

जरासंध को अपने समीप आया हुआ देख कर उन तीनों ने कहा तेरा कल्याण और कुशल हो, जरासंध ने उन को बैठने की आज्ञा दी और वे चारों बैठ गये ॥

जरासंध ने कहा मैं संसार के सब विवहार जानता हूं स्नातक ब्राह्मण विना समावर्तन कर्म किये माला और चंदन धारण नहीं किया करते तुम सत्य कहो कौन हो तुम्हारा वेष निस्संदेह ब्राह्मणों का सा है परंतु तुम्हारा तेज मुझे क्षत्रियों का सा दीख रहा है द्वार छोड़ कर चैत्यक पर्वत की शिखर तोड़ कर राजा के अपराध से निडर होकर दूसर रास्ता से तुम क्यों आये हो. ब्राह्मणों का वचन बलवान और क्षत्रियों का कर्म बलवान हुआ करता है तुम्हारा कर्म तुम्हारे वेष से विपरीत है और तुम ने हम से विधि पूर्वक पूजन क्यों नहीं लिया है तुम सत्य सत्य बतला दो राजा के सन्मुख सत्य कहना ही ठीक होता है ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा हम स्नातक ब्राह्मण हैं स्नातक व्रत केवल ब्राह्मण ही नहीं किया करते किंतु क्षत्री और वैश्य भी किया करते हैं इन में से कोई तो विशेष नियम और कोई अविशेष नियम को लने वाला क्षत्री लक्ष्मी पाता है और पुष्प धारण करने वालों को निश्चय लक्ष्मी की प्राप्ति हुआ करती है इस कारण हमने भी पुष्प धारण किए हुये हैं, क्षत्री के पास अवश्य बाहुबल होता है वचन बल वह नहीं रखता, इस कारण क्षत्री का कहा हुआ वचन अप्रगल्भ होता है, धाता ने क्षत्रियों की भुजाओं में अपना बल दिया है यदि तुम को उस बल के देखन की इच्छा होगी तो देख लोगे। धरिवान पुरुष शत्रु के घर में अद्वार से और हितु के घर में द्वार से प्रवेश किया करते हैं इस नियम को दृष्टि में रख कर ही हमने तुम्हारे पुर में अद्वार से प्रवेश किया था, हमारा व्रत है कि हम शत्रु के ग्रह में पहुंच कर उस की पूजा को ग्रहण नहीं करते ॥

तेहरवां अध्याय

—:o:—

श्री कृष्ण जी का जरासंध के मारने का उद्योग करना ॥

जरासंध ने कहा मेरा आप का कब वैर हुआ था और

कब मैने आप का अपकार किया था आप मुझ को किस प्रकार अपना शत्रु कहते हो मैने आज तक कभी भी अर्थ और धर्म का उपघात नहीं किया बिना कारण किसी पर दोष लगाने वाले का कल्याण नहीं हुआ करता वरन उस की गति पापीयों की सी होती है, धर्म जानने वाले क्षत्री धर्म से परे दूसरे धर्म की प्रशंसा नहीं किया करते आप मुझ प्रमाद से ऐसा बताते हैं मैं जितेन्द्री रह कर अपने धर्म में स्थित हूं और प्रजा का अपराध नहीं करता हूं ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हमें लोग तुम्हारे पास एक ऐसे मनुष्य के भेजे हुए आये हैं जो कुल को पालन और कुल के कार्य करने वाला है जो राजा श्रेष्ठ होता है वह दूसरे साधू राजाओं को नहीं मारता तुम ने जो इन बहुत से राजाओं को कैद कर रखा है और शिवजी के पूजन में उन को बलि दिया चाहते हो क्या यह कर्म करने पर भी तुम अपने आप का अन अपराधी जानते हो यदि तुम यह बुरा काम करोगे तो हम को भी पाप लगेगा क्योंकि हम धार्मिक मनुष्यों के धर्म की रक्षा करने में सामर्थ हैं ॥

हम आज तक यह कभी नहीं सुना कि किसी देवता पर मनुष्यों का बल चढाई गई है तुम किस धर्म या मर्याद से शिवजी पर मनुष्यों की बलि दिया चाहते हो, क्या तुम्हारी यह खोटी बुद्धि नहीं कि तुम अपने सवर्ण पशु जान कर बलिदान दिया चाहते हो, जो मनुष्य जिस अवस्था में जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है, हम दुःखी मनुष्यों

के दुःख को दूर करने वाले हैं इस कारण जाति की वृद्धि के लिए तुम को जाति अपराध से दूषित जान कर मारने आए हैं। तुम यह जाने बैठे हो कि संसार में तुम्हारे समान दूसरा क्षत्री कोई नहीं यह तुम्हारी बुद्धि की मंदता का कारण है क्योंकि इस संसार में ऐसा कौन क्षत्री है जो रण करके स्वर्ग में जाने की इच्छा न रखता हो और स्वजातियों को न छुड़ाना चाहता हो, वेद पढ़ना, तप करना और व्यभिचार रहित हो कर युद्ध में मरना स्वर्ग देने वाले हैं। भला तुम से बढ़ कर अपने आप का वैरी और कौन होगा जो बल के अभिमान से दूसरों का अपमान करते हो इस संसार में बहुत से ऐसे पुरुष होंगे जो तुम से भी बलवान होंगे, जब तक तुम किसी अधिक बलवान को नहीं देखते तभी तक ऐसा समझ रहे हो, तुम इस कर्म को जिस से नरक की प्राप्ति होती है त्याग दो, देखो तुम से बड़े २ राजा लोग ऐसा करके इस संसार को छोड़ गये और अपयश ले गये, हम क्षत्री हैं और तुम से युद्ध चाहते हैं। मेरा नाम कृष्ण है यह अर्जुन और भीमसेन हैं. हम तुम से पुनः कहते हैं कि या तुम इन सब राजाओं को छोड़ दो और नहीं तो हम से युद्ध करो॥

जरासंध ने कहा बिना जीते हमने किसी को नहीं पकड़ा बताओ वह कौन है जो हमसे हारा नहीं, क्षत्रियों का यही धर्म है कि बल से शत्रु को जीत कर अपने वश में करके अपनी इच्छा के अनुसार उस से वर्ताव करें, मैं देवताओं के निमित्त किये हुए राजाओं को तुम्हारे भय से

नहीं छोड़ सकता, हां सेना के साथ सेना ले लड़ कर अथवा तुम तीनों से पृथक् २ या तीनों से एक साथ लड़ सकता हूं ॥

चौदहवां अध्याय

—:०:—

जरासंध और भीमसेन का मल्ल युद्ध, भीमसेन का जरासंध को मार डालना, श्री कृष्ण जी का सब राजाओं को बंधन से छुड़ाना और अर्जुन और भीमसेन को ले कर इन्द्र प्रस्थ में आना और उन से विदा होकर द्वारका को चले जाना ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हम तीनों में से आप किस के साथ युद्ध करना चाहते हैं जिस से आप चाहें वही त्यार है ॥

जरासंध ने कहा मैं भीमसेन से युद्ध करूंगा, उस ने उसी समय ब्राह्मणों को बुला कर उन से स्वस्तयन सुना और क्षत्री धर्म को स्मर्ण करके अपना किरीट मुकुट उतार डाला और बालों को बांध कर मर्यादा सहित खड़ा हो कर बोला, भीमसेन आओ मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए त्यार हूं क्योंकि तुम्हारे साथ लड़ने से यदि मैं हार भी जाऊं तो

मेरा यश होगा, जरासंध का पुरोहित माला आदि अनेक मंगल पदार्थ और मूर्छा और कष्ट आदि हटाने की औषधियों को लेकर जरासंध के पास जा कर खड़ा हो गया ॥

इधर भीमसेन भी श्री कृष्ण जी से स्वस्तयन सुन कर और मंत्र करके जरासंध के सन्मुख गया और उन दोनों भुजाओं से युद्ध करने वाला और परस्पर जय चाहने वालों ने गुरू का दंडवत करके आपस में हाथ मिलाय और खब ठोक कर एक दूसरे के कंधे पर हाथ रख कर और अंग से अंग मिला कर लड़ने लगे, मुष्टि बांधना, कक्षा बंध, गलगंड निघात और बहुपाश आदि अनेक मल्ल युद्ध के दाओं पेच कर २ के एक दूसरे की छाती और शिर पर घूंसा मारने लगे, कभी जरासंध भीमसेन का हाथ मरोड़ डालता और कभी भीमसेन जरासंध के हाथ को मरोड़ देता, जरासंध यदि भीमसेन को एक चपेटा मारता तो आगे से भीमसेन उस को दो चपेटे जड़ देता और पुनः उस को खेंच कर ले जाता, कभी दोनों एक दूसरे को हाथ मार २ कर पीड़ित करदेते और कभी अपनी भुजाओं को कमर में लपेट २ एक दूसरे को गिरा देते कभी दोनों ही अपनी २ देह को सकोड़ लेते और स्वारी और कमर पेचों आदि दाओं को करके पेट के नीचे हाथ डाल कर कमर पकड़ लेते और कंठ और छाती तक उठा कर एक दूसरे को फेंक देते, कभी एक दूसरे के पेट को घूंसा मार कर मूर्छित कर देता और कभी कभी एक दूसरे को धरती पर डाल कर रगड़ देता अब दोनों ओर से लगातार घूंसे आरम्भ होगये ॥

इस समय उस स्थान पर सहस्त्रों ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र, स्त्री, बालक, युवक, वृद्ध आगये और उनका युद्ध देखने के लिये उन के चारों ओर खड़े होगये मानों वहां एक प्रकार का बड़ा मेला हो गया ॥

उन दोनों के भुजा से भुजा लगाने, निग्रह (ग्रीवा पकड़ कर नीचे दबा देना,) प्रग्रह (पंठ खेंच कर चित्त गिरा देना) और अन्य २ दावों के करने से बड़ा शब्द होने लगा जिधर २ वह लड़ते हूए जाते थे उधर से मनुष्य हटते जाते थे कभी आगे कभी पीछे, कभी तिरछे कभी सामने एक दूसरे को खेंच ले जाता, दोनों के जाध मारने का ऐसा शब्द होता था जैसे लोहे के हथौड़े मारने से हुआ करता है ॥

यह युद्ध कार्तिक वदी प्रतिपदा से आरम्भ होकर तेरस तक रहा, दोनों ने इस अंतर में न ही कुछ आहार किया और न ही विश्राम किया, चतुर्दशी की रात्रि को जरासंध थक कर बैठ गया, श्री कृष्ण जी ने भीमसेन का इशारा किया शत्रु थका हुआ है युद्ध किये जाओ ॥

भीमसेन ने कहा महाराज इस पापी की कमर वस्त्र से दृढ़ बंधी हुई होने के कारण यह मेरे बल से रुकती नहीं है ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा तुम में जो देवता सम्बन्धी वायु का बल है इस समय तुम उस को जरासंध पर प्रगट करो ॥

भीमसेन ने जरासंध को उठा लिया और इधर उधर घुमा कर पृथ्वी पर पटक कर उस की पीठ में घोंट अड़ा कर

उस को खूब रगड़ २ कर गर्जन लगा, पुनः उसने उस की दोनों टांगों को पकड़ कर बीच में से चीर कर दो फाक कर डाला ॥

तब उन तीनों ने जरासंध की पताका धारी रथ को जोता और उस में बैठ कर उस स्थान पर गये जहां जरासंध ने सब राजाओं को कैद कर रखा था, उन सब राजाओं को उन्हों ने कैद से छुड़ा दिया, श्रीकृष्ण जी, भीमसेन और अर्जुन उन सब राजाओं को अपने साथ ले कर नगर के बाहर आए नगर वासी उन सब को देख कर बड़े चकित से होगए ॥

मुक्त हुये हुये राजाओं ने श्रीकृष्ण जी की पूजा की और कर बांध २ कर सविनय बोले, महाराज हम को आप ने दुःख रूपी कीच से छुड़ा कर धर्म का पालन किया है आप सदैव ऐसा ही करते आये हैं इस संसार में आप का बड़ा यश होगा अब हम आप के आधीन हैं जो आज्ञा दें वही हम करें यदि आप की आज्ञा के पालन करने में हमें कोई कष्ट भी होगा तो हम उस को बड़ी प्रसन्नता के साथ सहन करेंगे ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा राजा युधिष्ठर राजसूय यज्ञ कर के सम्राट पदवी प्राप्त करना चाहता है तुम सब लोग इस कार्य में उस की सहायता करो ॥

उन सब राजाओं ने कहा महाराज हम को आप की आज्ञा का पालन करना है हम यथाशक्ति राजा युधिष्ठर को

उस के इस कार्य में हर प्रकार की सहायता देंगे, यह कह कर उन राजाओं ने श्री कृष्ण जी को बहुत से रत्न आदि भेंट किये जिन को उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अंगीकार किया ॥

जरासंध का बेटा सहदेव बहुत से बहु मूल्य रत्न आदि लेकर अपने मंत्रिओं और पुरोहित सहित श्री कृष्ण जी के पास आया और दोनों कर बांध कर वह पदार्थ उन की भेंट किये जिन को श्री कृष्ण जी ने प्रसन्नता के साथ अंगीकार करके उस को अभय किया और उस को उस के पिता के राज्य पर अभिषेक करके नगर को लौटा दिया ॥

तब उन तीनों ने जरासंध का रथ लिया और उन रत्न आदि सब पदार्थों को साथ लेकर इन्द्र प्रस्थ में पहुंचे श्री कृष्ण जी ने युधिष्ठर से कहा तुम्हारे भाग्य से भीमसेन ने जरासंध को मार डाला है और सब राजा लोग जो उस दुष्ट ने कैद कर रखे थे मुक्त कर दिये गये हैं ॥

युधिष्ठर ने श्री कृष्ण जी का विधि पूर्वक पूजन किया और भीमसेन और अर्जुन को छाती से लगा लिया और उन सब मुक्त हुये हुये राजाओं से अवस्था के अनुसार यथा योग्य मेल करके सब को आदर और सत्कार से विदा किया वह युधिष्ठर से आज्ञा पाकर अपने २ देशों को चले गये और, श्रीकृष्ण जी भी सब सम्बन्धिओं से यथायोग्य मिल कर द्वारका को चल दिये ॥

पंद्रहवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव का उत्तर आदि चारों दिशाओं को जाना और बहुत से देश विजय करके अनेक बहु मुल्य पदार्थ इन्द्र प्रस्थ में लाना ॥

एक दिन जब पांचों पांडव एक स्थान में इकट्ठे बैठे हुए थे अर्जुन ने युधिष्ठर से कहा महाराज मुझ को श्रेष्ट धनुष्य, शस्त्र, बाण, पक्ष, पृथ्वी और सेना प्राप्त हो गई है इस कारण अब मेरी यह इच्छा है कि मैं किसी अभिजित मुहुर्त और अच्छी तिथी में उत्तर दिशा को जिस में बहुत सा धन है जाकर विजय करूं और उस ओर के सब राजा लोगों से कर लूं ॥

युधिष्ठर ने कहा बहुत अच्छा तुम ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन सुन कर शत्रुओं को दुःख और मित्रों को आनन्द देने वाली यात्रा करो, ऐसा करने से निश्चय विजय होगी ॥

अर्जुन ने वैसा ही कीया और बहुत सी सेना आदि अपने साथ लेकर उत्तर दिशा को चल दिया और सब से पहिले कुलिंद देश में पहुंचा इस देश के राजा को वहां पहुंचते ही बड़ी सुगमता से उसने अपने वश में कर लिया, तब वह अनर्त कालकूट और सुमंडल देशों के राजाओं पर विजय पाकर

और उन सब जीते हुए राजाओं को साथ लेकर शाकल द्वीप आदि सात द्वीपों में पहुंचा और वहां के प्रतिविन्ध्य आदि बड़े बड़े धनुर्धारी राजाओं से युद्ध करके उसने उनका पराजय किया उन को भी साथ लिया और आगे बढ़कर वह प्रावग्ज्योतिष नाम देश में पहुंचा यहां के पराक्रमी भगदत्त नामी राजा के साथ अर्जुन का बराबर आठ दिन तक युद्ध होता रहा नवमें दिन उस राजा ने अपने आपको असमर्थ प्रकट करके अर्जुन की शरण ली अर्जुन इससे कर देना अंगीकार करवा आगे को बढ़ा और उसने अंतर बाहर और उपगिरी आदि सब पहाड़ी देशों के राजाओं को जीत कर और उन से धन आदि ले कर उलूक वासी राजा बृहंत के देश में गया वहां का राजा अर्जुन की सेना के आने का हाल सुन कर अपनी सेना को नगर से बाहर ले आया और अर्जुन से युद्ध करने लगा, दोनों की खूब लड़ाई हुई राजा बृहंत को अर्जुन का पराक्रम अपने पराक्रम से अधिक प्रतीत हुआ उस ने बहुत से रत्न आदि लिये और अर्जुन की शरण ली. इस राजा को भी अर्जुन ने अपने साथ लिया और आगे जाकर राजा सेना बिंदु को जीती ॥

तब अर्जुन ने मेदापुर, वामदेव सुदामा, सुसंकुल और उलूक आदि देशों के राजाओं को अपने पास बुलाया और उनकी सहायता ले पञ्चगण नाम देश को जीता पुनः उसने राजा सेना बिंदु के देव प्रस्थान नगर को जीत कर वहां से सब राजाओं को साथ लिए हुए विश्वगश्व पौरव पर चढ़ाई की और उस के नगर को जीता रास्ता में चोरों और डाकुओं के जो जो स्थान

अर्जुन को बतलाये जाते वह उन में जाकर उन चोरों और डाकुओं को ढूंड २ कर निकालता, जो चोर और डाकू अपने दुष्ट कामों को छोड़ने की प्रतिज्ञा करते उन को छोड़ देता दूसरों को मार कर वहां ही उन के मकानों में लटका देता ॥

पुनः उसने काशमीरी वीर क्षत्रिय और दश मंडल सहित लोहित को जीता इस जय का समाचार पाकर त्रिगर्त, दाव और कोकनद आदि देशों के क्षत्रिय लोग अर्जुन की शरण में चले आए ॥

अभिसारी नाम बड़ी रमणीक नगरी, उरगा वासी और राचोमान को जय करके अर्जुन ने सिंह पुर नाम नगर का रास्ता लिया यह नगर चित्र आयुधों से रक्षित था अर्जुन ने इन से युद्ध किया और वहां के राजा पर जय पाई ॥

फिर वह और आगे बढ़ा और उस ने कुन्न और चोल नाम देशों के राजाओं को जीता और वहा से काम्बोज और दरद देशों के राजाओं पर चढ़ाई की और उन को भी पराजय किया ॥

तब वह ईशान दिशा की ओर चला. वहां उस ने बहुत से चोरों और डाकूओं को जो उस देश के वासियों को बहुत दुःख दिया करते थे मार कर यमपुरी में पहुंचाया। ऋषिक देश के राजा से अर्जुन का बड़ा युद्ध हुआ अंत में राजा हार गया और बड़े सुन्दर घोड़े और मोर उस ने अर्जुन को कर में दिये इसके पीछे अर्जुन हिमवत और निष्कुट पर्वत

पर गये और वहां के राजाओं को मार कर श्वेत पर्वत पर चल गये और वहां जा ठहरे ॥

अर्जुन श्वेत पर्वत से चल कर किंपुरषा वास देश को गया और वहा द्रुम के पुत्र के साथ बड़ा युद्ध करके उसे पाजय किया और उस से कर ले कर आगे हाटक नाम देश में पहुंचा यह देश इस समय गुह्यकों से रक्षित था अर्जुन ने इस २ I जीता और मान सरोवर पर पहुंचा और वहां पर अनेक मुनियों के दर्शन किये और उन में जो वृद्ध थे उन से नाना प्रकार के इतिहास और उपदेश सुने ॥

मान सरोवर से चल कर अर्जुन ने गंधर्वों के देश को विजय किया और गंधर्वों से वहुत से वहु मुल्य घोड़े कर में लिये इस से आगे हरि वर्ष देश था अर्जुन ने इस देश को जीतने की इच्छा की, वहां के द्वारपाल अर्जुन के पास आये और उस को कहा यह नगर ऐसा है कि मनुष्य कदापि भी इस देश को नहीं जीत सकते जो मनुष्य यहा आते हैं वह यहा से जीते नहीं लौटते हैं, यहा कभी युद्ध नहीं होता यहां के जो पदार्थ हैं उन को मनुष्य देख भी नहीं सकते, तुम्हारी जो इच्छा हो वह हमें से कहो हम उस को पूरा कर देंगे ॥

अर्जुन ने कहा राजा युधिष्ठर साम्राज्य किया चाहते हैं हम तुम्हारे कहने के अनुसार नगर के भीतर नहीं जाते तुम हम को युधिष्ठर के लिये कर दे दो ॥

उन द्वारपालों ने अर्जुन को दिव्य वस्त्र, आभरण, मणि

और मृगचर्म आदि दिये, अब अर्जुन उन सब रत्नों, पदार्थों आदि को ले कर इन्द्रप्रस्थ की ओर आये और वहां पहुंच कर उन्हों ने वह सब कुछ युधिष्ठर के सन्मुख रख दिया और उनकी आज्ञा लेकर राज भवन में गया ॥

सोलहवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का पूर्व दिशा को जीत कर चंदेरी के राजा से कर और अन्य स्थानों से बहुत सा धन आदि लेकर इन्द्रप्रस्थ में ॥ आना ॥

जिस दिन अर्जुन उत्तर दिश को विजय करने के लिये गया था उसी दिन भीमसेन पूर्व दिशा को जीतने के लिये चल पड़ा था भीमसेन ने अपने साथ बड़ी भारी हाथी घो., और रथों सहित सेना ली और पूर्व दिशा को चल कर पांचाल देश में पंहुचा उसने पांचाल के सब राजाओं के अनेक उपायों से अपने वश में किया, यहां से चल कर गंडक, विदेह और दशार्ण देशों के राजाओं को जीता पाञ्चल दो देशों के राजा तो सुगमता से जीते गये परन्तु दशार्ण का राजा जिस का नाम सुधर्मा था भीमसेन से विना शस्त्र युद्ध करना रहा अंत में भीमसेन ही प्रबल रहा राजा ने भीमसेन के बल को देख कर उस को अपना सेना

पति बना लिया तब भीमसेन आगे की ओर बढ़ा और अश्व मेध देश के राजा रोच मारिंग को उस के सहायकों सहित जीता पुनः भीमसेन को पूर्व के बाकी देशों के जीतने में बड़ी सुगमता होगई पूर्व दिशा को जीत कर वह दक्षिण की ओर चला और पुलिन्द नगर को और सुमित्र और सुकुमार नामी राजाओं को विजय करके अपने वश में किया ॥

इस के पीछे वह चंदेरी के समीप पहुंचा वहां के राजा शिशुपाल को जब उस के आने की खबर हुई तो वह उस को आगे से लेने के लिए आया उस ने भीमसेन का बड़ा सन्मान किया और कुशल क्षेम पूछ कर और अपना राज्य भीमसेन के निवेदन करके कारण पूछा, भीमसेन ने युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ का सारा वृतांत सुना दिया शिशुपाल ने उस को तेरह दिन अपने पास रखा और पुनः कर देकर बड़े आदर के साथ विदा किया ॥

चंदेरी से चल कर भीमसेन कुमार और कोशल देश में पहुंचा और वहां के राजाओं को जीत कर अयोध्या को चल दिया। यहां के दीर्घ यज्ञ नाम राजा को उस ने बड़ी सुगमता से अपने वश में कर लिया इस से आगे चल कर उस ने गोपाल कक्ष और उत्तर कोशल राजाओं को जीत कर मल्लों के स्वामी राजा को भी जीत लिया ॥

इस स्थान से भीमसेन हिमालय के पार्श्व में गया और थोड़े काल में उस ने वहां के सारे जलोद्भव देशों को अपने

आधीन कर लिया, पुनः उस ने छोटे २ स्थानों को जय करते हुये शुक्तिमत पर्वत को विजय किया, इस के पीछे वह काशी पहुंचा और वहां सुबाहु नामी राजा को जो युद्ध में विमुख नहीं होता था विजय किया फिर सुपार्श्व के समीप रहने वाले क्रथ नाम बड़े पराक्रमी राजा को विजय करके मात्स्य, मलद, अनध, अभय और पशु भूमि आदि देश और मद्धार पर्वत पर रहने वाले राजाओं को युद्ध करके अपने वश में किया ॥

यहां से भीमसेन उत्तर की ओर चला और रास्ता में उस ने वत्स भूमि, भर्ग निषाद और मणि आदि बहुत से छोटे २ राजाओं को जीत कर अपने आधीन किया, इस स्थान से चल कर उस ने दक्षिण मल्ल और भागवंत पहाड़ों को बड़ी सुगमता से जीत लिया और शर्मक वर्मक राजाओं को जीत कर आगे को बढ़ा यहां जनक वंशी जगती पति और वैदेहिक राजाओं को जीत कर शक और वर्षकों को थोड़े ही यत्न से जीत लिया, पुनः उस ने इन्द्र पर्वत के समीप किरातों के सात राजाओं को अपने वश में किया, तब वह सुह्म, प्रसुह्म और सपक्षों को विजय करके मगध देश को गया वहां के दंड और दंडधार राजाओं को विजय करके वह गिरि व्रजदेश में पहुंचा और जरासंध के पुत्र सहदेव से दण्ड ले कर उस को और दंडधार राजाओं को अपने साथ ले कर उसने कर्ण पर पराक्रम किया इस के साथ उस का बड़ा घोर युद्ध हुआ अंत में भीमसेन की जय हुई इस जय से बहुत से पहाड़ी राजा स्वयं ही भीमसेन की शरण में आगये ॥

इस के उपरांत भीमसेन मेदागिरी की ओर गया और वहां के सब बली राजाओं को उसने अपने बाहुबल से जीत कर मार डाला और पुंड्र देश के राजा वासुदेव और कौशकी कच्छ में वास करने वाले राजाओं को युद्ध में जीत कर राजा वंग के देश में गया और समुद्रसेन, चंद्रसेन, ताम्रलिप्त कर्वट देश क राजा सुह्म और साग के सब म्लेछ गणों को उस ने पराजय किया, इस के पीछे उसने लौहित को जाकर सागर और अनूप देशों में प्रवेश किया और वहा के सब म्लेच्छ राजाओं को भी पराजय किया ॥

इन सब राजाओं से कर में धन चंदन, अगर, वस्त्र, मणि, मोती, कम्बल, दोशाले, मृगचर्म, सोना, चांदी, मूंगा और नाना प्रकार के रत्नादि लेकर भीमसेन ने इकट्ठे कर लिए और यह सब कुच्छ लेकर इन्द्रप्रस्थ में आकर युधिष्ठर के आगे रख दिए ॥

सतारहवां अध्याय

—:०:—

सहदेव का सारी दक्षिण दिशा को विजय करके बहुत सा धन आदि लेकर इन्द्रप्रस्थ में आकर युधिष्ठर को निवेदन करना ॥

अर्जुन और भीमसेन के उत्तर और पूर्व दिशा को जात

समय सहदेव ने दक्षिण दिशा के भाजय करने के लिए युधिष्ठर से आज्ञा मांगी, युधिष्ठर ने उस को स्वचतु रागनी सेना दी और वह दक्षिण दिशा को चला, सब से पहिले सहदेव का शूरसेन और मत्स्य देश के राजाओं से सामना हुआ, इन के साथ उस ने खूब युद्ध किया सहदेव की जीत हुई और उन राजाओं ने हार मान कर कर देना स्वीकार किया, यहां से चल कर सहदेव ने राजा दंतवक्र को जिस के आधीन बहुत से राजा थे जीता और उस से कर देने का निबंध करके आगे चला। यहां उसने सुकुमार, सुमुनि और पटच्चरों सहित मत्स्यों को पराजय किया, यहां से चल कर उसने निषाद भूमि, गोशृंग पर्वत और राजा श्रेणी मंत्र को जीत कर नाराष्ट्र देश को वश में किया पुनः यह कुंतभोज के पास गया जिस ने सहदेव के शासन को अंगीकार किया॥

सहदेव यहां से चर्मरावती नदी के तट पर पहुंचा और यहा उस ने जभक के पुत्र से युद्ध कर उस को जीता और उस से कर ले कर दक्षिण दिशा को चला, वहां सेकों और अपर सेकों से युद्ध करके उन से कर लिया और उन को अपने साथ ले कर नर्वदा नदी के निकट पहुंचा वहा उसने अवंति देश के विंद और अनुविंद राजाओं को विजय किया और उस ने रत्नादि लेकर भोज कटक नगर में गया उस का यहा राजाओं के साथ बराबर दो दिन तक युद्ध होता रहा तीसरे दिन उन से भीष्मक, राजा कोशला, राजा वेणुतट कांतार पूर्व कोशला देश के राजा, नाटक के राजा, हेमवक,

मारूध, रम्भग्राम, नीच और आनर्तुक आदि राजाओं को युद्ध में जीता ॥

इस के पीछे उस ने आठविक नाम राजाओं का पराजय करके राजा वाताधिपको अपने आधीन किया और राजा पुलिन्द को जीत कर सहदेव दक्षिण की ओर चलागया वहां उस का युद्ध पाड़ु से एक दिन होता रहा इस को पराजय करके वह किष्किंधा गुफा के निकट पहुंचा और वहा वानरों के मयन्द और द्विविद नाम राजाओं से सात दिन तक युद्ध करता रहा आठवें दिन उन राजाओं ने युद्ध को बंद किया और सहदेव को बहुत से रत्न आदि देकर कहा कि हम को युधिष्ठिर के यज्ञ में विघ्न डालना अभीष्ट नहीं तुम यह लेजाकर उस के यज्ञ को पूर्ण करो ॥

सहदेव ने इस बात को मान कर उन से वह रत्न आदि ले लिये और माहिषमती पुरी में पहुंचा, इस नगरी के राजा नील से उस का बड़ा भारी युद्ध हुआ, सहदेव की सेना को बहुत सी हानि हुई अंत में अग्नि देव की सहायता से सहदेव ने राजा नील को इस बात पर उद्यत कर दिया कि वह राजा युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ सम्पूर्ण होने के लिये सहदेव का कर दे दे नील से कर ले कर सहदेव दक्षिण दिशा को चल दिया और वहा उस ने त्रैपुर, वेश्वर भाकृति कौशिकाचार्य को अपने वश में किया ॥

फिर सहदेव ने सुराष्ट्र देश के राजा को जीता और राजा रुक्म और राजा भीष्मक के पास दूत भेजा उन दोनों को श्रीकृष्ण जी के प्रभाव को समझ कर पाडवों के शासन को

अंगीकार किया। तब उसने शूर्पारक, ताला कटक, दंडक, सागर आदि द्वीपवासी म्लेच्छ योनि से उत्पन्न हुए राजा, निषाद, पुरुषाद, कर्णप्रवारण कालमुख जिन की उत्पत्ति मनुष्य और राक्षस से है, कोलिल गिरि, सुरभी पट्टन ताम्राह द्वीप, रामकपर्वत तिमिंगिल, एक पाद पुरुष, तालवन, आरबी आदि यवनों के देशों के राजाओं का पराजय किया और सब से दंड ले कर कच्छ देश की ओर चला, यहां से सहदेव ने विभीषण के पास अपना दूत भेजा विभीषण ने बड़ी प्रीति से उस के शासन को अंगीकार करके बहुत से रत्न, चन्दन, अगर, बहुमुल्य वस्त्र और मणि आदि देकर विदा किया, सहदेव जिन राजाओं को जीतता उन से कर लेने का नियम स्वयं ही लिखवा लेता, राजाओं का दिया हुआ धन इत्यादि लेकर सहदेव इन्द्र प्रस्थ में पहुंचा और उस सब धन को युधिष्ठिर से निवेदन करके आप आनन्द पुर्वक रहने लगा॥

अठाहरवां अध्याय

—:०:—

नकुल का पश्चिम दिशा को जीत कर बहुत सा धन लाकर युधिष्ठिर को देना॥

नकुल ने बड़ी भारी सेना ली और पश्चिम दिशा को विजय करने के लिये चला। सब से पहिले वह रोहितक पर्वत पर पहुंचा यहां उस का मत्तमयूर नाम शूरवीरों से बड़ा

युद्ध हुआ, नकुल ने उन दोनों को पराजय किया और मरु भूमि, शैरीषिक और महेत्थ पर्वतों के राजाओं से युद्ध करने के लिये आगे बढ़ा यह राजा सुगमता से उस के आधीन होगये तब नकुल का सामना आक्रोश राजर्षि से हुआ, इस से उस का बड़ा युद्ध हुआ और नकुल ने उस को जीत कर अपने वश में किया इस के पीछे उस ने दशार्ण देशों के राजाओं को जीत कर आगे का रासता लिया ॥

फिर उस ने शिवीत्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पंचकर्पट मध्यमकेय, वाटधान और द्विजों को जीत कर पुष्कर वनवासियों को अपने आधीन किया, यहां से चल कर उस ने उत्सवसंकेत नाम गण समुद्र के तट वासी ग्रामणीय पभीरगण को और अन्य पहाड़ी राजाओं को जीता। पुनः उस ने पांचाल देश, अपर पर्वत उत्तर ज्योतिष देश और कटपुर के राजाओं को वश में किया, इस के पीछे उस ने रामठ, द्वार पाल, हारहुण आदि पश्चिम देश के राजाओं को जीत कर वासुदेव जी के पास अपना दूत भेजा जिस ने नकुल के शासन को अंगीकार करके उस को रत्न आदि देदिये ॥

यहां से रत्न आदि लेकर नकुल अपने मामा राजा शल्य के पास पहुंचा और उस से सन्मान पाकर और रत्न आदि ले कर समुद्र की ओर चला यहां के म्लेच्छ, पल्हव, बरबर, किरात, यवन और शाकों को जीत कर और दश हज़ार ऊंठों पर रत्न इत्यादि पदार्थों को लाद कर इन्द्रप्रस्थ को लौटा और सकल धन आदि युधिष्ठिर को निवेदन किया ॥

उन्नीसवां अध्याय

—:o:—

युधिष्ठर का यज्ञ की सब सामग्री मंगवा कर यज्ञ करने को दीक्षित होना और सब राजाओं और ब्राह्मणों आदि को निमंत्रण भेजना ॥

जब सब ओर दिग्विजय हो गई तो युधिष्ठर के राज्य में प्रजा को हर प्रकार का सुख होने लगा, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र अपने २ कर्मों पर चलने लगे. समय पर वर्षा होने लगी अनाज की बहुती का कोई अंत न रहा जिस से व्योपार बहुत बढ़ गया, चोर, ठग, बटमार आदि इस देश से ऐसे भागे जैसे सूर्य उदय होने से अंधकार भागता है, झूठ बोलना किसी को नहीं आता था, आग लगने का कभी नाम तक न सुना जाता था, इन्द्र प्रस्थ में सदैव एक न एक राजा अपना कर देने के लिए अथवा युधिष्ठर के दर्शनार्थ आता ही रहता था, इस से युधिष्ठिर का कोष इतना बढ़ गया कि सैंकड़ों वर्ष में भी खर्च न हो सकता था, कोष को इतना भरा हुआ देख कर युधिष्ठर को राजसूय यज्ञ का विचार हुआ इस विचार को उसने अपने सुहृद्जनों पर प्रकट करके उनकी सम्मति ली, सब ने यही सम्मति दी कि अब आप इस यज्ञ के योग्य हैं ॥

इस विचार में श्री कृष्ण जी से भी सम्मति ली गई उन्हों ने

इस के करने की सम्मति दी और द्वारका से बहुत सी सेना और असंख्य धन लेकर और वहां का प्रबंध वसुदेव जी को सौंप कर इन्द्र प्रस्थ में आये और वह सब कुछ युधिष्ठर को निवेदन कर दिया जिस से युधिष्ठर के कोप की और भी वृद्धि हो गई, कोप की इस वृद्धि को देख कर पांडवों के शत्रुओं के मन शोक से भर गये ॥

युधिष्ठर ने श्रीकृष्ण जी का यथा योग्य सत्कार करके कुशल क्षेम पूछी और जब सब व्यास जी धौम्य आदि ऋत्विज भीम, अर्जुन, नकुल आदि अपने २ आसनों पर बैठ गए तो युधिष्ठर ने कहा हे श्रीकृष्ण जी आप की कृपा से इस समय सकल पृथ्वी मेरे वश में है और धन भी इस समय बहुत होगया है मैं चाहता हुं कि इस सकल धन को विधि अनुकूल ब्राह्मणों और अग्नि के निमित्त करूं यदि आप आज्ञा दें तो मैं राजसूय यज्ञ करूं इस यज्ञ से मेरे सब पाप दूर होजायेंगे ॥

श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठर की प्रशंसा की और कहा हे युधिष्ठर हम तुम्हारा कल्याण चाहने वाले हैं तुम इस यज्ञ का आरम्भ करो तुम्हारे इस यज्ञ के करने से हम भी कृत कृत्य होजायेंगे और इस के सम्बन्ध में जो कार्य हमारे योग्य हो हम उस को बड़ी प्रसन्नता से करेंगे ॥

युधिष्ठर ने कहा आप के आने से मुझ को पूरा निश्चय हो गया है कि मेरा संकल्प सफल और यज्ञ सम्पूर्ण होगा,

और उस ने सहदेव को आज्ञा दी कि मंत्रियों को साथ लेकर पुरोहित जी जो सामग्री कहें यज्ञ के लिये इकट्ठी करो और इन्द्रसेन, विशोक और पुरु सारथी को कहा तुम ब्राह्मणों की रुची के अनुकूल भोजन बनाने के लिये अन्न, रस और गंध आदि इकत्र करो ॥

सहदेव सामग्री ले आये और व्यास जी ने बड़े २ विद्वान वेदपाठी ब्राह्मणों को और ऋत्विजों को बुला लिया, इस यज्ञ में व्यास जी स्वयं ब्रह्मा, धनंजय गोती, सुसामा ऋषि साम वेदी, याग्यवल्क्य उध्वर्यु, पैल और धौम्य ऋषि होता और इन सब के पुत्र और शिष्य होत्रिक हुए और इन सब ने वेद-विधि के अनुकूल पुण्याह वाचन पढ़ा और ऋत्विजों ने शिल्प-कारों से यज्ञ स्थान में विधि के अनुकूल कुंड, वेदी और सुगंधित स्थान बनवाये ॥

पुनः युधिष्ठिर ने सहदेव को बुला कर आज्ञा दी कि तुम दूतों को भेजो कि वह सब देशों में शीघ्र जाकर ब्राह्मणों, राजाओं, वैश्यों और मान्य शूद्रों को बुलावा दे आवें, सहदेव ने वैसा ही किया। दूत चारों ओर को गये और नौता देकर थोड़े ही काल में लौट आये ॥

यज्ञ के लिये जो समय नियत किया गया था उस के आने पर ब्राह्मणों ने यज्ञ के लिये युधिष्ठिर को दीक्षा दी और वह दीक्षित हो कर अपने सब भाइयों, सहस्रों ब्राह्मणों, सुहृदों, मंत्री और नाना देशों से आये हुए क्षत्रियों और राजाओं सहित यज्ञ शाला में गया ॥

शिल्पकारों ने वहां ऐसे २ स्थान बनाये जहां सब ऋतुओं में उन में ठहरने वालों का हर प्रकार का सुख रहे इन स्थानों में अन्न आदि सब आवश्यक पदार्थ रखवा दिये गए वहां ब्राह्मण अनेक २ कथा कहते और नट आदि अपना कृत्य दिखलाते, जो वस्तु कोई मांगता उस को तत्काल दी जाती ॥

बीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर के यज्ञ में सहस्रों ब्राह्मणों और राजाओं का आना और युधिष्ठर का उन को यथायोग्य स्थान देकर सत्कार करना ॥

युधिष्ठर ने नकुल को आज्ञा दी कि तुम हस्तिना पुर में जाकर भीष्मजी, धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदि को और गुरूजी द्रोणाचार्य को लेआओ, नकुल वहां पहुंचे और उन सबको निमंत्रन दिया, द्रोणाचार्य जी ने वहां के सब ब्राह्मणों को इकत्र किया और इन्द्रप्रस्थ को चल दिये, भीष्मजी ने धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों को साथ लिया और वहां से चलकर इन्द्रप्रस्थ में पहुंचे, इन के अतिरिक्त विदुरजी, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, वृषकु, अचल, कर्ण, शल्य, सोमदत्त, यज्ञसेन, जयद्रथ, राजा शैल्य अपने पुत्र सहित वहां पहुंचे, काश्मीर, पांचाल, कलिंग,

बंग, द्राविड़, सिंहल, आदि देशों के राजाओं ने भी वहां जाकर नगर की शोभा को बढ़ाया। इन सब का सत्कार युधिष्ठिर की ओर से यथायोग्य किया गया और इन सबको पृथक २ स्थान जिनमें हर प्रकार के आवश्यक पदार्थ रखे हुये थे रहने के लिये दिये गये इन स्थानों में किसी प्रकार का कभी किसी को कष्ट न हुआ वरन उनमें ठहरने वालों को आनन्द ही आनन्द रहा इन स्थानों में विश्राम करने के पीछे सकल राजा और अन्य आये हुये लोग राजा युधिष्ठिर को जो बहुत से सदस्यों सहित यज्ञ शाला में बैठा हुआ था देखने के लिये गये वह सभा उस समय ऐसी शोभा देती थी जैसे रात्रि के समय तारा गणों के निकलने पर आकाश शोभा देता है ॥

इक्कीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का पृथक २ कामों पर पृथक २ मनुष्यों को नियत करना, उस का स्नान करना और भीष्म जी के कहने से श्री कृष्ण जी को अर्घ देना ॥

जब सब निमंत्रन किये हुए राजा, ब्राह्मण और अन्य लोग इकत्र होगये तो युधिष्ठर ने पृथक २ पुरुषों को पृथक २ कामों पर नियत कर दिया, दुःशासन भोजन के प्रबंध पर लगाया गया,

अश्वत्थामा ब्राह्मणों के परिग्रह के लिये नियत किये गए, संजय को राजाओं के सत्कार का काम दिया गया, भीष्म जी बिन त्यार हुये पदार्थों के ध्यान रखने के लिये लगाये गये, द्रोणाचार्य को स्वर्ण और रत्न आदि की रक्षा का काम दिया गया, कृपाचार्य को ब्राह्मणों के दक्षिणा देने पर लगाया गया और इसी प्रकार दूसरे सब काम पृथक् पृथक् करके अन्य संबंधी और सुहृदों को सौंप दिये गये, धृतराष्ट्र, सोमदत्त, जयद्रथ और बाल्हीक स्वामि बना कर बिठाये गए ॥

जो खर्च इस यज्ञ के संबंध में होता था वह विदुर जी द्वारा होता था, राजा लोग जो भेंट लाते थे वह दुर्योधन द्वारा राज कोष में डाली जाती थीं और ब्राह्मणों के चरण धोने का काम श्री कृष्ण जी ने आप ले रखा था ॥

कोई राजा ऐसा न था जिसने एक सहस्र से कम भेंट की हो सबने इस से बढ़ कर दिया, ईर्षा रखने वाले राजाओं ने भी इस यज्ञ के सम्बन्ध में भेंटें दे देकर यज्ञ कोष को बढ़ाया, इस समय युधिष्ठिर की सभा बड़े २ विद्वान ब्राह्मणों, ऋषियों और बड़े२ प्रतापवान तेजस्वी,पराक्रमी और लक्ष्मीवान राजाओं से अत्यंत सुशोभित हो गई राजाओं के सुंदर२औररत्नों केसमान चमकते हुए यान और विमान इन्द्र प्रस्थ के ऊपर ऐसे फिरते दिखाई देते थे जैसे देवताओं के विमान आकाश में फिरा करते हैं ॥

तब युधिष्ठर ने उस यज्ञ में स्थापित की हुई छः अग्नियों में हवन किया और सारे मनुष्यों को उन की कामनाओं के अनुसार तृप्त किया यज्ञ स्नान हो चुकने पर ब्राह्मणों ने

आपस में शास्त्र का विचार करना आरम्भ कर दिया एक ब्राह्मण एक श्लोक को लेकर कुच्छ अर्थ करता दूसरा उस के अर्थ को दूसरी ओर लेजाता तीसरा तीसरे प्रकार के ही अर्थ लगा देता इस समय वहां बड़ा आनन्द होरहा था ॥

नारद जी ने भी वहां दर्शन दिये और युधिष्ठर की लक्ष्मी और यज्ञ का आरम्भ देख कर वह बहुत प्रसन्न हुए और उन को वह सारी बात जो ब्रह्मा जी की सभा में मनुष्यों की बढ़ती गणना को कम करने के लिये देवताओं और श्री विष्णु भगवान के पृथ्वी पर जन्म लेकर मनुष्यों को नाश करके पुनः स्वर्ग में आ जाने की हुइ थी याद आ गई ॥

भीष्म जी उस समय युधिष्ठर के पास आये और उसको कहा, यह लोग जो बहुत दिनों से आये हुये हैं इन को छोड़ कर अब आप उन राजाओं, ऋत्विजों, मित्रों, स्नातक ब्रह्मचारियों और श्वशुर आदि संबंधीयों का जो इस यज्ञ के सम्बंध में आप के पास आये हैं यथा योग्य श्रेष्ठता और सामर्थ के अनुकूल क्रम से पूजन और सत्कार कीजिये और प्रत्येक को अर्घ दीजिये ॥

युधिष्ठर ने कहा बहुत अच्छा परंतु आप यह बतलाईये कि सब से पहिले अर्घ किस को दिया जाय आप सब से श्रेष्ठ किस को जानते हैं ॥

भीष्म जी ने कहा मैं श्री कृष्ण जी को सब से श्रेष्ठ समझता हुं सब से पहिले उन्हीं को अर्घ देना उचित है यह कह कर भीष्म जी ने सहदेव को आज्ञा दी और उस ने उठ

कर श्री कृष्ण जी को विधि पूर्वक अर्घ दिया और उन्हों ने उस को अंगीकार कर लिया ॥

श्री कृष्ण जीके इस मान को चंदेरी का राजा शिशुपाल न सह सका और वह मन में जलता भुनता हुआ युधिष्ठिर और भीष्म जी के पास जा कर श्री कृष्ण जी की निन्दा करने लगा ॥

बाईसवां अध्याय

—:o:—

राजा शिशुपाल का श्री कृष्ण जी की पूजा होना देख कर युधिष्ठर, भीष्म और श्री कृष्ण जी की निन्दा करना, युधिष्ठर का उस को समझाना और भीष्म जी का श्री कृष्ण जी के गुण वर्णन करके उन को पूजा के योग्य सिद्ध करना ॥

शिशुपालने कहा हे युधिष्ठिरमहात्मा राजाओं को छोड़कर वृष्णि वंशी कृष्ण की पूजा करनी तुझको उचित न थी, राजा पांडु के पुत्र होते हुये तुम्हारा यह आचार तुम्हारे योग्य नहीं, तुम सब अभी अज्ञानी हो और भीष्म को बुढ़ापे के कारण शास्त्र का सिद्धांत भूल गया है, वृष्णि वंशीयों में आजतक कभी कोई राजा नहीं होता उस वंश के कृष्ण की राजाओं

के मध्य में राजाओं के समान पूजा अयोग्य है, यदि तुम ने उस की वृद्ध अवस्था होने से उस का पूजन किया है तो उस का पिता वसुदेव उस से वृद्ध है तुम को उस की पूजा करनी उचित थी यदि तुम ने प्रिय होने से उस का पूजन किया है तो राजा द्रुपद तुम्हारे सम्बन्धी कम प्रिय नहीं हैं और यदि आचार्य पद को विचार में लाकर तुमने उस की पूजा की है तो द्रोणाचार्य उस से आयु में बड़े और गुणों में श्रेष्ठ हैं और यदि ऋत्विज जान कर तुम ने उस को पूजा है तो व्यास जी से बढ़ कर ऋत्विज कोई नहीं होसकता ॥

कृष्ण ने ऋत्विज है, न आचार्य है और न ही राजा है हे युधिष्ठर उस की किस बात को देख कर तुम ने भीष्म, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, राजा भीष्मक, राजा रुक्म, एकलव्य, शल्य और कर्ण को छोड़ कर उस की पूजा की है, यदि तुम ने कृष्ण ही की पूजा करनी थी तो हम को क्यों बुलाया था हम ने जो कर तुम को दिया था तुम्हारे धर्म मार्ग में प्रवृत्त होने के कारण दिया था, तुम ने हम सब को अयोग्य जान कर उस का पूजन करके हमारा अपमान किया है ॥

भला इस से बढ़ कर हमारा और क्या अपमान होगा कि तुमने हम सब तिलक धारी राजाओं को तिरस्कार करके एक ऐसे मनुष्य का पूजन किया जिस के एक भी राज्य चिन्ह न था, हे युधिष्ठर संसार में तुम इस समय सब

राजाओं में से धर्मात्मा राजा विख्यात हो रहे हो इस समय तुम्हारा वह धर्म कहां चला गया है क्या यह वही कृष्ण नहीं जिस ने अपने राजा को मारा और जरासंध को अन्याय से मरवा डाला इस से हे युधिष्ठर हम जानते हैं कि अब तुम्हारी वह धर्मात्मता जाती रही है और कुमता ने तुम को घेर लिया है ॥

तब शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की ओर मुख करके कहा, हे कृष्ण यदि युधिष्ठर ने किसी कामना के वश में हो कर यह अनुचित बात करदी थी तो तुम को तो उचित था कि तुम आप ही कह देते कि मैं इस मान के योग्य नहीं हूं, इस से तुम यह न समझना कि इन राजाओं का अपमान हुआ है पाडवों ने पूजा के बहाने तुमसे हंसी की है यह तुम्हारा पूजन नपुंसक का विवाह के समान है जो राजा नहीं उस का राजा के समान पूजन करना अंधे को कुच्छ दिखाना है, हमने तुम को भीष्म को और युधिष्ठर को तुम तीनों को देख लिया है, यह कहते हुये शिशुपाल सभा में से उठ कर अपने पक्ष के राजाओं को साथ ले कर बाहर चला गया ॥

युधिष्ठर शिशुपाल के पीछे गया और सांत्वता के साथ उस को कहने लगा हे शिशुपाल तुम को ऐसा कहना उचित न था परूष बचन बोलना बड़ा अधर्म और निरर्थक है तुमने जो यह कहा है कि भीष्म जी वृद्ध अवस्था के कारण धर्म भूल गये हैं ऐसा कदापि नहीं है तुम को उचित नहीं था कि तुम भीष्म जी का ऐसा अपमान करते इस समय यहां तुम से

वृद्ध राजा लोग बैठे हुए हैं जब उन्हों ने श्री कृष्ण जी की पूजा में कोई तर्क नहीं उठाई तो तुम्हें भी नहीं उठानी चाहिये, जैसे भीष्म जी कृष्ण जी को जानते हैं वैसे तुम नहीं जानते ॥

भीष्म ने कहा हे युधिष्ठिर शिशुपाल सांत्व वचन कहने के योग्य नहीं क्योंकि यह श्री कृष्ण जी की पूजा को जो लोक के वृद्धतम हैं नहीं देख सकता, श्री कृष्ण जी केवल हमारे ही पूज्य नहीं वरन तीनों लोकों के पूज्य हैं जो क्षत्री दूसरे क्षत्री को युद्ध में जीत कर छोड़ देता है वह हारे हुए का गुरू होता है, मैं इन सब राजाओं में से किसी एक को भी ऐसा नहीं देखता जिस को श्री कृष्ण जी न जीत सकते हों इन्हों ने बहुत से क्षत्रियों को रण में आगे जीता है, शिशुपाल की बुद्धि इस समय ठिकाने नहीं श्री कृष्ण जी वेद और वेदांगो को पूर्ण रीति से जानते हैं और शूर वीर ऐसे हैं कि संसार भर में ऐसा कोई शूर वीर नहीं, नीति में वह इतने निपुण हैं कि संसार के सकल राजा इकट्ठे हो जायें तो इस विषय में इन की तुलना नहीं कर सकते इन गुणों को जानते हुए हमने इन को यह मान दिया है ॥

तेईसवां अध्याय

—:o:—

श्री कृष्ण जी की पूजा पर राजा शिशुपाल की

प्रेरणा से सब राजाओं का क्रोध कर के यज्ञ विध्वंस करने की सलाह करके युद्ध करने पर तत्पर होना, युधिष्ठर का उन को इस दशा में देखकर भीष्म जी से उपाय पूछना और उन का श्री कृष्ण जी का महत्व कह कर युधिष्ठर का भय हटाना ॥

शिशुपाल की बात पर सहदेव भी क्रोध से भर गया और भीष्म का कथन समाप्त होने पर बोला हम ने श्री कृष्ण जी की पूजा उन को पितर, गुरु, आचार्य और सब प्रकार से बड़ा जान कर की है जो इस पूजा को नहीं सह सकता वह उठ कर हम को इस का कारण बतल वे नहीं तो हम उसे नाश कर डालेंगे ॥

सहदेव के यह शब्द सुन कर सब राजा लोग चुप हो रहे किसी ने सिर तक न हिलाया और न ही उन में से कोई अपने स्थान से उठा ॥

नारद जी जो उस समय वहां बैठे थे और जो सब राजाओं और अन्य बैठे हुये पुरुषों को भले प्रकार जानते थे बोले जो मनुष्य कमल नयन कृष्ण जी की पूजा नहीं करता वह मृतक के समान है उस से बात करना भी उचित नहीं ॥

पुनः सहदेव ने सब पूजा योग्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों की पूजा करके उस कर्म को सम्पूर्ण किया ॥

यह बात सुन कर शिशुपाल का क्रोध आगे से बढ़ गया

और उस ने अपने नेत्र लाल करके भयानक शब्दों में दूसरे सब राजाओं से कहा ॥

इन पांडवों ने हमें यहां बुला कर और हमारे सन्मुख कृष्ण से तुच्छ मनुष्य को जो कभी राज सिंहासन पर नहीं बैठें वरन गौओं को चरा कर अपना पेट पालता रहा है पूंज कर हमारा अपमान किया है इस कारण हमें उचित है कि हम इन पांडवों और यादवों के साथ युद्ध करके इस यज्ञ को विध्वंस करदें ॥

शिशुपाल की इस बात को सुन कर सब राजा क्रोध से भर गये और कहने लगे ऐसा युद्ध करना चाहिए जिस से युधिष्ठिर का अभिषेक और कृष्ण की पूजा न होने पावे, युद्ध निश्चित होगया और सब राजा अपनी अपनी सेना ले कर इस प्रकार गरजने लगे जिस प्रकार शेर अपने भोजन मांस से हटाय जाने पर गरजता है, श्रीकृष्ण जी उन के इस अभिप्राय को जान गये ॥

युधिष्ठिर उन सब राजाओं को क्रोध से भर कर युद्ध के लिए तत्पर हुआ हुआ देख कर अपने पितामह भीष्म जी से पूछने लगा अब क्या करना उचित है ॥

भीष्म जी ने कहा तुम किसी बात का भय मत करो, यह सब श्वान हैं और श्रीकृष्ण जी सिंह हैं जिस समय श्रीकृष्ण जी ने अपना बल दिखलाया यह सब कुत्तों के समान यहां से भाग निकलेंगे, शिशुपाल की मृत्यु समीप आ पहुंची है जो उस ने श्रीकृष्ण जी की निन्दा करनी और तेरे विरुद्ध

राजाओं से सम्मत करना विचारा है, जिस समय किसी की मृत्यु होने वाली होती है उस की बुद्धि विपरीत हो जाती है ॥

चौबीसवां अध्याय

—:०:—

राजा शिशुपाल का भीष्म जी की निन्दा करना, भीमसेन का उस के वचनों को सुन कर क्रोध में आना और भीष्म जी का उस के क्रोध को शांत करना ॥

शिशुपाल ने कहा हे भीष्म तुम कुल के नाशक हो क्या वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो कर इतने राजाओं को भय दिखाने वाली बात कह कर तुम लज्जित नहीं होते, तुम तो इस समय कौरव कुल में उत्तम पुरुष हो तुम्हें उचित नहीं कि ऐसी अधर्म की बात कहो पांडवों ने भी नहीं सोचा और वह तुम्हारे पीछे लग कर अपना नाश कर रहे हैं, मैं नहीं जानता कि तुम लोगों ने श्रीकृष्ण के पूतना वध आदि कुकर्मों को भूल कर उस को ब्रह्म क्यों कर समझ रक्खा है मैं चकित हु कि ऐसे पुरुष को ब्रह्म कहने से तुम्हारी जिव्हा टुकड़े क्यों न होगई, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उस ने बाल्यावस्था में बकासुर, केशी और वृषासुर दैत्यों को जो युद्ध करना नहीं जानते थे मार डाला, भला शकट को

जो जड़ पदार्थ हैं अपने पाऊं से गिरा कर इस ने क्या कर लिया, और सात दिन तक जो इसने अपने हाथ पर पर्वत को उठाय रखा वह क्या बात है, इस ने जो गोवर्द्धन पर्वत का बहुत सा अन्न खाया है उस में कौन सी आश्चर्य की बात है, क्या कृष्ण ने कंस का अन्न खा कर और बलवान हो कर उसी को मार कर कृतघ्नता नहीं दर्शाई, हे भीष्म तुम अपनी कुल में अधम हो तुमने सन्तों का मत नहीं सुना, संत कहते हैं कि मनुष्य को स्त्री, गौ, ब्राह्मण, अन्न दाता और जिस के पास रहे इन पाचों, पर शस्त्र चलाना उचित नहीं इस कृष्ण ने इन कर्मों के विपरीत किया गौ (वृषासुर) स्त्री (पूतना) अन्नदाता (कंस) जिस के पास रहा (कंस) को मार डाला था तुम इस को किस प्रकार से पूजा के योग्य ठहराते हो ॥

हे भीष्म भला तुम जो अपने आप को सकल धर्म के जानने वाला कहते हो वह कौनसा धर्म है जिस से तुम काशीराज की अम्बा नामी कन्या को जो दूसरे राजा से प्रीति रखती थी और जिस के पिता ने उस को उस राजा को ब्याह देने का वाक दान दिया हुआ था हर कर ले गये थे विचित्रवीर्य तुम से अधिक धर्म जानने वाला था जिस ने उस अम्बा को स्वीकार न किया तुम्हारे सन्मुख उस की स्त्रियों से दूसरे मनुष्यों से संतान उत्पन्न हुई तुम्हारा धर्म कुच्छ नहीं है, तुम्हारा जो ब्रह्मचर्य है वह भी मुझ को क्लीव और मोह होने के कारण धारा हुआ जान पड़ता है ॥

हे भीष्म मुझे यह भी जान पड़ता है कि तुम ने कभी बड़ों

की सेवा नहीं की, कहा जाता है यज्ञ करना, दान देना, वेद पढ़ना और ऐसा यज्ञ करना जिस में बहुत सी दक्षिणा खर्च हो एक पुत्र के होने के सोलहवें भाग के सम नहीं होते हैं और यह भी सुनने में आया है कि बहुत से व्रत और उपवासों के करने का फल संतान हीन मनुष्यों को नहीं मिलता जैसे मंदपाल ऋषि को न मिला और वह पुनः इस पृथ्वी पर संतान उत्पन्न करने के लिये आया सो हमें ऐसा जान पड़ता है कि तुम संतान हीन और वृद्ध होने से धर्म के विरुद्ध चलने के कारण हम सब से उस हंस के समान मारे जाओगे जिस का हाल मैं तुम से कहता हूं ॥

किसी पहिले समय में एक हंस समुद्र के तट पर रह कर पक्षियों को उपदेश किया करता था कि धर्म करो धर्म करो परंतु वह आप सदैव उस के विपरीत चलता था इस उपदेश के बदले वह पक्षी नाना प्रकार के भोजन लाकर उस को दिया करते एक समय वह पक्षी कहीं दूर देश में गये और अपने अंडे उस हंस के पास छोड़ गये उस ने यह जान कर कि वह दूर देश में गये हैं बहुत काल पीछे आवेंगे उन अंडों को खालिया बाकी जो पक्षी पीछे रह गये थे उन में से एक ज्ञानी पक्षी ने इस बात को जान लिया और सब पक्षियों पर इस बात को प्रकट कर दिया उन सब पक्षियों ने उस हंस को पापी जान कर मार डाला, हे भीष्म अब तुम भी उस हंस के समान हम जाति वालों से मारे जाओगे ॥

हे भीष्म यदि कृष्ण प्रशंसा योग्य होता जैसाकि तुम कहते हो

तो वह जरासंध के पास उलटे रास्ते से क्यों जाता और छल से ब्राह्मण का रूप क्यों धरता, जरासंध ने इस को पाद्य अर्घ न दिया वह जानता था कि यह दास है ॥

हे भीष्म तुम ने पांडवों को धर्म मार्ग से हटा कर अधर्म की ओर लगा दिया है जिस से वह अभी तक कृष्ण को अच्छा जानते हैं ॥

शिशुपाल की इन बातों को सुन कर भीमसेन क्रोध से भर गया और आंखें लाल किए हुए उस को मारने के लिए उछल उछल कर जाता और भीष्म जी उस को पकड़ कर शांत करते, शिशुपाल ने कहा हे भीष्म इस को आने दे और देख यह मेरे प्रभाव से इन राजाओं के देखते देखते इस प्रकार भस्म होजायेगा है जैसे पतंगा दीपक पर मरता है ॥

पच्चीसवां अध्याय

—:०:—

भीष्म जी का भीमसेन को शिशुपाल की उत्पत्ति और श्री कृष्ण जी से बर पाना कहना, शिशु पाल का भीष्म और कृष्ण की निन्दा करना और सब का आपस में विवाद होना ॥

भीष्म जी ने कहा हे भीमसेन चंदेरी के राजा के वंश म

उत्पन्न होते समय शिशुपाल की चार भुजा और तीन आखें थीं उत्पन्न होते ही यह गर्दभ के समान रेंकने लगा इस कारण इस के पिता माता और संबंधियों ने इस को त्याग देने का विचार किया, उसी समय यह आकाश वाणी हुई "डरो मत यह राजा ही का पुत्र है बड़ा बलवान और श्रीमान होगा, सावधानी से इस का पालन करो इस की मृत्यू केवल महा काल से है जो संसार में प्रकट हो चुका है" रानी ने कर बांध कर विनय पूर्वक पूछा देवता आदि किस के हाथ से यह मरेगा, इस पर यह अकाश वाणी हुई "जिस की गोद में जाने से इस की दो भुजायें गिर पड़ें और ललाट का तीसरा नेत्र बैठ जाय उस के हाथ से यह मारा जायगा" ॥

सकल देशों में यह बात फैल गई कि चंदेरी के राजा के हां एक पुत्र चार भुजा और तीन नेत्र वाला उत्पन्न हुआ है और उत्पन्न होते ही वह गदे के समान रेंकता था, सब राजा उस को देखने के लिए चंदेरी में आए उस का पिता उस को हर एक राजा की गोद में बिठलाता परंतु किसी की गोद में बैठने से उस की न भुजा गिरीं और न नेत्र बैठा ॥

तब बलदेव जी और श्रीकृष्ण जी अपनी फूफी (शिशुपाल की माता) को मिलने के लिए आये और अपने फूफा को दंडवत कर बैठ गये। शिशुपाल की माता ने अपने भतीजों का बड़ा आदर और सन्मान किया और शिशुपाल को श्रीकृष्ण

जी की गोद में दे दिया, इस के कृष्ण जी की गोद में बैठते ही इस की दो भुजायें गिर पड़ीं और ललाट का तीसरा नेत्र बैठ गया, यह देख कर उस की माता भयभीत हो गई और अपने भतीजे श्रीकृष्ण जी से कहने लगी ॥

हे कृष्ण तुम इस संसार में मनुष्यों का भय दूर करने और उन को आसरा देने वाले हो मैं भी भय से दुःखी हो कर तुम्हारा आसरा चाहती हूं ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा हे फूफी तू डर मत और जो बर तूने मांगना है मुझ से मांग ले मैं तुझ को दूंगा ॥

शिशुपाल की माता ने कहा तुम मेरे इस पुत्र के अपराधों को क्षमा करना केवल यही वर मैं चाहती हूं ॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा मैं इस के सौ अपराध यदि वह इस के वध के योग्य भी होंगे क्षमा करूंगा ॥

हे भीमसेन वह वर ही इस मंद बुद्धि शिशुपाल को गर्वित किये हुए है जिस से वह तुम को युद्ध के लिए बुलाता है, यह अच्छा नहीं कर रहा, जान पड़ता है कि यह श्रीकृष्ण का अंश होने से वह इस को अपने में लय करना चाहते हैं ॥

भीष्म जी की इस बात को सुन कर शिशुपाल बड़े क्रोध में भर गया और बोला, हे भीष्म तुम तो कृष्ण की स्तुति कैदियों के समान कर रहे हो, भला वह क्या कर सकता है यदि तुम्हें दूसरे की स्तुति ही भाती है तो द्रोणाचार्य,

अश्वत्थामा, कर्ण, दरद, द्रुपद, जयद्रथ, वाल्हीक इत्यादि की जो उत्तम और श्रेष्ठ पुरुष हैं उन की स्तुति करो इन उत्तम और वीर राजाओं को छोड़ कर इस कृष्ण की जो राजा नहीं स्तुति करना तुम्हें योग्य नहीं ॥

सब यादव राजा भोज की प्रजा हैं। फिर इस यादव को जो कंस की गौओं का पालने वाला है जगत कर्ता कैसे बतलाते हो, जान पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि इस समय डामा डोल हो रही है मुझे यहां भूलिंग पक्षी का वृत्तांत स्मर्ण आया है यह पक्षी हिमालय पर्वत के पाशर्व में रहता है और सदैव यही कहा करता है बिना विचारे कोई काम मत करो परन्तु वह आप बिना विचारे सारे काम किया करता है सो इस पक्षी का सा हाल आज कल तुम्हारा है तुम इन राजाओं की ही इच्छा से जीते हुए बैठे हो इस समय, तुम्हारे सम दुष्ट कर्म करने वाला संसार भर में कोई नहीं है ॥

भीष्म जी इन कड़वे वचनों को सुन कर बोले जिन राजाओं की इच्छा से तुम हम को जीता हुआ बताते हो उन सब को हम तिनके के बराबर समझते हैं ॥

भीष्म जी के इन शब्दों को सुन कर बहुत से राजा क्रोध भर गये, कुच्छ हंसने लगे, कुच्छ उस की निंदा करने लगे और कुच्छ कहने लगे यह वृद्ध भीष्म विषयों में लिप्त होने से क्षमा के योग्य नहीं हमें उचित है कि हम सब मिल कर इस को पशुवत मार कर इस के शव को, अग्नि में जला दें ॥

भीष्म जी ने कहा तुम सब लम्बी चौड़ी बातों को छोड़ो और अपने कथनानुकूल मुझे पशुवत मारो या अग्नि में जलाओ मैं तुम सब से अकेला ही समझ लेता हूं जिन का काल निकट आगया है वह इन चक्र और गधा धारी श्री कृष्ण जी को युद्ध के लिये बुलाते दीख रहा है । जब तक श्री कृष्ण जी इस शिशुपाल को मार कर इस की समाप्ति नहीं करेंगे तब तक यह बाकी राजा लोग भी शांत न होंगे ॥

छब्बीसवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का शिशुपाल के एक सौ अपराध पूरा होने पर उस को मार डालना, यज्ञ का समाप्त होना, राजाओं का अपने अपने देशों को जाना और सभा में दुर्योधन और शकुनि का रह जाना ॥

शिशुपाल ने इन शब्दों को सुन कर कहा हे कृष्ण आओ मुझ से युद्ध करो मैं अभी तुम को पाडवो सहित मारता हूं, इन पांडवों ने सब राजाओं का अपमान करके तुम दुष्ट बुद्धि अराजा, दास और पूजा के अयोग्य की पूजा करके अपने आप को इस योग्य बनाया है कि इन का वध किया जावे ॥

श्री कृष्ण ने बड़े मधुर शब्दों में उन उपस्थित राजाओं से कहा यद्यपि यह शिशुपाल यादव कुल की कन्या से उत्पन्न हुआ है परन्तु यह सदैव यादवों से द्वेष रखता चला आया है भानजा होकर इस का ऐसा करना हिंसा करना है पहिले इस ने हम सब के प्राग्ज्योतिष नगर को चले जाने पर द्वारका को आग लगादी, पुनः यह रैवत पर्वत पर क्रीड़ा करते हुए भोज राजा को साथीयों सहित मार बांध कर ले गया फिर इसने हमारे पिता के अश्वमेध यज्ञ को विध्वंस करने के निमित्त रक्षकों को मार कर घोड़ा हर लिया और तपस्वी बभ्रू की स्त्री को जो सौवार देशों को जा रही थी अधर्म से हरण किया, फिर इस ने अपने मामा की पोती भद्रा को उस के पति करूप का रूप धर कर सुसराल जाते हुए रासता में छल लिया यह अपराध तो इस के पीछे के हैं अब इस ने आप लोगों के सन्मुख जो कुच्छ कहा है वह आप सब ने सुन लिया है अब तक तो मैं अपनी फूफी के कारण इस को क्षमा करता रहा हूं परन्तु अब इस का हौसला बहुत बढ़ गया है इस से इस का अंत काल आ पहुंचा है इस ने रुक्मणी से भी अपना विवाह करना चाहा था परन्तु उस समय यह ऐसे रह गया जैसे शूद्र श्रुति से रहता है ॥

इस समय सब राजा लोग शिशुपाल की निंदा करने लगे वह इस निंदा को सुन कर खिल खिला कर हंस कर कहने लगे ।

हे कृष्ण तुम्हे मुझ को रुक्मणी का पहिला पति बतलाते

हुए लज्जा नहीं आती तुम से बढ़ कर और कौन निर्लज्ज होगा जो इतनी बड़ी सभा में अपनी स्त्री के पाहिले पति का नाम ले, तुम जो हम पर अपनी फूफी (हमारी माता) का कारण बतलाते हो उस की हम को कुच्छ पवाह नहीं, तुम्हारे क्षमा और क्रोध को हम क्या जानते हैं इस से हमारा तू क्या बिगाड़ सकता है ॥

कृश्न चन्द्र जी ने झट अपने चक्र का स्मर्ण किया और उस चक्र के उन के हाथ में आने पर उन्हों ने सब राजाओं से कहा ॥

मैंने इस की माता से इस के एक सौ अपराध क्षमा करने की प्रतिज्ञा की हुई थी अब इस के अपराध पूरे हो चुके हैं अब मैं इस का नाश करता हूं, यह कह कर उन्हों चक्र को छोड़ दिया जिस से शिशुपाल का शिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा, इस साथ पृथ्वी कांप उठी, बिजली गिरी और बिना बादल आकाश से वर्षा होने लगी, कृश्न जी के इस काम से बहुत से राजा चुपके बैठे रहे, बहुतसों ने उन की प्रशंसा की और कई क्रोध से भर गये, ऋषियों, महात्माओं, ब्राह्मणों और कई राजाओं ने उन के पास जाकर उन की स्तुति की ॥

युधिष्टर के छोटे भाईयों ने उस से आज्ञा ले कर शिशुपाल के शरीर का दाह संस्कार किया और उस के पुत्र को चंदेरी देश की गद्दी का राज तिलक दिया ॥

शिशुपाल के शरीर त्यागने पर अन्य किसी राजा ने

चूं तक न की और युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ ॥

युधिष्ठिर के यज्ञ स्नान करने पर सब राजाओं ने उस के पास आ कर बधाई दी और कहा आप ने सम्राज्य पद पा कर अजमीढ़ वंशी राजाओं के यश की वृद्धि की है और हम सब का यथा योग्य सत्कार किया है अब आप हम को आज्ञा दें कि हम अपने २ देशों को जावें ॥

युधिष्ठिर ने उन सब का धन्यवाद किया और अपने भाईयों से कहा इन सब को अपने राज्य की सीमा तक पहुंचा आओ ॥

अर्जुन इत्यादि चारों भाईयों और द्रौपदी के पुत्रों और युधिष्ठिर के अन्य समीपी सम्बन्धियों ने ऐसा ही किया और वह सब राजाओं को अपने राज्य की सीमा तक पहुंचाने के लिए गये, ब्राह्मण इत्यादि जो लोग इस यज्ञ के संबंध से यहां आये हुये थे युधिष्ठिर ने उन सब को आदर और सन्मान के साथ विदा किया ॥

अब श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर से कहा, हे युधिष्ठिर तुम्हारी प्रारब्ध से तुम्हारा राजसूय यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण होगया है अब मैं भी द्वारका को जाना चाहता हूं ॥

युधिष्ठिर ने कहा यह जो कुच्छ भी हुआ है सब आप की कृपा से हुआ है पहिले अपने जरासंध को मार कर अपना ऐश्वर्य दिखलाया और पुनः सारे राजाओं और क्षत्रियों को वश में रखा, विघ्न डालने वाले दुष्ट शिशुपाल को मारा

सब राजाओं से आप ही ने कर दिलाया, आप के जाने के लिए मैं क्यों कर कहुं, आपके विना मुझे आनन्द नहीं रहता मैं इस वात को भी विचार रहा हुं, कि द्वारका में जाना भी आप का अवश्यक है ॥

श्री कृष्ण जी प्रसन्न हो कर युधिष्ठर का साथ लिये कुंती के पास पहुंचे और उस को युधिष्ठर के सम्राज्य पदवी पाने की वधाई दी और उस से द्वारका जाने की आज्ञा मांगी, पुनः द्रौपदी और सुभद्रा से मिल कर राज भवनों से वाहर आकर स्नान किया और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन सुना, दारुकि सारथी का रथ जिस पर गरुड़ के चिन्ह की ध्वजा लगी हुई थी वाहर खड़ा था उस की प्रदक्षिणा, की और स्वार हो कर द्वारका की ओर चले, युधिष्ठर, अर्जुन, भीमसेन, सहदेव, और नकुल पांचों भाई और अन्य कई संबंधी और प्रविष्ठत उन के साथ २ पैदल हो लिये, श्री कृश्न जी ने अपने रथ को थम लिया और कहा, तुम अब जाओ और सावधानी के साथ अपनी प्रजा की रक्षा करते रहो और सारे भाई आपस में प्रीति पूर्वक इस प्रकार से रहो जैसे इन्द्र के समीप देवता रहते हैं श्री कृष्ण जी ने द्वारका की ओर रथ को हाका और वह लोग अपने अपने स्थानों को चले आये, अब युधिष्टर की सभा में केवल एक दुर्योधन और शकुनि वाकी रह गये ॥

सत्ताइसवां अध्याय

—:०:—

व्यास जी का युधिष्ठर को आने वाले तेरह वर्ष के पीछे कुल क्षत्रियों के नाश होना बतला कर अपने शिष्यों सहित कैलाश पर्वत पर चले जाना और युधिष्ठर का अपने भाईयों से यह सब हाल कह कर चिंता में पड़ना ॥

इस यज्ञ की समाप्ति पर एक दिन श्री व्यास जी अपने शिष्यों सहित घूमते हुये इन्द्र प्रस्थ में पहुंचे, युधिष्ठर और उसके भाई उन को देख कर बड़े प्रसन्न हुये और खड़े होकर विधि पूर्वक उन का पूजन किया और अति उत्तम सुन्दरी आसन पर बैठाया, यज्ञ की सारी वारतालाप हुई उस में शिशुपाल और उस का श्रीकृश्न जी की निन्दा करने पर उन के हाथों उसका मारा जाना और उस के मरने पर भूकंप और बिना बादल आकाश से वर्षा होना इत्यादि हाल भी आया ॥

व्यास जी ने कहा भूकम्प एक बड़ा भारी उत्पात है इस के साथ ही जो बिना बादल आकाश से वर्षा हुई है वह भी ठीक नहीं इन दोनों के साथ बिजली का गिरना भी ठीक नहीं, इन तीनों का फल दुःख ही दुःख लिखा है, पहिले तुम सब पर बारह वर्ष बड़ा दुःख रहेगा और तेरहवें वर्ष तुम्हारे कारण दुर्योधन की दुष्टता से पृथ्वी भर के सकल क्षत्रियों का अर्जुन

और भीमसेन द्वारा नाश होगा, अब तुम सावधानी से अपना राज्य काज करो इस होनहार पर चिंता मत करो यह कह कर व्यास जी अपने शिष्यों सहित कैलाश पर्वत की ओर चले गये ॥

युधिष्ठर अपने भाईयों को साथ ले कर इस पर चिंता करने लगा उस ने अपने भाईयों से कहा मैं चाहता हूं कि यह कलंक का टीका मेरे माथे पर न लगे इस कारण राज को छोड़ कर प्राण त्याग दूं, मेरा जीना व्यर्थ है ॥

अर्जुन ने कहा जब आप होनहार को मानते हैं तो शोच और चिंता को छोड़कर जो उचित है सो कीजिए क्योंकि बहुत शोच करने से बुद्धि जाती रहती है ॥

पुनः युधिष्ठर ने कहा फूट लड़ाई और युद्ध का कारण होती है मैं आज से इस बात को धारण करता हुं कि मैं किसी राजा, सम्बन्धी अथवा अन्य पुरुष से कड़वा वचन नहीं कहूंगा तुम भी सब इस बात को तेरह वर्ष तक ध्यान में रक्खो इस से फूट न पड़ेगी और युद्ध न होगा और जब युद्ध न होगा सारी क्षत्री कुल का नाश न होगा सब भाईयों ने इस बात पर वर्ताव करना आरम्भ कर दिया और वह आनन्द में रहने लगे ॥

अठाईसवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का सभा देखते समय धोखे से कई

बार गिर पड़ना भीमसेन आदि का उस की हँसी करना, पांडवों के वैभव को देख कर दुर्योधन को बड़ी डाह होना और उस का इस डाह का शकुनि को कहना ॥

दुर्योधन और शकुनि वहां रह कर युधिष्ठिर की सभा को देखने लगे वह कभी उस का कोई भाग देखते और कभी कोई वहां उन्हों ने वह वह चीज़ें देखीं जो आगे कभी भी उन की दृष्टि में नहीं पड़ी थीं, जब वह स्फटिक के एक स्थल पर पहुंचे तो दुर्योधन ने उस को जल जान कर अपने वस्त्र उतार डाले परंतु वहां जल न पाकर बड़ा लज्जित होकर आगे बढ़ा और दूसरे स्थान पर स्थल को जल जान कर गिर पड़ा। जब कुच्छ आगे गया तो एक बावड़ी को जिस में स्फटिक के समान कमल लगे हुए थे और जो जल से पूरित थी उस को स्थल समझ कर उस में चला गया उस के सब वस्त्र भीग गये उस की यह दशा देख कर भीमसेन, अर्जुन' सहदेव और नकुल और उन के बहुत से नौकर हंस पड़े, वह इस हंसी से दिल ही दिल में जल गया, उसी समय उस के वह वस्त्र उतरवा कर नये वस्त्र पहनादीये गये जब कुच्छ आगे गया तो वह एक स्फटिक स्थल को जल जान कर उस के पार जाने की इच्छा से वस्त्र उठा कर चलने लगा और उसे जल समझ उस में कूद पड़ा और स्थल पर जा पड़ा उस की इस दशा पर भी सब लोगों को जो साथ जारहे थे हंसी आगई ॥

आगे चल कर दुर्योधन ने एक स्फटिक द्वार देखा उस को खुला हुआ जान कर वह उस में घुसने लगा उस से उस को टक्कर लगी और वह घूमैति होगया इस से जब आगे बढ़ा तो उस को एक द्वार दीख पड़ा यह द्वार वास्तव में खुला था परन्तु बंद जान पड़ता था दुर्योधन ने उस को खोलने के लिये दोनों हाथ आगे बढ़ाय और वहां कुच्छ आधार न पाकर गिर पड़ा, इस प्रकार उस ने उस सभा में कई वार धोखे खाये और लज्जित हुआ ॥

जब इस सभा को वह देख चुका तो उस ने युधिष्ठर से हस्तिना पुर जाने की आज्ञा मांगी और आज्ञा पाकर उन सब से विदा होकर हस्तिना पुर में पहुंचा ॥

हस्तिना पुर में पहुंच कर वह सारा ऐश्वर्य, जो उस ने इन्द्र प्रस्थ में पांडवों का देखा था उस के नेत्रों में आया उस को याद करके वह ठंड स्वास लेता और विचार करता हुआ व्याकुल होजाता ॥

शकुनि ने उस को इस दशा में देख कर इस का कारण पूछा पहिले तो उस ने शकुनि को कुछ न बतलाया परन्तु उस के वार २ कहने पर वह बोला ॥

मैं सब पृथ्वी को अर्जुन के शस्त्र के प्रताप से युधिष्ठर के वश में और राजाओं के बीच राजसूय यज्ञ करते हुए देख कर अप्रसन्न हुआ हुं इस से दिन रात मेरा दिल जलता रहता है श्री कृष्ण ने सब राजाओं के देखते २ शिशुपाल को मार डाला

और उन में से किसी एक नें भी कान तक न हिलाया और सब राजाओं ने बाणियों के समान रत्न लाला कर पाडवों की भेंट किये यह बातें है जो मुझे दिन रात जलाती रहती है, मेरा जीना अब इस पृथ्वी पर व्यर्थ है मैं या तो पानी में डूब मरूंगा या अपने आप को अग्नि में डाल कर अपने प्राण दे दूंगा, और या विष खाकर मर जाऊंगा ॥

युधिष्ठर की लक्ष्मी को देख कर मुझे यह निश्चय हो गया है कि पौरष से कुच्छ नहीं बनता, मैंने इन पांचों के नाश करने के लिय इतना पौरष किया परन्तु वह अपनी प्रारब्द से दिन प्रति दिन ऐसे बढ़ते गये जैसे पानी मे कमल बढ़ता है, यह लज्जा की बात है कि पाडवों की सभा को देखते समय मेरे गिरने पर उन अधम नोकरों तक ने मेरी उपहंसी की, हे मामा तुम धृतराष्ट्र के पास जा कर उस को कह दो कि मैं इस कारण अपने प्राण देता हूं ॥

उन्तीसवां अध्याय

—:०:—

शकुनि का दुर्योधन को उपदेश देना कि वह युधिष्ठर पर क्रोध न करे दुर्योधन के न मानने पर उस को जूआ खेलने की सलाह देना। उस का इस सलाह को मान कर

छल के पाशों से जीतने की इच्छा करके युधिष्ठर को बुलाना ॥

शकुनि ने कहा हे दुर्योधन तू ने जो ऐश्वर्य पांडवों का इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ के समय देखा है यह सब उनको अपनी प्रारब्द से मिला है और वह अपनी प्रारब्द से ही तेरे कई एक फन्दों से जो तू ने उन के मारने के लिए रचे थे बच रहे हैं इस कारण तेरा चिंता करना सर्वथा निष्फल है, यदि तू कहे कि मेरा सहायक कोई नहीं यह असत्य है सब से पहिले मैं अपने भाईयों को साथ ले कर तेरी सहायता करने के लिये तत्पर हुं, तेरे गुरू द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, राजा सोमदत्त और तेरे अपने निन्नानवें भाई और तेरे अन्य सारे समीपी संबंधी सदैव तेरी सहायता करने के लिये त्यार हैं यदि तू चाहे इन सब को साथ ले कर सारी पृथ्वी को जीत सकता है ॥

दुर्योधन ने कहा यदि तुम्हारी सलाह हो तो मैं तुम को साथ ले कर इन पांडवों को जीत लूं सम्राट राज्य होने से इन के जीतने पर सकल अन्य राजा स्वयं ही मेरे वश में हो जावेंगे ॥

शकुनि ने कहा मेरी समझ में नहीं आता कि श्रीकृष्ण जी जैसे नीति निपुण, अर्जुन जैसे धनुष धारी, भीमसेन जैसे योधा, सहदेव, नकुल, द्रुपद, धृष्ट द्युम्न और उस के भाई आदि महा वीरों के युद्ध करने की हम में से किस को सामर्थ

होगी, उन से तो देवता भी नहीं जीत सकते, युधिष्ठर को सहज में जीतने का ढंग मैं जानता हूं यदि तुम वह करो तो तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूरी हो जावेगी ॥

दुर्योधन ने कहा हे मामा आप मुझे वह ढंग शीघ्र बतलाइए ताकि मैं उस को करके अपनी इच्छा पूरी करूं और अपने शरीर को जो इस समय क्रोध और ईर्षा से जल कर सूख रहा है बचाऊं ॥

शकुनि ने कहा युधिष्ठर को जुआ खेलने का बड़ा शौक है और वह जुआ खेलना जानता नहीं मुझे यह खेल अच्छी तरह से आता है इस खेल में इस समय मेरे जैसा पृथ्वी पर कोई नहीं तुम धृतराष्ट्र से कहो वह युधिष्ठर को जुआ खेलने के लिए बुलाए जब वह आएगा मैं उस के साथ जूआ खेल कर उस का सारा राज्य और लक्ष्मी तुझ को जीत दूंगा ऐसा करने से हमारी सेना, हमारे मित्र आदि में से कोई नष्ट न होगा ॥

दुर्योधन ने कहा धृतराष्ट्र से यह बात कहने की मुझ में सामर्थ नहीं आप ही किसी प्रकार से इस का प्रबंध कीजिए ॥

शकुनि धृतराष्ट्र के पास गया और उसने उस को कहा, महाराज, दुर्योधन दिन प्रति दिन अत्यंत दुर्बल और पीतवर्ण हो रहा है न जाने उस को क्या चिंता और किस शत्रु के कारण यह दुःख हो रहा है आप का वह ज्येष्ठ पुत्र है

जब आप ही उस से इस चिंता का कारण नहीं पूछते तो और कौन पूछेगा ॥

यह सुन कर धृतराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ और उस ने उसी समय दुर्योधन को बुला कर कहा, हे पुत्र मुझे आज ही शकुनि के कथन से जान पड़ा है कि तू चिंता से निर्बल और अत्यंत दुःखी हो रहा है यदि इस का कारण कहने के योग्य है तो मुझ से कह परंतु मुझे तेरे दुःख का कोइ कारण नहीं जान पड़ता क्योंकि तेरे पास बड़ा भारी ऐश्वर्य है और तेरे सब भाई तेरी आज्ञा में चलते हैं, उत्तम २ वस्त्र पहिनने के लिए, मांसमय अन्न और नाना प्रकार के स्वादू भोजन खाने के लिए, दिव्य स्त्रियां भोगने के लिए, सुंदर २ घोड़े, हाथी, यान, रथ इत्यादि स्वारी के लिए और क्रीड़ा के लिए उत्तम २ स्थान हैं यह सब कुछ होते हुये तुझ को किस बात की चिंता हो रही है ॥

दुर्योधन ने कहा मैं निस्संदेह उत्तम २ भोजन करता हुं परंतु उस डाह से जो मुझ को युधिष्ठिर की सभा, यज्ञ के समय का उस का ऐश्वर्य और उस की लक्ष्मी को देख कर लग रहा है वह मुझे भस्म कर के मुझे दुर्बल और मेरे शरीर को पीला कर रहा है युधिष्ठिर इस समय अठासी सहस्र स्नातक ब्राह्मणों का पालन कर रहा है, उस के हां दश सहस्र ब्राह्मण स्वर्ण के बर्तनों में नित्य भोजन किया करते हैं, सब राजाओं ने यज्ञ के समय पर आकर जो जो भेंट उस को दिये

हैं उन को देख कर मेरे नेत्र चकित रह गये हैं, मैंने आज तक लक्ष्मी का इतना प्रताप कहीं नहीं देखा है और न ही सुना है उस बड़े धन को देख कर मेरा चित्त उदास हो रहा है प्रजा में से खेती करने वाले गोपालक और वैश्य, तीन खर्व धन भेंट देने के लिये हाथों में स्वर्ण के कलश लिये हुये यज्ञ द्वार पर खड़े रहे परंतू उन को किसी ने पुछा तक नहीं॥

हे पिता युधिष्ठिर का इस समय इतना प्रताप है कि वरूण देवता ने एक कांसे का पात्र जो बहुत से रत्नों से भूशित था अमृत रूपी जल से भर कर भेज दिया उन रत्नों में से श्री कृष्ण चंद्र जी ने श्रेष्ठ शंख लेकर उस को जल से भर २ कर युधिष्ठिर का अभिषेक किया उसी समय पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के समुंद्रों से जल मंगवाया गया, उत्तर के समुद्र का जल भी जिस को देवताओं के बिना और कोई नहीं ला सकता युधिष्ठर के लिये लाया गया है तात मैं पाडवों के वैभव की कौन२ सी बात आप को सुनाऊं उन के सुनाने से मेरा क्रोध बढ़ता, है ईर्षा की वृद्धि होती है और हृदय फटा जाता है॥

शकुनि ने पास से कहा इस सारी लक्ष्म की प्राप्ति के लिये एक उपाय तो मैं जानता हुं वह यह कि त्रलोकी में मेरे सा कोई जूआ नही खेल सकता युधिष्ठिर को जूये का शौक तो बहुत है परन्तु उस को जूआ खेलना आता नहीं तुम उस को

जूआ खेलने के लिये यहां बुलवालो वह झट आजावेगा औ में छल द्वारा उस के साथ जूआ खेल कर उस की सारी लक्ष्मी तुम को ले दूंगा ॥

दुर्योधन ने झट धृतराष्ट्र से कहा मामा जी की सलाह बहुत ठीक है इस से मेरा काम सिद्ध होजावेगा आप उन को शीघ्र बुलवा लीजिये ॥

धृतराष्ट्र ने कहा तनक ठहरो मैं विदुर जी से सलाह करलूं विदुर जी धर्म दर्शी, बुद्धिमान और दोनों ओर के कल्याण चाहने वाले हैं ॥

दुर्योधन ने कहा यदि आप ने विदुर जी से सलाह लेनी है तो लीजिये वह तो जुआ खेलने की सलाह आप को कभी भी न देंगे, आप मुझे निषेध करिए मैं अपने प्राण त्याग दूंगा, मेरे मरन के पीछे आप आनन्द पूर्वक पृथ्वी का राज्य कीजियेगा ॥

इस समय धृतराष्ट्र की दशा दो भांत सी होगई उसने एक ओर तो शिल्पकारों को बुलवा कर यह आज्ञा दी कि तुम लोग बहुत जल्दी एक सुंदर रमणीक सभा जिस में सहस्र खम्बे और सौ द्वार हों बनाओ और उस को रत्न आदि से सजा कर त्यार करके हम को खबर दो और दूसरी ओर दूत भेज कर विदुर जी को बुलवा लिया ॥

विदुर जी धृतराष्ट्र के पास आये और दंडवत कर के पूछा क्या आज्ञा है ॥

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को जूए के लिये बुलाने का विचार सुना कर उस की सम्मति पूछी ॥

विदुर जी ने कहा व्यसन सदैव व्यसन ही होते हैं इन से हानी ही हुआ करती है लाभ कभी नहीं होता जूआ विनाश और कलह का मूल है देखो राजा नल ने इस से क्या लाभ उठाया वह राज पाट हार कर जंगलों की मट्टी छानता फिरा अपनी प्राण प्यारी स्त्री को वह वन में अकेली छोड़ कर चला गया और आप जाकर एक राजा के पास अश्वस्थान में काम करता रहा, हे राजन् जूए से इन सब में फूट पर जायेगी फूट का जो फल हुआ करता है वह आप भले प्रकार से जानते हैं इस फूट ने सहस्रों बड़े २ राज घरानों को नष्ट करके उन का नाम तक न छोड़ा ॥

धृतराष्ट्र ने कहा देव शुभ करेंगे, पुत्र स्नेह से मुझे जूआ खिलाना ही पड़ेगा आप चिंता न करें हमारे, तुम्हारे, भीष्म और द्रोणाचार्य के बैठने पर कोई अनीति न होने पावेगी अब तुम शीघ्र जाकर इन्द्र प्रस्थ से युधिष्ठिर को अपने साथ ले आओ परंतु वहां उन से जूए का कथन न करना, विदुर जी चिंता करते हुए धृतराष्ट्र से चल कर भीष्म जी के पास गए ॥

तीसवां अध्याय

—:o:—

धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना, दुर्योधन

का उस को अपना वह दुःख बतलाना जो उस को पांडवों की सभा में धोखे से बार बार गिरने पर और भीमसेन आदि की हंसी से हुआ ॥

जब विदुर जी चले गये तो धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा हे पुत्र विदुर जी जो बड़े बुद्धिमान, हमारे हितु, सब शास्त्रों के जानने वाले और कौरवों में श्रेष्ट हैं जुआ खेलने में सम्मत नहीं हैं, वृष्ण वंशयों में जैसे उद्धव जी की सम्मति सब को माननीय होती है हमारे हां इन की सम्मति मानी जाती है तू इस विचार को त्याग कर अपने राज्य को आनन्द से भोग, देव ने तुझ को इस समय सब कुच्छ दे रक्खा है पौरष से न्याय के साथ अपने राज्य को बढ़ा और प्रजा के सुख की वृद्धि कर ॥

इस के उत्तर में दुर्योधन ने वही रोना रोया जो उस ने अपने मामा शकुनि के आगे रोया था अर्यात पांडवों के ऐश्वर्य और उन की लक्ष्मी से जो दाह उसे लग रहा था वह सारा विस्तार पूर्वक उस ने अपने पिता के सन्मुख रख दिया और साथ ही उन की सभा देखते समय कई वार धोखा खा कर गिरने और उस पर भीमसेन, श्रीकृष्ण जी के ठठ्ठा मारने और द्रौपदी का अपने साथ की अन्य स्त्रियों सहित हंसी करने का हाल सुनाया ॥

हे पिता आपने उस यज्ञ की महिमा को देखा

नहीं यदि आप देख सकते और देखते तो आप को जान पड़ता कि मेरा चिन्ता करना ठीक है या नहीं लो मैं आप को वहां का हाल विस्तार पूर्वक सुनाता हूं ॥

इकतीसवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का अपने पिता को युधिष्ठर के यज्ञ ॥ में आये हुये धन का बृत्तांत कहना ॥

हे पिता राजा कम्बोज ने यह चीजें युधिष्ठर के भेंट कीं, बिडाल और मेष के रोमों से बने हुये वस्त्र जिन पर सुनहरी काम हो रहा था, मृगचर्म, तीन सौ अश्व जा तीतर के सप विचित्र थे और जिन का रंग तोते की नाक के समान था, बड़ी पुष्ट और बलिष्ट तीन सौ खच्चर, पिता मैने देखा युधिष्ठर के देश के खेती करने वाले ब्राह्मण और बहुत से शूद्र तीन वर्ष के मालका धन लेकर युधिष्ठर को भेंट देने के लिये खड़े रहे परंतू उन को किसी ने पूछा तक नहीं, अन्य जाति के खेती करने वाले लोग और गोपालक सुनहरी कमंडलों में घृत आदि लेकर आये और वह भी बिना पूछे ही भेट लिए द्वार पर खड़े रहे ॥

हे पिता जी और पदार्थ तो एक ओर रहे मरू कच्छ देश वासी कर्पासिक देश की रहने वाली एक लाख दासियां जिन का वर्ण श्याम, अंग सूक्ष्म, बड़े २ बाल, और जो सोने

के नाना प्रकार के आभरणों से भूषित थीं। मृगों के चरम-जिन को ब्राह्मणों से ले कर शूद्र तक काम में ला सकते हैं और कंधार देश के घोड़े लाये और बड़ी श्रद्धा से युधिष्ठिर को भेंट किए॥

समुद्र के निकट और पार बसने वाले मनुष्य जो नदी के जल अथवा वर्षा में स्वतः ही उत्पन्न हुये हुये धान्यों को खाकर गुजारा करते हैं युधिष्ठिर के लिए वैराम, पारद, और आभीर लाये और इस प्रकार भेंट की जैसे कोई अपने देवता की करता है, यह लोग कितव देशों के मनुष्यों को लिए हुये नाना प्रकार के रत्न, भेड़, बकरी, स्वर्ण, खचर, ऊंट, मधू और नाना प्रकार के सुंदर सुंदर कम्बल भी लाये और यह चीज़ें लेकर द्वार पर खड़े रहे॥

प्राग ज्योतिष का भगदत्त राजा जो म्लेच्छों का अधिपति है यवनों को साथ लिये हुये नाना प्रकार की भेंट लाया और बाहर ही रोक दिया गया जब उस ने हीरे और पद्मराग मणियों से जड़े हुये वस्त्र और हाथी दांत की मुठ लगी हुई तलवारें भेंट कीं तो उस को सभा में प्रवेश होने की आज्ञा मिली॥

कई राजे अनेक प्रकार की चीज़ें और अपने देश में उत्पन्न हुई दस सहस्र खच्चरें भेंट लाये और उन के भेंट करने पर उन को प्रवेश मिला। कई आदमी वहां तीन आंख वाले थे, कईयों की आंखें मस्तक में थीं, यह अद्भुत मनुष्य न जाने किस देश के वासी थे और यह देश इन चारों भाइयों में से किसने जीत कर अपने आधीन किया था॥

एक पाद नाम मनुष्यों ने अमुल्य सोना, बहुत से सुन्दर बहु मुल्य और तोते की नाक के रंग वाले और मन के वेग के समान चलने वाले सुन्दर २ घोड़े भेंट में दिए ॥

चीन, शक ओड्र, बर्बर, वर्षगोय, हारहुण, कृश्न, हैमवत, नीप और अनूप देशों के मनुष्यों ने बहुत से सुन्दर और बहु मुल्य घोड़े, काले रंग की ग्रीवा वाली सिखलाई हुई एक दिन में एक सौ कोश चलने वाली खच्चरें भेंट में दीं ॥

कंबूतीर के वासी रोकव लोग मृगचर्म, रेशमी दुशाले, अनेक प्रकार के रेशमी गुच्छे, चित्र विचित्र चिकने और चमकीले वस्त्र, बड़े मूल्य के कम्बल, सावर, बड़ी २ तेज तलवारें, दुधारा खड्ग, शक्ति, परश्वध, फरसे, नाना प्रकार के रस और बहुत से रत्न लाये परन्तु द्वार पर ही खड़े रहे और अन्दर न जाने पाये ॥

शक, तुषार, कंक, रोमश और अनेक देशों के सींग रखने वाले मनुष्य बड़े दूर जाने वाले हाथी, अर्बद घोड़े और स्वर्ण आदि बहुत सी चीजें लेकर आये वह भी भीतर न जाने पाये और द्वार पर ही रोके गये ॥

पूर्व देश से राजा लोग मणि और स्वर्ण से भूषित हाथी दांत के आसन, शयन, बड़े २ विचित्र बहु मूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नों से जटित और अच्छे २ सिखाये हुए बहु मूल्य सुंदर घोड़ों से जुते हुए रथ, मृग चर्म से मढ़ी हुई चित्र विचित्र भूले नाना प्रकार के रत्न, नाराचबाण और नाना प्रकार के शस्त्र ले कर युधिष्ठिर की सभा में आये और वह सब चीजें बड़े नम्रभाव से कर बांध कर दीनता के साथ उस के भेंट कीं ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

—:०:—

दुर्योधन का उन राजाओं का वृत्तांत कहना जिन्हों ने युधिष्ठर को यज्ञ में कर लाला कर दिया था ॥

दुर्योधन ने कहा हे पिता मैं आप को उन राजाओं का हाल सुनाता हुं जिन्हों ने युधिष्ठर को यज्ञ में धन लाला कर दिया आप ध्यान दे कर सुनिये और फिर विचारिये कि हमारे रिपूओं ने कहां कहां तक के देशों के राजाओं को अपने वश में कर रखा है ॥

खस, एकासन, धई, मद्दर, दीर्घ वेणु, आरद, कुलिंद, संगण, परतंगण नाम पहाड़ी देशों के राजा लोग जो मेरु और मन्दर पर्वतों के मध्य में शैलोदा नदी के किनारे पर कीचक और वेणु वृक्षों की छाया में वास करते हैं आये और बड़ी विनय के साथ उन्हों ने द्रोण, पिपीलक जात का स्वर्ण, काले और लाल रंग के चमर और चन्द्रमा का सा प्रकाश रखती हुई शुक आदि मणि, हिमालय पर्वत के पुष्पों के मधु और कैलाश पर्वत के उत्तर की बल देने वाली औषधियां और अन्य कई प्रकार की चीज़ें लेले कर आये और द्वार पर ही रुके रहे ॥

हिमालय पर्वत के परार्द्ध और उदयाचल कारूप देश, समुद्र और लोहित्य पर्वत के राजा लोग जो फल और मूल

खाकर और चमड़े के वस्त्र पहन कर गुज़ारा करते हैं और जो क्रूर, शस्त्र धारी और क्रूर कर्मा कहे जाते हैं वह चंदन, अगरू, कृष्ण अगरू, चर्म, रत्न, स्वर्ण, सुगंध देने वाले पदार्थ मृग, पक्षि, दस सहस्त्र पहाड़ी दासियां और अन्य बहु २ उत्तम पहाड़ी पदार्थ युधिष्ठर की भेंट के लिए लाये और बड़ी नम्रता के साथ कर बाध बांध कर उन्हों ने वह भेंट युधिष्ठर को निवेदन कीं ॥

कैरात, दर्द, दर्व, शूर, यमकऔदुंबर, दुर्विभागा, पारद, बाह्लिक, काश्मीर, कुमार, धारक, हंसकायन, शिवत्रिगर्त, आधेष्ठ, मद्र, कैकय, अंबष्ठ, कौकुर, तार्क्ष्य, वस्त्रप, पल्हव, वशाती, मौलेय, क्षुद्रक, मालव, पौंड्रक, कुक्कुर, शक, अंग, वंग पुंड्र, शाणवति और गय आदि देशों के कुलीन, उत्तम, बलवान, तेजस्वी और शस्त्र धारी क्षत्री सैंकड़ों उत्तम और बहुमूल्य के पदार्थ अपने २ देशों से लाये और युधिष्ठर को भेंट किये ॥

कलिङ्ग, मगध, ताम्रलिप्त, पुंड्रक, दौवालिक, सागरिक, पत्तोर्ण, शैशव, कर्ण और मावर्ण आदि देशों के राजा एक २ सहस्त्र हाथी जिन के बड़े २ दांत सुनहरी चमकीली कमल के से रंग की झूलों से सजे हुये युधिष्ठर को भेंट देकर सभा में गये ॥

गंधर्वों के राजा चित्ररथ ने वायू के समान तेज़ चलने वाले चार सहस्त्र घोड़े, तुंमरू गंधर्व ने आम्र के पत्तों के रंग

वाले एक सौ सांड जिन सब के गले में सोने का एक २ हार पड़ा हुआ था युधिष्ठर को बड़ी श्रद्धा के साथ भेंट दिये ॥

राजा कृति ने शूकर देश के कई सौ बड़े बड़े हाथी, विटम और मत्स्य देशों के राजाओं ने सहस्र २ मत्त हाथी जिन के गले में स्वर्ण की मालायें पड़ी हुई थीं भेंट दे कर युधिष्ठर को प्रसन्न किया ॥

पांशु देश के राजा वसूदान ने छब्बीस हाथी और कांचन माल धारण किये हुये, युवक, बलवान और वायु के समान शीघ्र चलने वाले घोड़े युधिष्ठर को भेंट में दिये ॥

राजा द्रुपद युधिष्ठर के श्वसु ने चार सहस्र दासीयां, दश सहस्र दास जिन के साथ अपनी स्त्रियां थीं, कई सौ हाथी और बड़े सुंदर मणि जटित जुते जुताये रथ युधिष्ठर को देकर कहा मैं अपना सम्पूर्ण राज्य इस यज्ञ के लिये देता हूं। श्री कृष्ण चन्द्र जी ने भी इस समय पर चार सहस्र हाथी युधिष्ठर को दिये। श्री कृष्ण का अर्जुन से इतना प्रेम है कि वह उस के लिये स्वर्ग तक को त्यागने के लिये त्यार है और अर्जुन उन के लिये प्राण तक देने के लिये तत्पर रहता है ॥

मलयागिरी और दर्दुर पर वास रखने वाले क्षत्रियों ने सुगंधित चंदन के रसों से भरे हुए सोने के कलश, चमकीले मणि, अगरू, चन्दन, रत्न, सोना और बड़े सुंदर महीन २ वस्त्र भेंट में दिये ॥

सिंहल देश के क्षत्रियों ने समुद्र में उत्पन्न होने वाली

चीजें यथा मोती, वैडूर्य मणि, सहस्रों मूलें, मणि और सुंदर २ वस्त्र और आभूषण पहने हुए दासीयां युधिष्ठर को भेंट कीं ॥

ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र म्लेच्छ और कई देशों के कई जातियों के मनुष्य अपने अपने देशों से अच्छी २ चीज़ें लाये और बड़े प्रेम और श्रद्धा से युधिष्ठर को भेंट में दीं, इस मय वह यज्ञ स्थान स्वर्ग दीख रहा था, मैं तो इन सब चीज़ों को देख देख कर उसी समय प्राण त्यागने लगा था, मैं उस यज्ञ की महिमा और पांडवों के ऐश्वर्य का वृत्तात कहा तक कहुं उन के हां तीन पद्म और दश सहस्र हाथी और घोड़ों पर चढ़ने वाले दास हैं जिन को पांडवों की ओर से कच्चा और पका दोनों प्रकार का भोजन मिलता है, एक अर्बद रथ और अनगिनत प्यादे हैं ॥

युधिष्ठर के घर में इस समय तक अठासी सहस्र स्नातक गृहस्थ ब्राह्मण नित्य भोजन पाते हैं इन की सेवा के लिये हर समय दास दासीयां इन के सन्मुख खड़ी रहती हैं, यह ब्राह्मण भोजन पश्चात् नित्य युधिष्ठर के शत्रुओं के नाश होने का आशीर्वाद देते हैं । इन के साथ ही दश सहस्र यतियों को जिन का वीर्य ऊपर रहता है सोने के पात्रों में भोजन मिलता है । द्रौपदी उस समय तक भोजन नहीं करती जब तक यह लोग भोजन नहीं पा लेते ॥

जितने राजा लोग यज्ञ में आये हुए थे उन सब ने

युधिष्ठर को अपना अपना कर दिया केवल राजा द्रुपद और श्री कृष्ण जी थे जिन्हों ने सम्बन्ध रखने के कारण कर नहीं दिया ॥

तेतीसवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का धृतराष्ट्र से सब राजाओं को युधिष्ठर की सेवा करते देख कर संताप होने का हाल कहना ॥

दुर्योधन ने कहा हे पिता मेरी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े तेजधारी और बलवान राजा किस प्रकार से युधिष्ठर की सेवा करते रहे । चंदेरी देश के राजा ने अपने हाथ से ध्वजा ला कर दी, राजा सुदक्षिणा कम्बोज देश के श्वेत घोड़े रथ में जोतने के लिये लाया, राजा सुनीथ अनकर्ष रथ लाया, मगध देश के राजा ने माला और पगड़ी दी, राजा दाक्षिणात्य ने शस्त्र दिये, राजा वसुदान ने हाथी, राजा मत्स्य ने धन से भरे हुए छकड़े, राजा एकलव्य ने जूते, राजा अवन्ती ने अनेक प्रकार के जल, काशी के राजा ने धनुष, चकितान राजा ने निषंग, राजा शल ने बड़ी और सुन्दर मुठ वाली बहु मूल्य की तलवार दी ॥

धौम्य ऋषि ने व्यास जी को साथ ले कर उस को

अभिषेक कराया, इस समय युधिष्ठर के पास देवल, आसत, परशुराम जी और अन्य बड़े २ तपस्वी और ऋषि खड़े हुये हुय उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे, सात्कि युधिष्ठर के ऊपर छत्र लगाये हुय था, अर्जुन और भीमसेन पंखा हिला रहे थे और नकुल और सहदेव चमर कर रहे थे, श्रीकृष्ण जी ने विश्वकर्मा की बनाई हुई कांवड में से वारुणि शंख में जल भर भर कर युधिष्ठर को यज्ञ स्नान कराया, इस के पीछे सब ने मंगल कारी शंख ध्वनि की, इस ध्वनि से मेरे रोम खड़े हो गये और वहां जो तेज हीन राजा थे मूर्च्छित हो कर गिर पड़े और धृष्टद्युम्न, सब पांडव सात्कि और श्रीकृष्ण जी मेरी और उन राजाओं की यह दशा देख कर हंसने लगे तब स्वर्ण से जटित सीगों वाले पांच सो बैल ब्राह्मणों को दिए गये ॥

हे पिता यह यज्ञ राजा हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ के समान हुआ था और राजाओं की तो गिनती ही क्या है राजा रन्ति देव, नाभाग, यौवनाश्व, मनु, पृथु, वैन्य, भागीरथ, ययाति और नहुष भी युधिष्ठर की बराबरी नहीं कर सकते ॥

हे पिता अब आप ने सब कुच्छ सुन लिया है आप ही बतलाईये कि मैं इस सब ऐश्वर्य को पांडवों में जो हम से छोटे हैं देख कर क्यों कर जीता रह सकता हुं जान पड़ता है कि विधाता भी इस समय अन्याय के पक्ष में है॥

चौतीसवां अध्याय

—:o:—

धृतराष्ट्र का दुर्योधन को पांडवों से द्वेष न करने का उपदेश देना ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हे पुत्र किसी से द्वेष करना अच्छा नहीं, द्वेष करने से अपने शरीर को ही दुःख होता है तू पांडवों से द्वेष मत कर युधिष्ठर निष्कपट है और धर्मात्मा है वह तुझ से द्वेष नहीं रखता, देख उस ने तुझ को यज्ञ के समय पर बुला कर तेरा बड़ा सन्मान किया और तुझे कोष सौंप दिया, क्या द्वेष रखने वाला भाई भी कभी अपने भाई को कोष सौंप सकता है तेरा पराक्रम और बल युधिष्ठर से अधिक नहीं तू चिंता को छोड़ यदि तुझे यज्ञ करने की इच्छा है तो अपने मृत्वजों को बुला कर सप्ततंतू यज्ञ कर तेरे पास भी राजा लोग धन रत्न लेकर आवेंगे परन्तु पराय धन को लेने की इच्छा करना नीच पुरुषों का काम है ॥

हे पुत्र इस लोक में वही मनुष्य बढ़ता है जो धर्म पर चलता है और अपने ही धन से सन्तुष्ट रहता है, कल्याण उसी का होता है जो आपत्ति में दुःख को न मान कर शांत और प्रसन्न रहे, पांडव तेरे अंग हैं भाई बंध हैं और तेरी बांह हैं स्वार्थ के लिए बाहों का छेदन करना दुःख दाई होता है

पांडवों के पास जो धन है वह तेरा ही है, उन से तुझ को मोह नहीं करना चाहिये, हमारे और पांडवों के पितामहा एक ही थे, हम में और उन में एक ही लहू है इस कारण उन में और हम में कुछ भेद नहीं ॥

पैंतीसवां अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का धृतराष्ट्र को नीति कह कर कहना कि हमें पांडवों का धन लेना ही उचित है॥

हे पिता क्या आप ने बृहस्पति जी का हाल कभी नहीं उन्हों ने राजाओं की वृत्ति को संसार की वृत्ति से भिन्न कहा है सावधान राजा वही है जो सदैव अपने कार्य का विचार करे चाहे उस में धर्म हो या अधर्म आप मुझे अंधा बनाया चाहते हैं और चाहते हैं कि मैं दूसरों के पीछे चलूं या आप मुझे उस नाव के समान बनाया चाहते हैं जो दूसरी नाव के साथ बंधी रहती है इस से आप हम को यह उपदेश देते हैं कि तुम जीते ही मरे समान हो जाओ ॥

पिता जी आप शत्रु किस को कहते हैं मैं तो शत्रु उस को कहता हुं जिस से हम को दुःख पहुंचे, जिस रीति से हो सके चाहे शस्त्र से रण में चाहे छल प्रकार से शत्रु का नाश करना ही उचित है देखो श्री कृष्ण जी अर्जुन और भीमसेन तीनों ने

ब्राह्मणों का वेष करके और दीवार फांद कर जरासंध को मारा, क्या उन्हों ने यह कार्य धर्म के अनुकूल किया है, अपने को बढ़ाना यह पाप नहीं वरन श्रेष्ठ नीति है। क्या आप को इन्द्र और नमुचि दैत्य का वृत्तान्त याद नहीं जिस में इन्द्र ने उस दैत्य से मित्रता करके उस का सिर काट डाला था ॥

हे पिता शत्रु से न विरोध करने वाले राजा और देशों में न घूमने वाले सन्यासी को पृथ्वी इस प्रकार ग्रस लेती है जैसे बिल में रहने वाले जीवों को सांप ग्रस लेता है, शत्रुता जाति पर नहीं होती वरन जीविका पर होती है जिस की जीविका अपने तुल्य होय वही अपना शत्रु है, जो राजा मोह से अपने शत्रु के पक्ष की वृद्धि चाहता है उस की जड़ इस प्रकार से कटती जाती है जिस प्रकार रोग के चढ़ने से दिन प्रति दिन शरीर क्षय होता चला जाता है, शत्रु छोटा भी हो तो दीमक के समान काटता है हे पिता आप शत्रु की वृद्धि का चाहना त्याग दें, मैं पांडवों की बढ़ोती नहीं देख सकता मैं युद्ध में मर कर सुख पूर्वक सोजाऊंगा ॥

छतीसवां अध्याय

—:o:—

धृतराष्ट्र का जूआ खेलने के लिये सभा बनवाना और विदुर जीका पांडवों के लाने के लिये इन्द्र

प्रस्थ की ओर भेजना ॥

शकुनि ने इस समय धृतराष्ट्र के सन्मुख वही बात कही जो उसने पहिले कही थी अर्थात वह जूआ अच्छा जानता है और क्षण में युधिष्ठिर को जीत कर उस की सारी लक्ष्मी लेलेगा। दुर्योधन ने भी उस पर वही रोना रोया और पिता से कहा कि शीघ्र युधिष्ठिर को बुला कर जुआ खिलाओ ॥

धृतराष्ट्र ने भी बात को विदुर पर डाला अर्थात विदुर से सलाह ले कर काम करना चाहा ॥

पुनः दुर्योधन को बड़ा क्रोध हुआ और वह कहने लगा विदुर जी जैसा पांडवों को चाहते हैं हम को नहीं चाहते वह जुआ कराने की कभी भी सलाह न देंगे हे पिता जी आप दूसरे के आश्रय पर क्यों होते हैं दूसरे के आश्रय पर रहने वाला मनुष्य कभी भी सुख नहीं पाता ॥

धृतराष्ट्र ने कहा बलवानों के साथ विग्रह करना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता। हे पुत्र तू अनर्थ को अर्थ मान कर कलह के बीज बुआना चाहता है इस का फल तीक्षण तलवारें और बाण हैं ॥

दुर्योधन ने कहा भला जुआ खेलने में नाश और युद्ध की क्या बात है नल आदि पराचीन राजों ने भी जुआ खेला था, आप मामा शकुनि की बात को मानिये और सभा बनाने की शीघ्र आज्ञा दीजिए जुआ खेलने से सुख होता है हम अवश्य पांडवों के साथ जुआ खेलेंगे ॥

धृतराष्ट्र ने कहा तेरी इस ज़िद पर मुझे जान पड़ता है

कि तेरे जन्म के समय विदुर जी ने जो यह बात कही थी कि इस लड़के द्वारा कुल का नाश होगा सच होती दीखती है॥

अब धृतराष्ट्र क्रोध से भर गया और विचार करने लगा कि क्या करूं यदि इस का कहना नहीं मानता तो यह प्राण त्यागता है और यदि जूआ खिलवाता हुं तो विग्रह होकर कुल का नाश होता है जान पड़ता है कि होनहार कुच्छ होने वाली है और दैव इच्छा इस होनहार में है, यह विचार कर उसने बड़े चतुर और बुद्धिमान शिल्पकारों को बुलाया और आज्ञा दी कि बहुत जल्द हमारे लिए एक ऐसी सभा बनाओ जो एक कोश लम्बी और एक ही कोश चौड़ी हो उस में सहस्र खम्भे और सौ द्वार हों उस के बाहर का द्वार स्फाटिक मणि का बनाया जाये और उस में जहां तहां वैडूर्य मणि जड़ी जावे॥

यह आज्ञा पाते ही सहस्रों बुद्धिमान और चतुर शिल्पकारों ने थोड़े ही काल में वह सभा बना कर त्यार करदी, उस में स्वर्ण के अति सुन्दर आसन बिछा दिए गये और धृतराष्ट्र को उस की त्यारी की खबर दी गई॥

तब धृतराष्ट्र ने विदुर जी को बुला कर कहा आप इन्द्रप्रस्थ जायें और पाण्डवों से कहें कि धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर में एक बड़ी सुन्दर सभा बनवाई है और वह चाहता है कि आप वहां आयें और अपने भाईयों के साथ उस सभा में बैठ कर मित्रता का जूआ खेलें॥

सैंतीसवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी का इन्द्रप्रस्थ में जाकर पांडों को लाना, उन का हस्तिनापुर में आकर सब से मिलना और युधिष्ठर का सभा में जाकर शकुनि से वार्तालाप करके जूआ खेलना आरम्भ करना ॥

विदुर जी ने तेज चलने वाले घोड़ों से जुना हुआ रथ लिया और इन्द्र प्रस्थ की ओर चले जब वह वहां पहुंचे तो पांडवों ने उन का बड़ा सन्मान किया और राज भवन में ले जाकर आदर से आसन पर बिठलाकर धृतराष्ट्र की कुशल क्षेम पूछी पुनः युधिष्ठर ने कहा महाराज आप के मुख पर उदासी के कुच्छ चिन्ह दीख रहे हैं इस का क्या कारण है, क्या धृतराष्ट्र के पुत्र उस की आज्ञा में चलते हैं और क्या उन की सारी प्रजा उन के वश में है या नहीं ॥

विदुर जी ने कहा, धृतराष्ट्र अपने सकल पुत्रों आदि सहित कुशल प्रसन्न और शोक रहित हैं और तुम्हारी सदा ही कुशल क्षेम चाहते हैं, उन्हों ने आप की सभा के समान हस्तिनापुर में एक सभा बनवाई है और वह चाहते हैं कि आप वहां आकर उस सभा में बैठ कर अपने भाईयों से मिल कर जूआ खेलें कौरव कुल के सब मनुष्य वहां इकट्ठे हुये हुये हैं और

आप के दर्शनो के अभिलाषी है, हे राजा युधिष्ठर तुम वहां पहुंचने पर धृतराष्ट्र के कपटी खिलारियों के कपट का ध्यान रखना ॥

युधिष्ठर ने कहा जूआ खेलना अधर्म है इस में कभी कल्याण नहीं वरन सदैव हानि ही है ज्ञानमान मनुष्य जान बूझ कर कभी जूआ नहीं खेला करते, हम सब आप की आज्ञा के अनुकूल चलने वाले हैं आप कहिये कि आप की समझ में यह काम कैसा है ॥

विदुर जी ने कहा मैं तो जूये को अनर्थ का कारण समझता हुं मैंने उन को बहुतेरा समझाया कि जूआ खेलना खिलाना हानि कारक और धर्म विरुद्ध है परंतु उन्हों ने एक न मानी, मैं उन का भेजा भेजाया तुम को बुलाने के लिए यहां चला आया हुं जिस बात में तुम अपना कल्याण देखो वह करो ॥

युधिष्ठर ने पूछा धृतराष्ट्र के पुत्रों के अतिरिक्त और वहा कौन २ खिलाड़ी हैं जिन के साथ हम अपना इतना धन ले कर जूआ खेलें ॥

विदुर जी ने कहा दुर्योधन का मामा कंधार का राजा शकुनि बड़ा खिलाड़ी है वह मर्यादा छोड़ कर जूआ खेला करता है और अपनी इच्छा के अनुकूल पासा डाल सकता है, विविंशति, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरूमित्र और जय भी बड़े खिलाड़ी वहां हैं॥

युधिष्ठिर ने कहा आप ने सत्य कहा है वहां बड़े २ छली और कपटी खिलाड़ी इकट्ठे हुये हुये हैं । परंतु धृतराष्ट्र की जो मेरा बड़ा है आज्ञा माननी मेरा धर्म है आगे जो प्रारब्ध, मनुष्य के वश में कुछ नहीं है मैं आप के साथ चलता हुं ॥

प्रातः काल होते ही रथ आदि यान त्यार होगये पांचों भाई, द्रौपदी, कई दास और दासियां उन में बैठे और हस्तिनापुर की ओर चल दिए आगे २ विदुर जी और पीछे वह सब चलते हुये हस्तिना पुर पहुंचे और सब सम्बन्धियों और सुहृदों आदि से यथायोग्य मिले ॥

पुनः वह राज भवन में गये और गंधारी को दंडवत की जिस ने उन को आशीर्वाद दी, धृतराष्ट्र से मिलने पर उस ने उन को प्यार किया और कौरव कुल के सब मनुष्य उन को देख २ कर प्रसन्न हुये। स्त्रियों के साथ स्त्रियें मिलीं परंतु द्रौपदी के वैभव को देख कर जल भुन गईं, फिर पांचों भाई उन के बताये हुये मकानों में जा टिके वहां उन्हों ने संध्या वंधन किया, ब्राह्मणों से स्वस्तयन सुना और भोजन कर के सो रहे ॥

प्रातः काल होते शौच आदि से निवृत हो कर पांचों भाइयों ने नित्य कर्म किये और जूआ खेलने वालों के साथ सभा में चले गये वहां सब राजा और छोटे बड़ों को अवस्था के अनुसार यथायोग्य मिल कर सुन्दर आसनों पर बैठ गये ॥

शकुनि ने कहा हे युधिष्ठिर सब लोग आप की राह देख रहे हैं देखिये चौपड़ बिछी हुई है और पांसे भी रक्खे हैं समय भी अच्छा है आइये जूआ खेलिये ॥

युधिष्ठिर ने कहा जूआ खेलना अधर्म, छल और पाप है इस में क्षत्रि का पराक्रम नहीं यह नीति के भी अनुसार नहीं, सज्जन लोग जुआरियों की कभी प्रशंसा नहीं करते वरन सदैव निंदा करते हैं ॥

शकुनि ने कहा जो पुरूष अच्छी तरह से जूआ खेलना जानता है सब क्रियाओं में चतुर हो जाता है और जीतना हारना तो केवल पासों के आधीन है आप किसी प्रकार की शंका न कीजीये और अपने योग्य दाऊं लगा कर जूआ खेलिये ॥

युधिष्ठिर ने कहा हे शकुनि असित और देवल आदि बड़े २ ऋषियों का मत है कि छलियों के साथ जूआ खेलना महा पाप है युद्ध करके जीतना ही श्रेष्ठ है जिस धन से ब्राह्मणों के प्रयोजन निकलते हैं और विद्या का प्रचार होता है उस से जूआ खेल कर दूसरों का जीतना तुम को उचित नहीं मेरी इच्छा नीच कर्म कर के सुख भोगने की नहीं है और न ही मैं पराये धन को लेना चाहता हूं यह काम कपटी मनुष्यों का है ॥

शकुनि ने कहा वह कौन सा काम है जिस में छल और कपट नहीं होता देखो जब पंडित को अपंडित से, वेद पाठी को वेद न जानने वाले से, अस्त्र विद्या जानने वाले को बिन अस्त्र विद्या जानने वाले से जीतना होता है तब एक दूसरे को अपने २

काम में अपनी २ शिक्षा की प्रबलता के अनुसार जीत लेता है इसी प्रकार से जूए में भी जो मनुष्य पांसों की गति को अच्छी तरह से जानता है वह न जानने वाले को जीत लेता है यदि आप नहीं खेलना चाहते तो न खेलिये ॥

युधिष्ठर ने कहा मेरा व्रत है जो मनुष्य मुझ से जूआ खेलने की इच्छा करता है मैं उस के साथ अवश्य जूआ खेलता हूं आप बताइए कौन मनुष्य हमारे साथ जूआ खेलेगा, हम उस को देख कर जूआ आरम्भ करेंगे ॥

दुर्योधन ने कहा रत्न और धन आदि मेरा होगा और खेलने वाले मेरे मामा शकुनि होंगे ॥

युधिष्ठर ने कहा यह अद्भुत जूआ है कि खेले कोई और दाऊं कोई लगाये अच्छा ऐसा ही सही आईये आरम्भ कीजिये ।

जुआ होना निश्चत देख कर धृतराष्ट्र, भीष्मजी, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और विदुर जी आगये और आसनों पर बैठ गये ॥

अड़तीसवां अध्याय

—:o:—

जुए का प्रारम्भ होना और युधिष्ठर का बहुत सा धन हारना ॥

जुआ आरम्भ हुआ युधिष्ठर ने सागरावर्त्त में उत्पन्न हुई

मणि की माला जो स्वर्ण जटित और बहुत माल की थीं दांऊ पर लगादीं, दुर्योधन ने बहुत से धन और मणि का नाम ले दिया, शकुनि ने पासा उठा कर फैंका और कहा मैं जीता ॥

पुनः युधिष्ठर ने सोने और चांदी से भरा हुआ एक सौ कुंभ दाऊं पर लगाया, शकुनि ने पांसा फैंका और उन को भी जीता हुआ बतलाया, इस पर युधिष्ठर ने वह जराऊ रथ जिस पर चढ़ कर वह इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर में आये थे दाऊ पर रख दिया शकुनि ने पासा फैंका और कहा मेरी जय ॥

युधिष्ठर ने अपनी एक लाख तरुण दासियां जो उस ने स्नातक ब्राह्मणों और राजा लोगों की सेवा के लिए नियत कर रखी थीं और जो नाना प्रकार के उत्तम २ वस्त्रों और आभरणों से अलंकृत थीं दांऊ पर रख दीं छली शकुनि ने पांसा फैंका और कहा इस में भी मेरी जय हुई है ॥

इस के पीछे युधिष्ठर ने कहा मैं एक लाख दास जो अनुलोम और प्रदक्षिण जाति के हैं जो बड़े ज्ञानी, जितेन्द्री और युवा हैं और जिन्हों ने रेशमी वस्त्र और कुंडल धारण किये हुये हैं, स्वर्ण की भारया हाथों में ले कर दिन रात अतिथियों को भोजन कराया करते हैं दांऊ पर लगाता हूं, छली शकुनि ने पासा डाला और कहा मैं जीता ॥

तब युधिष्ठर ने अपने सारे सुनहरी मत्त हाथी और हथनिया (सुनहरी झूलें, नाना प्रकार के आभरणों से सजे हुये) दाऊं पर लगा दीये छली शकुनि ने पांसा डाल कर उन को

भी जीता हुआ बतलाया ॥

इस के पीछे युधिष्ठिर ने नाना प्रकार के रथों को जिन पर कई प्रकार की ध्वजायें लग रही थीं और जिन को बड़े २ सुंदर बहु मुल्य वायु के सामान तेज चलने वाले घोड़े जुते हुए थे और जिन के सारथी बड़े योग्य थे दाऊ पर लगा दिया,—दुष्ट शकुनि ने पांसा फेंका और पुकार उठा हमारी जय है ॥

इस के उपरांत युधिष्ठिर ने वह घोड़े जो अर्जुन को उस के जय पाने पर गंधर्वराज ने प्रीति पूर्वक दिये थे दाऊं पर रखे, शकुनि ने पांसा डाला और उच्च स्वर से बोल उठा दुर्योधन की जय ॥

इसी प्रकार से युधिष्टर ने अपने अश्व, रथ, छकड़े जिन में छोटे बड़े घोड़े जुते हुये थे और वर्णा २ के साठ सहस्र बीर और पुष्ट योद्धा जो नित्य दूध चावल का भोजन करते थे और तांबे और लोहे के चार सौ घड़े जिन में एक २ द्रोण उत्तम स्वर्ण भरा हुआ था दांऊ पर लगाये और हार दिये ॥

उनतालीसवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी का धृतराष्ट्र को दुर्योधन के त्याग करने का उपदेश देना ॥

इस घोर जूए को देख कर विदुर जी से न रहा गया और

वह धृतराष्ट्र से यूं बोले। मैंने आपको दुर्योधन के उत्पन्न होने पर इस कुल नाशक के गीदड़ के समान शब्द करने पर इस के त्यागने के लिये कहा था उस समय भी आपने मेरे कहने पर ध्यान न दिया, पुनः मैंने जिस समय इस दुष्ट दुर्योधन ने अपने छली और कपटी मामा शकुनि के द्युत देने से जुए की इच्छा से युधिष्ठिर आदि को बुलाने के लिए कहा था तो मैं ने आप को मना किया था उस समय भी आपने न माना और मुझ ही को पाण्डवों को लाने के लिये भेजा अब मैं फिर आप से कहता हूं॥

मेरी समझ में अब इस पापी के उत्पन्न होने के समय गीदड़ के रोने का या शब्द करने का फल निकलने का समय आगया है आप ने पुत्र स्नेह से इस को पुत्र नहीं किंतु गीदड़ पाला है अब भी आप मान जाइये और शुक्र जी की नीति का ध्यान रखते हुए इस को त्याग दीजीये, शुक्र जी ने अपनी नीति में कहा है, मनुष्य को कुल के लिये एक आदमी को, ग्राम के लिए एक कुल को, देश के लिये एक ग्राम को और अपनी आत्मा के लिये पृथ्वी को त्याग देना चाहिये, एक समय भोज वंशी एक राजा ने अपनी प्रजा के हित के लिये अपने पुत्र कंस को जो इस दुष्ट के समान अयोग्य था त्याग दिया था मेरी सम्मति में यदि आप अर्जुन को इस के पकड़ने की आज्ञा देदें तो वह इस को अभी पकड़ लेंगे जिस से सारे कौरव ऐसे प्रसन्न होंगे जैसे कंस के त्याग से यादव, अंधक और भोज वंशी प्रसन्न हुए थे॥

आप को स्मर्ण होगा कि शुक्र जी ने असुरों से यह कह कर कि यह पुत्र तुम सब का शत्रु और सब को भय दिलाने वाला होगा जंभ को त्याग करवा दिया था आप इस समय मेरा कहना मानिये इस जूए को बंद कीजिये और दुर्योधन को त्याग कर पांडवों को प्यार से सत्कार के साथ इन्द्रप्रस्थ भेज दीजिये यह पांडव ऐसे वीर हैं कि इन को देवता भी नहीं जीत सकते ॥

चालीसवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का क्रोध करके विदुर जी की निंदा करना और उन को निकल जाने की आज्ञा देना, विदुर जी का हित की बातें कह कर निकल जाना ॥

विदुर जी की बातों को सुन कर दुर्योधन अति कोप में हो गया और कहने लगा तुम सदैव हमारी निंदा और हमारे शत्रुओं की श्लाघा करते रहते हो, हम को मूर्ख और हमारे शत्रुओं को बुद्धिमान समझते हो जो मनुष्य अपने स्वामी की निंदा और दूसरों की बड़ाई करता है जानना चाहिये कि वह अपने स्वामी को नहीं चाहता, तुम्हारी जिव्हा तुम्हारे मन और अंतःकर्ण की दुष्टता को प्रकट

करती है, जो लोग किसी से द्वेष रखते हैं वह उस द्वेष को प्रकट करते हुए लज्जा करते हैं परंतु तुम ऐसे निर्लज हो कि स्वामी से द्वेष करते हुए तनक लज्जा नहीं करते तुम सर्प के समान हमारी गोद में और बिल्ली के समान हमारे घर में रह कर हमारा ही गला काटने के लिये सदैव त्यार रहते हो स्वामी के साथ द्रोह करना महा पाप है परंतु तुम इस पाप से भी नहीं डरते, हमने तो अपने शत्रुओं को जीत कर बहुत लाभ उठाया है, तुम हम से खोटे वचन मत कहो, हमारें मित्र हो कर हमारे शत्रुओं से मिलाप रखना और अंतःकरण में हम से वैर रखना तुम को उचित नहीं, हमारे पिता के आश्रय हो तुम हमी को कोस रहे हो, अब हम तुम से अपना और अपमान नहीं सुन सकते, हम अब तुम्हें भले प्रकार से जान गए हैं तुम अब वृद्ध मनुष्यों के पास जा कर उन से बुद्धि सीखो, करने वाला मैं हुं अपने किए का फल भी मुझे ही भुगतना है भला तुम कौन हो जो बीच में बोल रहे हो, हमने तुम से कभी सलाह नहीं पूछी तुम हम को बेर २ दुःख मत दो, इस संसार में शासन कर्ता केवल एक ईश्वर ही है जो गर्भ में भी बालक को शासन करता है, उसी की इच्छा से मैं यह कर्म कर रहा हुं, जो मनुष्य सर्प को खिलाता है पर्वत के शिखर पर चढ़ कर इसी ही को कटता है वह भी तो कुच्छ बुद्धि रखता है, यदि उस की बुद्धि का कोई दूसरा प्रेरक न हो तो क्या वह यह नहीं जान सकता कि साप को खिलाने से साप उस को डस जायगा और पर्वत की चोटी काटने से वह पर्वत

के ऊपर से गिर कर चकना चूर हो जायगा अच्छे लोग अपने मालिक को कभी भी शिक्षा नहीं देते, जो मनुष्य कपूर में आग लगादे और चाहे कि यत्न करने से वह अग्नि शीघ्र शांत हो जावे तो उस कपूर की उस को राख भी नहीं मिलती है इसी तरह से जो मनुष्य अपना शत्रु और द्रोही हो उस को अपने पास रख कर कपूर रूपी कल्याण में आग लगाना उचित नहीं है हे विदुर अब तुम हमारे यहां से चले जाओ और जहां तुम्हारा मन चाहे रहो ॥

विदुर जी ने कहा जो मनुष्य इतनी हीं बात पर दूसरे को छोड़ता है उस के साथ मित्रता सदैव नहीं रहती है हम अब निश्चय हो गया है कि राजाओं के चित्त सदैव द्वेष से भरे रहते हैं पहिले तो मित्र बना लेते हैं और फिर उसी को मूसलों से मारते हैं, तुम मुझे अज्ञानी जान कर अपने आप को पंडित समझ रहे हो परंतु अज्ञानी वही है जो पहिले तो किसी को मित्र माने और पीछे उसे दोष लगा कर उस की बात पर विश्वास न करे, मंद बुद्धि पुरुष किसी कल्याणकारी काम को नहीं कर सकता, जैसे [illegible] नहीं कर सकती इसी प्रकार से हमारा हितकारी उपदेश तुम को अच्छा नहीं लगता, जैसे कुमारी कन्या को साठ वर्ष का वृद्ध पति विष जान पड़ता है इसी प्रकार से हमारा [illegible] तुम को विष मालूम होता है। यदि तुम [illegible] अपने हानि लाभ के अपनी इच्छा के अनुसार करना है तो हमारी सलाह मत लो, स्त्री, मूर्ख और लूले लंगड़े मनुष्यों से

पूछ कर जो मन में आवे सो करो इस में संदेह नहीं कि इस संसार में ऐसे पापी मनुष्य जो मुंह देखी प्रिय बात करते हैं बहुत से मिलेंगे परंतु कड़वे बोल बोलने वाला जिस का परिणाम अच्छा हो और उस कड़वे वाक्य को सुनने वाला होना कठिन है. राजा की सहायता वही मनुष्य कर सकता है जो निर्भय हो कर धर्म से राजा को ऐसी सलाह दे जिस का परिणाम ठीक हो, जैसा रोगी मनुष्य कड़वी, तीक्ष्ण और कसैली औषधियों को पीकर अरोग्य होजाता है वैसे ही तुम भी हमारे कड़ुए, तीक्ष्ण, कसैले, यश करने वाले और अंत में सुख देने वाले औषध रूपी मंत्र को पीकर इस कल्याण रूपी रोग को शांत करो, ईश्वर की कृपा से तुम्हारा ऐसा कल्याण हो जैसा मैं धृतराष्ट्र का चाहता हूं अब तुम को नमस्कार करता हूं, ब्राह्मण मुझे कल्याण होने का आशीर्वाद दें, पंडित लोग सर्पों को और नेत्रों में विष रखने वाले पुरुषों को क्रोध नहीं दिलाया करते ॥

इकतालीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठिर का जूए में बाकी सब धन और राज्य हार देना और अपने चारों छोटे भाईयों, अपने आप और द्रौपदी को भी हार देना ॥

अब फिर जूआ होने लगा, शकुनि ने कहा आप बहुत

सा धन हार चुके हैं अब जो बाकी धन रह गया है वह भी दाऊं पर लगाइये युधिष्ठिर ने कहा मेरा धन गिना नहीं जा सकता, मैंने जो कुछ हारा है उस को भी जानता हूं और जो अभी बाकी है वह भी मुझ को मालूम है तुम्हारे कहने की कोई अवश्यक्ता नहीं है अब मैं अपने सारे धन को जिस की संख्या महा पद्म से भी अधिक है दाऊं पर लगाता हूं तुम पासा फेंको, पापी शकुनि ने पासा फेंका और कहा मैं जीता ॥

इस के पीछे युधिष्ठिर ने कहा अब मेरे पास जो बैल, घोड़े, गौ और असंख्य भेड़ बकरियां मेरे साथ और मेरे सकल राज्य में हैं मैं उन सब को दांउ पर लगाता हूं, दुष्ट शकुनि ने पांसा डाला और बोला इस में दुर्योधन की जय है ॥

तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा नगर, देश पृथ्वी, ब्राह्मणों को छोड़ कर बाकी सारे मनुष्य, ब्राह्मणों के धन को छोड़ बाकी सब वर्णों का धन यह सब कुछ मैं दाऊं पर लगाता हूं छली शकुनि ने बड़े प्रसन्न होकर पासा डाला और कहा यह भी हमने जीत लिया है ॥

तब युधिष्ठिर ने अपने सारे भूषणों को जो उस समय उस के शरीर पर बैठे हुए थे दाऊं पर लगा दिया छली और कपटी शकुनि ने पासा डाला और कहा मैं जीता ॥

इस के पीछे युधिष्ठिर ने कहा मैं अपने भाई नकुल को जो श्याम वर्ण जवान, लाल नेत्र सिंह के से कंधे और लम्बी २ बाहें रखने वाला है इस को दाऊं पर लगाता हूं शकुनि

ने हंस कर यह कहते हुए युधिष्ठिर तू अपने भाई नकुल को हार कर फिर काहे से जूआ खेलेगा पांसा डाला और कहा मैं जीता ॥

इस के पीछे युधिष्ठिर ने कहा मैं अपने भाई सहदेव को जो धर्म का उपदेश करने वाला है और पंडित है यद्यपि वह इस योग्य नहीं दांव पर लगाता हूं, छली शकुनि ने पांसा फेंका और कहा मैं जीता, इस को जीत कर शकुनि ने कहा हे युधिष्ठिर मैंने आप के दोनों प्यारे भाई नकुल और सहदेव जीत लिये हैं अब यह भीमसेन और अर्जुन बड़े धन रूप हैं इन को भी दांव पर रख कर खेलिए ॥

युधिष्ठिर ने कहा तू अधर्म तो करता ही है परंतु मूढ़ भी है और नीती नहीं देखता और चाहता है कि हम भाईयों में फूट डलवाय ॥

शकुनि ने कहा आप बड़े हैं मैं आप को नमस्कार करके कहता हुं कि धन में चित्त लगा कर अधर्म करने वाला मनुष्य नरक गामी होता है और जिन २ बातों को मतवाले जवारी लोग कहते हैं वह बातें स्वप्न अथवा जाग्रत अवस्था में भी नहीं दीख पड़तीं ॥

युधिष्ठिर ने कहा अच्छा मैं अपने भाई अर्जुन को जो नाव के समान हम सब को युद्ध में पार करने वाला और शत्रुओं को जीतने वाला है दाव पर लगाता हुं, कपटी शकुनि ने पांसा डाला और कहा मैं जीता ॥

इस समय शकुनि ने कहा हे युधिष्ठिर मैंने पाडवों के

बड़े धनुष धारी अर्जुन को तो जीत लिया है अब तुम्हारे पास भीमसेन रूपी धन बाक़ी है उस को भी दांव पर लगा दो वह धन भी खेलने वालों के जीतने के योग्य है ॥

इस पर युधिष्ठिर ने कहा मैं गदा धारियों में श्रेष्ठ अपने भाई भीमसेन को जो अकेला हम सब को ले चलने वाला, इन्द्र की समान हम को युद्ध में पार करने वाला क्रोधी, महात्मा और बलवान हैं जिस के कंधे सिंह समता टेढी भौं और चितवन तिरछी है दांउ पर लगाता हुं. शकुनि ने पांसा फेंका और कहा मैं जीता, अब शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा हे युधिष्ठर अब आप घोड़ा हाथी, धन, देश, प्रजा और अपने भाई सब कुछ हार चुके हो यदि अब और कुच्छ बाकी है तो उस को दांव पर लगाओ ॥

युधिष्ठर ने कहा मैं आप बाकी रह गया हुं अपने आप को दाउ पर लगाता हुं. दुष्ट शकुनि ने पांसा फेंका और कहा मैं जीता ॥

अब शकुनि ने कहा हे युधिष्ठर द्रौपदी अभी विना हारी है इस को दांव पर लगा कर तू अपने आप को जीत ले ॥

युधिष्ठर ने कहा जो द्रौपदी छोटी बड़ी अथवा निर्बल नहीं है जिस के बाल नील कुंचित हैं, कमलों की सी सुगंधी शरीर से आती है, शरद ऋतु में सूखे हुये कमलों के समान जिस के नेत्र हैं. जिस का स्वरूप लक्ष्मी का सा है, जिस का शील संपत्ति रूप संपत्ती और दया भी लक्ष्मी के समान है, उस के गुण, आज्ञा पालन, मधुर वाणी और धर्म, अर्थ और

कार्य की सिद्धि को देख कर सब मनुष्य उसे चाहते हैं, वह हर एक काम को पहिले ही से जान लेती है और गोपाल और छाग पाल आदि के किये और न किये हुए कामों को देखती रहती है, उस का कमल सा मुख पसीना निकलने से मल्लिका के समान दिखाई देता है उस की कमर पतली बाल लम्बे और मुख गुलाबी उस के शरीर पर बहुत रोम नहीं यद्यपि ऐसा गुण रखने वाली द्रौपदी को दांव पर लगाना बड़ा दुखदाई है परंतु मैं इस को भी दांव पर लगाता हूं ॥

युधिष्ठिर के यह वाक्य सुन उस सभा में बैठे सब वृद्ध लोग धिक २ कहने लगे, इस समय सब उपस्थित राजा लोग शोच में पड़ गये, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की देह में से पसीना बहने लगा और विदुर जी सिर पकड़ कर नीचे को मुख किये हुए सांप के समान श्वास लेने लगे, अंधा धृतराष्ट्र बेर २ पूछने लगा क्या जीता है क्या जीता है। कर्ण, दुशासन आदि तो ठठा मार कर हंसने लगे और अन्य मनुष्यों की आखों से आंसू गिरने लगे ॥

कपटी दुष्ट और छली शकुनि ने पांसा उठा और फेंक कर कहा मैं जीता ॥

बयालीसवां अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का विदुर जी को आज्ञा देना कि

द्रौपदी को दासी कर्म करने के लिये लायें और विदुर जी का उस की निन्दा करना और कहना कि ऐसा काम मत करो ॥

युधिष्ठिर के सर्वस्व हारने पर दुर्योधन ने विदुर जी से कहा तुम जाकर द्रौपदी को यहां लाओ ताकि उस को बुहारी देने के काम पर नियत किया जावे ॥

विदुर जी ने कहा तुझे मौत याद कर रही है जो तू मृग होकर व्याघ्रों को क्रोध दिला रहा है तू यह नहीं जानता कि तेरे सिर पर बड़े विषधर सर्प बैठे हुए हैं, द्रौपदी किसी प्रकार से तेरी दासी नहीं बन सकती क्योंकि युधिष्ठिर ने पहिले अपने आप को हार कर पीछे द्रौपदी को दांऊ पर लगाया है अपने हारने पर युधिष्ठिर द्रौपदी का ईश नहीं रहा ॥

सभा में उपस्थित लोगों की ओर मुख करके विदुर जी फिर बोले, जान पड़ता है कि दुर्योधन राजा वेणु के समान शीघ्र नष्ट होने वाला है इस जूए से बड़ा भारी वैर उत्पन्न हो गया है अब यह दुष्ट अंत समय आने के कारण बावला हो रहा है, मनुष्य को खोटा वचन बोलना, मर्मों को छेदना, नीच कर्म से शत्रु को वश में करना और दूसरे को जलाने वाली और क्रोधित करने वाली बातें कहना उचित नहीं इस से मनुष्य नरक में पड़ता है, जो मनुष्य मर्यादा के विरुद्ध दूसरे को सदैव शोच में डालने वाली बातें कहता है वह दूसरे का कुच्छ नहीं

बिगाड़ता वरन आप ही उस का फल पाता है पंडित लोग दूसरों को कभी ऐसे वचन नहीं कहते ॥

हे दुर्योधन क्या तुम ने कभी उस पकड़ी हुई मछली को नहीं देखा जो आटे के लोभ से बंसी को निगल जाती है और, उस से छेदी जा कर प्राण त्यागती है तुम्हारी भी जो पांडवों से बैर रखते हो इस मछली की सी गति होगी पांडवों ने तुम से ऐसी कोई बात नहीं की जैसी तुम कर रहे हो जो मनुष्य कुत्तों के समान हैं वह सदैव तुम्हारी तरह वानप्रस्थियों और तपस्वियों को भूंका करते हैं ॥

हे दुर्योधन नरक का बड़ा द्वार कुटलता है तू इस बात को नहीं जानता और दुशासन आदि जो इस कपट में तेरे साथी हैं तेरे साथ ही डूबना चाहते हैं यह लोग मेरे उपकारी बचनों को नहीं सुनते ॥

तैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

दुशासन का द्रौपदी को बालों से पकड़े हुए खेंच कर सभा में लाना और द्रौपदी का दुःखी हुये हुये सभासदों से अपने दासी होने या न होने का प्रश्न पूछना ॥

विदुर जी की उक्त बातों को सुनकर और क्रोध से भर कर

धिक्कार देने लगा और उस न सभा में श्रेष्ठ मनुष्यों के सन्मुख ही प्रातिकामी सूत को बुला कर कहा तुम जा कर द्रौपदी को यहां ले आओ यह विदुर जी पांडवों से डरे हुये हैं यह सदैव हमारे विपरीत ही कहते हैं और हमारी वृद्धि नहीं चाहते ॥

प्रातिकामी पांडवों के निवास स्थान में गया और द्रौपदी के पास जाकर कहने लगा युधिष्ठर जुए के मद में मतवाले हो रहे हैं उन्हों ने तुम को हार दिया है और दुर्योधन ने तुम को जीत लिया है अब तुम दुर्योधन के घर में चल कर वहां दासीयों के साथ काम किया करो ॥

द्रौपदी ने कहा ऐसा कौन मूढ़ राजपुत्र होगा जो जूए में मतवाला हो कर स्त्री रूपी धन से जूआ खेलेगा तू क्या बक रहा है क्या उस के पास जूआ खेलने के लिए और धन नहीं था ॥

प्रातिकामी ने कहा युधिष्ठर ने अपना सब राज्य जूए में हार दिया है अंत में जब कुच्छ न बचा तो पहिले उस ने अपने चारों भाईयों को एक एक करके हारा और पुनः अपने आप को हार कर तुम को भी हार दिया ॥

द्रौपदी ने कहा तू सभा में जा और राजा से पूछ कि आप ने पहिले मुझ को हारा है या आपने आप को ॥

राजा के उत्तर को सुन कर मैं तेरे संग चलूंगी ॥

प्रातीकामी सभा में लौट कर गया और द्रौपदी का

प्रश्न युधिष्ठर से पूछा ॥

युधिष्ठर ने इस प्रश्न का अच्छा या बुरा कुच्छ उत्तर न दिया और वह चुपके बैठा रहा ॥

दुर्योधन ने कहा तू जा कर द्रौपदी को कह दे कि जो प्रश्न उस ने करना है यहां सभा में आकर कर ले ताकि सब सुनें ॥

प्रातीकामी ने पुनः द्रौपदी के पास जाकर कहा, हे राज पुत्री, तुझ को दुर्योधन सभा ही में बुलाते हैं जान पड़ता है कि अब कौरवों के नाश के दिन समीप आगये हैं दुर्योधन अब अपनी वृद्धि नहीं चाहता इस कारण तुझ को सभा में बुलाता है ॥

द्रौपदी ने कहा तू सच कहता है ईश्वर की यही इच्छा सुख और दुःख मूर्ख और पंडित दोनों पर एक सम पड़ते हैं, संसार में धर्म ही एक श्रेष्ठ पदार्थ है वह निश्चय मेरी रक्षा करेगा, अब तू पुनः सभा में जा और सभा में बैठे हुए नीति निपुण गुणवाण और श्रेष्ठ जनों से कहदे कि कौरवों को अपना धर्म नहीं छोड़ना चाहिये विचार पूर्वक निश्चय कर के मुझे उत्तर दें, उतर आने पर जैसा वह कहेंगे मैं करूंगी ॥

प्रातिकामी लौट कर सभा में गया और जो कुच्छ द्रौपदी ने उस को कहा था सभा में कह दिया ॥

पांडव इस पर भी कुछ न बोले और सिर नीचे किये बैठे रहे ॥

दुर्योधन ने कुछ और ही आज्ञा दी उस को जान कर युधिष्ठिर ने द्रौपदी के पास अपना एक दूत भेज कर कहला भेजा कि यद्यपि तू रजस्वला और एक वस्त्र ओढ़े हुए है फिर भी तू यहां आकर अपने श्वशुर राजा धृतराष्ट्र के सन्मुख खड़ी होजा ॥

वह दूत द्रौपदी के पास गया और युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा था उस को कह दिया, इस समय पाण्डवों ने दुःखी, दीन और सत्य से पूर्ण हो कर लज्जा के मारे ऊपर को आंख न उठाई ॥

दुर्योधन उन की इस दशा से बड़ा प्रसन्न हो रहा था उस ने फिर प्रातिकामी को कहा तू द्रौपदी को यहां ही ले आ, यहां सकल कौरव वंशीयों के सन्मुख जो कुछ भी उसे कहना हो कह ले ॥

प्रातिकामी द्रौपदी के कोप से डरा हुआ था उस ने दुर्योधन की आज्ञा की कुछ परवाह न की और सभा वालों से कहा द्रौपदी ने अपने प्रश्न का उत्तर आप से पूछा है मैं आप की ओर से उस को क्या उत्तर दूं ॥

इस समय दुर्योधन ने दुशासन से कहा यह सूत का बेटा पाण्डवों से डरता है अब तू आप जा और द्रौपदी को ला यह पांडव तेरा कुछ नहीं कर सकते ॥

दुशासन सभा में से उठा और झट पांडवों के निवास स्थान में द्रौपदी के पास गया और उस से कहा, हे कृष्णा

कौरवों ने तुझ को जूए में जीता है और धर्म से पाया है तू अब लज्जा को छोड़ और अपने आप को धिक्कार देती हुई दुर्योधन के सन्मुख चल और कौरवों की सेवा कर ॥

द्रौपदी को अति दुःख हुआ इस ने अपने मुख को अपने हाथों से पूंछा और चिल्लाती हुई भवन की उस ओर को भागी जिस ओर धृतराष्ट्र के कुटुंब की स्त्रिया थीं ॥

इस समय दुष्ट दुशासन को क्रोध ने ग्रस लिया और वह गरजता हुआ उन के पीछे दौड़ा और उस ने उस को केशों से पकड़ लिया, (हाय यह वही केश हैं जो राजसूय यज्ञ में अवभृथ नाम स्नान में मंत्र के जल से सींचे गये थे) पाडवों से निर्भय हो कर दुशासन नें उन केशों को मरोड़ डाला और उन्ही को पकड़ कर खींचता हुआ द्रौपदी को सभा में ले आया ॥

द्रौपदी ने इसी बाल पकड़ी और खींची जाती हुई दशा में धीमी स्वर से कहा अरे नीच अरे मंद बुद्धि मैं इस समय रजस्वला होने से केवल एक वस्त्र धारण किये हुए हुं तू मुझे सभा में मत ले जा और हे कृष्ण हे विष्णु, हे भगवन, हे हरि कह कह कर पुकारती हुई रोने लगी ॥

दुशासन ने कहा चाहे तू रजस्वला हो चाहे किसी दशा में हो हमने तुझ को जूए में जीत लिया है अब तुझे दासियों में लेजा कर रक्खेंगे ॥

इस समय द्रौपदी के बाल बिखड़ गये थे, आधा वस्त्र

धरती पर गिर पड़ी थी और दुशासन से खींचे जाने के कारण कांप रही थी इस दशा में होते हुये उन ने क्रोध करके धीरे से कहा, हे दुशासन सब से बूढ़े गुरू के समान सब शास्त्र जानने वाले सभा में बैठे हुए इस दशा में मैं उन के सन्मुख क्यों कर जा सकती हूं ? अरे नीच, निर्दई मुझ को क्यों नंगी करता है और मुझे क्यों खींचता है। तू इन राज पुत्रों के क्रोध को नहीं जानता जिस समय उन का क्रोध प्रकट होगा तू इन्द्र की सहायता से भी इन से नहीं बच सकेगा इस समय युधिष्ठर धर्म के विचार में है जो बड़ा सूक्ष्म है धर्म को वही लोग जानते है जिन की बुद्धि बड़ी सूक्ष्म होती है, मैं युधिष्ठर में गुण ही गुण देखती हूं किंचित मात्र भी दोष मुझे उसमें नहीं दीखता। हाय तू मुझ को इस रजस्वला अवस्था में कौरवों के सामने क्यों खींचे लिये जाता है, शोक यह कौरव अब सर्वथा निर्लज्ज होगये हैं जो ऐसा दुष्ट कर्म अपनी आंखों से देख रहे हैं उन को धिक्कार है, इन का धर्म और चलन अब नष्ट होगया है, जान पड़ता है कि द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्र का पराक्रम अब नष्ट होगया है जो वृद्ध होकर छोटों से ऐसा कुकर्म देख रहे हैं। द्रौपदी ने यह शब्द कहते हुये जब अपने पतियों की ओर क्रोध से कटाक्ष करके देखा तो पांडव भी क्रोध से महा दीप्त हो गये और उन को उस दुख से भी अधिक दुःख हुआ जो उन को सारा राज्य चले जाने से हुआ था॥

दुशासन ने द्रौपदी को अपने धर्म से बंधे हुये पतियों

की ओर देखते हुये जान कर उस के बाल पकड़ कर उस को हिलाया और बड़े ऊंच स्वर से ठठ्ठा मार कर कहा अरी दासी ! अरी दासी ! इस पर कर्ण ने भी ठठ्ठा मारा और छली शकुनि ने दुशासन की बड़ाई की, कर्ण, दुशासन शकुनि और दुर्योधन को छोड़ कर बाकी जितने मनुष्य वहां बैठे हुए थे उन सब को इस अधर्म कार्य से बड़ा दुःख हो रहा था ॥

अब भीष्म जी ने द्रौपदी से कहा, हे कृष्णा ! यद्यपि निर्धनी दूसरे के धन को जूए में दाव पर नहीं लगा सकता परंतु स्त्री को अपने वश में समझ कर धर्म की सूक्ष्मता को विचार कर मैं तेरे प्रश्न का ठीक २ उत्तर नहीं दे सकता। हां युधिष्ठर ने यह बात तो सब के सन्मुख कही थी कि पाहिले मैं जीता गया हुं युधिष्ठर धर्म को सब पदार्थों से श्रेष्ठ मानने वाला है सकल पृथ्वी को वह धर्म के आगे तुच्छ जानता है, शकुनि जूआ खेलने में अपने आप को अद्वितीय मानता है इसी दुष्ट शकुनि की प्रेरणा से युधिष्ठर ने तुझ को दांव पर लगाया था और यहां कहते हैं कि तू छल से दांव पर नहीं लगाई गई इस से मैं तेरे प्रश्न का यथोचित उत्तर देने में अपने आप को असमर्थ पाता हुं ॥

द्रौपदी ने कहा इस राजा ने जो जूआ खेलना नहीं जानता दूसरे की प्रेरणा से जूआ खेलना जानने वालों से जूआ खेल कर मुझे सभा में क्यों बुलाया है और युधिष्ठर पाहिले अपने आपको हार कर पीछे मुझ को क्यों कर हारकर इन को दे

सकता है, मैं इन सब कौरवों से जो स्त्रियों के स्वामी हैं इस प्रश्न का उत्तर चाहती हूं ॥

दुशासन ने द्रौपदी के इन वचनों और उसके दुःख की कुछ परवाह न की और उस को बहुत से अयोग्य और कटु वचन कहे ॥

भीमसेन ने द्रौपदी के इस दुःख को और उस के उत्तरीय वस्त्र को गिरा हुआ देख कर युधिष्ठर पर क्रोध किया ॥

चौतालीसवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का युधिष्ठर पर क्रोध करना, दुशासन का द्रौपदी को सभा में ले जाना, उस का सभा में अपने जीते या न जीते जाने का प्रश्न करना, उस का उत्तर न मिलना, दुशासन का द्रौपदी को नंगी करने के लिये उस का वस्त्र खेंचना, द्रौपदी का श्री कृष्ण जी को याद करना और श्री कृष्ण जी का वहां गुप्त आना और द्रौपदी की लज्जा रखना ॥

भीमसेन ने कहा हे युधिष्ठर, ज्वारियों के घरों में यदि

कोई दासी भी होती है तो वह उस को भी दांव पर लगा कर दुःख में नहीं डालते, राज्य, धन, घोड़े, शस्त्र, हम सब और अपने आप को जुए में दाव पर लगाते देख कर मुझ को कोप नहीं हुआ था क्योंकि आप इन सब के मालिक थे परंतु आप ने जो द्रौपदी को दांव पर लगाया है वह मर्यादा विरुद्ध काम किया है, यह द्रौपदी जो दुःख के योग्य नहीं हम सब के विवाहे जाने के कारण आप के द्वार इतना क्लेश पा रही है, इस से मुझे आप पर बड़ा क्रोध है मैं अब तुम्हारी दोनों भुजाओं को अग्नि में जला दूंगा हे सहदेव उठ और अग्नि ला ॥

अर्जुन ने कहा हे भीमसेन ऐसी बात आगे कभी आपने अपने मुख से नहीं निकाली थी जान पड़ता है कि इन निर्दई शत्रुओं के समीप बैठने से तुम्हारा धर्म और गौरव बिगड़ गया है, तुम को अपने धर्म पर रहना चाहिए, भला ऐसा कौन होगा जो धर्मात्मा और शीलवान बड़े भाई को छोड़ जैसा मन में आवे करे ॥

शत्रुओं के बुलाने पर राजा ने क्षत्रियों का धर्म विचार कर जो यह जूआ खेला है वह भी कीर्ति का बढ़ाने वाला है ॥

भीमसेन ने कहा हे अर्जुन तू सत्य कहता है यदि मैं इस धर्म को न समझता तो कभी का इन दोनों बाहों को अवश्य जला चुकता ॥

इस समय सभा में से धृतराष्ट्र का विकर्ण नामी पुत्र

पांडवों को दुःखी और द्रौपदी को क्लेश युक्त देख कर वह कर कहने लगा हे राजा लोगो ! जो प्रश्न द्रौपदी पूछती है विचार पश्चात् इस का स्पष्ट उत्तर दो नहीं तो वचन के विवेक न करने से नरक के अधिकारी होगे, भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, विदुर जी और कृपाचार्य ने अब तक कुच्छ उत्तर नहीं दिया, इस कारण आप को जो इतनी २ दूर से आए हैं काम और क्रोध को छोड़ कर इस का उत्तर देना उचित है। द्रौपदी आप लोगों से कई बार प्रश्न कर चुकी है परंतु आप सब मौन धारे विराज रहे हैं ॥

विकर्ण ने उन राजाओं से और कई बातें इसी विषय के संबंध में कहीं परंतु उन में से किसी ने भी भला या बुरा कुच्छ न कहा ॥

तब वह हाथ मलता हुआ श्वास ले ले कर कहने लगा, हे राजा लोगो तुम मौन धार बैठे रहो मुझ से ऐसा नहीं हो सकता मेरी समझ में जो कुच्छ आता है मैं कहता हुं। राजा के चार शोक हैं १ शिकार खेलना २ मद्यपान, ३ पांसा का खेल और ४ स्त्री भोग, इन चारों कर्मों में राजा सदैव धर्म मार्ग को छोड़ कर वर्ताव करता है और इन कर्मों में लिप्त होकर जो काम राजा करता है वह मानने के योग्य नहीं होता इस खेल में युधिष्ठर को ज्वारियों ने खेलने के लिये बुलाया था वह स्वयं नहीं आया और जिस समय युधिष्ठर खेल में सर्वस्व हार कर अपने आपको भी भाईयों सहित हार गया उस जूए की आग में इस ने शकुनि आदि खिलाड़ियों की प्रेरणा से

द्रौपदी को जो साधारण मात्र पांचों पांडवों की भार्या है दांव पर लगा दिया इस से मेरे विचार में द्रौपदी नहीं जीती गई ॥

इस पर सभा में बैठे सब लोग बड़े उच्च शब्दों में विकर्ण की प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करने लगे ॥

कर्ण को इस पर बड़ा क्रोध आया और उस ने विकर्ण की बांह पकड़ कर कहा ॥

हे विकर्ण तू बड़ी विपरीत बात कहता है जान पड़ता है कि जिस प्रकार आरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न हो कर उसी काष्ठ को जला कर भस्म कर देती है उसी प्रकार तू भी जिस कुल में उत्पन्न हुआ है उसी को नाश करना चाहता है, इतने बड़े २ और वृद्ध लोग यहां बैठे हुए हैं यह सब द्रौपदी को जीती हुई मान कर उस के बार २ पूछने पर भी कुच्छ उत्तर नहीं देते तू अज्ञान बालक हो कर क्यों निकला पड़ता है और वृद्धों के समान बोलता है तेरा यह कहना कि द्रौपदी जीती नहीं गई केवल तेरे धर्म से अज्ञान होने का कारण है भला तू द्रौपदी को बिना जीती क्यों कर समझता है युधिष्ठर ने सारी सभा के सन्मुख अपना सब धन दाव पर लगा दिया क्या द्रौपदी सब धन में नहीं जो तू उस को बिना जीती हुई कहता है जब पांडवों ने आप ही कह दिया तो फिर तू कौन है जो उस को बिन जीती बतलाता है, तू जो द्रौपदी को एक वस्त्र ओढ़े सभा में लाना अधर्म बतलाता है उस का उत्तर यह है कि देवताओं ने स्त्री का केवल एक पति कहा है जो स्त्री एक से दूसरा पति भी करती है वह बंधकी कहलाती है, द्रौपदी तो एक दो क्या

पांच पतियों से रमण करती है उसे इस सभा में लाना और एक वस्त्र पहिने हुए लाना तो और रहा इसको यदि नंगा भी किया जावे तो कोई दोष की बात नहीं, शकुनि ने इन सब पाण्डवों को उन के धन को और द्रौपदी को धर्म से जूए में जीता है हे दुशासन तुम इन पांडवों और द्रौपदी के वस्त्रों को भी उतारलो ॥

इस पर पाण्डवों ने स्वयं अपने २ वस्त्र उतार कर रख दिये और सभा में बैठ गये और दुशासन बल से द्रौपदी के वस्त्र खींच कर उस को नग्न करने लगा ॥

द्रौपदी ने उस समय ईश्वर का स्मरण आरम्भ कर दिया और श्री कृष्ण जी को याद करके ऊंचे स्वर से रोने लगी और कहने लगी हे दुःख हर्ता मुझे कौरव रूपी समुद्र से पार उतारो मैं डूब रही हूं हे द्वारका वासी मैं आप की शरण में हूं आप के बिन इस समय मेरी लज्या रखने वाला कोई नहीं है, द्रौपदी मूंह ढांप कर इस प्रकार रोती हुई श्री कृष्ण जी का स्मर्ण करती हुई विलाप करने लगी, उस की आरत वाणी को सुन कर श्री कृष्ण चंद्र जी गद् गद् प्रसन्न होगये और अपनी कमल समान शय्या को छोड़ कर द्वारका से चले तत्क्षण उस के पास पहुंच गये, द्रौपदी के धर्म रूपी वस्त्र गिरने पर कृष्ण चन्द्र जी ने उस को नाना भांत के वस्त्रों से ढक दिया ज्यों ज्यों दुशासन उस के वस्त्र खींचता जाता था त्यों त्यों श्वेत, पीले, काले, नाना रंगों के वस्त्र नीचे से निकलते आते थे ॥

इस समय सब ओर से हा हा हलहला शब्द होने लगा

और सभा में सब उपस्थित लोग दुर्योधन की निंदा करके द्रौपदी की प्रशंसा करने लगे ॥

भीमसेन उठा और हाथ से हाथ मल कर सब राजाओं के बीच में सुगंद खा कर कहने लगा "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं युद्ध में इस पापी और नीच दुशासन के हृदय को फाड़ कर इस का लहू पीऊंगा, यदि मैं इस प्रतिज्ञा का पालन न करूं तो मुझे मेरे पुरुषाओं की गति न मिले !" इस भयानक प्रतिज्ञा को सुन कर सब सभासद उस की प्रशंसा करके दुर्योधन की निंदा करने लगे ॥

जब वस्त्रों का एक छकड़े के बराबर ढेर हो गया तो दुशासन थक कर बैठ गया ॥

सभा में उपस्थित लोग पाण्डवों की इस दशा को देख कर धिक्कार दे दे कर ऐसे शब्द उच्चारने लगे जिन के श्रवण मात्र से रोम खड़े हो गए उधर सुजन मनुष्यों ने धृतराष्ट्र की निंदा करते हुए यह कहना आरम्भ कर दिया कि बड़े शोक की बात है कि द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर कौरवों की ओर से इस समय तक भी स्पष्ट रीति से नहीं दिया गया ॥

अब सभा वाले एक २ दो २ करके चलने लगे विदुर जी उठे और हाथ उठा कर कहने लगे, देखो द्रौपदी प्रश्न करके अनाथों के समान रो रही है तुम्हारे उस के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न देने से धर्म पीड़ा पा रहा है। जो मनुष्य दुःखी और पीड़ामान होता है वह सभा में आता है सभा के मनुष्य

सत्य और धर्म से उस के दुःख को दूर किया करते हैं इस कारण मेरी प्रार्थना है कि इस सभा के श्रेष्ठ मनुष्य काम क्रोध और बल को एक ओर रख कर इस धर्म रूपी प्रश्न का सत्य२ और उचित उत्तर दें और उत्तर देते समय विकर्ण के समान अपनी बुद्धि से काम लें, सभा में बैठने वाले श्रेष्ठ और धर्मदर्शीयों में से जो किसी के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नहीं देता उन को झूठ बोलने का पाप लगता है और धर्मदर्शी मनुष्य यदि सभा में बैठ कर धर्म के विपरीत बात कहता है तो उस को भी झूठ बोलने का पूरा २ पाप लगता है, लो हम आप लोगों को अंगिर वंशी सुधन्वा मुनि और प्रल्हाद का सम्वाद जो इस समय के योग्य है सुनाते हैं ॥

प्रल्हाद दैत्यों का एक राजा था विरोचन नाम उस का एक पुत्र था वह एक दिन सुधन्वा मुनि के पास उन की कन्या मांगने गया ॥

मुनि की उस कन्या ने जिस का नाम केशनी था सुधन्वा और विरोचन दोनों से प्रश्न किया कि तुम दोनों में से श्रेष्ठ कौन है, उन दोनों ने आपस में प्रण कर लिया कि जो श्रेष्ठ सिद्ध हो वह दूसरे को मार डाले यह नियम बांध कर वह विवाद करते हुये प्रल्हाद के पास गये और उस से कहा आप निरपक्ष होकर सत्य कह दीजिये कि हम में से श्रेष्ठ कौन है, प्रल्हाद के वास्ते बड़ी कठनाई हुई, वह सुधन्वा की ओर देखने लगा । सुधन्वा ने क्रोध कर के कहा यदि तू झूठ

बोलेगा या प्रश्न का उत्तर न देगा तो इन्द्र अपने वज्र से तेरे सिर के सौ टुकड़े कर देगा। प्रल्हाद इस से डर कर वायु से पीपल के पत्ते के हिलने के समान कांपता हुआ कश्यप जी के पास गया और उन से कहा महाराज आप इस लोक में देवता, असुर और ब्राह्मण इन तीनों के कर्मों को जानते हैं इस कारण इस धर्म संक सहायक होकर यह बताइये कि जो मनुष्य प्रश्न का उत्तर न दे अथवा विपरीत उत्तर दे तो उस की कैसी गति होती है॥

कश्यप जी ने कहा जो जन जान बूझ कर प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रीति से नहीं देता उस की आत्मा वरुण की सैंकड़ों पाशों से बांधी जाती है और साक्षी होकर दोनों ओर मिल कर ठीक २ न कहने वाले की भी यही गति होती है, एक वर्ष पीछे उस की एक पाश छूटती है इस प्रकार से सैकड़ों वर्षों में वह उन पाशों से छूटता है, हे पुत्र जो सत्यवादी हैं वह सर्वत्र सत्य ही कह देते हैं॥

हे पुत्र जिस सभा में धर्म की बातों को अधर्म की बातों से और की और कर देते हैं उस सभा में उपस्थित जन धर्म को हानि देने के कारण पाप के भागी होते हैं, बुरे को बुरा न कहने से आधा पाप सभापति को, चौथाई पाप करने वाले को और चौथाई सभा में उपस्थितों को लगता है और जिस सभा में बुरे को बुरा कहा जाता है उस सभा में उपस्थितजन पाप से छूट जाते हैं और वह पाप केवल करने वाले को ही

लगता है, हे प्रल्हाद पूछे जाने पर जो मनुष्य धर्म के विरुद्ध बात कहता है उस की अगली और पिछली सात ७ पीढ़ी और सब किये हुये शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, देवता लोग इन निम्नलिखित १० दुःखों को एक सा ही जानते हैं १ जिस का धन जाता रहे २ जिस का पुत्र मर जाये ३ जो ऋणी हो, ४ जिस का काम बिगड़ जाय, ५ जिस स्त्री का पति मर जाय ६ जिस को राजा ने पकड़ लिया हो ७ जिस स्त्री के पुत्र नहीं होता ८ जिस को व्याघ्र ने घेर लिया है, ९ जिस स्त्री की सौत हो, और १० जिस को साक्षी ने मारा हो, झूठ बोलने वाले को यह दशों दुःख प्राप्त होते है. साक्षी दो प्रकार के होते हैं एक वह जिन्हों ने आंख से देखा हो और दूसरे वह जिन्हों ने कानों से सुना हो इस कारण साक्षी को सदैव सत्य ही कहना उचित है इस से उस का धर्म नहीं बिगड़ता ॥

कश्यप जी की उपरोक्त बात को श्रवन करने प्रल्हाद ने अपने पुत्र विरोचन से कहा हे पुत्र सुधन्वा तुझ से श्रेष्ठ है, सुधन्वा का पिता आंगिरा ऋषि मुझ से और उस की माता तेरी माता से श्रेष्ठ है इस कारण सुधन्वा अब तेरे प्राणों का मालिक है ॥

अब सुधन्वा ने कहा हे प्रल्हाद तुम ने पुत्र के स्नेह को त्याग कर धर्म से सत्य २ कहा है इस कारण मै अब तेरे पुत्र को छोड़ता हुं और वर देता हुं कि वह सौ वर्ष तक जीता रहे ॥

विदुर जी ने कहा हे सभा में उपस्थित राजा लोगो तुम भी प्रल्हाद के समान द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर धर्म से ठीक २ दो ॥

विदुर जी की इस बात को सुन कर किसी ने कोई उत्तर न दिया ॥

तब कर्ण ने दुशासन से कहा इस द्रौपदी दासी को घर में ले जाओ दुशासन उस लज्जित, कंपित और विलाप करती हुई द्रौपदी को खैंचता हुआ घर ले जाने लगा ॥

पैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का विलाप करते हुये अपने प्रश्न का उत्तर मांगना और भीष्म जी का यह कहना कि युधिष्ठर जो उत्तर दे वह प्रमाण है ॥

इस समय द्रौपदी यह कह कर अरे दुष्ट दुशासन जब तक मेरे प्रश्न का उत्तर न मिले ठहर पृथ्वी पर पड़ी हुई विलाप करने लगी और पुकारने लगी कि मुझे केवल स्वयम्बर ही के समय सारे राजाओं ने देखा था इस से पहिले और पीछे कभी भी किसी स्थान पर मुझे किसी ने नहीं देखा हाय मुझ को जिस घर में सूर्य और वायु ने भी नहीं देखा था इस

समय इस सभा में सब देख रहे हैं। यही पांडव मेरे साथ वायु का स्पर्श होना भी न सह सकते थे जो आज इस दुष्ट के हाथ से मेरी ऐसी गति को शांत होकर देख रहे हैं। हाय मैं इन कौरवों की पुत्र वधु होकर यह दुःख सहूं, जान पड़ता है यह कौरव काल की विपरीतता से मेरी यह दुर्गति अपनी आखों देख रहे हैं। हाय इन राजाओं का धर्म कहां चला गया पहिले धर्मात्मा लोग स्त्री को कभी भी सभा में न लाते थे ॥

हाय कौरवों का सनातन धर्म नष्ट होगया है मैं पांडवों की पटरानी, द्रुपद की पुत्री धृष्ट द्युम्न की बहिन और कृष्ण की सखी होने से सभा में आने के योग्य नहीं हूं। हे कौरवो तुम्हारे यश को दूर करने वाला यह दुष्ट दुशासन मुझ को बड़ा दुःख दे रहा है मैं अब उस क्लेश को सह नहीं सकती मुझे यह बता दो कि दासी हूं या अदासी मैं उस के अनुकूल करूंगी ॥

यह सुन कर भीष्म जी ने कहा हे कृष्णा मैं पहिले ही तुझे कह चुका हूं कि धर्म की गति अति सूक्ष्म है उस को महात्मा लोग भी नहीं जानते, इस संसार में बलवान मनुष्य जिस धर्म को मानता है वही धर्म है और उस धर्म की मर्यादा पर दूसरा चलने वाला अधर्मी गिना जाता है इस कारण मैं तेरे गम्भीर, गौरव सूक्ष्म प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता, इस समय यह कौरव लोभ और मोह के वश में हो रहे हैं निश्चित इन का काल समीप आ पहुंचा है. यह पांडव धर्म मार्ग को छोड़ना नहीं चाहते। मैं यह भी जानता हूं कि इस समय

तुझ को बड़ा कष्ट हो रहा है और तू उस कष्ट पर भी अपने धर्म पर दृढ़ रह कर उस को त्यागना नहीं चाहती ऐसा काम तेरे बिन और कौन कर सकता है, देख यह द्रोणाचार्य आदि वृद्ध लोग जो धर्म के जानने वाले हैं नीचे को मुंह किए मृतक के तुल्य बैठे हुए हैं और तेरे प्रश्न के संबंध में एक शब्द तक मुख से नहीं निकालते इस से हमारी समझ में यही आता है कि वह युधिष्ठिर ही कहे कि तू जीती गई है या नहीं ॥

छत्तालीसवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का द्रौपदी से अपना प्रश्न पांडवों ही से पूछने के लिये कहना और भीमसेन का क्रोध कर के उत्तर देना ॥

जब दुर्योधन के भय से किसी राजा और अन्य सभासद ने द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर न दिया तो दुर्योधन हंसता हुआ द्रौपदी से कहने लगा, हे द्रौपदी तू अपना यह प्रश्न भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से पूछ, वही तुझ को इस का उत्तर देंगे यदि यह युधिष्ठिर को झूठा ठहरा कर यह कह दें कि वह तेरा स्वामी नहीं तो तू दासी भाव से छुड़ा दी जावेगी। या युधिष्ठिर जो धर्मात्मा और सत्यवक्ता है आप ही कह दे कि मैं द्रौपदी का पति हूं या नहीं हूं तू इन दोनों बातों में

से जिस एक को चाहती है अंगीकार कर। देख तुझे दुःखी देख कर यह सब कौरव कष्ट पा रहे हैं और पाडवों का अल्प भाग्य देख कर कुच्छ नहीं कहते हैं

दुर्योधन के इन वाक्यों को सुन कर सभा के सब लोग उस की प्रशंसा करने लग गये और प्रसन्न होकर पांडवों की ओर देखने लगे कि देखो अब यह पाचों क्या उत्तर देते हैं ॥

भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को पकड़ कर बोला, हे दुर्योधन यदि हमारा यह बड़ा भाई हमारी कुल का स्वामी न होता तो हम तेरे इस दोष को कभी भी क्षमा न करते, मारे पुण्य, तप और प्राणों का यह एक स्वामी है यदि यह अपने आप को हारा हुआ जाने तो तुम हम सब को भी वैसा ही समझो, जो मनुष्य द्रौपदी को बालों से पकड़ कर खैंचे वह मेरे हाथों कदापि भी नहीं बच सकता, मेरी भुजाओं की ओर देख इस में यदि बलवान से बलवान पुरुष भी आजावे वह कदापि नहीं बच सकता पर क्या करूं धर्म के बंधन में जकड़ा हुआ हुं और युधिष्ठर के गौरव और अर्जुन के रोकने से इस संकट के पार नहीं होसकता, यदि युधिष्ठर आज्ञा देवें तो तुझ को तेरे भाईयों सहित इस प्रकार से पीस डालूं जिस प्रकार सिंह नीच मृग को मार कर खा जाता है ॥

इस पर भीष्म जी, द्रोणाचार्य और विदुर जी ने कहा, तुम क्षमा करो तुम इसी योग्य हो ॥

सैंतालीसवां अध्याय

—:o:—

भीमसेन का युद्ध में दुर्योधन की जांघ तोड़ने का प्रण करना, कौरवों का द्रौपदी के साथ बहुत अनीति करना, उस से सभा के पास उत्पात सूचक गीदड़ों का बोलना उस को सुन कर धृतराष्ट्र का द्रौपदी को वर देना और पांडवों का दास भाव से छूटना ॥

इस समय कर्ण बोला क्यों न हो इस सभा में भीष्म, विदुर और द्रोणाचार्य ही केवल धर्मवान हैं क्योंकि यह तीनों अपने स्वामी को बुरा दुष्ट बतलाते हैं और पाप करने से नहीं डरते, हे द्रौपदी शिष्य, अस्वतंत्र स्त्री, दास की स्त्री और दास का सब धन स्वतंत्र नहीं होते यह पांडव अब दुर्योधन के दास हैं इस से तू अब दुर्योधन और अन्य कौरवों की है जिस को तेरा दिल चाहे इन में से तू वर ले ताकि तुझे दासी के कामों से छुटकारा मिले दासी के बहुत पति होने से वह निंदित होती है ॥

कर्ण की इन बातों ने भीमसेन के क्रोध को और भड़का दिया और वह धर्म की फांस में बंधा हुआ लाल २ आंखें निकाल कर और गरम श्वास ले कर कहने लगा ॥

हे युधिष्ठिर मैं इस सूत के बेटे पर क्रोध नहीं करता, यह सच है कि हम इस समय दास हो चुके हैं यदि तुम द्रौपदी को दाव पर लगा कर जूआ न खेलते तो यह शत्रु हम को ऐसा क्यों कहते ॥

यह सुन कर दुर्योधन युधिष्ठिर से जो इस समय अचेत सा होकर चुप सा बैठा हुआ था कहने लगा हे युधिष्ठिर तुम्हारे यह चारों भाई तुम्हारे आज्ञा कारी हैं तुम द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दो कि तुम उस को हारी हुई मानते हो या नहीं, इस के पीछे उस ऐश्वर्य से मत्त दुर्योधन ने मुस्करा कर और कर्ण की ओर इशारा करके अपनी जाघ जो केले के खंभ हाथी की सूंड और वज्र के समान गौरवी था वस्त्र हटा कर दिखलाई ॥

दुर्योधन के इस कर्म को देख कर भीमसेन क्रोध से जल भुन गया और बड़े ऊंचे शब्दों में सब राजाओं को सुना कर कहने लगा, यदि मैं युद्ध में अपनी गदा से तुम्हारी इस जांघ का न तोड़ डालूं तो मुझे पितृलोक न मिले ॥

तब विदुर जी ने फिर कहा हे प्रताप वंशी राजाओं अब भी समझ जाओ भीमसेन का बड़ा डर है इन भरत वंशी की मति तो पहिले ही हरी जा चुकी है जिस से यह ऐसी अनिति कर रहे हैं हे दुर्योधन यह जूआ मर्यादा से आगे बढ़ गया है मुझे तुम सब का कल्यान दिखाई नहीं देता क्योंकि तुम स्त्री को सभा में ला कर उस से विवाद कर रहे हो और दुष्टता करते चले जाते हो ॥

हे कौरवो आप ही इस धर्म को समझो क्योंकि इस के न समझने से सभा को दोष लगता है यदि युधिष्ठिर अपने आप को हारने से पहिले द्रौपदी को हार देता तो निस्संदेह वह उस का स्वामी रहता, ऐसे ज्वारी से धन जीतना जो उस धन का मालिक नहीं रहा स्वप्न में मिले हुये धन के समान है आओ कंधार के राजा की सलाह को छोड़ दो ॥

दुर्योधन उठा और कहने लगा अच्छा मैं इस झगड़े को भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और नकुल ही पर छोड़ता हुं यह ही अपने मुख से कह दें कि युधिष्ठर इस का स्वामी नहीं मैं अभी इस को छुड़ा देता हुं ॥

अर्जुन ने कहा यह युधिष्ठर हम सब के स्वामी थे जब उन्हों ने अपने आप को हार दिया तो वह फिर किस प्रकार से स्वामी रहे ॥

इस समय धृतराष्ट्र के यज्ञ स्थान के निकट गीदड़ों ने बड़े शब्द से रोना आरम्भ कर दिया जिस से भयानक जीव बोलने और गधे रेंकने लगे ॥

गीदड़ इत्यादि के शब्द को सुन कर भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर जी कहने लगे कल्याण हो ! कल्याण हो ॥

विदुर जी और गंधारी धृतराष्ट्र के पास गये और उस को इस उत्पात की सूचना दी ॥

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को बुला कर कहा अरे दुर्बुद्धि तु बड़ा नीच है जो कुरुवंशियों की श्रेष्ठ सभा में स्त्री से बात

करता है और फिर द्रौपदी सी धर्म पत्नि से ॥

पुनः धृतराष्ट्र द्रौपदी के पास आये और उस से कहा, हे द्रौपदी तू सब बहुओं में श्रेष्ठ, सति और पतिव्रता है जो कुच्छ तेरी इच्छा हो मुझ से मांग ॥

द्रौपदी ने कहा आप मेरे पति युधिष्ठर को अदास कर दीजिये और मेरे मनस्वी प्रतिविंद पुत्र को कोई दास पुत्र न कहे वह राज पुत्रों के समान ललित होकर रहे ॥

धृतराष्ट्र ने कहा बहुत अच्छा ऐसा ही होगा परंतु मैं तुझ को और कुच्छ दिया चाहता हु मांग ले ॥

द्रौपदी ने कहा महाराज भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव का दास भाव हट जावे और उन को उन के रथ और धनुष दे दिये जावें ॥

धृतराष्ट्र ने कहा ऐसा ही होगा अब तुम हम से एक वर और मांगो मैं अभी तुम को वर देने में तृप्त नहीं हुआ ॥

द्रौपदी ने कहा महाराज बहुत लोभ करने से धर्म क्षीण होता है अब मैं और कुच्छ मांगना नहीं चाहती, शास्त्र में वैश्य को एक क्षत्री को दो राजा को तीन और ब्राह्मण को सौ वर तक मांगना लिखा है । मैं नहीं चाहती हूं कि मेरे यह पति [illegible] हरावण धारें ॥

अड़तालीसवां अध्याय

—:०:—

कर्ण की बात को सुन कर भीमसेन का क्रोध करना और युधिष्ठर का उस को शांत करना॥

कर्ण ने कहा हम ने आज तक बहुत सी रूपवति स्त्रिया देखी और सुनी हैं परंतु उन में से एक भी ऐसा नहीं सुनी गई जिसने ऐसा कर्म किया हो, इस ने पांडवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों के क्रोध को शांत करके पांडवों का महा दुःख दूर कर दिया है॥

भीमसेन यह सुन कर कि पांडवों का दुःख स्त्री द्वारा दूर हुआ है बड़ा क्रोधित होकर कहने लगा, हम ने देवल ऋषि से सुना है कि संतान शुभ कर्म और विद्या तीनों लोक को तारने वाली हैं, यही तीनों उन मनुष्यों को जो अपवित्रता में भरे हैं या जिन को स्वजातियों ने छोड़ दिया है या जो शुन्य स्थान में हैं उन सब का उपकार करने वाली है। इन तीनों में से संतान विना स्त्री के नहीं हो सकती इस कारण स्त्री ही सब को तारने वाली है, हे अर्जुन जो मनुष्य पर पुरुष की संगत से उत्पन्न हो वह ऐसा क्यों न कहे जैसा कर्ण कहता है॥

अर्जुन ने कहा हे भीमसेन अच्छे पुरुष नीच जन से बात नहीं करते और संत लोग दूसरे के किये हुये उपकार को जान

कर सदैव सुकृत हो को याद करते हैं और किये हुये बैर को कभी हृदय में नहीं आने देते ॥

अब भीमसेन ने कहा हे युधिष्ठर यहां अब वृथा बातें करने से क्या लाभ है यदि आप आज्ञा दें तो हम बाहर निकल कर इन सब शत्रुओं को मार कर क्षण भर में इन का नाश कर दें, फिर आप निश्चिंत होकर इस पृथ्वी पर आनन्द से राज कीजिये । अब भीमसेन ऐसे देख रहा था जैसे मृगों को सिंह देखता है युधिष्ठर को शांत स्वरूप देख कर उस के रोमों से ज्वाला निकल रही थी और प्रलय काल के रुद्र स्वरूप के समान भौं आदि के चढ़ाने से उस का मुख ऐसा भयानक हो गया था कि उस की ओर कोई देख न सकता था ॥

युधिष्ठर ने उस के हाथ को पकड़ कर कहा हे भाई ऐसा कहने में इस समय कुच्छ लाभ नहीं शांत चित्त हो कर बैठ जाओ ॥

उनचासवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र का युधिष्ठर को उपदेश देना और उस का इन्द्रप्रस्थ को जाना ॥

अब युधिष्ठर अपने दोनों कर बांध कर धृतराष्ट्र के सन्मुख खड़ा हो कर कहने लगा महाराज अब मेरे लिये क्या आज्ञा है

में आप की आज्ञा में रहना चाहता हूं ॥

धृतराष्ट्र ने कहा अब तुम कल्याण से अपने घर को जाओ और आनन्द से राज्य करो और मुझे वृद्ध जान कर मेरी आज्ञा को अपने लिये हितकारी और कल्याणकारी समझो। तुम धर्म की सूक्ष्म गति को जानते हो और ज्ञानी, नम्र और वृद्धों की सेवा करने वाले हो, बुद्धिमान मनुष्य सदैव क्षमावान रहते हैं इस कारण तुम भी अब शांत होकर रहो, देखो शस्त्र पत्थर आदि वस्तुओं पर नहीं चलता नरम वस्तु को काट डालता है उत्तम मनुष्य अपने मन में वैर और विरोध नहीं रखते वह सदैव गुण ही का ध्यान रखते हैं, हे युधिष्ठिर संत लोग दूसरे के वैर को याद कर के बदला लेने का उपाय नहीं करते बात चीत में खोटा वचन बोलना महा नीचों का काम है जो मनुष्य उन खोटे वचनों को सुन कर खोटा ही उत्तर देते हैं वह मध्यम पुरुष हैं परन्तु उत्तम और धीर्यवान मनुष्य अप्रिय और मर्म छेदने वाले वचन कह सुन कर विषाद नहीं किया करते ॥

हे युधिष्ठिर संत लोग अपनी आत्मा की समान दूसरे का भला चाह कर सदा शुभ कर्म करने में मन रखते हैं और यदि उन के साथ कोई वैर भी रखता है तो उस को कभी मन पर नहीं लाते ॥

साधू लोग चाहे कुच्छ हो अपनी मर्यादा से बाहर नहीं होते, तुम ने इस सभा में वैसा ही किया है और अपनी मर्यादा से बाहर नहीं हुए, हे युधिष्ठिर तुम अब मुझ अंधे और अपनी

माता गंधारी की ओर देख कर इस दुर्योधन के कर्म को भुला दो यह जूआ मेरी ही आज्ञा से हुआ था मुझे बल अबल और मित्रों की परीक्षा करनी थी तुम कौरवों के राजा हो तुम्हें किसी बात की चिंता करनी उचित नहीं निस्संदेह हमारे मंत्री विदुर जी बड़े पंडित, निर्पक्ष और बुद्धिमान हैं और तुम धर्मात्मा, अर्जुन धीर्यवान, भीमसेन पराक्रमी और नकुल और सहदेव बड़ों की सुश्रूषा करने वाले हैं, धर्मात्मा करें तुम्हारा सदैव कल्याण हो और तुम्हारी [illegible] रहे और दुर्योधन आदि भाइयों से सदा तुम्हारी [illegible] रहे [illegible] तुम खांडव प्रस्थ में जाओ ॥

युधिष्ठर ने इन सब [illegible] ध्यान रखने की प्रतिज्ञा की और भाइयों और द्रौपदी [illegible] पर चढ़ कर इन्द्रप्रस्थ को चल दिये ॥

पचासवां अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का [illegible] से [illegible] कारण कह कर पांडवों को फिर [illegible] खेलने के लिये बुलवाना ॥

पांडवों को धन आदि सहित इन्द्रप्रस्थ को जाते हुए देख कर दुशासन को बहुत दुःख हुआ, वह भागा हुआ दुर्योधन के

युधिष्ठिर यूंही गये हैं। ऐसा जान पड़ता है कि वह रथों को भगा कर सेना लेने को गये हैं ॥

हे पिता उन को जो दुःख यहां मिला है और विशेष कर द्रौपदी के क्लेश से जो दुःख उन को हुआ है वह उस को कभी न भूलेंगे और चित्त में रखते हुए यहां आकर हम से युद्ध करेंगे इस कारण मैं चाहता हुं कि आप उन को रास्ते से ही लौटा कर यहां मंगवालें और फिर जूआ करायें अब की बेर जूये की यह शर्त होगी कि पांसा डाल कर जो जीते वह दोनों का राज्य सम्भाले और हारने वाला मृगछाला ओढ़ कर बारह वर्ष तक वन में रहे और तेरहवां वर्ष गुप्त काटे यदि तेरहवें वर्ष में किसी से देखा जाये तो पुनः बारह वर्ष वन में रहे, शकुनि पांसों की विद्या को अच्छी तरह से जानता है जैसाकि; पहिली खेल से भी सिद्ध हो चुका है पस हम उन को जीत कर तेरह वर्ष निश्चिंत हो कर सारा राज्य करेंगे और इस तेरह वर्ष के अंतर में हम सब राजाओं को वश में करके और बहुत सी सेना को इकट्ठी करके उन को युद्ध में तत्काल जीत लेंगे, आप कृपा कीजिये और हमारा कहा अंगीकार कीजिये ॥

धृतराष्ट्र ने दूतों को बुला कर आज्ञा दी कि अभी तीक्ष्ण चलने वाले घोड़ों से रथों को जोत कर पांडवों के पीछे जाओ और रासता में जहां मिलें उन को लौटा लाओ जिस से वह पुनः आकर जूआ खेलें ॥

इस समय द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्मपितामह और विकर्ण सब धृतराष्ट्र के पास आये और जूए के दोष वर्णन करके पृथक् पृथक् कहने लगे कि अब जूआ होना उचित नहीं ॥

धृतराष्ट्र ने जो पुत्र के स्नेह में फंसा हुआ था इन सब की एक न सुनी ॥

इक्यावनवां अध्याय

—:०:—

गंधारी का धृतराष्ट्र को दुर्योधन के त्यागने का उपदेश देना और धृतराष्ट्र का पांडवों के आने पर फिर जूए की आज्ञा देना ॥

गंधारी ने भी यह समाचार सुन पाया और वह झट धृतराष्ट्र के पास आई और शोकातुर होकर धर्म को सन्मुख रखती हुई कहने लगी, मैं आप को इस समय वह बात याद दिलाती हूं जो विदुर जी ने इस दुर्योधन के उत्पन्न होने के समय गीदड़ों के रोने पर कही थी, मेरी समझ में अब वह काल आ पहुंचा है आप बूढ़े होकर इन बालकों की बातों में न आइये और इस कुल नाशक को अब भी त्याग दीजिए

और शांत हुये पांडवों को अब फिर कोपित न कीजिए । आप तो धर्मात्मा, ब्रह्म ज्ञानी और शुभ भाग्यवान् हैं आप इन बालकों के पीछे लग कर अपनी बुद्धि को असावधान न कीजिए, क्रूर पुरुषों के गृह से लक्ष्मी भागती है और शीलवान पुरुषों के घर में लक्ष्मी वास करके दिन प्रति दिन बढ़कर उन के बेटे पोतों तक रहती है ॥

युधिष्ठिर ने कहा तेरा कहना सत्य है परन्तु मैं क्या कर सकता हूं मेरे वश में कुच्छ नहीं पांडवों को यहां आकर अवश्य जूआ खेलना होगा ॥

बावनवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर का शकुनि से फिर जूआ खेलना और सम्पूर्ण राज्य आदि हार देना ॥

दूतों में से प्रातिकामी दूत पांडवों के पास जो दूर निकल गए थे पहुंच कर कहने लगा आप को धृतराष्ट्र ने बुलाया है और कहा है कि सभा में चौपड़ बिछ रही है यहां आकर जूआ खेलो ॥

युधिष्ठिर ने कहा यद्यपि जूआ खेलने में मैं क्षय जानता हूं परन्तु अपने वृद्ध धृतराष्ट्र की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा

मैं चलता हुं और जूआ खेलूंगा ॥

पांडव होनी के वश में होकर शकुनि के छल को जानते हुए भी जूआ खेलने के लिये लौट पड़े और हस्तिनापुर में आकर सब संसार के नाश के हेतु जूआ खेलना आरम्भ कर दिया इन को इस दशा में दोबारा देख कर लोगों को बड़ा शोक हुआ ॥

शकुनि ने कहा इस बेर जूए में यह शर्त है कि जो जीते वह दोनों का राज्य सम्भाल कर राज्य करे और जो हारे वह मृगचर्म पहन कर बारह वर्ष तक बन में रहे और तेरहवा वर्ष गुप्त हो कर काटे यदि तेरहवें वर्ष में जीतने वाला हारे हुये को जान ले तो वह हारा हुआ पुनः बारह वर्ष बन में काटे, हे युधिष्ठिर आओ दाव लगा कर पांसा डालो ॥

शकुनि की इस बात को सुन कर सब लोग ऊपर को हाथ उठा कर कहने लगे हे धृतराष्ट्र धिक्कार है इन बांधवों पर किसी को पता नहीं कि इस नीच कर्म का फल क्या होने वाला है ॥

युधिष्ठिर उन लोगों की बात सुन कर धर्म और लोक लाज के वश में हो कर और कौरवों का नाश होना निकट जान कर जूआ खेलने का इच्छुक हो कर कहने लगा, मुझ सा धर्म के पालन करने वाला राजा जूआ खेलने के लिए बुलाया हुआ क्योंकर निषेद कर सकता है अच्छा आओ खेलें ॥

शकुनि ने कहा आप शर्त को फिर अच्छी तरह से

समझ लीजिये ॥

युधिष्ठर ने कहा मैंने समझ लिया है आप पांसा फेंकिए ॥

शकुनि ने पासा फेंका और कहा मैं जीता ॥

तिरपनवां अध्याय

—:o:—

दुशासन और दुर्योधन का पांडवों की हंसी करना, उन का दुर्योधन, शकुनि, दुशासन और कर्ण के बध की प्रतिज्ञा करना और पांडवों का मृगचर्म ओढ़ कर बन को चले जाना ॥

पाडवों ने अपना सर्वस्व हारा और मृगचर्म ओढ़ कर वन को चलने लगे उन को इस दशा में देख कर दुशासन ने कहा ॥

आहा अब दुर्योधन चक्रवर्ती राजा होगया और पांडव सब कुछ हार कर विपत्ति में पड़ गये, यह देवताओं की हम पर कृपा है कि आज हम अपने शत्रुयों से गुणों में अधिक और श्रेष्ठ हो गये हैं, अब पांडव बहुत दिनों तक दुःखी हो कर बनों में भटकेंगे, यही पाडव थे जिन्हों ने धन के मद में अपनी सभा में दुर्योधन की हंसी की थी, अब उसी धन को

हार कर वन को जा रहे हैं, अब इन के वह सुंदर वस्त्र कहां चले गये आज इस संसार में हमारे तुल्य कौन है, यह तो अब थोथे तिल के समान हैं। राजा द्रुपद तो बड़ा बुद्धिमान था उस ने इन नपुंसकों को द्रौपदी जैसी सुंदर कन्या देकर अच्छा नहीं किया, हे द्रौपदी ! तू अब इन पांडवों के साथ वन में जाकर क्या सुख पावेगी यह अब आप ही निर्धन और दीन होकर मृगछाला ओढ़े हुए वनों में ठोकरें खाकर नाना प्रकार के कष्ट उठावेंगे, अब तू इन को छोड़ दे और कौरवों में से किसी के साथ जिस से तेरा दिल चाहे विवाह करके इस हास्तिनापुर में आनन्द से रहे ॥

दुशासन की इन बातों से भीमसेन क्रोध से भर गया और उस के पास जाकर उस को इस प्रकार से पकड़ कर जैसे सिंह किसी मृग को पकड़ता है कहने लगा अरे दुष्ट अरे पापी तू शकुनि की छल विद्या से धन जीत कर ऐसे निष्फल वचन रूपी बाण मार कर हमारे मर्म स्थानों को छेद रहा है, घबरा मत मैं युद्ध में तेरे और तेरे लोभी और क्रोधी सहायकों को मर्मस्थानों के काट कर तुझे यह बात याद दिलाऊंगा ॥

नीच दुशासन ने उस समय तीन वार गौ गौ कहा जिस से उस का यह अभिप्राय था कि हे भीम हम तुम को गौ जान कर छोड़ते हैं ॥

भीमसेन ने कहा अरे दया हीन तू छल से धन को जीत कर क्यों ऐसे अपशब्द कह कर बरबरा रहा है मैं

यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं युद्ध में तेरी छाती को फाड़ कर तेरे लहु के घूंट भरूंगा और तेरे सब भाईयों को मार कर अपनी छाती ठंडी करूंगा यदि मैं ऐसा न करूं तो अच्छे कर्मों से जो लोक मिला करते हैं वह मुझे न मिलें ॥

जब पांडव बन को चलने लगे तो दुर्योधन भीम के चलने की नकल करके चलने लगा भीमसेन ने उस को यह नकल करते हुये देख कर कहा अरे दुर्योधन भीमसेन की चाल चलने से तू भीमसेन नहीं बन सकता मैं युद्ध में तुझ भाई बेटों सहित मार कर इस हंसी को तुझे याद कराऊंगा ॥

युधिष्ठर के पीछे २ सभा से चलते समय भीमसेन ने दुर्योधन की हंसी को याद करके क्रोध को रोक कर कहा, मैं दुर्योधन को मारूंगा अर्जुन कर्ण के प्राण लेगा और सहदेव इस ज्वारी शकुनि को यम पुरी में पहुंचावेगा और मैं दूसरी प्रतिज्ञा यह करता हुं कि युद्ध में मैं दुर्योधन को पृथ्वी पर गिरा कर इस के शिर को अपने पाव से रगड़ूंगा और इस दुष्ट दुशासन की छाती को फोड़ कर इस का लहु पीऊंगा ॥

अर्जुन ने कहा हे भीमसेन सत्य पुरुषों की निश्चय बातों में नहीं जाना जाता आज से चौदह वर्ष पीच्छे जो कुच्छ होना है होगा ॥

भीमसेन ने कहा उस समय दुर्योधन, शकुनि, दुशासन और कर्ण इन चारों दुष्ट आत्माओं के लहु को पृथ्वी पीवेगी ॥

अर्जुन ने भीमसेन की प्रसन्नता के लिए प्रतिज्ञा की कि

यदि यह लोग चौदह वर्ष के पीछे हमारा राज्य हमें न दे देंगे तो मैं इस नीच और कुबुद्धि कर्ण को इस के सब साथी राजाओं सहित जो मेरे सन्मुख आवेंगे मार कर यम पुरी में पहुंचाऊंगा ॥

तब सहदेव ने क्रोध से लाल २ नेत्र करके सांप के समान श्वास लेते हुए शकुनि से कहा अरे गंधार देश के मनुष्यों के यश को दूर करने वाले छली शकुनि यह पांसे जिन को लिये हुए तू नाच रहा है पांसे नहीं है किंतु यह तेरे प्राणों के नाश करने वाले तीक्षण बाण हैं यदि तू क्षत्री धर्म को छोड़ कर युद्ध में भाग न जायेगा तो भीमसेन की आज्ञा के अनुकूल मैं तुझ को तेरे भाई बंधुओं सहित यमपुरी में पहुंचाऊंगा ॥

तब नकुल बोला धृतराष्ट्र के इन पुत्रों को जिन्हों ने इस समय द्रौपदी को रूखे वचन कहे हैं मैं युधिष्ठर की आज्ञा से मार कर इन का नाश करूंगा और द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर इन का बीज न छोडूंगा ॥

चौवनका अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का भीष्म पितामह आदि सब बड़ों से विदा मांग कर बन को चलना ॥

युधिष्ठर ने सभा में खड़े हो कर कहा सब भरत वंशी,

भीष्मपितामह, राजा सोमदत्त, राजा वाह्लीक, द्रोणाचार्य जी, अन्य राजा लोग, अश्वत्थामा, विदुर, युयुत्सु, संजय, धृतराष्ट्र के सब पुत्र और अन्य सब मनुष्यों से जो इस समय इस सभा में बैठे हुये हैं वन को जाने की आज्ञा मांगता हूं, तेरह वर्ष बीतने पर यहां आकर फिर आप के दर्शन करूंगा ॥

सभा में उपस्थित जनों में से किसी ने भी युधिष्ठिर की इस बात का उत्तर न दिया सब के सब लज्जा से मुख नीचे किए बैठ रहे परंतु मन में उन सभों ने पांडवों को आशीर्वाद दी ॥

विदुर जी ने कहा यह कुंती वृद्ध है इस कारण वन में जाने से इस को कष्ट होगा इस को मेरे यहां ही छोड़ जाईये यह मेरे घर में रहेगी ईश्वर तुम सब का कल्याण करे ॥

पांडवों ने कहा आप हमारे चचा हैं और पिता के तुल्य हैं हम आप की शरण में हैं जैसा आप की आज्ञा होगी मानेंगे ॥

विदुर जी ने कहा हे युधिष्ठिर जिस को कोई अधर्म और अनीति से जीत लेता है उस को विपत्ति काल में दुःख होना उचित नहीं, तुम सब प्रकार से धर्म को जानते हो, अर्जुन जय करने वाला, भीमसेन शत्रुओं को मारने वाला नकुल अर्थ संग्रह करने वाला, सहदेव दंड देने वाला, धौम्य पुरोहित ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ और द्रौपदी धर्मचारिणी है। तुम सब आपस में प्रीति पूर्वक रहना, देखना कहीं शत्रु तुम

में फूट न डाल दे तुम को सब लोग चाहते हैं यदि तुम जत्थे को बनाये रखोगे तो शत्रु तुम्हारा कुच्छ भी विगाड़ न सकेंगे, तुम अपनी बुद्धि को कभी भी मलीन न करना और जैसे अब धर्म पर दृढ़ हो वैसे सदैव रहना क्योंकि धर्म की सदा जय रहती है इस से लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं तुम में शक्ति इतनी है कि तुम सब राजाओं पर जैसा कि तुम पहिले पा चुके हो जय पा सकते हो। अब हम तुम को आज्ञा देते हैं कि तुम जाओ तुम्हारा कल्याण होगा ईश्वर करे तुम सब अरोग्य रहो और तुम्हारे सब काम सिद्ध हों जब तुम इस विपत्ति को सह कर आओगे हम तुम्हारे दर्शन करेंगे ॥

युधिष्ठिर विदुर जी की उक्त बातों को सुन कर तथास्तु कह कर और द्रोणाचार्य और भीष्म जी को नमस्कार करके चल दिया ॥

पच्चपनवां अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का कुंती से विदा मांगना, कुंती का विलाप करना, विदुर का कुंती को अपने घर ले जाना और पांडवों का द्रौपदी सहित बन को जाना ॥

इधर द्रौपदी ने कुंती आदि सब उपस्थित स्त्रियों को नमस्कार करके जाने की आज्ञा मांगी, पांडवों के निवास स्थान इस समय शोक स्थान बन रहे थे रोने की आवाज़ें आ रही थीं, कुंती अति शोक से दुःखित हो कर कहने लगी, हे पुत्री! इस विपत्ति को देख कर तुझे शोक करना उचित नहीं क्योंकि तू सुशीला है और स्त्री धर्म को अच्छी तरह से जानती है तुझ को पति सेवा आदिक धर्म कहने की मुझे कोई आवश्यक्ता नहीं तू पतिव्रता और दोनों कुलों की भूषण है। तू धर्म पर चलने वाली है इस से तेरा शीघ्र ही कल्याण होगा यह कौरव बड़ भाग्यवान हैं जो तेरे तेज से जल नहीं मरे, अब तू निर्विघ्न हो कर जा तू मेरे हृदय में से कभी भी नहीं उतरेगी। श्रेष्ठ स्त्रियें महा विपत्ति पड़ने पर भी अपने चलन को ठीक रखती हैं। हे सहदेव वन में इस द्रौपदी की सदैव रक्षा करते रहियो इस को कदापि कोई दुःख न होना पावे ॥

द्रौपदी जिस के रजस्वला होने के कारण बाल खुल रहे थे यह कह कर कि ऐसा ही होवे चल दी ॥

कुंती भी महा दुःखी होकर उस के पीछे गई और अपने पुत्रों को सब उत्तम २ वस्त्र उतार कर मृगछाला ओढ़े लज्जा से सिर नीचे किये हुये देख कर छाती से लगाकर विलाप करती हुई कहने लगी, तुम ने दृढ़ भक्ति से सदैव देवताओं की पूजा की है और सत्य धर्म और मर्यादा के विपरीत कभि

कोई काम नहीं किया तुम को यह दुःख कैसे प्राप्त हुआ हाय विधाता की यह विपरीत गति है मुझे मालूम नहीं होता कि किस के शाप से तुम को यह दुःख मिला है। तुम बिना धन के दुर्बल होकर बन के कठिन २ स्थानों में बारह वर्ष किस तरह काटोगे, यदि मुझे मालूम होता कि तुम को यह दुःख मिलेगा तो पाडू के मरने के पीछे मैं शत शृंग पर्वत पर से यहां कभी न आती। तुम्हारा पिता अच्छा रहा जिसने तुम्हारे इन दुःखों को न देखा और पहिलेही स्वर्ग में चला गया और माद्री भी धन्य है जो इस दुःख देखने से पहिले पति के संग चली गई मैंने जी कर यह दुःख उठाया है मुझ धिकार है। मैं भी तुम्हारे साथ वन को जाऊंगी हे द्रौपदी मुझे क्यों त्यागती है? क्या विधाता ने मुझे ऐसे दुःख दिखाने हैं और मुझे मेरे पति के पास नहीं लेजाना, हे कृष्ण तुम इस समय कहां हो जो मेरी और इन की इस दुःख में सहायता नहीं करते। दया कीजिये और इस दुःख में इन की और मेरी सहायता कीजिये, यह पांडव दुःख पाने के योग्य नहीं हैं हाय यह आपत्ति भीष्म, द्रोणाचार्य, और कृपाचार्य जैसे सच्चे नितिज्ञ और धर्मात्मा जनों के बैठे हुये अनीति से इन पांडवों पर कैसे पड़ी हाय हे महाराज पांडु इस समय आप कहां हो और इन अपने पुत्रों को जो जूये में हारे हुये और वनवास की आज्ञा पाकर चलने को तत्पर हैं क्या शिक्षा देते हो।

हे माद्री के पुत्र सहदेव तू मत जा तू मुझे अपने प्राणों से भी प्यारा है मुझे कुपुत्र के समान त्याग कर मत जा, तू

अपने इन भाइयों को अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये वन में जाने दे और तू यहां रह कर मेरी रक्षा कर तुझे इस का फल प्राप्त होगा ॥

पांडवों ने कुंती से विलाप करते हुए ही आज्ञा ली और आनन्द रहित हो कर वन को चल दिये और विदुर जी बड़े दुःख से उस विलाप करती हुई को अनेक प्रकार के धीर्य देकर अपने घर में लाये ॥

धृतराष्ट्र के पुत्रों की स्त्रियों को द्रौपदी के सभा में लाये जाने और वहां दुष्ट दुशासन द्वारा उस के दुःख दिये जाने का हाल सुन कर बहुत दुःख हुआ और वह कौरवों की निंदा करने लगीं और अपने २ मुखों पर हाथ रख कर चिंता करने लगी ॥

इधर धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रों की अनीति को याद कर कर के बहुत दुःखी हो कर चिंता में पड़ गया और उस ने इस दुःख से व्याकुल हो कर विदुर जी को बुलाने की आज्ञा दी, विदुर जी संदेसा पहुंचते ही अपने घर से चल कर धृतराष्ट्र के पास पहुंच गए ॥

छपनवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी का पांडवों के आनेक रूपों से

जाने का वृत्तांत धृतराष्ट्र से कहना, दुर्योधन का द्रोणाचार्य की शरण में जाना और द्रोणाचार्य का उन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करना ॥

धृतराष्ट्र विदुर जी को देख कर शोक से भरा हुआ बोला हे विदुर ! युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन, सहदेव, नकुल, धौम्य और द्रौपदी किस दशा में वन को जा रहे हैं ॥

विदुर जी ने कहा युधिष्ठर अपने मुख को ढांपे हुए, भीमसेन अपनी भुजाओं को देखता हुआ, अर्जुन पृथ्वी पर वालू फेंकता हुआ, सहदेव मुख पर भस्म लगाता हुआ, नकुल अपने शरीर पर धूल लगाता हुआ, द्रौपदी अपने सिर के खुले हुए वालों से मुख को ढांपे हुए और रोती हुई और धौम्य पुरोहित हाथ में कुशा लिये हुए साम वेद के उन मंत्रो का उच्चारण करता हुआ जिन के देवता यम और रुद्र हैं जा रहे हैं, युधिष्ठर सब के आगे है और बाकी सब उस के पीछे ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हे विदुर पांडव इस प्रकार से नाना रूप धार कर क्यों जा रहे हैं ॥

विदुर जी ने कहा यद्यपि आप के पुत्रों ने पांडवों का राज्य और धन छल से ले लिया है परन्तु युधिष्ठर अपना धर्म त्यागना नहीं चाहता उस ने तुम्हारे पुत्रों पर दया करके अपने मुख को कपड़े से ढांप लिया है कि कहीं उस की क्रोध से भरी हुई दृष्टि मनुष्यों पर पड़ने से वह भस्म न हो जायें ॥

भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को इस प्रकार से देखता जाता है कि इन भुजाओं के समान किसी की भुजाओं में इतना बल नहीं है मैं इन से शत्रुओं का नाश करूंगा ॥

अर्जुन क्रोध से वालू इस विचार से बखेरता जाता है कि मैं युद्ध में इसी प्रकार से वाणों के समूह के समूह शत्रुओं पर छोड़ूंगा ॥

सहदेव ने इस प्रयोजन से अपने मुख पर भस्म लगाली है कि इस समय मुझे कोई पहचान न सके ॥

नकुल ने इस कारण अपने शरीर पर धूल लगाई है कि उस के सुंदर स्वरूप को देख कर कोई स्त्री उस पर कामासक्त न हो जावें ॥

द्रौपदी महा दुःखी रोती, एक वस्त्र ओढ़े रजस्वला अवस्था में रज से भीगे हुए वस्त्र को लिये हुए यह कहती हुई जा रही है कि जिन्हों ने मुझे यह दुःख दिया है उन की स्त्रियां आज से चौदहवें वर्ष में विधवा हो कर रज के लहु से भरी हुई अपने अपने पतियों को जल दान दे कर हस्तिनापुर को जावे ॥

धौम्य ऋषि कुशाओं को नैऋत्य कोण की ओर किये हुये साम वेद के यम सम्बन्धी मंत्रों का गायन करता हुआ इस प्रयोजन से जारहा है कि कौरवों के नाश होने पर मैं इस प्रकार से सामवेद पढ़ता हुआ पांडवों के आगे २ चलूंगा ॥

हे धृतराष्ट्र सब पुरवासी रोरोकर यह कह रहे हैं हाय हाय

हमारा स्वामी इन कौरवों से छला हुआ इस दशा में जा रहा है धिक्कार है इन कौरवों पर जिन की बुद्धि वृद्ध होने पर भी बालकों के समान है इन दुष्टों ने पांडवों को छल कपट से जूए में जीत कर और वनवास दे कर हम को अनाथ कर दिया है हम इन लोभीयों से क्या प्रीति करें ॥

पांडवों के हस्तिनापुर से निकलते ही पृथ्वी कांप उठी, बिना बादलों के आकाश से वर्षा हुई, बिना पर्व के राहु ने सूर्य को ग्रस लिया, नगर के दाहिनी ओर उल्का पात हुआ, देवताओं के मन्दिर, अटारियां और यज्ञ स्थान की सीवों के वृक्षों पर मांसाहारी गृध और काक आदि पक्षी और गीदड़ बोलने लगे ॥

हे धृतराष्ट्र यह सकल उत्पात तुम्हारे खोटे मंत्र के कारण से भरत कुल के नाश करने के नमित्त हुये हैं ॥

इस समय नारद जी भी बहुत से ऋषियों सहित देवात् वहां पहुंच गये और कहने लगे कि आज से चौदहवें वर्ष में दुर्योधन के अपराध से भीमसेन और अर्जुन के बल द्वारा सम्पूर्ण कौरव नाश को प्राप्त होंगे ॥

अब दुर्योधन को चिन्ता हुई वह उसी समय दुशासन और कर्ण को साथ लेकर द्रोणाचार्य जी के पास गया और सकल राज उनके निवेदन किया ॥

द्रोणाचार्य जी ने कहा तुम लोगों ने बड़ा उत्पात किया है इन पांडवों को सब ब्राह्मण लोग अवध्य कहते हैं, यह किसी

से भी मारे नहीं जासकते परंतु तुम अब हमारी शरण आगए हो इस कारण हम तुमारी तुमारे सम्पूर्ण साथी राजाओं सहित अपने बल के अनुसार रक्षा करेंगे, होनहार बड़ी बलवान है अब तो पांडव हार कर धर्म के अनुसार बन को चले गए हैं परन्तु चौदहवें वर्ष वह अवश्यमेव आकर बदला लेंगे, द्रोणाचार्य जी ने द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न की उन के मारने के लिये यज्ञ कुंड से उत्पत्ति बतला कर कहा हे दुर्योधन मेरा काल अब तेरे कारण धृष्टद्युम्न से होगा, अब तेरह साल तुम भी सुख से काट लो, यज्ञ कर लो और दान कर लो चौदहवें वर्ष में तो तुम्हारा नाश ही हो जाना है ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हे विदुर पांडवों को बन से लौटा लाओ और यदि वह लौट कर न आवें तो उन को रथों पर चढ़ा कर और शस्त्र दे कर सत्कार के साथ भेजो ॥

सतावनका अध्याय

—:o:—

पांडवों के बन को चले जाने पर धृतराष्ट्र का बड़ी चिंता करना ॥

पांडवों के बन को चले जाने पर धृतराष्ट्र को बड़ी चिंता हुई संजय उस को चिंतत अवस्था में देख कर बोला, हे धृतराष्ट्र धन सहित इतना राज्य पाकर और पांडवों को बनवास

देकर अब किस बात की चिंता कर रहे हो ॥

धृतराष्ट्र ने कहा पाण्डवों जैसे वीर, पराक्रमी और महारथियों से जिन का वैर हो जावे वह मनुष्य क्यों कर निश्चिंत हो कर बैठ सकते हैं ॥

संजय ने कहा इस वैर के जिस से अब सकल लोक का नाश होगा आप ही तो मूल कारण हैं, देखो भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुर के मना करते २ तुम्हारे दुष्ट निर्लज्ज पुत्र दुर्योधन ने प्रातिकामी को भेज कर धर्म चारिणी द्रौपदी को भरी सभा में बुलवाया, सच कहा है कि नाश के समय बुद्धि विपरीत होजाती है, और ऐसा होने पर मनुष्य हित अहित को नहीं जान सकता, उस को उलट दिखाई देने लग जाता है हित की बात अहित वाली और अहित की बात हित वाली जान पड़ती है, काल डंडा लेकर ही नहीं मारा करता इसी प्रकार विपरीत बातें करवा कर नाश का कारण बन जाया करता है द्रौपदी को सभा में लाने वालों ने यह रोग रूपी युद्ध खड़ा कर दिया है ॥

वह द्रौपदी जो विना योनि अग्नि कुंड में से प्रकट हुई और जो सब धर्मों के जानने वाली है भला सभा में लाये जाने और इस प्रकार दुष्ट दुःशासन से दुःख दिये जाने के योग्य है, उस को सभा में बुलाने का सिवाय ज्वारियों के और कौन साहस कर सकता है और फिर उस समय में जब वह रजस्वला होने के कारण एक वस्त्र ओढ़े हुए थी और

जब उस के पोत सब राज्य, धन आदि हार कर और दास बन कर धर्म से बंधे हुए बैठे हुए थे उस समय दुर्योधन और कर्ण ने उस दुखिया का कडुवे वचनों से जो अनादर किया वह कदापि भी उस के योग्य न था ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हे संजय तुम सच कहते हो द्रौपदी अपनी क्रोध भरी दृष्टी से पृथ्वी को भी भस्म कर सकती है जिस समय वह सभा में लेजाई गई थी तो मेरे पुत्रों की स्त्रिया रो रही थीं, ब्रह्मणों ने बड़ा क्रोध किया था और उन्हों ने सायं काल का अग्नि होत्र भी न किया था, उसी समय प्रलय की दुंदुभी बजने लगी थी, बिजली के गिरने का सा शब्द हुआ था दिन में उल्का गिरे थे और पर्व न होने पर राहु ने सूर्य को ग्रस लिया था और मेरी रथ शाला में स्वयं ही आग लग गई थी हमारी ध्वजा गिर पड़ी थी और दुर्योधन की यज्ञ शाला के पास सयार बड़े भयानक शब्दों से बोलने लगे थे। उसी समय भीष्म, द्रोणाचार्य, वाह्लीक, सोमदत्त और कृपाचार्य चले गये थे और विदुर जी के कहे अनुसार मैंने द्रौपदी को वर मागने के लिए कहा था उसने मुझ से यह मागा कि सब पांडव अदास किए जावें, मैंने उन को अदास करके धन आदि दे कर और रथों पर चढ़ा कर इन्द्रप्रस्थ को जाने की आज्ञा दी ॥

विदुर जी ने कहा था कि भरत वंशियों का अंत यहीं तक है यह द्रौपदी राजा पांचाल की बेटी स्वर्ग की लक्ष्मी है इस के समान संसार में कोई उत्तम स्त्री नहीं पांडवों ने इस

को देव इच्छा से पाया है सो जान पड़ता है कि इस को सभा में बुलाने और इस का दुशासन द्वारा अपमान किये जाने को पांडव कभी नहीं भूलेंगे, राजा द्रुपद और वृष्णि वंशी लोग भी द्रौपदी के इस दुःख को न सुन सकेंगे जब अर्जुन पांचाल देश की सेना ले कर आवेगा और भीमसेन अपनी गदा को घुमाता हुआ खड़ा होगा उस समय कोई राजा उन के सन्मुख न हो सकेगा इस कारण मैं यह अच्छा जानता हूं कि पाण्डवों के साथ सदैव संधि ही रखी जावे और उन से कभी भी विग्रह न किया जावे विदुर जी ने इस प्रकार की और बहुत सी बातें मुझ को उस समय कहीं थीं परन्तु मुझे पुत्र का हित था इस का कहना मान कर मैंने उन को अंगीकार न किया ॥

॥ सभापर्व समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत

॥ भारत वर्ष देश का प्राचीन इतिहास ॥

* वनपर्व *

१९१३

ला० राम दित्ता मल्ल ऐंड सन्ज़
पब्लिशर्स तथा पुस्तकांवाले लोहारी दर्वाज़ा
लाहौर ने
ला० सालिग्राम से
अरोड़वंश यंत्रालय लाहौर में मुद्रित करवाकर
प्रकाशित किया ॥

मूल्य वनपर्व २।।) सम्पूर्ण महाभारत ८)

* बनपर्व *

पहिला अध्याय

—:o:—

पाडवों का बन को जाना, उन के पीछे पुरवासीयों का जाना जिन को पाडवों का सौगन्द देकर लौटाना और उन का ब्राह्मण सहित एक वड़ के बृक्ष के नीचे बास करना ॥

डव द्रौपदी और धौम्य ऋषि सहित हस्तिना पुर से चल कर उत्तर दिशा की ओर चल पड़े, इन्द्रसेन आदि पन्द्रह सेवक रथों में स्त्रियों को बिठलाए हुए उन के पीछे गए। पुरवासी उन को बन को जाता हुआ देख

कर बहुत दुःखी होकर भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की निंदा करके निर्भय होकर एक दूसरे से कहने लगे अब हमारा सब का कुटुम्ब सहित नाश हो जावेगा क्योंकि जिस देश का राज्य यह लोभी, अभिमानी, नीच और निर्दई दुर्योधन जो गुरू से द्वेष रखने वाला और सुहृद् और अचार विचार को त्यागने वाला है शकुनि, कर्ण और दुशासन आदि अपने पापी साथीयों की मंत्रता से करना चाहता है उस देश में धर्म के नाश होने से हमें किस प्रकार सुख मिल सकता है अब यह कौरवों का भी कुल नष्ट होगा इस से यही अच्छा है कि हम लोग भी इन को छोड़ कर उन पांडवों के साथ जो दयावान, उदार, शत्रु और इन्द्रियों को जीतने वाले, लज्जावान, कीर्तिमान् और धर्मात्मा हैं चले चलें। सब इस बात में सम्मत हो कर हस्तिना पुर से चल कर वन में उन के पास गये और कर बांध कर उन से विनय पूर्वक कहने लगे, महाराज यह सुन कर कि आपके छली शत्रुओं ने आप को अधर्म से जीत लिया है हम को बहुत दुःख हो रहा है आप हम को इस दुःख की अवस्था में छोड़ कर कहां जा रहे हैं हम इस दुःख और अन्याय राजा के राज्य में नहीं रहना चाहते आप हम को अपने साथ ले चलिए क्योंकि जैसे फूलों की सुगंध अपने संग से पृथ्वी जल और वस्त्र आदि को सुगन्धित कर देती है इसी प्रकार, से मनुष्य जैसी संगत में बैठता है वैसे ही गुण उस में होजाते हैं, मूढ़ पुरुष की संगत से मोह और साधू की संगत से धर्म उत्पन्न होता है इस कारण मनुष्य को ज्ञानी, वृद्ध, तपस्वी,

शमपरायण, सत्पुरुष और ऐसे जनों का जिन की विद्या, कर्म और शुद्धि शुद्ध है संग करना चाहिये। हम आप के संग वन में रह कर भी पुण्य ही पावेंगे और उस पापी के पास रहने से पाप के बिना हम को और कुच्छ प्राप्त न होगा; नीचों के देखने, उनसे छूने, उन के साथ बात करने और उन के पास बैठने से मनुष्य के सब आचार नष्ट हो जाते हैं और उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं होती वरन अधिक अशुद्ध होती है। मध्यम पुरुषों के पास बैठने से मध्यम और उत्तम पुरुषों की संगत से बुद्धि उत्तम होजाती है। वेदों और शस्त्रों ने जो जो गुण मनुष्य के लिए कहे हैं वह सब आप में हैं इस कारण हम लोग अपने कल्याण के लिए आप जैसे गुणवान मनुष्यों के साथ ही रहना चाहते हैं ॥

युधिष्ठर ने कहा हमारे धन्य भाग्य हैं कि ब्राह्मण आदि प्रजा के सब लोग दया और स्नेह से हम गुण हीनों को गुणी बताते हैं, अब मैं आप लोगों को जो कुछ भी कहूं आप दया करके उस के अनुकूल कीजीये, भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र विदुर जी, हमारी माता और अन्य सुहृद लोग जो हमारे शोक से व्याकुल हो रहे हैं मेरा हित जान कर आप लोग हस्तिना पुर में रह कर उन की रक्षा कीजिए। तुम सब को मेरी सौगंद है तुम नगर से बड़ी दूर आगये हो अब नगर को लौट जाओ तुम्हारे ऐसा करने से तुम्हारी ओर से मैं अपना बड़ा सत्कार समझूंगा और यह जानूंगा कि तुमने मेरे सब काम कर दिए हैं ॥

युधिष्ठिर की यह बातें उन पुर वासियों के दिल पर असर कर गईं और वह शोक करते हुये और दिल से न इच्छा करते हुये युधिष्ठिर के गुणों को याद करते हुये नगर को लौट आये, अब पांडव रथों में सवार हो कर गंगा तट पर प्रमाणा नाम एक बड़े बड़ के पेड़ के समीप पहुंचे और उस वृक्ष के नीचे गंगा जल छिड़क कर थोरा दिन रहने पर उन्होंने वास किया, इस रात्रि को पांडवों ने शोक के कारण केवल जल पान करके बिताया, उसी समय स्नेह के करण कुच्छ ब्राह्मण अपनी स्त्रियां, भाई बांधव और शिष्यों को साथ ले कर पांडवों के पास आ गये और उन्हों ने राक्षसों को परे रखने के लिये वहां अग्नि जला दी और शस्त्रों के प्रमाण और वेदों की श्रुतियां सुना सुना कर राजा को धैर्य देकर वह रात्रि आनन्द से कटवादी ॥

दूसरा अध्याय

—:o:—

ब्राह्मणों का पांडवों के साथ वन को जाने के लिए त्यार होना, युधिष्ठर का उन को साथ जाने से रोकना और शौनक ऋषि का युधिष्ठर को जनक नीति सुनाना ॥

प्रातः काल होने पर जब पांडव शौच आदि आवश्यक कर्मों को करके वन को चलने लगे तब वह ब्राह्मण भी जो भिक्षा भोजन करने वाले थे उन के आगे चलने को उद्यत हो गये ॥

युधिष्ठर ने कहा हे महाराज हम लोग इस समय राज्य, लक्ष्मी, और धन हीन हैं और बन में जाकर मांस, फल और कंदमूल जो कुच्छ मिलेगा खा कर गुजारा करेंगे, बन में सर्प, कुछुये, कीट आदि होने से वहां बहुत दुःख होते हैं आप को वहां बड़ा कष्ट होगा ब्राह्मणों के दुःखी होने से देवता भी दुखी हो जाते हैं हम तो मनुष्य हैं फिर हमारा क्या हाल होगा, आप का क्लेश हम से नहीं सहा जाएगा इस कारण आप लोग लौट जाईये ॥

ब्राह्मणों ने कहा जो हाल आप का होगा वह हमारा होगा आप को उचित नहीं कि आप हम धर्म दर्शी और स्नेह रखने वालों को त्यागें, ब्राह्मणों पर सारे ही कृपा किया करते हैं और विशेष कर हम जैसे सत्य आचारी ब्राह्मणों पर ॥

युधिष्ठर ने कहा मैं ब्राह्मणों का परम भक्त हुं परंतु मैं अब असहाय हूं क्योंकि मेरे यह भाई जो आहार लाने वाले हैं महा दुःखी हो रहे हैं और मैं राज्य के जाने और द्रौपदी को सभा में कष्ट मिलने के कारण बड़े क्लेश में पड़ा हुआ देख कर इन को किसी काम के करने की आज्ञा भी नहीं दे सकता॥

ब्राह्मणों ने कहा हे राजन् आप हमारे खान पान की कुच्छ चिंता न करें हम अपना भोजन आप मांग लाया करेंगे और आप के कल्याण के हेतू आप को सुंदर २ कथायें सुनाया करेंगे ॥

युधिष्ठर ने कहा आप सच कहते हैं मैं भी ब्राह्मणों का सत

संग, चाहता हुं पर मैं यह क्योंकर देख सकता हुं कि आप मुझ को कथा सुनायें और अपने लिये भोजन का प्रबंध भी आप करें मैं आप को इतने क्लेश में नहीं देख सकता। यह कह कर युधिष्ठिर शोक से व्याकुल हो होकर वहीं बैठ गया ॥

उन ब्राह्मणों में से शौनक नाम एक ब्राह्मण जो आत्मज्ञानी, योग और सांख्य शास्त्रों को ज्ञाता था युधिष्ठिर से यूं बोला ॥

संसार में मनुष्य को अनेक दुःख और भय होते हैं परंतु उन के कारण कष्ट उन्हीं को होता है जो मूढ़ होते हैं तुम से बुद्धिमान को ऐसे काम जो कल्याण, ज्ञान और मोक्ष के विरुद्ध हैं और जिन में बहुत से दोष हैं करने उचित नहीं तुम को संयम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदि आठों अंगों सहित ब्रह्म ज्ञान है जो स्मृतियों के अनुसार अज्ञान का नाशक है, सो हे राजन् तुम को धन आदि के नाश से शारीरक और मानसी कोई भी दुःख नहीं होना चाहिये, हम तुम को वह गीता सुनाते हैं जो राजा जनक ने मन को स्थिर करने के लिये कही थी ॥

इस संसार में मनुष्यों दो प्रकार के दुःख होते हैं एक शारीरिक और दूसरे मानसी, शारीरिक दुःख के यह चार कारण हैं १ व्याधि, २ इष्ट वियोग, ३ श्रम और ४ दुष्ट का संयोग यह चारों और मानसी दुःख भी औषधि आदि के सेवन और चिंता न करने से जाते रहते हैं, बुद्धिमान मनुष्य

अपने मन को रोक कर मानसी दुःख को मनोहर कथाओं के सुनने और देह के दुःख को अच्छे भोग भोगने से दूर कर देते हैं, जैसे जल के भरे हुए घड़े में लोहे का गरम गोला डालने से सब जल खलबला होजाता है उसी प्रकार शरीर में कष्ट होने से मानसी दुःख होता है इस कारण मनुष्य को उचित है कि ज्ञान रूपी जल से मानसी दुःख रूपी अग्नि को शांत करके अपने शरीर के कष्ट को मिटावे ॥

स्नेह भी मानुसी दुःख का एक कारण है इस स्नेह से भय, शोक, हर्ष और क्लेश यह चारों होते हैं। विषय में स्नेह रखने से भाव और अनुराग जो अकल्याणकारी हैं प्रकट होते हैं, इन में से भाव का होना बड़ा भारी दोष है क्योंकि वह धर्म और अर्थ को इस प्रकार नाश करदेता है जिस प्रकार वृक्ष के कटोर में से लगी हुई आग्नि उस वृक्ष को जड़ पेड़ से जला कर भस्म कर देती है, विषय के ही न मिलने से मनुष्य त्यागी स्वरूप होते हैं परंतु त्यागी वही हैं जो विषय को पाकर वैर और विग्रह को त्याग सब विषयों में अपने मन को न फंसावे, धन और मित्र पाकर मनुष्य को उस में स्नेह करना उचित नहीं और यदि स्नेह उत्पन्न हो भी तो उस को ज्ञान से दूर करे, ज्ञानी, शास्त्रज्ञ और अपने आत्मा को अपने वश में रखने वाले मनुष्यों के चित्त में स्नेह इस प्रकार से घुसने नहीं पाता जिस प्रकार जल कमल के पत्तों में नहीं जा सकता ॥

जो मनुष्य विषयों में लिप्त होता है उसे अनेक कामनायें घेर लेती हैं उन कामनाओं से वह मिलने और न मिलने वाली

चीजों का इच्छुक होता है और उस इच्छा से उस की तृष्णा क्षण प्रति क्षण बढ़ती चली जाती है, यह तृष्णा ही उद्वेग, पाप और अधर्म की जड़ और प्राणों का काल रूपी रोग है, इस तृष्णा को दुष्ट मनुष्य त्याग नहीं सकते और जो बुढ़ापे और मृत्यु के वश हो रहे हैं वह उस तृष्णा को कम नहीं कर सकते ॥

हे युधिष्ठिर मनुष्य को इस तृष्णा का त्याग करने ही से सुख होता है और जो जन इस को नहीं त्यागते यह उन को सर्वथा नष्ट कर देती है, जैसे ईंधन में अग्नि लगने से सब ईंधन जल कर राख होजाता है इसी तरह मन रूपी ईंधन में लोभ रूपी आग लगने से शरीर का नाश हो जाता है, धनवान मनुष्यों को राजा, जल, अग्नि, चोर स्वजनों से उसी प्रकार का भय रहता है जैसे सारे मनुष्यों को मृत्यु का भय रहता है और यह लोग उन को इस तरह निर्धन कर देते हैं जैसे मांस को आकाश में पक्षी पृथ्वी पर कुत्ते और गीदड़ और जल में मछलिया नहीं छोड़तीं, सो यह अर्थ किस का अनर्थ नहीं करता, इस के इकत्र करने वाले का कल्याण कभी भी नहीं होता क्योंकि इस के आने से लोभ और मोह बढ़ता है और मनुष्य सदा कृपणता से उचित धन को खर्च करके उस के बचाव की इच्छा से दूसरे को बुरा चेतना, अपने को बड़ा मानना और डर और शंका से चित्त का डामा डोल रहना आदि अनेक धन होने के दुःखों से दुःखी रहता है ॥

ज्ञानियों का कथन है कि धन की उत्पत्ति, रक्षा और नाश होने में मनुष्यों को बड़ा दुःख होता है क्योंकि पहिले तो धन के इकट्ठा करने में ही दुःख होता है पुनः इस धन के कारण मनुष्य एक दूसरे को मार डालता है और दुःख के दूर करने के लिए जिन का वह पालन करता है वही उस के वैरी बन जाते हैं, इस से धन के नाश हो जाने पर अज्ञानी लोग चिंता में रहते हैं और पंडित लोग संतोष करते हैं, इस संसार में तृष्णा किसी की नहीं मिटती वरन बढ़ती ही चली जाती है इस कारण पंडित लोग संतोष ही को अच्छा कहते हैं और यौवन, रूप, जीविका, रत्नों का एकत्र करना, ऐश्वर्य और मित्रों के साथ रहना आदि सुखों को अनित्य जान कर उन के होने के इच्छुक नहीं होते इस कारण मनुष्य को चाहिये कि धन का संचय करना त्याग दे और उस के नाश होने का दुःख सह कर संतोष करे क्योंकि धन के रखने वालों में से एक भी उपद्रवों से खाली नहीं अच्छे लोग उसी धन को अच्छा जानते हैं जो दैव इच्छा या प्रारब्ध से मिल जावे। जो मनुष्य धर्म करने की इच्छा से धन चाहता है अच्छा है कि वह ऐसी इच्छा करे ही न, क्योंकि कीच में फंस कर कीच को धोने से कीच से दूर रहना ही अच्छा है, इस कारण हे युधिष्ठिर तुम को धन की इच्छा नहीं करनी चाहिये यदि तुम धर्म करना चाहते हो तो धन की इच्छा को त्याग दो॥

युधिष्ठिर ने कहा महाराज मैं धन को लोभ या अन्य

विषयों की इच्छा से नहीं चाहता मेरी इच्छा इस से केवल ब्राह्मणों का पालन करने की है भला मुझ सा गृहस्थी मनुष्य अपने साथियों के खान पान की चिंता क्यों न करे, गृहस्थ में सब मनुष्यों का भाग होता है गृहस्थियों को अतिथि पूजन आवश्यक है उन को उचित है कि यती और ब्रह्मचारियों को भी आवश्य भोजन दें, गृहस्थी का धर्म है कि दुःखी को सोने के लिये खाट, थके हुए को बैठने के लिये आसन, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन दे, आये हुए अतिथि को मीठा बोल बोल कर आसन पर बिठावे और उठ कर सन्मान के साथ उस का यथा योग्य पूजन कर क्योंकि अग्निहोत्री, रथ के बैल, अतथि, स्वजाति भाई बंधू, पुत्र, स्त्री और भृत्य आदि यथायोग्य आदर सन्मान न पाने पर मनुष्य को जला देते हैं ॥

मनुष्य को चाहिये कि भोजन केवल अपने लिये ही न बनावे वरन काग और कुत्ते आदि के लिये भी भोजन बना कर उन को दे इस को वैश्वदेव कर्म कहते हैं यह सायं और सवेरे दोनो काल किया जाता है और मांस विधि पूर्वक देवता आदि के अर्पण किये बिना कदापि न खाये क्योंकि इस से पशुओं का वृथा वध होता है, मनुष्य को उचित है कि अपने भोजन में से कुछ शेष छोड़ दे। यज्ञ से बचे हुए अन्न को पान करे, अतिथि को नेत्रों से देखे, मन से उस का विचार करे, सत्य बोले, उस के पीछे चले और उस के सन्मुख बैठे इस को पञ्च दक्षणा कहते हैं, जो मनुष्य ऐसे

थके हुए पथिक को जो पहिले कभी न देखा गया हो भोजन देता है उस को महापुण्य होता है, ऐसा करने वाला गृहस्थी श्रेष्ठ गिना जाता है यह मेरी सम्मति है क्या तुम भी इस में मेरे साथ सम्मत हो ॥

यह सुन कर शौनक ने कहा हे युधिष्ठर इस जगत की चाल विपरीत है देखो जिस कर्म से साधू अप्रसन्न होता है असाधू उस से प्रसन्न होता है, अज्ञानीमनुष्य इन्द्री और पेटके लिये वैश्वदेव कर्म बहुत करता परंतु मोह, राग और ऐश्वर्यका इच्छुक होकर के विषयों में लिप्त रहता है, वह इंद्रियां ज्ञानी को भी इस प्रकार से इधर उधर भटकाती रहती हैं जिस प्रकार दुष्ट और चंचल घोड़ों के रथ का सारथी उनके उलटे रासता पर चलने से भटकता रहता है, हे युधिष्ठर जब इन्द्रियां विषय की इच्छा करती हैं तो मन में विषय भोगने की इच्छा होजाती है मनुष्य फिर उस विषय के प्राप्त करने का उपाय करता है और उन विषयों में प्रवृत्त होकर लिप्त होजाता है, तब वह विषय रूपी काम देव के तीक्ष्ण बाणों से बेधा जाकर इसी प्रकार से लोभ में पड़जाता है जिस प्रकार पतंग दीपक की ज्योति में उज्याले के लोभ में आकर गिड़ पड़ता है, अंत में वह केवल अच्छा खाने पीने और अच्छा विवहार करने के उद्यम में रह कर मोह में फंसा हुआ आत्मा को नहीं पहचान सकता और अज्ञान से ब्रह्मा से ले कर तृण आदि तक पृथ्वी, आकाश, और जल की अनेक २ योनियों में जन्म ले ले कर चक्र के समान घूमा करता है ॥

हे युधिष्ठिर यह गति हम ने तुम से अज्ञानियों की कही है अब हम तुम से उन ज्ञानियों की गति भी कहते हैं जो नित्य मोक्ष की इच्छा करते रहते हैं और जिन की प्रीति भी मोक्ष धर्म में ही रहती है ॥

देखो वेद का वाक्य है कि सब काम निष्काम होकर करो इस लिये मनुष्य को उचित है कि जो काम करे उस के करने का अभिमान कभी न करे, धर्म के आठ मार्ग हैं १ यज्ञ करना, २ वेद पढ़ना, ३ दान देना ४ तप करना, ५ सत्य बोलना, ६ क्षमा करना, ७ इन्द्रियों को जीतना और ८ लोभ न करना, इन में से पहिले चार कर्म पितृलोक और पिछले चार देवलोक देने वाले हैं मनुष्य को चाहिये कि इन कर्मों को अभिमान से न करे। इन आठों पर केवल शुद्ध आत्मा मनुष्य ही चल सकते हैं ॥

संसार को जीतने की इच्छा रखने वाले मनुष्य यह ६ कर्म करते हैं १ काम को संकल्प करके करना, २ इन्द्रियों को रोकना, ३ विधि पूर्वक व्रत करना, ४ हिंसा को त्यागना, ५ गुरू की सेवा करना, ६ अच्छी तरह से आहार करना, ७ वेद पढ़ना, ८ किये हुये कर्मों के फल को त्यागना और ९ चित्त को चलायमान न होने देना, देवताओं को भी राग और द्वेष के छोड़ने से ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है और ११ रुद्र, १२ सूर्य, ८ वसु और अश्वनी कुमार आदि देवता भी योग रूपी ऐश्वर्य के होने ही से सब प्रजा को धारण कर रहे हैं, हे युधिष्ठिर

इसी प्रकार से तुम को भी उसका धारणा करके और तपस्या करके अपने काम की सिद्धि करनी उचित है सो तुम अपने कर्मों से पितृ लोक को तो जीत ही चुके हो अब तपस्या करके ब्राह्मणों के पालन के लिये सिद्धि प्राप्त करो देखो सिद्ध लोग जो कुच्छ चाहते हैं तपस्या करके लेते हैं तुम भी वैसा ही करो और अपने मनोर्थ को सिद्ध करो

तीसरा अध्याय

—:०:—

धौम्य ऋषि का युधिष्ठर को सूर्य का पूजन करने का उपदेश देना, उस का सूर्य की तपस्या करना, सूर्य का उस को वर देना और पांडवों का काम्यक वन को जाना ॥

युधिष्ठर ने शौनक ऋषि से उपरोक्त उपदेश सुन कर अपने भाईयों के सामने धौम्य ऋषि से कहा, महाराज ! यह सब ब्राह्मण मेरे साथ बन को जाना चाहते है परंतु मैं इस समय इन पालन की समर्थ अपने में नहीं रखता और न ही मैं इन को ऐसा करने से रोक सकता हुं आप बताईये कि मैं क्या करूं ॥

धौम्य ऋषि कुछ काल विचार करके कहने लगे पहिले समय में जब प्राणी भूख से बहुत दुखी हुए थे तो सूर्य देवता ने पिता की सदृश सब प्रजा पर कृपा की थी, वह उत्तर को

जाते हैं और सब जल को अपनी किरणों द्वारा खैंच कर पुनः दक्षिण की ओर आकर अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी में उष्णता प्रवेश करते हैं उस उष्णता से मेघ बनते हैं और उन मेघों से वर्षा होती है चांद औषधि उत्पन्न करता है उन औषधियों के अंकुर निकलने पर सूर्य देवता उन में षट रस उत्पन्न कर देते हैं और उन्हीं में से प्राणियों का आधार अन्न उत्पन्न होता है इस कारण सम्पूर्ण अन्न सूर्य रूप है सूर्य ही सब का पालन करता है इस कारण हे युधिष्ठर तुम सूर्य ही की शर्ण लो और इस स्तोत्र से उन का पूजन करो, धर्मात्मा राजाओं का यही धर्म है वह तप से अपनी आत्मा को शुद्ध करके प्रजा का पालन करते हैं, देखो राजा भीम, कीर्ति वीर्य, वैन्य और नहुष आदि ने तपस्या ही कर २ के अपनी प्रजा के दुखों को दूर किया था ॥

ओंसूर्य्योऽर्य्यमाभगस्त्वष्टा पूषार्कःसवितारविः । गभस्तिमानजः कालो मृत्युधाता प्रभाकरः ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च खंवायुश्चपरायणम् । सोमोबृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारकएवच ॥ इन्द्रोविवस्वान्दीप्तांशुः शुचिःशौरिःशनैश्चरः । ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च स्कन्दोवैश्रवणोयमः ॥ वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः । धर्मध्वजोवेदकर्त्ता वेदांगोवेदवाहनः ॥ कृतंत्रेताद्वापरश्च कलिःसर्वमलाश्रयः । कलाकाष्ठामुहूर्त्ताश्च क्षपायामस्तथाक्षणः ॥ सम्वत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रोविभावसुः । पुरुषःशाश्वतोयोगी व्यक्ताव्यक्तःसनातनः ॥ कालाध्यक्षःप्रजाध्यक्षो विश्वकर्मातमोनुदः । वरुणःसागरोऽंशश्च जीमूतोजीवनोऽरिहा ॥ भूताश्रयोभूपपतिः

सर्वलोकनमस्कृतः । स्रष्टासम्वर्त्तकोवह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥ अनन्तःकपिलोभानुः कामदःसर्वतोमुखः । जयोविशालोवरदः सर्वधातुनिषेचिता ॥ मनःसुपर्णोभूतादिः शीघ्रगःप्राणधारकः । धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥ द्वादशात्मारविन्दाक्षः पितामातापितामहः । स्वर्गद्वारंप्रजाद्वारं मोक्षद्वारंत्रिविष्टपम् ॥ देहकर्त्ताप्रशान्तात्मा विश्वात्माविश्वतोमुखः । चराचरात्मासूक्ष्मात्मा मैत्रेयःकरुणान्वितः ॥ एतद्वैकीर्त्तनीयस्य सूर्य्यस्यामिततेजसः । नामाष्टशतकंचेदं प्रोक्तमेतत्स्वयम्भुवा ॥ सुरगणपितृयक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् । वरकनकहुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मिहिताय भास्करम् ॥ सूर्य्योदयेयःसुसमाहितः पठेत् सपुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान् । लभेतजातिस्मरतांनरः सदाधृतिं-चमेधांचसविन्दतेपुमान् ॥ इमंस्तवंदेववरस्य योनरः प्रकीर्त्तयेच्छु-चिसुमनाः समाहितः । विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत् कामान्मनसा यथेप्सितान् ॥

तब युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों का पालन करने के लिये साव-धानी से आत्मा को शुद्ध और दृढ़ व्रत धार कर पुष्प और बलि आदि से विधि पूर्वक सूर्य का पूजन किया इस के पीछे गंगा जी में जा कर और सूर्य के सन्मुख खड़े हो कर और योग की रीति से आचमन प्राणायाम करके जितेन्द्रि और वायू भक्षी होकर सूर्य की तपस्या करने लगा; पहिले उसने धौम्य ऋषि का बताया हुआ ऊपरोक्त स्तोत्र पढ़ा और पुनः इस प्रकार स्तुति की ॥

हे सूर्य देव आप जगत की आत्मा और नेत्र हो आप

ही से सकल जगत उत्पन्न हुआ है, आप सब जीवों के कर्मों के जानने वाले हैं, आप ही सब ज्ञानी, योगी और मोक्ष चाहने वालों की गति और परायण हैं और ऐसे द्वार हैं जो किसी कुंजी से बंद नहीं किया जाता आप ही इन सब लोकों को धारण, प्रकाशित, पवित्र और पालन करते हैं वेद पाठी ब्राह्मण और ऋषि मंत्रों से आप का पूजन करते हैं, जो आप से वर पाना चाहते हैं वह जिस ओर आकाश में आप का रथ जाता है उसी ओर आप के पीछे रहते हैं, आप का ही पूजन कर के सिद्ध, चारण, गंधर्व, यक्ष, गुह्यक, पन्नग, तेंतीस देवता, बिमान वासी देव गण, इन्द्र और महेन्द्र ने सिद्धि पाई है। विद्या-धर लोग मंदार पर्वत के फूलों से आप का पूजन करके अपने मनोर्थ पाते हैं, गुह्यक और सातों पितृगण जो दिव्य और मनुष्य हैं आप ही का पूजन करके प्रधानता पाते हैं। आठ वसु, उनचास वायु, मरुद्गण, एकादश रुद्र, साध्यगण और बालखिल्य आदि सिद्ध लोग आप ही का पूजन करने से सब से श्रेष्ठ हुये हैं, ब्रह्मलोक सहित सातों लोकों में कोई ऐसा प्राणी नहीं जो आप, की पूजनीय ज्योति से पृथक हो आप के तेज के समान किसी का प्रकाश नहीं, सब ज्योति आप ही में है आप सब ज्योतियों के स्वामी हैं और आप ही में सत्य और सम्पूर्ण सात्वकी भाव हैं, आप ही के तेज से विश्वकर्मा ने सुदर्शन चक्र जिस से शार्ङ्ग धनुर्धारी विष्णु भगवान ने देवताओं के शत्रुओं का नाश किया था बनाया था, ग्रीष्म ऋतु में आप सब प्राणियों के तेज और सब

औषधियों के इस को अपनी किरणों द्वारा खैंचते हैं और पुनः वर्षा ऋतु में आप की वही किरणें संसार को तपाती हैं, कोई भस्म करती हैं और कोई मेघ बन कर गर्जती, प्रकाश करती और वर्षती हैं, शीत पड़ने और ठंडी वायु चलने पर अग्नि और कम्बल आदि वस्त्रों से प्राणी को इतना सुख नहीं मिलता जितना आप की किरणों से मिलता है, आप अपनी किरणों से इस सम्पूर्ण पृथ्वी को जिस में सात द्वीप और छे आवान्तर द्वीप हैं प्रकाशित करते हैं और तीनों लोकों के हित के लिये सदैव प्रवृत्त रहते हैं ॥

हे सूर्य देव यदि आप उदय न हों तो यह सम्पूर्ण लोक अंधे की तुल्य होजावे और कोई बुद्धिमान मनुष्य धर्म, अर्थ और काम में न लगने पावे, आप ही की कृपा से ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य गर्भाधान आदि संस्कार, पशु बंध, इष्टि, मंत्र, तप, यज्ञ और अनेक अन्य कर्म करते हैं, काल के जानने वाले लोग ब्रह्मा के उस दिन का जिस का प्रमाण सहस्र युग का है आदि और अंत बताते हैं, आप चउद्य मनु, मनु के पुत्र, जगत मनुष्य ईश्वर और सब मन्वन्तरों के ईश्वर हैं, जब प्रलय काल आता है तब आप ही की संवंसर्षक नाम कालाग्नि तीनों लोकों को भस्म कर डालती है और आप ही की किरणों से नाना प्रकार के मेघ उत्पन्न होकर बिजली सहित सम्पूर्ण पृथ्वी के चारों प्रकार के जीवों को जल से पूर्ण कर देते हैं आपने अपने बारह रूप बना कर बारह नाम पाये हैं और आप अपनी किरणों द्वारा सब

पृथ्वी को सुखा देते हैं, आप इन्द्र हैं, रुद्र हैं, विष्णु हैं, प्रजापति हैं अग्नि हैं, मन हैं, सूक्ष्म हैं, प्रभू हैं, सनातन ब्रह्म हैं, विश्व के हर्त्ता हैं, उस के उत्पन्न करने वाले हैं, भानु हैं, किरणों की माला रखने वाले हैं, हर और हरि हैं, विवस्वान मिहर हैं, मित्र हैं, पूषा हैं, धर्म हैं, आदित्य हैं, तपन हैं, मार्तंड हैं, अर्क हैं, रवि हैं, सूर्य हैं, शरण योग्य हैं, दिनकर हैं, दिवाकर हैं, सात घोड़े रखने वाले हैं, ज्योतिमय किरण रखने वाले हैं, विरोचन हैं, शीघ्र गामी हैं, अंधकार के नाश करने वाले हैं और हरे रंग के घोड़े रखने वाले हैं, जो मनुष्य अहंकार को त्याग कर षष्ठी या सप्तमी को भक्ति पूर्वक आप की पूजा करता है उस के गृह में लक्ष्मी का नाश होता है। जो आप के अभय भक्त होकर आप को दंडवत करते हैं उन को कोई आपत्ति नहीं व्यापती और उन को शारीरिक और मानसिक रोग भी नहीं होते, जो मनुष्य आप में यह भाव मानते हैं कि सूर्य ही सर्व व्यापी है वह रोग और पाप रहित होकर चिरंजीवी होकर सुख पूर्वक रहते हैं, हे महाराज हे अन्न के स्वामी आप मुझ कामना रखने वाले को अन्न दीजिये मैं श्रद्धा से अतिथियों को भोजन कराना चाहता हूं, मैं आप के माठर, अरुण और दंड आदि सेवकों को जो आप के चरण सेवक हैं दंडवत् करता हूं और क्षुधा, मैत्री आदि प्राणियों की माताओं को नमस्कार करता हूं मुझ शरण पड़े की रक्षा कीजिये ॥

युधिष्ठिर की उक्त स्तुति को सुन कर सूर्य देव बहुत

प्रसन्न हुए और उस को दर्शन दे कर कहने लगे ॥

हे युधिष्ठर तेरे सब मनोर्थ पूरे होंगे मैं तुझ को बारह वर्ष तक अन्न दूंगा, तांबे का परोसने का यह पात्र ले इस से द्रौपदी घर में बनाये हुए फल, फूल, मूल, कंद, मांस और शाकादि जिस पदार्थ को जब तक वह परोसा करेगी वह नहीं घटेगा, और आज से चौदहवें वर्ष में फिर तुम को राज्य मिलेगा ॥

युधिष्ठर ने द्रौपदी से चारों प्रकार का अन्न बनवाया उस में से पहिले उस ने ब्राह्मणों को भोजन कराया फिर छोटे भाईयों को और पुनः आप खाया सब के पीछे द्रौपदी ने भोजन खाया वह सदैव इसी प्रकार करते, पांडव हर बात में अपने पुरोहित धौम्य ऋषि को आगे करते और सदैव उस से स्वस्तयन सुनते इस गंगा तट से वह काम्यक बन को ओर चले ॥

चौथा अध्याय

—:o:—

धृतराष्ट्र का विदुर जी से अपने हित की सलाह पूछना, विदुरजी का दुर्योधन का त्याग करने और पांडवों को राज्य देने का उपदेश देना और धृतराष्ट्र का विदुर जी को निकाल देना ॥

पांडवों के वन को चले जाने पर धृतराष्ट्र ने विदुर जी से कहा तुम्हारी बुद्धि शुक्र के समान है और तुम सूक्ष्म धर्म को भी भले प्रकार जानते हो और कौरव कुल के सब मनुष्यों को तुम एक सम देखते हो, मैं तुम से पूछता हूं कि हमें इस समय क्या करना चाहिये, जिस से सब पुरवासी हम से प्रीति करने लग जावें और हमारी जड़ को न काटें ॥

विदुर जी ने कहा अर्थ, धर्म, काम और राज्य इन सब का मूल धर्म है इस कारण तुम को अपने और पांडु के पुत्रों की रक्षा धर्म पूर्वक करनी चाहिये शकुनि आदि पाप आत्माओं ने सत्य प्रतिज्ञा युधिष्ठर को बुला कर और छल से जूए में जीत कर उस धर्म को सभा में अधर्म कर दिया, मेरी समझ में यह आता है कि आप युधिष्ठर के अपमान को शांत करने के लिये सब जीता हुआ धन पाडवों को दे दीजिये क्योंकि दूसरे के धन का लोभ न करके अपने धन से संतुष्ट रहना बड़ा धर्म है। ऐसा करने से एक तो आपको धर्म होगा दूसरे आप का यश बढ़ेगा तीसरे स्वजातियों में फूट न होगी चौथे पांडव इस से प्रसन्न हो जावेंगे और पाचवें आप के सब पुत्र बचे रहने से कौरव कुल का नाश न होगा ॥

दुर्योधन के उत्पन्न होते ही मैंने आप से कह दिया था कि आप इस को त्याग दें परन्तु आप ने न माना यदि अब भी न मानोगे तो पीछे दुःख पाकर पछताओगे, आप दुर्योधन को कहिये कि वह पांडवों से प्रीति करके उन के साथ राज्य

करे ऐसा करने से आप दुःख से बच रहेंगे और यदि वह आप का कहा न माने तो उस को कैद कर दें, और युधिष्ठर को राज्य दे दें, युधिष्ठर विमुक्त राग है, वही पृथ्वी को भले प्रकार शासन करेगा, ऐसा करने से सब राजा लोग वनयों के समान हमारी सेवा करेंगे, दुशासन सभा में कर बांध कर द्रौपदी और भीमसेन से अपराध क्षमा करावे और आप मीठी २ बातें कह कर युधिष्ठर के दुःख को शांत कर के राज तिलक दे दें। ऐसा करने से आप कृत कृत्य हो जायेंगे ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हे विदुरजी तुम ने जो यह सलाह दी है इस में केवल पांडवों का ही हित है इस कारण हम इस को अंगीकार नहीं कर सकते, अब मुझे निश्चय होगया है कि तुम पांडवों के ही हितकारी हो और हमारे हितकारी नहीं हो भला मैं पांडवों के हित के लिये अपने पुत्र को क्यों कर त्याग सकता हूं, तुम सदैव हमें कटु वचन कहते हो इस कारण अब तुम यहां से जहां तुम्हारा जी चाहे चले जाओ ॥

धृतराष्ट्र अपने राज भवन में गए और विदुर जी यह कहते हुए कि यह बात ऐसे नहीं पांडवों के पास जाने को चल दिये ॥

पांचवां अध्याय

—:०:—

काम्यक वन में पांडवों के पास विदुर जी का जाना और अपने आने का कारण कह कर युधिष्ठर को उपदेश देना ॥

पांडव सब साथीयों सहित गंगा तट से चल कर कुरूक्षेत्र में पहुंचे और यमुना, सरस्वती और दृषद्वती नदियों पर टिकते हु ए एक वन से दूसरे वन को लांघते हुए पश्चिम की ओर चले गये और सरस्वती नदी के तट पर मरू और जांगल नामी देशों में जहां की पृथ्वी एक सम है काम्यक वन में जहां मुनि लोग बड़े आनन्द से रहा करते थे पहुंचे और वहां मुनि लोगों के पास रहने लगे, उस वन में बहुत से मृग और पक्षी रहते थे ॥

विदुर जी रथ में अकेले स्वार हुए हुए उस वन में पहुंचे युधिष्ठर ने उन को दूर से देख कर कहा भीमसेन देखो वह विदुर जी आरहे हैं जान पड़ता है कि दुष्ट शकुनि हमारे रहे सहे अस्त्र भी हम से जीतना चाहता है यदि उस ने गांडीव धनुष हम से जीत लिया तो फिर हम को राज्य मिलना कठिन होजायेगा ॥

विदुर जी के पांडवों के पास पहुंचने पर पांडवों ने उन

का बड़ा सत्कार किया और वह भी सब से यथा योग्य मिले, जब विदुर जी विश्राम कर चुके तो युधिष्ठर ने उन से उन के आने का कारण पूछा ॥

विदुर जी ने कहा धृतराष्ट्र ने मुझ से अपने हित की बात पूछी थी जो मैंने कह दी परन्तु उस को वह बात न भाई और ऐसी प्रतीत हुई जैसे कुंवारी कन्या को साठ वर्ष का पति जान पड़ता है, इस से जान पड़ता है कि अब कौरवों के नाश के दिन निकट आगये हैं, धृतराष्ट्र के दिल पर अब हित की बात इस प्रकार से नहीं ठहरती जिस प्रकार कमल के पत्ते पर जल नहीं ठहरता, मेरी बात को सुन कर धृतराष्ट्र ने क्रोध करके मुझे कह दिया कि जहां तुम्हारी इच्छा हो चले जाओ इसी कारण अब मैं तुम्हारे पास आया हूं तुम को चाहिये कि मेरे उस उपदेश को जो मैंने सभा में तुमको दिया था और जो अब देता हूं उस के अनुसार चलो ॥

जो मनुष्य शत्रु के क्लेश से दुःखी होकर शांत चित्त रह कर समय को ताकता रहता है वह उस थोड़ी सी अग्नि के समान जो शनै २ सुलग कर सब कुच्छ भस्म कर देती है बढ़ २ कर अकेला सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य पालेता है। जिस मनुष्य का धन सहायकों से पृथक नहीं रहता उस के सहायक उस के दुःख के भी भागी रहते हैं और सहायकों के एकत्र करने का वही उपाय है जो सहायक मिलने पर पृथ्वी के मिलने का उपाय किया जाता है, जो मनुष्य अनर्थ

को छोड़ कर सदैव सत्य बोलता है उसी का कल्याण होता है और राजा वही बढ़ता है जो अपने सहायकों के साथ बैठ कर एक सा भोजन करता है और सहायकों के सन्मुख अपनी बड़ाई नहीं करता ॥

युधिष्ठर ने कहा जैसा आप ने कहा है मैं आलस्य को त्याग कर वैसा ही करूंगा ॥

छठवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी के चले जाने पर धृतराष्ट्र का दुःखी होना और संजय को भेज कर फिर उन्हें बुलाना ॥

विदुर जी के चले जाने पर धृतराष्ट्र विदुर जी के प्रभाव और संधि और विग्रह आदि की निपुणता को याद करके बड़ा दुःखी होकर सभा के द्वार पर निकल आया और उस अपमान को जो उस ने विदुर जी का किया था स्मर्ण करके व्याकुल हो कर सब राजाओं के सन्मुख पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब सुद्ध आई तो संजय से कहने लगा मैं अपने भाई विदुर को जो साक्षात दूसरा धर्मराज है न देख कर दुःखी हो रहा हूं और मेरा हृदय फटा जा रहा है हे संजय! तू जा और मेरे भाई विदुर को ढूंढ, मुझ पापी ने क्रोध में आकर उस को निकाल दिया है

तू जाकर उस को ला नहीं तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगा ॥

संजय धृतराष्ट्र को प्रणाम करके काम्पक वन की ओर चला थोड़े ही काल में वहां पहुंच कर उसने युधिष्ठर को देखा जो मृग चर्म ओढ़े हुए विदुर जी और सहस्रों ब्राह्मणों सहित इस प्रकार अपने भाईयों से रक्षित बैठा हुआ था मानों देवताओं में इन्द्र बैठा है, संजय ने युधिष्ठर को प्रणाम किया, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने उस का सत्कार किया ॥

संजय ने युधिष्ठर का कुशल क्षेम पूछा और विदुर जी से कहा, राजा धृतराष्ट्र आप को याद कर रहे हैं आप युधिष्ठर से आज्ञा ले कर शीघ्र चलीये और उन को बचाईये आप के अभाव से वह व्याकुल हो रहे हैं ॥

विदुर जी ने युधिष्ठर से सम्मति ली और संजय के साथ काम्यक वन से चल कर हस्तिनापुर में पहुंचे, धृतराष्ट्र ने उन का आना सुनते ही उन को गोद में ले लिया और उन का माथा सूंघ कर कहा मैंने जो कुच्छ तुम को कहा है उस को क्षमा करो ॥

विदुर जी ने कहा महाराज मैं सदैव ही क्षमा युक्त रहता हुं आप तो मेरे परम गुरू हैं आप के दर्शनों की इच्छा से शीघ्र चला आया हुं, धर्मात्मा लोग सदैव दुःखी मनुष्यों का पक्ष लिया करते हैं, निस्संदेह मेरे लिये आप के पुत्र और पांडव एक समान हैं पांडवों के दुःखी होने से मेरा मन उन की ओर विशेष रहता है ॥

सातवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी के आने पर दुर्योधन को विषाद होना, कर्ण आदि का वन में जाकर पांडवों को मारने की सलाह करना और व्यास जी का उन को ऐसा करने से रोकना ॥

दुर्योधन को विदुर जी के आने और धृतराष्ट्र से मिल सत्कार पाने का हाल सुन कर बड़ा दुःख हुआ उस ने शकु कर्ण और दुशासन को बुला कर कहा विदुर जी जो बुद्धि और धृतराष्ट्र के मंत्री हैं फिर आगये हैं वह पांडवों के ह हैं और सदैव उन के हित में प्रीति रखते हैं कोई उपाय करना चाहिये कि वह धृतराष्ट्र की बुद्धि को फर पांडवों को बुलवाने का उपदेश न करना पावें, यदि यहां फिर आगये तो मैं शोक में अन्न जल छोड़ कर वि लूंगा, या गले मे फांसी लगा कर मर जाऊंगा या जल कर प्राण त्याग दूंगा या मैं अपने हाथों गला काट डालूंगा मैं अपने शत्रु को बढ़ता हुआ सकता ॥

शकुनि ने कहा हे राजन्! तुम क्यों घबराते हो प्रतिज्ञा करके बनों को गये हैं वह धृतराष्ट्र के बुलाने पर लौटेंगे क्योंकि वह सत्य में स्थित हैं और यदि प्रतिज्ञा

कर वह आ भी जावेंगे तो कुछ चिंता नहीं हम फिर उन को जूए में जीत लेंगे और धृतराष्ट्र को मंत्र देने के लिये मध्यस्थ बन जावेंगे ॥

दुशासन ने कहा हे मामा जी आप बड़े ज्ञानी हैं आप ने ठीक कहा है, मुझे आप की बुद्धि सदैव अच्छी लगती है ॥

फिर कर्ण ने कहा हम सब की एक ही सलाह है और सब तेरी मनोकामना को चाहते हैं पांडव समय को बिताने के बिना कभी नहीं आवेंगे और यदि आवेंगे भी तो हम सब पुनः उन को जूए में जीत लेंगे ॥

कर्ण की बात को सुन कर दुर्योधन ने अप्रसन्न होकर अपना मुख फेर लिया ॥

कर्ण दुर्योधन के मन की बात को ताड़ गया और क्रोध से नेत्रों को लाल करके दुशासन और शकुनि से कहने लगा हम सब किंकरों के समान दुर्योधन का हित चाहते हैं परन्तु क्या करें धृतराष्ट्र के रोकने से कुछ नहीं कर सकते, मेरी समझ में आता है कि हम सब अस्त्र बांध और रथों में स्वार होकर बन को जायें और पांडवों को मार कर लौट आवें और अटंक होकर रहें क्योंकि जब तक वह दुःखी और मित्र हीन है उन को मार लेना कोई बड़ी बात नहीं ॥

यह सुन कर सब के सब कर्ण की प्रशंसा करने लगे और रथों में चढ़ कर पांडवों के मारने के लिये जाने के वास्ते

नगर से बाहर निकले, व्यास जी इस बात को जान कर झट वहां पहुंचे और उन सब को ऐसा करने से रोक कर धृतराष्ट्र के पास गए ॥

आठवां अध्याय

—:o:—

व्यास जी का धृतराष्ट्र को पांडवों से मिलाप करने के लिये उपदेश देना और धृतराष्ट्र और व्यास जी का पुत्र के स्नेह का दुःख कहना ॥

व्यास जी ने कहा हे धृतराष्ट्र मैं तुम को सब कौरवों के हित की बात कहता हूं तुम इस को सुन कर इस पर विचार करो, दुर्योधन ने अपने पापी साथीयों के साथ मिल कर जो छल से पांडवों को जीत कर उन को वनवास दे दिया है यह अच्छा नहीं किया, तेरह वर्ष बतिने पर जब पांडव बन से लौट कर आवेंगे तो वह अपने क्लेशों को याद कर कर के कौरवों का नाश कर देंगे, तेरा पुत्र अब भी उन का पीछा नहीं छोड़ता और अब उन को बन में जाकर मारने की इच्छा कर रहा है तुम को उचित है कि तुम उस मूढ़ को ऐसा करने से रोको नहीं तो वह अपने प्राण खो बैठेगा, भाई बांधवों के साथ विरोध करना निंदित, अधर्मरूप, अयश करने

वाला है, यदि यह तुम्हारा पुत्र भी वन में जाकर पांडवों से मित्रता करे तो बहुत उत्तम है। परन्तु जैसा स्वभाव किसी को जन्म के समय होता है वह मरन परयंत वैसा ही रहता है॥

धृतराष्ट्र ने कहा महाराज जूए के कारण जो यह विरोध खड़ा हो गया है मैं भी उस को नहीं चाहता। भीष्म, द्रोण, विदुर और गंधारी इस जूए को न चाहते थे परन्तु कुछ देव इच्छा से ही यह मुझ से कराया गया है मैं सारे दोषों को जानता हुं पुत्र के स्नेह से मैं इस का त्याग नहीं कर सका॥

व्यास जी ने कहा हे राजन्! तुम सच कहते हो संसार में पुत्र से अधिक दूसरा कोई पदार्थ नहीं परन्तु जिस पुत्र के कारण दुःख ही दुःख हों उस को हम शत्रु के सामान जानते। हैं हे राजन्! कामधेनु और इन्द्र के इस वृत्तांत को सुन कर इस पर ध्यान दें॥

एक समय स्वर्ग में गौओं की माता काम धेनु रो रही था इन्द्र ने उस से इस का कारण पूछा, उस ने कहा मैं पुत्र के शोक में रो रही हुं देखो वह नीच किसान मेरे दुर्वल पुत्र को जो अपने वल के अनुसार हल को खींच रहा है पैना से मार कर पीड़ा दे रहा है मुझ से वह दुःख देखा नहीं जाता, देखो वह गाड़ी वाला मेरे दूसरे पुत्र को जिस की हडीयां भूख से बाहर निकल आई हैं अपने वल के अनुसार गाड़ी खैंचते हुये को मार रहा है इस से भी मुझे दुःख हो रहा है॥

इन्द्र ने कहा तेरे तो सहस्रों पुत्र हैं किस किस को देख कर तू रोयेगी ॥

कामधेनु ने कहा हां मेरे पुत्र तो अवश्यमेव सहस्रों हैं परन्तु मुझे दुःख केवल उन से होता है जो दुःखी हैं। हे धृतराष्ट्र कामधेनु की बात से इन्द्र को निश्चय होगया कि प्राणी को पुत्र प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है इस कारण कामधेनु के दुःख को दूर करने के लिये इन्द्र ने एक वार ही बहुत जल वर्षाया ॥

हे धृतराष्ट्र कामधेनु के कथनानुकूल मनुष्य की दीन पुत्रों से अधिक प्रीति होती है, मेरा पुत्र जैसा पांडू था वैसा ही तू और विदुर है मुझे सब से एक सी प्रीति है तुम्हारे एक सौ एक पुत्र हैं जो इस समय ऐश्वर्य रखते हैं और सब प्रकार से सुखी हैं और पांडू के केवल पांच पुत्र हैं और वह पांचों भी इस समय महा दुःखी हैं सो मुझे इस विचार में बड़ा दुःख हो रहा है कि पांडू के यह पुत्र क्योंकर जीवें और उनका दुःख किस प्रकार हटे हे धृतराष्ट्र। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पुत्र जीते रहें तो तुम इनका पांडवों से मिलाप करादो ॥

नवमां अध्याय

—:०:—

मैत्रेय ऋषि का पांडवों के पास से आना और दुर्योधन को पांडवों से मिलाप करने

के लिये समझाना और दुर्योधन का न मानना और ऋषि का उस को शाप देना ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हे महामुनि आप सत्य कहते हैं मैं भी ऐसा ही जानता हूं, यह सब राजा लोग, भीष्म, विदुर और द्रोणाचार्य भी कौरवों का हित चाहते हैं आप मुझ पर अनुग्रह और कौरवों पर कृपा करके मेरे दुष्ट चित्त पुत्र को शिक्षा दीजिये ॥

व्यास जी ने कहा मैत्रेय ऋषि जो अभी पांडवों के पास से आ रहे हैं मुझ से मिलने को आने वाले हैं वह तेरे पुत्र को न्याय के अनुसार कुल की शांति का उपदेश देंगे । तुम को उचित है कि जो उचित बात वह तुम को कहें उस को मान लो नहीं तो वह ऋषि तुम्हारे पुत्र को शाप देंगे ॥

इतने में मैत्रेय ऋषि वहां आ पहुंचे, धृतराष्ट्र और उस के पुत्र ने उन का बड़ा सत्कार किया और विधि पूर्वक अर्घ आदि से उन की पूजा करके आसन दिया । कुछ काल पीछे धृतराष्ट्र ने कहा महाराज ! आप को कुरु जांगल देश में सब प्रकार का सुख रहा है या नहीं क्या आप को वहां कोई दुःख तो नहीं हुआ, और पांचों पांडव वहां कुशल से तो हैं और वह अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने का विचार रखते हैं या नहीं क्या इन की कौरवों से प्रीति नाश तो होगी ॥

मैत्रेय जी ने कहा मैं तीर्थ यात्रा करता हुआ अकस्मा

काम्यक वन में जा निकला था वहां मैंने धर्मराज युधिष्ठर को देखा ॥

उस के दर्शन के लिये मुनियों के यूथ के यूथ उस वन में आते हैं मैंने वहां पर तुम्हारे पुत्र के जूआ रूपी अनर्थ और अनीति और बड़े भय का हाल सुना है, उस को सुन कर मैं तुम से प्रीति और स्नेह रखने के कारण, कौरवों को देखने के लिये यहां चला आया हूं, मुझे बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारे और भीष्म जी के जीते तुम्हारे पुत्रों में क्योंकर विरोध हुआ, तुम को दंड देने और अनुग्रह करने का पूरा अधिकार था क्या कारण है कि तुम ने ऐसी अनीति होने दी, तुम्हारी सभा में चोरों की सी जो जो बातें हुईं वह तुम से तपस्वियों की सभा को शोभा नहीं देतीं ॥

फिर मैत्रेय जी ने अपना मुख दुर्योधन की ओर किया और उस दुष्ट से कहने लगे, हे महाबाहु हे महाभाग दुर्योधन मैं तेरे हित की बात कहता हूं तू उस को सुन और इस पर विचार कर । तुम को पांडवों से विरोध करना उचित नहीं तुम ऐसा काम करो जिस में तुम कौरव, पांडव और सकल संसार प्रसन्न हो, पांडव बड़े शूरवीर, पराक्रमी, बड़े योद्धा, बड़े बली और बड़े दृढ़ हैं इस के अतिरिक्त वह सब सत्य व्रती सब मनुष्यों का मान रखने वाले हैं उन्हों ने हिडम्ब और बक नामी राक्षसों का नाश किया, और अब कर्मीर नाम राक्षस को जो इधर से जाते समय उन का रास्ता रोक बैठा था भीमसेन ने उस को पशु के

समान मार डाला, भला जिन पांडवों के हाथों जरासंध जैसा बली जिस के बहुत से वीर सम्बन्धी थे मारा गया उन के सन्मुख कौन जायेगा इस कारण हे दुर्योधन तुझ को पांडवों से मिलाप करना ही ठीक है, अब तू क्रोध को त्याग और मेरा कहना मान ॥

दुर्योधन ऋषि की उक्त बात को सुन कर हाथ से अपनी जांघ ठोकने लगा और मुसकरा कर पाऊं की उंगलियों से पृथ्वी पर रखा खींचने लगा और कुछ नीचे का सिर झुका कर चुपके होकर बैठ गया ॥

यह अपमान देख कर मैत्रेय जी को बड़ा क्रोध हुआ और लाल नेत्र करके उन्हों ने उस को शाप दिया, हे दुर्योधन तू मेरा अपमान करके मेरा कहा नहीं मानता तुझे इस अभिमान का शीघ्र ही फल मिलेगा, तेरे इस द्रोह के कारण बड़ा भारी युद्ध होगा और उस युद्ध में भीमसेन तेरी इस जांघ को अपनी भारी गदा मार कर तोड़ डालेगा ॥

धृतराष्ट्र ने मैत्रेय जी के क्रोध को शांत कीया और कहा महाराज ऐसा कीजिये जिस से यह बात न होवे ॥

मैत्रेय जी ने कहा यदि तेरा पुत्र पांडवों से मिलाप कर लेगा तो यह शाप नहीं लगेगा नहीं तो जैसा हम ने कहा है वह अवश्य होगा ॥

धृतराष्ट्र ने कहा महाराज आप कृपा कर के मुझे भीमसेन के हाथों किर्मीर दैत्य के मारे जाने का वृत्तांत कहिये ॥

मैत्रेय जी ने कहा तुम्हारे पुत्र ने हमारा कहा नहीं माना इस कारण हम अब यहां अधिक काल नहीं ठहर सकते यह वृत्तांत अब तुम को विदुर जी सुनावेंगे और वह चल दिये और दुर्योधन उस राक्षस का भीमसेन के हाथों मारा जाना सुन कर आश्चर्य करता हुआ बाहर चला गया ॥

दसवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी का राजा धृतराष्ट्र को किर्मीर दैत्य का भीमसेन के हाथों से मारे जाने का हाल सुनाना ॥

धृतराष्ट्र ने विदुर जी से भीमसेन द्वारा किर्मीर दैत्य के वध का हाल सुनने की अभिलाषा करने पर विदुर जी ने कहा, हे राजन् जूऐ में हार कर पांडव तीन दिन और तीन रात में आधी रात के समय काम्यक वन में पहुंचे, इस वन को इस राक्षस के भय से गोपों ने त्याग दिया था पांडवों को आता हुआ देख कर वह भयानक राक्षस अग्नि के समान नेत्रों वाला हाथ में उल्मुक लिये हुए उन का रास्ता रोक कर खड़ा होगया और बड़े शब्द से चिल्ला कर बादल के समान गरजने लगा, उस की इस गर्जन से वन के सब पक्षी डर गए, और अपनी २ बोली में आर्त शब्द बोलने लगे, हाथी, भैंसा

रीछ आदि जीव इस शब्द को सुन कर इधर से उधर और उधर से इधर भागने लगे, वह वन इस समय भयानक दृश्य बन गया, पांडव इस को नहीं जानते थे, द्रौपदी ने इस से पहिले कभी कोई दैत्य न देखा था वह डर गई और उस ने अपनी दोनों आखों को बंद कर लिया, पांडवों ने उस को डरा हुआ देख कर पकड़ रखा ॥

धौम्य ऋषि ने राक्षसों के नाश करने का मंत्र पढ़ना आरम्भ किया जिस से पांडवों के देखते देखते ही उस राक्षस की सब माया नष्ट होगई, युधिष्ठर ने इस समय उस से पूछा आप कौन हैं और किस के पुत्र हैं आप की हम क्या सेवा करें ॥

दैत्य ने कहा मैं किर्मीर दैत्य बकासुर का भाई हूं, इस काम्यक वन में निर्भय होकर रहता हूं और यहां आये हुए मनुष्यों को युद्ध में जीत कर भक्षण किया करता हूं तुम बताओ कौन हो मैं तुम्हें जीत कर भक्षण करूंगा ॥

युधिष्ठर ने अपना गोत्र इत्यादि बता कर कहा मैं युधिष्ठर धर्मराज हूं और यह चारों मेरे भाई हैं तैने आगे हमारा नाम सुना होगा हम सब राज हीन होकर तेरे इस वन में रहने के लिये आये हैं ॥

राक्षस बोला देवताओं की कृपा और मेरे भाग्य से आज मुझे अच्छा भोजन मिला है, मैं बहुत दिनों से भीमसेन को मारने के लिये शस्त्र लिये उस की ढूंढ में फिरता हूं परन्तु

वह मुझे नहीं मिला, इसी ने मेरे भाई बक को ब्राह्मण के वेष में मारा था, इसी ने मेरे हिडम्बमित्र को मारा था और उस की बहिन हर ली थी, आहा आज वही भीमसेन मेरे बस में आगया है अब मैं इस से अपना पुराना वैर ले कर इस के लोहु से अपने आप को तृप्त करूंगा और राक्षसों के इस कांटे को उखाड़ कर अपने मित्र से अरिण होकर स्वस्थचित होकर बैठूंगा ॥

युधिष्ठर ने उस दैत्य को घुड़क कर कहा अरे मूर्ख तू ऐसा नहीं कर सकता, भीमसेन ने उसी समय वहां से एक पेड़ उखाड़ लिया और उसके पत्ते नोच डाले, अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष को एक पल भर में चलाने के योग्य कर लिया, परन्तु भीमसेन ने उस को रोक दीया और उस गर्जते हुये राक्षस के सन्मुख जाकर कहने लगा ठहर ठहर, भीमसेन दांत पीसता हुआ और कमर को बांध कर हाथ मलता हुआ दौड़ा और उस ने उस अपने वृक्ष रूपी शस्त्र को उस राक्षस के सिर पर दे मारा उस राक्षस ने आगे से उस को अपनी जलती हुई उल्मुक दे मारी जिस को भीमसेन ने बायें पांव से दाब कर फिर राक्षस ही की ओर फेंक दिया उस दैत्य ने भी वहां से एक वृक्ष उखाड़ लिया और दोनों का आपस में खूब युद्ध होने लगा, उन वृक्षों के लगने का बड़ा शब्द होता, पुनः भीमसेन ने उस को कमर से पकड़ कर घुमाना आरम्भ कर दिया इस से उस राक्षस का दम फूल गया, फिर भीमसेन ने उस को धरती पर डाल कर

खूब रगड़ा जिस से उस की हड्डीयां टूट गई और उस ने प्राण त्याग दिये, इस को मरा हुआ देख कर पांडव और उन के साथी बहुत प्रसन्न हुए और निर्भय होकर वहां रहने लगे, अन्य लोगों के और विशेष कर गोपों के लिये यह वन पुनः लाभदायक होगया, हे राजन् जब मैं पांडवों के पास उस वन में गया था तो मैंने उस दैत्य का मरा हुआ शरीर रासता में देखा था और यह सारा वृत्तांत मैंने उन कई ब्राह्मणों के मुख से सुना था जो पांडवों के साथ थे ॥

धृतराष्ट्र इस वृत्तांत को सुन कर बड़ा दुःखी होकर लम्बे २ श्वास लेने लगा ॥

ग्यारहवां अध्याय

—:०:—

पांडवों का दुःख जान कर श्री कृष्ण और कई अन्य राजाओं का वन में पांडवों के पास आना, श्री कृष्ण जी का क्रोध करना, अर्जुन का श्री कृष्ण जी की स्तुति करना, द्रौपदी का श्री कृष्ण जी के सन्मुख विलाप करना और उन का द्रौपदी को धैर्य देना ॥

पांडवों के वनवास और क्लेश का हाल सुन कर भोज, वृष्णि और अंधक वंशी क्षत्री, राजा द्रुपद के पुत्र, चंदेरी

का राजा, धृतकेतु और पराक्रमी राजा कैकेय उस बन में पांडवों के पास आये और धृतराष्ट्र के पुत्रों पर क्रोध करके कहने लगे जो आप आज्ञा दें हम करें॥

श्री कृष्ण जी ने पांडवों के दुःखों से दुःखी होकर कहा दुर्योधन, कर्ण, दुशासन और शकुनि इन चारों का लोहू पृथ्वी पीवेगी हम सब मिल कर उन चारों को उन के साथीयों सहित जीत कर मार डालेंगे और युधिष्ठिर का अभिषेक करेंगे, इस समय अर्जुन ने श्री कृष्ण जी के क्रोध को शांत करने के लिये उन के पूर्वजन्मों को सारा वृत्तात विस्तार पूर्वक कहा और उन की स्तुति की॥

अर्जुन की स्तुति को सुन कर श्री कृष्ण जी ने कहा हे अर्जुन जो तू है सो मैं हुं और जो मैं हुं सो तू है जो तुझ से द्वेष रखते हैं वह मुझ से पहिले रखते हैं जो तुझ से प्रीति करता है वह मुझ से करता है, तू नर है और मैं नारायण हुं और नर रूप से इस संसार में काल के अनुसार प्रकट हुए हैं हम में और तुम में कोई भेद नहीं श्री कृष्ण जी की इस बात को सुन कर द्रौपदी उन की शरण में जाकर बोली॥

मैंने असित और देवल ऋषियों से सुना है कि आप प्रथम पुरुष, प्रजापति और जगत कर्त्ता हैं परशुराम जी ने आप को सर्व व्यापी, यज्ञ, यज्ञ का कर्त्ता और पूजन योग्य कहा है, नारद जी से मैंने सुना है कि आप आकाश आदि पांच तत्वों के आदि कारण और सब प्राणी, साध्यगण देवता और ११

रूद्रों के भी ईश्वर हैं, सनातन हैं, युद्ध में न रुकने वाले और सब धर्म युक्त हैं मैं आप की सखी होती हुई मेरी यह दुर्गति हुई कि धृतराष्ट्र का पुत्र मुझ रजस्वला रुधिर भरी हुई और एक वस्त्र धारण की हुई को कौरवों की सभा में जहां सब राजा लोग बैठे हुए थे खींच कर ले गया और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरी हंसी की और पांडवों, धृष्ट द्युम्न और वृष्णि वंशियों के जीते जी मुझे दासी बना कर रखना चाहा ॥

अब मैं इन पांडवों की भी निंदा करती हुं यह पराक्रमी भी उन सब का मूंह ताकते रहे न जाने अर्जुन का यह गांडीव धनुष और भीमसेन की वह गदा कहां गई जो मुझ को इस दशा में देखते रहे, थोड़ा सा बल रखने वाला मनुष्य भी अपनी स्त्री का अपमान नहीं देख सकता इन पांडवों ने शरणागत का कभी त्याग नहीं किया परन्तु इन्हों ने मेरी रक्षा शरण आने पर भी नहीं की, देखो मेरे पांचों तेजस्वी पुत्र इन पांचों पतियों से हैं इन के कारण तो इन पांडवों को मेरी रक्षा करनी उचित थी ॥

धनुष विद्या में इन पांडवों का अभ्यास श्रेष्ठ है कोई शत्रु इन को जीत नहीं सकता न जाने यह सब के सब धृतराष्ट्र के इन दुर्वल पुत्रों की अनीति को क्यों कर सहा किये, इन्हों ने वह वह काम किये जिन का मैं कथन नहीं कर सकती, राक्षसों को इन्हों ने मारा, वर्णावर्त लाक्षाग्रह की आग से यह बचे, मेरे स्वयम्बर में अर्जुन ने वह काम कीया जो किसी से भी न हो सकता था, हे श्री कृष्ण जी इन के ऐसे

होने पर भी मैं यहां क्लेश में [illegible] और धौम्य ऋषि मेरे आगे चलते हैं, हाय ! मुझे यह मालूम नहीं होता कि यह इतने वीर और पराक्रमी होकर उन निर्बल शत्रुओं के दिये हुए मेरे क्लेश को क्यों सह रहे हैं, इतनी भरी हुई सभा में मुझ दुःखित का बालों से खेंचा जाना कोई कम दुःख की बात नहीं है, यह कह कर द्रौपदी अपने हाथों से मुख को ढांप कर रोने लगी और उस के आंसू गिरने लगे, वह इन आंसूओं को पूछती हुई कहने लगी ॥

न मेरे पति हैं, न पुत्र, न भाई, न बांधव, न पिता और न आप जो नीच जनों से मुझ सताई हुई को देख कर सब के सब मेरे दुःख को सह रहे हो कर्ण का ठट्ठा मारना मेरे हृदय में खटक रहा है उस की हंसी का दुःख दूर नहीं होता, हे श्री कृष्ण जी आप को चार कारणों से मेरी रक्षा करना चाहिये, १ सम्बन्ध, २ आपकी भक्ति, ३ गौरव और ४ आपकी ईश्वर्ता ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हे द्रौपदी ! तू चिंता मत कर, जिन दुष्टों ने तुझ को दुःख दिया है उन सब की स्त्रियां भी इसी प्रकार से दुःख पाकर रोवेंगी और अर्जुन के बाणों से मरे हुये और रुधिर से भरे हुये पृथ्वी पर पड़े हुये अपने २ पतियों को देख २ कर विलाप करेंगी मैं वही करूंगा जो पांडवों की कामना होगी और तू उस समय रानी होकर रहेगी ॥

द्रौपदी इस समय तिरछी दृष्टि करके अर्जुन की ओर देखने लगी ॥

इस समय अर्जुन ने कहा हे रक्तनेत्रा, हे वरांगिनि तू विलाप मत कर, श्री कृष्ण जी ने जो कुछ कहा है उस से अन्यथा नहीं होगा ॥

धृष्ट द्युम्न ने कहा द्रोणाचार्य को जिस का कौरवों को बड़ा अभिमान है मैं मारूंगा, शिखण्डी भीष्म को मारेगा, भीमसेन दुष्ट दुर्योधन को यम के पास पहुंचावेंगे और अर्जुन कर्ण का पराणांत करेगा। हे बहिन हम श्री कृष्ण और बलदेव जी का आश्रय लेकर इन्द्र को भी पराजय कर सकते हैं यह धृतराष्ट्र के पुत्र किस गिनती में हैं ॥

बारहवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का पांडवों को दुःखी देख कर आप दुःखी होकर यह कहना कि यदि हम द्वारका में होते तो कभी जूआ न होने देते ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हे युधिष्ठिर यदि हम द्वारका में होते तो कौरवों के बिन बुलाये भी हस्तिनापुर में चले आते और कभी जूआ न होने देते, पहिले तो जूए के बहुत से दोष उन को बतलाते और यदि दुर्योधन और उस के छली

साथी न मानते तो हम बल से मनवाते यदि इस प्रकार से भी न मानते तो हम उन को पकड़ लेते हम उन को वीरसेन के पुत्र राजा नल का जिस ने जूए में अपना सारा राज नष्ट कर दिया था हाल सुनाते हमारे समझाने से जूआ कभी भी न होने पाता ॥

स्त्री, जूआ, मद्यपान और शिकार खेलना यह चारों बातें काम से उत्पन्न होती हैं और यह चारों ही मनुष्य की लक्ष्मी के नाश का कारण हैं शास्त्रों का मत है कि मनुष्य इन चारों ही से बचा रहे और जूए का तो विशेष ही त्याग देना उचित है क्योंकि यह एक ही महूर्त में सारे धन आदि का नाश कर देता है हम सब सभासदों को जो (कौरवों का हित दिखलाकर) और जो वास्तव में उन के दोषी थे यदि वह न मानते तो मार डालते हम ने द्वारका आकर युयुधान से तुम्हारे दुःख का हाल सुना था सो सुनते ही यहां चले आये हैं ॥

तेरहवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का द्वारका पुरी में न होने का कारण कहना और राजा शाल्व से युद्ध का हाल बतलाना ॥

युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण जी से पूछा महाराज आप द्वारका से बाहिर कहां गए हुए थे और किस प्रयोजन से गए हुए थे ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हम सौभ नगर के राजा शाल्व का नाश करने के लिए गए थे क्योंकि वह राजा तेरे राजसूय यज्ञ में मेरे हाथ से शिशुपाल का वध सुन कर द्वारका पर चढ़ आया और हमारी पुरी को चारों ओर से घेर कर और आप विमान पर बैठ कर आकाश में से पुरी पर अस्त्र गिराने लगा, द्वारका पुरी में उस समय चारों ओर पताका लगे हुए बुर्ज और यन्त्र बने हुए थे और उन में सुरंग खोदने और गुप्तमार्ग बनाने वाले मनुष्य विद्यमान थे सड़कों पर लोहे के मुख वाली कीलें लगी हुई थीं और नगर के द्वार और अटारियां अन्न से भरी हुई थीं और मोर्चों पर उल्का के समान प्राण हरने वाले अग्नेय गोले और मन्त्र युक्त शक्तियां रखी हुई थीं, मिट्टी और चर्म के पात्र, भेरी, ढाल, मृदंग, तोमर, अंकुश, शतघ्नी, लांगलवस्त्र, भुशुण्डी, पत्थर के गोले, फरसा, लोहे की ढालें, गंधक आदि अग्नि लगाने वाली चीज़ें, नाना प्रकार के गोले और उन के चलाने के यन्त्र मौजूद थे। इस पुरी की रक्षा के लिए हर प्रकार के साधन किए गए, नटों, नाचने और गाने वालों को पुरी के बाहर बसा दिया गया नदियों के पुल तोड़ डाले गए, नावें रोक कर खाई में कीलें लगवा दी गईं, उग्रसेन ने कूओं, बावलियों और तालावों में भी कीलें लगवा कर चारों तरफ से एक २

कोस तक लोहे के कोट लगवा दिए और आज्ञा दे दी कि कोई पुरवासी मद्यपान न करे क्योंकि मतवाला होने से रिपुओं से मारे जाने का भय था, कोई जन न ही इस पुरी से बाहर जाने पाता था और न ही अन्दर, इस के चारों ओर हाथी और घोड़ों सहित सेना खड़ी करदी गई थी इस सेना को रुपया और अशर्फीयां मासिक मिलती थीं और यह मासिक नियत समय पर बांट दिया जाता था इस से यह सेना बहुत प्रसन्न रहती थी ॥

चौदहवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का राजा शाल्व के मंत्री और सांब और चारुदेष्णा से युद्ध का बृत्तांत कहना और प्रम्धुन के युद्ध का हाल बतलाना और उस का मोहित होना ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हे युधिष्ठर राजा शाल्व बड़ी भारी सेना लेकर द्वारका पुरी पर चढ़ आया, उस की सेना ने एक सम भूमी पर अपना डेरा डाल दिया शाल्व का डेरा इस प्रकार रक्खा गया था जहां छिप कर पहुंचना बड़ा कठिन था, उस के चारों ओर शस्त्र बध सेना जमी थी ॥

इधर से चारुदेष्णा सांव और प्रद्युम्न आदि बड़े महारथी

कृष्ण वंशी कुमार कवच और विचित्र आभरण धारण करके रथों पर ध्वजा लगाय और उन पर चढ़ कर नगर से बाहर निकल आये और शाल्व के मुख्य मुख्य योद्धाओं से युद्ध करने लगे, सांब प्रसन्न होकर शाल्व के मंत्री क्षेम वृद्धि सेना पति से युद्ध करने लगा, सांब ने मंत्री पर वर्षा के समान बाण बरसाये उस ने इन बाणों को हिमालय सम सहा ॥

उस मंत्री ने भी सांब पर माया से रचे हुए बाण छोड़े, सांब ने आगे से माया ही से उस बाण जाल को हटा दिया और मंत्री पर सहस्रों बाण बरसाये। इन बाणों से वह मंत्री भाग गया, तब दैत्य नाम शाल्व का दूसरा सेनापति सांब से युद्ध करने को आया, सांब भी उस के सन्मुख गया और उस ने अपनी गदा को घूमा कर उस दैत्य को मार डाला ॥

तब सांब शाल्व की सेना में जाकर युद्ध करने लगा, इधर विविन्ध दानव का जो बड़ा धनुष धारी और महारथी था चारूदेष्ण से युद्ध होने लगा, इन दोनों ने सिंहों के समान गर्ज २ कर एक दूसरे पर बाणों की वर्षा की, चारू देष्ण ने ऐसे बाण चलाये जिन्हों ने विविन्ध के शरीर को वेध डाला और वह मर गया, राजा शाल्व उस को मृत्यु सुन कर और सेना का दिल छोड़ा हुआ देख कर विमान में बैठा हुआ सन्मुख आया, राजा शाल्व को विमान में देख कर हमारी सेना ने दिल छोड़ दिया, प्रद्युम्न ने सेना का यह हाल देख कर उस को ढारस दिया और कहा ठहरो. हम

अभी युद्ध करके इस की निवृत्ति करते हैं मेरे सन्मुख आने से वह बच नहीं सकता. इस से वह सेना दिल देकर युद्ध करने के लिये तत्पर हो गई ॥

प्रद्युम्न सेना को समझा करके सुनहरी रथ में स्वार हुआ और मगर के चिन्ह की ध्वजा को ऊंचा करके तीक्षण घोड़ों को हांकता हुआ शत्रु के सन्मुख चला गया और धनुष टंकार टंकार कर सौम के रहने वाले दैत्यों को मूर्छित कर दिया प्रद्युम्न इस समय इस शीघ्रता से बाणों को लेता और छोड़ता था कि उस का अंतर न जाना जा सकता था, अब प्रद्युम्न और शल्व का युद्ध होने लगा, दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी, शाल्व के बाणों को मेरा पुत्र प्रद्युम्न काट डालता एक बार प्रद्युम्न शाल्व के बाणों से विध गया, उस ने मर्म काटने वाला बाण शाल्व को मारा यह बाण शाल्व के कवच को काट कर उसके हृदय में घुस गया जिस से वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। उस की इस दशा को देख कर सब दानवेंद्र भागने लगे और उसकी सेना में हाहाकार मच गया, कुच्छ काल पीछे शाल्व को सुध आगई और वह उठ खड़ा हुआ और उसने प्रद्युम्न को बाण मारे। जिन से वह विध गया और उस के कंठ के मूल पर बड़ी पीड़ा होने लगी शाल्व उस को इस प्रकार घायल करके सिंह के समान गर्जने लगा, फिर उसने प्रद्युम्न को दुस्सह बाण मारे जिन से वह मोहित होकर चेष्टा रहित होगया ॥

पंद्रवां अध्याय

—:o:—

प्रद्युम्न के मूर्छित होने पर सारथी का रथ को रण से बाहर ले जाना और उसके सुध में आने पर रथ को लुटवाना और सारथी को आगे कभी ऐसा न करने का उपदेश देना॥

हे युधिष्ठर प्रद्युम्न के मूर्छित होने पर सब यादव महा दुःखी होगए और हमारी सेना में हाहाकार मच गया इस पर शत्रु प्रसन्न हुए प्रद्युम्न का सारथी उस को रण से बाहर ले जाने लगा वह अभी थोड़ी ही दूर गया था कि प्रद्युम्न की मूर्छा जाती रही और वह हाथों में धनुष लेकर सारथी से बोला अरे सारथी तू किस विचार से रथ को युद्ध से विमुख लिए जा रहा है क्या तुझ को वृष्णि वंशीयों का धर्म मालूम नहीं, क्या राजा शाल्व को देख कर तुझे मोह तो नहीं हो गया था तू युद्ध को देख कर डर गया है सत्य २ बतलादे॥

सारथी ने कहा हे केशव नंदन! न मैं डरा हुं न मुझ को मोह हुआ है परंतु शाल्व के युद्ध को मैं आप पर बड़ा भार समझता हुं यह पापी शाल्व बडा बलवान है इस कारण मैं रथ को दूर लिए जाता हुं शूरवीर के मूर्छित हो जाने पर सारथी का धर्म है कि वह उस की रक्षा करे, मुझे आपकी और

आप को मेरी सदैव रक्षा करनी चाहिए मेरे रथ को दूर ले जाने का एक यह भी कारण है कि आप अकेले हैं और यह दानव वहुत से हैं इस से मैं इस युद्ध में समता नहीं देखता ॥

प्रद्युम्न ने कहा तु रथ को फिर रण में लौटा लेचल, जब तक मैं जीता हुं ऐसा फिर कभी मत कीजियो। जो मनुष्य रण से भागे हुये अथवा गिरे हुये को, ऐसा कहते हुये को कि आप ही का हुं, स्त्री को, वालक, को टूटे शस्त्र रखने वाले को और वृद्ध को मारता है वह वृष्णि कुल में उत्पन्न ही नहीं हुआ। क्या तू मेरी हंसी कराना चाहता है यह हंसी मेरी मृत्यु से वढ़ कर है इस से हे सारथी ऐसा फिर कभी मत करना। कृतवर्मा युद्ध के लिये जाते थे मैं उन को यह कर लौटा दिया कि मैं अभी शाल्व को मार कर आता हुं। मैं अन्य वृष्णि वंशियों को क्या मूंह दिखाऊंगा, मैं रण को छोड़ कर तुझ से हटाया हुआ पीठ की ओर से वाण खाकर किसी प्रकार से जीता नहीं रहसकता ॥

हे सारथी क्या तूने कभी इस से पहिले मुझ को रण भूमि छोड़ते देखा है ? मैं कभी रण भूमि को छोड़ने वाला नहीं चल रण भूमि में अत्र शीघ्र चल ॥
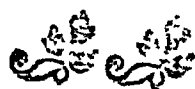
सोलहवां अध्याय

—:०:—

प्रद्युम्न का रण भूमि में लौट कर राजा शाल्व से फिर युद्ध करना, शाल्व का मूर्छित होना और उस को सुध आने पर उस का सेना को लेकर लौट जाना ॥

श्री कृष्ण जी ने युधिष्ठर से कहा हे राजन् ! सारथी प्रद्युम्न की वात सुन कर बड़े मीठे शब्दों से बोला, आपने सत्य कहा है मैं वृष्णि वंशियों के युद्ध को जानता हुं युद्ध में रथ के घोड़ों को हांकने में मुझे डर नहीं लगता । मैं केवल रथ को रण भूमि से इस लिए निकाल लाया था कि आप शाल्व के वाणों से दुःखी और मूर्छित हो गए थे ऐसे समय में सारथी का यह धर्म है, मैं फिर रथ को रण भूमि में ले चलता हुं और इस में अपनी निपुणता दिखलाता हुं । यह कह कर उस सारथी ने घोड़ों को ऐसे ढंग से चलाया कि रथ नीचे, ऊपर, इधर, उधर होता हुआ रिपुओं की सेना में जा घुसा, इस से उस सेना के आदमी घवरा कर इधर उधर हो गए और सारथी शाल्व के सन्मुख जा पहुंचा उस को देख कर सब आश्चर्य में हो गए शाल्व अपनी सेना को एक ओर होता हुआ देख कर सह न सका उस ने सारथी को तीन बाण मारे सारथी ने उन बाणों को कुछ

ने जाना और रथ को बढ़ाता हुआ आगे ले गया ॥

इस के पीछे शाल्व ने और बहुत से बाण प्रद्युम्न पर मारे जिस ने अपने हाथ की लाघवता दिखाई और शाल्व के मारे हुये बाणों को काट कर गिरा दिया शाल्व ने आसुरी माया से और बाण मारे परंतु प्रद्युम्न ने ब्रह्मास्त्र से रास्ता में ही सब बाणों को काट कर गिरा दिया और अपने बाण शाल्व पर मारे, जिन से शाल्व का फैंका हुआ दैत्येय अस्त्र गिर पड़ा अब शाल्व का मुख घायल होगया और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा ॥

प्रद्युम्न ने उस दुष्ट को गिरा हुआ देख कर और बाण चलाये जिन से घबराकर वह सेना को लेकर अपने नगर को लौटा ॥

सतारहवां अध्याय

—:o:—

श्री कृष्ण जी का राजा शाल्व के साथ युद्ध करना ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा जब मैं आप के राजसूय यज्ञ के समाप्त होने पर द्वारका में पहुंचा तो मैं द्वारका को अच्छी दशा में न पाकर आश्चर्य में होगया और दिल में विचारने लगा कि इस का क्या कारण हुआ है कृतवर्मा ने राजा

शाल्व का द्वारका पर चढ़ाई और उस की हार का और वहां से लौटने का सारा वृत्तांत मुझे विस्तार पूर्वक सुनाया मैंने उग्रसेन और वासुदेव जी को धैर्य दिया और वृष्णि कुल के शूरवीरों को प्रसन्न करने के लिये उन से कहा तुम सब लोग सावधानी से इस नगर में रहो मैं राजा शाल्व को मारने के लिये जाता हूं और बिना शाल्व के मारे मैं द्वारका में नहीं आऊंगा ॥

मैं ने सब से आशीर्वाद ली और ब्राह्मणों से स्वस्तयन सुनी और शैव और सुग्रीव नाम घोड़ों से जोते हुए रथ पर बैठ कर पांच जन्य शंख बजाता हुआ बहुत सी चतुरंगी सेना साथ लिए हुए चल दिया और अनेक देश, पर्वत, नदियां, वृक्ष, उद्यान, खेत और तालाब लांघता हुआ मार्त्तिकावत देश में पहुंचा जहां मैंने सुना कि शाल्व समुद्र के तट पर गया हुआ है मैं भी उस के पीछे वहां गया वह विमान में बैठा हुआ समुद्र के बीच में गुप्त हो गया मुझे देख कर वह मंद २ मुसकराकर बुलाने लगा मैंने अनेक बाण अपने शार्ङ्ग धनुष से छोड़े परंतु उस के विमान तक एक भी न पहुंचा इस से मुझे बड़ा क्रोध हुआ उस दुष्ट ने भी हम पर बाण बरसाए जिन से मेरी सेना के सारथी, रथी, घोड़े इत्यादि ढक गए परंतु हम ने इन की कुछ परवाह न की पुनः उस ने बाणों की और वर्षा की जिस से हम एक दूसरे को देखने से रह गये मैंने भी दिव्य मन्त्रों से मंत्रित कर २ के लाखों बाण मारे परंतु आगे से लड़ने वाला कोई न मिला क्योंकि

वह अपने विमान को एक कोश ऊंचा ले गया था ॥

मैंने पुनः बाण चलाए जिन से उन दैत्यों के अंग कट कर समुद्र में गिरने लगे, समुद्र के जलचर जीव झट उन को भक्षण कर लेते थे तब मैंने पांच जन्य शंख बजाया, शाल्व इस के नाद को सुन कर और दैत्यों को समुद्र में गिरता हुआ देख कर माया से युद्ध करने लगा इस समय हम पर गदा, हल, प्रास, शूल, शक्ति, फरसा, खड्ग, कौमारी, वज्र, पाश, दण्ड, दिव्य अस्त्रों के तुल्य बाण पट्टिश और भुशुण्डी आदि शस्त्रों की निरंतर वर्षा होने लगी मैंने भी तब माया ही से इन सब अस्त्रों की वर्षा को दूर कर दिया तब वह शाल्व पर्वतों के शिखर ले २ कर लड़ने लगा उस समय कभी अंधेरा और कभी चांदना हो जाता था कभी शीत और कभी गरमी होने लगती थी, तब उस ने अंगारे, धूल और शस्त्र बरसाए मैंने सब को माया ही से शांत कर दिया और समय के अनुकूल सब ओर से बाण मारे, उस समय आकाश में सौ सूर्य, सौ चन्द्र और सहस्रों अयुत तारे दिखाई देने लगे। न रात जान पड़ती थी न दिन मैं भी माया युक्त हो गया और मैंने प्रज्ञा अस्त्र का प्रयोग किया उस से यह माया इस प्रकार जाती रही जिस प्रकार वायु से रूई उड़ जाती है ॥

अठारवां अध्याय

—:०:—

शाल्व का युद्ध में माया से श्री कृष्ण जी को मूर्छित करना, श्री कृष्ण जी का उस के विमान को गिरा कर उस को मार देना और फिर द्वारका में लौट आना, और श्री कृष्ण जी आदि सब राजाओं का पांडवों से विदा होकर अपने अपने देशों को चले जाना ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा हे राजा युधिष्ठर शाल्व पुनः आकाश में चला गया और उस ने वहां से मुझ पर शतघ्नी गदा, दीप्त शूल, मूसल, और तलवार फेंकी, मैंने तीक्ष्ण बाणों से उन सब शस्त्रों को रोक दिया और उस को मारने के लिए मैं भी आकाश में पहुंचा और उस के फेंके हुए शस्त्रों के टुकड़े कर दिए इस से आकाश में बड़ा शब्द हुआ तब शाल्व ने झुकी हुई नोक वाले एक लाख बाण बरस कर मुझ को और मेरे साथीयों को ढक दिया मेरे सारथी दारुक ने कहा यद्यपि शाल्व के बाणों से विधा जाकर मुझ में यहां ठहरने की सामर्थ नहीं परन्तु मैं यहां ठहरता हूं मैंने उस की छाती, मस्तक, इत्यादि सारे शरीर में से कोई अंग भी खाली

ऐसा देखा जो विधा हुआ न था और उस के शरीर में से लोहू इस प्रकार से वह रहा था जिस प्रकार वर्षा ऋतु में गेरू पर्वत से लाल पानी वहता है, मैंने उस को धारण किया ॥

इतने में एक मनुष्य मेरे सन्मुख आकर कहने लगा हे कृष्ण चन्द्र जी आप को उग्रसेन जी द्वारका में याद करते हैं राजा शाल्व ने द्वारका पहुंच कर आप के पिता को मार डाला है, आप यहां के युद्ध को छोड़ कर द्वारका चल कर उस की रक्षा कीजिये, मैं विचार में पड़ गया कि क्या करूं यहां रहूं या द्वारका जाऊं, मैं दिल ही दिल में सात्कि, बलदेव जी और प्रद्युम्न कोस कर कहने लगा कि मैं इन सब को द्वारका की रक्षा के लिये छोड़ कर सौभ नगर को नाश करने आया हूं पुनः मुझे विचार आया कि सात्कि, प्रद्युम्न इत्यादि के जीते हुए वासुदेव जी किस प्रकार से मारे गए जान पड़ता है कि बलदेव जी आदि भी सब मारे गए होंगे । यह अनुमान करते हुए भी मैंने शाल्व से लड़ना न छोड़ा इतने में मैंने अपने पिता को शाल्व के विमान से गिरते हुए देखा गिरते समय मेरे पिता का स्वरूप ऐसा दीख रहा था जैसे राजा ययाति पुण्यों के क्षय होने पर आकाश से गिराया गया है उनकी पगड़ी कहीं से कहीं जाती थी और बाल विखरे हुए थे उस की यह दशा देख कर मेरे हाथ से शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा और मैं मोह के वश होकर रथ की पटली पर बैठ गया मुझ को इस दशा में देखकर मेरी सेना अचेत होकर हाहाकार

करने लगा मैं अपने पिता को इस दशा में आकाश से गिरता हुआ देख कर कांपने लगा। कुछ काल पीछे जब मेरा चित्त ठिकाने हुआ तो वहां न ही शाल्व, न ही मेरे पिता और न ही विमान दृष्टि पड़ा इस से मुझ को निश्चय हुआ कि यह सब माया ही थी तब मैंने चारों ओर अपने बाण बरसाए ॥

इन मेरे बाणों से कई दैत्य विमानों से गिरे पुनः मैंने कई बाण जो सर्प के समान तीक्ष्ण और नोकीले थे राजा शाल्व के बेधने के लिये मारे परंतु वह माया से लोप होगया से मुझ को बड़ा आश्चर्य हुआ अब दैत्यों ने आकाश में बड़ा शब्द किया जिस से आकाश गूंजने लगा मैंने शब्द साह अस्त्र छोड़ कर उस शब्द को बंद कर दिया और वह शब्द करने वाले सब दैत्य मारे गये पुनः फिर चारों ओर शब्द होने लगा मैं ने उन शब्द करने वाले दैत्यों, को भी मार मुकाया ॥

इस समय सौभ नाम विमान प्राग्ज्योतिषं नगर की ओर जाता हुआ मेरी दृष्टि पड़ा इस के देखते ही मेरे नेत्र मोहित हो गए दैत्यों ने आकाश से शिलाओं की भयानक वर्षा की जिन से मैं मेरा रथ घोड़े इत्यादि सब ढके गए एक को दूसरा नहीं दीख पड़ता था इस से वृष्णि वंशी सब सेना डर कर इधर उधर भाग गई और मेरे अदृश हो जाने पर स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी पर हाहाकार मच गया और मेरे हितू

लोग दुखी होकर व्याकुलता से रोने और पीटने लगे शत्रु इस से बड़े प्रसन्न हुए ॥

तब मैंने पत्थरों के तोड़ने वाला इन्द्र का वज्र निकाला और उसे छोड़ कर सब पत्थरों को तोड़ डाला, इस समय मेरे घोड़े इन पत्थरों से दबने के कारण मंद बल हो कर कांपने लगे, मेरे भाई बन्धु मेरे दर्शन करके प्रसन्न हुए, घोड़ों की यह दशा देख कर मेरे सारथी ने यूं कहा:—

हे श्रीकृष्ण जी अब आप इस दुष्ट शाल्व का शीघ्र नाश कीजिए यह मृदु युद्ध में नहीं मारा जायगा आप इस को कर्कश युद्ध करके मारिये ॥

सारथी के वचन सुन कर मैंने अपने प्यारे आग्नेय अस्त्र को जो दिव्य, अभेद्य, पराक्रमी, किसी शस्त्र से न टूटने वाला, प्रभावान तीक्ष्ण, निर्मल, काल और यम, की समान यन्त्र, राक्षस, दानव, और विपरीत आचार रखने वाले राजाओं का नाश करने वाला है मंत्रित करके धनुष्य पर चढ़ाया और यह आज्ञा देकर कि सौभविमान और इस में जो जो मेरे शत्रु हैं सब को मार दो अपने बल के अनुसार खेंच कर छोड़ दिया, इस सुदर्शन ने उस समय प्रलय मचा दी और सौभ विमान को बीच में से इस प्रकार चीर डाला जैसे आरा लकड़ी को चीर डालता है ॥

वह विमान आकाश से धरती पर गिर पड़ा और अस्त्र पुनः मेरे हाथ में आगया उसी समय मैंने उस को यह कहा

कि मैं शाल्व को मारता हूं फिर छोड़ दिया उस ने हाथ से निकलते ही उस शाल्व को जो अपनी गदा को घुमा रहा था चीर कर दो कर दिया उस के मरने पर सब दानव भाग गए मैंने उस विमान के पास जाकर अपना शंख बजाया जिस के सुनने से मेरे सारे सुहृद प्रसन्न हो गए ॥

इस शाल्व को मार और उस के विमान का नाश करके मैं द्वारका को आया जहां मेरे सारे सम्बन्धी और सुहृद मुझे देख कर प्रसन्न हुए ॥

यह सब वृत्तांत सुनाने के पीछे श्री कृष्ण जी ने पांडवों से द्वारका जाने की आज्ञा ली और अपने रथ में बैठ कर और दूसरे रथ में सुभद्रा और अभिमन्यु को बिठलाकर द्वारका की ओर चल दिए ॥

धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी के पुत्रों को अपने साथ लिया और वह भी अपने पांचाल देश को चल दिया और चंदेरी देश का राजा धृष्टकेतु अपनी बहिन सहित और कैकेय देश के कुमार भी युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर अपने अपने देशों को चल दिये परंतु वह ब्राह्मण वैश्य इत्यादि बार २ विदा करने पर भी न गए और उन के पास ही रहे ॥

उन्नीसवां अध्याय

—:०:—

पांडवों का काम्यक वन से आगे जाना और सब ब्राह्मणों और पुरवासीयों का उन से विदा होकर अपने अपने घरों को चले जाना ॥

श्री कृष्ण जी के जाने के पीछे पांडव द्रौपदी और पुरोहित सहित उत्तम रथों पर स्वार हुए और आगे को चले, अपने अस्त्र शस्त्र वह पाहिले ही द्वारका में भेज चुके थे अब सुभद्रा के आभूषण धात्री नाम दासी के हाथ भेज दिए, इस समय सब पुरवासीयों ने आकर युधिष्ठर की परिक्रमा की और ब्राह्मणों ने उस को आशीर्वाद दिये युधिष्ठर ने ब्राह्मणों को दण्डवत की और करूजांगल वासी मनुष्यों को देखकर बहुत बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़ी प्रीति के साथ उन से मिला वह लोग भी युधिष्ठर से इस प्रकार मिले जिस प्रकार पुत्र पिता को मिलते हैं । महाजन लोग युधिष्ठर को घेर कर कहने लगे हे नाथ हे धर्मराज तुम कुरू वंशियों में श्रेष्ठ और धन के स्वामी हो हम सब को छोड़ कर आप कहां जाते हो धिक्कार है दुष्ट दुर्योधन, शकुनि, दुशासन और कर्ण को जो आप जैसे धर्मात्माओं का अनर्थ चाहते हैं आप इस

इन्द्रप्रस्थ को जिस को बनाकर और उस में ऐसी सुन्दर सभा बनाकर कहां जाते हैं ॥

यह सुन कर अर्जुन ने कहा राजा युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष वन में काट कर और तेरहवें वर्ष को गुप्त में व्यतीत करके चौदहवें में लौट कर शत्रुओं के यश को हरेंगे आप लोग ईश्वर से प्रार्थना करें कि हमारा यह मनोरथ सिद्ध हो ॥

तब सब मनुष्यों ने युधिष्ठिर की स्तुति और परिक्रमा की और उन से आज्ञा लेकर और सत्कार पाकर अपने अपने घरों को चले ॥

इक्कीसवां अध्याय

—:०:—

पांडवों का द्वैत वन में पहुंच कर उस में वास करना ॥

सब लोगों के विदा होने पर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा हम को अब बारह वर्ष ऐसे वन में बिताने चाहियें जो फल, फूल, मृग और पक्षियों से भरा हुआ हो और जिस में पुण्यात्मा मनुष्य भी हों ताकि हमारे यह वर्ष सुख से व्यतीत हो जावें ॥

अर्जुन ने कहा महाराज ! आपने व्यास, नारद आदि बड़े विद्वानों और तीनों लोकों में घूमने वालों से बहुत सा ज्ञान पृथ्वी के सम्बन्ध मे प्राप्त किया है आप से मोक्ष आदि का साधन भी छिपा हुआ नहीं जहां आप वास करेंगे हम भी आपके चरणों में वहां रहेंगे हमारी समझ में द्वैत वन जिस में सब पदार्थ मौजूद हैं और जिस में जल से भरा हुआ सरोवर भी है हमारे लिए अच्छा है यदि आप की इच्छा हो तो यह बारह वर्ष इसी में व्यतीत किये जावें या आप और जो इस से उत्तम स्थान जानते हों तो वह कहिये ॥

युधिष्ठर ने कहा हे अर्जुन मेरी भी इच्छा द्वैत वन के उस रमणीक सरोवर पर रहने की है चलो हम सब वहां ही चलें ॥

तब वह सब बहुत से ब्राह्मणों को संग लिये हुए द्वैत वन के उस सरोवर पर चले गए । वहां उन के पास सैकड़ों वेद पाठी, अग्निहोत्री, भिक्षुक, वनवासी ब्राह्मण, सिद्ध, महात्मा और तीक्ष्ण व्रतधारी ब्राह्मण आए। इस वन में ताल, तमाल, आम्र, महुआ, देवसर्ज, अर्जुन और कर्णी कार आदि अनेक प्रकार के फलों के वृक्ष थे और इन वृक्षों पर मोरचकोर हिरण और कोकिल आदि पक्षियों के समूह नाना प्रकार की मनोहर वाणी बोल रहे थे। हाथी और हथनिओं के झुंड जहां तहां विचरते थे ॥

इस वन में सरस्वती नदी के तट पर बहुत से पवित्र आत्मा शुद्ध अन्तःकरण, जटाधारी, धर्मात्मा, सिद्ध और तपस्वी ऋषि पांडवों के दृष्ट पड़े इन सब की शोभा को देख कर युधिष्ठर रथ से उतर पड़े और अपने भाई और सब साथीयों सहित उस वन में घुस गए उन के दर्शनों की इच्छा से चारण और सिद्ध लोगों के समूह के समूह चले आए और वनवासियों ने पांडवों और उन के साथीयों सहित चारों ओर से उन को घेर लिया ॥

युधिष्ठर ने अपने दोनों कर बांध कर सब सिद्धों को दण्डवत की और उन से देवताओं का सा सत्कार पाया और एक कदंब के पेड़ की जड़ जिस में फूल लग रहे थे बैठ गया । तब अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और सब उन के संगी अपनी २ स्वारियों से उतर कर उस के पास जा बैठे ॥

बाईसवां अध्याय

—:०:—

महामुनि मार्कंडेय जी का पांडवों के पास आना और उन को उपदेश देकर उत्तर दिशा को चले जाना ॥

पांडव इस वन में रहने लगे युधिष्ठर वहां के रहने वाले ऋषि मुनि और मुख्या ब्राह्मणों को सुंदर फल, कंद और मूल से भोजन कराता था और उस का पुरोहित धौम्य ऋषि उस से यज्ञादि कर्म कराता था॥

एक दिन मार्कंडेय ऋषि जी जो बड़े तेजस्वी, देवता और ऋषियों से पूजित थे उन के पास वहां आ निकले युधिष्ठर ने उन की यथा योग्य पूजा की वह मुसकरा पड़े। युधिष्ठर ने कहा महाराज इन तपस्वी लोगों के मध्य में बैठे हुए मुझे देख कर आप हंसे हैं आप के हंसने का क्या कारण है मुझे कहिए॥

मार्कण्डेय जी ने कहा हे युधिष्ठर न मैं हंसता हुं, न मुसकराता हुं और न ही अति हर्ष होने से मुझे कुच्छ घमंड होता है परन्तु तुझे देख कर मुझे दशरथ के पुत्र सत्य व्रत रामचन्द्र जी याद आ गए हैं पहिले समय में मैंने ऋष्यमूक पर्वत पर उन रामचन्द्र को लक्ष्मण सहित पिता की आज्ञा से बनबास करते हुए देखा था उन्हों ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझ कर और सब भोगों को त्याग कर बनबास किया था मर्यादा ईश्वर ने वेद में सिखाई है संत लोग इस के विपरीत नहीं करते देखो सप्त ऋषि लोग उसी मर्यादा पर चल कर स्वर्ग में अपना प्रकाश कर रहे हैं, दिग्गजों की ओर ध्यान दो जो महा पराक्रमी पहाड़ की चोटी के समान दांत रखते हैं वह भी ईश्वर की बंधी हुई मर्यादा

को नहीं छोड़ते, हे राजन् ! इस संसार में ईश्वर ने जितने जीवधारी उत्पन्न किये हैं वह सब अपने जन्म के अनुसार कर्म करते हैं तुम्हारा सत्य और धर्म जैसा चाहिये वैसा ही है और यश और तेज भी सब से अधिक सूर्य और अग्नि के समान है; हे राजन् ! तुम इस कष्ट रूपी वनवास को पूरा करके अपने तेज से पुनः कौरवों से अपनी लक्ष्मी को लोगे यह कह कर वह ऋषि पांडवों और धौम्य ऋषि से पूछ कर उत्तर दिशा को चले गए ॥

तेईसवां अध्याय

—:o:—

वक और दाल्भ्य ऋषियों का युधिष्ठर को अपने पास ब्राह्मण रखने का उपदेश देना ॥

पांडवों के द्वैत वन में रहने से वह वन ब्राह्मणों से भर गया वहां हर समय वेद पाठ होता, इस पाठ को सुनने वाले उस को प्यारा जानते वेद पाठ के साथ पांडवों के धनुष्य की टंकार सुन कर सब का चित्त प्रसन्न होता था एक दिन संध्या करने के समय वक और दाल्भ्य ऋषियों ने युधिष्ठर से कहा देखो भार्गव आग्निरस, वशिष्ट, काश्यप, आगस्त्य और आत्रिय आदि गोत्रों के श्रेष्ट ब्राह्मण तुम से रक्षित होकर अग्नि से हवन आदि

कसेर उत्तम कर्म कर रहे हैं हम तुम पांचों भाईयों को एक शिक्षा देते हैं उसको ध्यान से सुनो ब्रह्म कुल क्षत्रि कुल से और क्षत्रि कुलः ब्रह्म कुल से मिल कर बड़े प्रबल हो जाते हैं और शत्रु को इस प्रकार से जला सकते हैं जैसे अग्नि और वायू एक दूसरे की सहायता से वन को जला देते हैं जो राजा ब्राह्मण हीन होता है उस के दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं और मोह को त्याग कर ब्राह्मण को रखने वाला राजा निश्चय शत्रुओं को जीत लेता है देख प्रजापालक और कल्याण कारी राजा वल ने केवल ब्राह्मण के द्वारा ही इतना ऐश्वर्य पाया ब्राह्मणों ही के द्वारा उस की लक्ष्मी अक्षय और मनोकामना पूरी हुई और ब्राह्मणों के साथ दुष्टता करने पर ही पुनः उस के ऐश्वर्य का नाश हुआ यह पृथ्वी ब्राह्मण हीन राजा को नहीं चाहती और जिस राजा को ब्राह्मण सदैव शिक्षा देता है उस के आगे यह सदैव झुकी रहती है ब्राह्मण हीन राजा युद्ध में विना हाथीवान के हाथी के समान है ब्राह्मण का वल अनूपमति और क्षत्री का वल पराक्रम होता है जब यह दोनों मिल जाते हैं तो सब लोग प्रसन्न होते हैं और ब्राह्मण का वल पाकर क्षत्री शत्रु का नाश कर डालता है जैसे अग्नि वायू की सहायता से सूखे हुए वन को जलाकर भस्म कर डालती है मेधावी (शास्त्र के याद रखने वाले) राजा को अलब्ध वस्तु के लाभ और लब्ध वस्तु की वृद्धि के लिये ब्राह्मणों से सलाह लेनी उचित है इस कारण राजा को अपने पास सदैव ऐसा ब्राह्मण रखना

चाहिये जो पंडित, वेदों और शास्त्रों के जानने वाला हो, हे युधिष्ठर ब्राह्मणों के साथ तेरी वृत्ति परम उत्तम है इस से तेरा यश सब लोक में प्रकाश हो रहा है ॥

चौबीसवां अध्याय

—:o:—

द्रौपदी का युधिष्ठर से बहुत से दुःख कहकर यह पूछना कि आप इतने दुःख होने पर भी क्यों कौरवों पर क्रोध नहीं करते ॥

अब द्रौपदी युधिष्ठर से यूं कहने लगी, महाराज ! उस पापी दयाहीन दुरात्मा और दुष्ट को आप का किंचित मात्र भी दुःख नहीं क्योंकि आप को मृग चर्म ओढ़ कर वन जाते हुये देख कर भी उस को दुःख नहीं हुआ, उस का हृदय लोहे का जान पड़ता है क्योंकि आप को इस दशा में देख कर भी उस पापी ने दुःखी बातें कहीं और न देने के योग्य दुःख देकर भी अपने मित्रों के साथ आनन्द करता रहा, हम को वन की ओर जाते देख कर सब कौरवों के नेत्रों से आंसू गिर रहे थे परंतु दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुशासन की आंखें पसीजी तक नहीं, आप दुःख के योग्य नहीं, भला कहां स्वर्ण जटित हाथी दांत का आसन और कहां यह कुशा का बिछौना, कहां वह सभा जिस में अनेक राजा लोग आप को

घेरे बैठे रहते थे और कहां यह जंगल, मेरे मन का दुःख क्यों कर दूर हो सकता है, यह आप का वही शरीर है जिस पर चंदन लगा हुआ और सुन्दर रेशमी वस्त्र ओ. रहता था अब आप उसी शरीर पर भस्म लगाये हुये चीर धारण किये हुये हैं। आप के घर में नाना प्रकार के बनाये हुये भोग सोने के वर्तनों में ब्राह्मण, सन्यासी, गृहस्थी और बृह्मचारियों को वटते थे और बृाह्मणों की सब कामनायें पूरी होती थीं अब उन में से एक बात भी नहीं दीख रही, आप के इन भाइयों को कुंडल धारे हुये रसोइये नाना प्रकार के पदार्थ बना २ कर भोजन कराते थे अब वह वन में स्वयं जा कर फल फूल ला कर अपना पेट भरते हैं मुझे इन सब बातों से बड़ा दुःख हो रहा है न जाने आप को क्यों दुःख नहीं होता। यह आप के भाई इस दुःख को केवल आप की प्रतिज्ञा के बंधन से बंधे हुये चुप हो कर सह रहे हैं यह सब कौरवों को मार सकते हैं, यह अर्जुन जैसा पराक्रमी है वह आप को भी मालूम ही है इस की भुजा बल से ही सकल राजा लोग आप के आज्ञा कारी हुये थे और आप के यज्ञ में आकर बृाह्मणों के समीप उपस्थित हुये थे इन अर्जुन को इस अवस्था में देख कर कौरवों पर क्यों क्रोध नहीं आता, नकुल और सहदेव यह दोनों वन वास से अति दुःखी हो रहे हैं, मैं अति दुःख पा रही हूं इस सब पर आप क्षमारूप ही धारण किये हुये हैं क्रोध आप के निकट तक नहीं आता,

क्या आप को इस से पीड़ा नहीं होती, संसार में यह बात बिना तर्क के मानी हुई है कि क्षत्री बिना क्रोध के नहीं होता परन्तु आप क्षत्री होने पर इस के विपरीत दीख रहे हैं, जो क्षत्री समय पर अपना पराक्रम नहीं दिखलाता वह संसार में आदर नहीं पाता। आप को शत्रु पर किसी अवस्था में भी क्षमा करना उचित नहीं, शत्रुओं को क्रोध से मारना ही अच्छा है। हां समय पर यदि क्षत्री क्षमा नहीं करता तो लोग उस को नहीं चाहते और उसका परलोक भी नाश होजाता है ॥

पचीसवां अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का युधिष्ठिर को क्रोध और क्षमा के समय और कुसमय के विषय में बलि और प्रह्लाद का सम्वाद कहना ॥

द्रौपदी ने कहा महाराज! इस विषय पर मैं नीचे लिखा सम्वाद आप से कहती हूं इस को श्रवण कीजिये ॥

एक समय राजा बलि ने अपने दादा प्रह्लाद से जो दैत्यों का इन्द्र, ज्ञानी और धर्मों का रहस्य जानने वाला था पूछा महाराज क्षमा और क्रोध इन दोनों में से कौन कल्याण कारी है ॥

प्रलहाद ने कहा क्षमा और क्रोध अपने अपने समय पर दोनों अच्छे हैं परन्तु दोनों में से निरन्तर किसी का रहना अच्छा नहीं। सदैव क्षमा रहना इस कारण अच्छा नहीं कि इस से बहुत से दोष उत्पन्न हो जाते हैं क्षमावान से शत्रु नहीं डरते और न ही नौकर उस का सन्मान करते हैं उस की आज्ञा को न मान कर उस के धन लेने के इच्छुक होते हैं और यह भी इच्छा करते हैं कि हम इस की स्वारी, वस्त्र, भरण, शयन, आसन आदि पदार्थ ही ले लें, क्षमावान मनुष्य के अन्न आदि पदार्थों के रक्षक अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहते हैं ले लेते हैं और स्वामी की आज्ञा पर भी देने के योग्य वस्तु को किसी को नहीं देते और अपने स्वामी को किसी अवस्था में स्वामी नहीं जानते संसार में यह अवज्ञा मरने से भी अधिक निन्दित गिनी जाती है। दास, पुत्र, नौकर और उदासीन मनुष्य भी उस से नहीं डरते और उस को कटु वचन कह लेते हैं और उस का तिरस्कार करके उस की स्त्रियों तक लेने के भी इच्छुक हो जाते हैं और उस की स्त्रियां भी अपनी इच्छा के अनुसार वर्ताव करती हैं जब स्त्रियों को अपनी इच्छा के अनुकूल काम करने दिया जावे और थोड़ा सा दण्ड न दिया जावे तब उन में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं और फिर वह अपकार करने लगती हैं इन के अतिरिक्त और भी बहुत से दोष हैं जो क्षमा के कारण होते हैं॥

जो मनुष्य रजो गुणी होकर क्रोध के कारण योग्य

और अयोग्य दण्ड देता है उस को मित्रों से विरोध और सुजनों से द्वेष हो जाता है वह दूसरों का अपमान करने से धनहानि, धिक्कार, अनादर, सन्ताप, द्वेष और मोह से दुःखी होकर अपने बहुत से शत्रु बना लेता है, क्रोध में दण्ड देने वाले के धन, प्राण और स्वजन शीघ्र ही हो भ्रष्ट जाते हैं, जो मनुष्य उपकारी और अनउपकारी दोनों के साथ क्रोध से वर्ताव करता है उस से सब लोग इस प्रकार डरते हैं जैसे घर में रहने वाले सर्प से उस घर के मनुष्य भयभीत रहते हैं जिस मनुष्य से सब लोग अप्रसन्न रहते हैं उस को ऐश्वर्य मिलना कठिन है क्योंकि वह लोग उस के छिद्र को सदैव देख कर उस की वृद्धि में बाधा डाला करते हैं इस कारण मनुष्य को उचित है कि न ही अत्यंत क्रोध करे और न ही अत्यंत मृदु स्वभाव रखे इस संसार में सुख वही पाता है जो समय के अनुसार क्रोध और क्षमा करता है अब मैं तुम को यह बतलाता हूं कि किस समय पर मनुष्य को क्रोध और किस समय पर क्षमा करनी चाहिये तुम को सदैव इस का ध्यान में रख कर इस के विपरीत नहीं करना चाहिये ॥

जिस मनुष्य ने पहिले कोई उपकार किया हो और फिर उस से कोई अपराध हो जावे तो उस का वह अपराध क्षमा कर देना चाहिये अज्ञानियों से भी जो अपराध अज्ञान में हो उस को क्षमा कर देना उचित है परन्तु यह देख लेना अवश्य है कि वह अज्ञानी जान बूझ कर तो अज्ञानी नहीं

बन रहा यदि ऐसा हो तो ऐसे जन को थोड़े से अपराध करने पर भी अधिक दण्ड देना चाहिये, हां एक अपराध तो सब जीवों को क्षमा योग्य है परन्तु दूसरी वेर थोड़ा सा अपराध भी दण्ड योग्य है ॥

मनुष्य को दारूण और अदारूण दोनों प्रकार के पुरुषों को साम से मारना उचित है क्योंकि साम बड़ा पदार्थ है और साम से कुछ असाद्ध नहीं। देश और काल का विचार भी इस में आवश्यक है। विना देश और काल अपने बल और अबल विचारे कोई काम करना भी उचित नहीं, इन सब के अतिरिक्त उस अपराधी का अपराध भी क्षमा योग्य है जिस को दंड देने में राज उपद्रव का भय हो ॥

महाराज! इन उक्त अवस्थाओं में से मुझे इन कौरवों में कोई एक अवस्था भी नहीं दीखती जिस से तुम उन पर क्रोध नहीं करते, उन्हों ने आप का अपराध किया है मेरी समझ में आप को भी उन पर क्रोध करना उचित है ॥

छब्बीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर को द्रौपदी का क्रोध छोड़ने और क्षमा करने का उपदेश देना ॥

द्रौपदी की इन बातों को सुन कर युधिष्ठर ने कहा, हे

महा माझे! मनुष्यों का नाश और उन की वृद्धि क्रोध ही से होती है और यह क्रोध ही ऐश्वर्य और अनैश्वर्य दोनों का मूल है, क्रोध रोकने वाले मनुष्य को ऐश्वर्य मिलता है और नित्य क्रोध करने वाले का नाश हो जाता है। इस संसार में क्रोध ही प्रजा का नाश करने वाला है सो मुझ सा मनुष्य इस संसार के नाश करने वाले क्रोध का क्यों कर धारण करे, क्रोध से मनुष्य पाप करता है बड़ों को मारने लगता है और खोटी २ बातें कहकर अच्छे मनुष्यों का अपमान करता है, क्रोधी जन यह नहीं समझता कि यह बात कहनी चाहिये या नहीं, क्रोध में जो कुछ भी उस के मुख में आता है कह देता है और बिना सोचे सब कुछ कर डालता है वह क्रोध में अवध्यों को मार डालता है और वध्यों का पूजन करने लग जाता है और क्रोध ही से अपने आप को यम लोक में पहुंचा देता है। क्रोध के इन दोषों को जानने वाले जन क्रोध को अपने समीप तक नहीं आने देते॥

जो मनुष्य क्रोधी पर क्रोध नहीं करता वह अपने आप को और दूसरों को बड़े भय से बचाता है और दोनों के दोष को दूर कर देता है मूढ़ और असमर्थ लोग बलवानों पर क्रोध करके अपने प्राण गंवा लेते हैं इस प्रकार प्राण गंवाने वाले का परलोक नष्ट हो जाता है इस कारण असमर्थ को क्रोध रोकना ही अच्छा है इसी प्रकार से जो मनुष्य

विद्वान और समर्थ होकर क्लेश पाने पर भी क्लेश देने वाले पर क्रोध नहीं करके उस को नहीं मारता वह परलोक में बड़ा आनन्द पाता है । इस लिये बलवान, निर्बल, और विशेष जानने वाले सब को ही आपत्ति काल में क्षमा ही करना चाहिये ॥

साधू लोग भी क्रोध को जीतना अच्छा कहते हैं और सत्य पुरुषों की तो सदा ही यही बुद्धि रही है कि जो साधू क्षमा वान होता है उस की जय रहती है जैसे झूठ कहने से सत्य बोलना और दुःख देने से दया करना श्रेष्ठ गिना जाता है उसी प्रकार से क्रोध से क्षमा करना श्रेष्ठ है ॥

हे द्रौपदी मुझसा मनुष्य जिस को दीर्घदर्शी पंडित लोग तेजस्वी कहते हैं ऐसे दोषयुक्त क्रोध को दुर्योधन के मारने पर भी क्यों करे । ज्ञान से क्रोध को रोकने वाले मनुष्य के समीप कभी भी क्रोध नहीं आता । तेजस्वी मनुष्य के यह गुण कहे गये हैं १ सब कामों में चतुर्यता, २ अपने शत्रु के बिगाड़ करने की चिंता करना, ३ शत्रु के अविभव की शक्ति और ४ जो काम करना शीघ्र करना क्रोधी मनुष्य इन गुणों को सहज में नहीं पासकता, क्रोध को छोड़ने वाला मनुष्य समय अनुसार तेजस्वी होजाता है परंतु मनुष्य लोक में यह क्रोध केवल नाश कारी है । इस लिये अच्छा काम करने वाले मनुष्य के क्रोध का त्याग ही अच्छा है क्योंकि क्रोधी मनुष्य से तो वह मनुष्य

भी अच्छा गिना गया है जिसने अपना धर्म त्याग दिया हो। क्रोध लड़ाई का घर है यदि इस संसार में मुझ से क्षमा रखने वाले मनुष्य क्षमा को त्याग कर क्रोध करें तो मनुष्य मिल कर कभी न रह सकें, क्रोध से अधर्म के फैलाने के बिना और कोई लाभ नहीं, जब सब क्रोध ही करने लग जावेंगे तब कोई दूसरे की बात को क्यों सुनेगा यदि कोई किसी को कुछ कहेगा, मारेगा या ताड़ना करेगा तो वह भी आगे से उस के साथ उसी प्रकार वर्तेगा ऐसा होने से पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, पति स्त्री को और स्त्री पति को आपस में क्रोध के करने से मार देंगे॥

हे द्रौपदी मनुष्य के जन्म का कारण केवल प्रीति है स्त्री पुरुष दोनों की आपस में प्रीति करने से सन्तान की उत्पत्ति होती है यदि सब कोई क्रोध ही करने लग जायें तो संसार शुन्य हो जाये इस से क्रोध नाश का मूल कारण है संसार में प्राणियों के जन्म दाता और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले केवल वही मनुष्य हैं जो पृथ्वी सम क्षमावान् हैं इस लिये मनुष्य को सकल आपत्तियों में क्षमा ही करनी चाहिये॥

जो मनुष्य बलवान्, प्रभावान्, विद्वान् और उत्तम हैं यदि उन को कोई वाक्य रूपी बाण अथवा हस्त आदि से मारे और वह क्रोध को जीत कर क्रोध न करें तो उन के लोक संद्व बने रहते हैं और जो अल्प विज्ञानी और क्रोधी

होता है. उस के दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं हे द्रौपदी अब हम तुम से वह गीता कहते हैं जो कश्यप जी ने क्षमा के विषय में कही है ॥

क्षमा धर्म यज्ञ वेद शास्त्र रूपी है जो इस को जानता है वह अवश्य क्षमा करता है और ब्रह्म, सत्य, भूत, भावी, तप और शौच भी क्षमा ही है क्षमा ही जगत का आधार है क्षमावान् पुरुषों को वह लोक मिलते हैं जो यज्ञ करने वालों को भी प्राप्त नहीं होते तेजास्वियों को तेज और तपस्वियों को ब्रह्म भी क्षमा ही जानना चाहिये, क्षमांवान् को तपस्वि और वेद जानने वालों से उत्तम लोक मिलते हैं, त्रेताग्नि, साध्यकर्म करने वाले और कर्म कांडी बापि कूप आदि बनवाने वाले मनुष्यों को और ही लोक मिलते हैं परन्तु क्षमावान् को वह लोक मिलते हैं जो ब्रह्म लोक में भी परम पुनीत माने जाते हैं ॥

हे द्रौपदी मैं उस क्षमा को जिस से ब्रह्मज्ञान, सत्यभाषण और यज्ञ का फल प्राप्त होता है और सुन्दर लोक मिलते हैं क्यूं छोड़ दूं, ज्ञानवान् को सदैव क्षमा करना ही उचित है क्योंकि मनुष्य ब्रह्मज्ञानी उसी समय होता है जब वह सब बातों को क्षमा करता है उसी को ही इस लोक में सन्मान और परलोक में सुंदर गति मिलती है । क्षमा से क्रोध को रोकने वाले मनुष्यों को सत्य लोक में भोगने के पदार्थ मिलते हैं ॥

हे द्रौपदी तू अब अपने मन में सन्तोष कर और क्रोध को त्याग दे, दुर्योधन क्षमा के न होने से राज्य करने के योग्य नहीं प्रजा उस से अप्रसन्न रहती है और यह क्षमा ही है जिस से सब प्रजा मुझ को राज्य के योग्य समझ कर और प्रसन्न रह कर मुझ से प्रीति करती है इस कारण मैं क्षमाका त्याग नहीं कर सकता ॥

सताईसवां अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का युधिष्ठर से ईश्वर की सामर्थ और मनुष्य की असमर्थ के विषय पर कहना ॥

इस उपदेश को सुन कर द्रौपदी ने कहा, महाराज ! मैं उस धाता और विधाता को नमस्कार करती हुं जिस ने आप के हृदय में यह मोह उत्पन्न कर दिया है कि आप की बुद्धि आप के पिता पितामह के करने योग्य चलन से भी विपरीत हो गई है, कर्म नित्य हैं उन से मोक्ष की इच्छा व्यर्थ है विधाता पूर्वजन्म के कर्मों का फल ही इस जन्म में देता है पूर्व जन्म के कर्मों स बंधा हुआ मनुष्य धर्म, दया, क्षमा, सीधापन और लोकापवाद से भय करने से कभी भी लक्ष्मी नहीं पाता है, तुम अपने ही में देखलो तुम को कैसा दुख मिल रहा है जिस के तुम और तुम्हारे भाई योगय नहीं हो । तुम ने राज्य के समय और फिर उसके चले जाने पर भी धर्म से प्यारा किसी अन्य पदार्थ को नहीं समझा और उस को प्राणों से भी अधिक जानते रहे हो आज तक आपने राज्य और प्राण इन

दोनों को धर्म के ही निमित्त कर रखा है और मैं यह भी जानती हूं कि आप धर्म के लिए इन चारों भाईयों और मुझ को भी त्यागने के लिए हर समय त्यार हो । मैंने ऋषियों द्वारा सुना है कि धर्म की रक्षा करने वाले राजा का रक्षा किया हुआ धर्म ही रक्षा करता है परंतु आप की दशा में इस के विपरीत देख रही हूं । धर्म के पीछे अनन्य हो कर आप की बुद्धि इस प्रकार चलती है जिस प्रकार मनुष्य के पीछे छाया, अच्छे मनुष्यों का अपमान तो एक ओर रहा आपने अपने बराबर और आप से हीन मनुष्यों का भी कभी अपमान नहीं किया और न हीं सम्पूरण पृथ्वी के आप के वश में आने से मैंने आप में कोई घमंड देखा आप ब्राह्मण, देवता, पितरों का स्वाहा और स्वधा के साथ सदैव पूजन करते रहे, ब्राह्मण, यती, मोक्ष श्रयी और ग्रहस्थी की मनों कामना पूरी करते रहे आप शांति के लिए वैश्व देविक श्राद्ध करते रहे और ब्राह्मण अतिथियों को देकर जो बचता आप खाते रहे, आप के घर में इष्ठ, पशुबंध, काम्य, नैमित्तिक, पाकयज्ञ और यज्ञ कर्म नित्य होते रहे, आप इस समय इस निर्जन वन में भी यह सब कर्म कर रहे हैं, आप ने अश्वमेध, राजसूय, पुंडरीक और गोसव आदि यज्ञ भी बड़ी २ दक्षणा देकर किए। परंतु आप ने जो पांसों से जूए में अपना सब राज्य, अपने आप को, अपने इन भाईयों को जो हार दिया यह काम बुद्धि के विपरीत किया है, ऐसी बुद्धि आपके हृदय में क्यों कर आई, आप का यह दुःख देख कर मुझे बड़ा कष्ट होता है

हां मुझे एक पुराणी कथा याद आई है जिस से यह बात सिद्ध होती है कि भोगने के सब पदार्थ ईश्वर के आधीन हैं और जीवों के पूर्व कर्मों के अनुसार वह ईश्वर ही इन जीवों को सुख दुख देता है, ईश्वर ही आकाशवत सब जीवों में व्यापक रह कर जीव के शुभ और अशुभ कर्मों का साक्षी रहता है, ईश्वर ही की प्रेरणा से सब जीव अपने अंगों को इस प्रकार से हिलाते डुलाते हैं जिस प्रकार काठ की पुतली सूत्रधार के नचाने से जैसे वह चाहे नाचती है ॥

यह जीव ईश्वर के वश में इस प्रकार रहता है जैसे डोर से बंधा हुआ पक्षी मनुष्य के वश में रहता है। मनुष्य कदापि स्वाधीन नहीं है यह काल रूपी ईश्वर के वश में है उसी का वह स्वरूप है और अंत को उसी में लय होजाता है यह जीव अपने सुख और दुख को न जान कर असमरथ होने से अपने कर्म के अनुसार ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग अथवा नरक में इस प्रकार से पड़ता है जैसे नदी के किनारे का वृक्ष नदी में गिर कर जिधर जल जाता है उधर ही जल के साथ बहता चला जाता है और सकल जीव ईश्वर के वश में इस प्रकार से रहते हैं जिस प्रकार तृण वायू के वश में रहते हैं ॥

ईश्वर सर्वव्यापी है किसी को दिखाई नहीं देता वही प्राणियों को पूर्व कर्मानुसार धर्म और अधर्म में नियुक्त करता है। यह क्षेत्र संज्ञिक देह भी ईश्वर का हेतु मात्र है जिस से

यह समर्थ ईश्वर शुभ और अशुभ कर्म कराता है, वह अपनी माया द्वारा एक प्राणी को दूसरे प्राणी से मरवा डालता है ॥

जिस संसार को तत्व दर्शी ज्ञानी लोग मिथ्या और स्वप्नवत जानते हैं उसी को मूढ अज्ञानी माया के वश में होकर सत्य समझते है। वह जिन वातों को सच्ची दिखा दिखा कर रचता और मिटाता है मनुष्य उन्ही बातों को और का और समझ लेते हैं । वही ईश्वर अपनी माया के वश में कर के एक को दूसरे प्राणी के हाथ से कटवा डालाता है जैसे काट से काट लोहे से लोहा और पत्थर से पत्थर कटता दीखता है वह ईश्वर माता पिता के समान सुख नहीं देता किंतु शत्रु के समान दुःख देता है जैसे कि देखने में आता है कि वह शीलवान्, लज्जावान्, और अच्छे लोगों को जीविका से दुःखी और चिंतित रखता है और नीचों को हर प्रकार के सुख देता है ॥

मैं ईश्वर की इस समय इस लिये निन्दा करती हुं कि उस ने आप से पुरुषों को तो यह आपत्ति और दुर्योधन से क्रूर, दुष्ट, लोभी और अधर्मी को ऐसी ऋद्धि दे रखी है। मेरी समझ में नहीं आता कि दुर्योधन से लोभी और शास्त्र के विरुद्ध चलने वाले को लक्ष्मी देने से क्या लाभ है अर्थात दुर्योधन कौन से ऐसे यज्ञ आदि करेगा जिस से ईश्वर की तृप्ती होगी ॥

अठाईसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठिर का द्रौपदी को ईश्वर और धर्म में शंका न करने का उपदेश देकर समझाना ॥

द्रौपदी की उक्त बातों को सुन कर युधिष्ठिर ने कहा हे द्रौपदी हम ने तेरे यह शोभायमान वचन सुनें परन्तु जो कुछ तू ने कहा है वह सब कुछ वेद के विरुद्ध है, मैं जो कुछ किया करता हुं उस का फल नहीं चाहता। मनुष्य पर तीन ऋण होते हैं, एक देव, दूसरे पितृ और तीसरे ऋषि इन का देना मनुष्य को आवश्यक है इस कारण मैं उन ऋणों को देता हुं मैं यज्ञ इस लिए करता हुं कि यह क्षत्रि का धर्म है गृहस्थी का धर्म करना भी मुझे उचित है इस लिये मैं यथा शक्ति उस को भी करता हुं चाहे मुझे उस का कुछ फल मिले चाहे न मिले। मैं जो धर्म कर रहा हुं उस के फल पाने की इच्छा से नहीं कर रहा वरन शास्त्रों की आज्ञा पर चलने के लिये कर रहा हुं धर्म कोई वाणिज्य नहीं इस लिये जो पुरुष धर्म का फल पाने की इच्छा से उसे करते हैं उन को इस का मुख्य फल नहीं मिलता ॥

हे द्रौपदी जो मनुष्य अपनी पाप बुद्धि से कर्म करके नास्तिकता से धर्म में शंका करता है उस को भी धर्म का

फल नहीं मिलता सो तू भी बहुत बात बढ़ा कर धर्म में शंका न कर। धर्म में शंका करने वाले मनुष्य का जन्म पशु पक्षी आदि योनी में होता है और वह अजर और अमर लोकों को इस प्रकार नहीं पा सकता जिस प्रकार शूद्र वेद को नहीं पा सकता, जो मनुष्य वेद पढ़ कर अपने धर्म पर चलता है वह बृद्धि में गिना जाता है। धर्म में शंका करने वाला पापी मंद बुद्धि और शास्त्र विरोधी मनुष्य चोर और शूद्र के सम है देखो तुम ने मार्कंडेय जी महाराज को जो तपस्वी हैं अपनी आंखों से देखा है उन के चिरंजीव होने का कारण केवल धर्म ही है और धर्म ही से व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, नारद लाम और शुक आदि ऋषि श्रेष्ठ गिने जाते हैं। यह ऋषि दिव्य योगों से युक्त शाप देने और अनुग्रह करने की सामर्थ रखने वाले देवताओं से भी बढ़े हुए हैं यह सब सदैव धर्म का ही उपदेश करते हैं तूने इन सब के दर्शन किये हैं इस कारण तू अपने मूढ़ मन से ईश्वर और धर्म की निन्दा मत कर और न ही धर्म में किसी प्रकार की शंका कर॥

हे द्रौपदी, अज्ञानी मनुष्य तत्व का निश्चय करने वाले पुरूषों को अपने निकट उन्मत्त जानता है और धर्म में शंका करने वाला किसी के कहे हुये प्रमाण नहीं मानता। अज्ञान मनुष्य धर्म का अपमान करके मन के विचार को ही ठीक जानता है और यह समझता है कि आत्मा ही लोक का साक्षी है और वह इन्द्रियों की प्रीति से बंधा हुआ है वह अज्ञानी ऐसा समझ कर मोह के वश में रहता हुआ धर्म के

मार्ग से दूर रहता है ॥

हे द्रौपदी धर्म में शंका करने वाले मनुष्य का पाप किसी प्रायश्चित से दूर नहीं हो सकता और उस पापी को अर्थ की चिंता करने पर भी धर्म के करने से मिलने वाले लोक नहीं मिलते, जो मनुष्य काम और लोभ के वश में होकर प्रमाण को नहीं मानता और वेद और शास्त्र की निंदा करता है वह नरक में पड़ता है और जो शंका को त्याग कर धर्म ही को श्रेष्ठ समझ कर करता है वह ब्रह्म भाव को पाता है, जो मनुष्य शास्त्र की मर्यादा को छोड़ कर काम करता है और आर्ष प्रमाण को न मान कर धर्म पर नहीं चलता उसका कल्याण कभी भी नहीं होता ॥

हे द्रौपदी निश्चय कर कि जो लोग आर्ष प्रमाण को न मान कर बुरे कर्म करते हैं उन के दोनों लोक बिगड़ जाते हैं इस लिए तू इस सनातन धर्म में जिस को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ऋषि लोग कहते हैं और जिस को हम सब और बड़े श्रेष्ठ मनुष्य करते हैं शंका मत कर। केवल धर्म ही स्वर्ग को ले जाने वाली नौका है और इस नौका में बैठ कर संसार रूपी समुद्र के पार जाने वाले व्योपारी जा सकते हैं, यदि यह धर्म निष्फल होवे तो यह सकल जगत अंधकार रूपी भ्रम में डूब जावे, किसी को निर्वान पद न मिले और न कोई विद्या पढ़े। सब पशु के बराबर हो जावें और किसी का कोई मनोरथ पूरा न हो और यदि तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वेद पाठ, दान और दया करने से किसी को कोई फल न मिले तो

कोई मनुष्य धर्म न करे और उन की जो संतान हो वह भी धर्म को त्याग दे इस से धर्म का लोप ही हो जावे ॥

हे द्रोपदी ! भला देवता, ऋषि, गंधर्व, इत्यादि किस लिए धर्म करते हैं उन का केवल यही विचार है कि ईश्वर सब के कल्याण रूपी कर्मों के करने का फल देने वाला है, धर्म कदापि निष्फल नहीं यह अवश्य फल देता है। अधर्म अवश्य निष्फल है और उस में कभी फल नहीं, विद्या और तप का फल प्रत्यक्ष है। तू अपने और अपने भाई धृष्टद्युम्न के जन्म ही को देख कि तप के प्रभाव से तुम दोनों का जिस प्रकार से जन्म हुआ, तेरी जैसी बुद्धि है तुझ को तो इतना ही दिखाना बहुत है जो मूर्ख जो और बुद्धिहीन हैं उनको तो बहुत सा कहने पर भी उन की समझ में नहीं आता, ऐसे मनुष्यों का धर्म का कुछ फल नहीं मिलता और न ही परलोक में उन का कल्याण होता है ॥

हे द्रोपदी ! प्रजा मोह के वश में निर्वाण पद से रहित होकर जन्म लेती और मरती रहती है सो इन देवताओं से रचा किये हुए विषयों को जिन की माया बड़ी गूढ़ है बिन उन ब्राह्मणों के जो इच्छा रहित हूा कर के भोजन करते और तप से पापों को भस्म करके ध्यान में मग्न रहते हैं और कोई नहीं जान सकता, इस से फल न मिलने के कारण धर्म और देवता में शंका करना उचित नहीं, मनुष्य को चाहिये कि बड़े यत्न से यज्ञ करे और दान देवे ॥

हे द्रौपदी तू ईश्वर की निंदा मत कर, उस को नमस्कार कर ताकि तेरी बुद्धि ऐसी न रहे ॥

उनतीसवां अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का युधिष्ठिर से एक ब्राह्मण से सुनी हुई नीति कह कर प्रारब्ध का भरोसा छोड़ने और यत्न करने के लिये प्रार्थना करना ॥

द्रौपदी ने कहा महाराज मैं धर्म का अपमान और ईश्वर को जो सकल प्रजा का स्वामी है निन्दा नहीं करती, मैंने जो बातें आप से कहीं हैं वह सब दुःखी होकर कही हैं और अब फिर मैं उन्हीं बातों को कहती हूं आप सावधान होकर श्रवन कीजिये ॥

इस लोक में ज्ञानी को अवश्य कर्म करना चाहिए क्योंकि पर्वत आदि स्थावर जीवों को छोड़ कर और कोई भी ऐसा नहीं जो बिना कर्म के जीता हो, देखो बछड़ा उत्पन्न होते ही गाय के स्तन चूमने लग जाता है उस की यह और दूसरी अजीवका पूर्व कर्म के अनुसार होती है। इसी प्रकार जितने चलने वाले जीव हैं उन का हाल है परन्तु उन सब जीवों में केवल मनुष्य विशेष रूप करके इस लोक और परलोक में अजीविका मिलने की इच्छा करता है। संसार में सब जीव

पूर्व कर्मों के संस्कार के अनुसार जन्म लेते हैं और प्रत्यक्ष में अपने किए हुये कर्मों का फल भोगते हैं और जिस प्रकार बगला जल के समीप रह कर पूर्वजन्म के संस्कार के अनुसार जल जीवों को मार कर अपना पेट भरता है उसी प्रकार से क्या धाता क्या विधाता सबों को पूर्व कर्मों का फल भोगना पड़ता है। सो विना कर्म किए किसी जीव को आजीविका नहीं मिल सकती इस लिए मनुष्य को उचित है कि सदैव कर्म करे और उस को कभी न छोड़े। महाराज आप को कर्म करना चाहिए इस से चित्त को नहीं हटाना चाहिए, कर्म को यथावत जानने वाला सहस्त्रों में कोई ही होता है ॥

हे महाराज! मनुष्य को अपने वित्त की वृद्धि और रक्षा करने का सदैव यत्न करना चाहिये ऐसा न करने से खाते २ हिमालय के समान वित्त भी क्षय हो जाता है ॥

यदि मनुष्य इस पृथ्वी पर काम करना छोड़ दे तो सब प्रजा नष्ट हो जाये और यदि कर्म करने का फल न हो वृद्धि कदापि न हो। हां यह हो सकता है कि किसी समय कर्म निष्फल जायें परन्तु फिर भी सब मनुष्य कर्म करते ही दीखते हैं ॥

जो मनुष्य प्रारब्ध पर निर्भर रह कर कर्म नहीं करते और जो हठवादी होते हैं वह दोनों शठ हैं। श्रेष्ठ मनुष्य वही है जो सदैव अपनी बुद्धि कर्म करने में रखता है। प्रारब्ध पर निर्भर रहने वाले मनुष्य का इस प्रकार से नाश हो जाता है जैसे कच्चा घड़ा जल भरने से टूट जाता है और इसी

तरह कर्म करने की सामर्थ्य रखने वाला मनुष्य जो हठ और दुर्बुद्धि से कर्म नहीं करता अनाथ और दुर्बल के समान रह कर बहुत काल तक नहीं जीता ॥

इस लोक में यदि दैवात् किसी मनुष्य को अकस्मात् बहुत सा द्रव्य मिल जाता है लोग कहते हैं कि यह विन यत्न किये मिला है परन्तु दैव आधीन मिलने के कारण उस समय उस धन को दैव दत्त समझना चाहिये। पौरूष धन वही है जो अपने यत्न से किये हुए कर्म के द्वारा उपार्जन किया जावे। जो मनुष्य स्वभाव की प्रवृत्ति से विना कारण धन पा लेता है वह स्वभाव उत्पन्न फल कहा जाना चाहिये, इस प्रकार मनुष्य को जो कुच्छ धन हठ से, प्रारब्ध से, स्वभाव से अथवा कर्म से मिले उस सब को पूर्व कर्मों का फल ही समझना चाहिये। ईश्वर भी पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों के फल को विभाग पूर्वक सकल मनुष्यों को अनेक कारण रच कर देता है सो यह बात निश्चय है कि मनुष्य शुभ और अशुभ जो कुच्छ कर्म करता है वह सब ईश्वर का रचा हुआ पूर्व जन्म के किये हुए कर्मों के फल का उदय है। इस शरीर का किसी काम में लग जाना केवल ईश्वर का कारण जैसी प्रेरणा वह इस शरीर को करता है वैसा कर्म यह शरीर करने लग जाता है मनुष्यों से सब कर्म कराने वाला वही है। उन जीवों से भी वह कर्म कराता है जो वश में नहीं हैं॥

कर्मों की संख्या नहीं हो सकती परंतु नगर और स्थानों के बनाने में पौरूष ही कारण गिना जाता है, देखो तिलों से

तेल निकालना, गौ का दूध दूहना और लकड़ी से आग बनाना कुच्छ बड़ी बात नहीं है परंतू बुद्धिमान को अपनी बुद्धि से उन के निकालने और बनाने का उपाय करना चाहिये, उपाय जानने पर मनुष्य उन कामों को कर के उन से अपनी अजीविका निकाल लेता है, किसी किये हुए काम का यह जानना कि यह किसी चतुर या मूढ़ ने किया है या इस का प्रारंभ अच्छे प्रकार से हुआ है या नहीं विशेष फल भेद से ही जाना जाता है, यदि द्रव्य का उपार्जन पौरूष से न हो तो किस लिये कोई किसी का गुरू और चेला हो और यज्ञ आदि करने और बावड़ी आदि के बनवाने का फल काहे को हो ॥

संसार में कर्म की सिद्धी करने वाले की प्रशंसा और असिद्धि करने वाले की निन्दा की जाती है यह कर्म करना ही बंद हो जाय तो कौन किस को कैसा कहेगा, सो यह कर्म तीन प्रकार का कहा जाता है कोई तो इस को हठ से, कोई प्रारब्ध से और कोई यत्न से सिद्ध होना मानते है, और बहुत से यह मानते हैं कि प्रारब्ध और हठ दोनों अदृश्य पदार्थ हैं हां इन से अर्थों की उत्पत्ति तो दीखती है परंतु बहुत से ऐसे हैं जो बिना यत्न सिद्ध नहीं होते ॥

यह एक और हंसी की बात है कि बहुत से तत्व के जानने वाले चतुर मनुष्यों की यह सम्मति है कि चौथा अर्थात पूर्व कर्म है ही नहीं यदि ईश्वर जीवों को अच्छे और बुरे कर्मों के फल देने वाला न हो तो कोई भी मनुष्य संसार

में दुःखी न हो क्योंकि यदि पूर्व कर्म का संस्कार न हो तो मनुष्य जिस २ कर्म के करने का उपाय करे वही २ काम पूरा हो जाये, जो मनुष्य अपने काम को पूरा करने के लिये कहे हुए तीनों प्रकार के यत्नों को नहीं देखते हैं और जो बिगड़े हुए काम के बिगड़ने के कारण को नहीं विचारते हैं वह सब इस शरीर की सदृश जड़ हैं ॥

मनु जी का वाक्य है कि मनुष्य को कर्म अवश्य करना चाहिये यत्न न करने वाले मनुष्य को सदैव दुःख रहता है सो हे महाराज इस लोक में कर्म करने से ही बड़े २ काम पूरे होते हैं आलसी उन के फल को कभी नहीं पा सकता। यदि कर्म करने से कार्य्य सिद्ध न हो तो मनुष्य को उस के पिछले पाप का प्रायश्चित कर देना उचित है जो पुण्य के फल को रोक रहा है यह कर्म ऐसा पदार्थ है कि इस के करने से मनुष्य देवता, पितर और ऋषियों के ऋण से भी छूट जाता है। आलसी और सोने वाले मनुष्य दरिद्री हो जाते हैं और चतुर और यत्न करने वाले फल पा कर सदैव ऐश्वर्य भोगते हैं, संशय करने वालों का काम कभी पूरा नहीं हुआ करता और जो संशय नहीं करते उन के सब काम पूरे हो जाते हैं सो इस लोक में संशय रहित धैर्य्यवान और कर्म में प्रीति रखने वाला मनुष्य कोई विरला ही होता है ॥

महाराज इस समय हम जो यह अनर्थ भोग रहे हैं यदि आप स्वयं कर्म करें और इन भाइयों को कर्म करने की आज्ञा

दें तो इस अनर्थ का मूल निस्संदेह नष्ट हो जावे और यदि आप सबके यत्न करने पर काम सिद्ध न होगा तो आप का और आप के भाईयों का अभिमान तो जाता रहेगा क्योंकि यह क्योंकर होसकता है कि कर्म करने के पहिले उस कर्म का फल जाना जावे। यत्न करने पर हमारे और आपके कर्मों की सफलता निश्चय हो जावेगी ॥

महाराज किसान की ओर देखिये वह धरती को हल से जोत कर बीज बोदेता है और उस को वर्षा के आधीन छोड़ देता है यदि इस पर वर्षा न हो तो किसान को इस में कोई दोष नहीं दिया जासकता क्योंकि वह कह सकता है कि जो कुच्छ मेरे करने योग्य था वह मैं कर चुका हुं। इसी तरह यदि यत्न करने पर हमारा काम पूरा न होगा तो फिर हमारी निन्दा कोई न करेगा, आपको यह मान कर कि सब काम ईश्वर के आधीन हैं अपना चित्त यत्न की ओर से नहीं हटाना चाहिये क्योंकि हर काम में प्रारब्ध और यत्न दोनो ही हुआ करते हैं, चाहे काम सिद्ध हो या न हो उपाय करना आवश्यक है ॥

मनुष्य में गुण के न होने से यत्न का फल कभी थोड़ा और कभी नहीं भी होता परंतु यत्न न करने से तो फल का नाम भी नहीं दीखता, धैर्यवान मनुष्य अपनी बुद्धि से बल के अनुसार देश और काल का विचार करके मंगल पूर्वक अपने कल्याण के लिये उपाय करते हैं, देश और काल का विचार अप्रमत्त मनुष्य ही कर सकते हैं और उस स्थान पर उन का उपदेश रूपी मुख्य कर्म कर्त्ता भाक्रम होता है जो बड़े २

कामों के करने में श्रेष्ठ गिना जाता है, बुद्धिमान को उचित है कि जिस कल्याण के काम के होने के लिये बहुत से गुण चाहिये और वह सब गुण उस में न हों तो उस समय पराक्रम से उस की सिद्धि की इच्छा न करे परंतु सुलह कर के अपना काम निकाल ले ॥

शत्रु का व्यसन बनवासादि यदि सुभद्र और पर्वतों में भी होय तो भी उस का छिद्र ढूंढ ले क्योंकि शत्रु को ढूंढने वाला मनुष्य मंत्री आदि से अनृणी होजाता है। इस से मनुष्य को अपनी आत्मा का अपमान करना उचित नहीं ऐसा करने वाले मनुष्य को ऐश्वर्य शोभा नहीं देता। हे महाराज उक्त रीति से फलसिद्धि स्वभाविक हैं उस के लिये काल और अवस्था के अनुसार यत्न का ठीक २ विचार करना ही फल सिद्धि की जड़ है। यह सिद्धांत मैंने अपने घर में एक पंडित से सुना था ॥

तीसवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का अनेक कारण बतला कर युधिष्ठर से यह कहना कि पराक्रम से शत्रुओं को मार कर अपना राज्य ले लो ॥

द्रौपदी की इस बात को सुन कर भीमसेन क्रोध से भर कर युधिष्ठर के पास जाकर कहने लगा। आप को राज के धर्म मार्ग पर जो सत्य पुरुषों के योग्य है चलना उचित है हमारा धर्म, अर्थ और काम से रहित होकर इस बन में बसना किस काम है, हमारे राज्य को दुर्योधन ने धर्म से नहीं किंतु छल से लिया है, हे अर्जुन तुम किस विचार में हो राज्य मिलने के उपायों को छोड़ कर क्यों दुःख उठा रहे हो

हे युधिष्ठर आपके प्रमाद से हमारा राज्य जिस को इंद्र भी नहीं ले सकता था हमारे देखते२ हरलिया गया, आपके कारण हमारा ऐश्वर्य इस प्रकार से हर लिया गया है जैसे दुर्बल मनुष्य से कोई जन गाय आदि पदार्थ हर कर ले जाता है। यह आपके ही कारण है कि दुर्योधन जैसा पापी हम को दुःख दे रहा है और हम सब यह मृगचर्म पहन कर इस प्रकार से दुःख उठा रहे हैं यह वृत्ति बलवानों की नहीं किंतु दुर्बल जीवों की है इस को मैं और अर्जुन अच्छा नहीं जानते और श्री कृष्ण जी अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और संजय भी इस को बुरा कहते हैं दिन रात व्रत कर२ के आप निर्बल होकर भी धर्म २ ही कहा करते हैं ऐसा करने से संसार में मनुष्य क्लीव गिना जाता है। इस तुम्हारे वैराग को वही अच्छा जानते हैं जो असमर्थ हैं। आप तो सब प्रकार की सामर्थ रखते हैं और हम सब के बल को भले प्रकार जानते हैं फिर न जाने क्यों इतने दयावान होकर अन्याय को नहीं पहचानते, हाय! यह कितने शोक की बात है कि धृतराष्ट्र के पुत्र सामर्थों को क्षमा के कारण से असमर्थ जान रहे हैं

इस से तो मरना ही अच्छा है। हे युधिष्ठिर यदि धर्म पूर्वक सुख मोड़ बिना लड़ने पर हम मारे भी जावेंगे तो देह त्यागने पर अच्छे लोक पावेंगे और यदि उन सब को जीत कर मार डालेंगे तो सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगेंगे इन दोनों बातों में हमारा कल्याण ही है सो हम को अब यह बात अवश्य करनी चाहिए क्योंकि हम सब धर्म करने, कीर्ति चाहने और बैर का बदला लेने के इच्छुक हैं। जिस धर्म के करने से अपने को अथवा मित्रों को दुःख हो वह धर्म नहीं किन्तु व्यसन है ऐसा धर्म नीच धर्म कहलाता है॥

जो मनुष्य धर्म में नित्य अपना मन रखता है और इसी में लग कर अपने आप को दुर्बल कर देता है अंत में उस का धर्म और लक्ष्मी इस प्रकार से जाते रहते हैं जिस प्रकार मृत होने पर मनुष्य के दुःख और सुख समाप्त हो जाते हैं और जिस मनुष्य का धर्म धर्म के लिये क्लेश भागी होता है वह मनुष्य पंडित नहीं और न वह धर्म के अर्थ को समझता है जैसे अन्धा पुरुष सूर्य की प्रभा को नहीं जान सकता। जिस मनुष्य के धन आदि से किसी अन्य को लाभ न हो तो वह मनुष्य उस गोपाले के सम है जो निर्जन वन में गौ चराकर अपना पेट भर छोड़ता है और जो मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थ रखते हैं वह दूसरों से मारे जाने के योगय हैं, कामी के मित्र वर्ग नष्ट हो जाते हैं और वह आप भी मर जाता है, धन धर्म का मूल है और धर्म अर्थ का मूल है सो यह दोनो एक दूसरे के कारण इस प्रकार से हैं जैसे बादल और समुद्र, द्रव्य और अर्थ के

लाभ और स्पर्श से जो आनन्द होता है उस आनन्द का स्वरूप अदृश्य है जो मनुष्य केवल धन आदि की ही इच्छा रखता है वह धर्म को बढ़ाता है और कामार्थी धन तो चाहता है परंतु धन मिलने पर सिवाय काम के और दूसरी बात नहीं चाहता। जैसे काठ के जलने पर भस्म तो होजाती है परंतु वह भस्म किसी और काम की नहीं होती इसी प्रकार कामी मनुष्य पंडित हो तो भी कामी होने से धर्म और अर्थ का उपार्जन नहीं कर सकता। इसी प्रकार जीवों की विशेष हिंसा भी अधर्म है जैसा कि चिड़ीमार सब प्रकार के पक्षियों को मार डालता है, हे राजन् आप भले प्रकार जानते हैं कि कोई अर्थ बिना द्रव्य के नहीं मिल सकता और आप को यह भी मालूम है कि अर्थ की प्रकृति और विकृति किस प्रकार से होते हैं यह अर्थ और काम बुढ़ापे के आने और मनुष्य के मरने पर नाश होजाते हैं इस से जान पड़ता है कि यही अनर्थ हम लोगों में भी वर्त्तमान होगा। पाचों इन्द्री, मन और हृदय विषय के आधीन है इन की जो आपस की प्रीति है उसी का नाम काम है और वही उत्तम कर्मों का फल है इस से मेरी समझ में मनुष्य को अर्थ, धर्म और काम तीनों को पृथक् २ देख कर समय के अनुसार सब को करना चाहिये केवल धर्म में ही मन को नहीं लगा रखना चाहिये अथवा अर्थ के विना और काम न करे या नित्य काम ही में लगा रहे ॥

शास्त्र तो यह आज्ञा देते हैं कि दिन के पहिले भाग में धर्म करे, मध्य में धन के उपार्जन का यत्न करे और रात्रि को

काम कलोल करे और उसी शास्त्र में यह भी लिखा है कि पहिली अवस्था में कलोल करे और दूसरी में धन प्राप्ति का यत्न करे और तीसरी में धर्म करे ॥

इस से यह सिद्ध हुआ कि काल के जानने वाले मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम का संग्रह विधि से काल को बांट कर समय के अनुसार करना चाहिए । यदि आपका यह विचार हो कि मोक्ष से परम कल्याण मिलता है तो शीघ्र मोक्ष मिलने का उपाय कीजिए और यदि यह निश्चय हो कि बुद्धि, बल और उपाय से राज्य लेना उचित है तो राज्य के प्राप्त करने का यत्न कीजिए क्योंकि निष्काम रोगी के समान बैठे२ जीना दुःखदाई जान पड़ता है ॥

हे राजन, आप निस्संदेह धर्म को जानते हैं और सदा धर्म करते चले आए हैं परन्तु इस जानने पर भी सुहृद लोग यह कहते हैं कि दान, यज्ञ, सत्य पुरुषों का पूजन, वेद धारण और सीधापन यह उत्तम धर्म हैं और दोनों लोकों के लिये अच्छे हैं । सो यह धर्म ऐसे मनुष्य से नहीं हो सकता जो द्रव्य हीन है चाहे वह मनुष्य अन्य सम्पूर्ण गुण अपने में रखता हो । धर्म ही इस संसार का मूल है और इस संसार में धर्म से बढ़ कर दूसरा कोई पदार्थ नहीं है परन्तु वह धर्म साधन के विना नहीं हो सकता । और धन भिक्षा मांगने से नहीं मिल सकता इस लिए आप को ब्राह्मणों के समान मांगना त्याग कर प्राक्रम ही से धन का उपार्जन करना चाहिये, क्षत्रियों का धर्म भिक्षा मांगना नहीं किन्तु धन का धर्म

केवल पराक्रम ही है। सो आप अपने धर्म पर आरूढ़ हूजिए और मेरे और अर्जुन के बल से दुर्योधन को उस के सहायकों सहित मारने का उपाय कीजिए। विद्वान और बुद्धिमान लोग उदारता को क्षत्रि का धर्म बतलाते हैं आप इस को ग्रहण कीजिये और अपने चित्त को डामा डोल न होने दीजिये, आप का जन्म क्रूर कर्मी क्षत्रि कुल में हुआ है जिस कुल से मनुष्य डरा करते हैं आप के प्रजा पालन क्षत्रि धर्म की कभी कोई निन्दा नहीं करता वह आप का सनातन धर्म विख्यात है। सो यदि आप अपने इस धर्म को न करेंगे तो आप की हंसी होगी क्योंकि धर्म हीन मनुष्य की कोई भी प्रशंसा नहीं करता वरन सदैव उस की हंसी करते हैं सो आप शिथिलता को त्याग कर अपना हृदय क्षत्रियों का सा कीजिये और पराक्रम को प्रारम्भ कर दीजिये, केवल धर्म के करने वाले राजा ने न ही आज तक पृथ्वी जीती है और न ही ऐश्वर्य और लक्ष्मी इकत्र की है, बहुधा चतुर मनुष्य लोभी और नीच मनुष्यों को स्वादु पदार्थ देकर उन से छल करके इस प्रकार उन का राज्य ले लेते हैं जिस प्रकार व्याघ्र वन के पशुओं को मार कर अपना गुज़ारा करता है, देखिये देवताओं ने अपने बड़े भाई असुरों को छल से ही जीता था इस से आप को चाहिये कि आप भी अपने शत्रुओं को छल से मार कर अपना राज्य लें, इस संसार में अर्जुन के समान योधा और मुझ समान गदा धारी कोई नहीं है और न होगा, बलवानों को युद्ध के लिये सेना एकत्र करने की कोई आवश्यक्ता नहीं होती वह अपने बल

से युद्ध करते हैं इस कारण आप को भी बल द्वारा युद्ध करना चाहिये ॥

हे राजन् आप का यह भी तो धर्म है कि आप पृथ्वी पर पाप करने वालों का नाश करें दुर्योधन अपने संगीयों सहित प्रजा को दुःख दे रहा है इस से उन सब को मार कर प्रजा को सुख देना यह भी एक धर्म है । दुर्योधन के पास राज्य के रहने से जो दुःख प्रजा को हो रहा है या जब तक होगा उस के भागी आप हैं ॥

आप के साथ आप की आज्ञा में रह कर हम भी उस पाप के भागी बन रहे हैं जो हम बलवानों के देखते देखते दुर्योधन से दुष्ट प्रजा को दुःख देकर कर रहे हैं क्योंकि शास्त्र में यह भी लिखा है कि बलवान के सन्मुख यदि कोई निर्बल पाप करता है और वह बलवान उस निर्बल को उस पाप के करने से नहीं रोकता तो वह पाप उस बलवान को लगता है इस से हे युधिष्ठर आप ऐसे पाप से भी हमारा नष्ट करवा रहे हैं ॥

आप पराक्रम कीजिये और युद्ध की सामग्री इकठी कर कर और सुन्दर रथों में बैठ कर हस्तिना पुर में चलिये और उस पापी को मार कर अपना राज्य लीजिये मुझे ऐसा कोई पुरुष नहीं दीखता जो इस हमारे गांडीव धनुष से बच सके और कोई वीर अथवा घोड़ा और हाथी भी ऐसा नहीं जो युद्ध में मेरी गदा के प्रहार को सह सके फिर श्री कृष्ण, संजय

और कैकेयों जैसे सहायक हमारे सङ्ग हैं इन की सहायता होने पर हमारे जीतने में कोई संदेह नहीं हो सकता ॥

ईकतीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का भीमसन को यह समझाना कि श्रेष्ठ मनुष्यों को प्रतिज्ञा छोड़ने से मरना अच्छा है ॥

युधिष्ठर भीमसेन की उक्त वार्तो को सुन कर. कहने लगा हे भीमसेन मैं तेरे इन वचनों को बुरा नहीं , मानता क्योंकि इस समय मेरा प्रारब्ध ही प्रीतिकूल हो रही है निस्संदेह मेरी ही अनीति से तुम लोगों को यह दुःख मिल रहा है । मैं ने दुर्योधन से उस का राज जीतने की इच्छा से जूआ खेला था परन्तु महाज्वारि पर्वत वासी शकुनि ने उस की ओर से जूआ खेल और उस ने छल से मुझ को जीत लिया, शकुनि ने छल से पासे डाले और मैं इस बात को देखता रहा परन्तु मैंने अपने मन को वश में करके क्रोध नहीं किया क्योंकि क्रोध से मनुष्य का धैर्य जाता रहता है हे भीमसेन पराक्रम और उद्योग करने वाला मनुष्य अपने मन को वश में नहीं कर सकता मैं तेरी बात को बुरा नहीं कहता परन्तु यह कहती हुं कि यह सब होनहार थी कि जिस से दुर्योधन ने राज्य की इच्छा से हम लोगों को दुःख में डाला और अपना दास कर

लिया जिस से द्रौपदी ने हम को छुड़ाया ॥

यह तुझ को और अर्जुन को भी भली प्रकार मालूम है कि दूसरी बेर जब जूआ हुआ था तो दांव यह बंधा था कि जो हारे वह बारह वर्ष बन में और तेरहवां वर्ष गुप्त रह कर काटे दुर्योधन ने स्पष्ट शब्दों में भरी सभा में कहा था कि यदि हम हारे जायेंगे तो इस निबंध के अनुकूल करेंगे मैं ने भी इस प्रण को अङ्गीकार करके जूआ खेला था और उस में हम सब हारने के कारण से बनवास दिये गए जिस को पूरा करने के लिए अब बन बन में घूमते फिरते हैं। हे भीमसेन अच्छे पुरुष राज्य के लिये प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ा करते मैं तो प्रतिज्ञा का तोड़ना महा पाप समझता हूं और इसके तोड़ने से मरना अच्छा जानता हूं यदि तुझे अपनी वीरता दिखलानी थी तो उसी समय जबकि मेरी भुजाओं को जलाने लगा था और जिस समय तुझे अर्जुन ने रोका था दिखा लेनी थी। मुझे यह बात विष पीने के समान कष्ट देरही है कि तूने अपने स्वभाव के विपरीत द्रौपदी के दुःख को देख कर सब बातों को सह लिया।

हे भीमसेन मेरी समझ में यही आता है कि जो प्रतिज्ञा कुरुओं के बीच में की गई है उसको कभी न तोड़ा जाय अब तू आगे आने वाले समय की इस प्रकार से आशा कर जिस प्रकार बीज बोने वाले फलों की राह देखा करता है ॥

मेरी सत्य प्रतिज्ञा तो यह है कि मैं देवताओं के भाव और जीवन से भी धर्म को अधिक समझता हूं और मेरी

समक्ष में राज्य, पुत्र, यश और धन यह सब सत्य के आगे तुच्छ हैं ॥

बत्तीसवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का कई कारण बतला कर युधिष्ठर को युद्ध करने के लिये तत्पर होने को कहना।

भीमसेन ने कहा हे युधिष्ठर आपने उस काल के निबंध से प्रतिज्ञा की है जो लोक का नाश करने वाला, बाण के समान तेज चलने वाला, अप्रमेय और नित्य गामी है आपको ऐसा क्यों करना चाहिये क्योंकि आप तो काल के वश निस्सार और मरने के धर्म के आधीन हैं जब मनुष्य एक क्षण भर में भी मर सकता है तो वह इतने समय की क्यों कर प्रतिज्ञा कर सकता है ऐसी प्रतिज्ञा तो उस को करनी चाहिये जो अमर हो या जिस को पूर्ण विश्वास हो कि वह इतना काल जीता रहेगा, अब हम जो आशा करें वह तेरह वर्ष के पहिले नहीं हो सकती है । इस काल में हमारे प्राण ही न रहें क्योंकि यह देह नाश होने वाली है और इस का आवश्य नाश होना है इस से उचित है कि आप मरने से पाहिले ही राज्य के मिलने का यत्न करें जो राजा पृथ्वी के पालन में असमर्थ और शूरता आदि से हीन होने के कारण संसार में कीर्ति नहीं पाता वह अपने शत्रुओं को वश में नहीं कर

सकता और शत्रु से वैर न लेने वाला मनुष्य अल्प पराक्रमी और अल्प उद्यमी कहलाता है मेरी समझ में ऐसे अभागे का इस संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है ॥

हे युधिष्ठिर आप की दोनो भुजा स्वर्ण की दाता हैं और आप की कीर्ति राजा पृथु की सी है आपको उचित है कि संग्राम में अपने शत्रुओं को जीत कर अपने भुज बल से उपार्जन किये धन से आनन्द भोगिये इस समय मेरे हृदय में क्रोध के कारण ऐसा संताप होरहा है कि उस की जलन अग्नि की जलन से भी अधिक है इसी कारण से आज कल मुझ को दिन रात नींद नहीं आती। मैं तो मैं इस योद्धा धनुषधारी अर्जुन को इस प्रकार से दुःख होरहा है जिस प्रकार सिंह अपने स्थान पर दुःखी हो. इस का हौसला है कि यह अपने शरीर के ताप को सह रहा है यह अर्जुन अकेला ही संसार के सकल धनुषधारियों को जीतने की अपने में समर्थ रखता है और यह नकुल, सहदेव और हमारी वृद्ध माता आपका ही हित चाहकर गुंगे के सदृश हो रहे हैं सब बांधव और स्रंजय भी आपका ही प्रिय चाहते हैं एक मैं और द्रौपदी दोनों दुःखी हैं ॥

भला इस से बढ़कर हमपर और कौन सी आपात्ति होगी कि हमारे राज्य को अल्प पराक्रमी नीच लोग हम से छीन कर भोग रहे हैं, यह सब क्लेश आप के शील और दयालू स्वभाव से आप और हम भोग रहे हैं परन्तु दूसरा कोई मनुष्य

इस बात की बढ़ाई नहीं करता ॥

हे युधिष्ठिर न जाने आप का जन्म क्षत्री कुल में क्यों कर हो गया आप का जन्म तो किसी दयालु ब्राह्मण के ग्रह में होना चाहिये था आप ने मनु के कहे राज धर्म को भी सुना है। फिर नहीं जान पड़ता कि आप धृतराष्ट्र के पुत्रों की कृत्य को जो क्रूर, छली, अहितकारी, शमगुण से रहित और दुरात्मा हैं अजगर के सदृश्य चेष्टा रहित हो कर सह रहे हैं और जो काम करने का है उस को नहीं करते। हम सब बली, बुद्धिमान, शास्त्रज्ञ और कुलीन हैं हमारा किसी स्थान में छुप कर रहना असम्भव है क्या आप मुट्ठी भर तिनकों से हिमालय पर्वत को ढकना चाहते हैं, आप सकल संसार में विख्यात हैं आप का गुप्त रहना सर्वथा असम्भव है॥

भला यह अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी किस प्रकार से छिप कर रह सकते हैं और मैं किस प्रकार से छिप सकता हूं मुझ को तो इस लोक में सब कोई जानता है और कोई भी ऐसा नहीं जो देखते ही मुझे न पहचान सके हम ने जिन राजाओं को जीता था अब वह सारे दुर्योधन के आधीन हो रहे हैं उन सब के हां वह अपने दूत भेजकर हमारी खबर रखेगा और हमको जान लेगा जिससे हमको पुनः बारह वर्ष बनवास करना पड़ेगा, दुःख के दिन मास और मास वर्ष हुआ करते हैं यह तेरह वर्ष किस प्रकार व्यतीत होंगे सत्य के छोड़ने से जो पाप होता है वह बोझा लेजाने वाले बैल को पेट भर

कर भोजन देने से छूट जाता है सो आप किसी ऐसे बैल को भोजन देकर उस पाप का प्रायश्चित कर लेना, आप अब क्षत्रि धर्म पर आरूढ़ हो कर शत्रुओं को मारने के लिये उद्यत हुजिये ॥

तेतीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का भीमसेन को दुर्योधन की प्रबलता और अपनी न्यूनता दिखलाना, भीमसेन का उस को देख कर चुप हो जाना और व्यास जी का युधिष्ठर को वहां आकर देवताओं से अर्जुन द्वारा अस्त्र मिलने के लिये प्रतिस्मृति विद्या देना ॥

युधिष्ठर भीमसेन की उक्त बातों को सुन कर दो घड़ी तक मुख नीचे किये सोचता रहा और मन में कहता रहा कि मैंने राजनीति और वर्ण आश्रम के अनेक धर्म श्रवण किये हैं और मैं वर्त्तमान और भविष्य काल के अनुसार विचार भी सकता हूं, मैं जान बूझ कर धर्म की मर्यादा को क्यूं बल द्वारा उल्लंघन करूं अपने मन में इस प्रकार से सोचता हुआ वह भीमसेन से बड़ा आतुरता के साथ कहने लगा ॥

हे भीमसेन तू ने जो कुछ कहा है सब सत्य है परंतु अब मैं जो कुछ कहता हुं उस को मानो, शीघ्रता में किया हुआ काम ठीक नहीं हुआ करता और उस के करने में खदैव दुःख होता है और जो काम अच्छी सलाह करके धैर्य के साथ किया जावे ईश्वर की सहायता होने से अवश्य सिद्ध होता है क्या तू नहीं जानता कि भूरिश्रवा, शल, जलसंध, भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के सब हत्यारे पुत्र अस्त्र जानने वाले हैं और जो जो राजा हम से दुःखी हैं वह भी सब उन सब से मिल गये हैं यह सब अपनी सेना संहित दुर्योधन की ओर हैं और हम से वैर रखते हैं यद्यपि भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य का स्नेह हम से और धृतराष्ट्र के पुत्रों से एक सा हो परन्तु धन इत्यादि का लोभ उन को युद्ध में दुर्योधन की ओर कर देगा यह तीनों सब अस्त्रों के जानने वाले और धर्मात्मा हैं मैं समझता हुं कि युद्ध में इन को देवता भी नहीं जीत सकते, कर्ण भी जिस के पास अभेद्य कवच है उन की ओर ही है भला पहिले इन को मारे बिना तु दुर्योधन को किस तरह मार सकता है। जिस लाघवता से कर्ण बाण छोड़ता है उस को याद कर के मुझे नींद नहीं आती ॥

युधिष्ठर की इन बातों को सुन कर भीमसेन म्लान चित हो कर चुप हो रहा ॥

इस अवसर में व्यास जी भी वहां आ पहुंचे और पांडवों

से पूजित हो कर और मान पाकर कहने लगे, हे युधिष्ठर तू चिंता मत कर मैं तेरे उस भय को जो तुझ को भीष्म, अश्वत्थामा, दुर्योधन और दुशासन की ओर से है वेद में देखे हुए कर्म से नाश कर दूगां, तुम उस कर्म को धैर्य से सुनो और उस को कर के सिद्धि पाने पर अपने मन के दुःख को त्याग दो ॥

तब व्यास जी युधिष्ठर को एकांत में लेजाकर यूं कहने लगे हे युधिष्ठर अब तेरे अच्छे दिन निकट आ गए हैं यह धनुष धारी अर्जुन युद्ध में सब शत्रुओं को जीत लेगा, ले मैं तुझ को अपनी कही हुई सिद्धरूप मति स्मृति नाम विद्या देता हुं अर्जुन उस विद्या का साधन करके इन्द्र और रुद्र के पास जाकर अनेक अस्त्र पावेगा और अपने तप और पराक्रम से वरुण और धर्मराज आदि देवताओं का दर्शन करेगा अब तुम इस वन से चले जाओ क्योंकि एक स्थान में बहुत काल रहना अच्छा नहीं होता इस से तपस्वियों को व्याकुलता होती है ॥

युधिष्ठर ने सावधानी से समय समय पर अभ्यास करके उस विद्या को धारण कर लिया और वह उस वन को छोड़ कर सरस्वती के तट पर काम्यक वन को चले गये और वह ब्राह्मण और तपस्वी भी उस के पीछे गये और वह सब वेद सुनते और मृगों का शिकार करके और विधि पूर्वक उन मृगों के मांस के आहार से तृप्त होकर वहीं रहने लगे ॥

चौतीसवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का अर्जुन को प्रति स्मृति विद्या देना और उसका इन्द्र के दर्शन की इच्छा से इन्द्र नील पर्वत पर जाकर उस से मिलना

कुछ दिन पीछे युधिष्ठर वनवास के दुःख को याद करके अर्जुन के हाथ में हाथ डालकर उस को एकांत में लेगया और मुसकराकर कहने लगा, हे अर्जुन, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा यह पांचों धनुर्वेद को चारो चरणों (लेना, चढ़ाना छोड़ना, और लौटाना) अच्छी तरह से जानते हैं और इन सब को देवता और मनुष्यों के दिव्य अस्त्र प्रयोग यन्त्र और चिकित्सा के साथ मालूम हैं। दुर्योधन उन को इस समय गुरु सम देखता है, दुर्योधन अन्य सब योधाओं से भी प्रीति रखता है और वह सब योधा उस से प्रसन्न रहते हैं समय आने पर यह सब उसकी सहायता में होंगे॥

हे अर्जुन इन सब के सामने हमारा भरोसा केवल तुम पर है सो तुम को अब वह काम करना चाहिये। जिसकी आवश्यक्ता है, व्यास जी ने मुझको एक रहस्य विद्या बताई है उस का अच्छी तरह प्रयोग करने से सारा जगत प्रकाशित हो सकता है तुम उस विद्या को लो और सावधानी से उस का प्रयोग करके देवताओं को प्रसन्न करो और अपना मन उग्र तपस्या में

लगाओ। अब तुम धनुष्य कवच और खड्ग धारण करके साधूओं का व्रत लेकर मुनि के स्वरूप में सीधे उत्तर दिशा को चले जाओ और रासता में किसी से अपना हाल मत कहो, वृत्रासुर के डर के मारे सब देवताओ ने अपने दिव्य अस्त्र इन्द्र को दिये थे जो अब तक उस के पास हैं तुम उस को प्रसन्न करो वह तुम को अस्त्र देगा मुझ से दीक्षा लो और जाओ॥

अर्जुन ने युधिष्ठर से वह विद्या ली और उस की आज्ञा के अनुसार इन्द्र के दर्शनों की इच्छा से गांडीव धनुष्य, दो अक्षय तर्कश और कवच धार कर और अग्निहोत्र कर और ब्राह्मणों को दान दे उन से स्वस्तयन सुनता हुआ, धृतराष्ट्र के पुत्रों के वध का विचार करता हुआ ऊपर को देखता हुआ चल दिया, द्रौपदी ने कहा यद्यपि आप के हम से पृथक होने से हम को वहुत दुःख है परंतु आपके आवश्यक कार्य पर जाने से हम उन दुःखों की प्रवाह नहीं करते और चाहते हैं कि ईश्वर तुम्हारे कार्य में तुम्हारे सहायक हों और तुम्हारा रास्ता निर्विघ्न करें॥

अर्जुन ने चलते समय युधिष्ठर और धौम्य ऋषि की परिक्रमा की और चल दिया वह हिमालय पर्वत पर जहां बड़े २ तपस्वी और ऋषि रहते थे पहुंचा यहा से वह गंध मादन पर्वत पर गया और बड़े कठिन रास्तों को लांघता हुआ इन्द्र नील पर्वत पर पहुंच गया, अर्जुन के वहां पहुंचते ही आकाश वाणी हुई कि ठहर जा, इस वाणी को सुन कर अर्जुन चारों ओर देखने लगा कि उस की दृष्टि एक तपस्वी

पर पड़ी जिस की जटा बढ़ी हुई थीं और आखें लाल लाल हो रही थीं उस का शरीर लट रहा था और ब्राह्मणों के तेज से उस के सब अंग दीप्यमान होरहे थे ॥

उस तपस्वी ने अर्जुन से कहा। अरे धनुषबाण और तलवार के रखने वाले! तु कौन है इस स्थान में शस्त्र का क्या काम है यह स्थान केवल उन ब्राह्मणों का है जो शांत और क्रोध और हर्ष को जीतने वाले और तपस्वी हैं यहां इन अस्त्रों का कुछ काम नहीं तू इन को फेंक दे, अर्जुन ने अपने धैर्य को न छोड़ा और उस ब्राह्मण के वचनों को शांत होकर सुनता रहा ॥

तब उस ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर हंस कर कहा हे शत्रु के मारने वाले तेरा कल्याण हो मैं इन्द्र हुं तू मुझ से वर मांग ॥

अर्जुन ने दोनों कर बांध कर नम्रता पूर्वक कहा, हे भगवन्! मैं यहां आप के दर्शनों के निमित्त ही आया हुं मैं आप से सम्पूर्ण अस्त्र विद्या सीखा चाहता हुं ॥

इन्द्र ने प्रसन्न होकर हंसते हुए कहा तू यहां परमगति के स्थान में पहुंच गया है अब तुम को अस्त्र विद्या की क्या आवश्यक्ता है, यहां जो कुछ मांगन की तुम को इच्छा हो वह मांगो ॥

अर्जुन ने कहा हे महेन्द्र मुझे लोभ और काम के कारण देवताओं के भोग नहीं चाहियें और न ही मुझे ऐश्वर्य की इच्छा है क्योंकि यदि मैं भाईयों को वन में छोड़

कर वैर का बदला लिये विना यहां रह कर ऐसा करूंगा तो मेरी यह अकीर्ति सदैव के लिये बनी रहेगी ॥

यह सुन कर इन्द्र ने कहा हे अर्जुन जब तू शिवजी महाराज के दर्शन पालेगा तब मैं तुझ को दिव्य अस्त्र दूंगा सो अब तू उन के दर्शन पाने का उपाय कर उन के दर्शन होने पर तू सिद्ध होकर स्वर्ग में जा सकेगा, अब इन्द्र तो वहीं अंतर्द्धान हो गये और अर्जुन वहां ठहर गया ॥

पैतीसवां अध्याय

—:०:—

हिमालय पर्वत पर जाकर अर्जुन का तपस्या करना और महर्षियों का शिवजी के पास जाकर उस की तपस्या का हाल कहना ॥

अर्जुन इन्द्र की आज्ञानुसार हिमालय पर्वत पर चला गया और पहिले उसकी शोभा देखता रहा पुनः वह वहां एक मनोहर स्थान पर बैठ कर मृग चर्म ओढ़ और दण्ड को धारण कर उग्र तपस्या करने लगा जो सूखे हुए पत्ते पृथ्वी पर गिरते वह उन को खाकर गुजारा करता, पहिले महीने में उस ने तीसरे दिन खाने का अभ्यास किया, दूसरे महीने में वह छटे दिन भोजन करता तीसरे महीने में १५ दिन पीछे आहार करने लगा और चौथे महीने में उस ने केवल वायु भक्षी रह कर ऊंचे को बांह किये हुए बिना सहारे पांव के

अंगूठ के बल से खड़े होकर तपस्या की उस की जटा जल में सदा स्नान करने से बिजली और कमल की सदृश चमकती हुई दीख पड़ती थीं, अर्जुन की इस उग्र तपस्या को देख कर वहां के सब महर्षि शिवजी के पास गये और प्रणाम करके बोले, महाराज! अर्जुन हिमालय की पृष्ट पर दिशाओं को भस्म करने वाली उग्र तपस्या कर रहा है हम नहीं जानते वह किस प्रयोजन से ऐसी उग्र तपस्या कर रहा है उस की तपस्या से हम सब लोग तप्त होगये हैं आप उस को निवारण करें ॥

महादेव जी ने कहा, तुम लोग अर्जुन से किसी प्रकार का भय मत करो और शीघ्र अपने २ आश्रमों में चले जाओ मैं उस के मनोरथ को जानता हूं मैं उस को पूरा करूंगा उस को स्वर्ग, ऐश्वर्य और आयू की इच्छा नहीं है। वह सब ऋषि महादेव जी के वचन को सुन कर प्रसन्नता पूर्वक अपने अपने आश्रमों को चले आये ॥

छतीसवां अध्याय

—:o:—

शिवजी का किरातरूप से अर्जुन के पास जाना और एक मृग रूपी राक्षस के मारने पर अर्जुन से युद्ध करना, अंत में शिवजी

का प्रसन्न होकर अर्जुन को दर्शन देना और अर्जुन का शिवजी जी की स्तुति करना

तपस्वियों के अपने अपने आश्रमों को चले जाने पर शिवजी ने शिकारी (किराता) का रूप धारण किया पार्वती ने भी बहुत सी स्त्रियों सहित अच्छे अच्छे वस्त्र धारण कर लिये और वह उस बन में जहां अर्जुन तपस्या कर रहा था पहुंच गए, इन के आने से वह वन अत्यंत सुशोभित होगया जब शिवजी अर्जुन के पास पहुंचे उन्हों ने मूक नामी दैत्य को जो वाराह का स्वरूप धर कर अर्जुन को मारने आया था देखा ॥

अर्जुन ने उस दैत्य को देख कर अपने धनुष्प को चढ़ा कर टंकारा और बाणों को हाथ में लेकर कहा अरे दुष्ट तू मुझ निर अपराधी को मारने आया है मैं पहिले ही तुझे मार कर यम पुरी में पहुंचाता हुं॥

शिकारी का रूप धारण किये हुए शिवजी ने कहा इस पर पाहिले निशाना मैंने बांधा है इस कारण इस को मैं मारूंगा परन्तु अर्जुन ने उस बात पर ध्यान न दिया और उस वाराह रूपी दैत्य को बाण मारा, शिवजी ने भी अग्नि की समान अपना एक बाण उस दैत्य को मारा। वह दोनों बाण एक ही साथ उस को लगे और वह अपने दैत्य रूप को प्रगट कर के मर गया॥

तब अर्जुन ने किरात रूपी शिवजी से पूछा कि आप कौन हैं जो इस शुन्य वन में इतनी स्त्रियों को साथ लिये फिर रहे

है, क्या यहां आप को भय नहीं और इस वाराह को जिस को मैंने पहिले निशाना बांधा था आप ने क्यों मारा है अब मैं आप को मारूंगा क्योंकि एक शिकारी के निशाना बांधने पर दूसरे शिकारी का निशाना मार देना शिकार खेलने के नियम के विरुद्ध है ॥

यह सुन कर शिकारी के वेश में शिवजी ने हंस कर बड़े मीठे शब्दों में कहा, हे वीर मुझ को इस वन में देख कर डर मत यह सब पृथ्वी हमारी ही है और हम वन वासियों के योग्य हैं, तूने तो इस वन में अब किसी काम के लिये वास किया है और हम तो सदैव इसी में रहते हैं अब तू कह कि तू जो सुकुमार और सुख के भोगने वाला है इस वन में क्यों कर रहेगा ॥

अर्जुन ने कहा मैं गांडीव धनुष्य और अग्नि के तुल्य बाणों के आश्रय इस बन में कार्त्तिकेय के समान रह सकता हूं यह मृग रूपी राक्षस जो मुझे मारने आया था मेरे ही हाथों मारा गया है ॥

किरात रूपी शिवजी ने कहा यह राक्षस मेरे बाण से मरा है क्योंकि मेरा ही बाण इस को पहिले लगा था और निशाना भी पहिले मैंने ही बांधा था तू अपने बल के घमंड से अपना दोष दूसरे पर डालता है वास्तव में दोष तेरा है इस कारण अब मैं तुझ को मार डालूंगा ॥

इस बात पर अर्जुन को क्रोध आगया और उस ने किरात

रूपी शिवजी पर अपने वाण वर्षाये ॥

किरात रूपी शिवजी ने अर्जुन के छोड़े हुए बाणों को हंसते २ पकड़ लिया और कहा अरे निर्बुद्धि यह मर्म छेदने वाले वाण और मार ॥

तब अर्जुन ने एक ही बार बाणों की झड़ी लगादी किरात रूपी शिवजी ने भी अपने बाण छोड़े जिन से दोनों घायल हो गए ॥

फिर अर्जुन ने वाण वर्षाय शिवजी ने उन को अपने वज्र रूपी शरीर पर सहे और अपने शरीर में एक जख्म भी न होने दिया, अर्जुन अपने बाणों को व्यर्थ देख कर चकित सा रह गया और मन में विचारने लगा कि यह कोमल शरीर वाला बनत्र सी गांडीव धनुष के बाणों को सुख पूर्वक सह रहा है। कहीं यह शिवजी या यज्ञ का कोई देवता न हो। गांडीव धनुष से मेरे मारे हुये बाणों को सहने की सामर्थ सिवाय शिवजी के और किसी में नहीं है, यदि यह शिवजी या और देवता के सिवाय कोई और है तो मैं अभी इस को यम पुरी में पहुंचाता हुं यह विचारते हुए अर्जुन ने उसी गांडीव धनुप से अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाण किरात रूपी शिवजी पर वर्षाय जो उन के शरीर पर इस प्रकार से पड़े जिस प्रकार किसी पर्वत पर पत्थर पड़ते हैं तब अर्जुन के बाण समाप्त हो गए जिस से वह बहुत भयभीत हो गया ॥

तब अर्जुन अपने धनुष की नोक से ही किरात रूपी

शिवजी से युद्ध करने लगा परन्तु शिवजी महाराज ने उस से वह धनुष छीन लिया ॥

तब अर्जुन ने हाथ में तलवार लेली और युद्ध में मारे जाने की इच्छा से झट शिवजी के सन्मुख चला गया और अपनी भुजा के पूरे बल से उस तलवार को शिवजी के मस्तक पर मारा उन के मस्तक पर लगते ही उस के टुकड़े २ हो गए तब अर्जुन वृक्ष और शिला ले ले कर लड़ने लगा उस से भी शिवजी के शरीर पर कुछ असर न हुआ तब अर्जुन घूसों पर उतर आया किरात रूपी शिवजी ने भी आगे से घूसे चलाये इन दोनों के घूंसों से चटाक पटाक का शब्द होने लगा यह युद्ध दो घड़ी तक होता रहा ॥

तब अर्जुन ने किरात रूपी शिवजी को अपनी छाती से मिला दिया आगे से शिवजी ने भी वैसा ही किया इस समय इन दोनों की भुजा से भुजा और छाती से छाती लगने और घिसने से धूआं लिए हुए अग्नि प्रकट हो गई ॥

शिवजी ने क्रोधित होकर अर्जुन के सब अंगों को तोड़ डाला और अपने बल से उसे दाब लिया जिस से वह बेसुद्ध हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा, दो घड़ी तक तो वह उसी दशा में पड़ा रहा फिर वह बड़ा दुःखी हुआ हुआ शिवजी की शरण में गया और उनकी भक्ति में लग गया, किरात शिवजी ने अपना असल रूप धारकर अर्जुन को दर्शन दिया अर्जुन उन के चरणों में पर गया ॥

शिव जी महाराज इस समय बहुत प्रसन्न हो कर यूं कहने लगे, हे अर्जुन मैं तेरी वीरता और धैर्य से बहुत प्रसन्न हुं. मैने तुझ सा कोई क्षत्री नहीं देखा मेरा और तेरा तेज और पराक्रम एकसा है, मैं प्रसन्न होकर तुझ को दिव्य ज्ञान देता हुं, तू पूर्व जन्म का ऋषि है और इस जन्म में रण में सब शत्रुओं को जीतेगा और देवताओं पर भी जय पावेगा, ले मैं तुझ को वह अस्त्र देता हुं जिसको कोई दूसरा अस्त्र नहीं रोक सकता निःसंदेह तू उस अस्त्र को धारण करने के योग्य है ॥

अर्जुन ने वह अस्त्र लेकर शिवजी की स्तुति की और उन से कहा कि अज्ञान में जो अपराध मुझ से होगया है आप कृपा करके उसको क्षमा कीजिये ॥

शिवजी महाराज ने अर्जुन के अपराध को क्षमा कर दिया॥

सैंतीसवां अध्याय

—:o:—

शिवजी का अर्जुन को पशुपात अस्त्र देना उस अस्त्र का प्रज्वलित होना और शिवजी का स्वर्ग को चले जाना ॥

शिवजी ने अर्जुन से कहा तुम पूर्व जन्म में नारायण के सत्य नर थे और तुमने वद्रिकाश्रम में अयुत वर्ष तक बड़ी भारी तपस्या की थी तुम में और विष्णु में परम तेज है और इसी तेज से यह जगत स्थित होरहा है यह लो तुम अपना गांडीव

धनुष और अक्षय तर्कस अब तुम्हारा शरीर भी रोग रहित होजायगा । हे अर्जुन मैं तुम से प्रसन्न हुं जो वर तुम्हारी इच्छा हो मुझ से मांगलो ॥

अर्जुन ने कहा महाराज यदि आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं तो वह पशूपात अस्त्र दीजिये जो ब्रह्मशिर नाम से विख्यात है और महा प्रलय में सब जगत का नाश कर देता है क्योंकि मैं उस से युद्ध में कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को जीतना चाहता हुं । मैं चाहता हुं कि उसी अस्त्र से संग्राम में दानव, राक्षस, भूत, पिशाच, गंधर्व और सर्पों को भी जीत सकूं । हे कल्याण कारी पहिला वर आप से मैं यह चाहता हुं ॥

शिव जी ने कहा हे अर्जुन मैं यह जान कर कि तूं अस्त्र के धारण, मोक्ष और निवर्तन करने की सामर्थ रखता है तुम को यह अस्त्र देता हुं परन्तु देखना तुम इस को बिना विचारे किसी मनुष्य पर मत छोड़ना क्योंकि थोड़े तेजस्वी पुरुष पर पर छोड़ने से यह अस्त्र सब जगत का नाश कर देगा, यह अस्त्र मन, नेत्र वचन और धनुष चारों से छोड़ा जासकता है और त्रलोकी में कोई ऐसा प्राणी नहीं जो इस से न मर सके ॥

अर्जुन पवित्र होकर सावधानी के साथ शिवजी के पास जाकर कहने लगा आप मुझे वह अस्त्र पढ़ा दीजिये ॥

शिवजी ने उसको वह अस्त्र धारण, मोक्ष और निवर्तन सहित

पड़ा दिया वह अस्त्र अर्जुन के पास जाकर इस प्रकार स्थित होगया जिस प्रकार शिवजी के पास था, उस समय पृथ्वी वन, पर्वत आदि सहित कांपने लगी और नाना प्रकार के शब्द सुनाई देने लगे ॥

वह अस्त्र उसी समय प्रज्वालित होगया जिस की प्रभा को देवता आदि ने देखा। शिवजी के स्पर्श से इन्द्र का शरीर सर्वथा आरोगय और शुद्ध होगया और शिवजी स्वर्ग को चल दिये ॥

अठतीसवां अध्याय

—:०:—

इन्द्र आदि लोकपालों का अर्जुन के पास आना और उस को अपने २ अस्त्र देना ॥

शिवजी के चले जाने पर अर्जुन के पास वरुण देवता जिन की प्रभा वैडूर्य मणि की सी थी सब देवताओं को प्रकाशित करते हुए जल जीवों सहित वहां आ पहुंचे, बड़े २ नाग, नद, छोटी २ नदियां दैत्य, साध्य और देवता भी उन के साथ थे, धन के ईश्वर कुबेर भी यक्षों को साथ लिये हुए विमान में बैठ आकाश से अर्जुन के दर्शन को आये। कुछ काल पीछे सूर्य के पुत्र सकल लोकों के नाश करने वाले यमराज हाथ में दंड लिये हुए और विमान में बैठे हुए पितृ,

गुह्यक, गन्धर्व और पन्नगों सहित तीनों लोकों का प्रकाश करते हुए वहां पहुंचे। यह तीनों देवता वहां आकर अर्जुन की तपस्या को देखने लगे, दो घड़ी पश्चात इन्द्र देवता भी अपनी इन्द्राणी सहित ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए वहां आ पहुंचे, इन्द्र पर जो श्वेत छत्र था उस से उस की शोभा दुगनी होगई थी, देवता और ऋषि उस की स्तुति कर रहे थे, वह इन्द्र वहां आकर पर्वत के एक शिखर पर स्थित होगया॥ तब यमराज बोले हे अर्जुन हम तुम को दिव्य दृष्टि देते हैं तू इस के योग्य है इस से तू हम को देख, तू नर नामी तेजस्वी पूर्व जन्म का ऋषि है तैने यह नर देह ब्रह्मा जी की आज्ञा से पाई है तू युद्ध में भीष्म को जो वसुओं की अंश से है और बड़ा पराक्रमी और धर्मात्मा है जीतेगा और तेरे हाथ से बड़े २ क्षत्री, दानव और दैत्य और कर्ण इत्यादि मारे जावेंगे और संसार में तेरी बड़ाई बराबर बनी रहेगी क्योंकि तू ने संग्राम में शिवजी को प्रसन्न किया है, हम तुम को अपना दंड नाम अस्त्र देते हैं जिस को कोई दूसरा अस्त्र नहीं रोक सकता तू विष्णु के साथ रह कर पृथ्वी का भार उतार॥

अर्जुन ने उस अस्त्र को लिया और उस का धारण, मोक्ष और निवर्तन करना समझ लिया॥

तब पश्चिम दिशा की ओर से जल जीवों के स्वामी वरुण देवता बोले। हे अर्जुन तू क्षत्रियों में मुख्य और क्षत्रि धर्म में आरूढ़ है इस कारण मैं तुझ को वारुण पाश जो कभी छूट नहीं सकते देता हूं तू ले मैंने स८सों दैत्य तारका

मय संग्राम में इस से बांधे थे इन से बंधी हुई मृत्यू भी अपने आप को नहीं छुड़ा सकती तू इन पाशों को धारण कर, तेरे इन पाशों को लेकर संग्राम में जाने से यह पृथ्वी क्षत्रियों से रहित होजाएगी ॥

तब कुबेर देवता ने कहा हे अर्जुन तुझे देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हुं तू पूर्व जन्मों में हम सब देवताओं के संग रह चुका है मैं तुझ को अपना प्रसवापन नामी अन्तर्द्धान अस्त्र जो बल, तेज और कांति का बढ़ाने वाला और शत्रुओं का नाश करने वाला है देता हुं इस के प्रताप से तू दुर्योधन की सेना को दग्ध करेगा और उन शत्रुओं को भी जीत सकेगा जिन का जीतना कठिन है त्रिपुर और अन्य कई दैत्यों के मारने के लिये यह अस्त्र छोड़ा गया था मैं तुम को योग्य जान कर यह अस्त्र देता हुं ॥

अर्जुन ने कुबेर देवता से वह अस्त्र लेकर उस की स्तुति की ॥

तब इन्द्र देव मेघ और दुंदुभी की सी गम्भीर वाणी से बोले ॥

हे इन्द्र तू पूर्व जन्म का ईशान है तुझ को बड़ी सिद्धि मिल गई है और तेरी गति देवताओं की सी होगई है अब तुझ को देवताओं का काम करना पड़ेगा मातलि सारथी रथ लेकर पृथ्वी पर आवेगा तू उस रथ में बैठ कर स्वर्ग में चला आयो मैं तुझ वहां ही सब अस्त्र दूंगा ॥

अर्जुन उन सब लोकपालों को पर्वत पर देख कर चकित सा रह गया और उस ने उन सब की जल फल और वाणी से यथा योग्य पूजा की ॥

तब वह सब देवता अर्जुन की प्रतिमान करके अपनी अपनी इच्छा के अनुसार विमानों में वैठ कर चले गए . और अर्जुन उन सब अस्त्रों को पाकर वड़ा प्रसन्न हुआ और अपने को कृतार्थ और पूर्ण मनोरथ जानने लगा ॥

उनतालिसवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का इन्द्र के भेजे हुए रथ में वैठ कर इन्द्र पुरी को जाना और रास्ता में सुकृति मनुष्यों के पुण्य रूपी लोकों को देखना ॥

इन्द्र ने अपना रथ जो वड़ा चमकदार और अति सुंदर था अर्जुन के लिये भेजा इस रथ में तलवार, शक्ति, गदा, भास, अस्त्र, विजली, वज्र, चक्र, युक्त, भांड, गोलक, वायु, स्फोट, मेघ, वड़े २ भयानक सर्प और वड़े २ पत्थर रखे हुए थे इस में दस हजार वायु वेग घोड़े जूते हुए थे स्वर्ग की एक लाठी भी जिस में महां नीले कमल के सदृश श्याम रङ्ग की वेजयन्त नाम ध्वजा लगी हुई थी, मातलि के सारथी को अर्जुन ने देवता जाना, परंतु वह रथ से उतर

कर अर्जुन के पास आया और नम्रता के साथ कहने लगा हे अर्जुन आप को इन्द्र देवता चाहते हैं आप इस रथ में बैठ कर शीघ्र चलिये ताकि मैं आप को देवताओं के घर दिखलाऊं । आप उन को देख कर और अस्त्र सीख कर लौट आइये ॥

अर्जुन ने कहा इस रथ की स्वारी उन लोगों को मिलती है जो सैकड़ों राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करें या बड़े दानी, देवता और दानव इस पर स्वार होते हैं, तपस्या रहित मनुष्य तो इस को देख भी नहीं सकता ! हे सारथी तुम पीहले इस पर स्वार होकर इस के चञ्चल घोड़ों को सम्भालो फिर मैं इस पर स्वार हूंगा ॥

मालित सारथी ने रथ पर स्वार होकर घोड़ों की बाग डोरें ईंच कर उनको स्थिर किया ॥

तब अर्जुन उस रथ पर स्वार हुआ और वह रथ उस मार्ग से चलने लगा जिस को धर्म करने वालों ने भी नहीं देखा रास्ते में अर्जुन ने बहुत से अद्भुत विमान देखे वह विमान इस लोक से दीपक के समान दीख रहे हैं और तारागण कहलाते हैं उस ने वहां सैंकड़ों ऋषि, सिद्ध और ऐसे मनुष्य भी देखे जिन्हों ने अपने तप से अथवा युद्ध में सन्मुख मारे जाने के कारण स्वर्ग जीत लिया था और गंधर्व, गुह्यक और अप्सराओं के गणों को जिन का तेज सूर्य की प्रभा के सदृश था और ऐसे लोकों को भी जो स्वयं प्रकाशित थे देखता हुआ ऊपर को चला गया ॥

अर्जुन ने मातलि से पूछा यह सब कौन हैं ? मातलि ने कहा यह सब सुकृती मनुष्य हैं जो अपने २ स्थानों पर भोग भोग रहे हैं ॥

अर्जुन ने इन्द्र पुरी के द्वार पर ऐरावत हाथी को जो श्वेत और चार दांत रखने वाला और कैलाश पर्वत के समान ऊंचा था देखा तब अर्जुन उस पुरी के भीतर जाकर उस की शोभा को देखने लगा ॥

चालीसवां अध्याय

—:o:—

अर्जुन का इन्द्र पुरी में पहुंचकर इन्द्र से मिलना और उस पुरी की शोभा को देखना ॥

अर्जुन इस पुरी की शोभा को देखता हुआ नंदन बन के समीप पहुंचा, यहां शीतल मंद सुगंध वायू चल रही थी और ऐसे २ दिव्य फल फूल वृक्ष लग रहे थे मानों बोलना चाहते हैं अप्सराओं के झुण्ड के झुण्ड इधर उधर विहार कर रहे थे वह लोक पुण्यात्माओं का है उस को वह मनुष्य कभी नहीं देख सकते जिन्हों ने न तपस्या की हो और न अग्नि होम किया हो या जो युद्ध में विमुख हो गये हों, मद्य पीने वाले, मांस आहारी, यज्ञ की क्रिया को बिगाडने वाले, दुरात्मा, नीच, और दान व्रत और यज्ञ न

करने वाले भी इस लोक का कभी दर्शन नहीं कर सकते, अर्जुन उस वन की शोभा को देखता और अप्सराओं के मनोहर गीतों को सुनता हुआ इन्द्र भवन के निकट जा पहुंचा ॥

अर्जुन ने उस भवन में लाखों विमान देखे जो इच्छा के अनुसार चलने वाले और पृथ्वी के चारों ओर घूमने वाले थे, वहां देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और ऋषियों ने उस का पूजन किया तब अर्जुन सुगन्धित पुष्पों से महकती हुई वायु को सूंघता हुआ गन्धर्व और अप्सराओं से स्तूयमान हो उस सुरवीथी नाम नक्षत्र मार्ग में पहुंचा जहां अनेक शंख और दुन्दुभी बज रहे थे, अर्जुन ने वहां पहुंच कर साध्यगण, विश्वेदेवा, मरूद्गण, दोनों अश्वनीकुमार, बारह सूर्य, आठ वसु ग्यारह रुद्र, ब्रह्म ऋषि, राजा दिलीप, आदि बहुत से राज ऋषि और तंबरु, नारद, हाहा हुहु, नाम गन्धर्वों को देखा ॥

इन्द्र को देख कर अर्जुन रथ से उतर पड़ा और अपना शिर झुका कर दंडवत की इस समय ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी ब्राह्मण इन्द्र की स्तुति कर रहे थे, सुनहरी दंडी चमर उस पर होरहा था और पंखों से मंद मंद वायु हो रही थी, इन्द्र ने अर्जुन को दंडवत करते हुए देख कर दोनों हाथ पकड़ कर उठा लिया और इन्द्रासन पर अपने पास बिठला लिया, तब अर्जुन इन्द्र से आज्ञा पाकर दूसरे आसन पर जा बैठा, इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन को देख २ कर बड़ा प्रसन्न

होता और उस से प्यार कर कर न रुजता, तब वहां अप्सरायें अपना २ नाच दिखाने लगीं और गंधर्व गान गाने लगे ॥

एकतालीसवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का स्वर्ग में इन्द्र के वज्र आदि अस्त्रों का प्रयोग और चित्र सेन गंधर्व से गाना नाचना और बजाना सीखना ॥

देवताओं ने इन्द्र का मत पाकर पाद्य अर्घ से अर्जुन की पूजा की और उस को इन्द्र के भवन में टिकाया, अर्जुन वहां सुख पूर्वक रह कर महा अस्त्र सीखने लगा, कई अस्त्र उस ने सीख लिये फिर उस ने वज्र अस्त्र को जिस का स्पर्श कोई नहीं कर सकता और अशनि अस्त्र जो मेघ और मयूर का शब्द उत्पन्न करता है यह दोनों अस्त्र सीखे, इन सब अस्त्रों के सीखने में उस के पांच वर्ष लग गये। तब उस को अपने भाई याद आये ॥

इन्द्र ने अर्जुन से कहा अच्छा हो कि तुम चित्र सेन गंधर्व से गाना और नाचना भी सीख लो और देवताओं का बनाया हुआ बाजा जो नर लोक में नहीं है वह भी सीख लो इस से तुम को लाभ होगा, वह गाना बजाना और नाचना तो सीखता था परन्तु उस को उस समय भी दुशासन और शकुनि के छल का विचार अब तक दुःख देता, जब इस विद्या

में वह निपुण हो गया तो उस का चित्त माता और भाइयों को याद करके उदास होगया ॥

बतालीसवां अध्याय

—:०:—

इन्द्र का चित्र सेन को उर्वशी अप्सरा के पास यह कह कर भेजना कि वह अर्जुन के पास जावे और उस का अर्जुन के पास जाना ॥

एक दिन इन्द्र ने चित्र सेन को बुला कर कहा कि जिस प्रकार मैंने अर्जुन का अस्त्र विद्या में निपुण कर दिया है यदि उर्वशी उस को स्त्रियों के साथ रमण करने की विद्या में निपुण करदे तो बहुत अच्छा हो तुम उस अप्सरा को इस काम के लिये अर्जुन के पास जाने का उपदेश दो, चित्रसेन तथास्तु कह कर उर्वशी के पास गया और उस से आदर सत्कार पा कर उस के निकट बैठ गया और मुसकरा कर कहने लगा, मुझ को स्वर्ग के स्वामी इंद्र ने एक बात कहने के लिये तेरे पास भेजा है, तू जानती है कि यः अर्जुन अपने शारीरक गुण, शोभा, शील, रूप, व्रत और इंद्रियों को जीतने के कारण देवता और मनुष्यों में विख्यात है और पराक्रमी स्फुर्त्तमान विद्यावान, ऐश्वर्ययुक्त, तेजस्वी, शूरवीर, क्षमावान, पापहीन चारों वेदों का जानने वाला, आलस्य रहित, सुंदर कुल म माता पिता से उत्पन्न, युवक ब्रह्मचारी, आठों गुण रखने

वाला, गुरु की शुश्रूषा करने वाला और बुद्धिमान और इन्द्र की समान अकेला रक्षा करने वाला, है, प्रजा के पालने में अपनी बड़ाई न करने वाला, मीठा बोलने वाला सत्कार करने वाला, सूक्ष्म पदार्थ को स्थूल के समान देखने वाला अपने सुहृदों को नाना प्रकार के अन्न पानादि देने वाला, सच्चा स्वरूपवान अहंकार न करने वाला, अपने भक्तों पर दया करने वाला, स्थिर प्रतिज्ञा और चाहने योग्य है और अपने गुणों से इंद्र और वरुण के समान है तू उस को ऐसा कर कि वह तेरी शरण और चरणों को पाकर स्वर्ग में आने का फल पावे ॥

उर्वशी इन बातों को सुन कर प्रसन्न हुई और मुसकराती हुई कहने लगी, हे चित्रसेन तू ने अर्जुन के जो गुण मुझ से कहे हैं मैं उन को पहिले ही सुन चुकी हूं और उस को अपने मन से वर चुकी हूं। अब तू ने मुझ को उस के गुण दोबारा कह कर और इन्द्र की आज्ञा देकर उस पर और भी मोहित कर दिया है मैं अब सुख पूर्वक उस के पास जाऊंगी ॥

तैंतालीसवां अध्याय

—:o:—

उर्वशी का अर्जुन के पास जाना, अर्जुन का उस को माता के तुल्य समझना और उर्वशी

का उस को शाप देना ॥

चित्रसेन के चले जाने पर उर्वशी ने स्नान किया और अपने मन माने सुंदर वस्त्र और गहने पहर कर फूलों की माला और सुगंधित गंधों से अपना शृंगार किया और सुंदर शय्या पर बैठ कर बड़ी सायंकाल तक प्रसन्नता से अर्जुन के स्वरूप का ध्यान करती रही और अपने चित्त में उस ध्यान से उठी हुई कामाग्नि से व्याकुल होकर मन से अर्जुन के साथ रमण करती रही सायंकाल को चन्द्रमा के उदय होने पर वह अर्जुन के भवन को चली वह अप्सरा उस समय कमलों की माला पहिरे हुई थी, बाल उस के लम्बे लम्बे, नरम और घुंघुआरे थे, वेणी हाथी के सूंड के सदृश, उस की भृकुटी के कटाक्ष नेत्रों की चञ्चलता, वचन की माधुर्यता, देह की कांति, शरीर की सौम्यता और चन्द्रमा रूपी मुख से ऐसा ज्ञान पड़ता था कि मानो चन्द्रमा को बुलाती है और दोनों सुंदर और गड़ौल स्तनों के हिलने के कारण वह संताभित होकर पद पद पर झुक २ कर चलती थी, पतली कमर, चूतर ऊंचे स्थूल और चौड़े और मदन सदन बड़ा ही शुभ्र था, दोनों निर्दोष जांघे वस्त्र के पतले होने से ऋषियों के मन को भी मोहित करती थीं और दोनों गल्फ गूढ़ तलुए लाल उंगलियां लम्बी लम्बी और पांऊं कछुए की पीठ के समान ऊंचे थे वह अप्सरा थोड़ा मद्य पीइये हुए काम देव के मद से मत्त हुई हुई होने से दर्शन के योग्य हो गई और ऊपर का वस्त्र पतला होने के कारण वह स्वर्ग में

भी दर्शन रूप रखने वाली अप्सरा आकाश मार्ग में सिद्ध चारण और गंधर्वों सहित जाती हुई ऐसी दीखती थी मानों पूर्णमासी का चांद पतले बादल से ढका हुआ है वह अप्सरा इस प्रकार से सजी हुई अर्जुन के भवन में पहुंची द्वारपालों ने अर्जुन को उस के आने की खबर दी ॥

अर्जुन को इस के रात के समय उस के भवन में आने से शंका पड़ गई और वह लज्जित होता हुआ उस के पास पहुंचा और बड़ों के समान उस ने उस का सत्कार किया और कहने लगा, हे श्रेष्ठ अप्सरा मैं आप का दास हुं मुझे क्या आज्ञा है ॥

अर्जुन के इस वचन को सुन कर वह अचेत सी हो गई और कहने लगी मैं यहां चित्रसेन गंधर्व के कहने से आई हुं उस ने मुझे कहा है कि जब तुम इन्द्र की सभा में आये थे तो तुम्हारी आवभक्त के लिये वहां बड़ा मनोहर उत्सव मनाया गया था जिस में सब रुद्र, १२ सूर्य, ८ वसु, दोनों अश्वनी कुमार, महा ऋषि, राज ऋषि, सिद्ध, चारण, यक्ष इत्यादि देवता आकर अपने २ योग्य स्थानों में बैठे हुए थे गंधर्वों ने वीणा बजा कर गाया था और सब मुख्य २ अप्सरा नाची थी उस समय तुम केवल मेरी ओर ही टकटकी लगाय देखते थे इन्द्र इस बात को उस समय ताड़ गए थे जब सब सभा में उपस्थित अपने २ स्थानों पर चले गए तो इन्द्र तुम्हारे पिता ने चित्रसेन को यह कह कर मेरे पास भेजा वह आया और मुझे यूं कहने लगा :—

मुझे इन्द्र ने तेरे पास भेजा है और कहा है कि तू अर्जुन की मन से चाहना कर, यह शूर बीर और गुणवान है, हे अर्जुन मैं इन्द्र और चित्रसेन की आज्ञा से तेरे पास आई हुं तेरे गुणों ने मेरे मन को खींच कर मुझे कामासक्त कर दिया है ॥

अर्जुन उर्वशी की बात को सुन कर लज्जित होगया और कानों में उंगली डाल कर कहने लगा, मैं तुझ को गुरू की स्त्री के समान समझता हुं जो कुच्छ तूने कहा है वह सुनने के योग्य नहीं तू इन्द्राणी और कुंती के समान मेरी माता है और नाचने के समय मेरा टकटकी लगा कर तेरी ओर देखना भी इस कारण से था कि यह हमारे पौरव वंश की माता है, इस कारण तू किसी प्रकार का विचार न कर ॥

उर्वशी ने कहा हम सब वार वानिता हैं तुमको मुझे गुरू के स्थान पर समझना उचित नहीं ' देखो पुरुवंश के बहुत से पुत्र और नाती तपस्या कर कर के यहां आये और वह सब हमारे साथ रमण करते रहे उन को किसी प्रकार का दोष नहीं लगा अब तुम भी प्रसन्न होकर मुझ कामासक्त और पीड़ा मान भक्त को प्यार करो और चाहो ॥

अर्जुन ने कहा हे अप्सरा, मैं तुझ से सत्य सत्य कहता हुं जैसे कुंती, माद्री और शाची मेरी माता हैं वैसे ही तू मेरी गुरू है तू जा मैं तेरे चरण छूता हुं, तू माता के समान मेरी ओर से पूज्य है और तेरी ओर से मैं पुत्रवत रक्षणीय हुं ॥

अर्जुन की इस बात को सुन कर उर्वशी को क्रोध चढ़ गया और उस ने टेढ़ी भौंएँ कर उस को शाप दिया, हे अर्जुन तैंने मुझ कामासक्त को तेरे पिता की आज्ञा से तेरे घर आने पर प्रसन्न नहीं किया इस कारण तेरा मान दूर होगा और तू स्त्रियों के बीच में नाचता फिरेगा और हिजड़े के नाम से प्रसिद्ध होगा ॥

उर्वशी तो शाप देकर कुरकराती हुई अपने घर को चली गई और अर्जुन चित्र सेन के पास पहुंचा और उर्वशी का सारा वृत्तांत उस को कह कर शाप से भी उस को विदित किया ॥

चित्र सेननेवह सारा वृत्तांत इन्द्र को सुनाया जिस पर इन्द्र ने अर्जुन को एकांत में बुला कर कहा हे पुत्र तुझ सा पुत्र होने से अब कुंती पुत्रवती हुई। आज मुझ को मालुम होगया है कि तूने अपने धैर्य से ऋषियों को भी जीत लिया है, उर्वशी ने जो तुझ को शाप दिया है उसकी भी तू चिंता मत कर वह भी एक समय तेरे काम आवेगा क्योंकि तेरहवें वर्ष में तुम ने गुप्त वास करना है उस वर्ष में तू हिजड़े के स्वरूप में रहियो उस वर्ष के बीतने पर तू फिर ज्यों का त्यों हो जावेगा ॥

इन्द्र की इस बात को सुनकर अर्जुन प्रसन्न होगया और शाप की चिंता को छोड़ कर स्वर्ग में चित्र सेन के साथ रमण करता रहा ॥

चौतालिसवां अध्याय

—:-०-:—

लोमेश ऋषि का इंद्रपुरी में आना और अर्जुन को इंद्रासन पर बैठा हुआ देख कर शंका करना, इंद्र का उस शंका का समाधान करना और युधिष्ठर को संदेसा भेजना ॥

एक समय लोमश ऋषि घूमते २ इंद्र के दर्शनों की इच्छा से इंद्रपुरी में आये और उन से मिलने पर उस से मिले हुए आसन पर बैठ गए और अर्जुन को इंद्र के बराबर इन्द्रासन पर बैठा हुआ देख कर विचारने लगे कि यह क्षत्री इन्द्रासन पर क्यों कर बैठा है इस ने कौन सी ऐसी तपस्या या पुण्य किये हैं जो ऐसा देव स्थान इस को मिला है ॥

इन्द्र ऋषि के इस विचार को ताड़ गए और उन से बोले, हे ऋषि मैं तुम्हारे मन के संकल्प को जान गया हूं तुम अर्जुन को केवल मनुष्य मत समझो यह मेरा पुत्र है और कुंती से उत्पन्न हुआ है और यहां अस्त्र विद्या सीखने आया हुआ है यह नर है और श्री कृष्ण नारायण हैं इन दोनों ने नर लोक में मनुष्यों का उद्धार करने के लिये अवतार धारा है इस अर्जुन और श्री कृष्ण के मिलने से

हमारा बड़ा काम निकलेगा अब आप नर लोक में काम्यक वन में जाइए और युधिष्ठर से कहिए कि तुम अर्जुन की ओर से किसी प्रकार की चिंता मत करो वह सब अस्त्र सीख कर शीघ्र तुम्हारे पास पृथ्वी पर आवेगा तुम तीर्थ स्नान करो और आनंद से अपने दिन काटो" हे ऋषिश्वर तुम वहां युधिष्ठर की रक्षा भी करना अर्जुन ने भी पास से कहा महाराज आप अवश्य उस की रक्षा कीजिए ॥

लोमश ऋषि ने तथास्तु कहा और पृथ्वी पर आकर काम्यक वन में पहुंच कर युधिष्ठर के पास गए जो भाईयों और तपस्वियों के बीच में बैठा हुआ था ॥

पैंतालिसवां अध्याय

—:-०-:—

धृतराष्ट्र का व्यास जी से अर्जुन के स्वर्ग जाने का वृत्तांत सुन कर चिंता करना और अपनी चिंता का हाल संजय से कहना ॥

व्यास जी ने जो कभी भी धृतराष्ट्र को मिलने जाया करते थे अर्जुन के स्वर्ग में जाने का सारा वृत्तांत उस को सुनाया जिस को सुन कर उस ने संजय से कहा हे संजय

मैं ने अर्जुन के स्वर्ग जाने का सारा वृत्तान्त सुना है क्या तुम को भी वह मालूम है या नहीं। जान पड़ता है कि मेरा यह दुर्बुद्धि, मन्दात्मा और पापी पुत्र दुर्योधन अब इस पृथ्वी का नाश करेगा क्योंकि जिस महात्मा की बात स्वतन्त्रता में भी कभी झूठी नहीं हुई और जिस की ओर अर्जुन सरीखा योद्धा है वह तीनों लोकों को भी जीत सकता है मृत्यु की भी सामर्थ नहीं कि वह अर्जुन के बाणों के सामने ठहर सके अब उन पाण्डवों से मेरे पुत्रों का युद्ध खड़ा हो गया है इस से मुझे जान पड़ता है कि मेरे दुष्ट पुत्र काल के वश में हैं में इन में कोई ऐसा रथी नहीं पाता जो अर्जुन के सामने खड़ा हो सके। हां, भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण इस योग्य हैं परन्तु उन के द्वारा भी जय पाना मुझे कठिन दीख रहा है क्योंकि कर्ण घालु और प्रमादी है और द्रोणाचार्य वृद्ध हैं यह अर्जुन से जो क्रोधी बलवान उद्यमी और पराक्रमी हैं कभी युद्ध नहीं कर सकते तुमुल युद्ध में भी हम को अपनी हार ही दीखती है क्योंकि सब पांडव शूरवीर अस्त्र जानने वाले और यशस्वी हैं जब तक यह अर्जुन अथवा यह सब न मरेंगे शांति नहीं होगी अर्जुन के समान कोई पराक्रमी नहीं उस ने खांडव वन को भस्म करके अग्निदेव को प्रसन्न किया और सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं को जीत कर युधिष्ठिर से राजसूय यज्ञ कराया वह इन्द्र समान है चाहे इन्द्र के वज्र से पर्वत बच रहे परन्तु अर्जुन के बाणों से कदापि कोई नहीं बच सकता ॥

छयालीसवां अध्याय

—:-०-:—

पांडवों के ओर की चिन्ता से दुःखी होकर धृतराष्ट्र और संजय का आपस में बल अबल का निश्चय करना ॥

धृतराष्ट्र की उक्त बातों को सुन कर सञ्जय ने कहा महाराज जो कुछ आप ने कहा है वह सब सत्य है इस में लेश मात्र भी झूठ नहीं। द्रौपदी को सभा में लाने के कारण पाण्डव क्रोध से भरे पड़े हैं कर्ण और दुःशासन के वचनों ने उन के क्रोध को दुगना कर दिया हुआ है मैं तो यह भी सुन चुका हूं कि अर्जुन ने धनुष से युद्ध करके महादेव जी को भी प्रसन्न कर लिया है उस ने स्वर्ग के लोकपालों के भी दर्शन पा लिये हैं अर्जुन के बिना इन साक्षात् ईश्वरों का कौन दर्शन कर सकता है जो अर्जुन अष्टमूर्ति धारी महेश्वर से युद्ध में नहीं मरा उस को दूसरा कौन मनुष्य मार सकता है यह रोम को खड़ा करने वाला तुमुल युद्ध द्रौपदी को खेंचने वाले और पाण्डवों को क्रोधित करने वाले मनुष्यों ने खड़ा किया है आप को मालूम है कि जिस समय दुर्योधन ने अपनी जांघ नङ्गी करके द्रौपदी को दिखाई थी उस समय भीमसेन ने जिसके होंठ क्रोध से फड़क रहे थे यह कहा था कि तेरह वर्ष बीतने पर मैं युद्ध में तेरी इन दोनों जांघों को

को तोड़ दूंगा हे महाराज वह सब पाण्डव बड़े तेजस्वी, अस्त्र ज्ञाता, श्रेष्ठ, युद्ध कर्ता और देवताओं से भी अजेय हैं मेरी समझ में वह अपनी स्त्री के कारण क्रोधित होकर निश्चय आप के पुत्रों का नाश करेंगे ॥

धृतराष्ट्र ने कहा हां ठीक है कर्ण के वचनों से इतना वैर नहीं हुआ था जितना द्रौपदी को सभा में लाने से हुआ है मेरा बड़ा पुत्र मुझ को अंधा, अज्ञानी और अचेत बतला कर मेरी बात को नहीं सुनता और कर्ण, शकुनि, दुशासन आदि उसे दुष्ट मंत्र देकर उस के अवगुण बढ़ा रहे हैं अर्जुन साधारण मात्र भी मेरे पुत्रों को बाण मारेगा तो वह नहीं बच सकेंगे, अर्जुन का मंत्री, रक्षक और सुहृद तीनों लोकों का स्वामी कृष्ण है उस के होते वह किस को पराजय नहीं कर सकता मुझे निश्चय हो गया है कि श्री कृष्ण, अर्जुन और भीमसेन के क्रोध करने पर मेरे पुत्र अपने मंत्री और शकुनि आदि के सहित जीते नहीं बच सकते ॥

सैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन के चले जाने के पीछे पाण्डवों के बन में बसने का वृत्तांत ॥

जब अर्जुन इन्द्र लोक को चला गया तो युधिष्ठर अपने

बाकी के भाइयों साथ उसी वन में वास करने लगा भीमसेन आदि वन से कंद मूल और नाना प्रकार के मृग मार कर लाते और उन का भोजन बना के पहिले ब्राह्मणों को खिलाते और पश्चात् आप खाते। इसी कारण वन में उन के साथ सन्यासी और गृहस्थी ब्राह्मण रहा करते थे युधिष्ठर के साथ वन में जितने मनुष्य थे उन में कोई भी रोगी और दुर्बल न था वह सब की पालना भले प्रकार से करता था द्रौपदी सब को भोजन करवाकर आप पीछे भोजन करती थी। युधिष्ठर पूर्व दिशा से, भीमसेन दक्षिण दिशा से, नकुल पश्चिम और सहदेव उत्तर दिशा से मृग मार कर लाया करता था इस प्रकार अर्जुन के बिना उन के इसी वन में पांच वर्ष गुज़र गए॥

अड़तालीसवां अध्याय

—:-o-:—

पाडवों के भय से धृतराष्ट्र और संजय का परस्पर सम्वाद॥

धृतराष्ट्र पाण्डवों के अद्भुत चरित्र को सुन कर शोक और चिंता से दुःखी हो गया और संजय को बुला कर कहने लगा हे संजय जूए की अनीति, पाण्डवों की शूरता, धैर्य और उन की परस्पर प्रीति को जान कर मुझे दिन रात चैन नहीं

पड़ता और विचार आता है कि जिस समय दोनों भाई नकुल और सहदेव जो सिंह के समान पराक्रमी अश्वनी कुमारों के समान दुःसह देव पुत्र, महाभाग, देवराज से तेजस्वी दृढ़ायुद्ध शीघ्र बाण चलाने वाले और क्रोधी हैं भीमसेन और अर्जुन को आगे करके युद्ध करेंगे तब मेरी सेना का क्या हाल होगा क्योंकि उस में इन दोनों देव पुत्रों के साथ युद्ध करने को प्रतिरथि कोई नहीं है और वृष्णि वंशी शूरवीर जो बड़े बलवान और क्रोधी हैं और पंजाबी लोग द्रौपदी के क्लेश को याद करके क्या न करेंगे, वासुदेव से रक्षा पाकर पांडव मेरे पुत्रों को सेना सहित अवश्य मार डालेंगे वृष्णि वंशीओं के वेग को दुर्योधन आदि हमारी ओर का कोई आदमी नहीं सह सकता मुझे हमारी ओर के राजाओं में से ऐसा कोई नहीं दृष्ट पड़ता जो भीमसेन की गदा को सह सके और अर्जुन के गांडीव धनुष के शब्द को सुन सके, उस समय मुझ को विदुर आदि मंत्रियों के वह मंत्र याद आवेंगे जिन को मैं ने न मान कर जूआ कराया था ॥

संजय ने कहा महाराज आपने यह बहुत बुरी बात की जो सामर्थ्य और अधिकार रखते हुए अपने पुत्र को सनेह के कारण ऐसा करने से न रोका, श्री कृष्ण जी ने जब जूए और पाण्डवों के दुख का हाल सुना वह तत्क्षण वहां वन ही में उन के पास पहुंचे और उन को धैर्य दिया धृष्टद्युम्न विराट, धृष्टकेतु और कैकेय ने पाण्डवों को इस दुख में देख कर जो बातें कहीं थीं वह मैं आप को पहिले ही सुना चुका हूं

श्री कृष्ण जी ने युद्ध में अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार कर लिया है और बड़े क्रोध से कहा जो धन तुम लोगों का राजसूय यज्ञ में मैंने देखा था मैं तुम को वह सब अब ले देता हूं, मैं अभी भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, अक्रूर, गद, सांब धृष्टद्युम्न, प्रद्युम्न आहुक इत्यादि को साथ लेकर जाता हूं और हस्तिना पुर में पहुंच कर दुर्योधन दुशासन कर्ण इत्यादि को मार कर वहां तुम्हें अभिषेक करता हूं ॥

युधिष्ठर ने इस समय कहा था महाराज आप जो कुछ कह रहे हैं सत्य है परंतु मुझे सच्चा करने के लिए मेरे शत्रुओं को साथियों सहित तेरह वर्ष पीछे मारीए उस समय मेरी प्रतिज्ञा पूरी होजावेगी। तब धृष्टद्युम्न आदि ने जो वहां बैठे हुए थे मीठी २ बातें कह कर उन के क्रोध को शान्त किया ॥

इस के पीछे सब ने द्रौपदी से कहा था कि देवी तू अब शांति कर जिन दुष्टों ने सभा में तुझे खैंचा था और क्लेश दिया था उन के रुधिर को तेरह वर्ष पीछे पृथ्वी पीवेगी उन को भेडिए और पक्षी खावेंगे और उन के कटे हुए सिरों को गृद्ध और गीदड़ खैंचे २ फिरेंगे ॥

हे महाराज उन की इन बातों से जान पड़ता है कि १३ वर्ष गुजरने पर युधिष्ठर के बुलाए हुए वह उस के पास आवेंगे और श्री कृष्ण जी को आगे करके युद्ध करेंगे। भला ऐसा कौन होगा जो इन अजेय और क्रुध सिंह रुपी वीरों का सामना करके अपने प्राण देगा ॥

धृतराष्ट्र ने कहा इन बातों से तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि

विदुर जी का कहना सत्य होगा ॥

उनचासवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का युधिष्ठिर से बनवास का दुःख और क्षत्रीयों का धर्म कहकर दुर्योधन से युद्ध की आज्ञा मांगना, उसका भीमसेन को धैर्य देना और वृहदाश्व ऋषि का वहां आना ॥

एक समय अर्जुन के स्वर्ग जाने के कारण उस के अभाव से और राज्य हार देने से युधिष्ठिर आदि चारों भाई द्रौपदी सहित काम्यक वन में एक एकांत स्थान में दुःखी होकर विचार में थे कि भीमसेन ने कहा, महाराज अर्जुन जिस के आधीन सब पांडवों के प्राण हैं आपकी आज्ञा से गया है कदापि वह कहीं नष्ट होगया तो हम सब पुत्रों सहित पांचाली, सात्यकी और वासुदेव जी अवश्य मरजायेंगे, हाय इस से बढ़कर और क्या दुःख होगा न जाने वह महात्मा अर्जुन अब क्या २ दुःख उठा रहा होगा, हमें उस का बड़ा भरोसा है और उसी के भरोसे पर हम ने पुनः राज पाना है, यह जो २ दुःख हम को हो रहे हैं केवल आपके जूए के कारण होरहे हैं अब आप क्षत्रि धर्म का विचार कीजिये और बनवास को त्यागिये बनवास करना क्षत्रियों का धर्म नहीं, क्षत्रियों का श्रेष्ठ धर्म

राज्य करना ही कहा जाता है, आप तो हम सब से अधिक जानते हैं, उनके विपरीत न करीये, आप आज्ञा दीजिये कि हम सब अर्जुन और श्री कृष्ण को बुला कर बारह वर्ष से पहिले ही वन से लौट चलें और धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार डालें। मैं केवल अपने वेग से ही व्यूहित सेना और धृतराष्ट्र और सुबल के पुत्रों को मार कर यमलोक में पहुंचा सकता हूं दुर्योधन और कर्ण आदि जो सन्मुख आवेगा सब को मार डालूंगा उन के मरने पर आप बलवान होजायेंगे और इस से कोई दोष भी नहीं रहेगा, इस पाप को हम नाना प्रकार के यज्ञ करके भस्म कर देंगे और आप स्वर्ग वास करेंगे, यदि आप बालक के समान वृथा हठ न करें तो निश्चय वही होगा जो मैं कहता हूं॥

हे युधिष्ठिर छली को छल से मारने में कोई दोष नहीं इस लोक में धर्मज्ञ लोक एक दिनरात को एक वर्ष के बराबर कहते हैं अर्थात जो पाप वर्ष दिन के प्रायश्चित से छूटता है वह दूसरा प्रायश्चित करने से एक दिन रात में ही दूर होजाता है जैसे वेद का प्रमाण है कि एक कृच्छ्रव्रत करने से वर्ष के प्रायश्चित दूर हो जाते हैं, यदि आप वेद का प्रमाण ही मान लें तो एक वर्ष के बीतने पर ही तेरह वर्ष का बीतना समझ लीजिये क्योंकि इतना काल बीतने पर दुर्योधन सकल पृथ्वी के राजाओं को अपने आधीन करके या उन में से बलवानों से मित्रता करके बलवान हो जायगा तेरहवां वर्ष हमको गुप्त होकर काटना है उस में वह दूतों द्वारा हमारा अवश्य पता लगा जिस से पुनः हमें बारह

वर्ष का वनवास मिलेगा भला उस वर्ष को भी हम लुप्त हो कर काट लें तो फिर वह आप को जूआ खेलने के लिये बुला लेगा और आप फिर सब कुछ जूए में हार देंगे क्योंकि वह छल से अपनी इच्छा के अनुकूल पांसें डालना जानता है फिर हम सब को वनवास करना पड़ेगा इस प्रकार हम मरण पर्यंत दीन ही रहेंगे ॥

हे युधिष्ठर मेरी समझ में छली का छल से मारा जाना ही ठीक है आप मुझ को आज्ञा दीजिये उस को पाकर मैं दुर्योधन को इस प्रकार से मारूंगा जिस प्रकार वायु से उड़ी हुई चंगारी तृण के ढेर को भस्म कर देती है ॥

युधिष्ठर ने इन बातों को सुन कर भीमसेन के मस्तक को प्यार से सूंघा और कहा हे वीर इस में संदेह नहीं कि तू तेरह वर्ष बीतने पर गांडीव धनुर्धारी को साथ लेकर दुर्योधन को मारेगा हमारे वनवास का काल अभी पूरा नहीं हुआ बिना पूरा हुए मैं उस को पूरा हुआ हुआ किस प्रकार मान लूं क्योंकि मैं झूठ को सदैव बुरा जानता हुं तू धैर्य कर फिर उस दुष्ट दुर्योधन का साथियों सहित नाश कर दीजियो ॥

यह बातें हो ही रही थीं कि बृहदश्व ऋषि भी वहां आ पहुंचे, उन को देख कर युधिष्ठर ने शास्त्र के अनुसार मधुपर्क देकर उन की पूजा की और उन को बैठा कर आप भी उन के सन्मुख बैठ गया और बड़ा दीनता से कहने लगा ॥

हूं महाराज ! छली दुष्ट और जुआरी मनुष्यों ने मुझ जूए से अनभिज्ञ को बुला कर जूए में छल से मेरा सब राज्य और धन हर लिया है और प्राणों से भी अधिक प्यारी हमारी भार्या को भी सभा में बुला कर उस को दुःख दिया है और फिर दुबारा मुझ से जूआ खेल कर मुझे भाईयों सहित मृग चर्म देकर यह महा दारुण वनवास दिया है मैं यहां बड़ा दुखी होकर बस रहा हूं और वहीं के कठोर बातें सुन रहा हूं और अपने सुहृदों के कहे हुए वचनों को याद कर कर के नित्य चिंता में रहता हूं । अर्जुन के न होने के कारण मुझे सदैव उदासी रहती है मन को शांति नहीं मिलती, आप कृपा करके बतलाइये कि वह आज कल मीठा बोलने वाला और दयालू अर्जुन हमारे पास कब आवेगा मैं इस समय अति दुःख में हूं और जानता हूं कि आपने ऐसा दुखी मनुष्य पृथ्वी भर में कभी न देखा होगा ।

बृहदश्व ऋषि ने कहा हे युधिष्ठिर मैं तुम को एक राजा की कथा सुनाता हूं इस से तुम को जान पड़ेगा कि वह राजा तुझ से भी अधिक क्लेश में था ॥

युधिष्ठर ने कहा महाराज वह कौन सा ऐसा राजा हुआ है कृपा कर के आप मुझे उस का सम्पूर्ण वृत्तांत विस्तार पूर्वक कहिये ॥

पचासवां अध्याय

—:०:—

बृहदश्व ऋषि का युदिष्ठर से नल और दम्यन्ती की उत्पत्ती उन दोनों के हृदय में परस्पर प्रीती होने और एक दूसरे का संदेशा हंसों के द्वारा पहुंचाने की कथा कहना॥

ऋषि बोले हे युधिष्ठर राजा वीर सेन का पुत्र नल बड़ा गुणवान,रूपवान और घोड़ों की विद्या जानने वाला राजा था, कई अन्य राजा उस के आधीन थे और उस का बड़ा तेज था, वह वेदपाठी, शूरवीर, सत्यवादी, अक्षौहिणियों का स्वामी और निषध देश का अधिपति था, उस की जूए में बड़ी प्रीति थी सुन्दर ऐसी थी कि श्रेष्ठ स्त्रियां उस की इच्छा रखती थीं और वह उदारता, जितेन्द्रियता और रक्षा करना आदि गुणों से सम्पन्न,बड़ा धनुर्धारी और स्वायम्भुव मनु जी के समान था॥

इसी विदर्भ देश में भीम नामी एक बड़ा पराक्रमी और गुणवान राजा था उस के हां सन्तान न थी और वह सन्तान के लिये सदैव यत्न करता रहता, एक समय इस राजा के पास दम ऋषि आये राजा और रानी दोनों ने उन का बड़ा आदर सत्कार किया जिस से वह ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और उन्हों ने राजा को तीन पुत्र और एक कन्या का वर दिया॥

समय पाकर उस राजा के हां तीन पुत्र और एक कन्या हुई कन्या का नाम दमयंती और पुत्रों का नाम दम, दांत और दमन रखा गया दमयंती अपने स्वरूप, तेज, यश, शोभा और सोभाग्य के कारण से इस लोक में विख्यात होगई। उस का स्वरूप लक्ष्मी के सदृश था आंखें उस की बड़ी २ थीं माना उस समय की स्त्रियों में कोई स्त्री उस के समान न थी, देवता भी उस के दर्शनों से प्रसन्न होजाते थे॥

इधर राजा नल का स्वरूप भी असदृश और कामदेव की सी मूर्ति के समान था, लोग दमयंती की प्रशंसा नल के पास और नल की दमयंती के पास आकर किया करते थे, इस से विना एक दूसरे के देखे ही इन दोनों के हृदय में परस्पर प्रीति होगई॥

नल की प्रीति यहां तक बढ़ गई कि वह वन में अकेला रहने लग पड़ा, एक समय उस ने उस वन में सुनहरी परों के कुछ हंस देखे उस ने उन में से एक को पकड़ लिया। पक्षी ने कहा हे राजा मुझे मत मार मैं दमयंती के पास जाकर तेरा हाल कहुंगा जिस से वह तेरे विना किसी अन्य मनुष्य को न चाहेगी॥

नल ने उस हंस को छोड़ दिया और वह सब हंस उड़ कर विदर्भ देश की ओर चले गए और विदर्भ नगर में पहुंच कर दमयंती के समीप पृथ्वी पर जा उतरे, दमयंती उन अद्भुत पक्षियों को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई और उन को पकड़ने के

लिये झट उन के पास चली गई ॥

दम्यंती को अपनी ओर आते हुए देख कर वह पक्षी इधर उधर उड़ गए हर एक के पीछे एक २ स्त्री पकड़ने को दौड़ी, जिस हंस को पकड़ने के लिये दम्यंती दौड़ी थी उस ने उस से कहा हे दम्यंती निषद देश का राजा नल स्वरूप में अश्विनी कुमारों के सदृश सुंदर है उस की मूर्ति कामदेव की सी है यदि तू उस से विवाह करले तो तेरा यह स्वरूप सफल होजाये, तेरा और उस का गुण और स्वरूप मिलता है, सो तेरा विवाह उस के साथ शोभा देगा ॥

दम्यंती ने कहा जो कुछ तुम ने मुझ को कहा है यही तुम नल को जाकर कह दो ॥

वह पक्षी वहां से उड़े और नल के पास पहुंच कर उन्हों ने उस को वह सारी व्यवस्था कह सुनाई ॥

इक्यावनवां अध्याय

—:०:—

नल की चिंता में दम्यंती का विवर्ण होना, उस के पिता का उस का स्वयम्बर रचना और राजाओं और देवताओं का वहां एकत्र होना ॥

अब दम्यंती को नल की चिंता रहने लगी, उस का वर्ण विवर्ण और मुख मलीन हो गया । देह पीली पड़ गई,

कामाग्नि उस के मन को दाह करने लगी, उस की नींद जाती रही, खाना पीना, उठना बैठना और अच्छी सेज पर सोना बुरा लगने लगा, जब देखो उसका मुख उदास । उस की सखियों ने उस की माता से इस का हाल कहा जिसने राजा तक उस हाल को पहुंचाया। राजा ने समझ लिया कि यह पुत्री अब युवा हो गई है इस का स्वयम्वर करना चाहिये। उस ने इस विचार को दृढ़ करने के लिये एक सभा एकत्र की, विचार के दृढ़ होने पर देशों में इस समाचार को पहुंचाने के लिये दूत भेजे गये, सब राजा लोग सुन्दर २ वस्त्र पहिन और दर्शनीय सेन घोड़े, हाथी आदि लेकर राजा भीम के नगर में आपहुंचे, राजा भीम ने उन सब राजाओं का यथा योग्य सन्मान किया ॥

इस ओर नारद मुनि और पर्वत ऋषि जो इन ऋषियों में उत्तम महात्मा महाज्ञानी और महा व्रती थे मनुष्य और इन्द्र लोकों में घूमते हुए इन्द्र के भवन में पहुंचे इन्द्र ने इन दोनों का पूजन किया और सब मंगल की क्षेम कुशल पूछी ॥

नारद ने कहा हम दोनों सब प्रकार से कुशल हैं और और सब राजा लोग भी प्रसन्न हैं ॥

तब इन्द्र ने पूछा कि आप कोई और समाचार बतलाइये और यह भी कहिये कि राजा लोग आज कल कहां हैं ॥

नारद जी ने कहा, विदर्भ देश के राजा भीम की दमयंती नाम कन्या का जो रूप और सौंदर्य में अद्वितीय है स्वयम्वर है

वह सब राजा लग इकत्र हो रहे हैं ॥

नारद जी की इस बात को सुन कर इन्द्र के लोकपाल और अग्नि देव भी अपने २ वाहनों पर चढ़ कर विदर्भ देश की ओर चल दिये रास्ता में उन्हों ने राजाओं में नल को जो दमयन्ती का अनुव्रत था देखा उस के सुंदर स्वरूप को जो कामदेव की सी छवि और सूर्य के तुल्य तेज रखता था देख कर दमयन्ती की ओर से निराश हो गये और अपने २ विमानों को आकाश में खड़ा कर के नल से कहने लगे हे राजा नल! तू सतव्रती है हमारा दूत बनकर तू हमारी सहायता कर ॥

बावनवां अध्याय

—:o:—

इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमराज का नल को दूत बना कर दम्यंती के पास भेजना और उस का दमयंती के पास जाकर उस को देवताओं का संदेशा देना ॥

राजा नल ने देवताओं के पास जाकर और हाथ बांधकर पूछा आप सब कौन हैं और किस काम के लिये मुझ को दूत बनाना चाहते हैं ॥

इन्द्र ने कहा हम सब देवता हैं, मैं इन्द्र हूं, यह अग्नि है, यह वरुण है और यह यमराज है हम सब दमयन्ती को वरने को

इच्छा से आये हैं सो तुम उन को जाकर कहदो कि हम चारों में से तू जिस को चाहती है वरले ॥

नल ने दोनों कर बांध कर इन्द्र से कहा महाराज मेरे और आप के आने का प्रयोजन एक ही है इस कारण मुझे न भेजिये क्योंकि जो मनुष्य जिस स्त्री को आप वरना चाहता है वह उस स्त्री का यह क्योंकर कहो सकता है कि तू अमुक पुरुष को वर ॥

देवताओं ने कहा तुम हमारे साथ पहिले प्रतिज्ञा कर चुके हो, अब तुम को प्रतिज्ञा को पालन करना ही उचित है जाओ प्रतिज्ञा का पालन करो और दमयंती को हमारा संदेशा दो ॥

नल ने कहा बहुत अच्छा मैं जाऊंगा परन्तु मैं राज मंदिर के भीतर क्योंकर जा सकूंगा क्योंकि उस पर बहुत से रक्षक होंगे ॥

इन्द्र ने कहा तू चला जा तुझे भीतर जाने से कोई न रोकेगा ॥

नल ने कहा बहुत अच्छा और वह वहां से चल कर दमयन्ती के घर पहुंचा और दमयंती को जो परम सुन्दरी, शोभायमान अत्यंत कोमलांगनी सूक्ष्म कटि सुन्दर नेत्र रखने वाली और अपने तेज से चन्द्र की प्रभा को मलीन करने वाली थी सखीयों के बीच में बैठी हुई देख कर उस का हृदय काम अग्नि से दीप्त हो गया परन्तु उसने अपना वचन सत्य करने के लिये उसे प्रकट न होने दिया ॥

नल के स्वरूप को देख कर दमयन्ती की सखीयां अपने अपने आसनों पर से उठ खड़ी हुईं और अचम्भित होकर मन ही मन में उस की प्रशंसा करती रहीं परन्तु मुख से किसी ने भी कोई शब्द न निकाला सब मन में कहती थीं कि इस महात्मा का रूप क्रांति और धैर्य अद्भुत है यह तो कोई देवता गन्धर्व या यक्ष जान पड़ता है नल का तेज उन पर ऐसा पड़ा कि उन के मुख बन्द ही रहे और उस समय तक एक भी शब्द उन के मुख से न निकला ॥

दमयन्ती ने मन्द २ मुसकरा कर उस समय मुसकराते हुए नल से कहा तुम को देख कर मेरा हृदय काम रूपी बाणों से विदीर्ण हो गया है तुम सत्य कहो कौन हो कहां से आए हो और क्या काम है और रक्षित भवन में बिना रोक टोक किस प्रकार घुस आए हो ॥

नल ने कहा मैं देवताओं का दूत हूं नल मेरा नाम है तुझ को इन्द्र, अग्नि, वरुण और यमराज चाहते हैं इन में से जिस को तू चाहे अपना पति बना ले यह उन्हीं देवताओं का प्रभाव है कि मैं बिना दीखे और बिना रोक टोक यहां चला आया हूं देवताओं ने इसी कार्य के लिये मुझ को तेरे पास भेजा है अब तेरा जैसा विचार हो वैसा कर ॥

तिरपनवां अध्याय

—:o:—

दमयन्ती का देवताओं को पति बनाना न मानना

और नल का बरना और नल का देवताओं के पास आकर वृत्तांत कहना ॥

दम्यन्ती ने देवताओं को नमस्कार की और हंस कर नल से बोली हे राजा! तू मुझ को अङ्गीकार कर मैं तेरी क्या सेवा करूं मैं अपने शरीर धन को तेरे अर्पण करती हूं तू मुझ से विवाह कर ले जब से मैं ने हंसों से तेरा हाल सुना है मैं उसी समय से तेरे विरह से व्याकुल हो रही हूं और तेरे ही मिलने के लिये मैं ने यह सब राजा इकट्ठे किये हैं यदि तू मुझ को अङ्गीकार न करेगा तो मैं विष खाकर या अग्नि में जल कर या गले में फांसी लगा कर मर जाऊंगी ॥

नल ने कहा हे दम्यन्ती ! तू लोक पालों को त्याग कर मनुष्य को क्यों पति बनाना चाहती है मैं तो उन देवताओं के पाओं की धूल भी नहीं हूं तुझ को उन्हीं देवताओं में से एक को पति बनना चाहिये क्योंकि देवताओं के अप्रिय करने वाले मनुष्य का नाश हो जाता है सो हे दम्यन्ती तू मेरी रक्षा कर और देवताओं को वर और सुंदर वस्त्र दिव्य चित्र विचित्र माला और अच्छे अच्छे गहने पहन मुझे तो इस संसार में ऐसी कोई स्त्री नहीं दीखती जो अग्नि जैसे देवता को जो संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का भक्षण करते हैं न वरे या उस यमराज को जिस के दण्ड के भय से सब जीव धर्म ही करते हैं न चाहे या उस इन्द्र को जो दैत्यों के मारने वाले देवताओं का राजा है अपना पति न बनाना चाहे हे दम्यन्ती ! तू मेरे इस वचन को मान कर इन में से

किसी एक को वर ले ॥

नल की इन बातों को सुन कर दमयन्ती व्याकुल हो गई और नेत्रों से आंसू गिराती हुई बोली, मैं सब देवताओं को नमस्कार करके तुझ को ही अपना पति अंगीकार करती हुं तू मेरे इस वचन को सत्य मान ॥

नल ने उस शोक गृस्त को कहा कि हे कल्याणी ! हे भद्रे ! मैं इस समय तेरे पास दूत बन कर आया हुं मुझ को वही काम करना चाहिये जिस से मेरा दूत धर्म बना रहे, पराये काम के लिये आकर मैं अपना स्वार्थ क्योंकर कर सकता हुं सो हे सुन्दरी ! तू वह काम कर जिस से मेरा धर्म भी बना रहे क्योंकि धर्म के बने रहने से स्वार्थ की सिद्धि भी हो जाया करती है ॥

इन वचनों को सुन कर दमयन्ती व्याकुलता से रोती हुई नल से कहने लगी, हे नाथ ! मेरी बिनती मानिये आप अन्य राजाओं और देवताओं के साथ स्वयम्बर में आजाइये मैं उन के सन्मुख आप के गले में जयमाल डाल दूंगी इस से आप पर किसी प्रकार का दोष नहीं रहेगा ॥

राजा नल दमयन्ती की इस बात को सुन कर इस जगह से चल कर वहां पहुंचा जहां सब देवता इकत्र थे देवताओं ने उस से पूछा राजन् ! तुम्हें दमयन्ती मिली या नहीं यदि मिली है तो हमारे विषय में उस ने क्या कहा है ॥

नल ने कहा मैं आप की कृपा से दमयंती के भवन में जिस के बड़े २ ऊंचे द्वारों पर वृद्ध २ आदमी लकड़ियां हाथों

में लिये हुए पहरा दे रहे थे बिना रोक टोक च ा गया मैंने उस को अपनी सखीयों के साथ देख कर आप का संदेशा दिया, जिस को सुन कर उस ने कहा कि मैं तुम को ही अपना पती वरती हूं। मैंने कहा मैं देवताओं का दूत हूं, तब उस ने मुझे कहा कि तुम उस देवताओं के साथ २ स्वयम्वर मंडप में आओ मैं तुम को सब के सन्मुख वरूंगी ऐसा करने से तुम को दोष नहीं लगेगा, इतनी वात उस से मेरी हुई इस से अधिक नहीं हुई ॥

चौवनवां अध्याय

—:-०-:—

स्वयम्बर मंडप में दम्यंती का देवताओं की प्रार्थना करना और सब के सन्मुख राजा नल के गले में जय माल पाना नल और दम्यंती का विवाह होना और उन के हां एक पुत्र और एक पुत्री का होना ॥

स्वयम्वर के नियत काल और मुहुर्त आने पर राजाभीम ने सब राजाओं को स्वयम्वर सभा में बुलवाया, यह राजा लोग जो दम्यन्ति का पाने की इच्छा से वस्त्र आभर्ण इत्यादि से बड़े सजे हुए थे उस रंग भूमि में जे सोने चांदी के खम्बों से सजी हुई थी और जिस में नाना प्रकार के सुन्दर २ बहु मुल्य

आसन बिछ रहे थे आये और बैठ गए, इस समय यह सभा एक बड़ी शोभायमान सभा बन गई ॥

दम्यान्ति हार शृंगार लगाए हुए राजाओं के चित्त को हरती और उन को अपने पर मोहित करती हुई सभा में पहूँची उस की सुंदरता को देख कर सब राजाओं की टक टकी उस की ओर लग गई, जब राजाओं की वंशावली पढ़ी जाने लगी तो दम्यंति ने एक स्थान पर पाच ऐसे मनुष्य देखे जिन का रूप रंग एक सम था, उन पाचों में वह यह न पहचान सकी कि राजा नल इन में कौन सा है। उन में से जिस की ओर वह देखती वह राजा नल ही जान पड़ता वह ताड़ गई कि यह नल के बताए हुए इन्द्र आदि चार देवता हैं और पांचवां नल है परंतु वह इस विचार में पड़ गई कि इन से नल को किस प्रकार पहचानूं। इस के लिये उस ने कई उपाय किये परंतु उस का मनोरथ सिद्ध न हुआ तब उस ने बड़ी नम्रता से दोनों कर बांध कर मन, वचन और कर्म से उन देवताओं को नमस्कार किया और विनय पूर्वक कहा महाराज मैं नल को अपना पति धार चुकी हुं आप मुझ पर अनुग्रह कीजिए और नल ही दिखाईये ॥

देवताओं ने उक की विनय पर ध्यान देकर और उस को अपने व्रत में दृढ़ पाकर देवताओं और मनुष्य की पहचान के चिन्हों का ज्ञान देदिया अब दम्यंति ने उन सब की ओर गूढ़ दृष्टि से देखा देवता पलक नही मारते थे वह पृथ्वी पर स्पर्श न कर रहे थे, उन के मस्तक पर पसीना नहीं

आता था और उन के शरीर की छाया नहीं थी और नल में यह सब चिन्ह थे उस ने नल को उन में से झट पहचान लिया और उस का वस्त्र पकड़ कर उस के गले में जयमाल डाल दी ॥

नल ने बड़े प्रसन्न होकर कहा हे कल्याणी तू ने देवताओं के होते हुए उन को त्याग कर मुझे अपना पति बनाया है मैं सदैव तेरे कहे के अनुकूल चला करूंगा और जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेंगे तुझ से प्रीति रखूंगा ॥

दम्यंति ने इन बातों को सुन कर मीठी २ बातें कह कर नल को प्रसन्न किया ॥

तब यह दोनों इन्द्र आदि देवताओं की शरण में गए जिन्हों ने प्रसन्न होकर नल को दो दो वरदान दिए, इंद्र (१) यज्ञ में देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन और (२) उत्तम और शुभ गति का मिलना । अग्नि देव (१) जहां तू मुझ को स्मरण करेगा मैं वहां ही प्रकट हो जाऊंगा और (२) मरते समय तुझ को मेरी समान प्रभाव रखने वाले लोक मिलेंगे । यमराज (१) जो अन्न तू बनावेगा वह परम स्वादिष्ट होगा (२) तेरी बुद्धि सदैव धर्म में रहेगी, वरुणदेव (१) माला दी जो सदैव नई बनी रहेगी (२) जहां तू जल चहेगा वहां ही प्रकट हो जाएगा, देवता वर देकर अपने अपने लोकों को चले गए ॥

अब राजा भीम ने दम्यंति का विवाह नल के साथ विधि पूर्वक कर दिया नल वहां कुछ दिन इच्छा पूर्वक रहा

और भीम से आज्ञा लेकर अपने नगर को चला गया जहां वह दम्यंति के साथ इस प्रकार से आनन्द पूर्वक रमण करने लगा जैसे इंद्र इंद्राणी के साथ करता है और अपने सूर्य तुल्य प्रभाव से धर्म के अनुसार राज्य शासन करने लगा। उस की नीति से सब प्रजा प्रसन्न थी थोड़े ही काल में नल ने अश्वमेध आदि बहुत से बड़े २ यज्ञ जिन पर बहुत सा द्रव्य खर्च होता है किए और दम्यंति को साथ लेकर कई वनों और उपवनों में विहार करता रहा, इस के हां एक पुत्र इन्द्रसेन और एक कन्या इंद्रसेना के नाम की हुई ॥

पचपनवां अध्याय

—:-o-:—

रास्ता में देवताओं का कलियुग से मिलना और दम्यंति का हाल सुन कर कलियुग का क्रोध करना ॥

दम्यंति के स्वयम्वर से लौट कर अपने लोकों को जाते हुए देवताओं ने रास्ता में कलियुग और द्वापर को आते हुए देखा, इन्द्र ने पूछा हे कलियुग! तू अपने सारथी द्वापर को लेकर कहां जा रहा है ॥

कलियुग ने कहा हे इंद्र! मेरा मन दमयंति पर मोहित हो रहा है मैं उस को वरने के लिए उस के स्वयम्वर में जा रहा हूं ॥

इंद्र ने हंस कर कहा यह स्वयंवर तो समाप्त होचुका है और हमारे सन्मुख दमयंति ने राजा नल को अपना पति वर लिया है ॥

कलियुग को इंद्र के यह शब्द सुन कर बड़ा क्रोध हुआ और वह बोला यदि दमयंति ने देवताओं के होते हुए मनुष्य को अपना पति बनाया है तो उस को दण्ड मिलना चाहिए ॥

देवताओं ने कहा दम्यंति ने हमारी आज्ञा के अनुसार नल को वरा है ऐसी कौन सी स्त्री होगी जो नल को अपना पति न बनाना चाहे क्योंकि राजा नल सब गुणों से युक्त, ब्रती, वेद के धर्म को जानने वाला और चारों वेदों का वक्ता है उस के घर में धर्म और यज्ञ होने के कारण वेद तृप्त रहते और वह स्वंय भी अहिंसक, सत्यवादि और दृढ़ ब्रती है और धृति, ज्ञान, तप, शौच, दम और शम आदि गुण उस में मौजूद हैं कि जिन विघ्न करने से भी बाधा नहीं लग सकता ऐसे धर्मात्मा राजा को जो शाप देने की इच्छा करेगा वह मूढ़ अपने आप को शाप देगा और अपने हाथ से अपना गला काटेगा और वड़े घोर नरक में पड़ेगा यह कहते हुए वह देवता स्वर्ग को चले गए और कलियुग द्वापर से कहने लगा मैं अवश्यमेव नल और दम्यंति को दण्ड दूंगा और अभी जाकर नल के शरीर में प्रवेश करके उस को राज्य से ऐसा भ्रष्ट करूंगा कि वह उस सुंदर दम्यंति के साथ आनन्द न कर सकेगा तू भी प्रवेश हो कर मेरी सहायता कर ॥

छपनवां अध्याय

—:o:—

राजा नल का पुष्कर से जूआ खेलना और बहुत सा धन हार देना ॥

कलियुग नल के यहां पहुंचा और उस के शरीर में प्रवेश करके मौका देखने लगा इस प्रकार उस को बारह वर्ष बीत गए एक दिन राजा नल ने लघुशंका करके आचमन तो कर लिया परन्तु पाओं धोये बिना सन्ध्या करने बैठ गया इस समय कलियुग झट उस के शरीर में घुस गया और अपना दूसरा रूप बना कर पुष्कर के पास जाकर कहने लगा कि चल राजा नल से जूआ खेल, मैं तेरे साथ हूं तू जीतेगा और निषध देश का राज्य करेगा ॥

पुष्कर राजा नल के पास गया और कलियुग भी पांसे बन कर पुष्कर के साथ हो लिया। पुष्कर ने नल को कहा आओ इन पांसों के साथ जूया खेलें ॥

नल ने कलियुग के प्रभाव से जूआ खेलना स्वीकार कर लिया और वह पुष्कर के साथ जूआ खेलने लगा। नल ने बहुत सा स्वर्ण, धन, रथ और वस्त्र हार दिये उस का कोई सुहृद उस को इस से न रोक सका यह खबर पुरजनों को पहुंची वह मंत्रियों को साथ लेकर राजा को जूआ खेलना त्याग करने को कहने के लिये आये और दमयन्ती द्वारा अपने आने की खबर राजा को दी ॥

दम्यन्ती बड़ी शोक में पड़ी हुई नल के पास गई और आंखों में आंसू भर कर कहने लगी महाराज! आप की भक्ति के कारण पुरवासी मन्त्रियों सहित आप के दर्शनों के लिये आए हैं और द्वार पर खड़े हैं आप उन से मिलिये। दम्यन्ती ने रो रो कर कई बार इस प्रकार राजा को कहा परंतु कलियुग से आविष्ट चित्त होने के कारण नल ने उस को कुछ उत्तर न दिया और अब सब पुरवासी और मंत्री दुःखी और लज्जित होकर अपने २ घरों को चले गए। जूआ कई मास रहा और नल हारता चला गया॥

सतावनवां अध्याय

—:-०-:—

राजा नल का जूए में सब धन हारते देख कर दम्यंती का वार्ष्णेय सूत के साथ अपने पुत्र और पुत्री को कुंडन पुर भिजवाना॥

जब दम्यंती ने देखा कि राजा नल मूढ़ चित्त होकर उन्मत की समान जूआ खेल कर सब धन हारता चला जाता है तो उस को बड़ा शोक और दुःख हुआ उस ने उस समय सेना नाम धात्री को जो बड़ी हितकारी, चतुर और मीठा बोलने वाली थी बुला कर कहा कि तू मंत्रियों को यह कह कर बुला ला कि तुम को राजा ने हारे और न हारे हुए धन के जानने के लिये बुलाया है। वह मंत्रियों के पास गई

और उन को बुला लाई ॥

इस समय दमयन्ती ने पुनः राजा के पास जाकर कहा महाराज आज फिर पुरवासी आकर द्वार पर खड़े हैं आप उन को दर्शन दीजिये परन्तु राजा जुए में ऐसा मत्त था कि उस ने दमयन्ती की बात की ओर ध्यान न दिया दमयन्ती लज्जित हो कर अपने भवन में चली गई और सेना धात्री को बुला कर कहने लगी हे धात्री ! अब तू जाकर वार्ष्णेय सारथी को बुला ला उस के साथ मेरा बड़ा काम है ॥

वह धात्री भवन से बाहर गई और नौकरों को भेज कर उस सारथी को बुलवा लाई दमयन्ती ने उस को बड़ी मधुरता से कहा हे वार्ष्णेय तू जानता है कि राजा तुझ को कितना प्यार करता है अब इस उलटे समय में तुझ को राजा की सहायता करनी है अब इस समय राजा की यह दशा है कि ज्यों ज्यों हारता जाता है त्यों त्यों जुए में उस की प्रीति बढ़ती जाती है राजा के पासे सदैव उलटे पड़ते हैं और पुष्कर मूंह मांगा दाव पाता जाता है इस समय राजा जूए में ऐसा मोहित हो गया है कि न वह मेरी बात सुनता है और न किसी दूसरे अपने सुहृद की मुझे मालूम है कि यह दोष महात्मा नल का नहीं इस में और ही कारण है सो हे सारथी ! इस अवस्था में मेरे मन का भाव शुद्ध नहीं है कदाचित् ऐसा न हो कि नल नाश को प्राप्त हो जाय मैं जो आज्ञा देती हूं सो तू कर तू जा नल के प्यारे मन के वेग की समान चलने वाले घोड़ों को जोत कर रथ को यहां ले

आ और इन पुत्र और पुत्री को उस में बिठला कर कुण्डन पुर को चला जा इन को रथ सहित मेरे पिता को सौंप कर चाहे तू वहां रहियो चाहे जहां तेरी इच्छा हो चला जाइयो ॥

सारथी ने रानी से यह बात सुन कर मंत्रियों से सलाह ली जिन्हों ने उस को ऐसा करने की आज्ञा दे दी सारथी ने उसी समय उन दोनों को रथ पर बिठलाया और विदर्भ देश की ओर चल दिया और वहां पहुंच कर पुत्र और पुत्री रथ और घोड़े राजा भीम को सौंपे और भीम की आज्ञा पाकर आप राजा नल की ओर से महा दुःखी हुआ हुआ अपनी जीविका ढूंडता हुआ अयोध्या में पहुंचा और वहां राजा ऋतुपर्ण के हां सारथियों में नौकर हो गया ॥

अठावनवां अध्याय

—:-०-:—

राजा नल का सब कुछ हार कर दम्यन्ती सहित एक वस्त्र पहिनकर वन को निकलना पुष्कर के भय से पुरवासियों का उस का आदर न करना और रास्ता में कुछ पक्षियों का नल का वस्त्र हरना ॥

जब नल ने सब धन हार दिया तो पुष्कर हंस कर

कहने लगा हे नल अब जो कुच्छ निन द्वारा पदारथ तेरे पास है उस को दांव पर लगा कर जूआ खेल, मेरी समझ में अब दम्यन्ती ही तेरे पास वाकी है तू अब उस को दाव पर लगा दे ॥

पुष्कर की इस वात को सुन कर क्रोध से नल का हृदय फट गया परन्तु वह मुख से कुच्छ न बोला और सब वस्त्र और गहने उतार केवल एक वस्त्र धारण करके वहां से चल दिया। दम्यन्ती भी एक ही वस्त्र पहिन कर उस के पीछे चल पड़ी वह दोनों तीन दिन तक नगर के वाहर ठहरे रहे ॥

इधर पुष्कर ने आज्ञा दे दी कि जो मनुष्य नल के पास जावेगा या उस का आदर करेगा वह मुझ से दंड पावेगा यद्यपि नल सब आदर किये जाने के योग्य था परन्तु पुष्कर के भय से किसी ने उस से वात तक न की और उस ने तीन दिन तक केवल जल पीकर निर्वाह किया, चौथे दिन वह वन की ओर चल पड़ा दम्यन्ती भी उस के पीछे होली रासता में उस ने सुनहले पर रखने वाले पक्षी देखे, भूख के कारण उस ने उन्हीं को मार कर खाने के विचार से उनको पकड़ने के लिये अपना दोपट्टा उन पर डाला, वह पक्षी उस दुपट्ट को लेकर आकाश में उड़ गये ॥

नल उन की ओर देखने लगा जिस पर पक्षियों ने कहा अरे दुर्बुद्धि हम पांसे हैं हम तुझ को वस्त्र सहित जाते देख कर प्रसन्न न थे इस कारण हम ने तेरे वस्त्र को छीना है ॥

पक्षियों की यह बात सुनकर और अपने आप को नंगा जान कर नल ने कहा हे प्यारी ? देख जिन के काम से मैं सब राज्य इत्यादि हार कर भूख के मारे ऐसा दुःखी हूं उन्हीं ने अब पक्षी बन कर मेरा वस्त्र हर लिया है अब मैं महा विपत्ति में पड़ गया हुं तू मेरी यह हित की बात ध्यान देकर सुन । देख यह जो बहुत से रास्ते दीख रहे हैं यह अवंति और ऋक्षवंत पर होते हुए दक्षिण की ओर चले गए हैं और यह जो बड़ा पर्वत दीख रहा है इस का नाम विन्ध्य है और इस के समीप पयोष्णी नदी है जो समुद्र में मिलती है यहां पर बहुत से महाऋषियों के आश्रम हैं और यहां फल फूल और मूल भी बहुत से मिलते हैं यहां से दो राह जाती हैं यह तो विदर्भ देश को गई है और यह कौशल को, इस के आगे दक्षिण को चल कर दक्षिणापथ देश है ॥

नल से बार २ ऐसी बातें सुन कर दमयन्ती ने दीनता से कहा महाराज आपके इस बार २ कहने से मेरा हृदय विदीर्ण हो कर मेरे सब अंग अचल से हुए जाते हैं, मैं आपको इस निर्जन बन में भूखा, नंगा, थका हुआ और राज्य हीन छोड़ कर कैसे चली जाऊं ! मैं आपके साथ रह कर इस महावन में आपके श्रम और शोच को दूर करूंगी । वैद्यों का मत है कि स्त्री के समान कोई औषधी नहीं है इस को आप सत्य जानिए॥ नल ने कहा तू सत्य कहती है दुःखी मनुष्य की औषधी और मित्र स्त्री के समान और कोई नहीं मेरी इच्छा भी तुझे

छोड़ने की नहीं मैं चाहे अपने शरीर को त्याग दूं परन्तु तुझे कदापि न त्यागूंगा ॥

दम्यंती ने कहा जब आप मुझे त्यागना नहीं चाहते तो बार बार विदर्भ देश का रास्ता क्यों बतलाते हैं, हे स्वामिन् मैं आप की शरण हूं यदि आप माने तो हम विदर्भ देश में चलें मेरा पिता आप का बड़ा सत्कार करेगा और हम सब वहां आनन्द में रहेंगे ॥

उनसठवां अध्याय

—:-०-:—

नल और दम्यन्ती का एक धर्मशाला में पहुंचना और नल का दम्यन्ती को सोती हुई को छोड़ कर चले जाना

नल ने दम्यन्ती को कहा कि हे महाभागे मैं तेरे पिता के घर दरिद्र अवस्था में नहीं जा सकता मेरे वहां जाने पर तुझ को अत्यन्त क्लेश होगा। यह कह कर दोनों एक वस्त्र ओढ़े हुए एक धर्मशाला में पहुंचे और वहां ही भूखे प्यासे भूमि पर पड़ कर सो गए ॥

परन्तु नल को निद्रा कहां ? दम्यन्ती के सो जाने पर वह फिर जाग उठा और परम शोच करने, लगा, उस ने सोचा कि दम्यन्ती को यहां सोती हुई को छोड़ कर चला जाऊं क्योंकि यदि यह जाग पड़ी तो मुझ को अकेला नहीं

जाने देगी और यदि मेरे पीछे जागी तो निस्संदेह अपने पिता के घर चली जाएगी मेरे साथ जाने में इस को कई प्रकार की पीड़ा होगी हाय ! जिस मेरी स्त्री को कभी वायू और सूर्य ने भी न देखा था अब वह इस दुःखी अवस्था में केवल एक वस्त्र ओढ़े इस धूल युक्त स्थल पर हीन दशा में पड़ी है ॥

राजा नल को अत्यन्त कष्ट हुआ परन्तु दम्यन्ती की आपत्ति को न्यून करने के निमित्त नल ने यही सोचा कि इस को छोड़ना ही उत्तम है नल ने इधर उधर देखा तो उस शाला के एक कोने में उस को एक तलवार मिली उस से राजा ने दम्यन्ती की आधी ओढ़नी काट कर अपने शरीर को ढाका और बाहिर निकल कर चल दिया ॥

अभी थोड़ी ही दूर गया था कि उस को फिर दम्यन्ती का ख्याल आया नल वापस धर्म शाला में आया और उस को वैसे ही सोती हुई देख कर फिर रुदन करने लगा कि हाय ! मैं तुम प्राण प्यारी को इस अनाथ अवस्था में छोड़ना चाहता हूं धिक्कार है मेरे जीने पर क्यों न मैं मर गया ? उस अवस्था में इसके पिता इस को घर में ले जाते और यह इतना दुःख तो न पाती ॥

इस प्रकार के विचारों से नल, बड़ा दुःखी हुआ । कभी दम्यन्ती को छोड़ना चाहता और कभी साथ ले जाना चाहता निदान उस को छोड़ना ही अच्छा समझा और फिर जंगल को चल दिया ॥

थोड़ी दूर जाकर फिर लौट आया और फिर रुदन करके फिर चल दिया, संक्षेप यह कि वह कई वार प्रेम वश होकर लौटा और कई बार चल दिया, अन्त को कलियुग के प्रभाव से चला ही गया और दम्यंति अकेली उस धर्म शाला में रह गई ॥

साठवां अध्याय

—:०:—

दम्यंति का जाग कर विलाप करना, बन में नल को ढूंढना, एक अजगर का उस को निगल जाना व्याध का दम्यंति को छुड़ाना और उस पर कामासक्त होना और दम्यंति का उस को शाप देना ॥

नल के चले जाने पर दम्यंति जाग उठी और अपने आप को अकेला पाकर महा शोक करने लगी और पुकार पुकार कर ऊंचे स्वर से कहने लगी कि हे नाथ मैं मर गई मुझे बचाईये और अपने वचनों को सच्चा कर दिखाइए मैं ने आप का कोई अपकार नहीं किया जो मुझ को इतना दुख देकर चले गए हो, यदि आपने मेरा त्याग करना था तो मेरे प्राण क्यों न निकल गए, यदि आपने हंसी की है तो महाराज निकल आइए अधिक परिहास अच्छा नहीं

आप की प्रिय दमयंति इस से अधिक उपवास नहीं सहार सकती है नल तुम ने मुझ से झूठे प्रण किए थे नहीं तुम झूठे नहीं बोल सकते, आओ नल शीघ्र आओ, और अपनी प्रियतमा के प्राण बचाओ ॥

मुझे अपने प्राणों का शोच नहीं है परंतु बड़ा शोच यही है कि तुम मेरे विना किस प्रकार जियोगे, जब तुम अकेले किसी वृक्ष के नीचे पड़े होगे तो तुम्हारी क्या गति होगी ॥

इस प्रकार दमयंति शोच करती हुई वन में इधर उधर ढूंडने लगी कभी गश खाकर गिर पड़ती और कभी डर कर खड़ी होजाती कभी छिप जाती कभी चिल्लाती और कभी ढीक मार कर रोती, अन्त को आप शाप दिया कि जिस के शाप से मेरा पति दुख उठाता है उस को इस से अधिक दुख हो और जिस पापी ने निष्पाप नल को इस अवस्था में पहुंचाया है वह नल से भी अधिक दुख पावे और उस को जीविका भी दुख से मिले ॥

इस प्रकार के शाप दे कर दमयंति आगे बढ़ी अभी थोड़ी ही दूर गई थी कि एक बड़े अजगर ने झाड़ी में निकल कर उस को पकड़ लिया विचारी सुकुमार दमयंति रोने और चिल्लाने लगी और कहने लगी हे महाराज बचाइए हे महाराज बचाइए, यह कह कर रोने और चिल्लाने लगी, दैव योग से एक व्याध उधर आ निकला और सर्पग्रस्त दमयंति को देख कर झट उस के पास आया और एक तीक्ष्ण

बाण से अजगर को काट कर दम्यन्ती की जान बचाई ॥

परन्तु बचाना क्या था उस के मन में और ही पाप उत्पन्न हुआ पहिले तो उस ने उस से वन में आने का हाल पूछा और जब सब कुछ सुन चुका तो उस को अपने घर ले जाने को कहा दम्यन्ती बड़ी क्रोधित हो कर बोली कि मैं पति व्रता स्त्री हूं मेरे विषय में इस प्रकार का विचार मत कर परन्तु वह मूर्ख नहीं समझा और वह जोरी करने पर उद्यत हुआ दम्यन्ती ने शाप दिया कि हे पापी तू मेरे धर्म को भङ्ग करना चाहता है इस लिये निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर जा उस के यह कहने की देर थी कि वह व्याध ऐसा गिरा जैसे वज्र से वृक्ष जल कर गिरता है ॥

इकसठवां अध्याय

—:-o-:—

दम्यन्ती का विलाप करते २ एक आश्रम में पहुंचना, तपस्वियों का उस को धैर्य देना और अन्तर्धान हो जाना और उसे फिर एक जन-समूह का मिलना ॥

व्याध को मार कर दम्यन्ती आगे बढ़ी और नल को फिर ढूंढना आरम्भ किया वन में अनेक प्रकार के फलदार वृक्ष थे और नाना प्रकार के जीव जन्तु और क्रूर पशु भी

वास करते थे परन्तु वह वियोग में ऐसी दुःखी थी कि उस को न सिंह का भय, न रीछ का डर, न बाघ सतावे, न महिष पास आवे रोती और विलाप करती चली जाती थी अन्त को हार कर एक शिला पर बैठ गई और रोकर कहने लगी कि हे निषध देश के स्वामी मुझे अकेली छोड़ कर कहां गए हो तुम ने अश्वमेध यज्ञ किये और बड़ी बड़ी दक्षिणायें दीं परन्तु मेरे साथ क्यों ऐसा वर्ताव किया आपने अपना सखा जो मेरे साथ किया था बिलकुल ही भुला दिया है आपने हंसी की बात को भी नहीं विचारा महाराज वह बात सत्य करो जो मुझ से कही थी ॥

हाय वीर ! हाय नल ! मुझ से तुम क्यों नहीं बोलते । देखो महाराज ! यह भूखा शेर मुझ को खाना चाहता है ! पकड़िये महाराज ! पकड़िये अपनी धर्म पत्नि की रक्षा करो हे श्रेष्ठ नल ! हे अरिंदमन ! हे पृथुलोचन ? उत्तर क्यों नहीं देते । हे प्यारे नल सोते हो या बैठे हो । वन के सिंहो मुझ को कुछ तो बताओ कि मेरा नल कहां है क्या तुम ने उस को इस वन में जाते देखा है । हाय ! किस से पूछूं कौन बतावे ॥

हा ! हा ! मैं इस शार्दूल के पास जाती हूं, और पूछती हूं कि हे वन के राजा मैं निषध देश की रानी हूं, तुम मृगों के प्रभु हो, मेरा नाम दमयन्ती है मैं विदर्भ देश के भीम की लड़की और निषध देश के राजा नल की भार्या हूं यदि तुम तुम ने मेरे पति को देखा हो तो मुझ को बताओ औरमेरे

दुखी मन को धीर्य दो और यदि पता न बताना हो तो मुझे खाकर मेरे दुख को निवृति कीजिये, हाय यह शार्दूल मेरे दुख को नहीं देखता ॥

अरे महानशिखरों वाले पर्वत राजे आप ही कृपा करें और यदि आपने मेरे प्रियतम नल को अपनी कंदराओं में छुपाया हुआ हो तो शीघ्र पता दें, पर्वत राज मैं तुम को नमस्कार करती हुं, मैं राजा की पुत्री, राजा की पुत्र वधु और राजा की भार्या हुं, मेरा नाम दमयंति है मेरे पिता का नाम राजा भीम जो विदर्भ का राजा बड़ा पराक्रमी महारथी, चारों वर्णों का रक्षक राजशूय और अश्वमेध यज्ञों के करने वाला, प्रमात्मा का भक्त साधू स्वभाव और सत्यवादी है, मेरे शुशर का नाम वीरसेन जो निषद का सत्यवादि राजा है मेरे पति का नाम नल है जो बड़ा वीर सत्य पराक्रमी वेदज्ञ यज्ञ में अमृत पीने वाला योद्धा और प्रजा का पालन करने वाला है ॥

मैं तुम्हारे पास लक्ष्मी हीने, पति के वियोग में दुखी होकर उस को ढूंडने आई हुं आप ऊंची चोटियां रखते हैं कहीं नल को देखा हो तो बताओ, उस की चाल हाथी के समान है और वह बड़ा बुद्धिमान दीर्घ बाहु और यशस्वी है, हे भरयत राज मुझ को अपनी बेटी जानो और मेरे पति का पता दो ॥

हे नल यदि तुम पर्वत पर हो तो निकल आओ, आओ नाथ मुझ दीन को सनाथ करो और कहो कि विदर्भ पुत्री तू अदीन मेरे शोक को दूर करने वाली है! धर्मात्मा राजा नल मुझ को शीघ्र आकर धीर्य दो ॥

इस प्रकार रोती और विलाप करती हुई तीन दिन के पश्चात् तपस्वियों के एक आश्रम में आ पहुंची और तपस्वियों को नमस्कार करके उन की कुशल पूछी। उन्हों ने आशीर्वाद दी और कहा कि तेरा आना शुभ हो, कहो तेरे लिये हम किया कर सकता हैं, दमयंति ने अपना सब हाल बताया और कहा कि मैं अपने पति के वियोग में कंदरों और गुफाओं में उस को ढूंडती फिरती हूं मेरा विचार था कि वह सत्यपराक्रमी यशस्वी, राजा नल इस आश्रम में होगा ॥

तपस्वियों ने उत्तर दिया कि हे कल्याणि हमे अपने तपो बल से यह निश्चय होता है कि नल तुम को शीघ्र ही मिलेंगे और तुम बहुत सुख पावोगी और पहिले की भांति राज्य करोगी यह कह कर साधू आश्रम सहत अंतर्धान होगए और दमयंति देखती ही रह गई ॥

दमयंति विस्मय करने लगी कि क्या वह मैंने स्वप्न देखा है या सच मुच की बात हैं, परन्तु कुछ शोच में न आया, कुछ काल तो उस का विलाप जाता रहा परन्तु शीघ्र ही वह फिर दुखित होगई और कलपती हुई अन्य स्थान की ओर चली गई ॥

आगे चल कर एक अशोक वृक्ष देखा और उस से प्रार्थना करने लगी कि हे अशोक! तुम अपने नाम को सार्थक बनाओ, तुम अशोक हो मेरे शोक को दूर करो मैं तेरे पास

पास इस लिये आई हूं कि तू ने नल को देखा होगा, वह मेरा पति, निषध देश का स्वामी आधा वस्त्र ओढ़ कर मुझ को अकेली जंगल में छोड़ कर चला गया है, हे अशोक मुझ पर कृपा करो और शोक हरण नल का मुझ को पता बताओ ॥

वहां से चल कर दमयन्ती एक विशाल नदी पर पहुंची जहां एक जन समूह उतर रहा था जिसके साथ बहुत से हाथी, घोड़े और रथ थे, दमयन्ती उस जन समूह को देख कर उस की ओर बढ़ी और जल्दी से उस समूह में घुस गई ॥

उस के धूल और मट्टी से भरे हुए चिहरे को तथा बिखरे हुए बालों को और महा दुःखी स्वरूप को देख कर बहुत से मनुष्य डर कर भाग गए, बहुत से चिन्ता करने लगे और बहुत से पुकारने लगे कइयों ने उस को देख कर हंसी की, बहुत से निन्दा करने लगे और बहुतों ने दया की और पूछा कि हे कल्याणी तू कौन है ? और किसकी बेटी है ? क्या तू इस वन की देवी है ? या राक्षसी ? हम तेरी शरण आए हैं तू हमारी रक्षा कर !

दमयन्ती सब को सन्मुख करके बोली "मैं राजा भीम की पुत्री और राजा वीर सेन के पुत्र राजा नल की पतिव्रता रानी हूं मेरा पति इस वन में आया है कहीं तुम ने देखा हो सो कहो ॥

उस की बात को सुन कर सार्थवाह, अर्थात उस जन समूह का मुखिया बोला कि हे मातिव्रते ! इस वन में तो

रीछ, शार्दूल, मृग, वाराह, महिष के बिना हम ने कुछ नहीं देखा और यदि तुम सच मुच ही मानुषी हो तो पहिले पहिल तुम को ही देखा है कोई नल नाम मनुष्य नहीं देखा ॥

दम्यन्ती ने पूछा कि यह जन समूह कहां जाएगा ॥

सार्थवाह बोला कि यह समूह चंदेरी राज्य में लाभ के लिये जाएगा ॥

बासठवां अध्याय

—:०:—

दम्यंती का उस जन समूह के साथ जाना समूह का एक तालाब पर विश्राम करना, रात को अन्य हाथियों का आकर उस समूह को दलन करना और दम्यंति का भाग कर चंदेरी नरेश के घर जाना और वहां ठहरना ॥

दम्यंति उस सार्थवाह के साथ होली, आगे चल कर एक बड़ा सुन्दर और रमणीक सर आया जिस के इरद गिरद बड़ा लम्बा २ घास उगा हुआ था और जिस का जल बहुत अच्छा था, समूह के लोगों ने उस रमणीक स्थान को देख कर वहां डेरा डाल दिया और रात्रि को विश्राम करने का निश्चय किया ॥

जब आधि रात बीत चुकी तो वन्य हाथियों का एक बड़ा जत्था वहां आया, और जल पान करने लगा, उन में बहुत से मतवाले हाथी भी थे जो ग्राम के हाथियों को देख कर उन से लड़ने भिड़ने लगे, और सरोवर पर एक उपद्रव मचा दिया, उन के दौड़ने से आस पास की भूमि और वृक्षों की बहुत हानि हुई और सोते हुए मनुष्यों के अंग खण्डित हुए, यहां तक कि कई मनुष्य मारे गये, बहुत सा धन नष्ट हुआ और बहुत से ऊंट और घोड़े यमपुरी में पहुंचे ॥

दम्यंति उपद्रव देख कर भयभीत होकर एक ओर को हो बैठी और दैव की बातों को देखने लगी, जब बहुत सा नाश हो चुका तो वह सब हाथी यथेष्ट देशों को चले गये ॥

जब प्रातः काल हुआ तो जिन मनुष्यों के भाई तथा संबंधी मरे थे और धन नाश हुआ था वह शोक में निमग्न होकर नाना प्रकार के वचन कहने लगे, किसी ने कहा कि मैंने यशस्वी मणि भद्र की पूजा नहीं की थी इस लिये यह आपत्ति मुझ पर आई है किसी ने कहा कि हमने कुँवर को नहीं मनाया था और उसी ने यह क्रोध प्रकट किया है किसी ने विघ्न करता को दूषित किया सार यह कि जितने मुंह उतनी बातें ॥

बहुत से बोले कि यह सब उपद्रव उस विकृता कार उन्मत्त स्त्री का है जो हमारे जन समूह में घुस आई थी,

निश्चय वह पिशाचिनी है और उसी ने यह उपाधि खड़ी की है यदि अब उस को देखो तो पत्थर और रोड़े मार कर उस की जान मार डालो ॥

विचारी भयभीत दमयन्ती ने यह सब बातें सुनीं और अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगी कि हे देव ! अभी तक मेरे दुःखों की अवधि पूरी नहीं हुई है, मैं ने तो विचारा था कि इस जन समूह का आश्रय पाकर मैं अपने पति का खोज करूंगी, परन्तु मेरे मन्द भाग्य से इन लोगों पर भी आपत्ति आ गई अब मैं जाऊं तो कहां जाऊं ! करूं तो क्या करूं ! हे देव ! मैंने कौन सा घोर पाप किया है जिसके कारण मुझ को ऐसा उग्र दण्ड मिला है ?

मैं ने बड़ों से सुना था कि बिना समय के कोई नहीं मरता सो सच है ! देखो मुझ दुख्यारी को हाथियों ने भी छोड़ दिया ॥

मेरी समझ में ईश्वर की इच्छा बिना कुछ नहीं होता और जो कहो कि यह पापों का फल है, तो मैंने कोई पाप शारीरक अथवा मानसिक अपनी आयु भर नहीं किया शायद मैं ने बड़े बड़े लोक पालों को छोड़ कर अपने स्वयम्बर में नल को वरा था, क्या ! मुझ को यह कष्ट उन की ईर्षा से तो नहीं हुआ ॥

इस प्रकार विलपति हुई अनुव्रता दमयन्ती उस जन समूह के वेद पाठी ब्राह्मणों के साथ होली । और थोड़े ही

दिनों में सुबाहु नाम राजा चंदेरी के नगर में पहुंची । और उसी देश में नगर के भीतर गई, उसका विकराल रूप देख कर नगर के लड़के लड़कियां उस के पीछे हो लिये और वह उन से घिरी हुई राज मान्दिर तक पहुंची ॥

राज माता जो अपने महल की चोटी पर खड़ी हुई थी, दमयंती को ऐसी दशा में देखकर धात्रि से बोली कि उस सुंदरी बाला को यहां ले आओ उसको शरण की आवश्यक्ता प्रतीत होती है, परन्तु मनुष्य उस को क्लेश दे रहे हैं, आज्ञा पाकर धात्री बाहेर गई, और दमयंती को महल के ऊपर ले आई ॥

राज माता ने पूछा हे देवी किस कारण तुम्हारी यह दशा हुई है ! तुम कौन हो, और अपनी इस अवस्था का कारण बताओ, दमयंती ने सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया, जिस से राज माता के हृदय को बड़ा दुःख हुआ, उस ने प्रण किया कि मैं अपने अनुचर भेज कर नल की तलाश कराऊंगी और दमयन्ती को कहा कि तुम हमारे महलों में रहो, तुम से हमारी बड़ी प्रीति है ॥

दमयन्ती ने कहा कि हे राज माता, मैं इस प्रकार आपके पास रह सक्ती हूं, कि कोई मनुष्य मेरे पति व्रत धर्म को भंग करने की चेष्टा न करे, और यदि करे तो आप से दण्ड पावे। मैं दासी होकर नहीं रहूंगी, न पैर धोऊंगी । न जूठा खाऊंगी। हां अपने पति को ढूंडने के निमित्त ब्राह्मणों को अवश्यमेव देखा करूंगी । यदि आप को यह नियम स्वीकार हो तो मैं

रह सक्ती हूं अन्यथा नहीं ॥

राजमाता उस के इस व्रत से प्रसन्न हुई । और कहा, कि ऐसा ही होगा । तब उस ने अपनी बेटी सुनन्दा को बुलाया और कहा कि यह देवी तुम्हारी अवस्था की है । यह तुम्हारी सखी बनेगी । तुम इस को अपने पास रक्खो । सुनन्दा उसको अपने घर लाई । और दम्यन्ती आनन्द पूर्वक वहां रहने लगी ॥

तिरसठवां अध्याय

—:o:—

दम्यन्ती के वियोग से नल का व्याकुल होकर बन में घूमना, एक सर्प का उस को डसना और सर्प के विष से नल के रूप का बदल जाना ॥

राजा नल दम्यन्ती को उस शाला में छोड़ कर एक घने बन में पहुंचा उस बन में पहुंचते ही उस के कानों को यह शब्द सुनाई देने लगे । हे प्राण पति दौड़ियो मुझे बचाइयो ! नल यह शब्द सुनते ही भाग कर आगे बढ़ा और कहने लगा मत डरो मैं आ पहुंचा, निकट जाने पर उस ने एक सर्प देखा जो अग्नि के बीच में घिरा हुआ था, वह नल को देख कर कहने लगा, हे राजन् ! मैं नारद जी के शाप से पत्थर की

भांति इस जगह पड़ा हुं और हिल नहीं सकता यदि तुम उठाओ तो अग्नि से बच सकता हुं नहीं तो इसी में भस्म हो जाऊंगा और आप का वह कल्याण न कर सकूंगा, जो कि मैं करना चाहता हूं ॥

यह कह कर सर्प अंगूठे के बराबर हो गिया और नल उस को अग्नि में से निकाल कर बाहर लाया जब नल उस को पृथ्वी पर रखन लगा तो उस ने कहा कि हे राजन् ! पग गिनता हुआ चला चल, मैं तेरा कल्याण करूंगा, नल ने ऐसा ही किया, जब वह नौ पग चल चुका और दशमां उठाने लगा तो सर्प ने नल को डस कर उस का स्वरूप विकृत कर दिया ॥

नल अपने बदले हुए रूप को देख कर चकित सा हो गया । सर्प उस को बोला, कि हे राजन् यह बात केवल आप के कल्याण के निमित्त की गई है; इस से तुझ को कोई पुरुष पहिचान नहीं सकेगा यदि तू अपना पहिला स्वरूप चाहे तो मुझ को स्मरण करियो और यह दिव्य वस्त्र जो तुम को देता हुं इस को पहन लीजो तब तुम्हें अपना पहिला स्वरूप प्राप्त होगा । तुम्हारे अन्दर की विष उस दुष्ट को भी सदैव पीड़ित करेगी जिसने तुम को इतना कष्ट दिया है और तुम को कोई दुःख न देगा अब तुम अयोध्या पुरी में जाओ और इक्ष्वा वंशीय राजा ऋतुपर्ण से अश्व हृदय विद्या सीखो और अक्ष हृदय विद्या सिखाओ । यदि वह तुम्हारा नाम पूछे तो बाहुक नामी सूत कहना । राजा की कृपा से मिलता

हो जाएगा और इस में तुम्हारा भला होगा ॥

अब तुम शोच छोड़ दो । तुम को राज्य, पुत्र और स्त्री अवश्य मिलेगी ॥

चौंसठवां अध्याय

:—:०:—

राजा नल का ऋतु पर्ण के हां नौकर रहना और दम्यन्ती की विरह में एक श्लोक पढ़ना ॥

नल वहां से अयोध्या को चल पड़ा और दशमें दिन वहां जा पहुंचा और राजा ऋतुपर्ण से मिला । उस ने राजा को कहा कि मेरा नाम वाहुक है मैं सूत हूं घोड़ों की विद्या में बड़ा चतुर हूं । चाहे कितने दुबले पतले घोड़े हों मैं उन को वेग वान और शीघ्र गामी कर सकता हूं । मुझे शिल्प विद्या और रोटी पकाना भी अच्छी प्रकार आता है ॥

वाहुक को उस ने नौकर रख लिया और अपने पहिले सूतों वार्ष्णेय और जीवन को उस के आधीन रखा । राजा नल ऋतुपर्ण की घड़साल में रहने लगा, और, दम्यन्ती के विरह में व्याकुल होकर एक श्लोक रोज़ ऊंच स्वर से नित्य पढ़ा करता ॥

जीवन सूत जो प्रति दिन उस श्लोक को सुना करता था एक दिन पूछने लगा कि हे वाहुक ! तुम रात्री को किसकी

याद किया करते हो? यह किसकी स्त्री है! और तुम उस का इतना शोक क्यों करते हो। नल बोला कि वह स्त्री एक मूढ़ मनुष्य की थी जो दुःखी होकर सदा इस संसार में घूमा करता है और रात्रि को यह श्लोक पढ़ता है, उस ने सब पृथ्वी का चक्र लगाया है और अब दुःखी होकर यहीं बस रहा है। उस मन्द बुद्धि ने अपनी उस पतिव्रता स्त्री को बन में अकेली छोड़ दिया है और उस विचारी भूखी, प्यासी, व्याघ्रों और सिंहों से घिरी हुई का जीना बहुत कठिन है। यह कह कर नल चुप हो गया, और जीवन सूत और वार्ष्णेय सूत के साथ रहने लग पड़ा॥

पैंसठवां अध्याय

—:-०-:—

राजा भीम का नल और दमयन्ती के ढूंडने के लिये ब्राह्मणों को भेजना और सुदेव का राजा चंदेरी के नगर में आना॥

जब राजा भीम ने नल का राज्य को छोड़ कर चले जाने का हाल सुना, तो उस ने बहुत से ब्राह्मणों को बुला कर कहा कि आप लोग चारों दिशा में जायें और नल और दमयन्ती जहां कहीं हों उन को ढूंढ लायें जो कोई उन

का ठीक ठीक पता मुझे ला कर देगा, मैं उस को बहुत सा धन दूंगा ॥

सैंकड़ों ब्राह्मण आज्ञा पाकर चारों दशाओं में घूमने लगे देव योग से एक सुदेव नामी ब्राह्मण चंदेरी नगर में आ पहुंचा और घर घर में फिर कर नल और दम्यन्ती का खोज निकालने लगा जब वह सुनन्दा के घर की ओर गया, तो मैले वस्त्र पहिने हुए एक दिव्या कृति युवति उस की नज़र आई, सुदेव जो दम्यन्ती को अच्छी प्रकार जानता था झट ताड़ गया कि दम्यन्ती यही है, इस का यह वेष प्रगट करता है कि यह अब नल से पृथक् है और इस का मलीन मुख और इस के शृंगार रहित अङ्ग इस के हार्दिक शोको प्रकट करते हैं ॥

यह विचार कर सुदेव दम्यन्ती के पास गया और कहने लगा कि मैं तेरे भाई का मित्र सुदेव हूं और तुझे ढूंडने के लिये आया हूं दम्यन्ती ने झट पहचान लिया और अपने माता पिता का कुशल पूछने लगी सुदेव ने कहा कि कुशल तो सब हैं परन्तु तुम्हारे और नल के दुःख से महा दुःखी हो रहे हैं। तुम्हारे पुत्री और पुत्र सब प्रकार से कुशल हैं परन्तु तुम्हारे वियोग से उदास हो रहे हैं ॥

सुनन्दा ने जब दम्यन्ती को ब्राह्मण से बात चीत करते देखा तो अपनी मां के पास दौड़ी हुई आई और कहा कि देखो! यह दम्यन्ती ब्राह्मण से मिल कर कैसे रो रही है ॥

राज माता ने ब्राह्मण को बुलाया और दम्यन्ती के

कुल वंश का पता पूछा और कहा कि यह बाला किस प्रकार अपने नातिवालों से पृथक हुई थी। यह सुन कर सुदेव ने दम्यन्ती का सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥

छियासठवां अध्याय

—:o:—

दम्यन्ती का सुदेव के साथ चंदेरी से विदर्भ को जाना और नल के ढूंडने का यत्न करना॥

सुदेव नें कहा हे राजमाता इस कल्याणी की खोज में सैकड़ों ब्राह्मण देश देश में रटन कर रहे हैं। इस के मस्तक पर भौवों के बीच में एक मस्सा है जो इस समय मलीन वेष धारण करने से अच्छी प्रकार प्रकट नहीं होता है उस मस्से को देख कर मैंने इस को पहिचाना है॥

राज माता इस वृत्तान्त को सुन कर और दम्यन्ती को देख कर रोने लगी और उस कहने लगी कि हे दम्यन्ती मैं तो तेरी मासी हूं, तेरी मां और मैं हम राजा दशार्ण की बेटी हैं मैंने तुझ को बाल अवस्था में अपने पिता के हां देखा था, हे बेटी जैसी मुझ को सुनन्दा [illegible] है तू है अब तू मेरे पास रह और कुच्छ काल मेरे नेत्रों को आनन्द दे, शोक है कि मुझे इस से पहिले तुम्हारा हाल मालूम न था जिस से तुझ को इस दुःखित अवस्था में रहना पड़ा॥

दम्यन्ती ने कहा कि मामी जी मेरे नन्हे २ बाल हैं जो माता पिता के न होने से बड़े उदास होरहे होंगे मेरे माता पिता व्याकुल हो रहे हैं, अब मेरा जाना ही उचित है, फिर कभी अवसर मिला तो अवश्यमेव आप के दर्शन करूंगी, मैं ने अपना सम्बन्ध न जना कर भी आप के घर में बड़ा आनन्द देखा है, इस से अब मुझ को जाने की ही आज्ञा दीजिए ॥

यह सुन कर राज माता प्रसन्न हुई और दम्यन्ती को डोले में बिठा कर अपने पुत्र की अनुमति से बहुत सी सेना रक्षा के लिये देकर उन सब को विदर्भ देश की ओर भेज दिया ॥

दम्यन्ती थोड़े ही काल में अपने माता पिता के पास आ पहुंची सब बन्धुओं ने प्रसन्न होकर बड़ा आदर किया और दम्यन्ती सब को कुशल पूर्वक देख कर बड़ी प्रसन्न हुई और उस ने देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा की, और सुदेव को बहुत धन दिया ॥

कुच्छ दिन के पश्चात् दम्यन्ती अपनी मां से बोली कि राजा नल का खोज करना चाहिये कि उस को क्या हुआ ? यह सुन कर उस की माता ने कुच्छ उत्तर न दिया और रोने लगी, उस को देख कर अन्य स्त्रियां भी रोने लगीं, जब राजा आया तो उस की मां ने सब हाल कह सुनाया, राजा ने फिर ब्राह्मणों को बुलाया और जहां तहां नल के ढूण्डने की आज्ञा दी ॥

राजा से आज्ञा पाकर ब्राह्मण दमयन्ती के पास आए और कहा कि हम नल को ढूंडन जाते हैं दमयन्ती ने कहा कि तुम जहां जाओ इन पद्यों को उच्च स्वर से सब लोगों के बीच में पढ़ना :—

भूखी प्यासी पतिव्रता, निर्जन वन स्थान ।
सोवति छोड़ि कपट से, हे प्राणन के प्राण ॥
राक्षस, यक्ष पिसाचगण, अजगर सिंह वाराह ।
तथा २ गर्ज शब्द कर, त्राहि नाथ मोहि त्राहि ॥
पर्वत शैल डरावं, हा ! हा ! करें पुकार ।
छल से प्रिय तुम छोड़ गए, मैं नारि सुकुमार ॥
अजगर डसियो शैल ढिग, व्याध छुड़ाइयो प्राण ।
अन भक्षन उद्यत भयो, व्याध गंवाई जान ॥
दावा नल की भांति है, विरहा नल नित्य खाय ।
दर्शन दो मोहे प्राण पति, नहिं तो प्राण मम जाय ॥
उत्तर हम को दो अभी, विरहा नल मिट जाय ।
याजे शोकुल हृदया, प्रमुदित हो हर्षाय ॥
जानों ज्ञानी कुलीन तुम, मन्द गए हैं मोर ।
व्याकुल हो तव दर्श को, शशिकर जिमि चकोर ॥
लखहों न दोप तुम्हार मैं, कृपा सागर गुण कान ।
पूर्व जन्म कर कर्म फल, दीन मोहि भगवान ॥
हे प्रतापि शूर नल, हे प्राणन के नाथ ।
मन शङ्का को दूर कर, दुखियाँ करो सनाथ ॥

जो पुरुष इन दोहों का उत्तर देगा उस को नल जानना

और उस के रहिने का स्थान और अवस्था पूछ कर मुझ को आकर कहना परन्तु इस प्रकार पूछना कि वह जानने न पावे यह सुन कर ब्राह्मण देश २ में नल को ढूंडने गए और अनेक नगर, देश, ग्राम, घोष, पल्ली तथा आश्रम देखे परन्तु कहीं भी नल का पता न पाया ॥

सतासठवां अध्याय

—:०:—

पर्णाद का लौट कर आना और अयोध्या पुरी से दोहों का उत्तर लाना दम्यंती का सुदेव के हाथ अयोध्या में स्वयम्बर का संदेशा भेजना।

कुछ दिन के पश्चात् पर्णाद नामी ब्राह्मण अयोध्या पुरी से लौट कर आया और दमयन्ती से कहा कि मैं ने सब जगह इन दोहों को सुनाया परन्तु किसी ने उत्तर न दिया अन्त को मैं ने अयोध्या पुरी में राजा ऋतुपर्ण की सभा में इन को सुनाया परन्तु किसी ने भी उत्तर न दिया तब मैं वहां से चल दिया पीछे से उस राजा के बाहुक नामी कुरूपसूत ने जो घोड़ों के शीघ्र चलाने में अत्यन्त निपुण है और भोजन भी अत्युत्तम पकाना जानता है आकर और रोकर यह उत्तर दिया ॥

नारि कुलीन जो वपति माहिं । भाविवश आ म.य ॥

अपनी रक्षा करनते । अवशि स्वर्ग फल पाय ॥
पति से पाये वियोग वह । कर तनक वह रोष ॥
चरित कवच सुंदर धरे । देवे न कबहुं दोष ॥
अस विचार हिये आनिकर । वह नारि सुकुमार ॥
राज्यहीन पति कर तनक । द्वेष न करे विचार ॥
भावि वश असगति भई । पक्षिन हरयो चीर ॥
निश्चय उस भगवान पै । जानिहो कवहुं अधीर ॥
निश दिन शेचत सुंदरी । क्षुदित दुःखी अरु दीन ॥
आर्त है तव दर्श विन । ज्यों पानी विन मीन ॥
अस विचार उट आनिके । भामिनि मन न डुलाय ॥
पतिकर हो तुम प्राण प्रिय । निश्चय मन में लाय ॥

पर्णाद ने कहा कि यह उत्तर ले कर मैं सीधा विदर्भ को आगया हुं, दम्यान्ति इन दोहों को सुन कर और पर्णाद का बताया हुआ सब हाल जान कर बड़ी दुःखी हुई, परन्तु पर्णाद का बहुत धन्यवाद किया और बहुत सा धन दे कर उस को विदा किया ॥

फिर उस ने अपनी मां को बुलाया और कहा कि सुदेव को शीघ्र ही नल के लाने के लिए अयोध्या में भेज दो परन्तु जिस प्रकार तेरे सन्मुख मैं उस को शिक्षा करूंगी, पिता जी को वह बात मत कहना, माता ने कहा कि बहुत अच्छा ॥

तब दम्यंति ने सुदेव को बुलाया और कहा कि तुम अयोध्या को जाओ और ऋतुपर्ण को कहो कि दम्यंति फिर

अपना स्वयम्बर करना चाहती है और कल सूर्योदय के समय वह वर करेगी, वह चाहती है कि तुम को वरे, यदि तुम कल सूर्योदय तक वहां पहुंच जाओ तो अवश्यमेव तुम ही उस के पति बनोगे, यह सुन कर सुदेव अयोध्या की ओर चला और आते ही सारा वृत्तांत ऋतुपर्ण को कह सुनाया ॥

अठासठवां अध्याय

—:०:—

राजा ऋतुपर्ण का उत्तम वेगवान घोड़ों वाले रथ पर बैठ कर विदर्भ में पहुंचना ॥

ऋतुपर्ण ने वाहुक को बुलाया और कहने लगा, कि यदि तुम एक ही दिन में मुझे विदर्भ नगर में पहुंचा दो तो मैं दम्यंति के स्वयम्बर को देख आऊं, यह सुन कर वाहुक अनेक प्रकार की चिन्ता करने लगा, उस ने सोचा कि स्त्रियों का स्वभाव चंचल होता है कदाचित मुझ में उस की प्रीत न रही हो परन्तु वह सन्तान रखती है, नहीं नहीं यह कदापि संभव नहीं। क्या मैं दम्यंति के पति व्रत धर्म पर शंका कर सकता हूं, नहीं! नहीं! कदापि नहीं! मेरे विचार में मेरे बुलाने के लिये यह उपाय उस ने सोचा है। अच्छा चलो तो सही, वहां जाकर सब बात का पता लग जायगा ॥

यह विचार कर बाहुक ऋतुपर्ण से बोला कि महाराज मैं आप को एक दिन में ही विदर्भ देश में ले जाऊंगा। और आज्ञा पाकर घुड़साल में गया और चार श्रेष्ठ उत्तम घोड़े चुन कर रथ में बांधे और राजा को कहा कि चलिये रथ में पधारिये ॥

राजा ऋतुपर्ण रथ में बैठा और उसके सारथी वार्ष्णेय ने बाग उठाई परन्तु घोड़े लड़ खड़ा कर भूमि पर गिर पड़े बाहुक ने झट से बागें अपने हाथ में ले लीं और घोड़ों को ऐसा उठाया कि वह आकाश में चलते हुए प्रतीत होते थे ॥

राजा ऋतुपर्ण बाहुक की अश्व विद्या को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और वार्ष्णेय मन में विचार करने लगा कि यह अश्व विद्या में नल के समान है कदाचित् यह वही नल न हो! परन्तु रुप उस से नहीं मिलता है कदाचित् अपने आप को गुप्त रखने के लिये इस ने यह वेष किया हो इस प्रकार के अनेक विचार वार्ष्णेय के मन में उत्पन्न हुए। और राजा ऋतुपर्ण उस की अश्व विद्या में प्रवीणता देख कर बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥

उनहत्तरवां अध्याय

नल को आकाश में रथ हांककर चलना, ऋतु पर्ण का उस का अक्ष हृदय विद्या बताना,

और उस के प्रभाव से कलि का नल के शरीर से निकलना और नल का सब दुःख दूर होना ॥

तब नल घोड़ों को आकाश में हांकता हुआ नदी जल पर्वत वृक्षों को लांघता हुआ शीघ्र ही बहुत दूर निकल गया ऋतुपर्ण का दुपट्टा नीचे गिर पड़ा और उस ने कहा कि बाहुक रथ को तनक ठहराइयो, ताकि वार्ष्णेय जाकर मेरा दुपट्टा ले आवे नल ने कहा कि अब वह नहीं आ सकता, वह तो एक योजन पीछे रह गया है ॥

ऋतुपर्ण बोला कि देखो बाहुक तुम में तो अश्वविद्या है पर मुझ में भी एक विद्या है, मैं इस वृक्ष के पत्ते और फल तत्क्षण ही गिन सकता हुं, देखो उस सामने बहेरे के एक सौ एक पत्ता और एक सौ दो फल हैं, नल ने झट रथ खड़ा कर लिया और कहने लगा कि मैं इस विद्या की परीक्षा करूंगा ॥

ऋतुपर्ण ने बहुतेरा कहा कि यह समय ऐसे कामों के लिये नहीं, मैंने शीघ्र विदर्भ में पहुंचना है, परन्तु नल ने न माना और कहा कि यदि आप को बहुत जल्दी हो तो वार्ष्णेय को ले जाइए, निदान राजा भी विवश होकर उस का कहा मान गया ॥

नल ने जो पत्तों को गिना, तो सच मुच उतने ही निकले अब तो नल बहुत विस्मित हुआ और ऋतु पर्ण को कहने लगा कि यदि आप मुझ को यह विद्या सिखादें तो मैं आपको अश्व विद्या सिखा दूंगा ऋतुपर्ण ने मान लिया और अक्ष हृदय

विद्या उसको सिखादी ॥

ज्यूं ही नल ने अक्ष हृदय विद्या सीखी। झट कलि उस के शरीर से बाहिर निकला और हाथ जोड़ने लगा कि महाराज मुझ को क्षमा कीजिये। मैंने पहिले ही आप के शरीर में आकर बहुत दुःख पाये हैं प्रथम तो दम्यन्ती का पाप दूसरे सर्प की विष। इन्हों ने मुझ को बहुत दुःख दिया है ॥

कलि के निकलते ही, नल स्वयं चित्त हो गया और उस के सब दुःख जाते रहे, केवल स्वरूप वैसा रहा। उस ने कलि को शाप देना चाहा, परन्तु अभी वह बोलने ही लगा था कि कलि ने प्रार्थना करनी आरंभ करदी और नाना प्रकार की याचनाओं से क्षमा मांग ली ॥

अब कलि उस बहेड़े के पेड़ में घुस गया परन्तु नल कलि संवाद को किसी ने नहीं सुना, नल ने घोड़ों को उड़ा दिया और वह आकाश में उछलते हुए भागे, जब वह बहुत दूर निकल गये तब कलि वहां से निकल कर अपने घर चला गया ॥

सतरवां अध्याय

—:-०-:—

राजा ऋतुपर्ण का कुंडिनपुर में पहुंचना और दम्यन्ती का नल को ढूंढने का प्रयत्न ॥

सायं काल के समय ऋतुपर्ण कुंडिन पुर में पहुंचा, लोगों ने उस का आना सुन कर राजा भीम से निवेदन किया, भीम ने आज्ञा दी कि उस को मेरे पास ले आओ, भीम को मिलने के निमित्त नगर में रथ चलाता हुआ ऋतुपर्ण चला, नल के घोड़े उस रथ शब्द को सुन कर ऐसे हिन हिनाने लगे कि मानों उन्हों ने अपने पति को पाया है ॥

दमयंति उस वाक को सुन कर बड़ी चकित हुई और विचारने लगी कि क्या वार्ष्णेय ने भी यह विद्या सीख ली है अथवा क्या नल इन के साथ है, ? यदि है तो किस प्रकार उस को ढूंढूं ! यदि वह न मिले तो अब मैं अपना अन्त अवश्यमेव कर दूंगी ॥

दमयंति महल के ऊपर चढ़ गई और बीच की कक्षा में नल को देखने लगी और ऋतुपर्ण को रथ में वाहुक और वार्ष्णेय के साथ देखा, ऋतुपर्ण तो भीम के पास चला गया परन्तु वाहुक और वार्ष्णेय दोनों घोड़ों को छोड़ने लगे ॥

ऋतुपर्ण ने बहुतेरा इधर उधर देखा परन्तु स्वयम्बर का कहीं पता न पाया। राजा भीम ने पूछा कि आप का आना कैसे हुआ, ऋतुपर्ण ने कहा कि केवल आप के दर्शन को आया हूं, यह सुन कर भीम चकित गया और सोचने लगा कि इस तुच्छ कारण से किस प्रकार इस ने सौ योजन की यात्रा की ॥

कुछ काल के उपरान्त राजा ने जाने की आज्ञा मांगी परन्तु भीम ने कहा कि आप अभी थके हुए हैं कुच्छ काल विश्राम कीजिये। राजा ऋतुपर्ण भीम के बताए हुए स्थान में ठहरा और नल और वार्ष्णेय घोड़ों और रथों को रथ शाला में लाए और शास्त्र की विधि से घोड़ों की उपचर्या की ॥

एकहत्तरवां अध्याय

—:-०-:—

दम्यन्ती का केशनी दूती को नल के पास भेजना और केशनी का नल से प्रश्नोत्तर ॥

दम्यन्ती ने केशनी दूती को बुलाया और वह श्लोक जो पर्णाद को कहे थे उस को सुना कर कहा कि जाकर उस वाहुक से कहो और उस को बोलो कि इस का उत्तर पर्णाद को तुम ने क्या दिया था और उस से नाना प्रकार की वार्तालाप कर के नल का खोज निकालना ॥

केशनी दम्यन्ती से आज्ञा पाकर नल के पास आई और उस से पूछने लगी कि हे राजा! दम्यन्ती आप का कुशल क्षेम पूछती है नल ने कहा कि मैं राजा नहीं हूं मैं उस का सारथी हूं मेरा नाम वाहुक है केशनी ने पूछा कि आप यहां किस प्रयोजन से आए हैं और कब चले थे नल ने कहा कि हम कल चले थे कोशल नरेश ने किसी ब्राह्मण से सुना था कि दम्यन्ती दुसरा स्वयम्बर करना चाहती है इस लिये वह बड़े वेगवान घोड़ों को रथ में जोड़ कर एक ही दिन में सौ

योजन की यात्रा करके यहां आ पहुंचा है और मैं उस के साथ आया हूं ॥

केशनी बोली कि तुम्हारे साथ यह तीसरा मनुष्य कौन है नल ने कहा कि यह वार्ष्णेय है यह पहिले नल का सारथी था नल के निकल जाने पर उस ने राजा ऋतुपर्ण के यहां वेतन प्राप्त किया है । केशनी बोली कि तुम किस के पुत्र हो, नल बोला कि मैं अश्व विद्या में चतुर हूं और भोजन उत्तम बना सकता हूं मैं इसी काम पर राजा के हां नौकर हूं ।

केशिनी बोली कि वार्ष्णेय को राजा नल का हाल मालुम है और क्या वह बता सकता है कि वह कहां है, नल ने कहा वह कुच्छ नहीं जानता नल गुप्त रूप में वास कर रहा है, कोई नहीं जानता कि वह कहां है ॥

फिर केशनी ने दमयंति के वाक्य सुनाये और कहा कि अयोध्या में तुम ने इस का उत्तर किआ दिया था बाहुक ने फिर भी वही उतर दिया, उस समय उस की आंखों में पानी वहने लगा, यह देख कर केशनी दमयंति के पास चली गई और उस को वाहुक का सारा वृतांत सुना दिया और उस के दुखि होने का हाल भी कह सुनाया ॥

बहत्तरवां अध्याय

—:०:—

केशनी का फिर नल के पास जाना और उस के आचार व्यवहार प्रतीति करना ॥

दम्यंति ने विचारा कि नल यही है परंतु इस का रूप नल का सा प्रतीत नहीं होता तब उस ने केशिनी को फिर भेजा और कहा कि तुम जाकर बहुक की रीति भांति देखो और आकर मुझ को सब हाल सुनाओ। केशिनी यह सुन कर चली आई और नल के पास आकर उस की सब बातें देखने लगी और फिर जाकर दम्यंति को कहा कि यह मनुष्य देवता प्रतीत होता है उस ने मेरे देखते हुए खाली घड़ों को दृष्टिपात से ही पानी से भर दिया और उस से मांस धोया मुट्ठियों के सूर्य के सामने करने से ही प्रज्ज्वलित कर दिया अग्नि को सहज ही हाथ में लिया और उस ने उस के हाथ को नहीं जलाया फूलों को हाथ में मला और यह अधिक प्रफुल्लित हो गए ऐसी ऐसी बातों को देख कर मैं तेरे पास आई हूं ॥

दम्यंति को यह सब लक्षण नल के प्रतीत हुए और उस ने केशिनी को फिर भेजा कि जाकर नल का पका हुआ मांस लावे केशिनी बाहुक के पास से थोड़ा सा मांस ले आई जब दम्यंति ने उस को खाया तो उस को बाहुक के नल होने

में कोई शक न रहा वह अकस्मात पुकार उठी कि हे मार्ग
वंशी और ऐसा कह कर भूमी पर अचेत गिर पड़ी ॥

फिर उस ने केशिनी के हाथ अपने पुत्र और पुत्री को
भेजा, नल अपने पुत्र और पुत्री को देख कर उन के पास चला
आया और उन को गोद में लेकर फूट २ कर रोने लगा।
केशनी ने उस के रोने का कारण पूछा, उस ने उत्तर दिया
कि मेरे भी पुत्र और पुत्री इसी आयु के हैं, और इन को देख
कर वह मुझ को याद आगए हैं, फिर उस ने केशनी से कहा
कि मैं एक परदेशी हूं, तुम बार २ मेरे पास मत आया करो,
ऐसा न हो कि कोई तुम पर कामदेव की शंका करने लगे ॥

तिहत्तरवां अध्याय

—:०:—

दम्यान्ति का नल को अपने भवन में बुलाना और प्रश्नोत्तर करना, नल का अपना स्वरूप पाना और दम्यन्ति का उस को देख कर प्रसन्न होना और दोनों का परस्पर मेल ॥

तब दम्यंति ने अपनी माता से कहा कि हे माता बाहुक
को मेरे भवन में बुला दो मैं उस से एक दो बातें करना
चाहती हूं, अथवा मुझे उस के स्थान पर जाने की आज्ञा दो
उस की माता अपने पति राजा भीम के पास गई और दम्यंति

का सब वृत्तान्त उस को सुनाया। राजा भीम ने आज्ञा दी कि बाहुक दम्यन्ती के भवन में चला जाय॥

जब बाहुक भवन में आया तो दम्यन्ती को देख कर अकस्मात उस के अश्रुपात होने लगे। और वह महा दुःख में व्याकुल हो कर रोने लगा. दम्यन्ती भी उसकी यह दशा देख कर आतुर हो गई। और मलिन वस्त्र धारण किये हुए और बाल बिखरे हुये उसकी ओर बढ़ी, और पास आकर कहने लगी कि हे बाहुक। तुम ने ऐसा धर्मात्मा मनुष्य देखा है ? जो अपनी सोती हुई स्त्री को वन में छोड़ गया हो। ऐसी बात राजा नल के बिना और कोई नहीं कर सकता। मैं ने उस राजा का कोई अपराध नहीं किया, वरञ्च लोक पालों को छोड़ कर उसको मैं ने वरा था। क्यों मुझ अनुव्रता को उस ने त्याग दिया उस राजा ने अग्नि और देवताओं के सन्मुख मेरा पाणि ग्रहन किया था, और दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि तुझ से सदैव प्रीति रक्खूंगा वह प्रतिज्ञा उस राजा की कैसे भंग हुई॥

यह कह कर दम्यन्ती शोक और दुःख से अत्यन्त रोने लगी, वह उसकी पीड़ा को देख कर कहने लगा कि हे दम्यन्ता मैंने राज्य को अपने आप ने नष्ट किया न तुझ को त्यागा, इन दोनों का हेतु कली था, जिसको तूने महा दुःखी होकर घोर शाप दिया था, अब मैंने उस को अपने तपोबल से जीत लिया है। और अब फिर हम को ऐश्वर्यवान होना चाहिये, जब कलि मेरे शरीर से निकल गया तो तब मैं तेरे हां देखने के लिये यहां आया हूं नहीं तो मेरे आने का क्या प्रयोजन था॥

भला पुरुष तो दोषित ही सही ! यह तो बताओ कि यह कौन सा पतिव्रत धर्म है कि एक अनुव्रत और प्रीति रखने वाले पति को, जो दैव योग से कहीं चला गया हो छोड़ कर दूसरा पति करना ? पृथ्वी पर चारों ओर दूत फिर रहे हैं और दम्यन्ती के पुनर विवाह का संदेशा सुना रहे हैं ॥

दम्यन्ती ने कंपाय मान होकर उत्तर दिया कि हे प्राण पति यदि मैं यह न करती तो आप यहां किस प्रकार आते । आप के बिना पृथ्वी पर एक दिन में १०० योजन रथ चलाने वाला पुरुष नहीं है । मेरे मन में कोई पाप नहीं है । हे सूर्य देवता ! हे वायू महाराज ! मेरी साक्षि दो और यदि मैं सदोष हूं तो मुझ को भक्षण कर जाओ ॥

दम्यन्ती के इन कठिन वचनों को सुन कर आकाश वाणी हुई कि दम्यन्ती सर्वथा निर्दोष है, उस समय नल ने कर कोटक सर्प का स्मरण किया और उस का दिया हुआ वस्त्र शिर पर धर कर अपने पूर्व दिव्य रूप को धारण किया । दम्यन्ती उस को देख कर झट उस के गले लिपट गई और डीक मार कर रोने लगी, नल ने भी बहुत प्रेम प्रगट किया और अपने पुत्र और पुत्रि को छाती से लगाया ॥

राजा भीम को जब यह वृत्तांत विदित हुआ तो उस ने परमेश्वर का बहुत धन्यवाद किया, और दूसरे दिन प्रातः काल ही नल और दम्यन्ती को बुलाया और बुला कर बड़ा आदर और सत्कार किया, पुरवासीयों ने जब यह हाल सुना तो आकर राजा भीम को बधाईयां देने लगे, शहर

में बहुत से राग रंग होने लगे, ध्वजा और पताका और नाना प्रकार के शुभ अवसर के सामान किए गए मन्दिरों में पूजा और यज्ञ हवन किए गए ॥

राजा ऋतुपर्ण ने जब यह हाल सुना तो उस ने नल को बुलाया, और क्षमा मांग कर कहा कि मुझ से जो कुछ ज्ञान से अथवा अज्ञान से आप का अपराध हो गया तो आप उस को क्षमा करें । नल ने कहा कि मैं ने आप के घर में रह कर बड़ा आनन्द पाया है यदि मैं वहां न जाता तो कदाचित इस शुभ अवसर को न देखता यह केवल आप ही की कृपा है इस लिये मैं आप का बड़ा धन्यवाद करता हूं ॥

तत्पश्चात् नल ने उस को अश्व हृदय विद्या सिखाई और ऋतुपर्ण दूसरा सारथी लेकर अपने नगर को चला गया । और नल कुण्डिन पुर में रहने लगा ॥

चौहत्तरवां अध्याय

—:०:—

राजा नल का सेना लेकर निषद देश को जाना और पुष्कर से राज्य जीत कर उस को उस के देश में भेजना ॥

कुण्डिन पुर में एक मास ठहरने के उपरान्त नल एक रथ, सोलह हाथी, पचास घोड़े, और छः सौ प्यादे लेकर वहां से चल दिया, और बड़ी आन बान से अपने देश में आकर

पुष्कर को कहा कि जूए के नियमानुसार मुझ हारे हुये के साथ फिर जूआ खेलो, अथवा मुझ से युद्ध करो। मैं ने बहुत सा धन इकट्ठा किया और उन सब को मैं दांव पर लगाना चाहता हूं॥

पुष्कर ने उस की बात पर हंसी उड़ाई और कहने लगा कि बहुत अच्छा मैं भी चिर काल से आप की अपेक्षा करता था, मुझे भी धन की बहुत आवश्यक्ता है और अब के बार दमयन्ती को जीतकर कृत कृत्य हो जाऊंगा॥

नल को बहुत क्रोध आया और वह तलवार उठाकर उसका शिर काटने लगा, परन्तु फिर उस ने क्रोध को रोक लिया, और पुष्कर की मूर्खता पर उसे दो चार कठोर वचन कह सुनाये॥

अन्त को जूआ चला, जिसमें पुष्कर हार गया, नल चाहता तो उसकी भी वही दशा करता जो उस ने उसकी की थी, परन्तु नहीं उस ने उसका अपराध क्षमा किया और एक मास अपने पास रखकर उसे अपने राज्य में भेज दिया। पुष्कर इस बात पर बड़ा प्रसन्न हुआ, और अपने भाई की उदारता देख कर अपनी दुर्बुद्धिता पर बहुत पश्चाताप किया॥

राज्य के लोग नल को फिर राजा पाकर बड़े प्रसन्न हुये और हाथ जोड़ कर कहने लगे कि महाराज आज हम सब भयों से निश्चिंत हुये हैं॥

छिहत्रवां अध्याय

—:०:—

दम्यन्ती का अपनी राजधानी में आना वृहदश्वका युधिष्ठर को समझा कर चले जाना और अर्जुन की तपस्या का हाल ॥

जब नगर में बहुत से आनन्द मंगलाचार होने लगे तो नल ने बहुत सी सेना कुण्डिन पुर को भेजी और कहा कि दम्यन्ती को ले आओ। राजा भीम ने बड़े आदर के साथ अपनी बेटी को विदा किया, दम्यन्ती बड़े आनन्द से अपने राज्य को वापिस आई, और प्रसन्नता पूर्वक अपने राज्य में रहने लगी ॥

राजा नल ने नीति पूर्वक राज्य करने के कारण सारे जम्बुद्वीप में बड़ी शोभा पाई ॥

तब वृहदश्व ने राजा युधिष्ठर को कहा कि उस राजा को महा क्लेश और पुत्र और स्त्री का दुःख केवल जूआ खेलने के कारण हुआ था और वह इस दुःख में अकेला ही फिरता रहा परन्तु अन्त को उस का अभ्युदय हुआ परन्तु तुम तो स्त्री और भाइयों के समेत हो और वेद और वेदांग जानने वाले ब्राह्मण सदा तुम्हारे पास रहते हैं तुम को रोना और अधिक शोक करना उचित नहीं संसार में पुरुषार्थ किसी को ठीक नहीं रहता और धन दौलत सदा चलाय

मान होते हैं इस लिये ऐश्वर्य की हानि पर शोकातुर न होना चाहिये तुम ने यह इतिहास सुना है इस लिये अपने दैव के विपरीत होने और पुरुषार्थ के निष्फल जाने पर खेद मत करो ॥

बृहदश्व ने देखा कि युधिष्ठिर पांसो से डरता है ; इस लिये उस ने संपूर्ण अक्ष हृदय विद्या उस को सिखादी और अश्व हृदय विद्या का भी उपदेश देकर चला गया ॥

उसी समय युधिष्ठिर को पता लगा कि अर्जुन बहुत उग्र तप कर रहा है, ऐसा तप करने वाला आज तक कोई नहीं देखा गया और सर्वदा वायू भक्षि रहता है, युधिष्ठिर को सुन कर बड़ा शोच हुआ और इस का कारण ज्ञानी ब्राह्मणों से पूछने लगा ॥

सतहत्तरवां अध्याय

—:०:—

सब पांडवों का अर्जुन के चले जाने का अत्यन्त शोच करना ॥

जब अर्जुन काम्यक वन से चला गया और अपनी तपस्या में लग गया, तो द्रौपदी बोली कि मुझ को अर्जुन के बिना यह वन डराऊना प्रतीत होता है वह अर्जुन यद्यपि द्विभुज था परन्तु सहस्र बाहू से बढ़ कर था मैं दिन रात उस को स्मरें

करती रहती हूं ॥

भीम ने कहा कि तुम सत्य कहती हो मेरा भी यही हाल है, वह अर्जुन जिस के भुज बल से हम शत्रु को जीता हुआ समझते हैं उस के बिना मेरे चित्त को धीरज नहीं आता ॥

नकुल ने कहा कि अर्जुन ने गंधर्वों को युद्ध में जीता और उन से तीतर रंगे बहुत घोड़े लाकर अपने भाई को राजसूय यज्ञ में दिये, उस के बिना काम्यक वन में रहना अच्छा प्रतीत नहीं होता ॥

सहदेव ने कहा कि अर्जुन ने युद्ध में बहुत सा धन जीता और बहुत सी कन्या जीत कर लाया, और सब यादवों को छल कर सुभद्रा को लाया। वास्तव में उस अर्जुन के बिना यह वन रहने योग्य नहीं ॥

अठहत्तरवां अध्याय

—:—o—:—
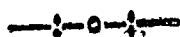
नारद का काम्यक वन में आना, युधिष्ठर का उन से पृथ्वी परिक्रमा का फल पूछना, भीष्म और पुलस्त्य ऋषि का संवाद वर्णन करना। नारद जी का पृथ्वी पर घूमने का फल कहना ॥

युधिष्ठर द्रौपदी और दूसरे भाईयों के इस वाक्य को सुन

कर म्लान चित होगया, और अनेक प्रकार के विचार करने लगा, इतने में परम तेजस्वी योगीश्वर नारद जी वहां आ निकले, युधिष्ठर ने भाईयों समेत खड़े होकर उन का आदर किया और विधि के अनुकूल उन की पूजा की। नारद जी पूजा को ग्रहण करके बैठ गए। और युधिष्ठर को धैर्य देने लगे, और कहा कि धर्मात्मा युधिष्ठर मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सक्ता हूं॥

युधिष्ठर बोला कि हे महाराज! आपकी प्रसन्नता से मेरी परम सहायता है, परन्तु यदि आप मुझ पर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो यह बताईये कि तीर्थ यात्रा और पृथ्वी की परिक्रमा करने से क्या फल मिलता है? नारद जी ने वह कथा जो पुलस्त्य जी ने कही थी सुनाई और कहा कि एक बार भीष्म जी हरिद्वार पितृ संबन्धी जप कर रहे थे कि वहां परम पुनीत तेजस्वी पुलस्त्य जी आये, भीष्म जी उस को देख कर बहुत प्रसन्न हुए, और उन का बड़ा आदर और मान किया, पुलस्त्य जी भीष्म के नियमनुसार वेदपाठ करने पर बड़े प्रसन्न हुए॥

जब पुलस्त्य जी ने भीष्म जी को कहा कि हे भीष्म मैं आप की धर्मपरायणता को देख कर बड़ा प्रसन्न हूं आप के ब्रह्मचर्यव्रत और बाह्यइंद्रियों को जयकरना सुन कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं कहो कुच्छ मेरे योग्य काम है? आप की पितृ भक्ति मुझे यहां खींच लाई है, अन्यथा औरों को तो मेरा

नाम भी दुर्लभ है। भीष्म जी ने कहा कि महाराज, मैं आप के इस परम अनुग्रह का धन्यवाद करता हूं आप के दर्शनों ही से मेरे सब काम सिद्ध हो गये हैं, वरंच आप ब्रह्मर्षि हैं, आप यह बतावें कि तीर्थ यात्रा का और पृथ्वी की परिक्रमा करने का क्या फल है ?

पुलस्त्य जी बोले कि तीर्थ यात्रा का फल केवल उस मनुष्य को मिलता है जो अपने हाथ पांव और मन को वश में रखने वाले, विद्या मान, तपस्वी, संतोषी, दान न लेने वाले, अहंकार रहित, दंभहीन, थोड़ा खाने वाले जितेन्द्रिय, पाप रहित, सत्यवादी, शीलवान, व्रत करने में दृढ़ और सब पर दया करने वाले हैं ॥

विद्वान ऋषियों ने नाना प्रकार के यज्ञ कहे हैं, जिन का फल लोक और परलोक दोनों में मिलता है, परन्तु उन की सामग्री बड़ी कठिन है, और प्रत्येक मनुष्य उस को एकत्र नहीं कर सक्ते। इस लिये ऐसे मनुष्य तीर्थ यात्रा करने से उन यज्ञों के फल भोगते हैं। अग्नि होम आदि के करने से वह फल नहीं मिलता जो तीर्थ यात्रा करने से मिलता है॥

इस पृथ्वी पर एक अत्यन्त पवित्रस्थान पुष्कर नामी तीर्थ है, उस का महत्व अन्य सब तीर्थों के बराबर है. सब देवता उस के निकट बने रहते हैं, पहिले पहिले देवताओं ने ऋषियों सहित उस पर तपस्या की, और कई अश्वमेधों के फलों को प्राप्त किया, जो मनुष्य रूखी सूखी रोटी खा कर

और एक ब्राह्मण को भी वैसा ही अन्न दान कर श्रद्धा पूर्वक इस तीर्थ पर स्नान करता है उस को इस लोक और परलोक दोनों की सिद्धि होती है और जो कार्तिक पूर्णमासी में वहां स्नान करता है उस को अक्षयलोक भी प्राप्त होता है॥

पुष्कर में १२ रात्रि रह कर जम्बू मार्ग में जाकर ५ रात्रि रहना चाहिये वहां से फिर तंदुलिकाश्रम को, उस में अगस्त जी का सरोवर है, वहां से कण्व के पवित्राश्रम को, और पुनः ययाति पतन तीर्थ को जावे वहां से फिर महाकाल को, इस के पश्चात पुलस्त्य जी ने सब तीर्थों के नाम लिये और प्रत्येक के फल को भी वर्णन किया. और कहा कि बहुत से तीर्थ इस में मनुष्यों से सर्वथा अगम्य हैं वहां केवल मानसिक वृत्ति से जाना चाहिये। केवल देवता लोग ही उन में जा सकते हैं इन की यात्रा करो और अपने पुण्य को तीर्थों के पुण्य से बढ़ाओ, जो मनुष्य अवृत्ति अजित चित्त, अपवित्र और कुबुद्धि होता है वह तीर्थ स्नान नहीं करता तुम तो जितेन्द्रिय और पितृसेवक हो तुम को अवश्य तीर्थयात्रा करना उचित है यह कह कर पुलस्त्य जी अंतर्धान होगये, और भीष्म जी उस के कथन के अनुकूल उन तीर्थों की यात्रा करने लगे॥

यह कथा कह कर नारद ने कहा कि हे युधिष्ठिर, तुम भी तीर्थ यात्रा करो, और बाल्मीक, कश्यप, आत्रेय, कुण्डजठर, विश्वामित्र, गौतम, भरद्वाज, वशिष्ठ, शौनक पुत्र सहित व्यास

और भावलादि सब ऋषियों को अपने साथ लो। और जो लोमश जी बड़े तेजस्वी और प्रतापी महर्षि चले आरहे हैं, उन को साथ ले चलो। मेरे साथ भी चलना तुम्हारी राजामहाभिषक सी कीर्ति होगी। यह शिक्षा देकर नारद जी वहां अन्तर्धान हो गए॥

उनासीवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का धौम्य ऋषि से अर्जुन के वियोग का वृत्तान्त कहना, और अन्य स्थान में जाने का संकल्प प्रकट करना॥

नारद जी के कथन को सुन और विचार कर युधिष्ठर धौम्य ऋषि से बोला हे महाराज मैंने महा बाहु अर्जुन को अस्त्र विद्या सीखने के निमित्त प्रदेश में भेजा है, यद्यपि वह पहले भी उस को श्री कृष्ण के समान अस्त्र विद्या आती है, परन्तु मैंने उसको इन्द्र का पुत्र समझ कर इन्द्र के पास भेजा है, मेरा विचार है कि भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अन्य धर्मात्मा शूरवीर महा पुरुष दुर्योधन के पक्षपाति हैं, और इस लिये वह अर्जुन से लड़ना चाहते हैं, अर्जुन का ऐसे जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी पुरुषों से लड़ना सर्वथा असम्भव है जब तक कि वह आप जैसा धर्मात्मा न हो। कर्ण भी सब अस्त्र विद्या

को जानता है उस के वार का उत्तर देने के लिये अर्जुन को दिव्यास्त्र विद्या सीखना बड़ा उपयोगी होगा, विना इस विद्या के यह कौरव हमारे हाथ नहीं आ सकते ॥

परन्तु विना अर्जुन के इस वन में रहते हुए हमारा जी नहीं लगता । सो हे महाराज कोई और वन बताइये जहां अन्न और फल बहुत मिले । पुण्यात्मा मनुष्य रहते हों । हम वहां रहकर अर्जुन की बाट देखेंगे ॥

तब धौम्यऋषि ने युधिष्ठिर से पूर्व और दक्षिण दिशाओं के तीर्थ का नाम लिया, और पयोष्णी का महात्म्य वर्णन किया और बद्री नारायण आदि का विस्तार पूर्वक हाल सुनाया और कहा कि यदि तुम भाइयों सहित इन तीर्थों के दर्शन करोगे तो तुम्हारा सब शोक दूर होजायगा ॥

अस्सीवां अध्याय

—:o:—

लोमश ऋषि का आना और इन्द्र का संदेशा लाना ॥

उसी समय लोमश ऋषि आये राजा युधिष्ठिर ने उन की पूजा की और उन के आने का कारण पूछा ॥

लोमश ऋषि बोले कि मैं घूमता हुआ स्वर्ग में पहुंचा और वहां मैंने इन्द्र के साथ इन्द्रसन पर आप के वीर भाई अर्जुन को

देखा, मुझे देख कर देवेन्द्र ने और अर्जुन ने आप के पास भेज दिया और मैं अब सीधा वहां से आ रहा हुं अर्जुन ने ब्रहतशिर नाम महास्त्र सीख लिया है और संहार प्रायश्चित और मंगल की विधियों को भलि प्रकार जान लिया है और भस्म हुए पदार्थों को ज्यों का त्यों कर देना भी उस को आगया है ॥

और फिर यम कुवेर और वरुण से अन्याअस्त्र भी सीख लिये हैं इस के अतिरिक्त उस ने विश्वावसु गंधर्व की बेटी से गाना बजाना और नाचना भी सीखा है सो वह तुम्हारा भाई इन्द्र के हां गन्धर्व वेद को पढ़ कर सुख पूर्वक रहता है और देवताओं का कुच्छ काम जो उन से आप हो नहीं सक्ता कर के शीघ्र वापस आवेगा तब तक आप भी तपस्या करें, क्योंकि तपस्या से बढ़ कर कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं है इन्द्र ने कहा था कि अब अर्जुन पूर्ण शस्त्र विद्या में कुशल और प्रवीण हो गया और जो कुछ शेष रहता है वह उस को इस लोक में आने पर बता देगा ॥

अब कर्ण का खटका चूक गया, माना कि वह बड़ा योधा, धनुषधारी, पराक्रमी, और सत्य प्रतिज्ञ है, परन्तु अर्जुन की साहलवीं कला को भी नहीं पहुंचेगा अब तुम को तीर्थ यात्रा करनी चाहिये, लोमश उन के महात्म्य को सुनावेगा उस के वचनों पर श्रद्धा करो ॥

एक्यासीवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का लोमश ऋषि की आज्ञा और अर्जुन का संदेशा सुन कर, तीर्थ यात्रा करना और नौकर चाकरों को लौटा कर तीन दिन उस वन में रहना॥

लोमश ऋषि ने कहा कि हे युधिष्ठर इन्द्र का संदेशा सुन कर अर्जुन ने भी उसी विषय में बार २ कहा और बताया धर्मराज युधिष्ठर को मेरी ओर से भी बहुत २ कहना कि तीर्थ यात्रा अवश्य करें इस से बढ़ कर न कोई तप और न श्रेष्ठ धर्म है॥

फिर अर्जुन मुझे कहने लगा कि आप उनकी सब प्रकार की रक्षा करें पहिले समय में दधीच ऋषि ने इन्द्र की और अंगिरा ने सूर्य की रक्षा की थी, आप के होने पर कोई यक्ष, दानव और राक्षस उन के निकट न आ सकेंगे, मैंने अर्जुन को सब प्रकार से तसल्ली दी और कहा कि आप युधिष्ठर की तनक भर चिन्ता न करें॥

इस लिये हे राजन् मैं आप के पास उपस्थित हूं जैसा इच्छा हो वैसा करो तुम तो सत्यवादी धर्ममूर्ति, धर्मज्ञ और सब संगों से विमुक्त हो केवल निर्बुद्धि मनुष्य और पापी जन तीर्थ स्नान की महिमा को प्राप्त नहीं हो सकते॥

लोमश ऋषि की वार्ता सुन कर युधिष्ठिर परम हर्षित हो कर बोले कि हे महाराज, आप का वचन बहुत उत्तम है, और मैं इस का उत्तर पृथ्वी भर में नहीं पाता हुं भला इस से भी अधिक क्या होगा कि इन्द्र जी मेरा समर्ण करें, मैं यह संदेशा सुन कर कृतकृत्य होगया है, सो हे महाराज जैसा आप की इच्छा हो वैसा कीजीये, जब आप आज्ञा दें तब ही आप के साथ चलन को उपस्थित हुं ॥

लोमश ने कहा कि मैं पहिले दोवार सब तीर्थों की यात्रा कर चुका हुं अब तीसरी वार तुम्हारे साथ चलूंगा यह कह कर लोमश ने युधिष्ठर को कहा कि तुम अपने समुदाय को कम करदो क्योंकि इतनी भीड़ भाड़ को साथ ले जाना सर्वथा उचित नहीं वन में आहार विहार के नियम नगरों के से नहीं होते। इस लिये इन सब के साथ साथ जाने पर आप को और इन लोगों को भी बड़ा कष्ट होगा ॥

युधिष्ठर ने अपने साथीयों को बुलाया और सब पुरवासियों को जो उनके प्रेम में उन के साथ चले आये थे कहने लग कि आप कृपा कर के हस्तिना पुर को चले जायें तब उस ने ब्राह्मणों को कहा कि आप में से जो लोग भिक्षा भोजन करने वाले, और भूखप्यास और राह की थकावट को सहार नहीं सकते वह भी चले जायें जो मिष्ठान्न पक्वान्न, लेह्य, पान और मांस की इच्छा करने वाले हों वह भी चले जांय हमारे रसोइये जो हमारे साथ अन्न आदि भोजन करने वाले हैं वह भी लौट जायें ॥

लोगों ने कहा कि महाराज हम आप को छोड़ कर कहां जाय, युधिष्ठर ने कहा कि तुम हस्तिना पुर चले जाओ ॥

राजा धृतराष्ट्र तुमको सब प्रकार से रक्षा करेंगे, यदि न करें तो आप राजा द्रुपद के पास चले जाईये, वह अवश्य ही आप को यथा चित्त वृत्ति देंगे॥

युधिष्ठर के इन वचनों को सुन कर बहुत से लोग ब्राह्मण यति और सेवक हस्तिना पुर को लौट आये और वहां राजा युधिष्ठर ने उन सब का यथा चित्त आजीविका लगादी, युधिष्ठर तत्पश्चात शेष ब्राह्मणों के साथतीन दिन तक उस वनमें रहा ॥

बयासीवां अध्याय

—:—०—:—

सब ब्राह्मणों का युधिष्ठर के साथ जाने के लिये प्रार्थना करना और सब को साथ लेकर युधिष्ठर का पूर्व दिशा को जाना ॥

युधिष्ठर के तीर्थयात्रा का समाचार सुन कर वनवासी ब्राह्मणों ने आकर प्रार्थना की कि हे महाराज तीर्थों दुर्ग विषमस्थान, और श्वापद और राक्षसों का विचरण होता रहता है, अल्प मनुष्यों का वहां जाना बहुत कठिन है। इस लिये आप के सहारे हम लोग भी तीर्थ यात्रा का फल पाना चाहते हैं, कृपा पूर्वक हम को भी साथ ले चलें।

हम भी निडर हो जायेंगे, और आप भी दुष्प्राप्य लोकों को प्राप्त होंगे, यदि आप को लेश मात्र भी ब्राह्मणों की भक्ति है, तो हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें। और जो जो तीर्थ नारद जी, धौम्य पुरोहित और लोमश जी बोलें उनके दर्शन करें॥

युधिष्ठिर उन ब्राह्मणों के वचनों से बड़ा प्रसन्न हुआ और ऐसा ही सही कह कर उन को साथ चलने को कहा॥

तब युधिष्ठिर ने लोमश जी और धौम्य पुरोहित की पूजा की, और द्रौपदी सहित तीर्थ यात्रा करने का विचार किया, उसी समय व्यास जी नारद जी और पर्वत ऋषि आये युधिष्ठिर ने उन सब की पूजा की और वह सब सत्कार पाकर द्रौपदी सहित सब को ऋजुता का उपदेश करने लगे उन्हों ने कहा कि शरीर से नियम का साधना मानुष व्रत और मन को शुद्ध करना दैवव्रत कहलाता है, परन्तु शौच के निमित्त मन का निर्दोष होना ही पर्याप्त है, इस लिये तुम शरीर और मन के नियमों का साधन और व्रत करके शुद्ध हो, और दैवव्रत को धारण करके परस्पर मित्रता रख के तीर्थ यात्रा करो और यथोक्त फल के भागी बनो॥

पाण्डवों ने द्रौपदी सहित वह व्रत स्वीकार किया और अगहन की पूर्णिमा के पीछे पुण्य नक्षत्र में तपस्वियों का वेष धारण कर के और अपने शस्त्र पहिन कर और ऋषियों के चरण छू कर स्वस्तिवाचन किया और यात्रा पर चल पड़े इन्द्रसेन आदि भृत्य और [illegible] साथ लिये, और पूर्व

दिशा का उद्देश्य कर के चल दिये ॥

तिरासीवां अध्याय

—:o:—

युधिष्ठर का लोमश जी से धर्मात्माओं के दुःखी होने और अधर्मियों के सुखी होने का कारण पूछना और ऋषि का उत्तर देना ॥

मार्ग में चलते हुये युधिष्ठर ने लोमश ऋषि से पूछा कि हे महात्मन्! इस का क्या कारण है कि धर्मात्मा मनुष्य तो बहुत दुःख से परास्त हो जाते हैं और अधर्मी वृद्धि पाकर सब ऐश्वर्यों को भोगते हैं मैं देखता हूं कि मुझ में कोई दुर्गुण नहीं न मेरी पाप में रुचि है, परन्तु मेरे शत्रुगण और सर्व से सर्वांश में रहित हैं, फिर क्या कारण है कि समृद्धिवान और सुखी होते जाते हैं और हम नित्य प्रति क्षीण बल और दुःखी हो रहे हैं ॥

लोमश जी ने कहा कि हे राजन् अधर्म की ऐसी ही गति है तुम को इस बात पर दुःखी होना उचित नहीं, अधर्म पहिले तो मनुष्य को सुख का लोभ देता है और उसकी वृद्धि और कल्याण करता है, परन्तु उस का अन्त बहुत बुरा है, और कुच्छ काल के उपरान्त पापी का मूल सहित धूल में मिला देता है मैंने देखा है कि पाप कर्म से दैत्यों ने वृद्धि पाई, परन्तु

अन्त में जड़ पेड़ से नाश हो गये, धर्म परायण देवता तीर्थ में प्रवेश होगये, और दैत्य नहीं हुये ॥

निरन्तर अधर्म करने से दैत्यों के मन में गर्व उत्पन्न हुआ और उस से खोटे कर्म करने लगे जिससे लज्जा जाती रही, और व्रत नष्ट होगया, तब क्षमा, लक्ष्मी और धर्म ने उन को त्याग दिया, यह देख कर कलि ने उन में प्रवेश किया, और दरिद्रता से आविष्ट होकर क्रिया हीन निर्बुद्धि और मानी दैत्य नाश हो गए ॥

देवताओं का कल्याण हुआ, और वह तीर्थ सरोवरों और सागरों पर आश्रम बना कर ऐश्वर्य के भोगी हुए तुम भी इसी प्रकार तपश्चर्या के बल से धर्म परायण होने से अपने शत्रुओं को वश करके ऐश्वर्य को प्राप्त करोगे, और तुम्हारे शत्रुओं की हानि होगी देखो राजा मृग शिवि भगीर्थ, सुमना, मय पुरु और पुरु रवा ने इसी प्रकार पुण्य, यश और द्रव्य पाये थे ॥

चौरासीवां अध्याय

—:o:—

राजा युधिष्ठर का नैमिशादि तीर्थ की यात्रा करना और गयाशिर पर्वत पर पहुंच कर राजा गय का इतिहास सुनना ॥

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए पांडव अनेक स्थानों में टिकते हुए नैमिश वन में पहुंचे, और गोमति के अनेक तीर्थों पर स्नान किया और गो दानादि दिये, फिर उन्हों ने कन्या तीर्थ अश्वतीर्थ और गौओं के तीर्थ पर विधि पूर्वक तर्पण किया और कालकोटि और त्रिपप्रस्थ पर्वतों पर वास किया, फिर वाहुदा तीर्थ पर सब ने स्नान किये और प्रयाग में जाकर वास किया ॥

इस के पश्चात गंगा और यमुना के संगम पर ब्राह्मणों को धनादि से तृप्त किया और फिर ब्रह्मा जी की वेदि से चल कर गयशिर नामी पर्वत पर जो धर्मज्ञ पुण्यात्मा राजर्षि गय का संस्कार किया हुआ २ है और बड़ा पवित्र दिव्यस्थान है गये ॥

वहां महानदी बड़ी रमणीक है और उस के तट पर वानीर वृक्ष और वालू के ढेर हैं, वहां ब्रह्मसर नामी तीर्थ है और ऋषियों के अनेक स्थान हैं, यहां पर अगस्त्य जी यमराज के पास गये थे ॥

इसी स्थान पर सब नदियां प्रकट होती हैं यमराज और शिवजी का स्थान है, वहां चातुर्मास्य और ऋषियज्ञ किये, और अक्षय वृक्ष के नीचे वास किया, और उपवास किये ॥

उस समय बहुत से तपस्वी और पुण्यात्मा वेद पाठी ब्राह्मण आये, और सभा में बैठकर अनेक पुण्य रूपी कथायें कहने लगे, तब शमठ जी ने राजा गय का इतिहास वर्णन

किया और कहने लगा कि अमूर्तरयस के उस महात्मा पुत्र ने इस स्थान पर यहे यज्ञ कराये ॥

अन्न और खाद्य पदार्थों के पर्वत काट कर ढेर लगा दिये और याचकों और ब्राह्मणों को दान देकर प्रसन्न किया उस समय ऐसी वेद वाणी होती थी कि आकाश गूंज उठता पुण्याह वाचन के शब्द से पृथ्वी दिशा और आकाश पूर्ण होजाता वह समय बड़ा अद्भुत जान पड़ता था, और प्राणि अधिक तृप्त होने से राजा की कीर्ति और यश को चारों ओर फैलाते थे ॥

कहते हैं कि सब को खिला पिला कर पच्चीस पर्वत भोजनशेष बच रहा वैसा यज्ञ न किसी ने किया और न किसी को अब करने की सम्भावना है, देवता लोग भी अपरिमित हविपाकर अति तृप्त हुए, उस के दान गिनने की चेष्ठा करना ऐसा ही असम्भव है, जैसे बालु के कणों को गिनना ॥

हे युधिष्ठर उस राजा ने कई यज्ञ इस प्रकार के इस नदी के तट पर किये ॥

पचासीवां अध्याय

—:—०—:—

युधिष्ठर का ब्राह्मणों समेत अगस्त्य जी के आश्रम को जाना और वातापी दैत्य के मारे

जाने की कथा ॥

युधिष्ठर उस तीर्थ से अगस्त्य जी के आश्रम को गया, और दुर्जया पुरी में रहने लगा वहां उस ने लोमश ऋषि से पूछा कि अगस्त्य जी ने वातापी दैत्य को किस कारण मारा था लोमश ऋषि ने निम्न लिखित वृत्तान्त सुनाया ॥

वातापी वध ॥

अगले समय में भाणि भति पुर में इल्वल नाम एक दैत्य रहता था, उस के छोटे भाई का नाम वातापी था । इल्वल ने किसी महात्मा ब्राह्मण से प्रार्थना की कि मुझे एक ऐसा पुत्र दो जो इन्द्र के समान बल वाला हो, ब्राह्मण जो कि दैत्य के दुष्ट गुणों को भलि प्रकार जानता था, ताड़ गया कि इस का अभिप्राय अधिक दुष्टता करने का है, इस लिये उस ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार न किया, और कोई उपाय सन्तानोत्पत्ति का न बतलाया, इल्वल इस बात से क्रोध में आकर ब्राह्मणों का शत्रु बन गया, और विचारे भोले भाले ब्राह्मणों को धोखा देकर मारने लगा, उसको ऐसी विद्या आती थी, कि मृत पुरुषों को बुलाता था और वह शरीर पाकर उस के सन्मुख आजाते थे इसी विद्या के बल से वह अपने भाई वातापी को बकरा बना कर मार देता और ब्राह्मणों को श्राद्ध के छल से खिला देता जूंही ब्राह्मण खा चुकते, तो वह वातापी को पुकारता जो ब्राह्मणों का पेट फाड़ कर हंसता हुआ सामने आ खड़ा होता इसी प्रकार अनेक ब्राह्मण मारे गये ॥

एक बार दैवयोग से अगस्त्य जी ने अपने पितरों को गढ़े में लटके हुए देखा और अचंभित होकर पूछने लगे कि आप कौन हैं, जब उन्हों ने अपना हाल सुनाया तो अगस्त्य जी ने पूछा कि मैं आपका दुःख कैसे दूर कर सकता हूं उन्हों ने कहा यदि आप एक सुपुत्र उत्पन्न करें तो हमारे दुःख की निवृत्ति सम्भव है, अगस्त्य जी ने पुत्र उत्पन्न करने का प्रण किया और किसी उत्तम स्त्री की खोज में लगे कि जिस से विवाह कर के सन्तान उत्पन्न की जावे उस समय विदर्भ के राजा के हां एक अत्यन्त रूप वती और गुण वान कन्या थी जिसका रूप बिजुली के समान प्रकाश मान था और जो सब प्रकार के गुण आदि राय धारण करती थी। बहुत से राजा उस सुंदरी कन्या से विवाह करने के अभिलाषी थे, परन्तु विदर्भ राज के प्रभाव से ऐसा कहने का साहस नहीं रखते थे। उस कन्या का नाम लोपा मुद्रा था॥

—:०:—

छियासीवां अध्याय

—:०:—

लोपा मुद्रा से विवाह॥

समय पाकर अगस्त्य जी विदर्भ नरेश के पास पहुंचे, और उस से प्रार्थना की कि अपनी बेटी का विवाह उस से करदो, विदर्भ राज अगस्त्य जी के प्रभावशाली प्रश्न का उत्तर न दे सके, परन्तु दुःखत होकर रनिवास में चला गया

अगस्त्य ऋषि का सारा वृत्तान्त सुनाया, रानी जो अपनी बेटी से अत्यन्त प्रेम करती थी और उस को एक निर्धन तपस्वी के साथ विवाह देना किसी हालत में भी पसंद न करती थी और भी व्याकुल हो गई, जब यह वृत्तान्त लोपा मुद्रा ने सुना तो उसने अपने माता पिता को शान्ति दी और कहा कि मेरे कारण आप दुखित न हों मुझे अगस्त्य जी की धर्म पत्नी बनने में कोई दुःख नहीं, कन्या के शब्दों ने राजा और रानी दोनों को शान्त किया और लोपा मुद्रा का अगस्त्य जी के साथ विधि पूर्वक विवाह होगया ॥

विवाह होने के उपरान्त अगस्त्य जी ने अपनी स्त्री को कहा कि हम तपस्वी हैं, हम को बहु मूल्य भूषणादि से कुछ काम नहीं अतःखं इन को उतार दो, देवी ने वैसा ही किया और वल्कल पहिन अपने पति के साथ तपो वन को चली गई ॥

लोपा मुद्रा ने अपने पति की बहुत सेवा की जिस से वह बहुत प्रसन्न होकर उस पर बहुत प्रीति मान हो गए, अब अगस्त्य जी के हृदय में सन्तानोत्पत्ति का संकल्प उत्पन्न हुआ और उस ने अपनी परम सुंदरी भार्या से इस अभिलाषा को प्रकट किया, लोपा मुद्रा जो उस समय ऋतु स्नान कर चुकी थी लाज्जित होकर कहने लगी कि मैं आप की प्रसन्नता प्राप्त करने के निमित्त प्रत्येक कार्य करने को उद्यत हुं परन्तु जब तक रती की संपूर्ण सामग्री प्रस्तुत न हो, काम चेष्टा असंभव है, आप पहिले वस्त्रादि प्राप्त करें, मुझ

लावें, आभूषण और पुष्प शय्या लावें, तब मुझे रती होगी अगस्त्य जी ने समझाया कि तपस्वियों को ऐसे पदार्थों से कुछ काम नहीं होना चाहिये परन्तु लोपा मुद्रा ने यही कहा कि जब हम गृहस्थों के काम करते हैं तो हम को गृहस्थों की भांति वह काम करना चाहिए, बेवस होकर अगस्त्य जी धनोपार्जन के लिये चल दिये ॥

सतासीवां अध्याय

—:०:—

अगस्त्य जी का धन मांगने की इच्छा से राजा श्रुतर्वाण, राजा ब्रधनश्व और राजा त्रसदस्युः के निकट जाना, परन्तु उन राजाओं का आय और व्यय समान होने के कारण उन से कोई धन न लेना और चारों का इल्वल दैत्य के पास धन के निमित्त जाना ॥

लोपा मुद्रा को अपने स्थान पर छोड़ कर अगस्त्य जी राजा श्रुतर्वाण के पास पहुंच, राजा ने बहुत आदर सन्मान किया और आने का कारण पूछा, परन्तु जब अगस्त्य जी ने बताया कि हम को धन की आवश्यक्ता है और वह राजा के अधिक धन से कुछ भाग मांगना चाहिता है, तो राजा ने निवेदन किया कि मेरी आमदनी और खरच बराबर हैं।

ाई अधिक धन मेरे कोष में नहीं, तो अगस्त्य जी ने उस से किञ्चित मात्र भी ग्रहण करना स्वीकार न किया क्योंकि ऐसा करने से उस की प्रजा को पीड़ा होनी संभव थी, अतःएव राजा को साथ ले कर राजा ब्रधश्व के पास गये, परन्तु वहां भी ऐसा ही हाल पाया, और तीनों मिल कर राजा त्रसदस्युः के पास पहुंचे, परन्तु वहां भी धन का यही हाल था चारों ने मिल कर विचार किया कि इल्वल दैत्य बड़ा धनवान है, और उस के पास अधिक धन की संभावना है, इस लिये चारों मिल कर इल्वल के पास आये॥

अठासीवां अध्याय

—:०:—

वातापी वध, धन प्राप्ति, लोपा मुद्रा की मनोर्थ सिद्धि, परशुराम की पुनः तेज प्राप्ति॥

ज्यूंही इल्वल ने अगस्त्य जी के आने का वृत्तान्त सुना वह सन्मान पूर्वक उन को अपने स्थान में ले आया और अर्घ दे कर बहुत सेवा की, जब उस ने वातापि को यथा पूर्वक मार कर उस के मांस से अगस्त्य जी का आतिथ्य किया, दूसरे राजा लोग तो बहुत डरे, परन्तु अगस्त्य जी ने उनको दलेरी दी और कहा कि मत डरो मैं वातापि को पचा जाऊंगा॥

जब इल्वल ने वातापि के मांस को परोसा और अगस्त्य जी के सन्मुख रक्खा तो अगस्त्य जी सारा ही खा गए। इल्वल बहुत अचंभित हुआ, और यथा पूर्वक वातापि को पुकारा परंतु अब वातापि कहां उस को तो अगस्त्य जी पचा ही गये थे उसी समय अगस्त्य जी ने एक बड़े शब्द का अपान वायु छोड़ा, और कहा कि अये, इल्वल वातापि कहां है, वह तो भस्म भी होगया, अब उस का विचार छोड़ दो, इल्वल बहुत घबराया, और अगस्त्य जी के पाओं पर गिर कर कहने लगा कि महाराज क्षमा कीजिये, मुझ से बहुत भारी अपराध हुआ है। मुझे बतलाईये कि आप किस हेतु मेरे स्थान पर पधारे हैं, अगसत्य जी ने अपने आने का कारण बतलाया और कहा कि मुझ वह धन दो जिस के देने में तुम्हारी प्रजा को किसी प्रकार की पीड़ा न हो॥

इल्वल बड़ा धनवान था उस ने अगस्त्य जी की आज्ञा को मान कर उन की आवश्यक्ता अनुसार धन दिया और बड़े आदर और सन्मान से अपने राज्य की सीमा से पार छोड़ आया॥

अगस्त्य जी धन लेकर लोपा मुद्रा के पास आये और उसकी मनो कामना पुरी की॥

इस के उपरान्त लोपा मुद्रा ने अगस्त्य जी से प्रार्थना की और कहा कि महाराज मेरी इच्छा है कि मेरे घर में एक पुत्र ऐसा उत्पन्न हो जो सहस्रों का बल रक्खे और परम तेजस्वी

और रूप वान हो अगस्त्य जी ने कहा कि यदि तूं चाहे तो सहस्रों पुत्र उत्पन्न कर सकता हूं, परन्तु लोपा मुद्रा ने कहा कि साधु और विद्वान को एक ही पुत्र अच्छा है, मूर्ख चाहे सहस्रों हों कुल की उन्नति नहीं कर सकते, अगस्त्य जी ने लोपा मुद्रा का कहना माना और उस के गर्भ से एक परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न कर दिया अगस्त्य जी ने इस बालक का नाम दृढ़स्यु रक्खा परन्तु जब वह बड़ा होकर लकड़ियों के बड़े २ गट्ठे उठा कर आश्रम में लाने लगा तो उस का नाम इध्म वाह पड़ गया ॥

जब अगस्त्य जी इस प्रकार उत्तम सन्तान उत्पन्न कर चुके तो उन के पितर भी जो दुःखित अवस्था में थे उत्तम २ स्थानों को चले गये ॥

लोमश ऋषि ने इस प्रकार वातापी वध का वृत्तान्त सुना कर बतलाया कि यह आश्रम उनही अगस्त्य जी का है और यह उत्तम गंगा का तीर है, जहां कि देवता और गंधर्व वास करते हैं, भृगु तीर्थ है जहां पर परशुराम जी ने अपना खोया हुआ तेज फिर पाया था, लोमश के कथनानुसार युधिष्ठर ने ऐसा ही किया और भाईयों सहित गंगा में स्नान कर तेज बल को धारण किया ॥

परशुराम का नाम सुनकर युधिष्ठर के दिल में जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उस ने नम्रता पूर्वक परशुराम के तेज बल धारण करने का कारण पूछा ऋषि ने निम्न लिखित वृत्तान्त सुनाया ॥

परशुराम भार्गव ॥

पूर्वकाल में श्री विष्णु जी ने रावण के मारने के लिये अवतार धारण किया और अयोध्या के राजा दशरथ के घर राम चन्द्र नाम से उत्पन्न हुए, ऋचीक और रेणुका का पुत्र परशुराम भी राम चन्द्र के अक्लिष्ट कर्मों को सुन कर परीक्षा के निमित्त एक दिव्य धनुष लेकर अयोध्या में आया, राजा दशरथ ने आदर सत्कार किया और राम चंद्र जी को उन के पास भेज दिया, परशुराम ने राम चंद्र से कहा कि मैंने इस धनुष से क्षत्रियों को काल की भांति मारा है यदि आप अपने आप को सामर्थ्यवान समझते हैं तो इस को चढ़ाओ, राम चंद्र घमण्डी न थे और दिखलावे के कामों से सदैव दूर भागते थे उन्हों नें नम्रता पूर्वक बहुत कहा कि महाराज जाने दीजिये आप ब्राह्मण हैं, आप की बराबरी करना क्षत्रियों का धर्म नहीं, परंतु वह इसी बात पर जमा रहा, निदान राम चंद्र ने वह धनुष चढ़ाया, और उस के टंकार से बड़ा गर्जन उत्पन्न हुआ, फिर परशुराम ने एक बाण दिया और कहा कि इस को धनुष में लगा कर कान तक खींचो, रामचंद्र जी को परशुराम के घमण्ड पर बहुत क्रोध आया परंतु ब्राह्मण समझ कर क्षमा कर दिया, तब रामचंद्र ने परशुराम को अपना वास्तविक रूप दिखाया और बाण को छोड़ा जिस के कारण पृथ्वी शुष्क होगई, उल्का गिरे धूल और मेंह की वर्षा हुई और दिशाओं में बिना बजाये शब्द होने लगा, जिस से परशुराम का तेज जाता रहा और वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, जब होश आई तो रामचंद्र से आज्ञा पाकर और

उन के तेज को प्रणाम करके महेन्द्र पर्वत पर चले गये, और भयभीत और लज्जित होकर रहने लगे, जब उस के पितरों ने उस को निसतेज देखा तो दुखी होकर परामर्ष दिया कि तुम ने जो मूर्खता के कारण विष्णु भगवान के अवतार श्री रामचंद्र का अपमान किया है तुम को वधूसरा नदी के तीर्थ में स्नान करना चाहिये, ताके तुम को फिर तेज की प्राप्ति हो ॥

पितरों की आज्ञा से परशुराम इस तीर्थ पर पहुंचे और स्नान करके अपने नष्ट हुये २ तेज को फिर प्राप्त किया ॥

नवासीवां अध्याय

—:—०—:—

इन्द्र वज्र निर्माण कथा ॥

अब युधिष्ठर ने अगस्त्य जी के कर्मों को सविस्तार सुनना चाहा और लोमश जी से फिर प्रार्थना की कि वह उस के अद्भुत जीवन चरित्र पर सविसतार आलोचना करें, लोमश जी ने निम्नलिखित वृत्तांत सुनाया ॥

सत युग में काल केयनामी दानवों का जत्था बड़ा घोर और दारुण होगया था और वृत्तासुर उन का मुख्य था, वह देवताओं के कामों का विध्वंस करते और उन के यज्ञों को नष्ट भ्रष्ट करते थे, सब देवता उन से क्लेश पाकर और अत्यन्त दुःखी हो इन्द्र को आगे कर ब्रह्मा जी के पास गए और ब्रह्मा जी ने उन का हाल जान कर, परामर्ष दिया कि तुम दधीच ऋषि के पास

जाओ, और उन को प्रसन्न करके उन से वर मांगो, वह तुम को अपने अंतः करण से वर देंगे जब वह वर दे चुकें तो उन को कहो कि हमें अपने हाड दे दो उन हाडों से आप एक अपूर्व वज्र बनाओ जिस के छे कोणे हों और इन्द्र उस को वृत्तासुर के साथ युद्ध करने में वरते ॥

ब्रह्मा जी से आज्ञा पाकर सारे देवता विष्णु जी को अपना मुख्य बना कर दधीचि जी के आश्रम में पहुंचे यह आश्रम, सरस्वती नदी के तीर पर एक रमणीक और शोभायमान स्थान पर बना हुआ था, और उस में सुंदर वृक्षों पर नाना प्रकार के पक्षी अपनी मधुर वाणी से मन को आकर्षित कर रहे थे, नाना प्रकार के सुगान्धिवाले पुष्प और लतायें बड़ी मनोहर रीती से वृक्षों को अलिङ्गन कर रहे थे, सब से अधिक बात यह थी कि आश्रम भूमि में सिंह और बकरी अपने जातीयविद्रोह को छोड़ कर एक स्रोत से पानी पीते थे ॥

इस प्रकार के स्वर्गीय आश्रम में देवताओं ने दधीचि ऋषि को देखा जो सूर्य के समान प्रकाशमान थे, सब ने प्रणाम किया और अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया, दधीचि जी प्रसन्न होकर कहने लगे कि अच्छा अगर हमारे बलि दान से आपका कल्याण हो सकता है तो हम प्रसन्न हैं, यह कह कर उस ने अकस्मात अपने प्राण छोड़ दिये ॥

देवताओं ने उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया और उसकी हड्डियां इकट्ठी कर के त्वष्टा के पास लेगये । त्वष्टा ने उन

हड्डियों का एक उग्र वज्र बनाया और इन्द्र देवता के हाथ में देकर कहा कि इस अस्त्र से वृत्तासुर को मारकर निष्कण्टक राज्य कीजिये ॥

नब्बेका अध्याय

—:०:—

वृत्तासुर का मरना और दैत्यों का धर्मात्माओं को मारने की सलाह करना ॥

देवता लोग उस वज्र को लेकर स्वर्ग में आये और इन्द्र वृत्तासुर से युद्ध करने लगा, परन्तु दैत्यों के आकार प्रकार इतने भयानक थे कि देवता उन को देख कर भयभीत हो जाते थे, और सन्मुख आना पसंद नहीं करते थे उन के गर्जन तर्जन से पृथ्वी और आकाश कम्पायमान थे, और ज्यूं ही उन का शब्द देवताओं के कान में पड़ता था वह घायल हो २ कर भाग जाते थे ॥

इन्द्र ने कई बार वृत्तासुर का सामना किया, परन्तु घायल होकर भाग गया, निदान विष्णु जी ने उस की यह दशा देख कर अपना तेज प्रदान किया, परन्तु वृत्तासुर का गर्जना था, कि इन्द्र फिर घबरा कर भागा और दैव योग से वज्र उसके हाथ से छूट गया वह वज्र वृत्तासुर की गर्दन पर एसा लगा कि उस का शिर तन से पृथक् होगया और उस की स्त्रियां

की माला और सुनहरी खड्ग भूमि पर जा पड़ी उस के गिरते ही दैत्यों में घबराहट उत्पन्न हुई और सब के सब अपने २ पद को छोड़ कर भागे, कोई तो पर्वत की गुफा में जा छुपा और कोई समुद्र में ॥

परन्तु यह सब हाल इन्द्र को विदित न था, वह वृत्तासुर के भय से इतना चकित था कि उस को अपने बज्र की दिव्य सामर्थ का कुछ भी ज्ञान न था, वह अब तक नहीं समझा कि वृत्तासुर मर गया है. अन्य देवताओं ने जो दूर से संग्राम परिणाम की आकांक्षा कर रहे थे जय कार बुलाये और शीघ्र ही इन्द्र के पास आकर उस को शुभ समाचार सुनाया. देवताओं की इस विजय से सब भूमण्डल पर आनन्द छा गया ॥

दैत्यों ने जो इस संग्राम में उल्टा देखा, उन के मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ, अब वह विचार करने लगे कि किस प्रकार इस पराजय का बदला लें, वह सब के सब समुद्र में इकट्ठे हुये और विचार करने लगे, अन्त में यह निश्चय ठहरा कि जब तक पृथ्वी पर विद्वान ब्राह्मण ज्ञानी बुद्धिमान तपस्वी और सत्यवादी पुरुष हैं, तब तक दैत्यों का राज्य होना असंभव है, अतःएव पहिले विद्वानो को नष्ट करना चाहिये और तपस्वियों को मारना चाहिये. उन के मारे जाने पर और तपोहानि होने पर जगत को हम शीघ्र नष्ट भ्रष्ट कर लेंगे ॥

इक्यानवेका अध्याय

—:०:—

कालकेय दैत्यों का तपस्वियों को भक्षण करना और देवताओं का नारायण से प्रार्थना करना ॥

ऐसा विचार कर उन कालकेय दैत्यों ने सचमुच ऐसा करना आरम्भ किया, रात को अपने रक्षास्थान समुद्र से निकल आते और तपस्वी और ब्राह्मणों को मार कर प्रातः काल होने से पूर्व ही अपने गुप्तस्थान में चले जाते किसी को पता भी न होता कि वह कहां से आये और कहां गये, प्रातः काल जो लोग तपोवन में जाते तपस्वियों की हड्डियां इधर उधर बिखरी पाते, थोड़े ही काल में उन दुष्ट दैत्यों ने विशिष्ठ जी के आश्रम से एक सो मुनि और भरद्वाज के आश्रम से बीस मुनि भक्षण कर लिये, इन तपस्वियों के मार जाने पर जगत में बड़ा हाहाकार हुआ, यज्ञ हवन में बड़ी हानि हुई, आश्रमों से वेदपाठ की ध्वनि बेद होगई। जो लोग जाते आश्रमों को शमशाम भूमि बना हुआ पाते, कहीं तपस्वियों की हड्डियां पड़ी है कहीं श्रुवे और यज्ञ पात्र टूटे पड़े हैं, कहीं यज्ञ कुण्डों की अग्नि बिखरी पड़ी है स बात को देख कर लोग बड़े दुःखित हुए और रक्षा के उपाय सोचने लगे ॥

परन्तु मारने वाले का कुछ पता नहीं लगता था, बहुत से लोग लड़ने मरने पर तैयार हुए, परन्तु हार कर सब रह गये, जगत में ऐसा घोर उपद्रव छा गया कि प्रत्येक को अपनी जान बचाना भी कठिन प्रतीत होने लगा॥

मनुष्यों की यह गति देख कर इन्द्रादि समस्त देवता श्री नारायण जी के पास गए और सब वृत्तान्त उन को सुना कर बोले कि हे भगवान् आप संसार का दुःख हरण के लिये सर्वत्र सचेष्ट रहे हैं, पहिले समय में आपने वाराह रूप धारण कर के समुद्र में नष्ट होती हुई पृथ्वी को बचाया। तत्पश्चात् नृसिंहावतार लेकर हिरण्यकशिपु दैत्य को मार कर जगत का उद्धार किया। इस के पश्चात बलि और कुजंभ आदि को मारा। इसके अतिरिक्त आपने अनेक उपकार मनुष्य जाति पर किये हैं। हे महाराज, अब भी ऐसी कृपा करें कि जिससे मनुष्य जाति का दुःख दूर हो और देवता लोग स्वर्ग का निष्कंटक राज भोगें। इस भय से लोकों समेत देवताओं की और इन्द्र की रक्षा करो॥

बानवेका अध्याय

—:०:—

नारायण का प्रजा के क्षय होने का कारण बताना और देवताओं का अगस्त्य जी के

पास जाना ॥

हे महाराज आप से रक्षा की हुई सब प्रजा यज्ञ रही है और हव्य कव्य से देवताओं और पितृ लोगों को तृप्त करती है, अब यह प्रतीत नहीं होता कि रात्रि में कौन आकर ब्राह्मणों को मार जाता है, यदि इस प्रकार ब्राह्मण मारे गये, तो यज्ञ कर्म का विध्वंस हो कर पृथ्वी नष्ट भ्रष्ट हो जायगी और पृथ्वी के नष्ट होने पर स्वर्ग का रहना भी असंभव है, हे महाराज अपनी कृपा से हमारी रक्षा करो ॥

नारायण भगवान ने उत्तर दिया कि वृत्तासुर के मारे जाने पर काल केय दैत्यों ने समुद्र की शरण ली है और वह रात को आकर ऋषियों का भक्षण कर जाते हैं, यदि तुम उन से मुक्ति चाहते हो तो ऐसा यत्न करो कि जिस से समुद्र न रहे, फिर तुम उन दैत्यों को सहज से मार सकते हो, परन्तु जब तक समुद्र रहेगा वह दैत्य तुम से मर नहीं सकते और समुद्र को सुखाने वाला अगस्त्य जी के बिना और कोई दूसरा नहीं, इस लिये तुम उन के पास जाओ और उन से समुद्र के सुखाने के निमित्त प्रार्थना करो ॥

यह सुन कर देवता मैत्रावरुण के पुत्र अगस्त्य जी के आश्रम को आये और वहां उन को ऋषियों के मध्य में बैठा हुआ देखा मानों चन्द्रमा तारागण के मध्य में विराजमान है। उस महात्मा, तपोराशि अच्युत को देख कर देवता स्तुति करने लगे कि हे भगवान्, आप ने इस संसार में महानकार्य किये हैं। जब नहुष ने जगत को दुःख दिया था तो आपने उस को मार

कर सब की रक्षा की थी, जब विंध्याचल पर्वत ने गर्भित हो कर सूर्य्य को रोकना चाहा तो भी खंडण रथको यथा पूर्वक चलने दिया था, इसी प्रकार हे महाराज हम भी डरे हुये आप की शरण आय हुय हैं, कृपा करो और हमारा कल्याण हो और जगत का दुख दूर हो ॥

तिरानवे का अध्याय

—:०:—

विंध्याचल का ऊंचा उठना और अगस्त्य जी का समुद्र पान के लिए उद्यत होना ॥

युधिष्ठर ने पूछा विंध्याचल क्यों क्रोधी हुआ और किस कारण ऊंचा चला गया था लोमश ने उत्तर दिया कि सूर्य सुमेरू की प्रदक्षिणा करता था विंध्याचल ने कहा कि तू मेरी प्रदक्षिणा क्यों नहीं करता, सूर्य ने उत्तर दिया कि मैं अपनी इच्छा से सुमेरू की प्रदक्षिणा नहीं करता वरंच मेरे उत्पन्न करने वाले ने ही मेरी गति का यह नियम रखा है इस पर विन्ध्याचल को क्रोध आया और उस ने इतना ऊंचा बढ़ना आरम्भ किया कि जिस से सूर्य्य और चंद्रमा की गति रूक जावे, उस की इस मूर्खता को देख कर ऋषियों और देवताओं ने बहुतेरा समझाया पर उस ने किसी की बात न मानी, जब देवता लोग अगस्त्य जी के पास पहुंचे और विंध्याचल को बढ़ने से रोकने के लिये प्रार्थना की

अगस्त्य जी अपनी स्त्री सहित विंध्याचल के पास पहुंचे और कहने लगे कि हे पर्वतों में श्रेष्ठ, मैं किसी अभिप्राय से दक्षिण दिशा को जाना चाहता हूं, तू मुझ को राह दे और जब तक मैं लौट कर न आऊं तब तक मेरी बाट देखो, मेरे आने पर इच्छानुसार बढ़ो, इस प्रकार नियम कर के अगस्त्य जी दक्षिण दिशा को चले गये और अभी तक नहीं लौटे, सो इस तरह अगस्त्य जी ने यह पर्वतीय क्रोध निवारण किया, अब अगस्त्य जी का दूसरा वृत्तान्त सुनिये ॥

अगस्त्य जी ने देवताओं से पूछा कि मैं तुम्हारी मनोकामना कैसे पूरी कर सक्ता हूं। देवताओं ने उत्तर दिया कि आप समुद्र को पीकर कालकेय दैत्यों के निवासस्थान को प्रगट करें और हम उनको मार कर संसार के दुःख की निवृत्ति करेंगे अगस्त्य जी ने यह काम करना स्वीकार किया और समुद्र की ओर चल पड़े, अनेक देवता, गन्धर्व, किंपुरुष, ऋषि और मनुष्य उनके सहज कर्तव्य को देखने के निमित्त उनके पीछे हो लिये ॥

अगस्त्य जी उन सब को साथ ले समुद्र के तट पर पहुंचे समुद्र की लहरों और उन के भयानक शब्द को सुन कर सब लोग बड़े चकित हुये ॥
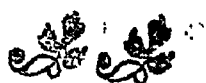
चौरानवे का अध्याय

—:०:—

समुद्र का सूख जाना, दैत्यों का मारा जाना और समुद्र की पुनः पूर्ति का विचार ॥

अगस्त्य जी ने सब के देखते २ समुद्र को पी लिया, जिस को देख कर इन्द्र आदि देवता बड़े चकित हुये और अगस्त्य जी की स्तुति करने लगे ॥

अब कालकेय दैत्यों का रक्षा स्थान भी नग्न होगया और वह घबराकर भागने लगे, परन्तु अब कहां जा सकते थे, देवताओं ने उन पर दिव्य अस्त्र फेंके जिससे वह घायल हो कर मृत्यु के वश हुए, कईयों ने सामना किया और बड़ा भारी संग्राम होना आरम्भ हुआ, दो घड़ी तक बड़ा भयानक युद्ध हुआ अन्त को दैत्य हारे और देवताओं की विजय हुई ॥

जो २ दैत्य जीते बचे वह पाताल में जा छुपे देवता लोग बड़े प्रसन्न हुये और अगस्त्य जी का धन्यवाद करने लगे ॥

देवताओं ने कहा कि हे महाराज, आपकी कृपा से जगत को महा सुख की प्राप्ति हुई है, और दुष्ट दैत्य मारे गये हैं, अब ऋषियों के यज्ञ हवन बिना रोक टोक होंगे, और संसार में सुख फैलेगा, परन्तु हे महाराज समुद्र के बिना पृथ्वी शून्य है, आप ऐसी कृपा करें कि समुद्र फिर भर जाए ॥

यह बात सुन कर अगस्त्य जी बोले कि मैं समुद्र के जल

को पीकर पचा गिया हूं अब उसको उल्टी कर सक्ता हुं इस के लिए आप कोई अन्य उपाय सोचें। देवता लोग इस उत्तर को पाकर अपने स्थानों को लौट आए और समुद्र पूर्ति का उपाय सोचने लगे, अब विष्णु जी को आगे करके ब्रह्मा जी के पास पहुंचे और सब वृत्तान्त उस के सन्मुख निवेदिन कर दिया और समुद्र की पुनः पुर्ति के लिये प्रार्थना की ॥

पचानवें का अध्याय

—:०:—

समुद्र पूर्ति संबंध में राजा सगर का वृत्तान्त ॥

देवताओं की प्रार्थना सुन कर ब्रह्मा जी बोले, कि हे देवताओ आप कोई चिन्ता न करो, अब तो अपने २ स्थानों को जाओ थोड़े काल में भागीरथ नामी राजा होगा, वह अपनी जाति के मनुष्यों के लिये समुद्र को ज्यों का त्यों भर देगा, यह सुन कर देवताओं को शांति हुई, वह अपने २ स्थानों को आये ॥

अब युधिष्ठर ने लोमश जी से पूछा कि महाराज यह भागीरथ कौन थे, उन का वृत्तान्त भी कृपा करके सुनाईये। लोमश जी बोले ॥

सगर वृत्तान्त

इक्ष्वाकु वंश में एक राजा सगर नामी बड़ा प्रतापी और शूर वीर हुआ है उस ने अपने बल से हैय और पाताल जंघ

देशों को जीत कर, उन के राजाओं को अपने आधीन कर लिया, उस राजा की दो बड़ी सुंदर और रूपवति रानियां थीं, जिन का नाम वैदर्भी और शैव्या थीं परन्तु पूर्व कर्म के वश से उस के हां कोई सन्तान न थी, जिस से राजा को बड़ा क्लेश रहता था ॥

राजा सगर जो बड़ा प्रतापवान और धर्मात्मा था, संतान हीन होने से बड़ी सोच में रहता था और पुत्र की कामना से कैलाश पर्वत पर जाकर तप करने लगा, कुच्छ अवसर के उपरान्त शिवजी महाराज जो महात्मा, त्रिलोक दर्शी त्रिपुरारी और सर्व नन्द हैं प्रकट हुये और सगर से इस कठोर तपस्वी जीवन का कारण पूछा सगर ने अपने दुःख का कारण निवेदन किया और सन्तानोत्पत्ति के लिये प्रार्थना की ॥

शिवजी बोले कि हे राजन, जिस महूर्त में तुम ने वर मांगा है, उसके अनुकूल तुम्हारी एक स्त्री से साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न होंगे, परन्तु वह इतने शूरवीर घमण्डी और मूर्ख होंगे कि अपने अवगुणों के कारण एक साथ ही नाश हो जायेंगे, हां तुम्हारी दूसरी स्त्री से एक महा प्रतापी और शूरवीर पुत्र उत्पन्न होगा जो कुल को चलाने वाला होगा शिवजी महाराज ऐसा कह कर अन्तर्द्धान हो गये और महाराज सगर अपनी राजधानी को लौट आये ॥

कुछ काल के पश्चात दोनों रानियां गर्भवति हुईं, जब गर्भ काल व्यतीत हुआ, तो वैदर्भी के हां एक तोंबा सा उत्पन्न हुआ, और शैव्या के एक देवरूपी, परम सुंदर बालक। राजा ने चाहा कि तोंबे को फैंक दे, परन्तु उसी समय

आकाश वानी हुई, कि हे राजन्, ऐसा मत करो, पुत्रों को मत त्यागो, इस तोंबे के भीतर के बीजों को निकाल लो और उन को पृथक २ घृत के वर्तन में रखो, यदि काल के उपरान्त तेरे हां साठ सहस्र पुत्र होंग, इसी प्रकार शिवजी ने तेरे हां सन्तानोत्पत्ति का निश्चय किया है ॥

छानवे का अध्याय

—:-०-:—

सगर के साठ हज़ार पुत्रों का उत्पन्न होना अश्वमेध यज्ञ करना, घोड़े का अदृश्य हो जाना, समुद्र का खोदना, कपिल का शाप अंशुमान का राज्य करना, दिलीप का राज्य और अन्त में भागीर्थ का राज्य करना ॥

देववानी के अनुसार सगर ने तोंबे के बीज निकाले और ए २ को एक २ घृत कुंभ में डाल कर उन पर एक २ धात्री बठाई, कुछ काल के पश्चात उन कुंभों में से साठ सहस्र पुत्र उत्पन हुए, यह पुत्र बड़े शूरवीर, पराक्रमी और क्रूर थे, आकाश में उड़ते थे और देवताओं का वल रखते थे थोड़े ही समय में उन्हों ने सब लोगों को बहुत दुःख देना आरम्भ किया, ऋषि मुनि और महात्मा बड़े क्लेश को प्राप्त हुए ॥

ऐसा हाल देख कर सब देवता ब्रह्मा जी के पास आये

और अपना दुख समाचार उन के सामने निवेदन किया, ब्रह्मा जी ने उन को शांति दी और कहा कि आप सब लोग निश्चिन्त हो कर अपने २ स्थान को जाओ, सगर के पुत्र अपने पाप कर्मों के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे, यह सुनकर देवता लोग अपने २ स्थानों को लौट आये ॥

बहुत दिनों के बीतने पर राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षा ली और उस के पुत्रों से रक्षित यज्ञ का घोड़ा पृथ्वी पर घुमाया गया जब घूमते २ वह घोड़ा जल रहित समुद्र में पहुंचा तो अकस्मात ऐसा अन्तरधान होगया कि उस का कहीं पता न लगा। सगर के पुत्रों ने यह हाल अपने पिता से कहा जिसको सुन कर वह बहुत घबराया और पुत्रों को उस के ढूंढने की आज्ञा दी ॥

साठ हज़ार पुत्र अपने पिता की आज्ञा पाकर चारों दिशाओं को भागे। पृथ्वी, पहाड़, जंगल बियाबान सब खोज डाले परन्तु घोड़े का कहीं खोज न पाया। जब वह पिता के पास यह संदेशा लाये तो पिता को अपनी मान हानि का बड़ा शोक हुआ। इस लिये उस ने अपने पुत्रों को फिर आज्ञा दी कि घोड़े का खोज निकालो और जब तक घोड़ा न मिले तब तक लौट कर मत आओ ॥

यह बात सुन कर सगर के पुत्र फिर पृथ्वी का अंदोलन करने लगे, निदान वह शुष्क समुद्र में पहुंचे। उन्हों ने देखा

कि एक स्थान पर भूमि फटी हुई है। उन्हों ने फावड़े और कुदाल लेकर उस जगह को खोदना आरम्भ किया। समुद्री जीवों को बड़ा कष्ट होने लगा। कईयों के शिर कट गए, कईयों को चोटें लगीं। कईयों के खान पान में विघ्न हुआ, कईयों के हाड मांस त्वचा से भिन्न हो गए, इस प्रकार बहुत दिन तक समुद्र को खोदा गया परन्तु घोड़े का कहीं पता न मिला, अन्त को दुःखी हो कर उन्हों ने समुद्र की पूर्वी और उत्तरी सीमा को इतना खोदा कि पाताल तक पहुंच गए। तब उन्हों ने उस घोड़े को वहां फिरते हुए देखा उस को देख कर उन का रोम रोम प्रसन्न हो गया और वह उस को पकड़ने को दौड़े परन्तु ऐसा करने में उन्हों ने कपिल ऋषि का जो प्रकाश मान मूर्ति वहां बैठे थे अनादर किया, कपिल जी बड़े अप्रसन्न हुए, उन्हों ने आंख जो खोली तो उस का तेज उन साठ हज़ार सागरों पर ऐसा पड़ा कि वह जल कर भस्म हो गए॥

नारद जी ऐसा देख कर सगर के पास आये और उस को उस के पुत्रों के भस्म हो जाने का हाल कह सुनाया॥

नारद के जी बचन सुन कर और पर बलवान पुत्रों के भस्म होजाने का हाल सुन कर सगर बड़े दुःख को प्राप्त हुआ। परन्तु तत्क्षण उस को शिवजी का वरदान याद आया उस समय उस का चित स्वस्थ हुआ॥

राजा सगर का एक पुत्र असमंजस था, जो रानी शैव्या के गर्भ से था। परन्तु वह बड़ा निर्दय और क्रूर हृदय था, एक

समय उस ने नगर में छोटे २ बच्चों को रोते देखा और झट उन को गर्दन से पकड़ कर नदी में फैंक दिया, उन के माता पिताओं को बहुत दुःख हुआ और यह विचारे रोते पीटते राजा सगर के पास आये, राजा सगर पहिले तो चुप रहा और दिल में विचारता रहा तत्पश्चात मन्त्रियों को आज्ञा दी कि असमंजस को मेरे राज्य से बाहर निकाल दो मन्त्रियों ने ऐसा ही किया और असमंजस को नगर से बाहिर निकाल आये ॥

असमंजस का एक लड़का अंशुमान था, वह बड़ा धर्मात्मा और शूरवीर था सगर ने उस को बुला कर अपने हृदय का क्लेश प्रकट किया और कहा कि तुम जाओ और यज्ञ के घोड़े को ढूंड कर लाओ, घोड़े के आने से मेरे मन का खेद दूर होगा और मेरे यज्ञ की समाप्ति होगी ॥

अंशुमान अपने पितामह से आज्ञा पाकर घोड़े की खोज में निकला और समुद्र में उस स्थान में पहुंचा जहां से भूमि फटी हुई थी, उसी मार्ग से प्रवेश कर के वह पाताल पहुंचा और कपिल जी के दर्शन किये, उस के अभीवादने शील और नम्रभाव को देख कर कपिल जी बड़े प्रसन्न हुए और पूछा कि किसी पदार्थ की इच्छा हो तो कहो, अंशुमान ने यज्ञ का घोड़ा मांगा, और प्रार्थना की कि मेरे पितरों को मुक्ति होनी चाहिये, कपिल जी ने घोड़ा तो दे दिया, और कहा कि सगर के पुत्रों की इस समय मुक्ति होनी असंभव, है परन्तु तुम्हारा एक पौत्र होगा, वह स्वर्ग से गंगा जी को लावेगा, और तब तुम्हारे पितरों की मुक्ति होगी इस लिये

अब तुम जाओ ॥

अंशुमान यज्ञ का घोड़ा लेकर राजा सगर के पास आये, राजा का चित बहुत प्रसन्न हुआ उस के यज्ञ की समाप्ति हुई, और वह अंशुमान को राज देकर स्वर्ग धाम होगया ॥

अंशुमान ने बहुत काल पृथ्वी पर बड़ी अच्छी प्रकार राज्य किया, और अन्त को अपने पुत्र दिलीप (यह दिलीप वह है जिन्हों ने पहिले पहिले दिल्ली शहर बसाया, और उस को अपने नाम पर दिल्ली पुकारा) को राज्य देकर स्वर्गवास हुआ, दिलीप ने अपने पितरों के नाश होने पर बड़ा खेद किया, और उन की मुक्ति के लिये नाना प्रकार के यत्न किये, परन्तु कुछ बन न सका, उस ने गंगा को लाने के अनेक यत्न किये परन्तु गंगा आकाश से न उतरी, निदान बहुत काल सुख से राज्य भोग कर और अपने पुत्र भागीरथ को राज्य दे स्वयं देव लोक में प्रविष्ट हुआ ॥

सतानवेंका अध्याय

—:०:—

भागीरथ का गंगा जी की आराधना करना, उसका प्रसन्न होकर शिवजी के पास भेजना, और पुनः शिवजी से वर मांगना ॥

भागीरथ बड़ा धर्मात्मा और गुणवान राजा हुआ है, उस

के राज्य में सब प्रजा सुखी थी, परन्तु उसके पितरों का दुःख प्रतिक्षण उसको दुसह्य दाह की भांति केश देता था। निदान अपना राज पाट छोड़ और मंत्रियों को राज दे कर वह हिमालय पर्वत पर चलागया और वहां गंगा जी के लाने का उपाय करने लगा। बहुत काल उसने तपस्या की जिस से गंगा जी प्रसन्न हो उसके सन्मुख आई, और कहने लगी कि हे राजन्! तुमने मुझे किस कारण याद किया है। राजा ने विनति की कि हे देवी, मेरे पितरों को कपिलमुनि का निरादर करने से नाश हुआ और उन को स्वर्ग में वास नहीं हुआ है उन की दुर्गति से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है यदि आप कृपा पूर्वक मेरे पितरों को अपने शुद्ध और पवित्र जल से सींचें तो उन का उद्धार हो, इसी लिये मैंने आप की उपासना की और मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरी इस दीन प्रार्थना को स्वीकार करेंगे॥

गंगा जी ने उत्तर दिया कि हे राजा भागीरथ मैं तेरी शोकातुर दशा देख कर बहुत दुःखी हूं और चाहती हूं कि तेरे साथ चलकर तेरे पितरों का उद्धार करूं। परन्तु पृथ्वी पर मेरे बोझ को सहारने वाला कोई नहीं, इस लिये यदि तुम शिवजी के पास जाओ और उन से प्रार्थना करो कि वह मुझ को अपने शिर पर सहारा दें तो मेरा मर्त्य लोक में आना हो सकता है शिव जी दयालु हृदय हैं और आशा है कि तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार करेंगे॥

भागीर्थ जी प्रणाम कर के कैलाश पर्वत पर पहुंचे और महादेव की आराधना आरम्भ की बहुत काल तपस्या करने पर शिवजी प्रसन्न हुये और वर मांगने के लिये कहा भागीर्थ ने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह शुनाया और प्रार्थना की महाराज आप गंगा जी को अपने शीष पर सहारा दो ॥

अठानवे का अध्याय

—:०:—

गंगा का आकाश से गिरना, शिवजी का सहारा देना, गंगा का समुद्र में जाना और उस को भर देना ॥

प्रसन्न वदन शिवजी बोले हे राजा भगीरथ ऐसा ही होगा मैं तेरे निमित्त गंगा को अपने मस्तक पर धारण करूंगा, यह कह कर शिवजी अपने गणों के साथ जो महा घोर शस्त्र उठाये हुये थे हिमालय के समीप चले गये, और राजा भागीर्थ को कहा कि तुम गंगा का आवाहण करो हम उसको अपने मस्तक पर सहारा देने के लिये ठहरे हैं राजा ने गंगा जी का ध्यान किया और थोड़े ही काल में वह पवित्र देवी आकाश से उतरी और महादेव के मस्तक पर गिरी, उस का निर्मल और स्वच्छ जल मन को लुभाने वाला था, उस की वक्रगति उस की स्पद २ फेन बहुत शोभायमान थी, पृथ्वी पर आकर गंगा ने भागीरथ से कहा,

कि हे राजन् मुझे चलने का राह बताओ कि जिस रास्ते चल कर मैं आप के पितरों का उपकार कर सकूं, इस को सुन कर भागीरथ आगे २ हो लिया और गंगा उस के पीछे २ बहने लगी महा देव जी गंगा को सहारा देकर गणों सहित कैलाश पर्वत को चले गये ॥

भागीरथ गंगा के आगे चलता २ उस स्थान पर पहुंचा जहां उस के पितर मरे पड़े थे गंगा जी का पवित्र जल लगने से वह शीघ्र ही स्वर्ग को चले गये तब भागीरथ ने उन का पर्ण किया और अपने पितृ ऋण को बड़े अच्छे प्रकार से उतारा गंगा जी ने शनैः २ अपने पवित्र पानियों से समुद्र को भर दिया और वह भागीरथ की पुत्री कहलाने लगी ॥

निनान्वेका अध्याय

—:०:—

नन्दा तीर्थ और हेमकूट पर्वत की यात्रा, कौशकी नदी पर जाना, विभाण्डिक की उत्पत्ति का हाल, लोमपाद के देश में वर्षा का न होना और शृंग मुनि को बुलाना ॥

इस के उपरान्त युधिष्टर नन्दा और अपर नन्दा नदियों की यात्रा को गये जो पाप और भय को दूर करने वाली है वहां उन्हों ने हेमकूट नामी एक पर्वत पर बहुत सी अद्भुत

बातें देखीं जैसे कि बिना वायु के चादरियर आना, और सहस्रों पत्थर आकाश से गिरने जिस से चढ़ने वालों को अत्यंत भय होना और उन्हों ने व्याकुल हो जाना, इस के अतिरिक्त वर्षा का निरंतर होना और वायु का सर्वत्र चलना, और वेदध्वनि का सुनाई देना परंतु किसी वेद पाठी का दृष्टि गोचर न होना, संध्या और प्रातः काल को अग्नि का प्रज्वलित दिखाई देना और मक्खियोंका मनुष्यों को काटना जिस से उन के तप में विघ्न होना, जाने वालों के हृदयों में वैराग्य उत्पन्न होना, और घर का याद आना. इस प्रकार अनेक अद्भुत बातें युधिष्ठर ने देखीं और लोमश जी को सुनाईं ॥

लोमश ने उत्तर दिया कि यहां ऋषभकूट में ऋषभ नामी एक तपस्वी रहता था जो बड़ा क्रोधी था उस ने एक समय दूसरे मनुष्यों की बात चीत सुन कर क्रोधित हो, इस पर्वत को आज्ञा दी कि जो कोई तुझ पर चढ़े तू उस पर पत्थर बरसायो और शब्द न कीजियो इस लिये यहां बोलने वाले का शब्द मेघ अपने शब्द से रोक लेते हैं इसी प्रकार और भी बहुत से निषेध और प्रतिषेध किये, यह भी कहते हैं कि किसी समय यहां पर इन्द्रादिक बहुत से देवता आये और उन के देखने के निमित्त बहुत से मनुष्य भी आये इस लिये उन्हो ने मनुष्यों का आना इस पर्वत पर कठिन कर दिया यहां तक कि कोई विरला अत्यन्त प्रभाव शाली तपस्वी ही इस पर आ सकता है। देवताओं ने यहां पर उत्तम यज्ञ किये थे और उन के चिन्ह अब तक दिखाई देते हैं, यहां किटु (?) कुशाके समान

है। पृथ्वी ऊंच नीच नहीं, वृक्ष थम्भस्तम्भ होरहे हैं, अब तक यहां देवता और ऋषि रहते हैं, उनके यज्ञ की अग्नि प्रातः और सायंकाल दिखाई देती है। यहां पर स्नान करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥

यह सुन कर युधिष्ठर ने साथियों सहित स्नान किया और फिर कौशिकी नदी को देखने की इच्छा से चल दिये॥

कौशिक नदी पर पहुच कर विश्वामित्र के पास रमणीक आश्रम के दर्शन किये वहां पर विभांडका ऋषि का पुण्याश्रम भी था उसका पुत्र ऋष्यशृंग बड़ा प्रतापी और तेजस्वी हुआ है यह पुत्र मृगी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि एक समय विभांडक जी महांहृद में खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। और खड़े थक गए। उर्वशी नामी अप्सरा उधर से आई और उसको देख कर विभांडक का वीर्यपात हो गया और उसी हृदय में गिरा। उस वीर्य को एक मृगी जो उस समय जल पी रही थी पी गई उस से मृगी का गर्भ होगया। वास्तव में वह मृगी देवकन्या थी जो ब्रह्मा जी के शाप से मृगी बनी हुई थी और ब्रह्मा जीने उस को कहा था कि जब तक तुझसे एक ऋषि उत्पन्न न होगा, तब तक तू शाप से मुक्त न होगी, सो ब्रह्मा जी के इस वाक्य की सफलता के लिये मृगी रूपी देव कन्या से ऋष्यशृंग उत्पन्न हुये और सदा तप में मन रखने के कारण सदा वन में ही रहे विभांडक के बिना किसी मनुष्य को न जानते थे इस लिये सदा ब्रह्मचर्य में तत्पर रहो उनके मस्तक पर एक सींग था जिस से उनका मृगी के गर्भ से उत्पन्न होना विदित था

और इसी कारण उसका नाम ऋष्यशृंग था और वह ऐसा उग्र तपस्वी था कि उस का वचन वृथा नहीं जाता था ॥

कहते हैं कि जिस समय राजा दशरथ के मित्र राजा लोम पाद को अंगदेश का राज्य मिला तो उस ने किसी कारण से ब्राह्मणों से झूठ बोला, जिस से ब्राह्मणों ने उस को त्याग दिया, दैवयोग से उस के पुरोहित के दोष के कारण इन्द्र देवता भी उस पर प्रसन्न न हुए और उस के देश में वर्षा न की, तब तो उस की प्रजा को बड़ा कष्ट हुआ, राजा ने कई उपाय किये परन्तु वर्षा नहीं हुई, राजा तब बुद्धिमान सामर्थ्य युक्त तपस्वी ब्राह्मणों के पास गया और ऐसा कोई उपाय पूछा जिस से इन्द्र वर्षा करे, ब्राह्मणों ने अपने मत के अनुसार अनेक उपाय बताये, परन्तु एक श्रेष्ठ मुनि ने कहा कि हे राजा तेरे ऊपर ब्राह्मणों का कोप है तू प्रायश्चित कर और ऋष्य शृंग को जो जंगल में उत्पन्न हुये हैं और जिन्हों ने आज तक स्त्री का रूप नहीं देखा है बुलवा, उस के आने पर इन्द्र निस्संदेह तेरे देश में वारिष करेंगे ॥

पहिले तो राजा ने ब्राह्म कोप के निमित्त प्रायश्चित् किया, तत्पश्चात अपने धर्मात्मा और शास्त्रज्ञ मन्त्रियों को बुलाया और ऋष्य शृंग के मंगवाने का परामर्ष किया मंत्र ठहरा कि चतुर वैश्याओं को बुलाया जाय और वह जंगल में जाकर ऋष्यशृंग को लुभा लायें राजा की आज्ञानुसार वैश्या आईं, परन्तु ऋष्य शृंग के पास जाने का किसी का साहस न होता था, अन्त में एक वृद्ध वैश्या ने कहा कि यदि मुझ को वह वह

सामग्री जो मैं मागूं मिल जाय तो मैं ऋष्य शृंग को बुला लाती हुं, राजा ने आज्ञा दी कि जो कुच्छ वह मागे उस को दिया जाय, वह वैश्या वहुत सा धन, रत्न आभूषण और वहुत सी युवा और रूप वति स्त्रियें साथ ले कर वन को चली ॥

एकसौ का अध्याय

—:०:—

वृद्ध वैश्या का नाव वनवाना और अनेक भाव दिखला कर ऋष्य शृंग को अपने वश में करना ॥

उस वृद्ध वैश्या ने एक सुन्दर नाव वनवाई और उस पर एक आश्रम खड़ा किया और उस पर नाना प्रकार के बेल बूटे लगाए और मनो वाञ्छित स्वादिष्ट फल देने वाले वृक्षों से शोभित किया, उस नाव को लेकर वह वैश्या वन को चली गई और वहुत सी सुन्दर युवा स्त्रियों को साथ ले गई ॥

वैश्या ने उस नाव को विभाण्डक ऋषि के आश्रम के निकट लगा दिया और जब देखा कि ऋषि अपने पुत्र को अकेला छोड़ कर वन को चला गया है तो अपनी रूप वती पुत्री को आश्रम में भेज दिया ॥

उस वैश्या पुत्री ने जो वड़ी चतुर थी आते ही ऋष्य शृंग से कहा कि कहिये, यहा सब तपस्वी कुशल पूर्वक हैं ॥ खाने

को फल फूल अच्छे मिलते हैं? यहां तप की कैसी वृद्धि होती है? आप के पिता तेजस्वी हैं या नहीं? आप से प्रेम करते हैं या नहीं? यहा वेद का पाठ भी होता है कि नहीं॥

ऋष्य शृंग जिस ने कभी स्त्री का रूप न देखा था घवरा गिया और वैश्या को वृह्म लक्ष्मी समझ कर बोला कि मेरे विचार में आप दंडवत के योग्य हैं, आप इस कृष्ण मृग युक्त कुशासन पर वैठिये मैं आप को पाद्य और अर्घ देकर धर्मानुसार फल फूल दूंगा। आप का आश्रम कहां है? धन्य हैं आप कि देवताओं की भांति आप ने इस वृह्मव्रत को धारण किया हुआ है॥

वैश्या बोली कि हमारा आश्रम यहां से ३ योजन दूर है अपने धर्मानुसार हम किसी का किया हुआ दंडवत नहीं लेते न पाद्य और अर्घ लेते हैं, [illegible]। हमारा परम धर्म यह है कि हम आपस में प्रेम से मिलें। ऋष्य शृंग ने उस को भ्रल्लातक, आमलक, करूपक, इंगुद और पिप्पल आदिक पके हुये फल दिये और कहा कि इन में से जितने चाहो खाओ। परन्तु वैश्या ने सब के सब चाख चाख कर फैंक दिये। फिर ऋष्य शृंग को मोदक दिये और कहा कि यह हमारे वन के फल हैं। मोदक बड़े स्वादिष्ट थे और ऋष्य शृंग ने बड़ी रूचि से खाये तत्पश्चात वैश्या ने उन को सुगंधित माला उजले उजले वस्त्र और पीने को बहुत सी वस्तुयें दीं और आनन्द सहित हंस हंस कर उस से क्रीड़ा करने लगी। कभी गेंद से खेलती, कभी अपने अंगों को ऋषि पुत्र के अंगों से स्पर्श करती, कभी

कभी आलिंगन करती, कभी सर्ज अशोक और तिलक आदि फूलों की डालियां तोड़ कर काम से भरी हुई अनेक प्रकार की क्रीड़ा करती, इस प्रकार उस वैश्या ने ऋष्यशृंग को अपने वश में कर लिया, जब उस ने देखा कि उस का स्वरूप काम देव से विकृत हो गया है, तो उस से वार वार चिपट कर अग्नि होत्र करने का वहाना कर के धीरे २ चली गई ॥

अब काम देव से पीड़त ऋष्य शृंग अकेला आश्रम में रह गिया और श्वास ले ले कर अचेत सा हो गिया दो घड़ी पश्चात विभाडक जी आये, उन के नेत्र लाल और शरीर पर रोम थे और वेद पाठी वृति और समाधि लगाने वाले थे ॥

विभाडक अपने पुत्र को ध्यानरूप श्वास लेते हुए और उदासीनों की भान्ति ध्यान लगाते हुए देख कर कहने लगे कि हे पुत्र, क्या कारण है कि तुम बार बार ऊपर को दृष्टि करके देखते हो क्यों समिधा नहीं लाया क्या अग्नि होत्र कर चुके हो, श्रुवा और स्रुवक क्यों नही धोये हैं गौ का दूध क्यों नहीं दुहा है, तू पहिले जैसा देख नहीं पड़ता क्यों चिन्ता सी कर रहा है! क्या मेरे पीछे यहां कोई आया था ॥

एकसौएक का अध्याय

—:—०—:—

ऋष्य शृंग का अपने पिता से वैश्या के आने

का वृत्तान्त कहना और उस को ब्रह्मचारी कह कर पुकारना ॥

विभाण्डक के पूछने पर ऋष्य शृंग ने कहा कि हे पिता यहां पर एक देवता रूप ब्रह्मचारी आया था उस का रूप परम सुंदर था उस का मुख सूर्य की भांति प्रकाशमान था उस का वर्ण स्वर्ण जैसा था, सुंदर वस्त्र उस के अंगों पर थे मेरे कपड़े तो उस के सन्मुख कुछ भी नहीं उस का ललाट दीप्तिमान था, उस की ग्रीवा परम सुंदर थी और उस पर बिजली की भांति चमकते हुए नाना प्रकार के भूषण वस्त्र पड़े हुए थे उस की ग्रीवा के नीचे दो मांसपिंड थे जिन पर रोम नहीं थे उस ने मुझे बार २ आलिंगन किया जिस से मुझे बड़ा आनन्द आया उस की वाणी बड़ी मधुर थी और उस की बात बात पर मुझे हर्ष उत्पन्न होता था उस की आंखें बड़ी विशाल और प्रकाशमान थीं, उस की जटा चमकती हुई काले रंग की थीं और रसियों से बांधी हुई थी उस की जटा से बहुत सुंदर सुगंधि आती थी, मेरी जटाओं से जो नहीं आती उस के हाथ में एक फल था जिस को वह ऊपर फेंकता था और वह ऊपर से हो कर भूमि को ताड़ना कर २ के फिर उस ब्रह्मचारी के हाथ में चला जाता था उस के पाओं पर अनेक प्रकार के आभरण पड़े हुए थे जो चलने पर ऐसा सुंदर शब्द करते थे मानों मान सरोवरपर राज हंस कर रहे हैं उस महात्मा के शरीर से ऐसी गन्ध आती थी जैसे वैशाख के महीने वायु के चलने से आती है, और

और वनों को सुगंधित करती है उस की जटा इकट्ठी की हुई ललाट पर से इधर उधर दो भाग की हुई थी उस के कानों में चित्र लट रहे थे उस ने मेरी जटा पकड़ कर मेरे मुख को निवा लिया और अपना मुख मेरे मुख से मिला कर ऐसा शब्द किया कि मेरे हृदय में बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ उस ने मुझे अपने वन का फल खाने को दिया जो बड़ा स्वादिष्ट था और जिस में छिलका या गुठली न थी, उस ने मुझे पीनेको स्वादिष्ट जल दिये, जिस से मेरा मन बड़ा आह्लादित हुआ और पृथ्वी डोलती सी प्रतीत होने लगी, देखो यह विचित्र सुगंधित माला मुझे उसी ने दी है, उस ने न तो मुझ से दण्डवत ली न पाद्य अर्घ और कहा कि हमारा परम धर्म यही है कि हम किसी की दी हुई इन वस्तुओं को ग्रहण न करें, और आप को आलिंगन करें, हे पिता उस परम कृपालु तपस्वी को देख कर मेरा रोम रोम हर्षित हो गया है और मैं चाहता हूं कि वह मेरे पास बैठा रहे उस के जाने से मेरे चित में ग्लानि उत्पन्न होगई है और मेरा रोम रोम ऐसा जल रहा है, जैसे कि अग्नि के दाह से। मैं चाहता हूं कि उस के पास जाऊं, पिता जी उस ब्रह्मचारी का व्रत किस नाम से विख्यात है, मैं चाहता हूं कि मैं भी वैसा ही व्रत करूं ॥

एकसौदो का अध्याय

—:o:—

विभांडक का अपने पुत्र को समझाना, वेश्या का ऋष्य शृंग को अंगदेश में लेजाना, इन्द्र का वर्षा करना, लोमपाद का अपनी बेटी शान्ता का ऋष्य शृंग से विवाह कर देना, विभांडक ऋषि का क्रोध शान्त करना ॥

विभांडक ने अपने पुत्र को समझाया और कहा कि हे पुत्र वह ब्रह्मचारी न था किन्तु कोई दुष्ट राक्षस था वह जो तेरे तप में विघ्न डालना चाहता था, जंगल में अनेक राक्षस नाना प्रकार के रूपों में विचरण करते हैं और अवसर पाकर तपस्वियों के तपोबल को विध्वंस करते हैं, उन का अनुकरण करना सत्पुरुषों का काम नहीं, देखो यह सुगंधित माला ब्रह्मचारियों के लिये निषिध हैं और वह पान जल नहीं परन्तु मधु है जो पाप का मूलक है। विभांडक वैश्या को राक्षस समझ कर उसकी तलाश में बाहिर निकला और तीन दिन रात्रि तक खोज किया परन्तु कुच्छ पता न पाया और अपने आश्रम को लौट आया, इस के उपरान्त जब विभांडक ऋषि फिर फल लेने के लिये वन को गये तो उस वैश्या पुत्री ने अवसर पाकर आश्रम में प्रवेश किया ऋष्य शृंग संभ्रांचित होकर उस के पास चले आये और कहा कि चलो जब तक पिता वन से लौट कर आवें तब तक तुम्हारा

आश्रम देख आवें, यह सुन कर वह वैश्या पुत्री ऋष्य शृंग को अपनी नाव में ले आई और नाव खोल कर चलदी, मार्ग में कई प्रकार के अलिंगनों से ऋष्य शृंग को शांत किया और अंग देश में आ पहुंची ॥

लोमपाद ने यूंही ऋष्यशृंग का अपने देश में आना सुना वह बड़ा प्रसन्न हुआ, और ऋषि को तत्क्षण अपने महल में ले गया और बड़े आदर सत्कार से भोजनादि से उसकी सेवा की, उसी समय इन्द्र ने महान वृष्टि की और अंग देश की सब खेती बाड़ी हरि भरी होगई ॥

राजा ने प्रसन्न होकर अपनी शान्ता नाम पुत्री का विवाह ऋष्य शृंग से कर दिया, परन्तु अब उस को यह चिन्ता हुई कि विभाडक के क्रोध को किस प्रकार शान्त करे इस हेतु उसने उस रास्त पर जो ऋषि के आश्रम से अंग देश को आता था सब लोगों को कहला भेजा कि जब विभाडक जी आवें उन की भली प्रकार सेवा करो और जब पूछें कि यह देश किसका है तो कहो कि महाराज आपके पुत्र का है ॥

जब विभांडक ऋषि फल ले कर वन को वापिस आये तो अपने पुत्र को न पाया, बड़े शोक में व्याकुल हुये। अंत को पता लगा कि अंगदेश का राजा लोम पाद उस को छल से ले गया है, ऋषि को बड़ा क्रोध हुआ और उस को शाप देने की इच्छा से अंगदेश को चल पड़ा, रास्ते में जहा कहीं ठहरा उस का बड़ा आदर सत्कार हुआ। उस ने लोगों से पूछा कि यह देश किस का है और यह खेतियां और गाय किस की हैं उन्हों ने उत्तर दिया कि महाराज यह सब कुछ आप के पुत्र

का है और सब कुच्छ उसी की कृपा से यहा पर उपस्थित है इन बातो ने ऋषि के क्रोध को बहुत शात किया और अब वह अंग देश में पहुंच गया। राजा ने दंडवत कर के अर्घ पाद्य दिया और अपने महलों में ले आये वहा उस ने अपने पुत्र को देखा जिस का विवाह राज कन्या शान्ता से हो गया था। विभांडक प्रसन्नता पूर्व कुच्छ काल वहा रहा और तत्पश्चात ऋष्य शृंग को आज्ञा दी कि जब तक तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न न हो तब तक तुम यहीं ठहरो और तत्पश्चात आश्रम में चले आओ ऋष्य शृंग ने ऐसा ही किया। शाता ने उस की बड़ी सेवा की॥

युधिष्ठर को यह सब वृत्तात सुना कर लोमश ने गंगा की ओर कहा कि यह ऋष्य शृंग का वही पवित्र आश्रम है, इस में स्नान करो और शारीरक तथा मानसिक शिथलता को दूर करो॥

एकसौतीन का अध्याय

—:o:—

युधिष्ठर का कौशकी तीर्थ, गंगा समुद्र संगम और वैतारणी तीर्थों में स्नान करके महेन्द्र पर्वत को जाना॥

तत्पश्चात युधिष्ठर सब देवस्थानों को वारी २ देखता हुआ कौशकी तीर्थ को गया, और वहां से गंग समुद्र के

संगम के स्थान पर पहुंच कर पाच सौ नदियों में स्नान किया, वहां से समुद्र के तट पर होता हुआ कालिंग देश में पहुंचा जहां पर वैतरणी नदी बहती है, धर्मराज ने इस नदी पर देवताओं सहित यज्ञ किया था उस के तट पर ऋषि और ब्राह्मण रहते हैं और एक यज्ञ करने योग्य पर्वत भी है, यहां पर किसी समय देवताओं ने यज्ञ किया था और यहीं शिवजी ने यज्ञ के पशु को ग्रहण करके कहा था कि यह हमारा भाग है, देवताओं ने प्रार्थना की कि हे महाराज आप दूसरों के भाग को नाश न कीजिये, शिवजी यह प्रार्थना स्वीकार कर स्वर्ग को चले गये और पशु को छोड़ गये, देवताओं ने तब से यज्ञ में उन का भाग सब से उत्तम नियत कर दिया ॥

युधिष्ठिर ने वैतरणी के पार उतर कर तर्पण किया जिस से उस की दिव्य दृष्टि होगई और उस ने वैखानस आदि ऋषियों को बोलते सुना जो उस समय २ लाख योजन पर थे, वहां से वह ब्रह्मा जी के दिव्य वन को आये, इस स्थान पर ब्रह्मा जी ने यज्ञ किया वन उपवन और पर्वत सहित सम्पूर्ण पृथ्वी दक्षिणा में कश्यप जी को देदी इस पर पृथ्वी क्रोधित हो कर रसातल को चली गई, परन्तु कश्यप ऋषि ने उसको अपने तप के बल से प्रसन्न कर लिया जिससे वह फिर ऊपर को आगई ॥

युधिष्ठिर ने उस सुंदर रमणीक स्थान को देख कर उस पर चढ़ने का साहस किया, लोमश ऋषि ने उस को दो मंत्र सिखलाये जिन के पढ़ने से उसका ऊपर चढ़कर समुद्र में स्नान करना निर्विघ्न

हुआ। वहां से चल कर रात्रि के समय महेन्द्र पर्वत पर वास किया॥

एकसौ चार का अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का महेंद्र पर्वत पर वास करना और अकृत व्रण का परशुराम की कथा सुनाना ॥

प्रातःकाल लोमश जी ने उन को सब तपस्वियों से भेंट कराई, युधिष्ठर अकृत व्रण नामी परशुराम जी के मित्र और उस से परशुराम जी के दर्शन करने का समय पूछा, उस ने कहा कि परशुराम जी अष्टमी और चतुर्दशी दर्शन को देते हैं, कल चतुर्दशी है, आशा है कि प्रातःकाल ही परशुराम जी दर्शन देंगे॥

युधिष्ठर ने अकृत व्रण से परशुराम जी का पूर्ववृत्तान्त पूछा और उस ने बतलाया कि परशुराम ने प्रथम हैहय देश के राजा सहस्रबाहु अर्जुन को मारा था, उस राजा को दत्तात्रेय जी की कृपा से सुनहरी विमान सम्पूर्ण पृथ्वी, सब ऐश्वर्य और एक रथ जो किसी स्थान पर न रुकता था, प्राप्त हो गए थे॥

इन पदार्थों के बल से देवताओं और ऋषियों को मर्दन करना आरम्भ किया। विमान पर चढ़कर स्वर्ग में चला जाता और इन्द्रादि को भी घूरता। यह सुन कर विष्णु जी ने उस

के मारने का प्रबंध सोचना आरम्भ किया और इसी विचार से बदरी वन को चले गए ॥

उस बन में कान्यकुब्ज गगंध नाम राजा अपना राज पाट छोड़ कर तपस्या के निमित्त आया हुआ था, उस राजा के हां उसी बन में अप्सरा के समान एक कन्या उत्पन्न हुई। ऋचीक नामी भृगु वंशी ऋषि ने राजा के पास जाकर उस कन्या का मांगा ॥

राजा ने उत्तर दिया कि यदि आप मेरी कन्या मांगते हैं तो पहिले श्वेत रंग और श्याम कर्ण के एक सहस्र घोड़े लाओ तब मुझ से कन्या मांगो यह हमारी कुल की रीति है हम इस को उलंघन नहीं करेंगे ॥

ऋचीक यह बात स्वीकार कर के वरुण जी के पास आये और यथोक्त प्रकार के बड़े वेगवान एक सहस्र घोड़े उन से मांगे। वरुण ने उस की प्रार्थना स्वीकार की। और ऋचीक ने घोड़े लाकर राजा गगंध को दिये और उस की सत्य वति नाम कन्या से विवाह किया और उस को अपने स्थान पर ला कर उस से रमण करने लगे ॥

भृगु जी ने जब अपने पुत्र के विवाह का हाल सुना तो बड़े प्रसन्नता से उन को देखने के लिये आये, ऋचीक ने बड़ा आदर किया और सब प्रकार से सेवा की भृगु जी ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्र वधु से कहा कि मुझ से कोई वर मांगो, उस ने कहा कि हे महाराज मैं चाहती हुं कि मेरे घर में एक बड़ा तेजस्वी और प्रतापी पुत्र उत्पन्न हो और

मेरी माता के हां भी वैसा ही पुत्र हो, भृगु जी ने कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा। परन्तु एक काम करना। यह चारू की दो मुट्ठी लो जब तुम दोनों ऋतु से स्नान कर चुको तो एक मुट्ठी आप खाना और दूसरी अपनी माता को खिला देना और तुम ने पीपल के वृक्ष को आलिङ्गन करना और अपनी माता को गूलर के वृक्ष से अलिङ्गन कराना। सत्यवति ने दो भाग चरू ले लिया और भृगुजी अन्तर्धान हो गये॥

पश्चात जब वह दोनो ऋतु स्नान कर चुकीं, तो उन्हों ने उस चरू को खाया, परन्तु जैसा भृगु जी ने कहा था उस के विपरीत काम किया। माता का चरू बेटी ने खालिया और बेटी का मा ने और इसी प्रकार से वृक्षों को भी आलिङ्गन किया कुछ समय बीतने पर भृगु जी को इस बात का पता लगा, तो उन्हों ने बतलाया कि तुम ने चरू खाने में और वृक्षों को आलिङ्गन करने में बड़ी भूल की है। सत्यवती बहुत घबराई और बोली कि महाराज इस का क्या परिणाम होगा भृगु जी ने कहा कि तुम्हारे घर में ब्राह्मण लड़का उत्पन्न होगा, परन्तु उस के कर्म क्षत्रियों के से होंगे, और तुम्हारी माता के घर क्षत्रियं पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु उस का स्वभाव ब्राह्मणों का सा होगा॥ सत्यवति ने फिर प्रार्थना की कि महाराज मैं चाहती हूं कि मेरा पुत्र अवश्य ही धर्मात्मा ब्राह्मण उत्पन्न हो, चाहे मेरा पोत्र क्षत्रिय हो तो कुछ बात नहीं, भृगु ने कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा, यह कह कर चल दिये, कुछ काल के पश्चात सत्यवति के हां एक परम

प्रतापी, धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ और उसी का नाम जमदग्नि रखा गया ॥

एकसौपांच का अध्याय

—:o:—

जगदग्नि का रेणुका से विवाह, परशुराम आदि पांच पुत्रों का उत्पन्न होना रेणुका का मरना, कार्तवीर्य का वध करना और उस के पुत्रों से जमदग्नि का मारा जाना ॥

जमदग्नि बड़ा विद्वान धर्मात्मा और वेदपाठी था, उसका विवाह राजा प्रसेनजित की रेणुका नाम कन्यां से होगया, उस से पांच पुत्र उत्पन्न हुये जिन के नाम क्रम से नमस्कार, सुपुष्ठ, सुखेण, वसु, विश्वा वसु और परशुराम थे, एक समय रेणुका नदी में स्नान कर रही थी कि उस ने चित्र रथ राजा को अपनी स्त्री सहित स्नान करते देखा, उस समय उसका हृदय काम वश होगया और नदी में ही उसका वीर्य पात होगया जिससे रेणुका विह्वल हो गई और परम दुःखित दशा में घर को आई, जमदग्नि जिस ने यह सारी वार्ता योग्य दृष्टि से देखी थी, उस को बहुत तिरस्कार करने लगा, और उस की ब्रह्म लक्ष्मी खोये जाने पर उस को धिकार किया, तुरंत ही उस के चारों पुत्र वन से आये, और जमदग्नि ने उन को आज्ञा दी कि अपनी माता को मार दो, परन्तु वह चुप चाप खड़े हो कर

मुंह की ओर देखते रहे, जमदग्नि ने क्रोध में आकर शाप दिया, कि जाओ मृग पक्षी बन जाओ और वह वैसे ही हो गये इस के उपरान्त परशुराम भी वन से आया, जमदग्नि ने उस को भी अपनी माता के मारने के लिये कहा उस ने तुरन्त ही अपनी माता का शिर काट डाला ॥

जमदग्नि उस पर बड़े प्रसन्न हुए और वर मांगने के लिये कहा, परशुराम ने कहा कि हे महाराज मैं ये ही वर मांगता हूं कि मेरी माता सावधान हो जाय और मुझे उस के मारने का शाप न लगे, और न उसे ज्ञान हो कि मैंने उस को मारा है मेरे भाईयों का शाप छूट जाय और मेरी आयु दीर्घ हो जाय और बड़ा बलवान हो जाऊं, जमदग्नि ने कहा ऐसा ही हो ॥

इस के उपरान्त परशुराम और उस के भाईयों के वन को जाने के पश्चात अनूप देश का कार्तवीर्य राजा जमदग्नि के आश्रम में आया उस ने रेणुका का निरादर किया और आश्रम के वृक्षों को तोड़ फोड़ दिया, और गाय का बछड़ा उठा कर चल दिया, परशुराम को लौट कर आने पर यह समाचार विदित हुआ और तत्क्षण धनुषबाण ले कर कार्तवीर्य का पीछा किया, जब निकट पहुंचा तो उस से युद्ध किया और उस की सहस्र भुजायें काट डालीं, यही नहीं परन्तु उस को जान से मार डाला, और बछड़ा लेकर घर लौट आया ॥

कार्तवीर्य के पुत्रों ने यह समाचार सुन कर बड़ा क्रोध किया, और वह एक दिन जब कि परशुराम और उस के

भाई वन को गये हुए थे आश्रम में आगए और बिचारे तपस्वी जमदग्नि पर तीरों से आक्रमण किया, जमदग्नि घावों से तड़पता हुआ और राम राम पुकारता हुआ मर गया जब परशुराम बाहर से आया तो अपने पिता को मृत्यु वश देख कर बहुत विरलाप किया ॥

एकसौछका अध्याय

—:—०—:—

परशुराम का विलाप, क्षत्रियों को नाश करना और फिर महेन्द्र पर्वत पर आ ठहरना ॥

परशुराम ने अपने पिता की आकाल मृत्यु पर बड़ा शोक किया और उस के गुणों की श्लाघ की, और कार्त वीर्य के पुत्रों को उस को बिना अपराध मारने पर शाप दिया, तत्पश्चात उस का अनतेष्टि संस्कार किया, तब उस ने प्रतिज्ञा की कि मैं सब क्षत्रियों का संहार करूंगा, अतःएव उन्हों ने २१ बार पृथ्वी के सब क्षत्रियों को मारा, और अन्त को कार्तवीर्य के पुत्रों से संग्राम किया और उन सब को मार डाला ॥

इस प्रकार परशुराम ने क्षत्रियों के वध से समन्त पंचकदेश में पांच कुण्ड रुधर से भरे, और उस से अपने पितरों को तर्पण किया उस समय ऋचीक ने परशुराम को दर्शन देकर उपदेश दिया, तत्पश्चात परशुराम ने बड़ा भारी यज्ञ कर के इन्द्र को प्रसन्न किया और ब्राह्मणों को बहुत सी दक्षिणा दी

तत्पश्चात महेन्द्र पर्वत पर आगए और यहा अपना आश्रम बनाया ॥

दूसरे दिन चतुर्दशी थी, और परशुराम जी मुनियों को दर्शन देने के निमित्त आये, युधिष्ठर ने उन को दगडवत प्रणाम दिया और बड़ी सेवा की और उन की आज्ञा से उस रात महेन्द्र पवत पर वसकर दूसरे दिन प्रातः काल दक्षिण दिशा को चल दिये ॥

एकसौ सात का अध्याय

युधिष्ठर का दक्षिण के तीर्थों की यात्रा करना और यादवों का उन से मिलने आना ॥

युधिष्ठर महेन्द्र पर्वत से चलता हुआ और समुद्र के किनारे के तीर्थों को देखता हुआ और नहा २ अपने भाइयों और द्रौपदी सहित स्नान करता हुआ प्रशस्तानदी के संगम पर पहुंचा और उस में स्नान करके गोदावरी के दहाने पर पहुंचा वहां से द्राविड़ देश में समुद्र और अगस्त्य जी की यात्रा की और फिर नारी तीर्थ पर पहुंचा, रास्ते में अर्जुन के उत्तम कर्मों को श्लाघा करता था, वहा स्नान कर, और ब्राह्मणों को दान दे कर और कई छोटे अनेक तीर्थों को देख कर उन पर स्नान किया और ब्राह्मणों को दान दिये ॥

फिर सूर्पारक तीर्थ पर पहुंचे और फिर उस पवित्र स्थान पर गये जहा पर देवताओं और ब्राह्मणों ने यज्ञ किया था, क्योंकि

के पुत्र की पवित्र वेदी को देखा और बहुत से देवताओं के भी दर्शन किये, वहां से प्रभास तीर्थ को, वहां जाकर व्रत किया और बारह दिन तक केवल जल और वायू सेवन किया और अपने चारों ओर अग्नि जला कर तपस्या की, उस समय कृष्ण जी और बलदेव जी सेना सहित उन से मिलने आये और उन की दीन दशा को देख कर दुखी हुए तब युधिष्ठर को अपने शत्रुओं को सब वृत्तांत मिला ॥

एकसौआठ का अध्याय

—:०:—

यादवों को पांडवों का तपस्वि वेष में देख कर अत्यन्त दुखी होकर सन्ताप करना ॥

पांडवों के गिरद सब यादव बैठ गये और बात चीत होती रही, तब वनमाली हलधारी बोले कि हमारी समझ में नहीं आता कि कियों लोग धर्म की जय और अधर्म की क्षय कहते हैं, वास्तव में तो धर्म की क्षय और अधर्म की जय है, देखो यह युधिष्ठर राजा होकर जटाधारी तपस्वी बन रहा है और धर्म के अतिरिक्त कुछ नहीं करता, परन्तु नित्य प्रति क्लेश सहता है. इस के विपरीत दुर्योधन सदा अधर्म करने वाला कड़वी बेल की भांति बहुत फलता फूलता है, हम नहीं जानते कि इन भाईयों को इस दुखित अवस्था में छोड़ कर भीष्म, द्रोण, कृपा चार्य और धृतराष्ट्र

स्वयं कैसे सुख भोगते हैं, भला धृतराष्ट्र मर कर इस अन्याय का अपने पितरों को क्या उत्तर देगा यह सब बातें उस के शीघ्र नाश होने के चिन्ह हैं, और प्रतीत होता है कि वह औरों को भी अपने साथ ले जायगा राजाओं में अन्धा तो पहिले ही है। परंतु अब भी अपने दुष्ट गुणों से पृथक् नहीं होता भला यह शस्त्र वेता, अर्जुन, यह महावली भीम जो इस समय चीथड़े धारण कर रहे हैं, और यह द्रौपदी जो द्रुपद के यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई थी, और यह अश्वनिकुमार के तुल्य नकुल और सहदेव जो बड़े योधा हैं इस तपस्वि वेष के उचित हैं, ? वास्तव में यह वृद्ध कौरव बड़ा अनर्थ कर रहे हैं, जो लोभ के वश होकर इन सत्यधारी धर्मात्माओं को बनोवास दे रखा है, हाय शोक, यह भीम जो अकेला सब पूर्वदेश के राजाओं को जीत कर आया था और यह सहदेव जिस ने संपूर्ण दक्षिण दिशा और सिंधुकुल के देश के राजाओं को परास्त किया था, और यह नकुल जिस ने पश्चिम दिशा जीती थी, जटाधारी और फटे पुराने वस्त्र पहिरे रहे हैं, इन की यह दशा देख कर यह पृथ्वी क्यों दुःखी नहीं होती ॥

एकसौनौ का अध्याय

—:०:—

सात्यकी के अनेक प्रकार के विजय के उपाय, युधिष्ठर का केवल धर्म युद्ध अंगीकार ।

करना और यादवों का विदा होना॥

बलराम जी के इन वचनों को सुनकर सात्यकि बोला कि भाई बात तो यह है कि जिस पुरुष के संसार में मित्र और सहायक होते हैं, वह अपनी सहायता के लिये अधिकतर उनपर निर्भर रहता है, युधिष्ठिर और अन्य पाडव चाहते तो दुर्योधन को देर का मार डालते, और आप निष्कण्टक राज्य करते, परन्तु वह समझते हैं कि श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न सात्यकि और सांब मेरे मित्र हैं और वह स्वयं मेरे निमित्त मेरे शत्रुओं का हनन कर के मुझे राज्य दिला देंगे इस लिये वह दुर्योधन से लड़ने का विचार नहीं करते, शोक है, न हम उन के मित्र होते और न हमारे कारण उन की यह दशा होती, मैं चाहता हूं कि अब भी हम लोग अपनी मित्रता को सच्चा करें और इन के लिये कौरवों से युद्ध कर के उन को मार डाले । युधिष्ठिर तब तक वन में रहे जब तक इस की प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं, और अभिमन्यु उस के स्थान पर राज्य करे ।

इस बात को सुन कर श्रीकृष्ण जी बोले कि "सात्यकि तुम्हारा वचन तो सत्य है परन्तु युधिष्ठिर इस बात को नहीं मानेगा वह दूसरे से जीते हुए देश पर राज्य नहीं करेगा, हां, हम इन को युद्ध में सहायता दे सकते हैं ।" तदुपरान्त युधिष्ठिर बोला कि हे सात्यकि आपने जो कुछ कहा है वह कुछ आश्चर्य की बात नहीं परन्तु मुझे धर्म को छोड़ कर राज्य करना स्वीकार नहीं है जब समय आवेगा तो आप देख लेंगे उस समय आपने और श्री कृष्ण जी ने दुर्योधन

को मारना। मैं आपका धन्यवाद करता हूं कि आपने मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया है, परन्तु अब आप जाईये, मैं लौट कर आप के दर्शन करूंगा॥

इस के पश्चात् यादव लौट आए और युधिष्ठर पयोर्णी नदी पर गए और उस के सोम के सदृश जल को पान करके बास किया॥

एकसौदस का अध्याय

—:-०-:—

युधिष्ठर का पयोर्णी, नर्मदा नदी और वैडूर्य पर्वत की यात्रा करना और लोमश का उन तीर्थों का महात्म वर्णन करना॥

लोमश ऋषि ने कहा कि हे राजा युधिष्ठर इस स्थान पर राजा नृग ने यज्ञ किया था और राजा गय ने सात अश्वमेध यज्ञ किये थे और वज्र धारी इन्द्र को सोम से तृप्त किया था केवल यही नहीं परन्तु ब्राह्मणों को अन गिनत धन पदार्थ दिया था इन यज्ञों में यज्ञ पात्र स्वर्ण के बनाये गये थे, और सुनहरी यज्ञ खंभों के ऊपर सुनहरी चढाल रखे गये थे जिन को इन्द्रादि देवताओं ने स्वयं उठाया था। यज्ञ की सीमाओं पर इतने वृक्ष लगाये गये कि सब पृथ्वी भर गई। राजा गय को इन यज्ञों के निमित्त इन्द्र लोक प्राप्त हुआ॥

युधिष्ठिर ने भी उस पयोष्णी में स्नान किया और भाइयों और कुटुंब सहित आचमन लिया तत्पश्चात महानदी नर्मदा और वैडूर्य पर्वत की ओर चल दिया, मार्ग में जो पर्वत और तीर्थ स्थान आये उन सब में स्नान किया ॥

लोमश ने बताया कि यह प्रदेश शार्याति के यज्ञ का है यहां इन्द्र ने अश्वनी कुमारों सहित अमृत पिया था और च्यवन ऋषि ने ऋषि इंद्र पर क्रोधित होकर उस को खंभ की भांति खड़ा कर दिया था और इसी च्यवन ऋषि का व्याह सुकन्या राज पुत्री से हुआ था युधिष्ठिर ने लोमश से पूछा कि महाराज यह सब वृत्तांत सुनाइये ॥

एकसौग्यारह का अध्याय

—:o:—

च्यवन ऋषि का सुकन्या से विवाह ॥

लोमश ने कहा कि भृगु पुत्र च्यवन ऋषि इस सरोवर पर समाधिस्थ होकर तपस्या कर रहे थे और परमेश्वर के ध्यान में इतने मग्न थे कि उन को इसी अवस्था में बैठे हुए कई वर्ष व्यतीत हो गए यहां तक कि दीमक ने उन पर वल्मीक बना लिये और उन वल्मीक पर भूमी बन कर नाना प्रकार के सुन्दर पुष्प, वृक्ष और लताएं उग पड़ीं ॥

एक समय शार्याती राजा उस सरोवर पर सेना समेत

और अपने परिवार के साथ विहार करने गए थे । और उस की बेटी सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ खेलती हुई और पुष्प पत्र तोड़ती हुई वन में फिर रही थी सहेलियों के निकल जाने पर सुकन्या अकेली रह गई दैवयोग से च्यवन ऋषि ने उस को देख कर और बहुत प्रसन्न होकर बुलाया परन्तु सुकन्या ने उसका वचन न सुना और आश्चर्य से इधर उधर देखने लगी जब वह वल्मीक के निकट आई तो उसकी दृष्टि ऋषि के नेत्रों पर पड़ी जो कि अत्यन्त प्रकाशमान थे सुकन्या ने कुतूहल से उन को काँटों से छेड़ा इस पर च्यवन ऋषि ने भी क्रोधित होकर शर्याति की सेना का मूत्र और विष्ठा बंद कर दिया यह देख कर शर्याति बहुत दुखी हुआ और अपने सेवकों से पूछने लगा कि क्या किसी ने हम में से किसी ऋषि की अवज्ञा तो नहीं की सब ने उत्तर दिया कि महाराज हम में से किसी ने किसी ऋषि या तपस्वी का अपकार नहीं किया । इस के पीछे सुकन्या राज पुत्री ने अपने पिता को कहा कि महाराज मैं एक वल्मीक के पास से जाती थी और मुझे दो खद्योत की भान्ति चमकते हुए जीव दिखाई दिये थे उन को मैं ने काँटा चुभोया था ॥

यह सुन कर राजा शर्याति वल्मीक के पास गया और च्यवन ऋषि को देख कर अपनी सेना के दुःख को वर्णन करने लगा और कहने लगा कि महाराज सुकन्या ने अज्ञानता से जो कुछ आपका अपकार किया है उस को

क्षमा कीजिये । च्यवन ने कहा कि तेरा अपराध तब क्षमा होगा जब तुम यह कन्या मुझ को व्याह दोगे राजा शर्याति ने वह कन्या विना सोचे समझे च्यवन को व्याह दी। और सेना सहित अपने नगर को लौट आया। सुकन्या बड़ी प्रीति से च्यवन की सेवा करने लगी ॥

एकसौबारह का अध्याय

—:o:—

अश्विनि कुमारों का सुकन्या को च्यवन ऋषि को त्याग देने का उपदेश करना, सुकन्या का न मानना, अश्विनि कुमारों का च्यवन को युवान कर देना, च्यवन का उन को यज्ञ में अमृत पिलाने का नियम करना ॥

एक समय सुकन्या सरोवर में नंगी नहा रही थी कि अश्विनी कुमारों ने उस को देखा, और निर्जन वन में उस को अकेला देख कर पूछने लगे कि तू इतनी रूपवान युवा स्त्री किस की वह बेटी है! और यहां वन में अकेली किस तरह आई है! सुकन्या ने अपने पिता और पति का नाम लिया, तिस पर अश्विनि कुमार हंस कर बोले कि तेरा बाप कैसा मूर्ख है कि जिस ने ऐसी सुकुमार कन्या को एक वृद्ध तपस्वी से व्याह दिया देखो हम कैसे जुवान और

दिव्य मूर्ति है- तू च्यवन को छोड़ कर हम को वर ले, यह मैले कुचैले कपड़े जो तुम-ने पहरे- हुए हैं तुम्हारे शरीर के प्रकाश को कम कर रहे हैं. चलो स्वर्ग में हमारे साथ चलो और देव कन्याओं की भांति आनन्द से उत्तम भूषण वस्त्र धारण करो, हम दोनों एक जैसे जुवान हैं इन में से जिस को चाहो अपना पति बनालो. सुकन्या जो च्यवन से बहुत प्रीति रखती थी बोली कि मैं ऐसी स्त्री नहीं, मैं पति वृता हूं तुम मेरे पति वृत धर्म पर किसी प्रकार का शंका मत करो ॥

अश्विन कुमारों ने कहा कि अच्छा और बात है, हम बड़े श्रेष्ठ वैद्य हैं हम तुमारे पति को जुवान कर देते हैं. फिर हम तीनों में से जिस को चाहेगी अपना पति बना लेना अब तुम जाओ और अपने पति से पूछ आओ। सुकन्या ने जाकर सब वृत्तान्त च्यवन को सुनाया। उसने कहा कि यह अवश्य करना चाहिये। सुकन्या ने यह संदेशा अश्विनी कुमारों को सुनाया। उन्हों ने च्यवन को बुलाया और कहा कि इस सरोवर में डुबकी लगाओ, और आप भी दोनो पानी में घुस गए तत्पश्चात तीनों परम सुन्दर और बिजली के समान प्रकाश मान रूप ले कर निकले। फिर एक साथ सुकन्या को कहा कि हम में से जिसको तू चाहे अपना पति बनाले।

तीनों की एक सी आकृति और दिव्य रूप था, सुकन्या ने मन और बुद्धि को एकाग्र करके अच्छी प्रकार निश्चय किया और च्यवन जी को ही अपना पति बनाया, च्यवन जी सुन्दर रूप, युवावस्था और परम सुंदर स्त्री पाकर बड़े प्रसन्न हुये, और

अश्विनी कुमारों से प्रण किया कि मैं आपको यज्ञ में इन्द्र के सन्मुख अमृत पान का भागी करूंगा, अश्विनी कुमार प्रसन्न हो कर यथेष्ट स्थान को चले गये ॥

एकसौतेरह का अध्याय

—:०:—

च्यवन का शर्याति के हां यज्ञ कराना और अश्विनी कुमारों को अमृत पीने को देना, इन्द्र का निषेद करना और वज्र लेकर च्यवन को मारने का यत्न करना, च्यवन का इन्द्र की भुजा को संतभित कर देना और उस के मारने के लिये कृत्या का प्रकट होना ॥

जब राजा शर्याति ने च्यवन के जवान होने का हाल सुना तो बड़ा प्रसन्न होकर रानी समेत सरोवर पर मिलने आया और अपनी पुत्री और जमाता को देख कर परम आनन्दत हुआ, च्यवन ने सब वृत्तांत राजा को कह सुनाया और राजा को कहा कि आप यज्ञ की सामग्री इकठी करें मैं आप के यहां यज्ञ करूंगा ॥

यह सुन कर राजा शर्याति बड़ा प्रसन्न होकर सुन्दर मुहूर्त में यज्ञशाला बनवाने लगा । जब सब सामग्री इकठी कर चुका तो एक दिन सुदंर अवसर पाकर च्यवन जी ने यज्ञ कराया

और अपने मता के अनुसार एक पात्र में अमृत डाल कर अश्विनी कुमारों को देने लगे। इन्द्र ने कहा कि यह दोनों देवताओं के वैद्य हैं, देवता नहीं हैं इस लिये इन्हें अमृत देने से देवताओं का बड़ा भारी निरादर है, आप इन को अमृत न दें। च्यवन ने कहा कि देवताओं के वैद्य भी देवता ही हुये, इस लिये हम उनको अवश्यमेव अमृत देंगे। उन्हों ने मेरी जरा अवस्था दूर कर के सुन्दर रूप दिया है, इसलिये वे अमृत पाने के योग्य हैं। इन्द्रने फिर भी निषेध किया परन्तु च्यवन ने न माना। इन्द्रको क्रोध आया और उसने वज्र हाथ में लेकर च्यवन को मारना चाहा परन्तु च्यवनने मुसक्या कर उसकी ओर देखा और अपने योग बल से उसकी भुजा ज्यूं की त्यूं स्तंभित करदी। अमृत का कटोरा अश्विनी कुमारों को दिया, और अग्नि में एक ऐसी आहुती डाली कि कृत्या नाम राक्षस तत्क्षण प्रकट हो गया॥

यह राक्षस बड़ा भयंकर रूप रखता था, उसका लंबा चौड़ा आकार, डराओना और विशाल चेहरा, उसके लंबे २ तीक्ष्ण दान्त जो बाहिर निकले हुये थे, उसकी लंबी सी बाहर निकाली हुई जीभ जिसको वह सदा होंठो पर फेरता रहता इतने भय जनक थे कि मानो मृत्यु सामने उपस्थित है, उसका खुला हुआ मुख तो काल अग्नि के अनुरूप था, वह जीभ से अपने मुखको चाटता हुआ और घोर दृष्टि से देखता हुआ ऐसा प्रतीत होता था, कि मानो सारे जगत को निगल जायगा। वह राक्षस भक्षण करने की इच्छा से इन्द्र के सन्मुख गया॥

एकसौचौदह का अध्याय

—:०:—

इंद्र का क्षमा मांगना, च्यवन का इंद्र का भय हटाना और यज्ञ समाप्ति करके वन को चले जाना ॥

इन्द्र ने समझा कि अब मरे, उसका चहरा पीला पड़ गया और जिह्वा होंटों पर फिरने लगी, परन्तु सिवाय इस के कुच्छ बन न सका कि लज्जित होकर च्यवन से क्षमा मांगे, च्यवन ने उस को अभय दान दिया, तब इन्द्र ने च्यवन जी को कहा कि जैसे आप कहते हैं वैसा ही होगा, अश्विनी कुमार अब से यज्ञ में अमृत पान किया करेंगे, हम ने यह बात केवल आप की परीक्षा लेने के निमित्त की थी और हमारा तातपर्य्य था कि आप का तपोबल प्रकाश हो और सुकन्या का पिता यश और कीर्ति का भागी हो, तब च्यवन ने मद दैत्य के चार भाग किये एक भाग मदिरा पीने में दूसरा स्त्रियों में तीसरा जूआ खेलने में और चौथा शिकार खेलने में स्थापित किया, और अमृत से इन्द्रादि देवताओं को तृप्त करके यज्ञ की समाप्ति की ॥

तब च्यवन जी अपने आश्रम को आये और सुख से रहने लगे, यह सुनकर युधिष्ठर ने च्यवन जी के सरोवर पर स्नान किया और आचमन करके पितरों को तर्पण किया, फिर सिकताक्ष और सिंधु के वन को चल कर कुल्याओं का दर्शन और सब पुष्करों में स्नान किया तदुपरात आर्चीक पर्वत

पर गये उस पर ज्ञानी और ऋषि लोग रहते थे, और मरुत देवताओं का स्थान था, उस पर फल सदैव लगे रहते थे और पानी भी सदा बहा करता था देवताओं के यज्ञ स्थानों की सीमाओं पर वृक्ष दिखाई देते थे, पास ही चन्द्रमा का स्थान था जहा पर वाल खिल्य और वैखानस ऋषि जो वायु भक्षी थे रहते थे, उस पर्वत पर तीन वरुने और तीन पवित्र शिखर थे वहां स्नान करके आचमन किया इसी स्थान पर राजा शानतु राजा शुनक और दोनों नर और नारायण ने तपस्या करके सनातन लोक प्राप्त किये थे, पुनः अर्चीक पर्वत की पूजाकी, इस स्थान पर देवताओं और महर्षियों ने मिल कर तपस्या की थी इस के अतिरिक्त और कई पर्वतों पर और तीर्थ स्थानों पर गये और ब्राह्मणों और तपस्वियों का आदर सत्कार किया। तत्पश्चात यमुना जी के तट पर गए और उस स्थान को देखा कि जहा पर संजय के पुत्र सोमक ने और राजा मान्धाता ने यज्ञ कराया था॥

एकसौपंदरां का अध्याय

—:o:—

राजा मान्धाता का वृत्तात ॥

युधिष्ठर से पूछने पर लोमश ने मान्धाता का निम्न लिखित वृत्तांत सुनाया॥

पूर्व काल में इक्ष्वाकु वंश में युवनाश्व राजा हुआ है, उसने सहस्रों अश्वमेध यज्ञ किये और अनेक अन्य यज्ञ किये जिससे सब

देवता और ब्रह्मर्षि उस पर प्रसन्न थे, परन्तु दैव वश उसके गृह में सन्तान कोई न हुई, जिससे राजा को बड़ा क्लेश हुआ करता था, कुछ काल के उपरान्त राजा राजपाठ मंत्रियों के सुपुर्द कर आप वनों को चला गया और तपस्या करने लगा ॥

एक दिन वह राजा उपवास से दुखी और प्यास से शुष्क हृदय हुआ भार्गव जी के आश्रम में पहुंचा, उस रात भार्गव जी ने युवनाश्व के इन्द्र समान पुत्र होने के निमित्त यज्ञ किया था और यज्ञ में एक कलश सथापन किया था जिस में मन्त्रों से पवित्र जल भरा था कि उसे पीकर युवनाश्व की रानी एक महा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करे, भार्गव जी और अन्य मुनि यज्ञ समाप्त होने पर सो गए जब राजा युवनाश्व वहां पहुंचा और पानी मांगा तो किसी ने उत्तर न दिया, उसी समय उस ने वेदी पर पड़ा हुआ पानी का भरा हुआ कलश देखा और पिपासार्ज होने से उस को उठा कर पी गया और खाली कलश को भूमि पर छोड़ दिया ॥

प्रातःकाल जब सब ऋषि जागे तो उन्हों ने खाली कलश को देख कर बड़ा शोक प्रगट किया और एक दूसरे से पूछा कि कलश को क्या हुआ परन्तु किसी ने भी उस जल के वर्तने का ज्ञान न माना अन्त को युवनाश्व से पूछा और उस ने उस जल को पीना स्वीकार किया तिस पर भार्गव जी बोले कि हे राजा तैंने यह बहुत अनुचित काम किया है तुम को यह पानी पीना उचित नहीं था यह जल मंत्रों से पवित्र करके तुम्हारी स्त्री के पिलाने के निमित्त रक्खा

था कि तुम्हारे हां एक वीर, धर्मात्मा और तेजस्वी पुत्र हो परन्तु वह जल तुम ने पी लिया है अब तुम को गर्भ धारण करना पड़ेगा क्योंकि मन्त्रों का फल अवश्यमेव होगा। और तुम्हारे ही गर्भ से वह तेजस्वी ब्रह्म तेज वाला बालक उत्पन्न होगा ॥

राजा युवनाश्व ने कहा कि महाराज मैं बहुत प्यासा था इस कारण मैं ने वह जल पी लिया है इस पर ऋषि ने कहा कि अच्छा पुत्र तो तुम्हारे गर्भ से निश्चय होगा इस बात को हम अन्यथा नहीं कर सकते हैं परन्तु तुम को यह वर दान देते हैं कि तुम को गर्भ का दुःख नहीं होगा ॥

बहुत काल के व्यतीत होने पर उस राजा के बांये पार्श्व को फोड़ कर महा तेजस्वी लड़का उत्पन्न हुआ। परन्तु राजा युवनाश्व को कोई दुःख न हुआ। वह बालक इतना तेजस्वी था कि इंद्र उस को देखने के निमित्त स्वर्ग से आया और अपनी अंगुली उस के मुंह में डाली वह चूसने लगा। इन्द्र ने उस का नाम मानधाता रखा। यह लड़का सब शास्त्र, वेद और उपवेद सहजि ही से पढ़गया। और अस्त्र शस्त्र चलाने में बड़ा निपुण होगया। इन्द्र ने उस पर प्रसन्न हो कर अपना अर्द्धासन दिया। थोड़े ही काल में उस मान्धाता से सारी दुनिया का राज उसको मिलगया। उस ने यज्ञ किये और यज्ञ स्थानों की सीमा पर वृक्ष लगाये सारी पृथ्वी वृक्षों से भर गई और मानधाता की कीर्ति और यश चारों ओर फैल गई ॥

एकसौ सोलह का अध्याय

—:०:—

सोमक और उसके पुत्र जंतु नामी के उत्पन्न होने का हाल ॥

जब युधिष्ठिर ने राजा सोमक का वृत्तान्त पूछा लोमश बोला कि राजा सोमक बड़ा धर्मात्मा था, इस के सौ रानियां थीं परन्तु कोई सन्तान न थी, राजा ने अनेक प्रकार के यज्ञ किये परन्तु कुछ न हुआ निदान वृद्धावस्था में एक लड़का हुआ जिस का नाम जंतु रखा गया, सब मातायें जंतु के दिन रात पालन पोषण में तत्पर रहती थीं ॥

एक दिन जंतु को किसी चींटी ने कमर के ऊपर काट खाया जिस से वह रोने लगा, उस के साथ ही सब रानिया भी रोने लगीं, और राजगृह में बड़ा कोलाहल मच गया राजा को समाचार मिला कि रनिवास में बड़ा कोलाहल मचा है, वह झट महलों में आया और रोने का कारण प्रतीत किया, रानियों ने कहा कि जंतु रोता है, राजा ने बालक को उठाया जिस पर वह चुप कर गया, राजा उस के समेत राज सभा में गया, और मंत्रियों और ब्राह्मणों को बुला कर कहने लगे कि एक पुत्र का जगत में होना कुछ नहीं, देखो मेरी सौ रानियों में केवल एक पुत्र है, और वह इस के प्रेम में सब की सब व्याकुल हो रही हैं, यहां तक कि यदि उसको चींटी भी काटे तो सब की सब रोने लगती हैं,

क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिस से मेरे सौ पुत्र हो जायें ॥

ब्राह्मणों ने कहा कि महाराज उपाय तो है परन्तु आप से उन का होना कठिन है, राजा ने कहा मुझे बताओ तो सही, मैं अवश्यमेव करूंगा, उस पर ब्राह्मणों ने कहा कि राजन आप एक यज्ञ करें और उस में जंतु का होम करें, सब रानियां उस होम का धूंआ सूंघें तो उन के हां एक एक पुत्र उत्पन्न होगा जिस माता से जंतु अब उत्पन्न हुआ है उसी से फिर होगा और उस को पार्श्व में सुनहरी चिन्ह होगा ॥

एकसौसतरहका अध्याय

—:०:—

सोमक का जंतु को हवन करना, सौपुत्रों का उत्पन्न होना, राजा का मरना और नरक से छूट कर शुभ गति पाना ॥

राजा सोमक ने अपने ऋत्विज् को कहा कि ऐसा ही हो। और यज्ञ की सामग्री इकठी कर के यज्ञ कराना आरंभ किया जब जन्तु को होम करने का समय हुआ तो उसकी मातायें रोने लगीं और लड़के को पकड़ २ कर खींचने लगीं। ऋत्विज ने यह देख कर उन रोती हुई माताओं से बालक खींच लिया और उसके अंग काट कर उसके मास से हवन किया। सब स्त्रिया

महाशोक से व्याकुल हो गई। जब उसका सारा शरीर होम हो गया, तो उसकी मातायें उस सुगंध को सूंघ कर महा दुःखी हुईं। और अकस्मात पृथवी पर गिर पड़ीं। पश्चात उन स्त्रियों को गर्भ ठहरा और शुभ होने के पश्चात सब के एक २ पुत्र हुआ। जन्तु का पुनर जन्म हुआ और उसके पार्श्व पर सुनहरी चिन्ह था॥

इस के अनन्तर आयु पूरा होने पर राजा काल वश हो कर स्वर्ग को चला गया और उसका ऋत्विज भी मर कर नरक को गया, राजा ने एक वार नरकाग्नि में जलता हुआ देख कर पूछा कि इसका क्या कारण है, उस ने कहा कि आपके हां होम कराने का यह फल है, राजा ने धर्मराज से प्रार्थना की कि मेरे गुरू को नरक से निकालो परन्तु उसने कहा कि हे राजा प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों के फल भोगने अवश्यक हैं तेरा ऋत्वज् नरक से नहीं छूट सकता, राजा ने कहा कि अच्छा तब मुझ को भी नरक में भेज दो ताकि मैं भी उसकी कुच्छ सहायता कर सकूं, धर्मराज ने यह प्रार्थना मान ली और राजा अपने गुरू के पास नरक में आगया, जब उन के दण्ड की अवधि पूरी हुई तो सोमक अपने ऋत्वज सहित स्वर्ग में चला गया और वहां आनन्द पूर्वक दोनों जने रहने लगे॥

एकसौअठारह का अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का अनेक तीर्थ यात्रा करना और लोमश का उनके गुण वर्णन करने ॥

लोमश ऋषि ने कहा कि हे युधिष्ठर इस स्थान पर ब्रह्मा जी ने इष्ट कृति यज्ञ किया था, और यमुना जी के निकट अंवरीषओ नाभगा ने यज्ञ किया था और अनेक गाय सदस्यों को दान की थीं जिससे उन को परम सिद्धि प्राप्त हुई, यह देश नहुष पुत्र ययाति का है जिस ने अनेक यज्ञ किये और इन्द्र के साथ ईर्षा की थी वह यज्ञ भूमि भी ययाति की है इसके पश्चात ययाति की वेदिया, शमी वृक्ष और यज्ञ कुण्ड दिखाये और परशुराम के पांचों कुण्ड भी बतलाए और कहा कि ऋचीक की संसार भूमि वह मेरु वर्ग है, फिर लोमश जी ने युधिष्ठर को प्लक्षावतरण दिखलाया जिस को पण्डित स्वर्ग का द्वार कहते हैं और कहा कि यह समस्त कुरुक्षेत्र है इस में जो वास करता है उस की मुक्ति हो जाती है युधिष्ठर ने इन सर्व तीर्थ स्थानों में स्नान किया और पुण्य का भागी हुआ ॥

—————

एकसौउन्नीस का अध्याय

—:-०-:—

युधिष्ठर का अनेक तीर्थ करना और लोमश

का प्रत्येक का नाम वर्णन करना ॥

लोमश ने कहा कि इस भूमि पर जो मनुष्य शरीर त्यागता है वह सीधा स्वर्ग को जाता है, इस कारण सहस्रों मनुष्य शरीर त्यागने के हेतु यहां आते हैं, दक्ष ने यहा पर यज्ञ किया था, इस में यह निर्मल जल वाली सरस्वति बहती है और उस में विनशन नाम पुण्य तीर्थ है, यह निषाद का द्वार है जिस के दोष के कारण सरस्वति अलोप हो गई थी, यह चमसोद्भेद नामी तीर्थ है, यह सिंधु का बड़ा तीर्थ है जहां पर लोपामुद्रा ने अगस्त्य जी से विवाह किया, युधिष्ठर ने सब तीर्थों के दर्शन किये और फिर कसमभाव, विष्णु पद विपाशा नदी जहां वशिष्ट जी अपने पुत्र के शोक में पाश बाध कर गिरे थे देखे, फिर कशमीर मंडल जहां पर ऋषियों में आपस में संवाद हुआ और मानस पर्वत अर्थात जहां परशुराम जी ने वास किया था देखो, जब क्षीण युद्ध होता है अर्थात और बाहस्पत्य, नक्षत्र और चांद्र मास चारों प्रकार के वर्ष एक समय पुरे होते हैं तो शिवजी महाराज पार्वती समेत उस दिशा मे आते हैं, कल्याण चाहने वाले पुरुष शिवजी का पूजन करते हैं और चैत्रमास में यहां यज्ञ करते हैं तत्पश्चात उजानक तीर्थ पर गये यहां पर स्कंद और उस के पितरों अरुंधती और वशिष्ट ने शम प्राप्त किया था फिर कुशवान सरोवर पर आये जहां पर रुक्मिणी का क्रोध शांत हुआ था, फिर भृगुतुंग पर्वत पर और वितस्ता मनर्द पर जहां बड़े ऋषि वास करते थे फिर जमुना जी के

पास जला और उपजला दो निर्मल जल रखने वाली दो नदियां देखीं यहां पर उशीनर राजा ने इन्द्र के द्वारा वृद्धि पाई थी और इन्द्र महाराज बाज बन कर और अग्नि को कबूतर बना कर उस की परीक्षा करने के निमित्त उस की राज सभा में आये थे ॥

एकसौबीस का अध्याय

—:-०-:—

इन्द्र और अग्नि का उशीनर की परीक्षा करना उस की सभा में श्येन और कपोत बन कर आना ॥

कबूतर बाज से डरता हुआ राजा की जंघों में जा छुपा और बाज ने आगे बढ़ कर कहा कि हे महाराज आप बड़े धर्मात्मा हैं और सब राजाओं में विख्यात हैं परन्तु आपने मेरे साथ क्यों इतना अन्याय कर रखा है देखो इस कबूतर को अपनी जंघों तले दबा रखा है इस को ब्रह्मा जी ने मेरा भोजन बनाया था । उशीनर बोले कि देखो यह कबूतर अपने प्राणों की रक्षा के लिये मेरी शरण में आया है मैं किस प्रकार शरण गत को मृत्यु के मुख में दे दूं इस को त्यागने का पातक गौ और ब्राह्मण वध के समान है श्येन बोला कि हे महाराज संसार में सब प्राणी आहार ही से जीते और बढ़ते हैं प्राणी धन के बिना जी सकता है

परन्तु आहार के विना उस का क्षण भर भी जीना कठिन है इस लिये हे महाराज मेरी आहार वंदना कीजिये इस के न मिलने से मैं निस्संदेह प्राण त्याग दूंगा और मेरे मरणे पर मेरे पुत्र कलत्रों का रहना भी असम्भव है इस प्रकार इस की प्राण रक्षा से आप कई प्राणों का नाश करेंगे हे राजा धर्म वह है जो दूसरे धर्म का बाधा न करे यदि करे तो अधर्म है इस से उचित है कि जहां दो धर्म आपस में विरोध करें तो वहां बड़ाई छुटाई का विचार करना चाहिये, जिस धर्म के करने से अधिक सुख प्राप्त हो वह करना चाहिये ॥

उशीनर ने उसकी बातें सुन कर पूछा कि तुम धर्म का विधान तो अच्छा जानते हो, क्या तुम गरुड़ तो नहीं ? तुम यह बताओ कि शास्त्र में शरणागत को त्यागने के विषय में क्या लिखा है ? क्या यह राजाओं का धर्म है कि अपने शरणागत को शत्रु को देदें ?

रही तुम्हारी और तुम्हारे कुटुम्ब की जान, सो वह और प्रकार से भी बचाई जा सकती है, जिस पशु का मास कहो हम ला देते हैं ॥

श्येन ने कहा कि हे महाराज मुझे और प्रकार के मास की आवश्यक्ता नहीं केवल कबूतरों को ही खाता हूं, यह सनातन से रीति चली आई है, आप इस में विघ्न न डालें ॥

राजा ने उत्तर दिया कि हे बाज़ मैं अपना सम्पूर्ण धन और राज्य देना स्वीकार करता हूं परन्तु कबूतर को देना पसन्द

नहीं करता, क्या तुम बतला सकते हो कि किस अन्य पदार्थ से तुम सन्तुष्ट हो सकते हो ॥

बाज ने कहा कि हे राजन्, यदि मेरा यही निश्चय है कि इस कबूतर को बचाय तो कबूतर के बराबर अपने शरीर से मांस काट दे। अन्य किसी पदार्थ को मैं भी ग्रहण न करूंगा।

राजा ने उत्तर दिया बहुत अच्छा, मैं इस भाव को स्वीकार करता हूं। राजा ने तुरन्त अपने शरीर से मांस का एक टुकड़ा काट कर तोला तो कबूतर का भार अधिक निकला। फिर राजा ने दूसरा टुकड़ा डाला, फिर भी कबूतर बढ़ रहा तत्पश्चात राजा ने और मांस डाला परन्तु कबूतर तोला नहीं गया। यहां तक कि राजा के शरीर पर रत्ती भर मांस न रहा। अन्त को राजा आप उस तुला में बैठ गया। इस पर इन्द्र प्रकट हो कर बोला कि:—"हे उशीनर! तुम धन्य हो, मैं इन्द्र हूं! मैं तुम्हारी परीक्षा के निमित्त आया था। तुमने जो अपने शरीर का मांस काटा है इस से तुम्हारी कीर्ति समस्त लोक लोकान्तर में फैल जायगी और जब तक तुम्हारी कथा संसार में प्रचालित रहेगी, तुम्हारे सनातन लोक भी बने रहेंगे ॥

ऐसा वर देकर अग्नि और इन्द्र स्वर्ग को चले गये, और उशीनर बहुत काल राज्य कर के स्वर्ग को प्राप्त हुआ युधिष्ठर ने उस पुण्य तीर्थ पर स्नान किया और यथा विधि ब्राह्मणों और ऋषियों को प्रसन्न किया ॥

एकसौइक्कीस का अध्याय

—:०:—

अष्टावक्र का जन्म और उसका राजा जनक के यहां जाना ॥

तब युधिष्ठर अपने समुदाय के साथ उद्दालक के ब्रह्म ज्ञानी पुत्र श्वेतकेतु के आश्रम को गये, इस स्थान पर सरस्वति नारी रूप धारण करके उस ऋषि के दर्शन को आई थी उस समय दो सुप्रसिद्ध वेदपाठी ऋषि थे, एक तो उद्दालक का पुत्र श्वेत केतु था दूसरा कहोड़ का पुत्र अष्टावक्र, यह दोनों संबन्धि थे, और आपस में मामा भानेज का संबन्ध रखते थे ॥

अष्टावक्र ऐसा विद्वान था कि उस ने जनक की यज्ञ शाला में जाकर वाद में वंदि को परास्त किया और नदी में डुबवा दिया, उस की उत्पत्ति का हाल यह है कि उस का पिता कहोड़ उद्दालक ऋषि का गुरु भक्त शिष्य था और अपनी भक्ति बल से उद्दालक से वेद विद्या प्राप्त कर चुका था। यहां तक कि उस की सेवा से प्रसन्न होकर उद्दालक ने अपनी सुजाता नाम पुत्री को उस से विवाह दिया ॥

कुच्छ काल के उपरान्त सुजाता गर्भ वती हुई और उसके गर्भ का बालक ऐसा बलवान और तेज में अग्नि के समान था कि एक दिन जब उसका पिता बैठा हुआ था तो वह अन्दर से ही बोला कि हे पिता मैंने आपकी कृपा से और आप के नित्यं

प्रति पठन पाठन में लगे हुये होने के कारण पम्पूर्ण शास्त्रों को अभी से ही पढ़ लिया है, परन्तु यद्यपि आप रात और दिन बेद पाठ करते रहते हैं, आप को विधिवत पढ़ना अभीतक नहीं आया ॥

इस बचन को सुन कर कहोड़क बड़ा अप्रसन्न हुआ और उस को शाप दिया कि चूं कि तू उत्पन्न होने से पूर्व ही अपने पिता का इस प्रकार निरादर करता है, तेरे शरीर अष्ट टेढ़ होंगे और कहते हैं कि जिस समय वह बालक उत्पन्न हुआ सच मुच उतने ही टेढ़ थे, इस लिये उसका नाम अष्टावक्र हुआ ॥

जब वह बालक उत्पन्न होने को था तो उसकी माता सुजाता ने कहा कि मेरे खाने के लिये कुछ धन लाना चाहिये क्यों कि इस अवस्था में मुझ को विशेष पदार्थों की आवश्यक्ता है कहोड़क ने कहा बहुत अच्छा और वह यह कह कर राजा जनक की सभा में आया। वहां पर ब्राह्मणों और पण्डितों के परस्पर वाद विवाद बहुधा हुआ करते थे, और वहां एक ब्राह्मण बंदी नाम का था, वह कहोड़क को वाद में जीत गया, और उस को पकड़ कर जल में डिबो दिया ॥

उद्दालक अपने जमात्र का यह हाल सुन कर सुजाता के पास आया और उस को कहा कि यह हाल अष्टा वक्र को न कहना ॥

जब अष्टा वक्र उत्पन्न हुआ तो उसी समय उद्दालक का पुत्र श्वेत केतु भी हुआ, परन्तु अष्टा वक्र अपने पिता के न होने से

उद्दालक को ही अपना पिता समझने लगा, जब बड़ा हुआ तो एक दिन वह उद्दालक की गोद में बैठा हुआ था, श्वेत केतु खेलता हुआ आया और अष्टा वक्र को धकेलने लगा, कि हट यह तो मेरा पिता है क्यों तू इस की गोद में बैठा है ॥

अष्टा वक्र रोता हुआ अपनी मा के पास आया और बड़ा दुःखी होकर पूछने लगा कि मेरा पिता कहा है, तब उसकी माता सुजाता ने दुःखी और भय भीत होकर सब वृत्तांत क सुनाया ॥

जब अष्टा वक्र ने यह वृत्तांत सुना तो अपने मामा श्वेत केतु से रात्रि को कहने लगा कि हम ने सुना है कि राजा जनक ने बड़ा यज्ञ रचाया है, चलो हम तुम दोनों मिलकर उस यज्ञ में चलें, वहा ब्राह्मणों के विवाद को सुनेंगे और वेद के उच्चारण में हमारी तुम्हारी चतुराई का प्रकाश होगा, ऐसा विचार कर दोनों मामा भानजे राजा जनक की राजधानी को चले रास्ते में एक राजा मिला, उस ने कहा कि तुम दोनों मार्ग से हट जाओ ॥

एकसौबाईस का अध्याय

—:o:—

अष्टवक्र का यज्ञ में जाना और द्वारपाल जनक का प्रश्नोतर ॥

अष्टावक्र ने उस राजा का वचन सुन कर उत्तर दिया

कि अन्धे, वहिरे, स्त्री और बोझ लेजाने वाले मनुष्य राजा को मार्ग देते हैं, परन्तु ब्राह्मण को राजा मार्ग देता है, इस पर राजा नम्रता पूर्वक कहने लगा कि महाराज हम आप को मार्ग देते हैं, जिधर से इच्छा हो जाओ हम एक ओर हो जाते हैं, यह कह कर राजा एक ओर का हो गिया और अष्टावक्र जी रास्ते पर चले गये और राजा जनक की यज्ञशाला में पहुंचे ॥

परन्तु यज्ञशाला के द्वार पर दो द्वारपाल दण्ड धारी पहिरा देरहे थे अन्दर जाने की विशेष पुरुषों को आज्ञा थी। जब अष्टावक्र जी नें अन्दर जाना चाहा तो उन्हों ने रोक लिया, अष्टावक्र ने कहा कि हम वेदपाठी हैं और वाद करने यहां आये हैं हम को क्यों रोका जाता है। द्वारपालों ने कहा कि महाराज हम आप को दण्डवत करते हैं, हम केवल आज्ञाकारी हैं, हमें आज्ञा है कि बालक ब्रह्मचारी और वेदपाठी अन्दर न आने पावें केवल वही ब्राह्मण जो वृद्ध हो अन्दर आवें ॥

अष्टावक्र ने कहा कि यदि तुम को वृद्धों की अवश्यक्ता है तो हम भी ऐसे ही हैं, हमारा आचार व्यवहार वृद्धों का सा है जितेन्द्र ब्रह्मचारी हैं, गुरू भक्त हैं, वेद हम को अच्छी तरह आता है, और ज्ञान शास्त्र में भी अच्छी प्रकार प्रवीण हैं ब्राह्मण अग्नि के समान हैं थोड़ी भी हाथको जलाने में वह काम करती है, जो बहुत अग्नि कर सकती है, ब्राह्मण छोटा भी हो तो अपमान के योग्य नहीं ॥

द्वारपाल बोले, कि महात्मन् अभी तुम वेद पाठ को करो

और ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करो और अपने बालकपन की ओर ध्यान दो तुम अपनी स्तुति आप करते हो वास्तव में पण्डित होना बड़ा दुर्लभ है ॥

यह सुन कर अष्टावक्र बोला कि देह ही के बड़ी होने पर किसी की बड़ाई नहीं होती, देखो सेमर इतना भारी वृक्ष होता है इस में फल भी बड़े २ लगते हैं परन्तु निरस होने के कारण उन की वह प्रतिष्ठा नहीं जो अन्य छोटे छोटे फलों के वृक्षों की है ॥

यह सुन कर द्वारपाल बोले कि संसार में बालक वृद्धों से शिक्षा ग्रहण करते हैं अन्त को वह भी वृद्ध हो जाते हैं और दूसरों को शिक्षा देने के समर्थ होते हैं, तुम बालक होकर वृद्धों की सी बातें क्यों करते हो ॥

अष्टावक्र बोले कि ऋषि वचनानुकूल वही वृद्ध है जो वेदों को अङ्गों संहित जानता हो, बालों के सपेद होने से कोई बड़ा नहीं होता इस लिये हम यहां बंदी के देखने को आए हैं हमारी खबर राजा को कर दो जब हम सभा में जाकर पण्डितों से शास्त्रार्थ करेंगे और बंदी को जीत लेंगे तब तुम जानोगे कि हम में से कौन छोटा और कौन बड़ा है राजा जनक भी तब ही छुटाई बड़ाई के विषय में राय लगाएगा ॥

यह आश्चर्यमय वार्तालाप सुन कर द्वारपाल बोला कि अभी तुम्हारी दश वर्ष की आयु है यज्ञ शाला के नियम अनुसार तुम इस में प्रवेश नहीं कर सकते, हां तुम्हारे भीतर

जाने का यह उपाय है कि मैं अंदर चला जाऊं और आप द्वार को सूना देख कर अंदर चले आईये उस समय राजा से मिल लेना ॥

अष्टावक्र ने वैसा ही किया, और राजा के सन्मुख जा कर बोला कि हे राजन् मैंने आप के यज्ञ की शोभा सुनी है कहते हैं कि वंदी नाम एक सुप्रसिद्ध पण्डित आप के यहां है, वह हार जाने वालों को आप के आदमियों से पकड़वा कर जल में डुबवा देता है, मैं अद्वैत ब्रह्म का वर्णन करूंगा, मुझे बताइये कि वह ब्राह्मण कहां है। मैं उस को हरा कर आप के ही आदमियों से इसी प्रकार डुबवाना चाहता हूं ॥

राजा जनक बोले, कि बालक ऐसा मत कहो तू वंदी को नहीं जानता, नाहीं उस की विद्या और गुणों को जानता है, दूसरे के बल को जानने के बिना उस के विषय में कहना सुनना केवल मूर्खता का काम है, बहुत से ब्राह्मण उस वंदी को मिले परन्तु वह उस के सन्मुख ऐसे हार गये, जैसे तारागण सूर्य के आगे, आते हुए तो अपनी शक्ति और प्रवीणता का बड़ा घमण्ड करते थे परन्तु शास्त्रार्थ करने पर हार जाते थे ॥

यह सुन कर अष्टावक्र बोले, कि हे राजन्, उस को कोई उत्तम पण्डित मेरे जैसा नहीं मिला है, इस लिये वह सिंहरूप होकर अभी तक वाद करता है, हमारे सन्मुख आकर देखेगा कि उस की वह दशा होगी जो राह में पहिये टूट जाने पर छकड़े की होती है ॥

यह सुन कर राजा बोला कि तीस कला बारह अंश चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अरा रखने वाला काल चक्र जिस के घूमने से वन अर्थात तीनसैासाठ दिन के वर्ष और अर्थात तीनसौपैंसठ दिन और १५ घड़ी का वर्ष और तीसर चांद्र वर्ष जिस के ३५४ दिन होते हैं, उत्पन्न होता है और जो उस को जानता है वही पंडित है ॥

अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि राजन्, वह चौबीस पर्व छः नाभि बारह प्रधि और तीनसौसाठ अरा रखने वाला काल चक्र तुम्हारी सदा रक्षा करे ॥

इस का तात्पर्य्य यह है कि इन तीनों प्रकारों के वर्षों में नाना प्रकार के धर्म कार्य होते हैं हमारे सब व्रतादिक तो केवल चान्द्र वर्ष के अनुसार होते हैं सोलह संस्कार सौरे में और यज्ञादि कर्म सावन में, यदि ऐसा न किया जाय तो उन का फल पूरा २ नहीं मिलता है, परन्तु इन्हीं कर्मों के करने से मनुष्य की रक्षा होती है, अतः एव अष्टावक्र ने राजा को इन वर्षों में यज्ञादि कर्म सफलता से करने की आशीर्वाद दी॥

तव राजा बोला कि शरीर रथ में घोड़े के समान कौन जुते हुए हैं, जिन का आना अकस्मात श्येन की भांति होता है॥

अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह दोनों तुम्हारे पास न आवें, और ना ही वह तुम्हारे शत्रुओं के घर में भी आवें, वह तो मृत्यु और दुःख हैं, वह इस शरीर में घोड़ों के समान जुते हुवे हैं, और श्येन की भान्ति अकस्मात आगित हैं, उन दोनों का गर्भ में रखने वाला मन है, और

उनको गर्भ में रखने से मन ही उत्पन्न होता है अर्थात् दुःख और मृत्यु का कष्ट मन को ही होता है, और उस कष्ट से वह अन्य प्रकार का हो जाता है ॥

तब राजा ने कहा कि वह कौन है जो आंखें बन्द कर के सोता है, और वह कौन है जो उत्पन्न होने पर चलता नहीं और हृदय किस के नहीं होता, और वेग से कौन बढ़ता है। अष्टावक्र बोला कि मछली आंख बन्द कर के नहीं सोती, अंडा उत्पन्न होने पर चलता नहीं। पत्थर का हृदय नहीं होता, और नदी वेग से बढ़ती है ॥

इस प्रश्नोत्तर का जनक पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और उसने यज्ञशाला के द्वार खोल कर कहा कि आप मनुष्य नहीं, किन्तु देवता हैं, देखो वह वन्दि बैठा है, जाइये उस से वार्तालाप करें ॥

एकसौतेईस का अध्याय

—:०:—

अष्टा वक्र और बन्दि का आपस में शास्त्रार्थ और बन्दि का हारना, और अष्टा वक्र का उस को समुद्र में डुबवा देना ॥

अष्टा वक्र उस सभा में प्रवेश कर के बोला कि हे राजन् मैं इस सभा में वन्दि को नहीं जानता हूं, यदि जानूं तो उसका इस प्रकार ग्रास करूं जैसे महा नदि में बगला मछलियों का

प्रास करता है, यदि वह मेरे सन्मुख आवे तो वह कुच्छ न बोल सकेगा, मैं उस के लिये व्याघ्र और विषधर सर्प हूं, अय वन्दि तू मुझ से बोल नहीं सकता, देख मैं पहाड़ हूं यदि तू मुझ में टक्कर मारेगा तो सिर फोड़ कर मर जायगा, इस प्रकार अष्टा-वक्र ने कई बार ललकार कर आवाज़ दी और वंदि को शास्त्रार्थ करने के लिये पुकारा ॥

अष्टावक्र के बार २ गरजने और क्रोध का वार्तालाप करने से वंदि बोला कि अच्छा मेरी बात का तुम उत्तर दो और तुम्हारी बात का मैं उत्तर देता हूं। अष्टावक्र बोला कि कहो तुम्हारा क्या प्रश्न है ॥

वंदि ने कहा कि हम समझते हैं कि अग्नि एक ही है यद्यपि वह बहुत प्रकार से बढ़ती है, और सूर्य भी एक ही है जो सब जगत को प्रकाश करता है, और शत्रुओं का नाश करने वाला देवराज भी एक ही है, पितरों का राजा यम भी एक ही है, अर्थात एक जीवात्मा ही है परमात्मा नहीं है ॥

अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि नहीं अग्नि और इन्द्र दो सखा हैं, और नारद और पर्वत दो ऋषि हैं, रथ के दो ही चक्र हैं, अश्विनिकुमार दो हैं और ब्रह्मा ने स्त्री और पुरुष दो ही को उत्पन्न किया था ॥

तब वंदि ने कहा कि कर्मानुसार यह प्रजा तीन प्रकार की उत्पन्न होती है, पुण्य से देवता, पुण्य और पाप से मनुष्य और केवल पाप से पशुपाक्षि तीन वेद सिद्धांतों से यक्ता वाजपेय और यज्ञ करने वाले तीन ही कर्म करते हैं (देव यज्ञ पितरयज्ञ

और अग्निचयन लोक भी तीन (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) ही हैं, और ज्योति भी तीन ही हैं॥

अष्टावक्र बोले कि ब्रह्मज्ञानियों का स्थान चौथा मोक्ष आश्रम है, जो तीनों आश्रमों से परे है, इसी ज्ञान रूपी यज्ञ को चारों वर्ण करते हैं ब्रह्म की अवस्था भी चार ही हैं (विराट्सूत्र अन्तर्यामी और तुर्या) वर्ण भी चार प्रकार के हैं, (अकार, इकार, उकार और मकार अर्थात अर्धमात्रा) और वाणी भी चार प्रकार की है (वैखरी, मध्यमा, पश्यंति और परारूप।

इस के पश्चात् बंदि कहने लगा कि अग्नि पांच हैं छंद भी पांच पद का होता है, पौर्णमासादि यज्ञ भी पांच ही हैं, इंद्रियें भी पांच हैं, वेद में पांच चोटि रखने वाली चिति नाम अप्सरा है, लोक में पांच ही नद हैं. (विषयों के स्थान)

अष्टावक्र बोला कि वेद में दक्षिणा में छः कहा है। काल चक्र में छः ऋतु हैं, छः ही इंद्रिया मन समेत हैं, छः कृत्तिका नक्षत्र हैं, साधस्क यज्ञ भी छः ही है, इस के पश्चात् बंदि बोला कि सात पशु हैं. और सात ही ऋषि हैं और सात ही पूजनीयसुख हैं वीणा में भी सात ही तार होते हैं॥

सात पशु यह हैं:—५ कर्मेन्द्रिय, १ मन, १ बुद्धि। यह सात कर्म करने वाले को अपने अपने साथ विषयों के द्वारा इस लोक और परलोक को पहुंचाते हैं वही ७ फिर ऋषि कहलाते हैं वीणा से मनुष्य शरीर समझना चाहिये इस की ५ इन्द्रि, १ मन और १ बुद्धि सात तार हैं इस में

बुजाने वाले के बिना कोई शब्द नहीं होता, अतएव आत्मा ही करता है ॥

अष्टावक्र बोले कि इन्द्रियों के प्रवेश योग्य विषय आठ हैं और अष्ट वाला आनन्द स्वरूप ब्रह्म अद्वैत है वासना के देवता आठ वसु हैं और सर्व यज्ञ में यूप भी अष्ट कोण होता है ॥

यह सुन कर वन्दि बोला कि पितृ यज्ञ में एक २ ऋचा ९ समधि लेती हैं इस प्रकार प्रकृति के गण न्यूनाधिक भागों में मिलाने से ९ होते हैं उन से नौ ही प्रकार की उत्पत्ति कही है नौ २ अक्षरों के मिलाने से वृत्त छन्द बन जाता है और नौ अंकों के रखने से यथेच्छा सन्ख्या बन सकती है माया के पूर्वोक्त नव गुण अनेक रूप धारण करते हैं इस से द्वैत सिद्ध हुआ ॥

अष्टावक्र बोले कि लोक में मनुष्य की दश दशा कही हैं (अर्थात पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पाञ्च उन के देवता) और यह दशों दश विषयों के रूप को प्रकट करने वाले हैं और ब्रह्म को भी दश सैंकड़ा अर्थात सहस्र प्रकार का कहा है स्त्री भी गर्भ का दश महीने धारण करती है माया में भी चेतन रूप आत्मा को सङ्ग है और तत्व के अधिकारी भी दशो दश हैं ॥

तब वन्दि बोला कि पशुओं की ग्यारहों इन्द्रियों के शब्द आदि ग्यारह विषय हैं, ग्यारह यूप, ग्यारह ही प्राणियों के विकार हैं अर्थात हर्ष, विषाद इत्यादि ग्यारहों विकार

केवल मनुष्य ही को नहीं वरन देवताओं को भी हैं ॥

यह सुन कर अष्टावक्र बोले कि वर्ष सदैव बारह मास का होता है जगती छन्द का एक चरण भी बारह अक्षर का होता है, *प्राकृत यज्ञ भी बारह दिन का होता है ज्ञानी लोग बारह आदित्य बताते हैं ॥

यह सुन कर बन्दि बोला कि त्रयोदशी तिथि उत्तम कही है और पृथ्वी के द्वीप भी तेरह ही हैं ॥

परन्तु यह कह कर बंदि चुपका सा हो रहा और सोचता था कि क्या कहे जब कि अष्टावक्र ने अगला भाग आप ही कह दिया ॥

तब तो बड़ा कोलाहल होने लगा बंदि विचारा शिर नीचे करके चुपका सा हो रहा ब्राह्मणों ने अष्टावक्र की बहुत स्तुति की उस समय अष्टावक्र बोले कि बंदि ने अनेक पुरुषों को जीत कर समुद्र में डबोया है अब उसी नियमानुसार इस को भी समुद्र में डबो देना चाहिये ॥

बंदि बोला कि मैं वरुण का पुत्र हूं मेरा पिता बारह साल से यज्ञ कर रहा है, तेरे पिता कहोड़क को भी मैंने वहीं भेजा है और अब वह यज्ञ समाप्ति पर होगा आशा है कि वह सब ब्राह्मण वापिस आते होंगे मैं अष्टावक्र जी का धन्यवाद

---

*अर्थात खैंचने वाला अर्थात इन्द्रियों को उन के विषयों से पृथक करने वाले:—धर्म, सत्य, दम, तप, अमात्सर्य, लज्जा, तितिक्षा, अनुसूया, यज्ञ, दान, धृति और यम ॥

करता हूं कि जिन की कृपा से मैं अपने पिता को मिलूंगा ॥

तब अष्टावक्र ने कहा कि महा शोक है कि कोई हमारे वचन को स्वीकार नहीं करता जिस वाणी ने सहस्रों मनुष्यों को समुद्र में डुबा दिया था उस वाणी को हमने जीत कर सहस्रों मनुष्यों का उद्धार किया है, परंतु फिर हमारी बात नहीं मानी जाती, हम को बालक समझ कर संत लोग हमारी बात का आदर नहीं करते, बड़े शोक की बात है राजा जनक जैसा शास्त्रज्ञ भी अन्धों की भांति मन्द मति हो जाय और अपनी स्तुति सुन कर हाथि की भांति मतवाला हो रहे ॥

यह शब्द सुन कर जनक घबरा उठा, और विचारने लगा कि कहीं क्रोध में आकर अष्टावक्र मुझ को शाप न दे दे, वह जल्दी से आगे बढ़ कर कहने लगा कि महाराज कहिये क्या आज्ञा है, आप मनुष्य नहीं देवता हैं ! मैं आप के दिव्य वचनों को श्रवण कर रहा हूं, आपने वंदि को जीत लिया है, जो आज्ञा दो उस से किया जाय ॥

अष्टावक्र बोले कि मैं वंदि को जीता देखना पसन्द नहीं करते, चाहे यह वरुण का पुत्र है, परन्तु समुद्र में अवश्यमेव डुबोया जाय ॥

वन्दि बोला कि मुझ कुछ डर नहीं, मैं सचमुच्च वरुण का पुत्र हूं । अब आप के पिता कहोड़क जो बहुत काल हुआ नष्ट हो गये थे आवेंगे ॥

इस के पश्चात् वरुण से पूजित हो कर सब ब्राह्मण लोग

बाहिर निकले, कहोड़क भी आया, और अपने पुत्र से प्यार कर के कहने लगा कि हे राजा जनक, संसार में सन्तान की इसी वास्ते आवश्यक्ता कही है, देखो जो बात मुझ से न हो सकी वह मेरे पुत्र ने कर दिखाई है ॥

तब उसने जनक के इस यज्ञ की प्रशंसा की और कहा उस में सामवेद का औकथ्य मन्त्र भी गाया गया है, और देवताओं ने अमृत को पान किया है, और अपने २ भागों को ग्रहण किया है ॥

अब वंदि राजा से आज्ञा पाकर समुद्र को गया, और अष्टावक्र पिता के समेत अपने आश्रम को आये, वहां आकर सामने बहिने वाली नदी को देख कर कहोड़क कहने लगे कि इस में डुबकी मारो, अष्टावक्र ने ऐसा ही किया और तुरन्त उस के सब अंग सीधे होगये, तब से इस नदी का नाम समंगा है ॥

युधिष्ठर ने भी वहां अपने समुदाय समेत स्नान किया और रात्रि को वास भी वहां ही किया ॥

एकसौचौबीसका अध्याय

अनेक तीर्थों में स्नान करने का महातम और यवक्रीत के वर दान पाने का हाल ॥

तब युधिष्ठर ने मधुविला नाम नदी को देखा जिस का दूसरा नाम समङ्गा था वहां कर्दमिला नाम एक स्थान था

जिस में भारत का अभिषेक हुआ था वृत्र का मार कर इन्द्र इसी में स्नान करके पापों से मुक्त हुआ पास ही मैनाक पर्वत भी था जहां विनशान नाम तीर्थ में आदिती ने सन्तानो त्पति की इच्छा से अन्न पाक दिया था फिर खल पहाड़ और महा नदी गङ्गा को देखा यहां ही भगवान सन्तकुमार ने सिद्धि पाई थी पुनः भृगुतु पर्वत पर उष्णा गङ्गा के स्नान किये फिर स्थल शिरा मुनि का रमणीक आश्रम देखा तत पश्चात् रैभ्य ऋषि के श्री मान आश्रम में जहां भारद्वाज का पुत्र यवक्रीत मारा गया था पहुंचे ॥

कहते हैं कि भरद्वाज और रैभ्य ऋषि दोनो परम मित्र थे और इकट्ठे इसी आश्रम में रहा करते थे, रैभ्य के दो पुत्र अर्वावसु और परावसु थे और भरद्वाज का एक ही यवक्रीत था, रैभ्य और उस के पुत्र विद्वान थे परन्तु भरद्वाज केवल तपस्वि था लोगों को रैभ्य का आदर सत्कार करते हुये देख कर यवक्रीत को बहुत ईर्षा हुई इस से बड़ी घोर तपस्या आरम्भ की और चारों ओर अग्नि जला कर बीच में बैठ गया ॥

इस तपस्या को देख कर इन्द्र बहुत पीड़ित हुआ और यवक्रीत से पूछने लगा कि तुम्हारा क्या प्रयोजन है, उस ने उत्तर दिया कि मैं चाहता हूं कि मुझ को और मेरे पिता को बिना पढ़ने के वेद आजाये इन्द्र ने कहा कि यह हो नहीं सकता, इस व्यर्थ कामना के निमित्त तुम्हारा ऐसी उग्र तपस्या करना सर्वथा दोष युक्त है, तुम इस को छोड़ दो ॥

इन्द्र यह कहकर चला गया परन्तु यवक्रीत ने अपनी तपस्या को और भी उग्र कर दिया, तब तो इन्द्र को इस के तप से बड़ा क्लेश पहुंचा उस ने यवक्रीत को रोका परंतु वह न माना और कहने लगा या तो मेरी मनोकामना पूरी करो, नहीं तो मैं अपने शरीर को काट २ कर होम कर दूंगा ॥

जब इन्द्र ने उस का निश्चय इस प्रकार का देखा, तो एक वृद्ध तपस्वी का रूप धारण किया और उस स्थान पर जहां यवक्रीत स्नान किया करता था बैठ गया और रेत की मुट्ठियें नदी में डालने लगा, जब यवक्रीत ने पूछा कि ब्राह्मण यह क्या करते हो, तो उस ने कहा कि मैं चाहता हूं गांग पर पुल बन जाय तो उस पर से लोग चला करें यव क्रीत बोले कि ऐसा होना सर्वथा असम्भव है, उस ने कहा कि यदि यह असम्भव है, तो बिना गुरु के पास जाने के वेदों का आना भी असम्भव है ॥

यवक्रीत समझ गिया और पूछने लगा कि क्या आप इन्द्र हैं, यदि मेरी तपस्या का अभिप्राय ठीक नहीं, तो मुझे और कोई वरदान दीजिये जिसस मैं प्रतिष्ठा पाऊं ॥

इन्द्र ने कहा कि जिस प्रकार तू और तेरा पिता चाहेंगे वही पूरी होगी। यवक्रीत घर को आया और अपनी तपस्या का हाल भरद्वाज जी को सुना दिया, भरद्वाज जिसने बहुत सा समय देखा हुआ था बोला कि हे पुत्र तुम्हारे इस वर पाने में कल्याण नहीं देखता हूं, वरको पाकर मनुष्य प्रायः गर्वित हो जाते हैं और अनुचित कर्म कर के शीघ्र नष्ट हो जाते, हैं देखना

कहीं वालधि के पुत्रों का सा हाल न हो जाये ॥

यवक्रीत ने पूछा कि महाराज वह कैसे ? भरद्वाज बोले कि पूर्व काल में वालधि नाम एक ऋषि थे, उसने पुत्र के शोक में तपस्या की और वर मागा कि मेरा पुत्र अमर हो जाय इन्द्र बोला कि ऐसा नहीं हो सकता मनुष्य कभी अमर नहीं होते, हा तेरे पुत्र की निमित्त आयु हो सकती है, उसने कहा कि बहुत अच्छा मेरे पुत्र की इस पर्वत के तुल्य आयु हो जाय देवताओं ने कहा कि ऐसा ही हो ॥

इस के पश्चात् उस वालधी का एक बड़ा क्रोधी पुत्र हुआ जो उस वरदान को सुन कर, सब ऋषियों और तपस्वियों का अपमान करने लगा। एक समय धनुपाक्ष ऋषि से उसकी टक्कर हो गई। और धनुपाक्ष जो बड़ा तपस्वी था उस से तिरस्कार पाकर उस को शाप देने लगा कि तू भस्म हो जा, परन्तु जब उस को पता लगा कि यह पर्वत के भस्म होने पर ही भस्म हो सकता है तो उसने उस पर्वत को भैंसो से टकर मरवा उड़ा दिया और उससे वह वालधि का पुत्र आकस्मात् मर गिया ॥

यह कह कर भरद्वाज ने अपने पुत्र से बड़ी चिन्ता प्रगट की और कहा कि बड़ी सावधानी से रहियो, रैभ्य और उसके दोनों लड़के बड़े प्रतापी और पराक्रमी हैं, कहीं उन से ही लड़ाई झगड़ा न हो जाय, यह सुन कर यवक्रीत बोला कि आप कोई चिंता न करें, परंतु आप निर्भयता से दूसरे ऋषियों का अपमान करने लगा ॥

एकसौपच्चीस का अध्याय

—:o:—

यव क्रीतका दुष्टचरण और रैभ्य का उस को नाश कर देना ॥

एक वार घूमते २ यवक्रीत वैशाख के महीने में रैभ्य ऋषि के आश्रम में पहुंचा और वहां उस के पुत्र वधू को फिरते हुए देख कर कामासक्त हो गया, तब उस ने निर्लज्ज होकर उस को बुलाया और शोक रूपी समुद्र में डुबा कर चला गया, स्त्री शाप के भय से कुछ न बोली, परतु सब हाल रैभ्य ऋषि से निवेदिन कर दिया ॥

रैभ्य को वड़ा क्रोध आया और उस ने तुरत एक बाल काट कर अग्नि में डाला और तुरंत ही एक सुंदर स्त्री पैदा हो गई फिर उस ने एक और वाल काट कर वैसा ही किया और तुरन्त एक महा भयङ्कर विकाल मूर्ति राक्षस खड़ा हो गया रैभ्य ने उन को आज्ञा दी कि तुम जाकर यवक्रीत को मारो उन्हों ने कहा कि ऐसा ही होगा यह कह कर वह दोनों चल दिये ॥

स्त्री ने आकर यवक्रीत पर बड़ा प्रभाव डाला और उस को काम वश करके उस का कमण्डल छीन लिया राक्षस यवक्रीत का जूठा मुख देख कर उस को मारने लगा यवक्रीत भागा परन्तु नदी को सूखा पाया राक्षस भी त्रिशूल लेकर

पीछे भागने लगा यवक्रीत कई स्थान पर गया और पानी को न पा सका अन्त को अपने पिता के आश्रम की ओर भागा और अग्नि होत्र शाला में प्रवेश करने का यत्न किया परन्तु द्वारपाल ने द्वार पर ही रोक दिया इतने में त्रिशूल धारी राक्षस भी आन पहुंचा और उस ने त्रिशूल मार कर यवक्रीत को वहीं द्वार पर यम मंदिर में पहुंचा दिया ॥

तत्पश्चात् वह कृत्य स्त्री और राक्षस रैभ्य के पास आए और यवक्रीत का सारा हाल उसे सुनाया ऋषि प्रसन्न हुए और उन की इच्छा से उस स्त्री का उस राक्षस के साथ व्याह हो गया और वह प्रसन्नता पूर्वक वास करने लगे ॥

एकसौछब्बीस का अध्याय

—:-०-:—

भरद्वाज का विलाप, रैभ्य का शाप देना, और अपने प्राण छोड़ देना ॥

इस के पश्चात् जब भरद्वाज अपने आश्रम को लौट कर आए तो यथा पूर्व अग्नि को प्रज्वलित होते हुए न देखा तब उस वृद्ध अन्धे शूद्र से पूछा कि कहो हमारे आश्रम में कुशल ता है उस ने कहा कि महाराज आप का लड़का रैभ्य प्रेपित एक राक्षस ने मार डाला है वह जूठे मूंह था और मैं ने उस को अन्दर आने से रोक दिया तिस पर राक्षस

तुरन्त ही आ पहुंचा और विचारे यवक्रीत को त्रिशूल से मार डाला ॥

भरद्वाज यह अवस्था सुन कर परम दुःखी हुआ और पुत्र के मृतक शरीर के पास बैठ कर विलाप करने लगा उस ने कहा कि हे पुत्र तुम ने ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त तपस्या की थी परन्तु वर दान लेकर तुम्हारी कुटिलता बढ़ गई मैंने तुम को पक्की की थी कि रैभ्य के आश्रम में न जाना परन्तु तुम ने प्रमाद किया और मेरी आज्ञा को न मानने का फल पाया ॥

हे रैभ्य तुम ने बहुत दुष्टता की है तुम जानते थे कि मेरा एक ही पुत्र बुढ़ापे का है तुम को ऐसा कठोर दण्ड उसे देना उचित न था अच्छा तुम ने मुझ तपस्वी को क्लेश दिया है तुम्हें यही दुःख हो अब मैं अपने प्राणों को छोड़ता हुं हे रैभ्य तुम भी इसी दुःख में मरोगे ॥

यह कह कर भरद्वाज ने अपने पुत्र का अन्त्येष्ठि संस्कार किया और तत्पश्चात् आप भी जलती हुई अग्नि में प्रवेश करके स्वर्गवास हो गए ॥

एकसौसत्ताईस का अध्याय

—:०:—

राजा बृहद्युम्न का यज्ञ के निमित्त रैभ्य के

दोनों पुत्रों को बुलाना, रैभ्य का नाश जाना छोटे पुत्र का तपोबन से वरदान पाना, भरद्वाज रैभ्य और यवक्रीत का जी उठना ॥

उन्हीं दिनों राजा बृहद्युम्न ने बड़ा यज्ञ रचाया और वह रैभ्य का याज्य होने के कारण उसने उस के दोनों पुत्रों को बुलाया अपने पिता से आज्ञा पाकर वह दोनों गए और आश्रम में केवल रैभ्य और परावसु बड़े लड़के की स्त्री रह गए सन्ध्या के समय परावसु अपनी स्त्री को देखने के लिये वन को लौट कर आया, रैभ्य किसी कार्य वश होकर मृगचर्म पहिन बाहर फिर रहा था, परावसु ने उस को वन जंतु समझ कर मारडाला, जब ऐसा कर चुका तो उस को अपनी बात का पता लगा, परंतु अब क्या हो सकता था; वह यज्ञ की ओर लौटा और अपने भाई अर्वावसु से कहने लगा कि मैं यज्ञ कराता हूं क्योंकि तुम अकेले इस के कराने के समर्थ न होंगे तुम जाओ और ब्रह्महत्या दूर करने का उपाय करो ॥

अर्वावसु ने कहा बहुत अच्छा, उस ने घर आकर ब्रह्म हत्या दूर करने के व्रत को समाप्त किया, और फिर यज्ञ में आया, परंतु परावसु ने राजा को कहा कि यह ब्रह्महत्या का भागी है, इस को यज्ञ में आने से रोकना चाहिये, राजा ने यूं ही यह हाल सुना अपने आदमियों को आज्ञा दी कि अर्वावसु यज्ञ में न आना पावे ॥

जब अर्वावसु अन्दर आने लगा तो राजा के आदमियों

ने उस को ब्रह्महत्यारा कह कर वहां ही रोका, उस ने वहुतेरा कहा कि मैंने कोई ब्रह्महत्या नहीं की है परंतु किसी ने उस की वात न सुनी, और धक्का देकर वाहिर निकाल दिया ॥

तव अर्वावसु वन में जाकर सूर्य की तपस्या करने लगा जब उस को प्रसन्न कर चुका तो सूर्य भगवान मूर्ति मान होकर सन्मुख आये और उस को वरदान मांगने को कहा, तव अर्वावसु ने कहा कि मेरा पिता जी उठे उस को अपने मरने का स्मरण न रहे और भाई का पाप दूर होजाय भरद्वाज और यवक्रीत भी जी उठें ॥

देवताओं ने कहा कि ऐसा ही हो, उसी समय वह तीनों जी उठे उस समय अग्नि आदि देवताओं से यवक्रीत ने पूछा कि हे महाराज मैंने इतनी तपस्या की और वेद पढ़े मुझे रैभ्य किस प्रभाव से मार सका था अग्नि ने उत्तर दिया कि हे यवक्रीत तुम ने गुरु के पास जाने के विना सुख पूर्व वेद पढ़े थे परंतु रैभ्य ने वहुत परिश्रम करके और नित्य २ गुरु के पास जा इन वेदों का अभ्यास किया था, तुम्हारी उस के साथ तुलना होना असंभव है ॥

यह उत्तर देकर देवता लोग चले गये युधिष्ठर ने उस पवित्र आश्रम का दर्शन किया और स्नान किया ॥

एकसौ अठाईस अध्याय

—:o:—

लोमश ऋषि का अनेक तीर्थों के वर्णन करना और युधिष्ठर का भीमसेन को द्रौपदी की रक्षा करने को नियत करना ॥

तब युधिष्ठर ने लोमश जी और भाईयों समेत उशीर बीज मैनाक और श्वेत गिरि को उल्लंघन किया, और काल नाम पर्वत से पार होकर सात मकार की गंगा को देखा वह स्थान जो गुण स रहित था और वहां अग्नि सदैव मज्वलित रहती थी, वहां मणि भद्र का स्थान मंदिर पर्व पर चले गये, इस पर बहुत से यातुधान रहते थे, और रास्ता बहुत कठिन और दुर्गम था ॥

इस के पश्चात साठ योजन ऊंचे कैलाश पर्वत पर चले गये और कुबेर पुरि में यक्ष, राक्षस पन्नग और नागों को देखा और बड़ी सावधानता से चले, भीमसेन और लोमश रक्षा करने को प्रस्तुत थे, तब लोमश ने गङ्गा से प्रार्थना की कि युधिष्ठर जो अजमीर वंशी क्षत्रिय है इस की रक्षा करो ॥

द्रौपदी अर्जुन के वियोग में बड़ी उदास थी और दुर्गम पर्वों पर भयङ्कर चोटियों और कंदिराओं को देख कर भयभीत हो रही थी, युधिष्ठर ने भीमसेन को कहा कि तुम इस की सावधानी से रक्षा करो, फिर नकुल और सहदेव को भी उत्साह दिया और सावधानी से आगे चलने को कहा ॥

एकसौ उनतीस का अध्याय

—:o:—

पर्वत यात्रा के विषय में युधिष्ठर और भाईयों की परस्पर मन्त्रना, और गंदमादन की यात्रा ॥

तब युधिष्ठर को अनेक प्रकार की चिन्ता हुई और वह सब भाईयों को कहने लगा कि आगे को रास्ता कठिन प्रतीत होता है, आप सब सावधानी से चलें मैं विचारता हूं कि द्रौपदी का यहां चलना कठिन हैं अच्छा हो कि मैं नकुल और लोमश जी तो आगे को चलें और तुम सब लोग पीछे लौट जाओ और हरिद्वार में जाकर हमारे आने तक रहो, हम आप को वहीं आकर मिलेंगे, यहां तो न खाने को फल फूल मिलते हैं और रास्ता भी वड़ा कठिन है पद २ पर गिरने का डर है और रथ आदिक से चलने का मार्ग ही नहीं, मेरा विश्वास है कि द्रौपदी आदि का हमारे साथ चलना परम दुष्कर है। उचित है कि यह सब लोग पीछे चले जायं और हरिद्वार में हमारे लौट कर आने तक रहें ॥

भीम सेन ने उत्तर दिया कि महाराज द्रौपदी की कोई चिन्ता न कर, वह तो अर्जुन को देखने के लिये साथ आई है, और उसके विना देखे लौट कर नहीं जावे गी, यदि दुर्गम और कठिन स्थान आवें गे तो मैं उस को और सहदेव को उठा कर पार कर दूंगा, इस में कोई चिन्ता करने की वात नहीं है ॥

युधिष्ठर ने भीम सेन की बहुत सराहना की और कहा कि

तुम्हारे उत्तर से मैं प्रसन्न हो गया हूं, तुम्हारी सहन शीलता बड़ा फल लायगी और तुम्हारा यश और कीर्ति संसार में फैलाएगी ॥

यह सुन कर द्रौपदी बोली कि मेरी ओर से कोई चिन्ता न करे, मैं सुख पूर्वक चलूंगी, तब लोमश ने कहा कि इस गंध मादन पर्वत पर जाने से हम अर्जुन को देख सकेंगे ॥

इस प्रकार की बातें करते हुये वे सब के सब राजा सुबाहु के राज्य में पहुंचे, जब राजा को उन के आने का समाचार मिला तो वह अपने राज की सीमा पर उनको लेने को आया और अपनी राजधानी में ले गया, पांडवों ने सुख पूर्वक वहां विश्राम किया और रात्रि भर वहीं रह कर सूर्योदय पर नौकरों चाकरों को वहीं छोड़ कर और राजा सुबाहु को सौंप चारों भाई द्रौपदी और लोमश आगे को अर्जुन को देखने के लिये चल दिये और हिमालय पर्वत की राह ली ॥

रास्ते में युधिष्ठिर ने भीम और सहदेव को अपनी आपत्ति के सम्बन्ध में बहुत उपदेश किया और अर्जुन के गुणों की श्लाघा करते हुये कहा कि इस रास्ते पर जितेन्द्रिय हो कर चलना चाहिये, जो मनुष्य पवित्र और शुद्ध अन्तःकरण रखते हैं, वह ही सुख पाते हैं, दूसरों को मक्खियें, सिंह, व्याघ्र, दंश, मच्छर बहुत दुःख देते हैं, इस लिये यदि हम अर्जुन के देखने की इच्छा रखते हैं तो हम को नियत्मा हो कर चलना चाहिये ॥

एकसौतीस का अध्याय

—:o:—

गंधमादन के मार्गीयतीर्थों का वर्णन नारकासुर दैत्य का मारा जाना, वाराह अवतार और पृथ्वी के उठाये जाने की कथा ॥

नाना प्रकार के तीर्थों को देखने की इच्छा से युधिष्ठिर ने यहा आचमन किया, और मन्दर पर्वत की राह देखी। लोमश ने कहा कि यहा दिव्य ऋषि निवास करते हैं। इसमे यहा पवित्रता से चलना चाहिये। देखो यह शिवजला और पुण्यरूपा महा नदी है बालखिल्य और गंधर्व इसकी पूजा कर के मनोकामना सिद्ध करते हैं इन्द्र भी मरुतों के साथ नित्यकर्म करते हैं और साध्य गण और अश्विनी कुमार उनकी सेवा करते हैं। शिव जी ने इसको मस्तक पर धारण किया था ॥

यह सुन कर युधिष्ठिर ने दण्डवत प्रणाम किया और ऋषि लोगों के समेत आगे को चल दिये। आगे जाकर उन को एक अत्यन्त प्रकाशमान पर्वत दिखाई दिया, युधिष्ठिर समझे कि हमारा गमन स्थान यही है। परन्तु लोमश ने कहा कि हे युधिष्ठिर यह तो नरकासुर की हड्डियां हैं पर्वत के ऊपर होने से न केवल वह स्वयं ही प्रकाश युक्त हैं, वरञ्च पर्वत को भी प्रकाशमान कर रही हैं ॥

पहिले समय में इस दैत्य ने बड़ी तपस्या की और अपने तपो बल से इन्द्र के इन्द्रासन को लेने का यत्न किया इन्द्र भय

भीत हो कर विष्णु से प्रार्थना करने लगा और विष्णु भगवान ने इन्द्र की सहायता करने के निमित्त थप्पड़ मार कर नरकासुर को मार डाला, यह हड्डियां उस राक्षस की अभी तक यहां पड़ी हैं, और जल वायु के संचार से धौत होकर प्रकाशमान हो रही हैं ॥

विष्णु भगवान ने एक और उत्तम काम भी किया था वह यह कि पाताल में डूबी हुई इस पृथ्वी को सौ योजन ऊंचा उठाया था ॥

युधिष्ठिर के पूछने पर लोमश बोले कि सतयुग में यम का काम श्री विष्णु भगवान किया करते थे, उस समय कोई पुरुष और जीव जन्तु नहीं मरता था, वरञ्च पानी की तरह बढ़ते जाते थे बढ़ते बढ़ते इतने बढ़े कि पृथ्वी पर बहुत भार हो गया, और पृथ्वी सौ योजन नीचे रसातल तक चली गई और बड़ी दुःखी हुई ॥

तब वह विष्णु भगवान के पास आई और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन् मेरे दुःख को दूर करो विष्णु जी ने उस को शान्ति दान दिया और कहा कि अब तुम जाओ हम तुम्हारा दुःख दूर करेंगे ॥

तत्पश्चात् भगवान ने वाराह रूप धारण करके अपने एक सींग के बल पृथ्वी को उठा कर सौ योजन ऊपर कर दिया, पृथ्वी के ऊपर होने पर महा भयंकर भूंचाल हुआ, और समुद्र और पर्वत डगमगाने लगे, यह देख कर लोगों ने ब्रह्मा जी की शरण ली और इस भूंचाल का कारण पूछा, ब्रह्मा जी ने

वाराह भगवान का वर्णन किया, और लोगों को नन्दन उपवन में जाकर श्री विष्णु जी के दर्शन करने को शिक्षा दी ॥

यह कथा सुन कर सब पाण्डव प्रसन्नता पूर्वक आगे को बढ़े और शीघ्रता से चलने लगे ॥

एकसौइकतीस का अध्याय

—:०—

पाण्डवों का गंधमादन के समीप पहुंचना और भयंकर आंधि और मेंह का आना ॥

इस के पश्चात पाण्डव सब समुदाय को साथ लिये हुये और नाना प्रकार की बात-चीत करते हुय, धनुषबाण पहिरे हुये पहाड़, नदी, सरोवर, को देखते हुये, फलमूल का भोजन करते हुए और अनेक प्रकार के मृगों को अवलोकन करते हुए उस पर्वत पर पहुंचे जहां, ऋषि, सिद्ध, देवता, गंधर्व, और अप्सरा वास करते थे। उसी समय प्रचण्ड वायु चलने लगी और बड़ी-वर्षा हुई। जिससे पृथ्वी और आकाश धूल से ढक गये। पत्थरों की रज उड़ने लगी और एक दूसरे का- मुंह दृष्टि से अगोचर हो गिया ॥

अकस्मात वृक्षों के टूट २ कर गिरने का शब्द सुनाई दिया पाडव विस्मित होकर सोचने लगे कि क्या कारण है पृथ्वी फटती है या पर्वत विदीर्ण होता है आगे चलना कठिन होगया किसीने वल्मक पकड़ा किसी ने ऊंचे नीचे पत्थरों को और इसी प्रकार

चिटप रहे, भीमसेन तो द्रौपदी को साथ ले वृक्ष के नीचे वीरासन लगाकर बैठ गया, युधिष्ठर और धौम्य महा वन में जा छुपे और लोमशादि वृक्षों का अवलम्बन करके ठहर गये ॥

जब वायु मंद हुई तब वर्षा होने लगी और बड़ी २ बूंदें पड़ने लगीं, और बिजली चमकने लगी इस के पश्चात बड़े २ ओले पड़े, और पहाड़ी नदियां बड़े वेग से बहने लगीं। जब वर्षा थम गई और सूर्य निकल आया तो वह सब भी बाहर निकल आये और गंधमादन की ओर चल दिये ॥

एकसौअठ्ठीस का अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का अचेत होकर गिर पड़ना, युधिष्ठर का विलाप, ब्राह्मणों का सान्त्वना, भीमसेन का घटोत्कच को बुलाना ॥

जब उस स्थान से एक कोस भर गये तो शीत और थकावट से चूर होकर द्रौपदी पृथ्वी पर बैठ गई और बैठते ही अचेत हो कर गिर पड़ी, इस से नकुल ने सब भाईयों को बुला कर उस की दशा समझाई जिस को सुन कर युधिष्ठर को बहुत खेद हुआ और वह नाना प्रकार की दुखों की बातें करने लगा उस ने कहा कि शोक है मेरी बुद्धि पर जिस से मैंने जुआ खेल कर इस विचारी महल्लों की रहने वाली को इस घोर आपत्ति में डाला

इस ने हमारे हा आ कर क्या सुख पाया है निश्चय ब्याह करते समय उस का यह अभिप्राय कभी न था मुझ कुबुद्धि ने इस को बड़ा दुख दिया है ॥

जब युधिष्ठर ने ऐसीं बातें कीं तो ब्राह्मणों ने उस को समझाना आरंभ किया और नाना प्रकार की बातें करके धीरज देने लगे, फिर उन्हों ने राक्षसों को शांति करने वाले मंत पढ़े और मृगचर्म बिछा कर द्रौपदी को लिटा दिया जिस से वह शीघ्र ही चैतन्य हो गई ॥

फिर युधिष्ठिर ने कहा कि यह पर्वत बड़े विषम हैं, और हिम के कारण यहा सदा शैत्य रहता है, द्रौपदी को यहा चलना बड़ा कठिन होगा, यह सुन कर भीमसेन बोला कि आप कोई चिंता न करें मैं आप सब को द्रौपदी समेत उठा कर ले चलूंगा ॥

तब भीमसेन ने अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया और वह तुरंत ही चला आया और हाथ बांध कर अपने पिता और पाडवों और ब्राह्मणों को दण्डवत की, दण्डवत पाकर ब्राह्मणों ने अशीर्वाद दी, घटोत्कच बोला कि कहिये पिता जी मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥

एकसौतीस का अध्याय

—:०:—

पांडवों और ब्राह्मणों का राक्षसों के ऊपर सवार

होकर विशाल बदरी आश्रम पर पहुंचना और नर नारायण के आश्रम में विहार करना ॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह घटोत्कच अष्ठ राक्षस हमारा और पुत्र है, अच्छा हो कि यह द्रौपदी को कंध पै बिठाले। और हमारे साथ ले चले। यह सुन कर भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच को बुला कर कहा कि हे हिडम्बा के पुत्र तुम अपनी माता द्रौपदी को अपनी पीठ पर बिठालो। घटोत्कच बोला कि बहुत अच्छा। मेरे साथ और राक्षस भी हैं वह आप सब को ब्राह्मणों समेत उठालेंगे और आकाश मार्ग से ले चलेंगे। भीम ने कहा बहुत अच्छा। तब तो युधिष्ठिर, धौम्य और लोमश द्रौपदी समेत राक्षसों की पीठ पर बैठ गये और आकाश मार्ग से रमणीक और सुन्दर उपवनों को देखते हुए गन्धमादन की ओर पधारे।

राह में उन्हों ने उत्तम कुरुदेश और अनेक पहाड़ी और म्लेच्छों से भरे हुए देश देखे कैलाश पर्वत को देखा। नर नारायण के आश्रम को अवलोकन किया, जिस के पुण्य युक्त और फल सम्पन्न नाना प्रकार के शोभायमान वृक्ष थे और जिस में सुन्दर मृग और पक्षी और वेदाभ्यासी ऋषि रहते थे ॥

ऐसे रमणीक स्थान को देख कर सब पाण्डव धीरे २ राक्षसों के कन्धों पर से उतर पड़े और नर नारायण के परम रमणीक स्थान को देखने लगे। उसको देख कर उनका श्रम दूर हुआ यज्ञ करने के वह स्थान भी वहां बने हुए थे जहां बलि प्रदान होम, मार्जन, और लेपन करने की सामग्री भी

पड़ी रहती है और दिव्य पुष्प, अग्नि और जल से भरे हुए कलश और स्रुवा वहां काल मृग की खाल पहिने हुए महा भाग, फल भक्षी तेजस्वी महा ऋषियों को देख कर, युधिष्ठर भाइयों सहित उन के पास गया। ऋषियों ने प्रसन्नता से सत्कार किया और पवित्र फलमूल और पुष्प दिये फिर और स्थानों में भे होकर सीता मृनर्थी और भागीरथी नाम नदियों को देखा और फिर परम रमणीय अन्य २ स्थानों में होकर आगे को चले॥

एकसौचौतीस का अध्याय

—:०:—

द्रोपदी के पास एक कमल फूल का गिर कर आ पड़ना उसका भीमसेन को वैसे ही फूल लाने के लिये भेजना भीमसेन का वन और पर्वतों की शोभा देखते हुए फूल लेने जाना और कदली खण्ड में पहुंच कर हनुमान से वार्तालाप॥

युधिष्ठर और पाण्डव एक रमणीक वन में जा रहे थे कि दैव वश एक सुंदर महान आकार कमल फूल पूर्व और उत्तर की दिशा से उड़ता हुआ वहां आपड़ा, द्रोपदी ने उस को देख कर उठा लिया और उस की सुगंधि देख कर बड़ी

प्रसन्न हुई ॥

द्रौपदी ने भीमसेन को बुलाया और कहा कि मैं यह कमल युधिष्ठिर को देना चाहती हूं, तुम ऐसा ही कमल मुझ को और ला दो, भीम ने कहा कि इस प्रकार का कमल इस वन में मिलना कठिन है, परन्तु द्रौपदी ने कहा यदि तुम मुझ को प्यार करते हो तो अवश्य ही ऐसा कमल लाओ मैं यह फूल युधिष्ठिर को देने जाती हुं ॥

भीम जो द्रौपदी को किसी प्रकार दुखी करना नहीं चाहता था फूल लेने के लिये चल पड़ा, बहुत से जंगल और पहाड़ों के बीच में होता हुआ और नाना प्रकार के वन पशुओं और मृगों को मारता और डराता हुआ सुंदर पुष्पों की सुगंधियुक्त पवन से प्रसन्नचित सिंह नाद करता हुआ आगे को बढ़ा चला गया रास्ते में उस ने बहुत से पक्षियों और सारसों को एक स्थान से उड़ते हुए देखा, उस ने समझा कि वह सरोवर है और वहां पुष्प अवश्य होंगे, परन्तु जाने पर प्रतीत हुआ कि उस कमल के समान एक भी पुष्प वहां नहीं ॥

वायुपुत्र भीमसेन ने वायू के समान वेगवाला सिंह नाद करके आगे २ बढ़ा, और गंधमादन की एक शिखा पर विचरने लगा इस के उपरांत वीर हनुमान ने उस शब्द को सुन कर और अपने भाई भीमसेन को पहिचान कर स्वर्ग का मार्ग रोक दिया, उस को विचार हुआ कि यदि भीमसेन इसी प्रकार चलता हुआ आगे बढ़ा तो उस के लिये अच्छा न होगा, और शायद उस को शाप मिल जाय, यह विचार

कर एक भयंकर रूप धारण करके हनुमान स्वर्ग मार्ग के आगे एक बड़ी भारी चटान पर लेट गया ॥

जब भीमसेन आया. तो उसने हनुमान को एक बड़ लम्बे चौड़े पत्थर पर लेटा हुआ पाया उस का रूप बड़ा उग्र था भीम उस को पर्वताकार पड़ा हुआ देख कर उस के पास आया और सिंह नाद गर्जा, हनुमान ने अपने लाल नेत्र थोड़े से खोले और अनादर से भीमसेन की ओर देखा. फिर मन्द २ मुसकरा कर कहा कि तुम ने मुझे किस कारण जगाया है। तुम तो ज्ञानी हो तुम को जीवों पर दया करनी चाहिये हम लोग तो धर्म नहीं जानते क्योंकि हमारी उत्पात तर्यग्योनि से है, परंतु मनुष्य तो बुद्धिमान होते हैं, आप के लिये ऐसा करना ठीक नहीं देखो सब वन के जीव आप के नाद से भयभीत होकर अपने २ स्थानों को छोड़ कर इतर वनों को चले गये हैं, आश्चर्य की बात है कि आप जैसा बुद्धिमान इस प्रकार के पाप युक्त कर्मों को करके अपने आत्मा को दोषिक कर मेरा विचार है कि तुम धर्म नहीं जानते, न बुद्धिमानों की तुम ने संगति की है, जिस से तुम बालकों की भांति मृगों को वृथा पीड़ा दे रहे हो ॥

अब मुझ को बताओ कि आप कौन हो ? आप ने कहां जाना है ? और यहा किस लिये आए हो ? यह मार्ग देव लोक को जाने का है और मनुष्य देहधारी वहा नहीं जा सकता और बिना सिद्ध मार्ग के और कोई राह वहां जाने

को नहीं है ॥

हम तुम पर दया करके तुम को रोकते हैं तुम हमारी बात पर विश्वास करो और आगे मत जाओ यहां तक ही आप का आना शुभ दायक है और यहां से ही अमृत के तुल्य फल फूल खाकर लौट जाओ हमारी यह बात मानने से तुम्हारे प्राण वृथा न जायेंगे ॥

एकसौपैंतीस का अध्याय

—:—०—:—

हनुमान और भीमसेन का विवाद, भीमसेन का हनुमान का पराक्रम देख कर भयभीत होना और हनुमान का अपना वृत्तांत वर्णन करना ॥

यह वचन सुन कर भीमसेन बोला कि मैं क्षत्री हुं मेरा नाम भीमसेन है और चन्द्र वंशी कौरव वंश में मेरी उत्पत्ति हुई है मेरी माता का नाम कुन्ति है और मैं वायू पुत्र पाण्डव कहलाता हूं अब आप कहिये कि आप कौन हैं ? और आप ने वानर रूप किस लिये धारण किया हुआ है ॥

हनुमान मुसकरा कर बोला कि मैं वानर हुं मैं तुम को स्वेच्छा जाने के लिये राह नहीं दूंगा भीमसेन ने कहा कि हे वानर ! चाहे मैं मारा जाऊं चाहे कुछ हो तू मुझे राह

दे दें मैं ने अवश्य ही जाना है हनुमान ने कहा कि मैं रोगी हूं मैं उठ नहीं सकता जो तुम को जाना अवश्यक है तो मेरे ऊपर से चले जाओ भीमसेन ने कहा कि निर्गुण परमात्मा सर्व प्राणियों में व्यापक है मैं उस का अपमान नहीं कर सकता यदि मैं ऐसा जानता तो मैं हनुमान की भान्ति इस पर्वत को लांघ कर चला जाता ॥

हनुमान बोले कि वह हनुमान कौन था उस का कुछ वृत्तान्त मुझे सुनाओ भीमसेन ने कहा कि वह मेरा बड़ा भाई है और बड़ा पराक्रमी, तेजस्वी और बुद्धिमान है उस ने सौ योजन समुद्र को एक ही छलांग में पार किया था बल में मैं भी उसी के सदृश हूं मैं तेरा निग्रह कर सकता हूं इस से उठ कर तू मुझे राह दे दे यदि तू ऐसा न करेगा तो मैं तुझ को मार डालूंगा ॥

यह सुन कर हनुमान बोला कि मैं वृद्धअवस्था के कारण हिल जुल नहीं सकता तुम मेरी पूछ को हिला कर एक ओर करके चले जाओ, भीमसेन ने बायें हाथ से उस महानाकार पूछ को हिलाना चाहा परन्तु वह बाल भर भी न हिल सकी फिर उस ने दोनों हाथों से पकड़ कर सारा बल लगाया परन्तु पूछ न हिल सकी ॥

उस समय भीमसेन ने लज्जा से अपना शिर झुका लिया और मूंह उस का पीला पड़ गया और कृताञ्जलि होकर बोला कि हे भगवन् मुझ से कहिये कि आप वानर रूप

में कौन से देवता हैं मेरे कुवचनों को क्षमा कीजिये अपना स्वरूप प्रगट कीजिये ॥

हनुमान जी इस आर्त वचन को सुन कर बोले, कि मैं हनुमान हूं मैं केशरी का पुत्र हूं। मेरी सुग्रीव से मित्रता थी किसी कारण से वाली ने सुग्रीव को निकाल दिया। और वह ऋष्य मूकपर्वत पर हमारे पास आकर रहने लगा ॥

कुछ दिनों के पश्चात् रामचन्द्र हुए, और अपने पिता की आज्ञा से वन में निकल आये, वहां रावण उनकी स्त्री को धोखा दे कर हरले गया ॥

एकसौछत्तीस का अध्याय

सीता हरण वृतान्त, और भीम सेन को आगे जाने से रोका जाना ॥

रामचन्द्र जी सीता को ढूंडते हुये ऋष्यमूक पर पहुंचे। और सुग्रीव से मित्रता की पश्चात् वाली को मार कर उसका राज्याभिषेक किया। तब सुग्रीव ने सैकड़ों और सहस्रों वानरों को सीता के खोजने को भेजा, हम भी दक्षिण दिशा को गये और संपाति नाम गृद्ध से पता पाकर लंका की ओर चल पड़े, रास्ते में समुद्र आया और हम सौ योजन समुद्र कूद कर पार चले गये, हम ने वहिद्वार तक लंका को जला दिया और

सीता का संदेशा लाकर रामचन्द्र को दिया ॥

पश्चात् रामचन्द्र ने समुद्र पर सेतु बांधा और बानरों की सेना समेत लंका में प्रवेश किया और अपने बाहुबल, पुत्र, पौत्र और बंधुओं समेत रावण को मार कर उस के ईश्वर भक्त भाई विभीषण को राज्याभिषेक किया, पश्चात् रामचन्द्र अयोध्या पुरि को आये, और एक सहस्र वर्ष तक राज्य किया मैंने उन से यह बरदान मांगा कि जब तक आप की कथा संसार में प्रचलित रहे मैं भी जीता रहूं, उन्हों ने मुझे यह वरदान दिया और तब से मैं यहां हूं, अप्सरा और गंधर्व मुझ को उन्हीं का यश गाकर सुनाते हैं और मैं यहां से स्वादिष्ट फल मूल खाकर निर्वाह करता हूं ॥

हे भीमसेन यह मार्ग मनुष्यों के जाने के योग्य नहीं है क्योंकि यहां देवता रहते हैं मैंने इस लिये तुझ को रोका था कि कदाचित् कोई देवता देव सेवितपथपर तुझ मनुष्य को चलता देख कर शाप न देदे, और जिस सरोवर पर तू जाना चाहता है वह भी इधर नहीं है ॥

एकसौसैंतीस का अध्याय

—:०:—

हनुमान का भीमसेन से चारों युगों का धर्म वर्णन करना ॥

तब भीमसेन ने हनुमान जी को दण्डवत की और कहा कि मैं आपके दर्श पाकर कृत्य कृत्य हुं आप परम कृपालता से अपना वह स्वरूप मुझ दिखाईये जिस से आपने समुद्र को पार किया था मैं उस स्वरूप को देखना चाहता हुं ॥

हनुमान ने कहा कि यह वह समय नहीं है वह समय और ही था सतयुग, त्रेता और द्वापर के धर्म अलग हैं अब आप उस स्वरूप को देख कर क्या करेंगे तब भीमसेन बोला कि महाराज आप मुझे चारों युगों के धर्म बताईये ॥

हनुमान बोले कि कृत युग में सनातन धर्म प्रचलित था सब पदार्थ सिद्ध मिलते थे कर्म नहीं करना पड़ता था इस से उस युग का नाम कृत युग है उस में धर्म का नाश नहीं होता न प्रजा की क्षय होती है उस में देव, दानव, यक्ष, राक्षस नहीं होते केवल एक ही पुरुषोत्तम की पूजा होती है क्रिय विक्रिय उस में नहीं होता था साम वेदी, यजुर वेदी और ऋग वेदी अलग अलग नहीं होते, केवल एक ही वेद होता है खेती बाड़ी कोई नहीं करता, एक ही वर्ण होता है और खाने पीने के सब पदार्थ स्वच्छ मिल जाते हैं केवल सन्यास धर्म प्रचलित रहता है रोग, इन्द्रियों की शिथलता और नाना प्रकार की व्याधियां देह को पीड़त नहीं करतीं। नहीं लोगों में ईर्षा द्वेष और अन्य अवगुण होते हैं नारायण शुक्लवर्ण में सब योनियों को मिलते हैं, ब्राह्मण

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब बराबर होते हैं और आश्रम आचार ज्ञान और धर्म इन सब के समान होते हैं इस पर प्राप्ति के लिये सब को एक ही यत्न, क्रिया, मन्त्र और विधि होती है लोगों को स्त्री, पुत्र, धन अथवा स्वर्ग आदि का मिलना बिना कामना किये होता है सब वर्णों को परम धर्म आत्मयोग की एकता अर्थात् आत्मज्ञान होता था। धर्म के चारों चरण थे और केवल एक ही गुण था रजो गुण, तमो गुण को कोई नहीं जानता था॥

त्रेता युग में धर्म के केवल तीन चरण रह गए और नारायण का वर्ण लाल हो गया मनुष्य सत्य परायण होकर धर्म में प्रवृत्त हुए अपने अपने संकल्पित फल की प्राप्ति के लिये यज्ञ हवन करने लगे इस युग में तप और दान करने वाले मनुष्य अपने धर्म से कभी नहीं हटते थे और कर्म अनुष्ठान करके धर्मात्मा होते थे॥

द्वापर युग में धर्म के दो ही चरण रह गए नारायण का वर्ण पीला हो गया और एक वेद के चार वेद हो गए कोई एक वेद को, कोई दोनों को, कोई तीनों को और कोई चारों को मानने लगे और कइयों ने एक भी न पढ़ा, शास्त्र भिन्न २ होकर भिन्न २ क्रियाओं का उपदेश होने लगा तब तप और दान बहुत प्रचलित हुए और सब प्रजा राजसी हो गई एक वेद को न पढ़ सकने के कारण बहुत से वेद और उपवेद किये गए सत्य धर्म का नाश हो गया परन्तु कहीं २ रह गया इस कारण बहुत सी व्याधियां फैल गईं और नाना प्रकार की

कामनायें और उपद्रव मच गए उन कामनाओं को पूरा करने के लिये मनुष्य यज्ञ और तीर्थ करने लगे और अधर्म के कारण प्रजा की क्षय होती है ॥

अब कलियुग आने वाला है उस में धर्म का एक चरण रह जाएंगी तमो गुण प्रधान होगा नारायण का वर्ण कृष्ण होगा इस युग में वेदाचार, धर्म, यज्ञ और सब क्रिया नष्ट हो जाएगी और जगत को आधि, व्याधि, आलस्य, क्रोध और क्षुधा आदि अनेक प्रकार के उपद्रव भय और पीड़ा देंगे इस प्रकार युगों के परिवर्तन से धर्म नाश होगा जिस से लोकों के नाश होने से धर्म प्रवर्तक भाव अर्थात ज्ञान आदि नष्ट हो जायेंगे और युग क्षय के किये हुए धर्मों से प्रार्थना विपरीत हो जाएगी अर्थात जिस काम के लिए प्रार्थना करेंगे वह बिलकुल नहीं होगा ॥

यह कह कर हनुमान ने कहा कि हे भीमसेन इस प्रकार का युग आने वाला है, यद्यपि मैं चिरंजीव हुं परंतु फिर भी मुझ को समय के प्रभाव के अनुसार काम करना पड़ता है इस लिये मेरा वह रूप देखने की इच्छा प्रकट करनी सर्वथा निरर्थक है, आप सरीखे ज्ञानी लोग कोई निरर्थक काम नहीं करते । अब तू जा तेरा कल्याण हो ॥

एकसौअठतीस का अध्याय

हनुमान का अपना रूप दिखाना, और चारों वर्णों का धर्म वर्णन करना ॥

भीमसेन ने हनुमान जी का धन्यवाद किया और कहा कि मैं आप का वह रूप अवश्य देखना चाहता हूं, आप कृपा करके मुझे वह रूप दिखाइये, हनुमान ने बहुतेरा समझाया परंतु भीमसेन ने बराबर यही हठ किया, तब हनुमान ने अपना वह पर्वताकार रूप धारण किया जिस को देख कर भीमसेन चकित हो गया, और हाथ जोड़ कर कहने लगा, कि महाराज मैं इस उग्र रूप को देर तक नहीं देख सकता, आप कृपया अपना पूर्व रूप धारण कीजिये ॥

हनुमान ने अपना पहिला रूप धारण किया और भीमसेन कहने लगा कि अब आप जाइये और हम से प्रीति रखिये । यह मार्ग सौ गंधिक वन को गया है रास्ते में कुबेर का उद्यान होगा, वहां जाकर फूल तोड़ने में शीघ्रता न करना और जो काम करना विचार कर करना, क्योंकि धर्मात्माओं का यही धर्म है, नहीं मोह वश मनुष्य धर्म का अधर्म और अधर्म को धर्म भी समझ लेता है, इस लिये पहिले विचार का काम न करना ॥

ब्राह्मण आदि वर्ण आजीवि के लिये खेती, वणिज नौकरी करते हैं और भेड़ बकरी भी चराते हैं, परंतु विज्ञानियों

की विद्या केवल तीन ही प्रकार की है १ ब्राह्मण का वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना, २ क्षत्रिय को दण्ड देना और नीति पर चलना, और ३ वैश्यों का व्योपार करना, यदि ऐसा न हो तो जगत मर्यादा रहित हो जाय और प्रजा नष्ट हो जाय ॥

ब्राह्मणों को केवल एक ही धर्म अर्थात आत्मज्ञान है, और एक ही वर्ण अर्थात शुक्ल वर्ण है, वेद पढ़ाना यज्ञ कराना और दान लेना साधारण मात्र धर्म है ॥

क्षत्रियों का धर्म प्रजा का पालन करना और वैश्य का धन की वृद्धि करना और शूद्रों का द्विजों की सेवा करना है होम करना व्रत करना और भिक्षा मांगना उन शूद्रों के धर्म नहीं हैं जो अपने से ऊंचे वर्ण में रहते हैं ॥

हे भीमसेन तुम क्षत्रि हो, तुम्हें संसार की रक्षा करनी चाहिये और जितेन्द्र होकर रहना चाहिये, जो क्षत्रिय वृद्ध पण्डित और बुद्धिमान मनुष्यों से मन्त्र लेता है वही पृथ्वी का शासन कर सकता है ॥

मन्त्र, पराक्रम, निग्रह, और चतुराई आदि से राजा के सब कार्य सिद्ध होते हैं, साम, दाम, दण्ड और भेद पर अधिक विश्वास रखना चाहिये, सुदूतों का मूल मन्त्र है, और मन्त्र का विचार ब्राह्मणों से करे, और जो मन्त्र गुप्त रखने का हो, उसको, स्त्री, मूढ़, बालक लोभी, नीच और उन्मत्त से वर्णन न करे। राजा सदैव विद्वानों से मन्त्र का विचार करावे, और समर्थ और हितकारी पुरुषों से नीति का प्रबन्ध

रहते, इत्यादि क्षत्रियों का धर्म है. इस लिये हे भीमसेन आप क्षत्रिय हैं, तुम को शील स्वभाव से इन धर्मों का करना उचित है, जिस प्रकार तप करने इन्द्रियों के जीतने से ब्राह्मणों को स्वर्ग मिलता है, वैसे ही दान करने अतिथि सेवन करने से वैश्यों की समृद्धि होती है। और वैसे ही दण्ड देने, पालन करने द्वेष रहित निर्लोभी होने और क्षमावान् क्षत्रियों को सत्य पुरुषों के समान लोक मिलते हैं ॥

एकसौउनतालीस का अध्याय

हनुमान का भीमसेन से मिल कर वरदान देना और उसे राह बतला कर अन्तर्धान होना

तब हनुमान ने अपने उग्र रूप का संहार कर के छोटा रूप धारण किया और दोनों भुजाये उठा कर भीमसेन से गले मिला उस समय प्रेम से उनकी आंखों में आंसू भर आये, और गद्गद् वाणी से कहने लगा कि हे भीमसेन, अब तुम अपने स्थान को जाओ और यदि कोई काम हो तो मेरा स्मरण करना। इस समय देवता और गन्धर्वों की स्त्रियें कुबेर पुरी से यहां आवेंगी, आप का चले जाना ही अच्छा है। मैने आप का स्पर्श करने से रामचन्द्र जी का दर्शन पाया है। तुम मेरे भाई हो, जो इच्छा हो मुझ से वर मांग। यदि चाहे तो दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र को यहां पकड़ लाऊं, वा उनको मारदूं,

वा हस्तिनापुर को शिला से मरदन कर दूं ॥

यह सुन कर भीमसेन अत्यन्त प्रसन्न हो कर बोला, कि हे महाराज ! आप का कहना ही सब कामों का करना है। मैं केवल यही चाहता हूं कि आप की मुझ पर कृपा दृष्टि रहे, हनुमान ने कहा कि बहुत अच्छा हम युद्ध में आप की सहायता करेंगे और आप के सिंह नाद को बढ़ादेंगे, परन्तु हमारे यहां रहने के हाल को किसी से मत कहना, यह कह कर और भीम को राह बता कर हनुमान अन्तरधान हो गये ॥

भीमसेन श्री रामचन्द्र और हनुमान के महात्म्य को याद करता हुआ आगे को चला और गन्धमादन पर्वत की शिखरों पर विचरने लगा वहां उसने अनेक वन उपवन देखे, और अनेक प्रकार के पशु पक्षी भी सुन्दर और डरावने रूप धारण करने वाले दिखाई देने लगे ॥

अन्त को एक हिरनों के वन में पहुंचा और वहां उसने एक नदी देखी जो सुन्दर रूप जल पातियों से सुशोभित थी। उस नदी में सौगंधिक कमलों का वन देख कर भीमसेन कृत्य कृत्य हो गया। और वनवास से दुःखी हुई २ अपनी प्रिया को स्मरण कर के बहुत संतुष्ट हुआ

एकसौ चालीस का अध्याय

—:०:—

भीमसेन का कमलिनी और पुष्करिणी की

शोभा देखना और वहां के रक्षकों का भीमसेन से पूछना कि तुम कौन हो, भीमसेन का कमल तोड़ना, राक्षसों का रोकना भीमसेन का उन को मार कर भगा देना ॥

भीमसेन उस सुंदर कमलिनी की शोभा को देख कर प्रसन्न हुआ, राक्षस उस की रक्षा कर रहे थे और आस पास झरने झर रहे थे, और तट पर नाना प्रकार के छायादार वृक्ष थे ॥

भीमसेनने उस का शीतल जल पान करके बड़ा सुखी हुआ, इस के उपरात उसने पुण्डरिणी को देखा जो चारों ओर से कमलों से ढकी हुई थी ॥

भीमसेनने उस को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, क्रोध वश नाम एक लाख राक्षस जो उस नदी की रक्षा पर नियत थे, उस को देख कर सोचने लगे कि यह मृग चर्म ओढ़े, शस्त्र पहिने कौन पुरुषोत्तम आरहा है, इस की निर्भयता को देख कर हमे आश्चर्य होता है ॥

जब वह पास आया तो पूछने लगे कि तुम शस्त्र पहिन मुनियों का वेष बनाये हुए कौन हो, और तुम्हारा यहां आना किस प्रयोजन से है ॥

भीमसेन बोला कि मैं धर्मराज युधिष्ठर का छोटा भाई भीमसेन हुं, यहां से एक सौगंधित कमल फूल उड़ता हुआ हमारे हां गया उस को देख कर हरी धर्म पत्नी द्रौपदी और

फूल मांग लेगी, मैं उस प्रिया की लालसा पूरी करने के निमित्त यहां आया हूं ॥

राक्षसों ने कहा कि तुम अपने आप को धर्मराज के भाई कहते हो परंतु इस वन में कुबेर जी की आज्ञा हासिल करो, नहीं तो अवश्य मारे जाओगे ॥

भीमसेन ने उत्तर दिया प्रथम तो कुबेर यहां है ही नहीं जो उन से आज्ञा मांगी जाय; और दूसरे हम राजा हैं, राजा लोग प्रार्थना नहीं करते, हम इस राजाओं के सनातन धर्म को तोड़ नहीं सकते इस के अतिरिक्त यह कमलिनी पहाड़ के झरनों से उत्पन्न हुई है कुबेर का इस में क्या लगा है। जैसी यह कुबेर जी की है, वैसी ही हमारी है। इस के लिये कौन किसी से याचना करे ॥

यह कह कर भीम उस कमलिनी में घुस गया और विहार करने लगा, राक्षस क्रोधित होकर इधर उधर दौड़ने लगे परन्तु भीम ने किसी की बात न सुनी राक्षस चिल्लाने लगे और एक दूसरे को पुकारने लगे कि आओ इस मनुष्य को मारें भीमसेन ने गदा हाथ में ली और उन की ओर बढ़ा और राक्षसों ने उन को चारों ओर से घेर लिया परन्तु उन के सारे वार निष्फल गए भीम ने १०० राक्षस अपनी गदा से मार कर गिरा दिए ॥

तब तो राक्षस घायल होकर कैलाश पर्वत की ओर भागे और कुबेर जी के पास जाकर सारा समाचार कहा उस ने

उत्तर दिया कि हम भीमसेन को जानते हैं उन को द्रौपदी के लिये कमल लेने दो यह सुन कर राक्षस लौट आये और क्रोध को छोड़ दिया ॥

एकसौइकतालीस का अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का उल्कापातों को देखना और विचार करना किकहीं भीमसेनसे युध होता हैयुधिष्ठर का सब समाज सहित भीमसेन के पास जाना॥

जिस समय भीमसेन राक्षसों से युद्ध कर रहा था, उस समय उस स्थान में जहां युधिष्ठर ठहरा हुआ था बहुत आंधि चली सूर्य लोप हो गया और बड़ा भयानक उल्कापात हुआ। एक भयानक निर्घात शब्द हुआ, पृथ्वी हिलने लगी। आकाश से धूल की वर्षा हुई। दशा लाल हो गई, पशु और पक्षी गधे के समान रेंकने लगे, और चारों ओर ऐसा अन्धकार हो गया कि मानों महा काल रात्रि छा गई ॥

इन को देख युधिष्ठर ने कहा कि भाई पाण्डवो, शस्त्र पहिर लो, हम से कोई युद्ध करना चाहता है, यह कह कर उस ने चारों ओर देखा, परन्तु भीम को वहां न पाया, द्रौपदी से पूछने लगा कि भीम कहां है, उसने बताया कि वह कमल लेने को गया है तब तो युधिष्ठर समझ गया कि अवश्यमेव भीम पर कुछ आपत्ति आई है ॥

युधिष्ठर ने राक्षसों से कहा कि इन लिटे हुए ब्राह्मणों को उठालो और घटोत्कच अपनी माता द्रौपदी को उठालो, और उस स्थान को चलो जहा पर भीम है, उसको गये हुए देरी हुई है, वह इतनी देर तो कभी न लगाता ॥

घटोत्कचादि ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया और सब पाडवो और द्रौपदी और ब्राह्मणों को लेकर कमलिनी के तट पर आ पहुंचे, और वहा बहुत से राक्षसों को मरा हुआ पाया ॥

भीमसेन को देख कर युधिष्ठर बड़ा प्रसन्न हुआ और गले लगा कर मिला, फिर पूछने लगा कि क्या आपने कोई देवताओं की अवज्ञा तो नहीं की है ऐसा आप को करना उचित न था, देखो, आग जो ऐसी बात मत करना ॥

तब फिर सब पांडवों ने कमालिनी में विहार किया तत्क्षण शिला और पत्थर हाथ में ले रक्षिक आपहुंचे, और युधिष्ठर को देख कर दंडवत प्रणाम करने लगे, युधिष्ठर ने उन सब को शान्त किया और कुबेर जी को प्रणाम भेज दिया, तत्पश्चात् पांडव अर्जुन की प्रतीक्षा करने लगे ॥

एकसौबयालीस का अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का कुबेर धाम को जाने का यत्न करना, आकाश वाणी का होना और युधिष्ठर

का नर नारायण के आश्रम को लौट आना।

कमलिनी पर आनन्द पूर्वक बैठ कर एक दिन युधिष्ठिर भीमसेन से कहने लगा कि, हे वीर हम ने ऋषियों और ब्राह्मणों सहित अनेक ऋषि आश्रम और रमणीक पर्वत वन और सरोवर रखने वाले तीर्थ स्थान देखे हैं परंतु किसी को उपमा इस कुबेर आश्रम से नहीं दी जा सकती, हमें इस में प्रवेश करने का कोई मार्ग नहीं दीख पड़ता, कहो किस प्रकार चलना चाहिये ॥

तत्क्षण आकाश वाणी हुई कि हे युधिष्ठिर तुम आगे मत बढ़ो, आगे जाना कठिन है, तुम लौट कर नर नारायण के आश्रम को जाओ, वहां से वृष पर्वा के आश्रम को जहां सिद्ध लोग रहते हैं, और वहा से आर्ष्टिषेण के आश्रम में होते हुए कुबेर धाम को जाओ, इस वाणी के होते ही फूलों की वर्षा हुई, युधिष्ठिर को यह वाणी सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ परंतु धौम्य ने कहा कि इस को अवश्य मानना चाहिये और उत्तर नहीं देना चाहिये, यह सुन कर युधिष्ठिर ने ऐसा ही किया और लौट कर नर नारायण के आश्रम को चला आया, और वहां आकर आनन्द पूर्वक रहने लगा ॥

एकसौतैतालीस का अध्याय

—:-०-:—

जटासुर दैत्य का युधिष्ठिर, सहदेव और द्रौपदी

को हर कर ले जाना और भीमसेन का उस को मारना ॥

युधिष्ठिर के समुदाय में एक ब्राह्मण था जो वास्तव में जटासुर नामी राक्षस था परन्तु अपनी दुष्टता करने के लिये ब्राह्मण का वेष धारण किये हुए था एक समय भीमसेन कहीं अहेर खेलने के लिये बाहिर गए थे, लोमश आदि ऋषि स्नान करने को बाहिर गए हुए थे और घटोत्कच आदि राक्षस वापस लौट गए थे और आश्रम में केवल युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी ही थे ॥

उस समय उस ब्राह्मण रूपधारी जटासुर ने अपना पूर्व रूप प्रकट किया और तीनों पाण्डवों और द्रौपदी को लेकर और उन के सब अस्त्र शस्त्र भी बांध कर भाग चला ॥

सहदेव ने बड़े पराक्रम से तलवार से अपनी रस्सी काट दी और उस उड़ते हुए की पीठ पर से कूद कर नीचे आ गया और भीमसेन की ओर समाचार देने के लिये भागा ॥

युधिष्ठिर राक्षस को समझाने लगा कि राक्षस धर्म के मूल हैं परन्तु तुम अज्ञानी प्रतीत होते हो जो तुम अपने धर्म को नहीं जानते और हमारे हर ले जाने में तेरे ही धर्म का नाश होगा, मैं देश का पालन करता और रक्षक हूं मेरे हरे जाने पर लोक में आपत्ति आवेगी लोक में आपत्ति आने पर देवताओं को भी शोच होगा क्योंकि हव्य कव्य की आपत्ति से उन

की वृद्धि भी बन्द हो जाएगी इस लिए हे राक्षस तुझे निष्पाप राजा का निरादर और अपमान करना उचित नहीं हम तो अपना पाप नहीं जानते नित्य ब्राह्मणों और ऋषियों को खिला कर जो शेष बच रहता है उस को खाते हैं गुरु ब्राह्मण को प्रणाम करते हैं तेरे मित्र और विश्वास हैं हमारे साथ द्रोह मत करो मित्र द्रोह और विश्वास घात से अधिक कोई पाप नहीं तुम ने हमारा अन्न खाया है हमारे ही साथ तुम को द्रोह करना उचित नहीं इस अपराध का दण्ड बड़ा उग्र होता है यदि तू सब धर्मों से हीन है तो वृथा ही मारा जाएगा ॥

परन्तु राक्षस ने तनक भर भी परवाह न की तब युधिष्ठिर ने अपने शरीर को भारा कर लिया और द्रौपदी को कहने लगा कि घबराओ मत मैं ने इस की गति कम करदी है और भीम-सेन शीघ्र ही आकर इस को मार डालेगा ॥

उस समय सहदेव जो भीमसेन की खोज में गया था आ गया और रूद्ध गति राक्षस के सन्मुख आकर कहने लगा कि आ मेरे साथ लड़ यदि तुझे सन्ध्या तक जीते छोडूं तो मैं क्षत्री नहीं हुं इतने में भीमसेन भी आ पहुंचा और उस के आने पर सब को साहस हुआ ॥

भीमसेन अपने भाईयों और द्रौपदी की यह दशा देख कर चकित सा हो गया, और तत्पश्चात् राक्षस को तज और उच्चस्वर से कहने लगा कि अरे दुष्ट ठहिर जा मैं तुझ को पहिले से ही जानता हुं तैंने मेरे अस्त्रों की परीक्षा की थी। परंतु उस समय तेरा भांडा फोड़ना उचित नहीं समझा था

क्योंकि जब तक तू हमारा अपराध न करता हम तेरे वेष परिवर्तन पर केवल तुझे दंड पात्र नहीं समझते थे, इस लिये अब तूने मृत्यु को स्वयं बुलाया है ॥

यह सुन कर राक्षस उन सब को छोड़ कर लड़ने को प्रस्तुत हो गया और भीमसेन को कहने लगा कि तैंने बहुत से राक्षस मारे हैं । मैं उन सब का बदला तेरे रुधिर से लूंगा ॥

तब उन दोनों का भयानक बाहु युद्ध होने लगा नकुल और सहदेव भी सहायता के लिये दौड़े परंतु भीम ने उन को रोक दिया, तत्पश्चात् दोनों जने वृक्ष उखाड़ २ कर और गर्ज कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, इरद गिरद के सब जंगल वैरान होगये मानो दो पर्वत बादलों से लड़ रहे हैं। बड़ा घोर युद्ध हुआ, भीमसेन ने राक्षस को एक मुका मार कर गरदन पर चोट लगाई और थका हुआ देख कर नीचे लिटा दिया। और पश्चात ऊपर बैठ कर उस को भूमि पर खूब रगड़ा। और अंगों को चूर्ण करके बल प्रवाही से उस के शिर को काट डाला और फिर युधिष्ठर के पास पहुंचा ॥

एकसौ चौतालीसका अध्याय

—:—०—:—

युधिष्ठर का नारायण आश्रम से वृषपर्वाऋषि के आश्रम को जाना और गंधमादन पर्वतकी शोभा

देख कर आर्ष्टिषेण के आश्रम को जाना ॥

राक्षस को मार कर युधिष्ठर नारायण आश्रम को लौटे वहां वह सब भाईयों समेत द्रौपदी को बुला कर कहने लगा कि हम को वन में फिरते हुए चार वर्ष हो गये, अब पांचवां वर्ष जा रहा है, अर्जुन का हम से पांचवें वर्ष आने का नियम था, अब नियमानुसार अर्जुन को आना चाहिये हम उस गाण्डीवधनुर्धर अर्जुन को देखना चाहते हैं, यह कह कर ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की, ब्राह्मणों ने धैर्य देकर कहा कि हे धर्मराज आप के क्लेश का अन्त है। आप शीघ्र क्षत्रिय धर्म से पृथ्वी का पालन करोगे ॥

यह सुन कर युधिष्ठर सब समुदाय के समेत वहां से चल पड़े। राक्षसों की पीठ पर जहां तहां उतरते चढ़ते, सिंह व्याघ्र हांथियों को देखते, अनेक नद नदियों से पार होते हुए, हिमालय की उस पुण्यरूपी शिखा पर पहुंचे, जिस पर नाना प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे, वहां उन्हों ने वृषपर्वा का आश्रम देखा, जिसके चारों ओर पुष्पदार वृक्ष लगे हुए थे, अन्दर जाकर वृषपर्वा राजार्षि को दण्डवत की ऋषि ने भी यथोचित सत्कार किया: युधिष्ठर सात दिन तक वहां रहे, और आठवें दिन ऋषि से आज्ञा लेकर चलने की तयारी की, सब ब्राह्मणों का सत्कार किया और उनको धन वसन देकर कुछ काल के लिये वृषपर्वा को सौंप दिया और यज्ञ पात्र आदि जो कुछ उनके पास था वह भी वहां ही रख दिये ॥

वृषपर्वा न उन को पुत्र के समान शिक्षा दी और पांडव उन से आज्ञा लेकर उत्तर दिशा को चल पड़े कुछ काल तक वृषपर्वा भी उन के साथ गये परन्तु पश्चात् आशीर्वाद देकर और उन को धौम्य और लोमश जी को सौंप कर और ठीक रास्ते पर डाल कर आप चले आये ॥

युधिष्ठर अनेक वृक्षों क नीची ऊंची शिखरों को पार करते हुए चौथे दिन श्वेत पवत पर पहुचे वहां अनेक मणियों और सोने चांदी की शिलाओं को देखा वहां से माल्यवन्त पर्वत पर पहुंचे और वहां जाकर वास किया इस के उपरान्त गन्ध मादन की शोभा देखी उस को देख कर आनन्द से उन के रोंगटे खड़े हो गए नाना प्रकार के फलदार वृक्ष थे और उन पर सुरीले पक्षी मधुर २ बोलियां बोल रहे थे वन्य पशु पालतु जन्तुओं की भांति विचर रहे थे सुन्दर नदियों में स्फटिक वर्ण का जल बह रहा था और नाना प्रकार के सुगंधिवाले पुष्प खिल रहे थे गन्धर्व और किन्नर शिखरों पर बैठ कर नाना प्रकार के नाद कर रहे थे और सामवेद को मधुर स्वर से गा रहे थे पांडवों का मन उस दृश्य से बड़ा आह्लादित हो गया और वह उस वन की सुन्दरता का विचार करते हुए आर्ष्टिषेण के आश्रम में पहुंचे. आर्ष्टिषेण बड़ा धर्म परायण और कृश तप था और योग निष्ठ होने के कारण उस के शरीर में केवल मनी ही रह गई थी ॥

इकसौ पैंतालीस का अध्याय

पांडवों का आर्ष्टिषेण के आश्रम में पहुंचना

और आर्ष्टिषेण का युधिष्ठर को उपदेश ॥

युधिष्ठर ने आगे बढ़ कर और अपना नाम ले कर साष्टांग दण्डवत की, पीछे भी नकुल सहदेव और द्रौपदी ने प्रणाम किये और ऋषि से आशीर्वाद पाकर बैठ गए ॥

आर्ष्टिषेण ने यथा विधि सत्कार किया और पूछने लगे कि हे युधिष्ठर तुम कभी झूठ तो नहीं बोलते, माता पिता की मर्यादा पर चलते हो कि नहीं? पाप कर्म में रुचि तो नहीं करते? गुरु वृद्धों की पूजा करते हो? उपकारी के साथ प्रत्युपकार और अपराधी को दण्ड देते हो कि नहीं?

साधुजन पूजित होकर तुम से प्रसन्न होते हैं कि नहीं? वन में रह कर धर्म कर्म करते हो कि नहीं? धौम्य ऋषि आप से प्रसन्न हैं कि नहीं, दान, धर्म तप, शौच, सरलता, सहन शीलता तुम में है कि नहीं? ऋषियों की मर्यादा को उल्लंघन तो नहीं करते? यदि पुत्र शुभ कर्म करे तो माता पिता को यश प्राप्त होता है, और दुष्ट कर्मों में रुचि रखता हो तो उन को क्लेश होता है, और उस के कुकर्म से वह भी दुख के भागी होते हैं, सब माता पिता इस बात की सोच करते हैं ॥

इस को सुन कर युधिष्ठर बोले कि महाराज जो २ बातें आपने पूछी हैं मैं इन को यथा शक्ति करने का यत्न करता हूं तब ऋषि बोले कि इस पर्वत पर जल वायु भक्षी पांचिम आदि पर्वों की संधि में आया करते हैं, और गन्धर्व स्त्रियों सहित पर्वत के शिखरों पर दीखा करते हैं, दिव्यरूपसम्पन्न

की सुरीली ध्वनि भी बहुधा सुनाई देती है, सो जब कभी ऐसा ही तुम ने बाहर नहीं जाना किन्तु यहां ही बैठ कर सब कुछ देखना, यक्ष और किन्नर लोग मनुष्यों का इस प्रकार स्वतन्त्र फिरना पसंद नहीं करते, और अपनी क्रीड़ा में त्रुटि पाते हैं, यहां से आगे मनुष्य का जाना संभव नहीं, इस लिये चपलता से कहीं आगे न जाना, यहां पर पर्वों की संधि में अप्सराओं सहित कुबेर जी भी रमण करते हैं, उन का दर्शन सूर्योदय की भांति सब मनुष्य करते हैं, इस लिये तुम भी अर्जुन के आने तक यहां रहो और इस पर्वत के इन सब आनन्दों को देखो, थोड़े ही दिनों में तुम को ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी ॥

यह शिक्षा पाकर पाडव उसी प्रकार रहने लगे, वन के फल फूल और मृगों का मांस उन का भोजन था, और अनेक प्रकार के पहाड़ी मधपान करते थे, लोम ऋषि अनेक कथा प्रसंग से उन के दिल बहलाया करते थे ॥

घटोत्कच उन से आज्ञा लेकर पूर्व दिशा को चला गया और इसी दिशा में रहते हुए उन को पांच वर्ष के ऊपर बहुत से महीने व्यतीत होगए, बहुत से महानुभाव मुनि और चारण उन के मित्र बन गये और आकर उन से मिलने जुलने लगे, तत्पश्चात् एक दिन गरुड़ ने अकस्मात एक बड़े सर्प को पकड़ा और उस की मणि निकालने का यत्न किया, उस से पृथ्वी कांपने लगी, और पर्वत हिलने लगे, और वृक्ष बहुत से गिर पड़े, इस अवसर में बहुत से सुगंधित फूल गिर कर पांडवों के पास आ पड़े ॥

द्रौपदी उन फूलों को देख कर भीमसेन से कहने लगी कि देखो अर्जुन ने अपने बाहु बल से कई राक्षसों को मारा और गांडीवधनुष प्राप्त किया, तुम्हारी शूरता उस से कम नहीं है क्यों नहीं राक्षसों को डराकर इधर उधर भगाते ताकि हम सब लोग इन सुगंधित पुष्पों से अलंकृत हों, इन दिव्य पर्वतों की शिखरों को देखें, मैं बहुत दिनों से इस पर्वत की चोटी को देखना चाहती हूं॥

भीमसेन द्रौपदी के इस वचन को सुन कर और उस को प्रसन्न करने के निमित्त शस्त्र पहिन कर उठा और पर्वत की शिखर पर चढ़ने लगा, उस ने सब रास्ते शून्य पाये जब वह चोटी पर गया तो मुनि गंधर्व राक्षस आदि उस को देख कर बड़े प्रसन्न हुए, वहां पर सुंदर क्रीड़ा स्थान बने हुए थे अप्सरायें नाच रही थीं, और पताका वायु हिला रही थीं, भीम धनुष की कोटि हाथ में लिये उस कुबेर भवन को देख कर आगे चला और वहां उस ने शंख बजाया जिस को सुन कर सब जीव मोहित होगये, और गन्धर्व उस को सुन कर रोमांचित होगए और शस्त्र लेकर उस से लड़ने आये गन्धर्वों ने उस पर शक्ति और त्रिशूल चलाये परंतु भीम ने अपने भालों से उन सब को निष्फल कर दिया, वरण उलटा उन को बाणों से छेदने लगा, वीरों को ऐसे तीक्ष्ण बाण लगे, कि प्रत्येक के शरीर से रुधिर की धारा छूटने लगी, और कईयों के शिर कट कर पृथ्वी पर आपड़े, जो शेष बचे वह अपने में भीमसेन से युद्ध करने की सामर्थ न देख कर शस्त्र छोड़

कर भागे, और दुख से रोते और चिल्लाते दक्षिण दिशा को चल दिये ॥

रास्ते में उनको मणि मान राक्षस मिला उसने कहा कि तुम इतने राक्षस केवल एक मनुष्य से मार खाकर भागे हो? कुबेर को जाकर क्या उत्तर दोगे ? देखो मैं जाकर तुम्हारा बदला लेता हूं ॥

मणि मान गदा, त्रिशूल और शक्ति लेकर दौड़ता हुआ आया, और भीमसेन पर प्रहार करने लगा, भीमसेन भी झट चौकन्ना हो गया और यद्यपि बहुत यत्न करना पड़ा तो भी उसने उस राक्षस को मार कर अन्य राक्षसों का भी साहस तोड़ दिया, यह देख कर राक्षस रोते चिल्लाते और भयानक शब्द करते हुए पूर्व दिशा को भागे ॥

एकसौछतालीस का अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर आदि का भीमसेन के पास जाना कुबेर जी का आना और अपने पाप से छूटने का वृत्तान्त कहना ॥

पर्वतों की गुफाओं को अनेक प्रकार के शब्दों से शब्दित देख कर और भीमसेन को वहा न पाकर युधिष्ठर उदास हो गया, तब द्रौपदी को वहीं छोड़ कर पर्वत की शिखा पर गये

वहां चारों ओर राक्षसों को मरा देख कर, भीम को झिड़कने लगे कि तुम ने देवताओं के क्रोध उत्पन्न करने वाली बात की है, किस कारण इतने निरपराध जीव मारे कदाचित देवता लोग इस बात से क्रोध कर के हम को शाप न दें, मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि आगे को ऐसा काम कभी न करना, मुनिवेष धारियों का ऐसा निरर्थक वध करना सर्वथा अनुचित है ॥

इतने में बचे खुचे राक्षस और यक्ष कुबेर जी के पास पहुंचे, और उनको सब वृत्तान्त सुना कर कहा कि, हे महाराज, एक मनुष्य ने आप के भवन में आकर राक्षस मार डाले हैं, और आप के मित्र मणि मान को भी मार डाला है। हम लोग रुधिर के निकलने से सर्वथा घायल होकर और बड़ी कठिनता से अपनी जान बचा कर यहां तक भाग कर आप को संदेशा देने आये हैं ॥

इस बात को सुन कर कुबेर जी को बड़ा क्रोध हुआ और कहने लगे कि भीमसेन ने यह दूसरा अपराध किया है। नौकरों को आज्ञा दी कि रथ जोड़ दो हम आप वहां जाते हैं तत्पश्चात् उत्तम घोड़ों से जो आकाश में उड़ने वाले थे, रथ जोड़ कर और नाना प्रकार के सुन्दर भूषण वस्त्र पहिन कर दिव्य गति से कुबेर जी अपने क्रीड़ा स्थान की ओर प्रस्थित हुए, बहुत से राक्षसों और यक्षों की सेना भी उन के साथ हुई, और वह पवन गति से गंधमादन के शिखर पर आ पहुंचे ॥

पाडवों को वहां बैठा देख कर उन का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ और उन्हों ने यक्षों से परिवेष्टित होकर अपने स्थान पर

पद रखा बहुत से यक्ष और राक्षस पक्षियों की तरह उड़ कर उसी स्थान पर इकट्ठे हो गए ॥

पाडवों जो अपने को अपराधी समझते थे क्षमा कराने के लिये उठ खड़े हुए परन्तु भीमसेन एक ओर खड़ा रहा और कुवेर जी के आने का उस के चित्त पर कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं हुआ वह दूर से ही कुवेर जी की ओर ताकता खड़ा रहा ॥

तब कुवेर ने कहा कि हे युधिष्ठर तुम सब प्राणियों का भला चाहने वाले हो तुम यहा इस पर्वत शिखर पर वास निर्भय करो राक्षसों के मारे जाने पर भीमसेन को कुछ मत कहो क्योंकि उन विचारों का काल आन पहुंचा था और उन्हों ने मरना ही था भीमसेन तो नमित्त मात्र हुआ है यह बात सब देवताओं को पहिले ही से विदित थी किन्तु भीमसेन की कृपा से मेरा भी शाप दूर हो गया है ॥

तब भीमसेन से कहा कि हे भीमसेन इस से तेरा अपराध किञ्चित मात्र भी नहीं इन राक्षसों ने अवश्यमेव मरना था राक्षस लोग जो इस आशा से आए थे कि देखें कुवेर जी इन मनुष्यों से क्या करते हैं चुपके से हो रहे ॥

तब युधिष्ठर ने पूछा कि महाराज आप को शाप कैसे हुआ, कुवेर जी बोले कि एक बार कुशवति में देवताओं की सभा हुई थी वहा हम भी गए थे हमारे साथ तीन पदम राक्षस सेना थी राह में हम को आगस्त्य जी मिले जो ऊपर को हाथ

उठाए हुए सूर्य के सन्मुख खड़े होकर बड़ी उग्र तपस्या कर रहे थे दैवयोग से हमारे मणि माणा मित्र ने थूका और वह थूक आगस्त्य जी पर जा पड़ी तब तौ वह क्रोधित हुए और मणि माणा को शाप दिया कि तू मनुष्य के हाथ से मारा जाएगा और मुझ को कहा कि तेरा मनुष्य से निरादर होगा और तू उस को देख कर इस शाप से छूटेगा और इस तुम्हारी सेना के पुत्र पौत्रों को यह शाप नहीं लगेगा सो हे युधिष्ठिर आज मैं भीमसेन की कृपा से उस महा शाप से छूटा हुं ॥

एकसौसंतालीस का अध्याय

—:o:—

कुवेर का पांडवों को उपदेश देना ॥

तब कुवेर बोले कि इस संसार में कार्य में सफलता, पाच बातों पर ध्यान देने से होती है, प्रथम तो धृति अर्थात् दुःख के कारण अपने मन को डोलने से बचाना, दूसरे चतुराई, तीसरे पराक्रम, चौथे विधान, अर्थात् काम के सब अंगो को यथोचत जान कर वैसे ही करना और पाञ्चवां विधि, जो क्षत्रिय इन बातों का जानता है, वह चिरकाल तक इस संसार में राज्य करता है, और इस लोक में यश और परलोक में सद्गति प्राप्त करता है ॥

देखो इन्द्र ने इसी प्रकार देवताओं का राज्य पाया, जो

मनुष्य देश काल को न जान कर के बलक्रोध वश हो सब काम करता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है, मुझे डर है कि यह भीमसेन जो धर्म को नहीं जानता और महा क्रोधी, घमण्डी और निर्बुद्धी है अपने ऐसे २ कामों से आप को दुःख न दे, इस को शिक्षा दो कि भाई तुम इस प्रकार निर्भय हो कर साहस न किया करो, इस का आर्ष्टिषेण के आश्रम को भेज दो, और तुम भी कृष्ण पक्ष भर वहीं रहो हमारे भृत्य तुम को सब खाने के पदार्थ देंगे और तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥

मैं आप का सर्वथा हितैषी हूं, तुम्हारा भाई अर्जुन कुशल पूर्वक शस्त्रविद्या सीख रहा है, और धर्म के सब लक्षण उस में हैं, मोह वश हो कर वह निन्दक कर्म नहीं करता, देवता और पितर उसका आदर करते हैं, आप के दादा शन्तनु उसको देख कर बड़े प्रसन्न हैं और मुझे तुम्हारी कुशल पूछने को कहा था ॥

यह बातें सुन कर भीमसेन ने (जो अलग ही कुबेर की ओर भौंहें चढ़ा कर तिरछी आंखें किए खड़ा था) झट आकर नमस्कार किया कुबेर ने उस को शरणागत देख कर आशीर्वाद दिया कि तू शत्रुओं का मान भङ्ग करने वाला और मित्रों को आनन्द देने वाला और लक्ष्मी को बढ़ाने वाला हो ॥

तब कुबेर जी ने कहा कि तुम सब लोग यहां ठहरो और यक्षों के दिये हुए भोजन खाओ थोड़े ही दिन में अर्जुन तुम को आन कर मिलेंगे यह कह कर कुबेर अस्ताचल की ओर

चला गया और युधिष्ठर उस रात वहाँ राक्षसों से पूजित होकर सो रहे ॥

एकसौअड़तालीस का अध्याय

—:o:—

धौम्य ऋषि का युधिष्ठर को ब्रह्म लोक दिखाना ॥

प्रातःकाल धौम्य ऋषि और आर्ष्टिषेण सन्ध्या आदि कर्म करके पांडवों के समीप आये, पांडवों ने दोनों को दंडवत किया और सब की यथा योग्य पूजा की ॥

इस के उपरांत धौम्य ऋषि ने युधिष्ठर को दाहिना हाथ पकड़ कर पूर्व की ओर मुख किया और कहा कि यह मंदिर पर्वत है लोग इस को महा इन्द्र और कुबेर का स्थान बोलते हैं, और सूर्य का उदय भी वहां ही बताते हैं, यह दक्षिण दिशा है जहा यमराज रहते हैं और सब प्राणी मर कर जाते हैं, वह यम मंदिर सामने देखो, कैसा अद्भुत दिखाई देता है यह देखो पश्चिम में समुद्र जिस को वरुण लोक भी कहते हैं, वह उत्तर की ओर सुमेरु पर्वत है, इस पर ब्रह्म लोक है जहां ब्रह्मा जी वास करते हैं ॥

इस के परे सूर्य और अग्नि के समान तेजोमय स्थान श्री विष्णु भगवान का है वहां दानव नहीं जा सकते केवल यति योगी लोग ही जाकर लक्ष्मी नारायण का दर्शन करते हैं,

यह स्थान मेरु पर्वत पर पूर्व की ओर हटकर है सूर्य और चन्द्रमा तारा गणों सहित इस की सदा प्रदक्षिणा किया करते हैं, जो देश सूर्य के सन्मुख आ जाता है, वहां दिन और अन्य में रात्रि रहती है ॥

जब सूर्य दक्षिणायन होकर घूमा करता है तो जाड़ा होता है, परंतु जब उत्तरायण हो जाता है तो हम को अधिक उष्णता देने के कारण ग्रीष्मऋतु आजाती है, तब मनुष्यों को पसीना आने लगता है और श्रम आलस्य और ग्लानि होने लगती है ॥

इस प्रकार सूर्य इस मार्ग में घूम कर वर्षा किया करते हैं जिस से प्राणियों और वनस्पतियों की बढ़ती होती है, और सब प्राणियों का काला गोरा रंग दिखाई देता है ॥

एकसौ उनचासका अध्याय

—:—०—:—

पांडवों का हिमालय पर वास करना, और अर्जुन का अस्त्र विद्या सीख कर इन्द्र लोक से यात्रा करना, और धौम्य और पांडवों से मिलना ॥

इस प्रकार नियम व्रत करते हुए पांडव अर्जुन की प्रतीक्षा में उस हिमालय पर्वत पर रहने लगे, कभी किसी शिखर पर

चले जाते कभी किसी पुष्करिणी में विहार करते, और कारण्डव आदि जल पक्षियों का सुशब्द सुनते, फिर उन्हों ने अनेक क्रीड़ा स्थान देखे जो चित्र विचित्र पुष्पों से सुशोभित हो रहे थे, वहां इस प्रकार की ओषधियें थीं कि जिन के प्रकाश से दिन रात्रि में कोई भेद प्रतीत नहीं होता था ॥

पांडवों ने अर्जुन की प्रतीक्षा में अनेक प्रकार के व्रत और नियम किये, उन को एक २ दिन तक एक २ वर्ष के तुल्य प्रतीत होने लगा, जब एक मास इसी दुःखित अवस्था में बीत चुका तो इन्द्र गन्धमादन की शिखर पर आगया, उस ने स्वर्ग में रह कर इन्द्र से सब प्रकार के अस्त्रों का चलाना सीखा ॥

पांडवों ने इन्द्र रथ को आकाश में देखा, और उस के हरित वर्ण घोड़ों को देख कर पहिचान लिया कि इन्द्र रथ यही है और इस में अर्जुन आ रहा है, थोड़े ही काल में इन्द्र के सारथि मातलि को देख कर उन को निश्चय होगया अब अर्जुन आ रहा है, इसके पश्चात शीघ्र ही अर्जुन नीचे उतरा और उतरते ही युधिष्ठर और भीमसेन को प्रणाम किया और धौम्य ऋषि को दण्डवत की, और फिर द्रौपदी से मिला, तब नकुल और सहदेव ने अर्जुन को दण्डवत की और वह उन को आशीर्वाद देकर बैठ गया ॥

तदनन्तर पांडवों ने इन्द्र रथ की परिक्रमा की और मातलि का सत्कार किया और उस से प्रत्येक देवता का कुशल क्षेम पूछा मातलि ने कई बातें कह कर युधिष्ठर को

प्रसन्न किया और आशीर्वाद कह कर लौट गया ॥

उस के चले जाने पर अर्जुन ने इन्द्र के दिये हुए पदार्थों को युधिष्ठर के सुपुर्द किया और जो दिव्य भूषण लाया था वह द्रौपदी ने पहिन लिये तब अर्जुन ने अपने स्वर्ग में रहने का हाल और वहां इन्द्र आदि देवताओं से अस्त्र सीखने का हाल संक्षेप पूर्वक कह सुनाया और कहा कि मेरे शील स्वभाव से सब देवता प्रसन्न हैं यह कह कर अर्जुन उस रात्री भर नकुल और सहदेव के साथ ही सो रहा ॥

एकसौपचास का अध्याय

—:-o-:—

इन्द्र का आना और काम्यक बन को लौटने का उपदेश देकर चले जाना ॥

प्रातःकाल उठते ही सब भाईयों ने युधिष्ठर को पारणाम किया, इसी अवसर में देवताओं के बाजे बजने लगे और रथों की झञ्झनाहट और घण्टों की टन्टनाहट, मृग, सर्प और पक्षियों के बोलने का घोष पृथक् २ सुनाई देने लगे थोड़ी ही देर में इन्द्र का रथ उतरा उस को देख कर युधिष्ठर भाइयों सहित उस के पास गये और वेदोक्त रीति से उसकी पूजा की उस समय अर्जुन ने भी इन्द्र को दण्डवत की और सेवक की भांति सामने खड़ा हो गया युधिष्ठर देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उस के मस्तक को सूंघा ॥

इन्द्र उस प्रसन्न चित्त युधिष्ठिर को बोला कि अब तुम पृथ्वी का राज्य करोगे तुम्हारे भाई अर्जुन ने बड़े यत्न से सब अस्त्र विद्या सीखी है अब तुम काम्यक वन को चले जाओ तुम्हारा कल्याण होगा और तुम पृथ्वी का राज्य पाओगे अर्जुन ने मेरा प्रिय काम किया है और अब वह इतना प्रवीण हो गया है कि तीनों लोकों में उस के तुल्य कोई नहीं यह कह कर इन्द्र ब्राह्मणों और ऋषियों की स्तुति सुनता हुआ विश्वकर्मा के बनाए हुए अपने सुंदर रथ पर बैठ कर चला गया ॥

एकसौइक्यावन का अध्याय

—:-o-:—

अर्जुन का महादेव से किरात रूप में युद्ध होना और उन से पाशु पाति अस्त्र लेना ॥

तब युधिष्ठर ने अर्जुन से अपनी स्वर्ग यात्रा का वृत्तांत पूछा और कहा कि तैंने अस्त्र विद्या देवताओं से कैसे सीखी और किस प्रकार उन को प्रसन्न किया ॥

अर्जुन ने उत्तर दिया कि मैं काम्यक वन से चल कर भृगुतुङ्ग पर पहुंचा और रात्रि भर वहां रहा और आगे चल कर मुझे एक ब्राह्मण मिला जिसने मेरा सब हाल पूछा मैंने सब सत्य २ वर्णन कर दिया वह मेरे सत्य वाक्य से प्रसन्न होकर मुझे कहने लगा कि तुम तप करो तप से प्रसन्न

होकर इन्द्र तुम्हें दर्शन देंगे ॥

उस ब्राह्मण की शिक्षा अनुसार मैंने तपस्या आरम्भ की पहिले मास में केवल फल मूल खाये, दूसरे में केवल जल, और तीसरे में निराहार होगया, चौथे मास मैंने अपने बाहु ऊपर कर लिये, परंतु मेरा बल कम न हुआ, जब पांचवां मास लगा, जो एक बेडौल सूअर पृथ्वी को पाओं से खोदता हुआ मेरे सन्मुख आया, उस के पीछे एक किरात बहुत सी स्त्रियां साथ लेकर अखेटक ब्याज से उसी स्थान पर आ निकला, मैंने धनुष्बाण लेकर उस बेडौल सूअर को मारा, किरात मुझ से लड़ने लगा, कि तुमने अहेर का धर्म छोड़ दिया है, यह सूअर मेरा पूर्व परिगृह था, तुम को इसे बाण मारना उचित न था, यह कह कर वह किरात मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा, और मुझ को बाणों से ढक दिया ॥

यह देख कर मैंने भी अपने बान छोड़े और उन की तीक्ष्ण नोकों से उस का रोम २ बींध डाला, तब किरात ने अपने सहस्रों रूप बनाये परंतु मैंने सब को बाणों से विदीर्ण किया फिर उस ने सब को मिला कर एक रूप कर लिया इस के पश्चात कभी वह शिर को छोटा कर लेता और पेट को बड़ा बना देता, कभी शिर बड़ा और पेट छोटा परंतु मेरे बाणों का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा ॥

फिर मैंने किरात पर वायव्य अस्त्र छोड़े, परंतु वह उस से नहीं मरा, फिर मैंने नाना प्रकार के अस्त्र छोड़े परंतु किरात

मारा नहीं गया, तब मैंने ब्रह्मास्त्र छोड़ा परंतु उस को भी वह निगल गया। तब मैंने अक्षयबाण छोड़े परंतु उन बाणों से भी उस को कुछ न हुआ ॥

जब मेरे पास अधिक अस्त्र न रहे तो मैं मुक्कों पर उतर आया और बहुत सी चपेटें उस किरात को मारीं परंतु जब वह इस से भी न मरा तो मैं अचेत होकर गिर पड़ा यह देख कर किरात मुसकराया और वहीं अन्तर्धान होगया ॥

कुछ काल के पश्चात् वृषभ ध्वज शिवजी पार्वती सहित किरात रूप छोड़ कर मेरे सन्मुख आए और कहने लगे कि मैं तुझ पर प्रसन्न हूं तुम मुझ से वर दान मागो शिवजी ने मेरे सारे अस्त्र दे दिए और अक्षयबाणों समेत तूनीरों को मुझे पहिनने के लिये कहा मैं ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि महाराज मुझे दिव्य अस्त्र विद्या दीजिए मैं सब देवता के अस्त्र पाना चाहता हूं शिवजी ने कहा बहुत अच्छा मैं अपना रौद्र अस्त्र भी तुम को दूंगा और पाशु पति अस्त्र तो वहीं दे दिया ॥

तब शिवजी ने कहा कि देखो यदि इस को मनुष्यों पर चलाओगे तो जगत भस्म हो जाएगा इस लिए मनुष्यों और थोड़ा बल रखने वाले प्राणियों पर इस को मत चलाना यं जब तुम को अत्यन्त ही पीड़ा हो तब इस को वर्तना यह कह कर और अस्त्र देकर शिवजी अन्तर्धान हो गए ॥

एकसौबावन का अध्याय

अर्जुन का स्वर्ग में रहना और निवात कवच दानवों से युद्ध करने के लिये जाना ॥

शिवजी के अंतर्धान होने के पश्चात् मैं प्रसन्नता पूर्वक उस रात्रि को सोया और प्रातःकाल जब मैं सन्ध्यादि नित्य कर्म कर चुका तो वही ब्राह्मण मुझे फिर मिला उस ने मुझे कहा कि जैसा तुम को शिवजी का दर्शन हुआ है ऐसा किसी को नहीं हुआ और न होगा अब तुम को अन्य देवताओं के भी दर्शन होंगे और इन्द्र आप आकर तुम्हारे दर्शन करेगा, और तुम को सब अस्त्र दिये जायेंगे, यह कह कर ब्राह्मण इच्छा के अनुसार चला गया ॥

उस दिन जब तीसरा पहिर हुआ तो बड़ी सुंदर वायु चलने लगी और दिव्य बाजों का शब्द चारों ओर से सुनाई देने लगा गंधर्वों का गाना और अप्सराओं के नाचने का शब्द आकाश मार्ग से आने लगा, इतने में मरुद्गण और जयन्त विमानों में बैठ कर आगए, तत्पश्चात् इन्द्र हरिनाम के घोड़ों वाले सुंदर रथ में बैठ कर सब समाज सहित पूर्व दिशा में आकर स्थित होगए उसी समय राजा कुबेर जी ने उत्तर में, और यमराज ने दक्षिण दिशा में और वरुण ने पश्चिम दिशा में आकर दर्शन दिया

फिर मुझ को बुला कर कहने लगे कि हे अर्जुन, हम लोक पाल हैं हम तुम को अस्त्र देने आये हैं, तुम ने देवताओं का

कार्य सिद्ध करने के लिये शिवजी का दर्शन पाया है ॥

मैने सब को दंडवत की और विधि पूर्वक अस्त्र लिये फिर जब जाने लगे तो इन्द्र ने मुझे कहा कि हे अर्जुन तुम स्वर्ग में हमारे पास चलो तुम हमारे पुत्र हो, तुम स्वर्ग में सदेह जा सकते हो, हम अपना सारथि मताली भेज देंगे, वह तुम को रथ पर चढ़ा कर ले चलेगा तुम्हें त्यार हो रहना चाहिये ॥

तब मैने कहा कि हे भगवन्, मुझ पर प्रसन्न हूजिये, मैं अस्त्र सीखने के लिये आप को गुरु बनाना चाहता हुं इन्द्र बोला कि हे अर्जुन यह हो नहीं सकता, जिस काम के लिये तुम अस्त्र विद्या सीखना चाहते हो वह हम को बताओ हम पूरा कर देंगे, मैंने कहा कि महाराज मैं प्रण करता हुं कि जो शस्त्र धारी न होगा उस पर कभी अस्त्र न चलाऊंगा, इन्द्र ने कहा बहुत अच्छा हमारे स्थान में आकर सब अस्त्र विद्या सीख लेना ॥

यह कह कर इन्द्र जी अन्तर्धान होगये और कुछ काल के पश्चात् मैंने अपने समीप एक दिव्य रथ को खड़ा पाया मातालि ने मुझे पहिचान कर कहा कि देखो इन्द्र ने तुम्हारे लिये रथ भेजा है तुम इस में शीघ्र बैठ जाओ ॥

मैंने कहा कि बहुत अच्छा, मैं अपने अस्त्र शस्त्र लेकर उस रथ में बैठ गया और मातालि ने घोड़ों को हांक दिया, थोड़ी दूर जाकर मातालि चकित होकर मेरी ओर देखने लगा, मैंने

पूछा कि क्या बात है, उस ने कहा मैं तुम्हारे बैठन को देख कर चकित हूं, जब यह रथ चलता है तो इन्द्र जो सदा इस पर चढ़ता है, उस का आसन भी डगमगाने लगता है। परन्तु तुम तनक नहीं डालत, रथ का वेग वायु के समान है और मेरा विचार है कि तुम इन्द्र से भी बढ़ गये हो ॥

रस्ते में वह मातालि मुझ को सब दिव्य स्थान दिखाता गया, देवताओं और देवर्षियों के रमण स्थान और गंधर्व अप्सराओं के नन्दन बन और उपवन देखे, इतने में अमरावती जा पहुंच, वहा की शाभा बड़ी विचित्र थी सूर्य बहुत उष्ण न था और पवन सुखदाई थी, जो पुष्प चाहो वृक्षों से तोड़ लो बुढ़ापा शाक और दुर्बलता का नाम नहीं था, सब प्राणी सदा तुष्ट और क्रोधादि दुर्व्यसनों से रहित थे, वहां अनेक पुष्करणियों में सोगंधित फूल खिले हुए थे, वायु शीतल मंद और सोगंधियुक्त थी ॥

वहां पहुंच कर मैंने सब देवता देखे, मैंने उन को दण्डवत की और उन्हों ने मुझे अशीर्वाद दी, तत्पश्चात् मैं इन्द्र के पास गया और हाथ जोड़ कर उस के सन्मुख खड़ा होगया, इन्द्र ने अशीर्वाद दे कर अपने आधे आसन पर बिठा लिया, इस के पश्चात् मैं देवताओं से और गंधर्वों से अस्त्र विद्या सीखता रहा, फिर चित्र सेन गंधर्व से मेरी मित्रता हागई, उस ने मुझे सारा गंधर्व वेद सिखाया ॥

मैं ने वहां अप्सराओं के नाच भी देखे परन्तु मैं सन में

विरक्त रहा मेरी रुचि केवल शस्त्र विद्या में थी फिर इन्द्र ने मुझ को विश्वास का पात्र समझ कर मेरे माथे पर हाथ फेरा और कहा कि अब तुझ को देवता भी नहीं जीत सकते हैं अशुद्ध अन्तःकरण मनुष्यों की तेरे साथ युद्ध करने की सामर्थ नहीं है तू १५ अस्त्र सीख चुका है जिनका चलाना, लौटाना, ठंढा करना, प्रायश्चित् (अस्त्र से मरे हुए को जलाना) और प्रतिघात् (दूसरे के किए हुए वार को अपना अस्त्र चला कर रोकना) तुझे आ गया है ॥

अब एक बात बाकी है वह यह है कि तुम को गुरु दक्षिणा देनी चाहिये सो यदि तू प्रतिज्ञा करे तो मैं कहता हूं। मैं ने उत्तर दिया कि महाराज जो कुछ आप कहैं मैं वह करने को त्यार हुं और जल्दी आज्ञा दीजिए इन्द्र ने कहा कि निवात कवच नाम के तीन कोटी दानव हमारे शत्रु हैं वह समुद्र की कुक्षि में दुर्ग स्थानों में रहते हैं हम चाहते हैं कि तुम जाकर उन को मारो ॥

मैं ने कहा बहुत अच्छा महाराज! तब इन्द्र ने मुझे अपने रथ में बिठाया और यह मुकुट पहिनने को दिया और नाना प्रकार के सुंदर भूषण वस्त्र पहिराये इस के उपरान्त मैं रथ मैं बैठ कर चल दिया सब देवता मुझ को इन्द्र समझ कर मेरे पास आए और पूछने लगे कि अब क्या करने लगे हो मैं ने सब वृत्तांत कह सुनाया तब उस ने इन्द्र की भांति मेरी स्तुति की और कहा कि तुम भी इन्द्र की भान्तिं निवात कवच दैत्यों को जीतोगे इन्द्र ने भी इस शंख से अनेक लोकों जीते हैं वह देवदत्त शंख मैं ने विजय प्राप्त

करने के लिये ले लिया और धनुष वासा लेकर दानवों के नगर को चल पड़ा ॥

एकसौतिरपन का अध्याय

—:-०-:—

अर्जुन का निवात कवच दानवों से युद्ध होना ॥

तब मैं रथ में बैठ कर और देवताओं के दिए हुए शस्त्र पहिन कर निवात दानवों के नगर को चल पड़ा और समुद्र में पहुंचा समुद्र की शोभा देख कर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ मुझ को देख कर दानवों ने समझा कि इन्द्र आया है इस लिये सब ने अपने २ हथियार सम्भाल लिये और नकार के द्वार बन्द कर लिये तब मैं ने देवदत्त शंख को धीरे २ बजाया उस का शब्द इतना तुमुल हुआ कि बड़े २ प्राणी डर कर भयभीत हो कर इधर उधर छिप गए ॥

थोड़े ही काल में सहस्रों दानव शस्त्र लेकर बाहिर निकल आये । मातलिने समान भूमि देख कर रथ हांका । तब दानवों ने अनेक बाजे बजाये । जिससे मछलियां डर २ कर इधर उधर भागने लगीं । बहुत सी मेरी ओर आई । और मेरे साथ युद्ध होने लगा । बहुत से दानव मारे गये । तब देव ऋषि, दानव ऋषि और सिद्ध लोग आये, और इन्द्र के समान मेरी भी स्तुति करने लगे ॥

एकसौ चौवनका अध्याय

—:०:—

निवातकवचों का अर्जुन से युद्ध करना और सबों का अर्जुन के हाथ से मारा जाना ॥

तब सब निवातकवच एक साथ मेरे सन्मुख दौड़े और चारों ओर से घेर कर बाणों की वर्षा से मुझे ढांप दिया कई बड़ा भयानक शब्द करते थे और मेरे सन्मुख दौड़ते थे। तब मैंने गांडीव धनुष को चलाना आरम्भ किया। जिस से बहुत से राक्षस मारे गये, और विमुख होकर भागे। मातलि ने इस प्रकार रथ चलाया कि कई राक्षस उस के नीचे आकर दब कर मर गये

तब जो शेष रहे, उन्हों ने परम क्रोधवान हो २ कर मेरे ऊपर त्रिशूल, शक्ति, तोमर फैंके परन्तु मैंने अपने महास्त्रों से उनको काट दिया। तब मैंने गांडी को जिस की नवीन कभी न टूटने वाली ज्या इन्द्र ने बनाई थी हाथ में लिया। उसके तीक्ष्ण बाणों ने कईयों को घायल किया, कई विवश होकर पृथ्वी पर जा पड़े, कईयों के साथी समेत मारे जाने पर उनकी लाश रथ के घोड़े इधर उधर लिये भागे फिरते थे ॥

सारांश यह कि दानवों की बड़ी हानि हुई। मेरे अस्त्र बहुत मार करते थे, और उनके अस्त्रों का मेरे और यन्त्र काट देते थे। तब विचारे क्षीण पराक्रम होकर माया रचने लगे।

उन्हों ने बहुत से पत्थर चारों ओर से फेंके। मैंने अस्त्र बल से पत्थरों को चूरा २ कर दिया, तब उन पत्थरों से अग्नि प्रगट हो गई और उनका चूरा अग्नि के समान गिरने लगा। तब आकाश में चारों ओर से मूसलाधार वर्षा होने लगी और प्रचण्ड वायु चलने लगी। मुझे आश्चर्य सब हो गया, तब मैंने तेजास्त्र को फेंक कर वर्षा के जल को सुखा दिया। तब दानवों ने अग्नि और प्रचण्ड वायु प्रकट की मैंने वरुणास्त्र और शैलास्त्र से दोनो को शान्त कर दिया॥

तब उन्हों ने कई प्रकार की माया रची। कभी तो बाणों की अपूर्व वृष्टि होने लगी। कभी महा अन्धकार चारों ओर छाजाय, इस कारण रथ के घोड़े चलने से रह गये और मातलि फिसल कर गिर पड़ा, उसके हाथ से चाबुक नीचे जा पड़ा तब विचारा भयभीत होकर बोला कि तुम कहां हो यह सुन कर मुझे बड़ा भय और पीड़ा हुई तब उस ने अनेक युद्धों का नाम लेकर कहा कि इन सब महा घोर देवासुर संग्रमों में मैंने इन्द्र का रथ हांका था परंतु ऐसा अचेत किसी युद्ध में नहीं हुआ जैसा कि इस युद्ध में, मैंने उसको धैर्य दिया और कहा कि देखो अभी मैं इनकी माया दूर कर देता हूं, तब मैंने अस्त्र फेंके जिन से सारी माया दूर हो गई मातली भी उजाला पाकर रथ को चारों ओर चलाने लगा। उस समय सब दानव चारों ओर से आ आ कर मेरे ऊपर गिरे। मैंने अवसर पाकर सब को यम मन्दिर में भेज दिया, जो बच रहे थे उन्हों ने ऐसी माया रची कि अकस्मात रथ के सब जुदा हो गये, और

कोई दिखाई न दिया ॥

तब मैंने भी अदृश्य अस्त्र से काम लिया, तब उन्हों ने मायावी पहाड़ मेरे ऊपर गिराये और रथ को पहाड़ों में दबा कर पहियों को चलने से रोक दिया, तब मैंने वज्रास्त्र का प्रयोग किया, जिस से माया टूटी और राक्षसों के सिर कट कर भूमि पर आपड़े, और अनन्त राक्षस मारे गये ॥

इस के पश्चात् मैंने उनके नगर को देखा जो बड़ा रमणीक और सुन्दर था। मैंने मातिला से पूछा कि देवता लोग इस नगर में क्यों नहीं वास करते। तब मातलि ने कहा कि पहिले यहां देवता ही रहते थे, परन्तु निवातकवचों ने उग्र तपस्या कर के ब्रह्माजी से यह वरदान लिया कि देवता हम को मार न सकें। इस वरदान के बल से उन्हों ने देवताओं को यहां से निकाल दिया है ॥

इसी कारण इन्द्र ने तुम को सब अस्त्र शस्त्र सिखाये हैं, क्योंकि निवात देवता कवच देवताओं से सर्वथा अवध्य थे इस के पश्चात् नगर को देख कर मातलि के साथ मैं देवलोकको लौट आया ॥

एकसौपचपन का अध्याय

—:o:—

अर्जुन का हिरण्यपुर नाम दैत्यों के नगर को गिराना और लौट कर इन्द्रपुरी में आना ॥

रास्ते में मैं सूर्य के सदृश प्रकाशमान एक नगर आकाश में स्थिर और समुद्र में नावकी भांति चलायमान देख कर बड़ा आश्चर्य युक्त हुआ. उस की ऊंची अटारियां और रत्न जटित शोभा देख कर मैंने मातलि से पूछा कि यह किस का नगर है, तब मातलि ने कहा कि किसी समय पुलोमा और कालका दो बड़ी महासुरी थीं, उन्हों ने उग्र तपस्या करके ब्रह्मा जी से यह वरदान लिया था कि हमारी संतान को देवता, राक्षस, और सर्पादि न मारसकें और हमारा नगर शोक रोग रहित हो और जहां हम चाहें चल फिर सकें और देवता राक्षसों से दुर्धर्ष रहे, तब से वह दानव इस नगर में निर्भयता से वास करते हैं और देवताओं से अवध्य हैं ॥

तब मैंने मातलि को कहा कि मेरे रथ को इस नगर के समीप ले चलो, मातलि ने ऐसा ही किया, मुझ को देख कर वहां के राक्षस और दानव शस्त्र हाथ में ले कर मुझ से युद्ध करने के लिये बाहर निकल आये, और मेरे ऊपर नाना प्रकार के नालीक, नाराच, भल्ल, शक्ति, दुधारा और त्रिशूल आदि शस्त्र छोड़ने लगे मैंने भी अपने बाणों की वर्षा की जिस से यह मोहित होगए और आपस में ही एक दूसरे को मारने लगे, उस समय मैंने तीक्ष्ण बाणों से इन के शिर काट लिये ॥

फिर वह नगर को दौड़ा कर आकाश को भागे मैं ने अस्त्र फेंक कर नगर को आगे जाने से रोका तब वह नगर नीचे को चला फिर मैं ने चारों ओर से रोक दिया और अस्त्र विद्या के

वल से नगर को टुकड़े २ कर दिया परन्तु दानवों ने माया के वल से मेरे सब यन्त्रों को निष्फल कर दिया तब मैं बहुत घबराया ॥

तब मैं ने भयाविष्ट होकर शिवजी से प्रार्थना की और पाशुपति नाम महास्त्र को फेंका उस को छोड़ते ही सहस्रों सिंह व्याघ्र उत्पन्न होकर उन दानवों को खाने लगे उन्हों ने पृथ्वी को मांस और रुधिर से भर दिया और दानव मर मर कर आकाश से गिरने लगे ॥

तब मातलि बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि जो काम तुम ने किया है देवता इस को करने की सामर्थ नहीं रखते थे, तब दानवों की स्त्रियां रोती पीटती दिखाई देने लगीं और स्तोकावसर में वह नगर आकाश में गंधर्व नगर की भांति अदृश हो गया ॥

तब मैं इन्द्र के पास आया और सब हाल सहस्राक्ष महाराज के सन्मुख निवेदन कर दिया तब इन्द्र ने मेरे गुणों की बहुत श्लाघा की और कहने लगा कि तुम धन्य हो यह काम तुम ने देवताओं को उल्लंघन करके किया है हमने तुम से बहुत उत्तम गुरू दक्षिणा पाई है दृढ़ और ज्ञानी पुरुष को इसी प्रकार रण भूमि में करना उचित है मैं इस बात से प्रसन्न हूं कि तुमको दिव्यास्त्रों का प्रयोग भलि भांति आगया है अब तुम को कोई देवता व राक्षस नहीं जीत सकता तेरा भाई युधिष्ठर तेरे भुज बल से जीती हुई पृथ्वी पर राज्य करेगा ॥

एकसौ छप्पन का अध्याय

—:-०-:—

इन्द्र का अर्जुन से प्रसन्न होकर उस को भेंट देकर लौटा देना ॥

इस प्रकार की बात चीत करके इन्द्र ने मुझ को अपने पास बिठा लिया और अश्विनी कुमारों ने मेरे घावों को शुद्ध किया तब इन्द्र ने कहा कि हे अर्जुन अब तुम अपने शत्रुओं को जीत जाओगे तब मुझे शरीर रक्षा के लिये यह सुहरी कवच और यह देवदत्त नामी शंख दिया और यह किरीट अपने हाथ से मेरे शिर पर बांधा तब बहुत सुंदर दिव्य वस्त्र और आभरण दिये जो मैं साथ लाया हुं और जो मैं ने अब द्रौपदी को दिये हैं ॥

इस प्रकार मैं ने पाच वर्ष तक देवों और गंधर्वों में वास किया और उन के बाल के साथ बहुत दिव्य गुण सीखे जूआ खेलने की बुराईया याद आती थीं तब इन्द्र ने कहा कि अब तुम्हारे जाने का समय आ पहुंचा है तुम्हारे भाई तुम को याद कर रहे हैं ॥

युधिष्ठर ने कहा कि तुम्हारी प्रारब्ध के बल से यह सब बातें हुई और शिवजी से इस प्रकार का युद्ध हुआ, और अन्य देवताओं ने भी प्रसन्नता प्रकट की ! अब मुझे निश्चय है कि मैं सब पृथ्वी पर राज्य चाहूं तो कर सक्ता हूं धृतराष्ट्र तो एक ओर रहे पृथ्वी का कोई भी राजा और महारथी

तुम को जीत नहीं सकेगा ॥

तब युधिष्ठर ने अर्जुन के दिव्यास्त्र देखने चाहे, परंतु रात्रि बहुत हो गई थी, इस लिये उनका देखाना प्रातःकाल पर छोड़ा गिया । इसके पश्चात अर्जुन ने भाईयों सहित उसी स्थान में वास किया ॥

प्रातःकाल जब सब नित्यक्रिया कर चुके तब युधिष्ठर ने फिर अस्त्रों को देखना चाहा, परंतु यूं ही उस ने उन को बाहर निकाला तो उसी समय नारद जी आये और कहने लगे कि इन अस्त्रों को गुप्त रखना चाहिये यदि ऐसा करोगे तो संसार में थलका मच जायगा, और तुम को यह वैसे फल दायी न होंगे, जैसाकि इन को होना चाहिये,इस लिये हे युधिष्ठर इस समय इन अस्त्रों को मत देखो, जब अर्जुन इन के साथ तुम्हारे शत्रुओं को जीतेगा तब तुम ने इन के प्रयोग को देखना ॥

नारद जी की इस सम्मति को सब ने माना और उस रात भी पांडवों ने द्रौपदी सहित वहीं वास किया ॥

एकसौ सतावन का अध्याय

—:o:—

युधिष्टर का दुर्योधन के समीप वन म आने का विचार और ब्राह्मणों सहित वहां से चलना ॥

इस के पश्चात् पांचों भाई द्रौपदी और अन्य ब्राह्मण चार वर्ष तक उसी स्थान में रहे, इधर उधर बनों में क्रीड़ा करने को निकल जाते थे और सायं काल को इकट्ठे होजाते थे कुवेर जी की कृपा से सब पदार्थ और खाने पीने सुंदर और स्वादु भोजन उन को बहुत प्राप्त थे ॥

जब इस प्रकार दश साल होगये, तो सब भाइयों ने युधिष्ठर के पास बैठकर कहा कि हे धर्मराज, अब हमारे बनवास का ग्यारहवां वर्ष आरम्भ होने वालाहै, इतना काल तो हम दुख और क्लेश पाकर जंगलों और वनों में फिरते रहे, परंतु अब हमारे विचार में किसी ऐसे वन में चलना चाहिये, जो दुर्योधन के समीप हो, ताकि लोग ऐसा न समझें कि युधिष्ठर पाचों भाइयों समेत कहीं नष्ट होगयाहै और इस प्रकार आप में उन की प्रीति न रहे, और दुर्योधन को भी आप का खटका चूक जावे, इस के पश्चात एक साल हम निरंतर गुप्त रह कर काट लेंगे ॥

कृष्ण और बल राम आप के सहायक हैं, हम चारों भाई भी आप के सेवक हैं, फिर आप को किस और वस्तु की अवश्यक्ता है, शत्रुओं का नाश करके अपने ऐश्वर्य को निस्संदेह बढ़ाना ॥

यह सुन कर युधिष्ठर ने सब वनों नादियों और सरोवरों की प्रदक्षिणा की और हिमालय की ओर देख कर कहने लगे कि हे गिरिराज, मेरी बुद्धि ऐसी हो जाये कि मैं पृथ्वी का

ऐश्वर्य पाकर फिर आप के चरणों में आऊं और जितात्मा हो कर यहीं तपस्या करूं, यह कह कर युधिष्ठर सब संगति के साथ उसी मार्ग से लौटा, यदि कोई दुर्गमस्थान आ जाता तो घटोत्कच उन को उठा लेता, लोमश ऋषि अशीर्वाद कह कर चल दिये और युधिष्ठर आदिषणों को वंदना कर और उन से शिक्षा पा अनेक रमणीक वन उपवन और सरोवरों को देखते हुए चल दिये ॥

एकसौअठावन का अध्याय

—:-०-:—

गंधमादन को छोड़ कर पाण्डवों का वृषपर्वा के स्थान में आना वहां से नर नारायण के आश्रम को और अनेक देशों में होकर सरस्वती के तट पर पहुंचना ॥

गंधमादन ऐसा सुंदर वन था कि पाण्डवों का उस को छोड़ने को दिल नहीं चाहता था परन्तु जाना अवश्य था इस लिए सब के सब चल पड़े रास्ते में जहां रमणीक और सुंदर स्थान आ जाता वहां यह लोग डेरा डाल देते और रात्रि भर वहीं विश्राम करते इस प्रकार चलते हुए वृषपर्वा के स्थान पर आए और रात्रि भर वहां ठहर कर विशाल बदरी नाम स्थान को चल दिए ॥

विशाल बदरी में पहुंच कर वहां के सब पुण्यस्थानों को देखा और एक मास वहां रहे वहां से किरातों के राजा सुबाहु के राज्य को चल दिये सुबाहु ने बहुत आदर सत्कार किया और उन को नगर की सीमातक लेने को आया पांडव भी उस को बड़े प्रेम से मिले और अपने नौकर चाकरों को जिन्हें वहां छोड़ गए थे और रथ आदि को भी साथ ले लिया तब घटोत्कच यथेष्ट दिशा को चला गया और पाण्डव यामुनि पर्वत पर आए ॥

यामुनि पर्वत पर विशरयूप नाम एक बड़ा सुंदर स्थान लाल और पाण्डु रङ्ग के शिखर पर बना हुआ था पाण्डव वहां रहने लगे दिन को जङ्गल में आखेट करने जाते और रात्री को वहीं आ जाते इस प्रकार उन को एक और वर्ष व्यतीत होकर बारहवां वर्ष लगा ॥

वहां से निकल कर एक शुष्क पहाड़ी देश में पहुंचे और वहां से सरस्वती नदी के तट पर द्वैत वन में पहुंचे वहां के सब तपस्वी और राज ऋषि उन को देखने को आए और प्रसन्न होकर चले गए पांडवों ने उसी वन में घूमना और रहना प्रारम्भ किया ॥

एकसौ उनसठ का अध्याय

भीमसेन का एक भयंकर अजगर से ग्रसत होना

जब पाण्डव यामुनि पर्वत पर रहते थे, तो एक दिन भीम ।
अहेर करता हुआ किसी निर्जन स्थान में जा निकला और
बहुत से मृगों और वाराहों को मारा। वह इस प्रकार भ्रमण
कर रहा था कि एक भयंकर सर्प ने जिसका वर्ण पीला था और
शरीर पर काले रंग के धब्बे थे और पर्वत जैसा आकार रखता
था उसको दोनों भुजाओं से पकड़ लिया, भीमसेन ने छुड़ाने का
बहुत यत्न किया परन्तु उसका सारा बल नष्ट हो गया, तब तो
भीमसेन अचेत होकर गिरपड़ा और दुःख में विलाप
करने लगा ॥

जब कुछ होश आई और अपने आप को उस अजगर के
मुख में पाया तो उसको पूछने लगा कि हे, भुजङ्ग श्रेष्ठ तुम
कौन हो, तुमने मेरा दश सहस्र हाथी का बल किस प्रकार नष्ट
कर दिया, पृथ्वी पर कोई मनुष्य दानव और सर्प मुझ को
इस प्रकार विनश नहीं कर सका जिस प्रकार मैं तुम्हारे मुख
में आकर हुआ हूं, कृपा कर के मुझे अपना रूप बताईये ॥

तब सर्प ने अपने महान शरीर से उस का सारा शरीर
लपेट लिया और मुख से उस की भुजाओं को छोड़ कर
कहने लगे कि आज बहुत दिनों के पीछे मुझ भूखे को प्रारब्ध
वश भोजन मिला है, मैं तुम को खाकर तृप्त हूंगा। यदि मेरा
पूर्व वृत्तांत सुनना चाहो तो मैं तुम को सुनाता हूं ॥

मैं तुम्हारा पूर्वज नहुष नाम राजर्षि हूं, और ऋषियों के
शाप से इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूं, मुझे अगस्त्य जी

ने शाप दिया था, यद्यपि तुम मेरे प्रिय दर्शन पुत्र हो तथा मैं तुम को भक्षण करना चाहता हूं, तुम्हारे होने पर मेरे कुल की वृद्धि है, परंतु क्या करूं, मैं सर्वथा वे वस हूं, जो मेरे वस में आता है मैं उस का सारा वल नष्ट कर देता हूं, अगस्त्य जी ने मुझे यह भी कहा था, कि जो आत्मा और अनात्मा का ज्ञान रखने वाला पुरुष तेरे प्रश्नों का उत्तर देगा वही तुम को शाप से छुड़ावेगा ॥

यह सुन कर भीमसेन बोला कि मैं अपनी निन्दा नहीं करता न आप पर क्रोध करता हूं, देव वश यह आपत्ति मुझ पर आई है, मनुष्य को दुःख और सुख के मिलने अथवा नष्ट होने से सामर्थ होने अथवा सामर्थ्यवान होकर ग्लानि करना उचित नहीं, यदि मेरी परारब्ध ऐसी न होती तो मेरी भुजाओं का वल नष्ट न होता ॥

मुझे अपने मरने का शोच नहीं, परंतु राज्य हीन अपने वनवासी भाईयों का दुःख है, वह व्याकुल होकर मुझ को हिमालय की चोटीयों पर ढूंडते फिरेंगे, और नष्ट हुआ सुन कर राज्य से निराश होकर प्रयत्न छोड़ देंगे, मेरी वृद्ध माता जब यह सुनेगी तो वहुत दुखी होगी, और उस के सब मनोरथ निष्फल जायेंगे ॥

इधर युधिष्ठर ने अपने निकट अनेक उत्पात देखे दक्षिण दिशा में एक डरी हुई गीदड़ी रोने लगी वर्तिक पक्षी ने सूर्य के सन्मुख होकर रुधिर को वमन किया वायु तीक्ष्ण और

करेड़ लिये हुए चलने लगी सब मृग पक्षी दहिने ओर बोलने लगे पीछे की ओर एक काला काक "चल" "चल" शब्द करने लगा हृदय और बाया चगगा घूमने लगा और बाया नेत्र भी फड़कने लगा ॥

इन बातों से युधिष्ठर ने अनुमान किया कि कोई आपत्ति आने वाली है उस ने द्रौपदी से पूछा कि भीमसेन कहां है वह बोली कि महाराज बहुत देर से गए हुए हैं अभी तक लौट कर नहीं आए यह सुन कर युधिष्ठर ने धौम्य ऋषि को अपने साथ लिया और अर्जुन को द्रौपदी के सुपर्द करके और नकुल और सहदेव को सब ब्राह्मणों की रक्षा में सौंप, भीमसेन के खोजने को चला गया ॥

रास्ते में कई चिन्हों से भीमसेन के मार्ग को पहिचाना युधिष्ठर आगे चला गया, और अन्त को एक ऊपर भूमि में पहुंचा। वहां एक कन्दरा के समीप सर्प ग्रस्त निश्चेष्ठ भीमसेन को देखा ॥

एकासीसाठ का अध्याय

—:-०-:—

युधिष्ठर और सर्प का प्रश्नोत्तर होना ॥

भीमसेन को इस अवस्था में देख कर युधिष्ठर चकित हो पूछने लगा, कि हे भीमसेन तुम को क्या हुआ।

उसने सर्प से ग्रस्त होने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया, तब युधिष्ठर सर्प से बोला कि हे महाराज आप कौन से देवता हैं, मेरे इस भाई को छोड़ दें इसके स्थान पर जिस प्रकार का भोजन आप चाहें, मैं आप को देने को उद्यत हूं यह सुन कर सर्प बोला कि हे युधिष्ठर, मैं तेरे इस भाई को अवश्यमेव खाऊंगा, मैं इसको छोड़ नहीं सकता यह मेरे नियम के विरुद्ध है, इसके स्थान पर मैं और कोई आहार न लूंगा, वरन यदि तुम भी कल तक यहां रहोगे तो तुम को भी भक्षण कर जाऊंगा॥

युधिष्ठर ने फिर नम्रता पूर्वक विनय की और कहा कि आप मुझे अपना वृत्तान्त सुनाईये, उस समय सर्प ने कहा कि मैं नहुष नामी राजा तुम्हारा पुरखा हूं। मैंने सारे संसार पर बहुत काल राज्य किया परन्तु मुझ में इतना घमण्ड हो गया कि मैंने अपनी पालकी सहस्र ऋषियों से उठवाई, इस ब्राह्मणों के अपमान करने के कारण अगस्त्य जी ने मुझे शाप दिया जिसके कारण इस तिर्यग्योनि में आकर मैं यहां ठहरा हूं, मुझे अपना पूर्व वृत्तान्त सब याद है, अभी तक मेरा ज्ञान और बुद्धि नष्ट नहीं हुए, यह तुम्हारा भाई मुझे छटे पहिर भोजन के लिये मिला है अपने धर्मानुसार मैं इसको छोड़ नहीं सक्ता, और न मैं इसके बदले कोई और पदार्थ आहार का कर सकता हूं, हां एक बात में तुम्हारे भाई का छुटकारा है, वह यह है, कि तुम मेरे पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर दे दो॥

यह सुन कर युधिष्ठर बोला कि बहुत अच्छा मैं आप के प्रश्नों का उत्तर दूंगा, आप अपने प्रश्न मुझ से पूछिये॥

सर्प ने पूछा बताओ कि संसार में ब्राह्मण किस को कहना चाहिये ? वह पदार्थ जिस को जानना अवश्य उचित है क्या है ?

युधिष्ठर बोला कि स्मृति में ब्राह्मण उस को कहते हैं, जो कि सत्यवादी, दानी, क्षमावान, शील स्वभाव, हिंसा न करने वाला, तपस्वी और कृपा युक्त हो, जानने के योग्य केवल ब्रह्म, जो अनित्य और सुख दुख से रहित है; जिस को पाकर मनुष्य के कर्म कृत भोग नहीं भोगने पड़ते ॥

तब सर्प ने कहा कि संसार में ब्राह्मण आदि चार वर्ण हैं, तो क्या यदि यह गुण शूद्र में होवें तो वह ब्राह्मण कहला सकता है, तुम कहते हो कि जानने योग्य ब्रह्म है जो सुख दुखों से रहित है; मुझे कोई पदार्थ ऐसा प्रतीत नहीं होता जिस में यह द्वन्द न हो ॥

तब युधिष्ठर ने उत्तर दिया कि हां यदि किसी ब्राह्मण में पूर्वोक्त गुण न हों तो वह ब्राह्मण कहलाने के योग्य नहीं परंतु यदि किसी शूद्र में वह सब लक्षण पाये जायें तो वह ब्राह्मण ही है, और जो तुम कहते हो कि सुख दुःख से कोई पद खाली नहीं वह सर्वथा सत्य है, यदि आप यह कहें कि जिस प्रकार शीत में उष्ण का अभाव होता है और उष्ण में शीत का, तो इस प्रकार सुख दुःख का अभाव संभव नहीं, परंतु सुख और दुख कर्म से उत्पन्न होते हैं, और ब्रह्मरूपी ज्ञान गम्य निर्विकार पद है और उस में कर्म का त्याग होने से सुख दुःख का त्याग स्वयं ही है ॥

तब सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर जब तक मनुष्य अपना अपना कर्म न करें तब तक जाति का होना वृथा है ॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि इस लोक में वर्णों की बड़ी मिलावट है ब्राह्मण क्षत्रिय की और क्षत्रिय ब्राह्मण की कन्या से ब्याह करते हैं, उन से संतान उत्पन्न होती है, सब की वाणी और शरीर के धर्म एक जैसे हैं, इस लिये तत्ववेत्ता ऋषियों ने आचार ही को प्रधान माना है, सब मनुष्यों का जाति कर्म करना नाल काटने से पहिले ही करना कहा है। जिस में माता सावित्री रूप और पिता आचार्य रूप वर्णन किये हैं इस लिये जब तक वेदोक्त संस्कार न किये जायें मनुष्य शूद्र ही रहता है जाति की परीक्षा होने वैसे बिलकुल कठिन है, और ऐसा ही मनु जी ने भी कहा है, सो हे सर्प वर्णों की मिलावट बड़ी बलवान है, बिना संस्कार और आचार के उन का जानना कठिन है इसी लिये मैंने पहिले आचार को ही प्रधान मान कर ब्राह्मण के लक्षण कहे थे ॥

सर्प इस प्रश्नोत्तर से बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने प्रण के अनुकूल भीमसेन को छोड़ दिया ॥

एकसौइकसठ का अध्याय

—:०:—

सर्प और युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर, सर्प का देह धारण करके स्वर्ग को चले जाना और

युधिष्ठिर का भीमसेन सहित अपने आश्रम को आना ॥

युधिष्ठिर ने सर्प को कहा कि तुम वेद और वेदाङ्ग के ज्ञाता हो बतलाओ तो सही कि मनुष्य को किस कर्म करने से उत्तम गति मिलती है ?

सर्प ने उत्तर दिया कि मेरे विचार में तो पात्र को दान देने से, मीठा भाषण करने से, सत्यवादि होने से और अहिंसा में प्रीति रखने से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है ॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि दान देने और सत्य बोलने में कौन सा धर्म बढ़ कर है ? और अहिंसा अधिक है या कि मीठा बोलना ?

सर्प ने उत्तर दिया कि दान, सत्य, ज्ञान, अहिंसा और मीठा बोलना इन की बड़ाई छुटाई पराधीन है कहीं सत्य बड़ा से कहीं दान, कहीं अहिंसा और कहीं मीठा बोलना ॥

फिर युधिष्ठिर ने कहा कि मृत्यु पर मनुष्य को किस कर्म के फल से स्वर्ग मिलता है ॥

सर्प ने कहा कि मनुष्य को उत्तम, मध्यम और अधम गति कर्म के अनुसार मिलती है दानादि शुभ कर्म करने से उत्तम गति पाकर मनुष्य स्वर्ग में जाता है इन से विपरीत कर्म करने से मनुष्य योनि मिलती है परन्तु जो कोई कोप, हिंसा, लोभ और अन्य भ्रष्ट कर्म करता है उस को तिर्यग

योनि मिलती है और अधम गति प्राप्त होती है तिर्यग योनी के जीव फिर मनुष्य योनि को प्राप्त होते हैं परन्तु अहिंसक जीव जैसे घोड़ा, गौ इत्यादि मर कर देव लोक को भी जा सकते हैं इस लिये जीव अपने कर्मानुसार तीनों योनियों में भ्रमण करता रहता है और जब तक कुकर्मों के दोष दूर नहीं होते बारम्बार जन्म लेता है ॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का आधार क्या है ? इन के विषय का विचार बुद्धि से एक साथ ही क्यों नहीं होता ?

तब सर्प बोला कि जब इस देह को आत्मा और बुद्धि संयोग होता है तब आत्मा इन्द्रियों का आधार होकर सब भोगों को भोगता है भोगने में बुद्धिमान और ज्ञान कारण है इन्द्रियें विषयों के स्थान हैं उन के द्वारा यह आत्मा मन के साथ बाहिर निकल कर क्रम पूर्व पृथक् २ विषयों को प्राप्त करता है उन के पृथक् होने का विधान मन से मिलता है जो एक समय से एक ही विषय की कांक्षा कर सकते हैं इस लिये सब विषयों का एक साथ ही ज्ञान होना असम्भव है जीवात्मा दोनों भौंवों के बीच में स्थित हो कर उत्तम और अधम बुद्धि को अनेक विषयों में लगा देता है इस से यह बुद्धि ही आत्मा का प्रकाश करने वाली है ॥

तब युधिष्ठिर ने मन और बुद्धि के लक्षण पूछे, सर्प ने उत्तर दिया कि बुद्धि सदैव आत्मा के सङ्ग रहने वाली है

उसी के आश्रय है और उसी को चाहने वाली है वह विषयों के संयोग स्थान में उत्पन्न होता है मन तो केवल वासना ही रूप है बुद्धि वासना को बढ़ाती है इन दोनों में भेद यह है कि बुद्धि में किसी गुण की विधि नहीं और मन में बुद्धि रूप गुण है, यह कह कर सर्प बोला कि मेरी सम्पति में तो यही बात है परन्तु तुम भी बतलाओ कि तुम क्या समझते हो ॥

युधिष्ठर ने कहा कि तुम परम ज्ञानी हो बुद्धि तुम्हारी शुभ है मुझे आश्चर्य है कि आपने सर्वज्ञ होकर भी ऐसा प्रश्न मुझ से क्या किया है ! और स्वर्ग वास होने पर भी तुम्हारे मन में मोह क्यों आया ॥

यह सुन कर सर्प ने उत्तर दिया कि सुख और अधिशूरा वीरों को भी मोहित कर देते हैं मैं भी इसी प्रकार ऐश्वर्य को पाकर मदोन्मत हो गया था और तभी „पता लगा जब मैं स्वर्ग से गिर कर पृथ्वी में आ गया हे युधिष्ठर मैं आप जैसे साधू से बात चीत करने से शाप से छूट गया ॥

स्वर्ग में मेरा ऐश्वर्य बड़ा था देवर्षि और ब्रह्मर्षि मेरी पालकी उठाया करते थे मन्दभाग्य से मैं ने अगस्त्य जी को पैर मार कर कहा कि "अरे सर्प जल्दी चलो !" इस से अगस्त्य जी बड़े क्रोधित हुए और शाप दिया कि "तू सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पड़े" तब मुझ को होश आई मैंने फिर अगस्त्य जी से प्रार्थना की कि महाराज मेरे दुःख का अन्त कब होगा तब उस ने परम कुशलता से कहा कि जब धर्मराज

युधिष्ठर से तेरा सम्भाषण होगा तब तू इस शाप से छूट जायगा ॥

इस लिए मैं ने ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानियों के लक्षण तुम से कहे हैं मनुष्य के साधक, केवल सत्य, इन्द्रियों को जीतना, तप और दान हैं जाति और कुल से स्वर्ग नहीं मिल सकते यह कह दिव्य रूप पाकर वह सर्प स्वर्ग को चला ॥

इस के उपरान्त युधिष्ठर, धौम्य पुरोहित और भीमसेन लौट कर आश्रम को आए और सब को यह हाल कह सुनाया और सब ने कहा कि भीमसेन को साहस करना ठीक नहीं है और इस के पीछे आनन्द पूर्वक वहां ही रहने लगे ॥

एकसौबासठ का अध्याय

—:-०-:—

पाण्डवों का सुख पूर्वक वहां रहना और कार्तिक पौर्णिमा को वहां से काम्यक बन को चले जाना, श्री कृष्ण जी का सत्यभामा सहित आना, पाण्डवों से वार्तालाप, मार्कण्डेय ऋषि का आना और युधिष्ठर का आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करना और ऋषि का

उत्तर देना ॥

इस के पश्चात् जब ग्रीष्म का अन्त हुआ तो वर्षा ऋतु आई नदियां वेग से वहने लगीं और बन में सुन्दर हरि घास चारों ओर दिखाई देने लगी पाण्डव पर्वतों की सूखी कन्दराओं में वास करने लगे तत्पश्चात शीत ऋतु आई और बन की शोभा परम मनोहर हो गई पांडवों ने अपना सामान लेकर रथ में रख दिया और बोरिया बिस्तर उठा कर कार्तिक पौर्णिमा को काम्यक बन को चल दिए ॥

इस के पश्चात् शीघ्र ही पाण्डवों को काम्यक बन में आए हुए सुन कर अपनी पटरानी सत्यभामा सहित श्री कृष्ण जी आए, युधिष्ठर और भीमसेन को नमस्कार किया और धौम्य पुरोहित की पूजा की तत्पश्चात् नकुल और सहदेव ने श्री कृष्ण जी को नमस्कार किया और आपस में एक दूसरे का कुशल क्षेम पूछा ॥

इसी प्रकार सत्यभामा भी द्रौपदी से मिली बहुत काल के पश्चात् अर्जुन को देख कर श्रीकृष्ण जी विशेष आनन्द को प्राप्त हुए। अर्जुन ने बन का सर्व वृत्तान्त कह सुनाया। और सुभद्रा और अभिमन्यु का कुशल पूछा ॥

श्री कृष्ण जी ने कहा कि वह सब सुखी हैं ॥

श्रीकृष्ण ने सब को सान्तवन किया और कहा कि तुम्हारे कष्ट की अवधि निकट है, तुमने सत्य धर्म से इस दुःख को सहा है, तुमने व्रत किये, यज्ञ कराये ब्राह्मणों को गो दान

दिया है और सारा समय धर्म के कामों में व्यतीत किया है, इस से यह लोक और परलोक दोनों तुमने जीत लिये हैं, जब कौरवों ने द्रौपदि का अपमान किया था, तो यह तुम्हारा ही काम था कि इतने वीर हो कर भी तुमने उस अधर्म को धर्म समझा, अब तुम शीघ्र ही अपना राज्य पाओगे, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होने पर हम कौरवों का निग्रह करने का यत्न करेंगे ॥

तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अस्त्र विद्या की प्राप्ती पर और स्वर्ग से लौट आने पर बधाई दी। और द्रौपदी को कहा कि तू बड़ी भारब्धिनी है। जो इस पुण्यवान अर्जुन से फिर मिली तेरे सुशील पुत्र सब विद्याओं को सीख रहे हैं और धनुर्वेद का अभ्यास करते हैं। सत्य पुरुषों के काम में उनकी बड़ी रुचि है द्वारका में सुभद्रा उन से बड़ा प्रेम करती है और प्रद्युम्न उनको धनुर्वेद बड़ी प्रीती से सिखाता है। जब कभी वह बाहिर जाते है तो पालकी हाथी घोड़े साथ होते हैं। वह पहिले तो अपने नाना के हां रहे, परन्तु पश्चात् द्वारका चले आये ॥

इस के पश्चात् युधिष्ठर को कहने लगा कि अब आप की आज्ञा क्या है बलदेव जी ने इन बालकों की सेना सजा रखी है और वह हस्तिना पुर के योधाओं को प्रतिक्षण मारने को उद्यत हैं, अब तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो जाय तो हस्तिना पुर को चले आना ॥

यह सुन कर युधिष्ठर ने श्री कृष्ण को हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज हम तो आप की शरण हैं बारह वर्ष तो बन में रहिते हो गया अब तेरहवां गुप्त रहने का वर्ष है, इस

के पश्चात् जैसी आज्ञा होगी की जायगी, अब भी आप की शरण हैं फिर भी आप की शरण लेंगे ॥

इस प्रकार की बातें हो रही थीं कि इतने में मारकण्डेय ऋषि आगए उन की आयु सहस्र वर्ष थी परंतु वह २५ वर्ष के युवा प्रतीत होते थे। वह बड़े धर्मात्मा तजस्वी और अजर अमर थे सब पांडवों और श्री कृष्ण जी ने उन का आदर किया और उठ कर खड़े होगये और आदर सहित उन को बिठाकर उन की पूजा की तब श्री कृष्ण ने उन को कहा कि हे भगवन् यह सब लोग आप के मुखारविंद से कुछ श्रेष्ठ कथा सुनना चाहते हैं कृपा करके अगले समय के राजाओं के वृत्तांत अथवा देवर्षियों के वर्णन सुनाइये ॥

उस समय नारद जी भी वहां आगये, और यथोचित सत्कार पाकर बैठ गये। उन्हों ने भी मारकण्ड से कथा सुनाने की प्रार्थना की ॥ वृद्ध देवर्षि ने कहा बहुत अच्छा तनक ठहिर जाओ। मध्यान्ह का समय था सब लोग बैठे हुए, उस प्रकाशमान महा मुनि की ओर देखने लगे ॥

जब वह कथा सुनाने लगे तो युधिष्ठर बोल उठा कि महाराज आप एव पुण्यात्मा लोग अपनी कृपा से मुझे दर्शन देते हो, यह श्री कृष्न जी भी अपनी बड़ी उदारता प्रकट कर द्वारका से यहां पधारे हैं मैं बहुत दिनों से इन को देखना चाहता था यह परम तपस्वी जगत विख्यात नारद जी हैं, मैं आप से यह पूछना चाहता हूं कि किस प्रकार हम नियम

व्रत धारी सदा धर्म करने वाले ऋषियों और ब्राह्मणों का आदर करने वाले इस महा दुख को प्राप्त हुए हैं और वन में रह कर नाना प्रकार के क्लेशों को पाते हैं परन्तु दुर्वृत्त धृतराष्ट्र कड़वी बेल की भांति फलते फूलते जाते हैं और साधू और सदाचारियों को पीड़ा भी देते हैं, मेरे इस संशय को निवृत्त कीजिये दूसरी बात यह है कि जब मनुष्य शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म आप ही करता है और आप ही उन के फल को भोगता है तो ईश्वर ने क्या किया, सुख दुख तो कर्मों से मिले, मनुष्य चाहे इस देही से भोगे चाहे और किसी से ॥

तीसरे यह कि यह शरीर छोड़ कर मनुष्य दूसरे जन्म में शुभ अशुभ कर्म क्यों कर करता है, और भोगता है, और उस के वह परलोक सम्बधि कर्म कहां रहते हैं ॥

तब मारकंडेय जी बोले कि हे युधिष्ठर तुम ध्यान देकर सुनो हम तुम को यह बात बताते हैं ॥

प्रथम तो ब्रह्मा जी ने सब मनुष्यों के देहतंत्र रूपी बनाये थे वह पृथ्वी पर और आकाश में स्वेच्छा से विचरते थे और देवताओं के पास जाते आते थे। खाना पीना उन का सर्वथा सुगम था और सुलभ था कोई यत्न और चेष्टा न करनी पड़ती थी उन की आयु दीर्घ होती थी और वह बहुत सन्तान रखते थे आधिव्याधि उन को कभी पीड़ा न देती थी और जगत आनन्द मय था ॥

परन्तु दूसरा समय आया और मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और मोही होकर दुख पाने लगे, तब शुभ और अशुभ कर्मों में भेद हो गया और पशु पक्षियों की नरक योनियों में जन्म ले ले कर अशुभ कर्म भोगने लगे, उन के इष्ट संकल्प और मनो कामना निष्फल होने लगे कालान्तर में यह रोगी दुरात्मा और अशुभ कर्मी होगए, उन की आयु भी घट गई और रौद्र कर्मों में रुची होने लगी, इस से हे युधिष्ठर देह त्यागने पर मनुष्य की गति केवल कर्मों से ही होती है। और देह त्यागने पर उन को अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल मिलता है॥

तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि मनुष्य के दो शरीर होते हैं एक यह जिसको तुम वाहन हुये इन्द्रयों से देखते हो, और दूसरा सूक्ष्म वा लिंग शरीर। स्थूल शरीर के द्वारा किये हुए सब पाप पुण्यों को कोश सूक्ष्म शरीर में रहता है, जब मनुष्य देह त्याग करता है तो वह सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के साथ जाते हैं, और उसको दूसरी योनि में जन्म मिलता है और उसके कर्म छाया की भान्ति उसके साथ जाते हैं, और यम राज उन्हीं के अनुकूल उसको फल देता है, जो उसको अवश्य भोगना पड़ता है इसके अतिरिक्त ज्ञानी लोग जो तपस्या करते हैं और आयु को शुभ कर्मों के करने में व्यतीत करते हैं स्वर्ग से गिर कर गर्भ में वास कर के जब फिर उत्पन्न होते हैं तो वह अपने पूर्व ज्ञान से आत्मा और परमात्मा के भेद

को शीघ्र ही जान लेते हैं, और पृथ्वी पर शुभ कर्म कर के फिर स्वर्ग को चले जाते है ॥

कई मनुष्य ऐसे हैं कि इस लोक में उनको सुख नहीं मिलता परन्तु परलोक में मिलता है, कईयों को यहां सुख मिलता है परन्तु परलोक में सुख नहीं। कईयों को इस लोक में भी सुख और परलोक में भी, कईयों को न यहां न वहां, देखो ऋषि महर्षि उग्र तपस्या करते हैं, उनको इस लोक में कोई सुख नहीं परन्तु परलोक में सुख के भागी होते हैं, कई लोग नाना प्रकार के पूर्व जन्म कृत कर्म के फलों को भोग कर इस संसार में भी सुख पाते हैं और अगले जन्म में भी सुख पाते हैं, सो हे युधिष्ठर तुम देवदाओं के उत्तम कर्म करने वाले हो, तुमने आयु भर अपने ऊपर कष्ट लेकर भी बुरा कर्म नहीं किया, इस से तुम्हारा शीघ्र कल्याण होने वाला है। तुम को इस लोक में यश और परलोक में स्वर्ग वास मिलेगा। यह थोड़े दिनों का क्लेश केवल सुख को उदय करने के लिये है। इस बात को देख कर मन में किसी प्रकार का शक मत करो ॥

एकसौ तिरसठ का अध्याय

—:०:—

मार्कण्डेय का हैहय देश के एक राजा का इतिहास वर्णन करना ॥

इस के पीछे युधिष्ठर ने कहा कि, हे ब्रह्म मुझे मुख्य २ ब्राह्मणों का महात्म्य सुनाईये मेरी सुनने की बड़ी इच्छा है। तब मार्कण्डेय जी बोले हैहय देश का एक राज कुमार अहेर करता हुआ किसी बन में जा निकला, वहां कोई ऋषि मृग चर्म ओढ़े हरि घास पर लेट रहा था, राज कुमार ने समझा कि वह मृग है और उस को बाण मार कर गिरा दिया, तत्पश्चात् उस को विदित हुआ कि वह तो तपस्वी है, इस बात का उस को बड़ा शोक हुआ, और वह अचेत सा होकर अपने देश को लौट आया, वहां आकर उस ने अपने माता पिता से यह वृत्तांत सुनाया, उन को सुन कर बड़ा क्लेश हुआ, और उन्हों ने कहा कि अब वह तपस्वी कहां है? राज कुमार ने कहा कि यहां ही भूमि पर पड़ा है, इस को सुन कर वह बड़े दुःखी हुए, और उस मृत मुनि का हाल जानने की इच्छा से राज कुमार को साथ लेकर बन को आये॥

परन्तु बहुत खोज करने पर भी मरा हुआ मुनि उन को न मिला ढूंडते ढूंडते अरिष्टि नेमि नामी काश्यप गोत्रि ऋषि के आश्रम में पहुंचे ऋषि ने पूजा करनी चाही परन्तु उन्हों ने स्वीकार न की और कहा कि हे भगवन् हम से ब्रह्म हत्या हो गई है इस लिए हम पूजा के योग्य नहीं हैं हम से अहेर में एक मुनि मारा गया है परन्तु उस के मृत शरीर को बहुत खोजने पर भी पता नहीं मिला ऋषि ने कहा मैं तुम्हारे साथ ढूंडने को जाता हुं पर उस के जाने पर भी वह मारा हुआ ऋषि पुत्र न मिला तब अरिष्ट नेम ने हंस कर कहा कि

यह हमारा पुत्र है हम ने उस को सजीव कर लिया है तुम घर को जाओ तुम्हें कोई शाप नहीं लेगा तब राजा बोले कि महाराज यह ऋषि पुत्र कैसे जी उठा यदि दोष न हो तो यह मन्त्र हम को भी बताओ ऋषि ने कहा कि हे राजन् हम को मृत्यु नहीं जीत सकती हम सदा सत्य बोलते हैं झूठ जानते ही नहीं अपने धर्म पर चलते हैं लोगों के दोषों का नाम भी नहीं लेते अतिथियों को अन्न दान भी करते हैं और जो शेष रह जाता है उसी को हम लोग खाते हैं क्षमा शील और शान्त चित रहते हैं और इन्द्रियों को दमन कर पुण्य स्थानों में वास करते हैं हमारे ऐसे आचार तेजस्वी पुरुषों के देश में रहने के कारण से हैं॥

यह सुन कर अरिष्टनेम को नमस्कार करके राजा अपने देश में लौट कर आ गए॥

एकसौचौसठ का अध्याय

—:-०-:—

राजा वैन्य के यज्ञ में अत्रि ऋषि का आना और बहुत सा धन लाना॥

तब मार्कण्डेय जी ने ब्राह्मणों के महात्म्य का एक नया इतिहास सुनाना आरम्भ किया और वैन्य नामी एक राजा हुआ है उस ने अश्वमेध यज्ञ करने की दीक्षा ली अत्रि ऋषि ने राजा वैन्य के यज्ञ में आकर धन लेने की इच्छा

की परन्तु यह देख कर कि धर्म का फल चाहने से धर्म नष्ट हो जाता है उस ने अपने निश्चय को बदल दिया और वनों में जाकर तपस्या करने का विचार करने लगा तब उस ने अपनी धर्म पत्नी को बुलाया और कहने लगा कि मैं ने वैन्य के यज्ञ में जाने का वीचार छोड़ दिया है अब मैं वन को जाकर तपस्या करूंगा जिस में मोक्ष की प्राप्ती होगी ॥

स्त्री बोली कि महाराज आप अवश्य ही वैन्य के यज्ञ में जाईये और वहां से बहुत सा धन ला कर पुत्रों और सब को देकर सबच्छा वन में जाकर तपस्या कीजिए, जब तक आप यह न करोगे तब तक आप का वन में जाना असम्भव है और तत्व वेताओं ने भी धर्म का यही रास्ता बताया है ॥

तब अत्रि ने कहा कि वहां ब्राह्मण द्वेष से भरे हुए रहते हैं मैंने धर्म की बात बताई तो कदाचित् उस के अकल्याण मार्ग बतावें परंतु मैं तेरे हित की बात भी करना चाहता हूं इस से मैं वैन्य के यज्ञ में जाता हूं। यह कह कर और वहां पहुंच कर, राजा को यह स्वस्त्ययन सुनायाः—"हे राजा, तू धन्य है ! ईश है । और मनुष्य पालक है ? पृथ्वी पर सब से प्रथम है । मुनी समूह तेरी स्तुति करते हैं! और तुझ से बढ़ कर और कोई धर्म करने वाला नहीं है।

यह मंगलीय स्वस्त्यन सुन कर गौतम ऋषि बोला

अरे अग्नी । तेरे होश ठिकाने नहीं हम सब का प्रथम पुरुष और रक्षक तो इन्द्र है ? तू वैन्य राजा को बतलाता है" अग्नि बोला— "गौतम ! तुम मोह से मोहित हो रहे हो और अल्प बुद्धि हो, वैन्य भी इन्द्र और प्रजापति के समान विधाता है," गौतम ने उत्तर दिया—" मैं कदापि मोहित नहीं हू मैं सब कुच्छ जानता हूं, मोहित तो तुम हो जो धन लेने के लिये राजा की इस प्रकार स्तुति करते हो तुम्हें अभी तक न परम धर्म ही का ज्ञान है, न प्रयोजन ही विदित है, तुम मूर्ख बुद्धि बालकों जैसे हो तुम्हारे बाल तो यूंही श्वेत हो गये ॥

इस प्रकार उनके आपस के विवाद को सुन कर अन्य ब्राह्मण सोचने लगे कि यह दोनों कौन हैं जो इस प्रकार चिल्ला २ कर बोल रहे हैं यह इस सभा में क्यों कर घुस आये॥

काश्यप ऋषि ने पास जाकर पूछा कि हे ब्राह्मणो तुम क्यों लड़ते हो, उस को सुन कर गौतम ने ऊंचे स्वर से कहा कि हे ब्राह्मण गण अग्नि ने राजा वैन्य की स्तुति करते हुए उसको विधाता की उपाधि दी है जिस को सुन कर मुझ को बड़ा भारी संदेह उत्पन्न हुआ है॥

यह सुन कर सभा में ठहिरे हुए मुनियों ने विचारा कि इस बात का निश्चय होना चाहिये, इस लिये वह सब के सब सनत्कुमार जी के पास आये और सब वृत्तान्त उनको सुना दिया, सनत्कुमार जो बड़े विद्वान, वेद पारग और तत्व के ज्ञाता थे बोले कि हे मुनियो— राजा भी धर्म रूप और धर्म का स्थापन करने वाला है, और प्रजा का स्वामी भी है इस से

उसको इंद्र कहना अशुद्ध नहीं, उसको शुक्र अर्थात् नीति जानने वाला धाता अर्थात् जनक रूप और बृहस्पति अर्थात् हित का उपदेशक भी कह सकते हैं, धर्म की प्रवृत्ति में राजा प्रथम कारण होता है, इस से उसको पूर्व योनि भी कह सकते हैं दुष्टों को युद्ध में जीत कर धर्मात्माओं का उद्धार करने से उस को युधाजित भी कहते हैं ॥

चूंकि वह सब की रक्षा करके स्वर्ग में पहुंचाने वाला सत्य का उत्पत्तिस्थान और प्रवर्तक है इसलिये उसको भव भी कहते हैं, इस के अतिरिक्त ऋषियों ने अधर्म के डर से क्षत्रिय कुल को अपने तप का बल दिया है जिस से अधर्म का नाश कर के राजा धर्म को उत्तेजित करता है इस से यदि राजा को विधाता कहा जाय तो अनुचित नहीं है ॥

यह सुन कर सब ऋषि लौट आये, वैन्य अत्रि पर बड़ा प्रसन्न हुआ। और उसको बहुत सा धन देकर लौटा दिया, अत्रि उस दश कोटि सेना और दश भार चांदी को लेकर घर पहुंचे और अपने पुत्रों को देकर स्वयं वनों में तपस्या करने चले गये ॥

एकसौपैंसठ का अध्याय

—:o:—

सरस्वति और तार्क्ष्य का प्रश्नोत्तर ॥

एक समय तार्क्ष्य ऋषि ने सरस्वति से पूछा कि हे भद्रे मनुष्य का भला करने वाला कौन सा पदार्थ है और किस

प्रकार से आचरण करने से मनुष्य अपने धर्म से नहीं हटता अग्नि पूजन कब और कैसे होता है? होम कब करना उचित है? कौनसा कर्म करने से धर्म का नाश नहीं होता ॥

सरस्वति बोली कि जो मनुष्य सावधानता और पवित्रता से वेद पाठ और जप तप करता है और ईश्वर को सर्वव्यापक जानता है वही देव लोक पाता है, मनुष्य को दान करने से और सदा पवित्र रहने से मनुष्य अपने धर्म से नहीं हटता, अपवित्र अवस्था में होम करना निषिध है वेद के न जानने वाले से हवन कराना निष्फल है, वेद शून्य ब्राह्मण अग्नि में आहुति न दे ॥

तब तार्क्ष्य ने कहा कि हे देवि तू कौन है, सरस्वति बोली कि मैं ब्राह्मणों का संदेह दूर करने के लिये अग्नि होत्र से निकली हूं तब तार्क्ष्य ने कहा कि यह सुंदर स्वरूप तुम ने किस प्रकार प्राप्त किया सरस्वति बोली कि मैं यज्ञों के मंत्र और द्रव्यों से वृद्धि पाती हूं और इस दिव्य रूप को धारण करती हूं ॥

तब तार्क्ष्य ऋषि बोले कि हे सरस्वति मुझ से मोक्ष का रूप वर्णन करो जिस को पाकर मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है सरस्वति ने उत्तर दिया कि हे तार्क्ष्य वेद के जानने वाले शोक रहित और जीवन मुक्त होते हैं वे ही अहिंसा जप, तप, आदि धन रखते हैं, और सर्वोत्तम पुण्य पारब्रह्म को पा सकते हैं उस सच्चिदानन्द को जिस अवस्था में वह पाते हैं वह ही मोक्ष रूप है, इसी परमात्मा से जगत रूपी

वृक्ष उत्पन्न हैं जिस की जड़ें मनुष्यों के कर्म और फल सुख दुःख आदि हैं, उसी परमात्मा के लिये देवताओं और ऋषियों ने बड़े २ यज्ञ किये और वही तेरा परमपद है ॥

एकसौ छयासठ का अध्याय

—:o:—

वैवस्वत का उपाख्यान ॥

सूर्य के पुत्र मनु जी बड़े तपस्वी हुए हैं उन्हों ने विशाला बदरी आश्रम में जाकर बड़ी उग्र तपस्या की, और बहुत वर्ष तक जितेन्द्रि रह कर धर्म का उपजय किया ॥

एक दिन मनु जी नदी पर खड़े थे कि एक छोटी सी मछली उन के पास आई और कहने लगी कि हे भगवन् ! मैं एक क्षुद्र जीव हूं, मुझे बड़ी मछलियों से सदा भय रहता है कि कदाचित् वह मुझ को खा न जाएं, क्योंकि बड़ी मछलियां बहुधा छोटी मछलियों को खा जाती हैं, यदि मेरी रक्षा करोगे तो मैं भी आप का हित करूंगी ॥

मनु जी ने जल के एक पात्र में उस छोटी सी मछली को रख लिया और घर ले आये, वह मछली बढ़ती रही, यहां तक कि उस पात्र में उस का सिमाना कठिन हो गया, मनु जी ने यह देख कर मछली को बर्तन से निकाल कर एक बावली में छोड़ दिया और वहां वह सुख से रहने

लगी, कुछ दिनों के पीछे मछली इतनी बढ़ी कि बावली भी उस की महा काया को शरण देने से आतुर होगई ॥

तब मनु जी ने यह विचारा कि इस को गंगा जी में छोड़ना उचित है, उस मछली को मनु जी पुत्रवत लालना करते थे, ऐसा देख कर उस को सिर पर उठाया और गंगा जी में छोड़ आए ॥

मनु जी से इस प्रकार रक्षा की हुई वह मछली बढ़ती रही, यहां तक कि अब उस को गंगा जी में ठहरना भी कठिन होगया मनु जी ने उस को शिर पर उठाया और उस के अपने कथनानुसार समुद्र में छोड़ आए जहां वह बड़े आनन्द से रहने लगी जब मनु जी उस को छोड़ कर आने लगे तो तब मछली बोली कि हे राजर्षि आपने मुझे पुत्र की भांति पाला है इस से मैं भी आप का प्रत्युपकार करना चाहती हूं ॥

सदा जल में रहने से और मनुष्यों की अपेक्षा जल तत्व का अधिक ज्ञान होने से मैं जानती हूं कि प्रलय शीघ्र आने वाली है समुद्र चढ़ जायेंगे और सूर्य नष्ट हो जायगा और महा अन्धकार और जल के बिना कुछ न रहेगा उस समय आप एक नाव बनावें और उस में सब प्रकार की सृष्टि के बीज रख में उस समय समुद्र पर तैर कर आप के पास आऊंगी, मुझे को आप आपने एक सींग से पहचान लेना और नाव को उस सींग से बान्ध देना, तब मैं आप की नाव की रक्षा करूंगी ॥

कहते हैं कि कुच्छ काल के उपरान्त ऐसा ही हुआ पृथ्वी पर पानी ही पानी होगया न नगर रहे, न जंगल और बियावान पत्तनों के चिन्ह भी दिखाई न देते थे जल की इतनी प्रबलता हुई कि सिवाय पानी के और कुच्छ दिखाई ही नहीं देता था ॥

मनु जी मछली की बताई हुई नाव बना कर बैठ गए सप्तर्षि उन के साथ हूए और उन्हों ने पृथ्वी के बीज भी साथ ले लिए उछलते हुए भयंकर जल नाव को कभी इधर लाते कभी उधर लेजाते नाव बिचारी डिगमगाने लगी, तब मनु जी ने उस मछली को अंधकार ग्रस्त पानियों पर देखा और एक सींग रखने के कारण देख कर पहिचान लिया तब उन्हों ने एक रस्सा मछली के सींग में डाला और उस का दूसरा सिरा नाव से बांध दिया ॥

नाव को लेकर मछली पानी पर तैरने लगी कहीं ठहरने का स्थान न था सारी पृथ्वी का चक्र लगा कर हिमालय के निकट आई और उस की सर्वोच्च शिखर को थोड़ा सा नंगा पाया वहां जाकर मछली ठहर गई और मनु जी ने उस शिखर से नाव को बांध दिया तब से उस शिखर का नाम नौबंध प्रसिद्ध होगया ॥

तब मछली मनु जी से बोली कि मैं वही ब्रह्म हूं जिस की लोग खोजना करते हैं, मैंने आप को प्रलय के दुख से उद्धार किया है अब तुम सब सृष्टि को उत्पन्न करो और चराचर जगतकी

रक्षा न करो। प्रजा की उत्पत्ति का ज्ञान तुम्हें तप से होगा॥

यह कह कर वह मछली अन्तर्धान होगई, मनु जी प्रजा को उत्पन्न करने का विचार किया परंतु उन को यह ज्ञान न हुआ कि किस प्रकार उत्पत्ति की जाये, तब उन्हों ने तपस्या की और तपो बल से यथावत जान कर सृष्टि को रचा॥

एकसौसतासठ का अध्याय

—:-०-:—

महा प्रलय का होना और मार्कण्डेय के जगत्कर्ता को देखने का वृत्तांत

तब युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय जी से प्रार्थना की कि महात्मन् आप चिरंजीव हैं, और आप को तीनों लोकों का हाल विदित है आप मुझे प्रलय और सृष्टि रचना विस्तार पूर्वक सुनाइये ब्रह्मा जी का सारा वृत्तांत आप को सहिज ही विदित है यह सुन कर मार्कण्डेय जी बोले कि सुनो, यह नारायण सृष्टि के करता और पालक हैं, येही सब को जानते हैं परंतु इन को कोई नहीं जानता॥

इस के उपरान्त चार सहस्र दिव्य वर्ष तक सतयुग रहता है, तदुपरान्त तीन सहस्र वर्ष तक त्रेता, दो सहस्र वर्ष तक द्वापर और पश्चात् एक सहस्र दिव्य वर्ष तक कलियुग इन युगों के आदि और अन्त में प्रत्येक दिव्य सहस्र वर्ष के

पीछे एक सौ दिव्य वर्ष की सन्ध्या और सन्ध्यांश है दिव्य वर्ष से सारा एक वर्ष के बराबर होता है जब चारों युगों का समय व्यतीत हो जाता है तो फिर सतयुग आ जाता है और नई चौकड़ी आरम्भ होती है ऐसी २ एक सहस्र चौकड़ी व्यतीत होने पर ब्रह्मा जी का एक दिन पूरा होता है ॥

दिव्यदि =१ साल

दिव्य साल =३६५ साल (अनुमान से)

४ युग =(४००+४००+४००)+(३००+३००+३००)

+(२००+२००+२००)+(१००+१००+१००)

=१२००० दिव्य वर्ष

=१२०००×३६५ संसारी वर्ष

=४३६०००० वर्ष

इस एक दिन के व्यतीत होने पर प्रलय ॥

जब कलियुग के थोड़े दिन रह जाते हैं तो मनुष्य घोर पाप में रुचि रखने लग जाते हैं ब्राह्मण लोभी नीचों से मांग कर खाने वाले, सब प्रकार के व्यसनों वाले ईश्वर से विमुख धर्म ध्वजी अपनी जीविका धर्म से न उपार्जन करने वाले हो जाते हैं अनेक प्रकार के पाखण्डी सत्व से रहित वैश्य और शूद्र वृत्ति हो जाते हैं ॥

स्त्रियें पतिव्रत धर्म को त्याग कर व्यभिचारिणी हो जाती हैं दुष्ट सन्तान उत्पन्न करती हैं मनुष्यों के आचार व्यवहार में अपवित्रता आ जाती है गौओं में दूध कम हो

जाता है अनाज में सत्या नहीं रहती और उस का स्वादिष्टपन दूर हो जाता है म्लेच्छ जातियें राज्य करती हैं और मिथ्या आज्ञा देने वाले पापी और मिथ्यावादी राजा होते हैं चारों वर्ण अपने धर्म को छोड़ कर बल हीन हो जाते हैं ॥

ब्राह्मण तो यज्ञ और तप को छोड़ कर सर्व भक्षी हो जाते हैं परन्तु शूद्रों में ज्ञान गुण और पराक्रम आ जाता है ब्रह्मचारी सत्व भोजन को छोड़ मांस और लहू बढ़ाने वाले अखाद्य पदार्थों को खाते हैं न समय पर वर्षा होती है न अन्न अवश्यक्तानुसार उगता है व्योपारी महा कपटी हो जाते हैं और झूठे बाटों से सौदा तोलते हैं धर्मात्मा अल्पायु होते हैं ब्राह्मण मुनि वेप धारी कुकर्म और व्यभिचार में पड़ कर स्त्रियों को दूषित करते हैं छोटी अवस्था में विवाह हो सन्तान उत्पत्ति करने लगते हैं मनुष्य निर्बल हो जाते हैं अनावृष्टि और अकाल प्रतिदिन प्रजा को पीड़ित करता है और मनुष्य भूखे होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥

तब महान् प्रतापी और तेजस्वी बारह सूर्य नदियों के जल को सुखा देते हैं और वायू सहित संवर्तक अग्नि लोकों में प्रवेश करती है जिस में सब पदार्थ पृथ्वी नक्षत्र तारागण देवता मनुष्य पशु पक्षी नष्ट हो जाते हैं और वाष्प बन कर इधर उधर उड़ते रहते हैं तब मेघों की काली पंक्ति आकाश में प्रकट होती है और मूसलाधार वर्ष कर सब अग्नि को शान्त करता है. पर्वत, वन, नदी, गुफा सब जगहों पर पानी फिर

जाता है यह वृष्टि बारह साल तक रहती है और कोई स्थान जल से खाली नहीं रहता ॥

तब ब्रह्मा जी उस बाष्प को जो पानी के अग्नि पर गिरने से उत्पन्न होता है पी लेते हैं और पीकर सो जाते हैं ॥

यह कह कर मार्कण्डेय जी बोले कि हे युधिष्ठिर तब पिछली बार इस प्रकार की प्रलय हुई थी और सब मनुष्य नष्ट हो गये थे तो अकेला मैं ही, पानियों पर इधर उधर तैर रहा था। दूर तक देखने पर भी मुझे कोई मनुष्य, देवता पशु, पक्षि नहीं दिखाई देता था। अन्त को तैरता २ थक गिया, और कहीं शरण का अभिलाषी हुआ, परन्तु कोई शरण स्थान न मिला ॥

कुछ काल के पश्चात् मुझे एक बड़ा भारी वड़ का वृक्ष दिखाई दिया। उसके समीप जाने पर मैंने एक अत्यन्त सुन्दर शय्या उस पर विछी हुई देखी, उस शया पर बड़े सुन्दर और मनोहर विछोनों पर एक पक्षि रूपवान उग्र तेज बालक सोया हुआ पड़ा था। उस को देख कर मैं बहुत विस्मित हुआ। सारा संसार तो नष्ट हो गिया, भला यह एक नन्हा सा बालक कैसे जीता रह सकता है ॥

बालक बड़ा द्युतिमान तेजस्वी और कमल लोचन था और उसकी दिव्य मूर्ति उस निर्जन स्थान में प्रत्यक्ष प्रकाश मान थी। मैं विस्मित हो कर देखता रहा, तत्पश्चात् उस बालक ने मुझे कहा कि हे मारकण्डेय तुम पृथ्वी पर घूमने

से बहुत थक गये हो। आओ मेरे हृदय में प्रवेश करो और कुछ काल विश्राम करो मैंने तुम्हारे लिये स्थान निर्माण कर लिया है ॥

यद्यपि मेरी ऐसा करने की इच्छा न थी तथापि उस बालक की प्रेरना से मैं अवश्य ही उसके चौड़े किये हुए मुख में चला गया। वहां जाकर मैंने देखा कि एक बृहत्पृथ्वी बस रही है वहीं गंगा और यमुना नदियें बह रही हैं, वहीं हिमलय और सुमेरू पर्वत हैं देवता मनुष्य और राक्षस उसी प्रकार विचरण कर रहे हैं जैसे कि पहिली सृष्टि में, मैं इस दशा को देख कर बहुत आश्चर्य करने लगा और फलाहार कर के मैंने सौवर्ष उसी बालक कुक्षिस्थ जगत में बिताये मैं दूर २ तक फिरा परन्तु मुझ को उसका अन्त कहीं न मिला। तब मैंने फिर उस बालक रूपी देवता का स्मरण किया और वायुश फिर उसके मुख से बहिर निकल आया, और उस परम तेजस्वी श्रीवत्स चिन्ह रखने वाले जगत् पति महा पुरुष को बालक स्वरूप में उसी वटके ऊपर लेटा हुआ पाय ॥

तब उस दिव्य बालक ने थोड़ा सा मुसकरा कर पूछा कि कहिये आप का श्रम दूर हुआ कि नहीं, तत्क्षण मेरी आखें खुलीं और मैंने अपने आप को मुक्त और लब्ध ज्ञान पाया ॥

तब मैं उस देवेश पर सुंदर द्युतिमनि महात्मा बालक के चरण कमलों पर गिर कर प्रार्थना करने लगा हे नाथ मैंने आप के उदर में जगत रचना का सारा वृत्तांत देखा है

मैने यद्यपि बहुत प्रयत्न किया है तथपि मैं इस को समझने के असमर्थ हुं कृपया यह बताईये कि आप भगवन, कौन हैं और किस कारण आपने यह माया रची है आप यहां इस रूप में क्यों स्थित हैं? मैने बहुत बिचारने पर भी अपनी बुद्धि से इन प्रश्नोत्तर का उत्तर नहीं पाया ॥

यह सुन कर वह श्रीमान् देवेश मुझ से कहने लगे ॥

एकसैाअठसठ का अध्यया

—:o:—

नारायण का मार्कण्डेय को अपना स्वरूप बतलाना ॥

हे मार्कण्डेय, मुझ को देवता लोग भी तत्वपूर्व नहीं जानते क्योंकि तुम ने जानने की बहुत इच्छा प्रकट की है, जो केवल सत्यभाव से है, मैं तुम्हें अपना रूप दिखाता हुं ॥

पूर्वकाल में मैने जल का नाम नार रखा थीं, इस लिये तत्वदर्शी मुझ को नारायण कहने लगे, मेरा एक ही रूप है परंतु मैं सब जीवों में प्रकट हुं, सब का रचने वाला पालने वाला और नाश करने वाला मैं ही हुं, विष्णु ब्रह्मा, इन्द्र कुबेर, यम, शिव चंद्रमा, काश्यप, प्रजापति, धाता, और विधाता मेरे ही नाम हैं, अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी पैर सूर्य और चंद्रमा मेरी आंखे और आकाश मेरा मस्तक है, दिशा

मेरे कान हैं, जल मेरा पसीना है, दिशो और आकाश मेरा शरीर हैं और वायु मेरा मन है ॥

स्वर्ग की इच्छा से सब लोग मेरा ही यज्ञ करते हैं। वेद वेता मुझे यज्ञ पुरुष कहते हैं। मैं ही अवतार ले कर मनुष्यो को दुःखों से बचाता हूं। ब्रह्मण मेरा मुख क्षत्रिय मेरी भुजायें, वैश्य मेरी जंघा और शूद्र पांव हैं वेद मुझ से ही प्रकट होते हैं और मुझ में ही लीन होजाते हैं॥

काम क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार मैंने ही विभाग किये हैं। सत्य, दान, तप, अहिंसा भी मैंने ही रचे हैं, दुष्टों के मैं ही दंड देता हुं, जब धर्म का नाश और अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं ही शुभ कर्म मनुष्यों के घर में अवतार लेकर धर्म का फिर अभियुत्थ करता हुं, और जगत की मर्यादा बांधता हुं, मेरा वर्ण सत युग में श्वेत, त्रेता में लाल, द्वापर में पीत और कलियुग में काला पड़ जाता है, पिछले युग में एक चौथाई धर्म और तीन चौथाई पाप होता है, जब काल आजाता है, तो मैं ही महाकाल बन कर सम्पूर्ण जगत का नाश कर देता हुं ॥

मैं ही विश्वात्मा हुं, मैं ही सर्वगत और अनन्त हुं, अकेला काल चक्र को घुमाता हूं, और जीवों की मृत्यु करता हुं, मैं सब में व्यापक हूं, परंतु मुझ को कोई नहीं जानता॥

हे मार्कण्डेय मेरे अंदर जाकर यदि तुम ने कुछ कष्ट पाया है तो उस से तेरे सुख का उदय होगा, वहां जाकर जो

कोई जड़ और चेतन पदार्थ तुमने देखे हैं वह सब मेरे ही रचे हुए हैं जब तक युगों की एक सहस्र आवृत्ति न हो जायेगी तब तक मैं इस दिशा में सोऊंगा ॥

जब तक ब्रह्मा न जागेंगे मैं यहां ही इसी दिशा में रहूंगा जाओ तुम ऋषियों में परम पूजित होगे, ब्रह्मा जी के जागने में अभी काल है तुम भी यहीं ठहरो, उन के जागने पर हम दोनो एक रूप होकर आकाश पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और सम्पूर्ण जड़ चैतन्य जीवों की रचना करेंगे, यह कह कर वह दिव्यरूप देवात्मा वहीं अन्तर्धान होगए, और मैं ने उस महा प्रलय के अद्भुत स्वरूप और सृष्टि रचना देखी ॥

हे युधिष्ठर वह कमल लोचन यही श्री कृष्ण हैं, जो तुम्हारे संबन्धी हैं, इसी पीताम्बर धारी को देख कर मुझे सारा पिछला बृत्तांत याद आगया है, यह परमशरणाय है, हे युधिष्ठर तुम इसही की शरण जाओ ॥

यह सुन कर पांडवों ने द्रौपदी सहित श्री कृष्ण जी को नमस्कार किया, और पुरुषोत्तम ने भी उन से शुभ वचन कह कर उन का सन्मान किया ॥

एकसौउनहत्तर का अध्याय

—:०:—

कलियुग का भविष्य बृत्तांत और कल्की अवतार ॥

तब युधिष्ठर के पूछने पर कि अंत को कलियुग में क्या होगा। मार्कण्डेय ने उत्तर दिया कि हे युधिष्ठर कलि युग में अधर्म के तीन अंश होंगे और धर्म का केवल एक ही अंश रह जायेगा, चारों वर्ण कपट में प्रवृत्त होंगे, पण्डित अभीमानी होंगे, जिस से सत्य क्षीण होजायेगा और सत्य के क्षीण होने से आयु क्षीण होजायेगी ॥

आयुक्षीण होने से विद्या बल से जीवि को पलब्धि न होगी। लोभी और क्रोधी लोग होंगे और परस्पर वैर रखेंगे। क्षत्रिय पृथ्वी के रक्षक होंगे और चाण्डाल कर्म करेंगे। सन का वस्त्र प्रधान होगा और कोदों का अन्न उत्तम गिना जायगा मनुष्य केवल स्त्री के मित्र होंगे। बहुधा लोग मछली के मांस और भेड़ि बकरी के दूध को बेच कर निर्वाह करेंगे। सब का मन हिंसा करने में लगा रहेगा और जप तप न करने वाले हो कर कई हेतु बतला कर वाद करेंगे, नदियों के किनारे खेती हुआ करेगी ॥

जो लोग व्रत और श्राद्ध करेंगे भी वह भी लोभ वश परस्पर अर्थात् पिता पुत्र को और पुत्र पिता के खिलाफ करेंगे।

भोजन के सब पदार्थ मर्यादा रहित होंगे। ब्राह्मण वेद निन्दक होकर व्रत नहीं करेंगे। और बहुत सा धर देकर के और अनेक हेतु दिखा कर व्रत और होम छोड़ देंगे। और निषिद्ध कर्मों की ओर रूचि करेंगे। अनेक वाद करने से लोग उन की निन्दा भी न करेंगे ॥

ऐसे कर्मों के कारण जगत् म्लेछों से भर जायगा और वह कृपण, भाई बन्धु और विधवाओं को धन हरने वाले होंगे, अल्प पराक्रमी लोग दुष्टों का दिया हुआ दान ग्रहण कर लेंगे, राजा लोग पापी मूर्ख और अपने आप को पण्डित समझ कर एक दूसरे को मारेंगे। क्षत्रिय रक्षा करने के स्थान पर जगत में कांटे हो जायेंगे। और घमण्डी हो कर केवल दण्ड देने में ही रूचि रखेंगे सार यह कि लोग स्वेच्छा चारी दुष्ट पराक्रमी मिथ्या लिंगी और सब प्रकार के आचार के दोषों से युक्त होकर जगत को क्लेशालय बना देंगे। यहां तक कि देवता पूजन छोड़ कर मनुष्य कबरों की पूजा करना आरंभ कर देंगे और देवालयों के स्थान कबरस्तान बन जायेंगे। लोगों में रौद्र कर्म (निर्दयता) धर्म हानि, मांस भक्षण और मद्यपान प्रवृत्त होंगे। ब्राह्मण वेगार से पंडित होंगे, और जब युग का अन्त होगा, तो फल से फल, और पुष्प से पुष्प उत्पन्न होंगे, ऐसा समय आने पर सब लोग नाश को प्राप्त होंगे, नक्षत्रों की प्रभा जाती रहेगी, और ग्रह ज्योति हीन होजायेंगे, और दूसरे छः ग्रहों के समर्थ सूर्य तपने लगेगा अग्नि सब ओर बहुत लगा करेगी, अतिथि सेवा जाती रहेगी, उस समय पृथ्वी पर घोर पाप होंगे॥

तब भगवन् कल्की अवतार लेंगे और सम्भल ग्राम के एक ब्राह्मण के हां उत्पन्न होंगे उन का नाम विष्णु यश होगा वह सब म्लेच्छों को नष्ट करके धर्म के रक्षक बनेंगे इस प्रकार कलियुग सतयुग में बदल जाएगा॥

यह कह कर मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को सत्य धर्म करने का उपदेश दिया और कहा कि मनुष्यों पर दया रखना और प्रजा का प्रीति से पालन करना आप को सर्व दशा में उचित है ॥

युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय के उपदेश को स्वीकार किया और कहा कि आपके बताए हुए धर्म को अवश्य करूंगा ॥

एकसौसत्तर का अध्याय

—:-०-:—

परक्षित के पुत्र राजशल और दल और वामदेव का इतिहास ॥

तब मार्कण्डेय फिर बोले कि हे युधिष्ठिर अयोध्या पुरी में इक्ष्वाकु वंश का परिक्षित नाम राजा हुआ है एक समय सेना समेत अहेर करते हुए वह राजा किसी वन में जा निकला और सेना से रहित हो गया ॥

इस अवस्था में वह एक सरोवर के निकट आया वहां उस ने कमलों के पत्तों और घास फूस को इकट्ठा करके घोड़ों को चरने के लिए बांध दिया और स्वयं उस सरोवर में स्नान करके शांतचित हो आसन बिछा कर लेट गया ॥

तुरन्त ही कहीं से गाने का शब्द सुनाई दिया राजा ने इधर उधर देखा तो एक दिव्य स्त्री सामने आई राजा ने पूछा

कि तुम कौन हो! कन्या ने कहा कि मैं कन्या हूं राजा ने कहा कि मेरे साथ विवाह करो! कन्या ने कहा कि यदि मुझ को कभी जल नहीं दिखाओगे तो मैं तुम्हारे साथ विवाह करती हूं राजा ने कहा कि बहुत अच्छा मैं तुम को कभी जल नहीं दिखाऊंगा यह कह कर राजा ने उस सुकन्या से विवाह किया ॥

इस के पश्चात् राजा की सेना भी वहां आ पहुंची, और उस स्त्री को साथ ले कर राजा नगर में चला आया तब उस परम सुन्दरी के लिये राजा ने एक सुन्दर भवन बनवाया और दिन रात उसी में रहने लगा राज्य कार्य को सर्वथा त्याग कर दिया तब तो राजा के प्रधानों को बड़ी चिन्ता हुई और वह उपाय सोचने लगे ॥

आस पास की स्त्रियों से पूछा कि तुम कोई विशेष बात बता सकती हो, उन्हों ने कहा कि और तो कुछ नहीं परंतु यह आश्चर्य की बात है कि यहां जल आने नहीं पाता, तब मंत्रियों ने एक सुंदर बाग बनाया, और उस में अत्यंत रमणीक एक सुंदरी बावली लगवाई, परंतु ऐसी कि उस को कोई मनुष्य न देख सके ॥

एक दिन राजा के पास जाकर कहने लगे कि यह सुंदर रमणीक भवन और उद्यान आप की क्रीड़ा के लिये हैं, आप इस में वास करके आनन्दोपलब्ध करें, राजा वह सुंदर वन देख कर उस में चला गया और स्त्री समेत उस भवन में रहने लगा ॥

एक दिन क्रीड़ा करते २ विश्रांत हो राजा भवन के निकट आया और अमृत के समान जल को देख कर और दैव वश अपने नियम को भूल कर उस प्रिया से कहने लगा कि आईये इस में स्नान करें, यूं ही वह स्त्री पानी में गई वह फिर नहीं उठी ॥

राजा ने बहुत शोक किया और बहुतेरी खोजना की परंतु उस का कोई पता नहीं लगा, जब राजा ने बावली का पानी निकलवाया परंतु उस प्रिया की हड्डी तक वहां न मिली राजा ने एक मेंडिक वहां देख कर यह विचार किया कि मेंडिक ही मेरी प्रिया को खागया है, उस ने हुक्म दिया कि मेंडिक का बीज नाश किया जाये, और जो मनुष्य मुझे मिलने आवे मेंडिकों की भेंठ लावे ॥

यह आज्ञा पाकर मनुष्य दिशों में जाकर मेंडिकों को मारने लगे, यह सुन कर मेंडिकों को बड़ा दुःख हुआ और वह अपने राजा के पास गये और सब वृत्तांत उस को सुनाया मेंडिक राज ने तपस्वी का रूप धारण किया और परीक्षित के पास आकर कहने लगा कि हे राजन् यह वृथा अनर्थ क्यों करते हो, इन विचारे क्षुद्र मेंडिकों ने क्या किया है कि उन निरापराधों को मार रहे हो, उन को मारना आप को उचित नहीं ॥

राजा बोला कि हे मुनीश्वर मुझे मत रोको इन दुष्ट मेंडिकों ने मेरी प्रिया को खालिया है इस लिये मैं इन का

सब नाश करूंगा, मैंडिक राज मन में बहुत दुखी हुआ, और राजा को बोला कि हे राजन् अब तुम खेद मत करो, मैं मैंडिकों का राजा हुं, वह स्त्री मेरी पुत्री है, परंतु सदैव से दुःशीला है, कई राजाओं के साथ उस ने यह छल बल किये हैं, राजा बोला कि कृपा करके उसे मुझ को देदो, मैं उस के विना जी नहीं सकता, यह सुन कर मैंडिक राज ने अपनी कन्या उस को दे दी, और कहा कि देख इस राजा की सेवा में तत्पर रहियो, तुमने पहिले बहुत राजाओं से छल किया है। इस से तुम्हारे पुत्र ब्राह्मणों को अप्रिय कर्म करने वाले होंगे॥

राजा उस मैंडिकराज कन्या को पाकर इतना प्रसन्न हुआ कि मानो तीनों लोकों का राज्य उस को प्राप्त होगया है, तदनंतर राजा ने मैंडिकराज को दंडवत की और कहा कि आपने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है, मैण्डकराज अपनी पुत्री से विदा हुआ और अपने घर चला आया, तब राजा परीक्षित सुख पूर्वक अपनी प्रिया से रहने लगा॥

उस स्त्री से राजा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए जिन के शल, बल और दल नाम थे तत्पश्चात् राजा शल को राज्य देकर वन में तपस्या करने चला गया॥

एक दिन शल आखेट करने गया और एक हरिण के पीछे रथ को डाला रथ हरिण को नहीं पकड़ सकता था राजा ने सारथी पर क्रोध किया परन्तु सारथी बोला कि इस को तो

वाम्य घोड़े भी नहीं पकड़ सकते राजा ने कहा कि वाम्य घोड़े क्या होते हैं परन्तु वाम्य जी के भय से सार्थि ने न बताया तब राजा ने तलवार निकाली और कहा कि यदि न बताएगा तो इस तलवार से मारा जाएगा डरते हुए सार्थि ने कहा कि वह मन की भांति शीघ्र ही चलने वाले घोड़े वामदेव जी के हैं ॥

राजा ने यह सुन कर अपने रथ का मूंह वामदेव जी के आश्रम को मोड़ा और उस के पास जाकर प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन् मेरे घोड़ों से रथ शीघ्र नहीं चल सकता और मृग वाण खा २ कर भाग जाते हैं मुझे अपने घोड़े आखेट करने को दीजिए ॥

वामदेव जी ने अपने दोनों घोड़े दे दिए राजा ने मृगों को मारा और घर ले आया फिर सार्थि को कहा कि यह घोड़े ब्राह्मणों के योग्य नहीं हैं इन को हमारे तवेले में बांध दो वामदेव इन को लेकर क्या करेंगे ॥

एक मास तक जब घोड़े वापिस न हुए तो वामदेव ने अपने आत्रेय नाम शिष्य को भेजा और कहला भेजा कि यदि आपका काम निकल गया हो तो वाम्य घोड़े लौटा दीजो राजा ने जब यह संदेशा सुना तो उस ने उत्तर दिया कि वामदेव जी को कह दें कि यह घोड़े ब्राह्मणों के रखने के योग्य नहीं हैं यह तो राजाओं के योग्य हैं ॥

वाम देव यह उत्तर सुन कर वड़ा क्रोधित हुआ, और आप

चल कर राजा के पास गिया, परन्तु राजा ने घोड़े देने से इनकार किया। वाम देव ने फिर कहा कि हे राजन् मेरा कहा मानो और घोड़े देदो, नहीं तो वरुण की पाश में बांधे जाओगे। राजा ने कहा कि घोड़े ब्राह्मणों के योग्य नहीं ब्राह्मणों को बैल चाहिये, वह उनकी सवारी करें, वरन वेह भी नहीं उनको तो वेदों के छन्द धारण करते हैं। वाम देव बोला कि वास्तव में हम और हमारे सरीखे और ऋषि वैदिक छन्द ही धारण करते हैं, परन्तु परलोक में, यहां तो हम भी सवारी की आवश्यकता रखते हैं॥

राजा बोला कि आप चार गधे और हरिजात के घोड़े अपनी सवारी के लिये लेजाईये, परन्तु घोड़े नहीं दूंगा, क्या आप उन घोड़ों के विना सवारी ही नहीं कर सकते, जो वस्तु राजाओं की सवारी के योग्य है वह मेरी है आप की नहीं, वाम देव बोला कि घोड़े देदो नहीं तो अभी मारे जाओगे, राजा ने कहा कि जिन मेरे मनुष्यों ने इस ब्राह्मण को मेरे प्रतिकूल अड़काया है और मेरे मारने को उद्यत किया है वह वहीं आकर इसको शल और खड़क से मार दें॥

वामदेव ने कहा कि तुम्हारा नियम था कि अपना काम करके घोड़े लौटा दिये जावेंगे, सो यदि तुम अपना प्रिय चाहते होतो घोड़ों को लौटा कर अपना नियम पालो नहीं तो मारे जाओगे, शल ने कहा कि आखेट खेलना ब्राह्मणों का धर्म नहीं यह घोड़े केवल मृगया के अर्थ हैं, सो यदि तुम और कुछ

मांगो तो मैं पुण्य प्राप्त के लिये तुम को दे दूंगा, परन्तु घोड़े नहीं दे सकता ॥

राजा के इतना वचन कहने पर चार घोर रूप महा काय दैत्य हाथ में त्रिशूल लिये आगए, और उन्हों ने पल के पल में राजा को मार डाला, मरते समय शल ने अपने भाई दल को आज्ञा दी कि वामदेव को घोड़े न दिये जायें क्योंकि यह ब्राह्मण सुशील और धर्मात्मा नहीं है ॥

शल को मरा हूआ देख कर दल को राज्याभिषेक किया गया, तब वामदेव दल के पास गए और कहने लगे कि यदि तुम को अधर्म का डर है तो हमारे वाम्य घोड़े हम को देदो, क्योंकि सब धर्म में यह धर्म श्रेष्ठ है कि ब्राह्मण की वस्तु अंगीकार नहीं करनी चाहिये, दल को वड़ा क्रोध आया और उस ने विष से बुझा हुआ तीक्ष्ण बाण मंगाया, वामदेव बोला कि यह बाण तुम्हारा दश वर्ष के पुत्र शेनजित को लगेगा परन्तु दल ने इस का वचन नहीं माना और बाण छोड़ दिया ॥

परन्तु वाम देव को छोड़ कर वह बाण राज भवन में जा कर राजकुमार को लगा और उसको मार दिया "दल ने और बाण लाने को कहा, परन्तु वाम देव ने कहा कि तू इस बाण को धनुष पर चढ़ाते ही जड़ हो जायगा, दलने फिर ब्राह्मण के वचन को तिरस्कार किया और तुरन्त जड़ होगिया ॥

तब वह अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया, वाम देव ने

कहा कि तू इस बाण को अपनी रानी से छु दे और तेरे हाथ पाओं उसी समय खुलजायेंगे, दल ने ऐसा ही किया और तत्त्वण अच्छा हो गया, तब रानी ने ब्राह्मण से क्षमा चाही, और अपने पुत्र के लिये प्रार्थना की। वामदेव ने प्रार्थना स्वीकार की, दलने भी नम्र हो गिया, और वामदेव को प्रणाम कर के घोड़े दे दिये ॥

एकसौ इकहत्तर का अध्याय

—:-०-:—

वक ऋषि और इन्द्र का संवाद ॥

तब युधिष्ठिर ने वक ऋषि का हाल पूछा, मार्कण्डेय जी सुनाने लगे कि एक समय जब देवासुर संग्राम समाप्त हो चुका और इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य मिल गिया, और पृथ्वी पर सब प्रकार का सुख हो गिया, तो एक दिन इन्द्र एरावत पर बैठ कर अपनी पार्थिविक प्रजा को देखने आया, और सब स्थानों को देखता हुआ पूर्व दिशा में एक परम रमणीक आश्रम में गिया, वह आश्रम वक ऋषि का था, देव इन्द्र को देख कर ऋषि ने अर्घपाद्य दिया और सत्कार पूर्वक पूजा की देवेन्द्र सुख पूर्वक बैठ गये और ऋषि से पूछने लगे कि हे महाऋषि तुम चिरंजीवी हो बतलाओ तो सही कि चिरंजीवी को कौन सी बात तुम को दुःख देती है

बक ने कहा कि अप्रिय पुरुषों के साथ वास होना प्रिय पुरुषों से वियोग होना सत्पुरुषों और सुहृदों का नाश होना और असत्पुरुषों और शत्रु से मिलाप होना इन बातों से चिरंजीव मनुष्यों को पीड़ा होती है फिर बल और ऐश्वर्य से हीन होकर दूसरे मनुष्यों से निरादर पाना पड़ता है और नाना प्रकार के कुत्सित संयोग वियोग होते रहते हैं कुलीनों की क्षय और अकुलीनों की वृद्धि इस से अधिक और दुःख नहीं कुलीन पुरुषों का दुष्टों के वश में हो जाना धनाढ्यों का दरिद्रियों का अपमान करना अज्ञानीओं का सुखी रहना ज्ञानियों का क्लेश पाना यह सब बातें अत्यन्त दुःखदाई हैं ॥

फिर इन्द्र ने पूछा कि हे महर्षि चिरञ्जीवों के लिए फिर कुछ सुख भी है कि नहीं बक ने कहा कि जो पुरुष अपने घर में आठवें पहिर विना अन्न के शाक भी पका कर खाये और अपनी जीविका कुमित्रों के आधीन रखे उस से बढ़ कर कोई सुखी नहीं अपने घर में रूखी सूखी रोटी अपने ही उद्योग से प्राप्त की हुई पानी के घूंट से खा लेना परम सुखदाई है परन्तु दूसरे के घर में निरादर सहित स्वादिष्ट मिष्टान्न भोजन अच्छे नहीं हैं जो मनुष्य पित्रों और अतिथियों को खुला कर शेष अन्न से अपना भोजन करता है वह भी आप अत्यन्त सुखी है ॥

इस के अतिरिक्त जो अतिथि सेवक ब्राह्मण भक्त और पात्र को दान देने वाला है उस से भी बढ़ कर कोई श्रेष्ठ नहीं

नहीं है इस प्रकार की वार्तालाप करके इन्द्र अपने धाम को चला गया ॥

एकसौ बहत्तर का अध्याय

—:०:—

राजा शिवि का बृत्तांत, और दान धर्म ॥

तब युधिष्ठर बोले कि महाराज आप ने ब्रह्म ऋषियों का प्रभाव तो भले प्रकार सुनाया अब राजर्षियों का भी वर्णन कीजीये, मार्कण्डेय ने उत्तर दिया कि एक समय कुरुवंश में सुहोत्र नाम राजा हुआ है, एक समय वह ब्रह्मर्षियों का दर्शन करके लौट कर आरहा था कि रस्ते में उस को उशीनर का पुत्र राजा शिवि मिला. दोनो ने एक दूसरे को दंडवत प्रणाम की, और एक दूसरे की आयुअनुसार उसका सत्कार किया, परन्तु एक दूसरे को मार्ग किसी ने न दिया, वह उस को कहे कि रास्ता छोड़ दीजिये, और वह उस को कहे, दोनों के रथ आमने सामने देर तक खड़े रहे ॥

इतने में नारद जी पहुंच गए और राजाओं को इस दशा में देख कर बोले कि आप दोनों इस अवस्था में क्यों खड़े हैं, राजा बोले कि शास्त्र में कहा गया है कि स्त्री को, अपहाज को, समर्थ को और अपने से वृद्ध को रस्ता छोड़ना चाहिये सो हम में से कौन दूसरे को रस्ता छोड़े, हमारे यह गुण सब बराबर हैं ॥

तब नारद जी ने कहा कि मनुष्य को कोमल वचनों से क्रूर पुरुष को और क्रूर वचनों से कोमल पुरुष को, साधू को असाधू वचनों से और असाधू को साधू वचनों से वशी भूत करे, इस से यह उशीनर का लड़का तुम दोनों में अधिक शील वान है परन्तु फिर समझ लो जो तुम में से अधिक शीलवान हो वह दूसरे को रास्ता छोड़ दे। यही देवताओं का निर्णय है ॥

नारद यह कह कर चुपके हो रहा, और सहोत्र ने शिवि की प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया और उसको रास्ता छोड़ कर चला गया और सुनो ॥

एक समय नहुष का पुत्र राजा ययाति पुरवासियों सहित अपनी राज सभा में बैठा हुआ था, कि एक ब्राह्मण ने गुरु दक्षिणा देने के लिये दान मांगा और कहा कि हे महाराज मुझे नियम पूर्वक भिक्षा दीजिये, राजा ने पूछा कि वह नियम क्या है? ब्राह्मण बोला कि आजकल लोग मांगने वाले पर दान देकर क्रोधित हो जाते हैं। राजा ने कहा कि न मैंने कभी किसी को यह कहा है कि यह पदार्थ देने के योग्य नहीं है और न ही दान देकर यह कहा है कि मैंने अमुक दान दिया है। मेरे पास जो कुछ है सब मांगने पर दे सकता हूं, यह कह कर उस राजा ने उस ब्राह्मण को यथेष्ट दान दिया ॥

एकसौतिहत्तर का अध्याय

—:०:—

वृषदर्भक और सेदुक का वृत्तान्त अग्नि और इन्द्र का शिवि के धर्म की परिक्षा ॥

बृषदर्भक और सेदुक दो बड़े प्रतापी और शूर वीर राजा हुए हैं, सेदुक को ज्ञात हुआ कि बृषदर्भक बड़ा दानी है और वह चुपके से ब्राह्मणों को यथेष्ट दान दे देता है, एक दिन किसी ब्राह्मण ने उस से सहस्र घोड़े गुरु दक्षिणा के लिये मांगे, राजा ने कहा कि सहस्र घोड़े मेरे पास तो नहीं हैं, परन्तु यदि तुम बृषदर्भक के पास जाओ तो वह तुम को अवश्य ही यह दान देगा ॥

ब्राह्मण बृषदर्भक के पास आया, परन्तु उस ने दान देने के स्थान पर उस को कोड़ा मारा, ब्राह्मण ने यह तिरस्कार देख कर राजा को शाप देना चाहा, राजा इस से घबरा गया, और ब्राह्मण को कहने लगा कि आप आज ठहिरये, कल जो आमदनी होगी आप को दे दी जायेगी, ब्राह्मण ने स्वीकार किया और प्रातःकाल उठ कर सहस्र घोड़ों से बहुत अधिक धन लेकर अपने गुरु के पास चला गया और सुनो ॥

एक समय देवताओं ने राजा शिवि की परीक्षा करनी

चाही, और इन्द्र और अग्नि को श्येन और कपूतरूप में भेजा कपोत शिवि की गोद में आकर गिरा यह देख कर राजा के पुरोहित ने कहा कि महाराज कपोत का इस प्रकार आप की गोद में गिरना अशुभ है आप दान कीजिए ॥

राजा के दान करने पर कपोत बोला कि महाराज मेरी श्येन से रक्षा कीजिए मैं वास्तव में मुनि हुं और वेद आदि सच्छास्त्र पढ़ा हुं मैं ने अपने अङ्गों को आप के अङ्गों से मिला दिया है इस लिए मुझ वेद पाठी शरण गत को शत्रु के सपुर्द करना अच्छा नहीं ॥

तब श्येन बोला कि यह कपोत पिछले जन्म में आप का पिता था आप को इस की रक्षा करना उचित है राजा शोक सागर में निमग्न हो गया और नहीं जानता था कि किस कर्म के करने से मेरा पाप कर्म से छुटकारा होगा उस ने श्येन को कहा कि आप किसी अन्य पशु का मांस हम से ले लें परन्तु कपोत को मत मांगो ॥

श्येन बोला बहुत अच्छा आप अपनी जंघों से कपोत के भार के बराबर मांस काट दें मैं स्वीकार कर लूंगा राजा ने यह बात स्वीकार की कहते हैं कि वह कपोत इतना भारी हो गया कि राजा की जंघों का तो क्या कहना राजा स्वयं भी उसी तुला में बैठ गया ॥

श्येन यह देख कर बोला कि हे राजन् आप की रक्षा हो और वहीं अन्तर्धान हो गया । तब कपोत ने भी अपनी

स्वरूप प्रगट किया और कहा कि हे राजन् आप का कल्याण हो, हमने आप की परिक्षा की है, आप दान धर्म में सर्वथा परिपक्व निकले हो, मेरे लिये मास काटने में तेरे शरीर पर जहां २ घाव पड़े है वहां सुन्दर सुन्हैरी चिन्ह होंगे, और तेरा यश और कीर्ति संसार से बढ़ेगी, तुम्हारे एक पार्शव से परम यशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा कि जिसका नाम कपोत रोमा होगा ॥

एकसौचुहतर का अध्याय

—:-०-:—

अष्टक, प्रतर्दन, वसुमना और शिवि का वृत्तान्त ॥

एक समय विश्वा मित्र के पुत्र राजा अष्टक ने यज्ञ किया उस में प्रतर्दन और वसुमना उस के भाई तथा उशीनर का पुत्र शिवि भी आये थे, जब वह यज्ञ की समाप्ति करके रथ में बैठ कर जारहे थे तो रास्ते में उन को नारद जी मिले उन्हों ने आदर से उस को रथ पर बिठा कर पूछा, कि हे ब्राह्मण हम ने आप की कृपा से स्वर्ग पाया है, कृपा पूर्वक यह तो बताईये कि हम में से पाहिले स्वर्ग स क्षीण पुण्य होकर कौन गिरेगा, नारद बोला कि अष्टक पाहिले गिरेगा। उन्हों ने पूछा कि हे महाराज कसे? नारद बोले कि एक वेर मैं इस

के घर में गया और आती वार कई सहस्र चरती हुई गौओं को देख कर मैंने पूछा कि यह गौएं कैसी हैं, इस ने घमंड से कहा कि मैंने इन को छोड़ रखा है, सो यद्यपि यह दानी है, तथापि अपनी श्लाघा आपकरन दोष है ॥

फिर उन्हों ने पूछा कि महाराज शेष तीनों में से पहिले कौन गिरेगा, नारद ने कहा कि प्रतर्दन, उन्हों ने कारण पूछा, नारद ने कहा कि एक वार मैं इस के साथ रथ पर बैठा हुआ जा रहा था कि किसी ब्राह्मण ने इस से घोड़ा मागा इस ने रथ का एक घोड़ा खोल दिया थोड़ी दूर जाकर दूसरे ने घोड़ा मागा और इस ने दूसरा घोड़ा भी खोल दिया, और इसी प्रकार तीसरा और चौथा घोड़ा भी खोल दिया और रथ को अपने भुज वल से हांकता हुआ चला, तब इस ने कहा, कि ब्राह्मण लोग योग्य और अयोग्य बात का विचार नहीं करते, इस को दान देकर भी इस प्रकार के दोष लगाना इस को स्वर्ग से गिरा देगा ॥

इसके पश्चात् उन्हों ने पूछा, कि महाराज फिर कौन क्षीण पुण्य होगा, नारद बोले कि हे वसुमना, उन्हों ने कहा कि महाराज कैसे? नारद ने कहा कि एक बार मुझे को पुष्परथ की अवश्यकता थी, मैं वसुमना के घर में गिया, ब्राह्मण स्वस्ति वाचन कर रहे थे, इसने कहा कि भगवान् यह रथ आप ही का है परन्तु दिया लिया कुछ नहीं फिर दूसरी और फिर तीसरी वेर मैं इस के स्थान पर गया, परंतु यद्यपि इस ने कहा कि यह रथ आप ही का है, इस ने दिया

लिया कुछ नहीं, इस प्रकार से द्रोह वचन करने के कारण यह क्षीण पुण्य अवश्य होगा ॥

फिर उन्हों ने शिवि के विषय में पूछा, नारद बोला कि मैं चाहे क्षीण पुण्य होकर नीचे आ जाऊं परन्तु शिवि नहीं आ सकता इस का पुण्य उपचय बहुत है उन्हों ने कहा कि किस प्रकार नारद बोले कि एक वेर एक ब्राह्मण इन के स्थान पर आया राजा ने पूजा सत्कार किया और भोजन खाने को कहा ब्राह्मण बोला कि मैं भोजन नहीं खाया करता परन्तु यदि तू अपने पुत्र का मांस बनावे तो मैं निस्संदेह खा लूंगा राजा ने कहा कि बहुत अच्छा मैं अभी बनवा देता हूं तत्पश्चात् ब्राह्मण शौचादि कर्म करने बाहिर चला गया और राजा ने अपने पुत्र को मार कर उस ब्राह्मण के लिये भोजन बनवाया ॥

बहुत काल परीक्षा करने पर ब्राह्मण न आया राजा उस मांस भोजन को शिर पर उठा कर ब्राह्मण को ढूंडने के लिये चला रास्ते में लोगों ने कहा कि राजन् वह ब्राह्मण बड़ा क्रूर स्वभाव और क्रोधी है उस ने तेरी अश्वशाला हस्तिशाला और सब स्थानों को दग्ध कर दिया है राजा चुपका हो रहा और जब ब्राह्मण मिला तो राजा ने कहा कि महाराज भोजन प्रस्तुत है मैं आपकी खोजना करता हुआ यहां आया हूं लीजिए और खाइये ॥

मांस भोजन को शिर पर उठाए हुए राजा को देख कर

ब्राह्मण लज्जित हो गया और कहने लगा कि लाओ मैं खाता हुं पात्र को खोल कर वह कुछ काल उस को देख कर बोला कि तुम ही इस को खाओ राजा ने कहा बहुत अच्छा और खाने को उद्यत हुआ परन्तु ब्राह्मण ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि ऊपर को देखो राजा ने आंख उठाई और अपने पुत्र को देव कुमारों के रूप में देखा, ब्राह्मण बोला कि हे राजन् तू ने निश्चय क्रोध को जीत लिया है, इस से तू अक्षय स्वर्ग को पावेगा, देख मैं विधाता हुं और तेरी परीक्षा करने आया था ॥

पश्चात् राजा के मंत्रियों ने पूछा कि हे राजन् आपने यह कर्म किस कामना से किया था, राजा बोला कि यश ऐश्वर्य भोग आदि किसी वस्तु की कामना से मेरा दान नहीं होता, मैं निष्काम दान करता हुं, यह सत्य पुरुषों का मार्ग है पापी लोगों का दान किसी कामना को पूरा करने के निमित्त होता है ॥

एकसौ पचहत्तर का अध्याय

—:-०-:—

राजा इन्द्रद्युम्न का स्वर्ग से गिरना, और फिर स्वर्ग में जाना ॥

तब युधिष्ठर ने पूछा कि हे ऋषि वर आप से अधिक भी

किसी की आयु है? मार्कण्डेय ने उत्तर दिया कि इन्द्रद्युम्न राजा मुझ से बड़ा है, एक समय वह स्वर्ग से गिराया गया कि तुम्हारी कीर्ति अब संसार में नष्ट हो गई है अब तुम पृथ्वी पर जाओ वह विचारा मेरे पास आया और पूछने लगा कि आप मुझ को जानते हैं मैं ने कहा कि मैं इस पृथ्वी पर किसी स्थान में एक रात्रि से अधिक कभी नहीं ठहरा मैं आप को नहीं जानता हुं उस ने पूछा कि तुम से अधिक भी चिरंजीवी कोई और भी है मैंने कहा कि प्रावारकर्ण नाम उल्लू हिमालय पर्वत की शिखर पर रहता है वह मुझ से भी अधिक आयू का है इन्द्रद्युम्न ने कहा कि मुझ को उस के पास ले चलो तब राजा ने मुझ को घोड़ा बनाया और उस उल्लू के पास गया, राजा ने पूछा कि आप मुझ को जानते हैं? उल्लू ने कुछ देर विचारा और कहने लगा कि नहीं मैं नहीं जानता? राजा ने पूछा कि क्या तुम से अधिक चिरंजीवी कोई और भी है? उस ने कहा कि हां इन्द्रद्युम्न सरोवर नाडिजाघ वगला रहता है वह मुझ से भी अधिक आयू का है राजा ने उस को भी साथ लिया और उस नाडिजाघ के पास गया और उस से पूछने लग कि क्या आप मुझ को जानते हैं? वगला मुहूर्त्त भर सोच कर बोला कि मैं आप को नहीं जानता? राजा ने पूछा कि तुम से अधिक कोई और वृद्ध तुम्हें ज्ञात है बगले ने कहा कि इसी सरोवर में एक अकूपार नाम कछूआ मुझ से भी अधिक वृद्ध है राजा ने कहा कि कछुए को बुलाइये बगले ने कछूए को बुलाया और कहा

कि यह राजा आप से पूछते हैं कि क्या आप इन को जानते हैं? कछूए ने कुछ देर विचार किया और फिर कहा कि हां इन को क्यों नहीं जानते? इन्हों ने बड़े यज्ञ किए और सरोवर बनाए यह सरोवर भी इन्हीं का बनाया हुआ है॥

जूंही कछुयें ने यह बात कही, देवलोक से पुरथाबमान आया, और देवताओं ने कहा कि हे इन्द्रद्युम्न तुम्हारी कीर्ति अभी तक संसार में बाकी है, चलो तुम स्वर्ग में चल कर बसो इन्द्र द्युम्न ने फिर हम सब को अपने २ स्थानों में छोड़ा, और विमान में बैठ कर स्वर्ग को चला गया॥

पाण्डव बोले कि आपने बहुत अच्छा किया कि इन्द्रद्युम्न को फिर स्वर्ग में पहुंचा दिया, मार्कण्डेय ने कहा कि श्री कृष्ण ने भी तो राजा नृग को फिर स्वर्ग में भेजा है॥

एकसौछेहतर का अध्याय

—:-०-:—

दानधर्म वर्णन॥

इन्द्रद्युम्न का हाल सुन कर युधिष्ठर ने पूछा कि किस प्रकार दान करने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है, तब मार्कण्डेय जी बोले कि चार प्रकार के मनुष्यों का जाना वृथा है (१) पुत्रहीन और अधर्मी का (२) पर पिंडोपजीवी का (३) अपने लिये ही भोजन बनाकर खाने वाले का, और (४)

बाल वृद्ध और अतिथि को विना खिलाये खाने वाले का ॥

सोलह प्रकार के दान निष्फल होते हैं उस मनुष्य को दान देना जो ब्रह्मचर्य से पतित होगया हो, (२) अन्यायोपजित धन दान करना (३) पतित ब्राह्मण को दान करना, (४) झूठ बोलने वाले गुरु को (५) पापी को, (६) कृतघ्न को, (७) ग्राम में भिक्षा मांगने वाले को, (८) वेद बेचने वाले को, (९) शूद्र की रसोई करने वाले को, (१०) जन्म मात्र ब्राह्मण को, (११) शूद्रा भार्या रखने वाले ब्राह्मण को, (१२) स्त्रियों को, (१३) सांप पकड़ने वाले को (१४) सेवा करने वाले को, (१५) चोर को और मिथ्यावादी को ॥

जो पुरुष डर कर दान करता है वह उस के फल को गर्भ में भोगता है, और जो द्विजन्मों को दान करता है वह उस के फल को वृद्धभाव से भोगता है, इस लिये सदा द्विजों को दान देना उचित है, अर्थात् वेद शास्त्र को पढ़ने वाले जिन के संस्कार पूर्ण वैदिक रीती से हुए हैं और जो सदा धर्म कर्म में लगे रहते हैं ॥

युधिष्ठर ने पूछा कि महाराज द्विज लोग किस प्रकार सब दानों को पचा कर दानियों को मोक्ष मार्ग भी दिलाते हैं ऋषि ने उत्तर दिया कि वह लोग शुभ कर्म करते हैं, जिस से आप भी तरते हैं और दूसरों को भी तारते हैं, वेदरूपी नाव उन का परम यन्त्र है ॥

इस के अतिरिक्त श्राद्ध में, काले रंग वाले, बुरे नख वाले, कुष्ठी, कपटी, कुण्ड गोलक आदि ब्राह्मण बिलकुल

निन्दित हैं। धनुष बाण धारण करने वाले भी दान के योग्य नहीं हैं। इनको खिलाने से ब्राह्मण और यजमान अग्नि लकड़ी की भान्ति जल कर भस्म हो जाते हैं। परन्तु जो अन्धे गूंगे और बहिरे हों उन को खिलाना दोष नहीं॥

ऐश्वर्यमान ब्राह्मण को देना निषेध है। एक गौ बहु ब्राह्मणों को नहीं देनी चाहिये क्योंकि उसके बेचने से दानी के पुरखा नरक में जाते हैं "भूखे को अन्न देना बहुत अच्छा है, कुआ बावली तालाब धर्मार्थ लगाना उत्तम कर्म है॥

यमलोक और मनुष्य लोक का बड़ा भारी अन्तर है, रास्ते पर न वृक्ष हैं न पानी यमदूत प्राणियों को उसी रास्ते से लेजाते हैं, अपने दान धर्मानुसार मनुष्यों को वहां सुख दुःख होता है, रास्ते में एक नदी बहती है, जिससे पुण्यात्मा लोग मीठा स्वादिष्ट जल पीते हैं, परन्तु पापी और निकृष्टात्मा के लिये वही मल मूत्र समान है॥

इस के पश्चात् मार्कण्डेय जी ने अनेक प्रकार के दान धर्म का उपदेश दिया, और उसके फल को वर्णन किया जिसको युधिष्ठर ने आनन्द पूर्वक सुना॥

—:o:—

एकसौ सतत्तर का अध्याय

उत्तंक ऋषि और धौंधमारो पाख्यान

तब युधिष्ठर ने कहा कि हे महर्षिवर मैं उत्तंक ऋषि और धुंधमार का वृत्तान्त सुनना चाहता हूं, आप कृपापूर्वक वह परम मनोहर चरित मुझे सुनाइये। मार्कण्डेय जी बोले कि हे राजन् एक समय मरूधन्देश में उत्तंक ऋषि रहिते थे, उन्हों ने बड़ी तपस्या कर के भगवान् विष्णु के दर्शन किये उनका वर प्राप्ती हुई कि तुम्हारी आज्ञा से इक्ष्वाकु वंशी कुवलाश्व राजा धुंधु दैव को मारेगा ॥

इक्ष्वाकु के मरने पर उस का पुत्र शशादं राजा हुआ, उस का पुत्र ककुत्स्थ, उसका अनेना, उस का पृथु, उस का बिश्वगंश्व, उस का अद्रि, उस का युवनाश्व, उस का श्राव, उसका श्रावस्तक, उस का वृहद्दश्व, उस का कुवलाश्व था जो बड़ा गुणवाण था और उस के अनेक बलवान और विद्वान पुत्र थे, जब बृहद्दश्व अपने शूर वीर और धर्मिक पुत्र को राज्य देकर वन को गया तो उत्तंक ने उन को कहा कि अभी आप को बन में आना उचित नहीं, आप अभी हमारी रक्षा के लिये उद्यत रहें, राक्षस लोग हमारे तप में विघ्न करते हैं, हमारे आश्रम के पास उज्जालक नाम वालु का समुद्र है, और उस में मधुकैटभ का महा पराक्रमी धुंधु नाम पुत्र महासुर और उपद्रवी है, उस ने देवता और ब्राह्मणों को नाश करने निमित्त बड़ी तय्यारियां की हैं और ब्रह्मा जी से वर लिया है कि तुम को कोई देवता राक्षस जीत नहीं सकेगा इस लिये आप उस को मार कर देवताओं और ऋषियों का प्रिय काम करें ॥

वह क्रूर कभी एक वर्ष तक सोता है तो उस का श्वास बढ़ता है जिस से वालुका उड़ २ कर आकाश तक जाती है और सूर्य के मार्ग को भी रोक लेती है और बड़ा भूकंप होता है जो सात दिन तक रहता है जिस से मेरी तपस्या में विघ्न होता है उस राक्षस को जो मारेगा उस को वैश्नवी तेज प्राप्त होगा परन्तु आप के बिना किसी और का उस महा पराक्रमी दैत्य को मारना कठिन है ॥

वृहदश्व ने कहा कि हे मुनीश्वर मेरा पुत्र कुवलाश्व बड़ा पराक्रमी है और बलवान पुत्र रखता है वह आपके काम को करेगा आप मुझे जाने की आज्ञा दें ऋषि बोले बहुत अच्छा ॥

अब इस महा पराक्रमी दैत्य का हाल सुनिए, महा प्रलय के अन्त में विष्णु जी पृथ्वी के शेष पर अवलम्बित करके सो गए उन की नाभी से सूर्य के समान प्रकाशमान एक कमल निकला उस कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उन के चार मुख थे और चारों हाथों में चार वेद पकड़े हुए थे ॥

कुछ काल के उपरान्त दो दैत्य जिन का नाम मधु और कैटभ था प्रगट हुए उन को विष्णु भगवान् और ब्रह्मा जी को इस अवस्था में देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ उन्हों ने ब्रह्मा जी को डराया जिस से कमल फूल हिलने लगा और विष्णु जी जाग पड़े और उन महा पराक्रमी दैत्यों को देख कर कहने लगे कि आप के पराक्रम को देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हुं आप मुझ से कोई वर मांगें ॥

दैत्यों ने कहा कि तुम हम को वर देने वाले कौन हो हम से मांगो और हम तुम्हारी मनो कामना पूरी करेंगे। भगवान् बोले बहुत अच्छा मैं तुम से यह वर दान मांगता हूं कि तुम दोनों मेरे हाथों से मारे जाओ॥

दैत्य बहुत चिन्ता में पड़ गए और कहने लगे कि हम अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ नहीं सकते निस्संदेह आप हम को मारेंगे परन्तु हम को अनावृत आकाश में कीजिए और यह वर दीजिए कि हम दोनों आपके पुत्र भाव को प्राप्त हों भगवान् ने कहा कि ऐसा ही हो तब भगवान् ने और कोई अनावृत स्थान न पाकर अपनी दोनों जघों पर उन के शिर रख कर उन राक्षसों को मार डाला॥

जब यह समाचार धुंधु दैत्य ने जो उन दैत्यों का पुत्र था सुना तो बड़ा क्रोध करने लगा उस ने सब देवताओं को क्लेश देने का विचार किया उस ने युद्ध करके सब देवता, और गन्धर्व जीते और विष्णु भगवान् को बहुत दुःखी किया उस के श्वास के साथ लम्बी २ अग्नि की ज्वालायें निकलती थीं और अब वह उज्जालका नाम महामरु स्थल में आ कर रहने लगा और संसार के नाश करने का विचार करने लगा॥

इस प्रकार के उस धुंधु दैत्य का वृत्तांत सुन कर कुव-लाश्व अपने पुत्र की सेना समेत उस को मारने के लिए उत्तंक के साथ चला गया उस राजा ने उज्जालका में जाकर धुंधु

की खोजना की और अपने पुत्रों से रेत को खुदवाना आरम्भ किया बहुत काल के पीछे वह भीषण दैत्य बाहिर आया और यथा पूर्व अपनी अग्नि छोड़ने लगा कुवलाश्व के पुत्रों ने उस के ऊपर तीर चलाए परन्तु कुछ न कर सके निदान धुंधु सब को खा गया ॥

तब कुवलाश्व को बड़ा क्रोध हुआ और वह आप उस के सन्मुख गया उस के जाते ही दैत्य की काया से पानी झरने लगा राजा ने उस को पीकर उस का सब तेज खैंच लिया और उस ब्रह्मास्त्र को फेंका जिस से वह दैत्य तुरन्त भस्मी भूत हो गया त देवताओं न प्रसन्न होकर आनन्द के जयकारे बुलाए और कुवलाश्व को धुंधु मारका उप नाम दिया और उस की बड़ी स्तुति की ॥

धुंधुमार के केवल तीन पुत्र शेष रहे जिन का नाम दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व था और उन्हीं से इक्ष्वाकु कुल की पांपरा चली ॥

एकसौअठहत्तर का अध्याय

—:-०-:—

माता पिता की सेवा और पतिव्रत धर्म, कौशिक ब्राह्मण और एक पतिव्रता स्त्री का सम्वाद ॥

तब युधिष्ठर ने स्त्री धर्म पर बहुत प्रश्न किये और माता पिता की सेवा के सबन्ध में प्रश्न किये। मार्कण्डेय जी बोले कि हे युधिष्ठर-माता पिता दोनों अपनी सन्तान को बड़े यत्न से पालते हैं। माता दश मास अपने बच्चों को गर्भ में धारण करती है। और पिता अनेक प्रकार के व्रत और अनुष्ठान करता है। इस लिये उनकी सेवा करना सब का परम धर्म है। इसी प्रकार स्त्रियों को भी अपने पति की सेवा करनी चाहिये। यही उसका यज्ञ क्रिया श्राद्ध और व्रत आदि है। यदि वह पति की आज्ञानुसार न चले तो उसको किसी व्रत का फल नहीं मिलता है॥

कहते हैं किसी समय कौशक नाम एक बड़ा तपस्वी ऋषि था। एक दिन वह एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ वेद पाठ कर रहा था कि किसी बगली ने ऊपर से विष्ठा की। ऋषि को बड़ा क्रोध हुआ और उसने पक्षिणी की ओर देखते ही उसको निर्जीव कर डाला। तब तो उसके मन में विचार आई कि मैने यह काम बड़ी निर्दयता का किया है॥

तब वह ग्राम में भीख मागने गिया। एक घर में जाने पर अन्दर से शब्द हुआ कि बाहिर ठैहरो मैं बर्तन धो कर अभी आती हूं, ब्राह्मण वहां ठहर गिया, इतने में उस स्त्री का पति आ गिया और वह उसका आदर सत्कार और खाने पीने का सामान करने लग गई, और ब्राह्मण को भिक्षा देना सर्वथा भूल गई॥

जब वह अपने पति को खिला पला चुकी तो उसको ब्राह्मण याद आया और वह भिक्षा लेकर शीघ्र बाहिर आई ब्राह्मण बोला कि तुम ने मुझे इतनी देर क्यों खड़ा किया? यह बोली कि महाराज मुझे क्षमा कीजिये, मेरा पति घर में आया था और उसकी सेवा में मैं आप को भूल गई॥

कौशिक बोला कि अरी मूर्खा स्त्री तू ब्राह्मणों का अपमान करती है। वह स्त्री बहुत शान्ति पूर्वक बोली कि महाराज क्रोध न करिये। मैं ब्राह्मणों का अपमान नहीं करती परन्तु पति को सब से बड़ा देवता समझती हूं॥

कौशिक क्रोध से संतप्त होकर बोला कि हां समझ लिया है ब्राह्मण तो बड़े नहीं हैं तुम्हारा पति ही उन से बड़ा है। तू हमारा निरादर करती है। यह नहीं जान्ती कि इन्द्र भी ब्राह्मणों को प्रणाम करता है ब्राह्मण अग्नि स्वरूप हैं जिसको चाहें भस्म कर डालें॥

तब उस पति वृता स्त्री ने कहा कि महाराज क्रोध को छोड़ कर शान्त चित हूजिये, आप का क्रोध मुझे कोई दुःख नहीं देसकता, मैं बगली नहीं हूं कि आप मुझे को भस्म कर देंगे। मैं ब्राह्मणों के क्रोध को अच्छी प्रकार जानती हूं। ब्राह्मणों के क्रोध की अग्नि दण्डक वन से अभी नहीं बुझी, क्रोध वश ब्राह्मण समुद्र को पी गये और वातापि दैत्य को खा कर पचा गये। मैंने बहुतसी कथायें सुनी हैं और जानती हूं कि उन का क्रोध और प्रमाद बड़ा होता है परन्तु मैं पति को सब देवताओं से परम देवता जानती हूं। उसी की सेवा करने

का धर्म मुझ को प्रिय है। इस से आप मुझे को क्षमा कीजिये॥

मनुष्य की देह में क्रोध बड़ा भारी शत्रु है जो मनुष्य उसको त्याग कर सत्यवादि, जितेन्द्रिय, गुरु भक्त, वेद पाठी, सब को मित्र की चक्षु से देखने वाला और धर्म परायण होता है, देवता उसी को ब्राह्मण कहते हैं, धर्मवित लोग सत्य और आर्जव को परम धर्म कहते हैं जो सनातन है और जिस का जानना बड़ा कठिन है बहुधा धर्म सूक्ष्म भी होता है और उस का प्रमाण श्रुति में नहीं मिलता, आप को उचित है कि आप मिथिला पुरी में जाकर धर्म व्याध से परम धर्म पूछें, वह सत्यवादि जितेन्द्रिय, और माता पिता की सेवा करने वाला है, आप अभी धर्म को तत्वपूर्वक नहीं जानते, वह आप को सब धर्मों को बतावेगा, अब आप इच्छा पूर्वक जाईए, आप का कल्याण हो, और मेरे कहे सुने को क्षमा कीजिये क्योंकि स्त्रियें सब की अवध्य हैं, और मैं सर्वथा निर्दोष हुं॥

कौशिक बोले कि हे सुभगे तेरा कल्याण हो, तेरे उपदेश ने मेरे चित को शान्त कर दिया है, मैं इस को अपने कल्याण का हेतु समझता हुं। मैं जाता हुं, और धर्म सीखता हुं॥

एकसौउन्नासी का अध्याय

—:-०-:—

कौशिक का व्याध की खोजना में मिथिला

पुरी को जाना और वहां उस से धर्मोपदेश सुनना ॥

उस पति व्रता स्त्री के आश्चर्यजनक वचनों को सुन कर कौशिक अपनी दशा पर बहुत विचार करने लगा और उसने सीधा मिथिला पुरी की राह ली, वहां जाकर उस नगर की अद्भुत शोभा देखी, और निवासियों को बड़ा सुंदराकार और हृष्ट पुष्ट पाया ॥

तब उसने धर्म व्याध का घर पूछा और उस को मिलने के लिये गया, व्याध ने दूर से ही देख कर पहिचान लिया और अपने ग्राहकों छोड़ कर उस के पास आकर उस की कुशल क्षेम पूछने लगा ॥

कौशक ने कहा कि धर्म व्याध आप ही हैं। उस ने कहा कि महाराज मैं ही हुं कहिये क्या आज्ञा है, मैं जानता हुं कि आप उस पति व्रता के वचनों से प्रेरित होकर आये हैं जो मेरे योग्य काम हो वह कहिये ॥

कौशिक ने विचारा कि यह दूसरा आश्चर्य है, यह व्याध भी त्रिकालदर्शी प्रतीत होता है, व्याध उस स्थान से उसको घर ले गया और विधि पूर्वक सत्कार करके आसन पर बिठाया ॥

ब्राह्मण ने पूछा कि हे व्याध आप बड़े धर्मात्मा हैं, परंतु यह बताईये कि आप के अजीविका क्या उपाय क्यों ऐसा निषिध है, व्याध बोला कि हे ब्राह्मण यह हमारी कुल का धर्म है, हम

कुल धर्म को छोड़ना नहीं चाहते, विधाता ने हमारी जीविका का यही उपाय बनाया है, मैं अपने धर्म पर चलता हूं, माता पिता की सेवा करता हूं, दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाता हूं यथा शक्ति दान भी देता हूं, जो अन्न देवता भृत्य और अतिथियों से शेष रहता है उस को खाता हूं, किसी को मिथ्या दोष नहीं लगाता हूं ॥

मनुष्य को राज्य भय अवश्य है क्योंकि वह विपरीत कर्म करने वालों को रोकता है, यहां जनक का राज्य है वह विपरीत कर्मियों को दण्ड देते हैं, मैं आप मांस नहीं खाता रात्रि के समय भोजन करता हूं, अशीलवान पुरुष शीलवान और धर्मात्मा हो जाते हैं, जब राजा का आचार खोटा होजाता है तब अधर्म बढ़ जाता है, तब प्रजा का नाश होजाता है, और प्रजा के मनुष्य कोई कुडौल, कोई कुबड़, कोई मोटा कोई पतला कोई नपुंसक, कोई अन्धा, कोई बहिरा ; और सब विकारों से युक्त हो जाते हैं, परंतु हमारा राजा प्रजा का धर्म से पालन करता है, इस लिये प्रजा में कोई अवगुण नहीं है ॥

मनुष्य को योग्य है कि उद्यमी और जितेन्द्रिय रहे झूठ बोलना छोड़ दे जो कोई किसी काम को कहे, उस काम को करदे, द्वेष और भय से धर्म को न छोड़े, निष्काम काम करे सब के हितकारी काम करे, पाप से वृद्ध पाये हुए पुरुषों को देख कर पाप में रुचि न करे, वह लोग तो केवल वायु से भरे हुए चमड़े के समान हैं । अपनी स्तुति और पराई निन्दा कभी न करे ॥

इस प्रकार व्याध ने कई प्रकार की उत्तम २ धर्म और शिष्टाचार की बातें सुनाईं और फिर बोला कि महाराज मैंने अपने ज्ञान और बुद्धि के अनुसार आप को धर्म विषय पर थोड़ा सा संक्षिप्त वर्णन किया है ॥

एकसौ अस्सी का अध्याय

—:०:—

धर्म व्याध का पूर्व जन्म का वृत्तांत कहना और धर्म की सूक्ष्म गति का उपदेश करना और इन्द्रियों के स्वरूप विषय और फल का वृत्तांत ॥

तब धर्म व्याध ने कौशिक को कहा कि महाराज होनहार बड़ी प्रबल है मनुष्यों को पूर्व जन्म कृत कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है यह पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है कि मैं ने इस व्याध वृत्ति को धारण किया हुआ है मैं इस कर्म में केवल निमित्त मात्र हूं, मरे हुए जन्तु मेरे पास बेचने को आ जाते हैं वह मांस कईयों की पेट पालना करता है देखो राजा शिवि ने अपना मांस खिला कर देवता प्रसन्न किये, रंतिदेव की रसोई में दो सहस्र पशुओं का नित्य वध होता था अग्नि भी मांस से ही प्रसन्न होती है ॥

परन्तु शास्त्र में केवल वह मांस खाने की आज्ञा है जो

यज्ञ में मन्त्रों से संस्कार किया गया हो ऐसा मांस खाना दोष युक्त नहीं ॥

राजा सौदास ने शाप वश होकर मनुष्यों का मांस खाया यही समझ कर कि यह पूर्व जन्म कृत कर्मों का फल है मैं मांस बेच कर अपना पेट पालता हूं अपने धर्म को छोड़ना बड़ा अधर्म है इस से सदा अपने धर्म पर दृढ़ रहता हूं ॥

बहुत से मनुष्य कहते हैं कि खेती से जीविका उत्पन्न करना बहुत श्रेष्ठ है परन्तु वहां भी अनेक जीवों का वध होता है, जल में अनेक जीव हैं वनस्पतियें जीव रखती हैं इस से हिंसा तो उस में भी है ॥

संसार में गूढ़ दृष्टि से देखने पर यही प्रतीत होगा कि एक प्राणी दूसरे को खा रहा है, पृथ्वी में कोई स्थान जीवों से खाली नहीं और मनुष्य चलते फिरते उठते बैठते सोते जागते अनेक जीवों को मार डालते हैं, यति लोग हिंसा से बच नहीं सकते परन्तु यत्न करने से हिंसा को कम कर सकते हैं इस से यह विचार नहीं कि मांस खाना और बेचना अत्यावश्यक है और सर्वथा दोष रहित है नहीं इस का निरोध ही उत्तम है परन्तु यह केवल जगत की व्यवस्था बताई गई है देखो हम देखते हैं कि शत्रु शत्रु को और मित्र मित्र को सुख सम्पत्ति प्राप्त हुए देख कर सह नहीं सकते और कुलीन पुरुष दुष्ट व्यवहारों से लज्जित नहीं होते तो क्या सब पुरुषों को ऐसा ही करना चाहिये और जगत का यही व्यवहार होना चाहिये ? नहीं कदापि नहीं !

सार यह है कि इस संसार में धर्म और अधर्म की बहुत सी बातें देखी जाती हैं, उन में धर्म और अधर्म का विचार करके कोई पार नहीं पासकता, इस से जो पुरुष अपने धर्म और कर्म में लगा रहता है वही यश और कीर्ति पाता है ॥

तब व्याध ने कहा कि महाराज धर्म की गति सूक्ष्म है, जिस कर्म से मनुष्यों का भला होता है, चाहे वह विपरीत भी हो सत्य ही है, मनुष्यों को अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलता है, परंतु अज्ञानी मनुष्य अपने कर्मों को दोष न देकर विधाता को दूषित करता है अज्ञान, कपट और चपलता का फल अवश्य है, उस को कोई पौरुष रोक नहीं सकता यदि ऐसा हो तो मनुष्य जिस मनोकामना को करता वही पूरी हो जाती परंतु एसा हो नहीं सकता ॥

मनुष्य बहुधा जगत को ठगते फिरते हैं और कोई दुख नहीं पाते, बहुत से कुकर्म करके भी ऐश्वर्य वाला होजाते हैं कई अनेक देवयजन पूजा आदि करते हैं, परंतु उन की कामना सफल नहीं होती, बहुत लोग पुत्र की कामना से देव पूजन करते हैं और जब पुत्र होता है तो वह कुल को कलंकत कर देता है, जिस से उस का न होना ही अच्छा है, यह सब कर्मों का फल है और धर्म की सूक्ष्म गति इन से प्रकट होती है ॥

कई मनुष्यों को रोग ग्रस लेते हैं और वह ऐश्वर्यवान होकर भी जीवन के सुखों को भोग नहीं सकते, कई मनुष्य भुज का बल रखने पर भी क्लेश पाते हैं, इस प्रकार संसार में

अनेक आधिव्याधियें मनुष्य को पीडित करती हैं परंतु आत्मत्व होने से न वह मरता है, न जीता है न वृद्ध होता है न धनी होता न दरिद्री बनता है, किन्तु उस के कर्मों के फलानुसार उस को सब पदार्थ मिलते जाते हैं ॥

इस प्रकार अनेक दृष्टांतों से व्याध ने कौशिक ऋषि को धर्म की सूक्ष्म गति का उपदेश दिया, तब कौशिक बोला कि हे श्रेष्ठ धर्मी इन्द्रियां क्या पदार्थ हैं उन का निग्रह किस प्रकार होता है और निग्रह करने से क्या फल मिलता है ॥

व्याध बोला कि मनुष्य पहिले ज्ञान के अभिलाषी होते हैं, ज्ञान से काम और क्रोध आजाते हैं, तब उसे अर्थ के लिये चेष्टित होना पड़ता है, वह बड़े २ कार्य आरम्भ करता है और इष्ट पदार्थों का अभ्यासी होजाता है, तब उसे राग उत्पन्न होता है और उस से द्वेष फिर लोभ और मोह उत्पन्न होते हैं ॥

तब मनुष्य दम्भ से धन इकट्ठा करने लग जाता है और दंभ ही उस को अच्छा लगता है, पण्डित और मित्र रोकते हैं, परंतु वह नहीं रुकता और वेद का प्रमाण देकर अपने पक्ष को सिद्ध करता है ॥

तब वह मन, वचन और कर्म से अधर्म करना आरम्भ करता है, उस के साधु गुण नष्ट होजाते हैं, परंतु जो मनुष्य इन दोषों को जान कर पहिले से ही त्याग देता है, वह उन के गुण अवगुण को विचार करके साधुओं की संगति करता है

उस: की बुद्धि धर्म से विपरीत नहीं होती और वह शुभ काम करता है ॥

देखो यह विश्वरूप जगत कैसा अलभ्य है, इस से ५ महाभूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं, इन पांचों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांच गुण हैं, इन के अतिरिक्त मन, बुद्धि, अहंकार, ५ इन्द्रियां, जीवात्मा और तीन रजो, सतो और तमो गुण, इन सत्रह की अव्यक्त संज्ञा है, व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप केवल इन्द्रियार्थ है, अर्थात बाह्य और अभ्यन्तरीय इन्द्रियों के ग्राह्य हैं, इन सतरह नामों में जो बाह्य इन्द्रियों से जानने योग्य पदार्थ हैं और जो अन्तरीय इन्द्रियों के ग्राह्य हैं, उन दोनों में २४ गुण हैं, और इन से जो विविक्त है वही ब्रह्म है ॥

इस के पश्चात् व्याध ने महा भूतों के गुण और इन्द्रिय निग्रह का फल और फिर तीनों गुणों का वृत्तांत और शरीर के अन्तर्गत प्राण, दिवायु, अग्नि और जीवात्मा और अन्य २ धर्मसम्बंधी बातों का उपदेश दिया ॥

— —

एकसौ इक्यासी का अध्याय

—:-o-:—

धर्मव्याध का माता पिता की सेवा पर उपदेश ॥

तब कौशिक बोला कि हे व्याध आप सब धर्मों के

ज्ञाता हैं आप को यह ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हुआ, व्याध उस को साथ लेकर अपने माता पिता के पास गया, जो सुंदर श्वेत वस्त्र पहिरे उत्तम आसनों पर विराजमान थे, पहिले उस ने उन के चरणों पर शिर धरा, और बूढ़ों ने अशीर्वाद दे कर कहा कि हे पुत्र तुम चिरंजीव हो, तुम्हारा धर्म बल बढ़े, तुम्हारी बुद्धि और भी बढ़े और तुम सुख के भागी बनो ॥

तब व्याध ने कौशिक को कहा कि यही मेरे देवता और वेद हैं यही यज्ञ और व्रत नियम हैं, मेरे प्राण धन स्त्री सब इन की सेवा करते हैं इन का कैसा ही काम क्यों न हो मैं आप करता हुं ॥

इस के उपरांत व्याध ने कौशिक को कहा कि आपने यह सब कुछ देखा है, यदि आप मेरी बात माने तो एक काम करें, कौशिक बोला कि बहुत अच्छा कहिये, मैं निस्संदेह करूंगा। व्याध बोला कि आप अपने माता पिता का तिरस्कार करके और उन की आज्ञा को उल्लंघन करके घर से निकल आये और वेदाभ्यास आरंभ किया, वेह विचारे आप के वियोग से रो रो कर अन्धे होगए, यह बात आप को उचित न थी। आप शीघ्र घर को जाइये और उन दोना की सेवा कीजिये जिस से आप को धर्म प्राप्त हो अन्यथा आप के सब धर्म नरर्थक हैं ॥

कौशिक ने कहा कि बहुत अच्छा मैं ऐसा ही करूंगा और यहां से सीधा घर को जाऊंगा। तब उस ने व्याध को कहा कि

हे धर्मात्मा आप त्रिकाल दर्शि हैं यह तो बताईये कि पूर्व जन्म में आप कौन थे व्याध बोला कि मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था परन्तु एक राजा के साथ मैत्री रखने के कारण धनुष विद्या भी सीख गया था एक दिन राजा शिकार को गया और मुझ को भी साथ ले गया राजा ने अनेक मृग मारे मैं ने भी एक मृग पर बाण छोड़ा परन्तु वह बाण एक तपस्वी के जा लगा जिस से वह अचेत होकर गिर पड़ा जब होश आई तो कहने लगा कि मुझ निरापराध को किसने बाण मारे हैं ॥

जब मैं उस को देखने गया तो उसने मुझे शाप दिया कि तू अगले जन्म में क्रूर कर्म करने से शूद्र योनि में जावेगा, सो हे ब्रह्म उस शाप के वश से मैं इस योनि में आया हूं औ निन्दित कर्म से जीविका का उपार्जन करता हूं परन्तु अपने धर्म में निरत होने के कारण और माता पिता की सेवा करने से शीघ्र ही मेरे पाप दूर होकर मैं स्वर्ग गामी हूंगा ॥

तब कौशिक व्याध से आज्ञा लेकर अपने घर आया और अपने माता पिता की सेवा करने लगा ॥

एकसौ बिआसी का अध्याय

—:-o-:—

अङ्गिरा ऋषि का अग्नि रूप हो जाना ॥

तब मार्कण्डेय जी ने एक नया वृत्तांत सुनाना आरम्भ किया और कहने लगे कि हे युधिष्ठिर जिस समय अङ्गिरा

ऋषि ने अपनी उग्र तपस्या के बल से अग्नि रूप धारण किया और इस भौतिक अग्नि से अधिक प्रकाशमान हुआ तो अग्नि दुःख से निस्तेज होकर और अपनी अनावश्यक्ता मान कर परम खेद में निमग्न होगई उस ने सोचा मेरा आग्नित्व नष्ट हो गया अब किस प्रकार से मैं अपने पूर्व पद को प्राप्त करूं अग्नि यही विचार कर रहा था कि इतने में महा प्रभाव परम तेजस्वी प्रकाशमान अङ्गिरा जी आ गए और उस को देख कर बोले कि तुम फिर अग्नि हो जाओ ॥

अग्नि बोले कि मुझे अब कौन जानता है मेरी कीर्ति तो नष्ट हो गई आप अग्नि रूप उत्पन्न हुए हैं आप को ही सब लोग अग्नि कहेंगे इस लिये मैं अपने आग्नित्व को त्याग देता हूं, आप ही प्रथम अग्नि हो जाईये, मैं दूसरी अग्नि हो कर विचरूंगा ॥

तब अंगिरा बोले कि नहीं ! आप ही हव्य और कव्य को ग्रहन कीजिये और, प्रजा को, स्वर्ग देने वाले और अंधेरे को दूर करने वाले होकर रहिये, हां। मुझ को अपना बड़ा पुत्र बना लो, अग्नि ने कहा ऐसा ही सही, तब अंगिरा ऋषि अग्नि पुत्र बने, उस से बृहस्पति नाम पुत्र उत्पन्न हुआ यह बृहस्पति देवताओं के गुरु हुए ॥

तब मार्कण्डेय जी ने अग्नि की बड़ी लम्बी चौड़ी वंशावली सुनाई और उस के पुत्रों पौत्रों और उन की संतान का भी पूर्ण बृतांत सुनाया ॥

कहते हैं कि आकाश में रहने वाला भरत नाम अग्नि एक समय भृगु जी के शाप को अपने निकट आता देख कर समुद्र में घुस गया। देवता उस की खोजना करने लगे, परंतु किसी को न मिला, तब वह अंगिरा जी को निकट बता देख कर कहने लगा, कि हे महाभाग, तुम देवताओं के हव्य को धारण करो, और अग्नि भाव को प्राप्त होजाओ। ऐसा कह कर अग्नि अन्तर्धान हो गया, परंतु मछलियों ने यह भेद प्रकट कर दिया, क्रोधित होकर अग्नि ने उन को शाप दिया, कि मनुष्य तुम को नाना प्रकार से भक्षण किया करेंगे॥

देवताओं ने अग्नि को समझाया, परंतु वह न माना और उस ने अपना शरीर भी त्याग दिया और हव्य धारण करने की इच्छा न की, तब अग्नि पृथ्वी में प्रवेश कर गया और नाना प्रकार की धातुओं का उत्पादिक हुआ, उन के यज्ञस्तंभ से गंध और तेज, हड्डियों से देवदारू, श्लेश्मा से स्फटिक, पित्त से मरकत यकृति, से लोहा और दूसरे अंगों से और धातु उत्पन्न हुए, और प्रजा को बहुत सुखदाई पदार्थ मिले, उस के शिर के बालों और नखों से विद्रुम हो गए और इस प्रकार शरीर त्याग कर अग्नि तपस्या करने लगा॥

तब संसार में बड़ा अन्धकार फैल गया, और संसार भयभीत हो गया, तब देवता अंगिरा जी के पास आये और उन की पूजा की, उन्हों ने सब समुद्र को मथ डाला और अग्नि को निकाल कर सब लोकों की रचना की, वही अग्नि

सब प्राणियों के हव्य को धारण करता है, और उसी ने अनेक तीर्थ स्थान सिंधुनद, पंचनद, देविका सरस्वति आदि स्थापन किये हैं॥

एकसौ तिरासी का अध्याय

—:०:—

कार्तिकेय की उत्पाति, इन्द्रका देवताओं, के लिये सेनापतिकी खोज करना, केशी दैत्य से एक स्त्री का उद्धार, उसके विवाह की चिन्ता॥

देवताओं और दानवों के युद्ध तो सदैव हुआ ही करते हैं, परन्तु देवताओं की सेना सदा हार जाती थी। इस प्रकार बार बार पराजय होने पर इन्द्र को विचार हुआ, कि कोई अत्यन्त निपुण सेनापति होना चाहिये जो देवदल को अच्छी प्रकार अपनी आज्ञा में चला कर, देव विजय कर सके। इसी विचार से वह मानस पर्वत पर बैठ कर विचार कर रहा था कि, उसको एक स्त्री के आर्त शब्द और दारुण रुदन की परम दुःखित स्वर कान में पड़ी। वह स्त्री हा हा कार करके रोती और चिल्लाती हुई कहती थी, "मुझे कोई बचाओ, यह दुष्ट दैत्य मुझ को हर कर लेजा रहा है"॥

इन्द्र झट उसकी ओर गया और देखा कि केशी नाम दैत्य एक परम सुन्दर कन्या को बलात्कार लेजाना चाहता

इन्द्र ने उसे ललकारा और कहा कि देख इस स्त्री को छोड़ दे, नहीं तो अभी तेरा सत्या नाश कर दूंगा। दैत्य बोला कि चल रे चल! तेरा बल भी देखा हुआ है मैं। इस स्त्री को अपनी भार्या बनाना चाहता हूं, और यदि तू मुझे रोकेगा तो निसंदेह मारा जायगा॥

इस बात पर दोनों का युद्ध हुआ, परन्तु इन्द्र के वज्र से केशी भयभीत होकर भागा और उस कन्या को वहीं छोड़ गिया॥

इन्द्र ने उस कन्या से पूछा, कि तू कौन है? और यहां क्या करती थी? वह स्त्री बोली, कि हे इन्द्र मेरा नाम देवसेना है और मैं प्रजापति की लड़की हूं। अपनी बहिन दैत्यसेना के साथ इस वन में सैर करने आई थी, दैत्यसेना को यह दैत्य पहिले ही हर कर ले गया है और मुझ को ले जाना चाहता था। मेरी प्राण रक्षा आपने की है। अब मैं चाहती हूं कि मुझ को कोई दुर्जय पति मिलजायँ। तब इन्द्र ने कहा कि तू तो मेरी मासी है, मेरी मां भी दाक्षायणी है, क्या तू कोई पराक्रम रखती है?

देवसेना बोली कि मैं तो अबला हूं, परन्तु पिता जी ने वर दिया हुआ है, कि तेरा पति बलवान यशस्वी, देवता और राक्षस दोनों को जीतने वाला होगा, बड़ा ब्राह्मण और कीर्ति वर्धक होगा॥

इन्द्र को बड़ी सोच हुई, क्योंकि उस देवी की रुचि के अनुकूल कोई पति देखने में नहीं आता था। उस समय इन्द्र

ने देखा, कि उदयाचल पर चन्द्रमा सूर्य मे जा मिला, और अमावस्या प्रवृत हो गई और रौद्रमुहूर्त्त में देवासुर संग्राम होने लगा। तब इन्द्र ने सोचा कि यदि चन्द्रमा अथवा अग्नि के पुत्र उत्पन्न हो, तो वह इस देवी के योग्य पति होगा। यह विचार कर इन्द्र देवसेना को साथ लेकर, ब्रह्म लोक में चला गया और ब्रह्मा जी के पास जाकर पूछने लगा, कि हे महाराज इस देवी का वर बतलाईये ॥

ब्रह्मा जी बोले कि हे देवेन्द्र जैसा तुम ने विचारा है, वही ठीक है। यह सुन कर इन्द्र देवसेना समेत वापिस चला आया और सोमपान करने और यज्ञ का भाग लेने को उस स्थान पर गया जहां वशिष्ठ जी और अन्य ऋषि यज्ञ कर रहे थे ॥

वहां अग्नि का आवाहन हुआ और अद्भुत नाम अग्नि ने हवन कुण्ड में प्रवेश किया, ऋषियों ने हव्य देना आरम्भ किया। अग्नि हव्य को ले २ कर देवताओं में बांटता जाता था ॥

यज्ञ शाला में ऋषियों की स्त्रियां जो चन्द्रमुखी और परम सुन्दर दिव्य रूप रखती थी वहां सो रही थीं और अग्नि उन को देख कर कामातुर हो गया, परन्तु उन को उस स्थान में किसी प्रकार भी क्षोभ करना उचित न समझा ॥

कामासक्त अग्नि ने उसी आश्रम में रहना आरम्भ किया, और नित्यप्रति अपनी लपेटों से उन ऋषि पत्नियों

को स्पर्श करने लगा। अन्त को निराश हो कर वन को चला गया॥

दक्ष की पुत्री स्वाहा अग्नि पर बहुत काल से कामासक्त थी। उस ने इस अवसर को शुभ जाना, और ऋषियों की स्त्री रूप वन कर वन में चली आई॥

एकसौचुरासी का अध्याय

—:-०-:—

स्वाहा का सप्त ऋषियों की स्त्रियों का रूप धारण करना, अग्नि से विवाह करना, श्वेत पर्वत पर कार्तिकेय का जन्म होना॥

तब स्वाहा ने अग्नि को एक स्थान में वृक्ष के नीचे उदास और काम विवश देख कर आङ्गिरा ऋषि की शिवा नाम स्त्री का रूप धारा, और अग्नि के पास जाकर कहने लगा, कि हे देव मैं ऋषि पत्नि हूं, तुम्हारे रूप वल की प्रशंसा हम बहुत दिनों से सुनती थीं, और अब तुम को कामासक्त देख कर और तुम्हारी चित्तवृत्ति को देख कर अन्य मेरी वहिनों ने पहिले मुझे तुम्हारे पास भेजा है, मैं तुम्हारे साथ विहार करना चाहती हूं॥

अग्नि को बहुत आश्चर्य हुआ और उस ने पूछा, कि ऋषि पत्नियों ने मुझे कामासक्त कैसे जाना ? स्वाहा बोली कि

मनुष्य की चित्तवृत्ति उस की चेष्टा से प्रगट होती है। तब अग्नि ने उस के साथ विलास किया। स्वाहा चली गई और दूसरा रूप धारण करके आई और विलास किया॥

इसी प्रकार छः वार उस ने अन्य २ स्त्रियों के रूप धारे, परन्तु सातवीं वेर अरुंधती का रूप धारण न कर सकी, क्योंकि वह बड़ी तपस्विनी और पतिव्रता थी॥

जब स्वाहा ने देखा कि अब मेरा भेद न खुल जाएगा तो वह श्वेत पर्वत पर चली गई, वहां उस को द्वितीया के दिन एक बड़ा उग्र रूप त्र उत्पन्न हुआ। उस के छः शिर बारह कान और बारह हाथ थे॥

तृतीया को तो वह बालक रूप रहा। चौथको बड़ा हो गिया, और फिर बढ़ते २ बड़ा बलवान और तेजस्वी हो गिया। उसका नाम स्कंध रखा गया, फिर उसने शिवजी का बड़ा धनुष हाथ में ले लिया, जिसको देख कर सब प्राणियों के रोम खड़े हो गये। तब वह मेघों के सदृश गरजने लगा, जिस को सुन कर सर्व संसारी प्राणियों को भय उत्पन्न हुआ॥

उस कुमार ने दोनों हाथों में शंख लेकर धमाये जिस से बड़ा घोर शब्द हुआ। और दूसरे हाथ में शक्ति और कुक्कट आदि शस्त्र लिये, उसको देख कर सब लोग भयभीत हुए, फिर उसने पर्वतों पर प्रहार किये, और हिमालय के पुत्र क्रौंच पर्वत को फोड़ डाला, फिर उसने श्वेत पर्वत को खंड २ कर डाला॥

उस के प्रहार से पृथ्वी भी विदीर्ण होगई, और आर्त होकर उसकी शरण आई, कुमार ने उसको शान्ति दी, उस को देख कर पर्वत भी उसकी शरण आये, और सुख पूर्वक अपने २ स्थानों में जम गये, तब उस के शक्ति आदि अनेक शस्त्रों को देख कर बहुत से मनुष्य गिर पड़े, कुमार ने उनको धैर्य दिया और उनको अपना पार्षद बनाया ॥

इस के पश्चात शुक्ल पक्ष की पंचमी को सब जगत ने स्कन्द नाम कुमार का भजन किया ॥

एकसौपचासी का अध्याय

—:o:—

लोकापवाद के भय से सप्तऋषियों का अपनी स्त्रियों को त्याग देना, स्वाहा का उन के पास जाकर सब वृत्तांत कहना, परंतु उन का उस की बात न मानना, विश्वामित्र का विश्वास उत्पादन करना, देवताओं का स्कन्द को मारने के लिये लोक माताओं को भेजना ॥

जिस समय स्कन्द कुमार उत्पन्न हुआ पृथ्वी, पर बड़े २ उत्पात हुये, स्त्री पुरुष आपस मे वैर करने लगे। आकाश दीप्त

होगए, पृथ्वी बड़ी शब्द करने लगी, तब चैत्ररथवन में रहिने वाले लोग कहने लगे कि सप्तऋषियों की स्त्रियों ने बड़ा अनर्थ किया है, कि अपने पतियों को छोड़ कर अग्नि से दूषित हुई हैं, सप्तऋषि ने यह सुन कर अपनी पतिव्रता स्त्रियों को त्याग दिया ॥

स्वाहा गरुड़ी का रूप धारण श्वेत पर्वत पर गई थी, कईयों ने गरुड़ी से कहा, कि इस अनर्थ की उत्पादिक तूं ही है। स्वाहा ने यह हाल सुन कर सप्त ऋषियों के पास गई, और कहा कि आप की सब स्त्रियें निरपराध हैं। यह पुत्र मेरा है, परंतु ऋषियों ने उस की बात को न माना ॥

विश्वामित्र ने कामासक्त अग्नि को देखा था, और स्वाहा की करतूत भी जानता था; उस ने सब वृत्तांत ऋषियों को सुनाया, पर उन्हों ने लोकापवाद के भय से अपनी निर्दोष स्त्रियों को ग्रहन न किया ॥

विश्वामित्र जी स्कंद के पास गए, और उस के सब संस्कार वैदिक रीति से किये, इस से उन दोनों में मैत्री बढ़ गई ॥

इस के उपरांत सब देवता उस कुमार के अस्त्र बल और पराक्रम को देख कर इन्द्र के पास आये, और कहने लगे कि हे देव। कुमार बड़ा बलवीर और तेजस्वी उत्पन्न हुआ है। यदि वह इसी प्रकार बल पराक्रम में बढ़ता रहा तो किसी दिन आप को पराजय करके इन्द्रासन पर विराजेगा, और हम सब भी दीन होकर उस की शरण में आवेंगे, इस लिये कोई उपाय

इसी समय सोचना चाहिये कि वह तेजस्वी बालक मारा जाय ॥

इन्द्र बोला कि वह बड़ा शूरवीर है और अपने उत्पन्न करने वाले का भी नाश कर सकता है, इस लिये मैं उस को मारने के लिये यत्न करना अच्छा नहीं समझता, देवता बोले कि हां समझ गये, आप में उतना बल ही नहीं जो उस बालक को मार सको ॥

तब देवताओं ने लोक माताओं को आज्ञा दी कि तुम जाकर कुमार को मारने की सोच करो, यह सुन कर सब लोक माता स्कन्द के पास गईं, परंतु उस के प्रभाव से ऐसी मोहित हुईं कि उन को पुत्र की भांति पालने लगीं ॥

इतने में अग्नि भी वहां जा पहुंचा और अपने बलवान पुत्र को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ, स्कन्द ने उस की पूजा की और उस की गोद में बैठ गया, लोक माता उस को प्रीति से पुत्र समझ कर दूध पिलातीं और उस की सब प्रकार से रक्षा करतीं ॥

एकसौ छियासी का अध्याय

—:-०-:—

इन्द्र का सेना सहित स्कन्ध को मारने जाना परन्तु हार कर उसकी शरण लेना ॥

स्कन्ध का यह उग्र प्रभाव देख कर इन्द्र ने मुख्य देवताओं

को एकत्र किया और एक बड़ी भारी सेना लेकर स्कन्द को मारने के लिये चल पड़ा, स्कन्द भी दूर ही से भयंकर देव सेना को आता देख कर समझा कि यह मेरे मारने का उपाय है, वह भी उद्यत हो गिया, देवताओं ने शंख बजा कर बड़ा घोर शब्द किया जिसको सुन कर कुमार भी बादल की भान्ति गर्जा, जिससे देवता कंपायमान हो गये ॥

देवता इधर उधर दौड़े, परन्तु कुमार ने अपने श्वास से बड़ी भारी ज्वाला छोड़ी, जिससे संपूर्ण देवसेना अस्त हुए नक्षत्रों की भान्ति निःप्रभा होकर गिर पड़े, और इन्द्रको त्याग कर स्कन्द की शरण आये, तब वह ज्वाला नष्ट होगई और स्कन्द ने उनको अभय दान दिया ॥

यह देख कर इन्द्र ने स्कन्द को दहिनी बगल में वज्र मारा, जिसके लगते ही उस में से एक स्वर्ण की भान्ति प्रकाशमान दूसरा शस्त्रधारी पुरुष निकला जिसका नाम विशाख था अब तो इन्द्र का धैर्य भंग हुआ और तुरन्त स्कन्द की शरण में आया। स्कन्द ने उसको भी अभयदान दिया, जिस से प्रसन्न होकर देवता बाजे बजाने लगे ॥

एकसौ सत्तासी का अध्याय

—:०:—

स्कन्द का देव सेनापति होना और देवसेना

से विवाह ॥

उत्तम भूषण और वस्त्र पहिने हुए स्कन्द श्वेत पर्वत पर ऐसे विराजमान थे जैसे आकाश में बिजली। तब लक्ष्मी साक्षात वहां आई और कुमार की सेवा करने लगी, लक्ष्मी से युक्त कुमार पौर्णिमा के चन्द्रमा की भान्ति प्रकाशमान होगया॥

उसी समय महर्षियों ने आकर उसकी पूजा की और कहने लगे कि हे हिरण्यगर्भ आप इन्द्रासन पर विराजिये और इन्द्र के अधिकार को स्वीकार कर के देवता और मनुष्यों की रक्षा कीजिये, स्कन्द बोला कि इन्द्र क्या काम करता है और किस प्रकार रक्षा करता है ?

ऋषि बोले कि इन्द्र सब संतान को धारण करता है और यदि उस को प्रसन्न किया जाय, तो सब मनोरथों को पूरा करता है, दुष्टों को दण्ड और शिष्टों को सुख देना भी उसी का काम है, प्रार्थना करने वाले को योग्य फल देता है, जहां सूर्य नहीं वहां सूर्य होजाता है और जहां चंद्रमा नहीं वहां चंद्रमा का काम देता है, सार यह कि वह बड़ा बली है, तुम भी उसी के समान और उस से बढ़ कर बल वाले हो तुम हमारी रक्षा करने के समर्थ हो इस से तुम अवश्यमेव इन्द्र पद को ग्रहण करो ॥

इतने में इन्द्र बोला कि तू हम सब में उत्तम है और सब को सुख देने वाला है, चल तेरा स्वर्ग में अभिषेक करें, तुम ने अपने बल से दुष्ट राक्षसों को मारना । यह सुन कर कुमार

बोला कि हे इन्द्र ! मैं तेरी पदवी का अभिलाषी नहीं हूं, मैं तेरा सेवक होकर रहना अच्छा समझता हुं ॥

इन्द्र बोला कि तू बलवान है, मैं तुम्हारी उपेक्षा निर्बल हूं संसार मेरी अयोग्यता और तेरी योग्यता देख कर मेरा अपमान करेगा और हम दोनों में परस्पर द्वेष करा देगा उस द्वेष से दो प्रकार की अवस्था हो जाएगा दो अवस्था से परस्पर वैर बढ़गा, वैर से युद्ध होगा जिस से मैं हार जाऊंगा इस से तुम अभी से इन्द्रासन पर विराजो ॥

सकन्द बोला, हे इन्द्र ! तेरा कल्याण हो ! तू ही हम सब का राजा है मुझे जो आज्ञा दोगे मैं करूंगा. इन्द्र ने कहा कि यदि तू मुझे आज्ञा दे तो मैं ही इन्द्र रहूंगा। परन्तु तेरे लिये यह काम है कि सेनानी हो कर देवताओं की सेना को बलवान बनाओ जिस से यह दुष्ट राक्षसों को शीघ्र जीत लें ॥

स्कन्द ने कहा बहुत अच्छा ! तब देवताओं ने स्कन्द को देवताओं की सेना का सेनानी बनाया और बड़ी धूम धाम से अभिषेक किया, सब देवताओं ने स्कन्द को नमस्कार किया और शिवजी ने अपने इस परम प्रतापी पुत्र को विश्वकर्मा की बनी हुई सुंदर माला पहिनाई ॥

तब इन्द्र ने देवसेना कन्या को याद किया और उस को बुला कर स्कन्द जी से बोले कि इसी देवी वरने के निमित्त आपकी ऐसी रचना हुई है आप इस को दक्षिण हाथ ग्रहण

कीजिए तब बड़ा होम यज्ञ रचा गया बृहस्पति जी पुरोहित बने और उन्हों ने देवसेना का स्कन्द जी से पाणि कराया देवसेना स्कन्द जी की पटराणी बनी और मन वचन और काया से उन की सेवा करने लगी जिस षष्ठी को स्कन्द ने देवसेना का पाणि ग्रहण किया उस षष्ठी को सुख और लक्ष्मी की दाता कहते हैं वह पञ्चमी जब लक्ष्मी ने स्कन्द जी की सेवा की श्री पञ्चमी कहलाती है ॥

एकसौ अठासी का अध्याय

—:-o-:—

स्कंद का स्वाहा को अग्नि से युक्त करना, शिवजी का पूजन करना और दानवों से संग्राम करके उन को जीत लेना ॥

तब ६ ऋषियों की स्त्रियें जिन को पतियों ने त्याग दिया था उस के पास आईं और कहने लगीं कि तू हमारा पुत्र है हम तेरे पास स्नेह पूर्वक रहना चाहती हैं स्कंद ने उन को नमस्कार किया और उन की मनोकामना पूरी कर के लोक माता की पदवी से सुशोभित किया ॥

तब स्वाहा उस के पास आई और कहने लगी कि तू मेरा औरस पुत्र है मैं तेरी माता हूं तुम्हें मुझ से प्रीति रखना उचित है स्कन्द बोला मैं आप से प्रीति रखता हूं कहीये क्या आज्ञा है ?

स्वाहा बोली मैं बालापन से अग्नि से स्नेह रखती हूं और इसी स्नेह वश तुम भी उत्पन्न हुए हो परन्तु अग्नि मुझे अभी तक नहीं जानते मैं चाहती हूं कि सदैव अग्नि के पास रहूं सकन्द बोला कि हे माता आज से जो हव्य और कव्य ब्राह्मण अग्नि को देना चाहेंगे वह तेरा नाम ले कर दिया करेंगे और तू सदैव अग्नि से युक्त रहेगी ॥

स्कंद के कहते ही स्वाहा स्कंद से युक्त हो गई तब ब्रह्मा जी ने स्कंद को कहा कि उमा सहित शिवजी ने अग्नि और स्वाहा में अपना तेज धारण किया था, इस से तुम स्वाहा से उत्पन्न हुए थे इस लिये शिवजी तुम्हारे पिता हैं। तुम उन के दर्शन भी कर आओ। तब स्कंद ने उन के दर्शन किये और पूजा भी की ॥

इस के उपरांत जब सकंद सेना पति अभिषेक हुए तो शिवजी बड़ी प्रसन्नता से सहस्रसिंहों को रथ में जोड़ कर भद्रवट को आये, सिंह बहुत गर्जते थे और मार्ग में सब को डराते आते थे। इंद्र यमराज और कुबेर आदि सब देवता यथास्थान पीछे २ चलते थे और इस के पीछे स्कंद संपूर्ण देवसेना लिये हुए जारहे थे, उस समय शिवजी ने सकंद से कहा कि तुम ने देवताओं की सातवीं समुदाय की रक्षा करना। सकंद बोला। कि बहुत अच्छा। तब शिवजी बोले। कि हे पुत्र मैं तेरी सर्वथा उन्नति चाहता हूं और यह कह कर सकंद को विदा किया ॥

सकंद जी के चले जाने पर बहुत से उत्पात होने लगे,

आकाश नक्षत्रोंसहित अकस्मात प्रदीप्त होगया, पृथ्वी गूंजने और हिलने लगी, जगत अंधकारमय होगया, इस को देख कर सब देव दानव मोहित होगये। तत्पश्चात् दैत्यों की एक बड़ी भारी सेना देवताओं से युद्ध करने आई, उस को देख कर सब देवता डर गए॥

शिवजी और इंद्र ने सब को उत्साह दिलाया और बढ़ २ कर हाथ पैर मारे परंतु कुछ न बना दैत्यों ने सहस्रों देवताओं को मार गिराया, तब इंद्र आगे बढ़ा, और देवताओं बोला अये शूर वीरो, तुम अमृत हो, मत डरो अपने २ शस्त्र लो और दैत्यों को काट डालो तुम्हारे सामने यह क्या वस्तु हैं॥

इंद्र के शब्दों से देवताओं के मन में धैर्य उत्पन्न हुई और वह फिर उत्तेजित होकर लड़ने लगे कई दैत्य मारे गए और जो शेष रहे वह भयभीत होकर भागने लगे; परंतु इतने में एक बड़ा क्रूर महर्षि नाम वाला दैत्य आगया जो बड़ा भयंकर आकार रखता था उस ने पर्वत उठा २ कर अनेक देवता मार दिये॥

शिवजी ने उस महा पराक्रमी दैत्य को देख कर स्कंद का स्मरण किया, और वेही लाल मुख, लाल माला और लाल वस्त्र पहिन कर उन के सनमुख आये उन को देखते ही दैत्यों ने भागना आरंभ किया, तब स्कंद ने महाषिसुर पर शक्ति प्रहार की और अपने मुख से अग्नि छोड़ी जिस

के लगते ही उस का शिर धड़ से पृथक हो गया और दैत्य पृथ्वी पर जा पड़ा, उस के पार्षद अनेक दैत्यों को जीता ही खागए ॥

यह बात देख कर दैत्य भागे और देवताओं की विजय हुई, स्कंद दैत्यों को भगा कर महादेव के पास आये और उन को प्रणाम किया, तब इंद्रादि देवता मिले, स्कंद की कीर्ति सब स्थानों में फैल गई और महा ऋषियों ने उन का पूजन किया ॥

एकसौ निन्नावे का अध्याय

—:-०-:—

द्रौपदी की सत्यभामा से बातचीत और उसको पति व्रत धर्म का उपदेश ॥

जिस समय पाण्डव मार्कण्डेय जी से कथा प्रसंग सुन रहे थे उस समय द्रौपदी सत्यभामा को लेकर पृथक बैठ कर अपनी २ बातें करने लगीं। दोनो सहेलिया चिर काल के पश्चात् मिली थीं, उन्हों ने कई प्रकार की बातें कीं और एक दूसरी से सुख दुःख पूछा ॥

इतने में सत्यभामा बोली कि हे द्रौपदी, यह पाण्डव तुम पर किस प्रकार इतने मोहित हो रहे हैं, क्या तुम्हें कोई मन्त्र याद है, या कोई वशीकर्ण औषध का प्रयोग करती हो जिस

से तुम इनकी प्रिया निरन्तर बनी रहती हो।

द्रौपदी बोली कि हे सत्यभामा! तुमने मूर्ख स्त्रियों की सी बात की है, तुम श्रीकृष्ण की पटरानी हो और इस प्रकार का वचन बोलती हो? मुझे तुम्हारी यह बात सुन कर तुम्हारी मूर्खता पर बड़ा आश्चर्य हुआ है, सुनो मन्त्रादि से पति कभी वश में नहीं आये, मैं सदैव अपने पतियों की आज्ञा में रहती हूं। जहां यह बिठायें बैठती हूं जो यह खिलायें खाती हूं। जहां से रोके वहां नहीं जाती हूं॥

मूर्ख स्त्रियों की भान्ति घर के द्वार पर निकल कर नहीं खड़ी रहती इनके भोजन को स्वादिष्ट बनाना मेरा कर्तव्य है! इन के सुख में सुख और इनके दुःख में दुःख समझती हूं। जब यह बाहिर से आवें तो इनके जल आदि से हाथ पाओं धुला कर आसन पर बिठाती हूं और देवताओं के समान पूजती हूं। इन्हीं को अपना धर्म और इन्हीं को परम देवता समझती हूं॥

जो कुछ यह लाकर दें वही खाती हूं और उसको छोड़ कर अन्य पदार्थों की अभिलाषा नहीं करती, अपनी सास कुन्ति का सदा आदर करती हूं और उसको माता के तुल्य जानती हूं। अपने शृंगार को केवल पतियों के देखने के निमित्त ही करती हूं। बहुत हंसना और अति क्रोध करना मैंने सदैव छोड़ रखा है। अपने घर को शुद्ध रखती हूं कूड़ा करकट इकट्ठा नहीं होने देती। जब पति प्रदेश जाते हैं तो शृंगार लगाना छोड़ देती हूं। जो २ व्रत नियम मेरी सासु ने बताये

वही करती हूं। मैं अपने पतियों की कोई बात उल्लंघन नहीं करती॥

पूर्व काल में जब हमारा राज्य था तो घर के सब सेवकों और दासियों के काम का ध्यान रखना उन को वस्त्र भोजनादि देना यह सब मेरा काम था। राज्य की आमदनी और खर्च को मैं ही सम्भाला करती थी, रसोई भण्डार केवल मेरे ही सिर पर था और मैं दत्तचित्त होकर सब काम किया करती थी॥

इस समय हम वनवासी हैं, परन्तु अब भी मैं ही सारे काम करके इन की सेवा करती हूं। हे सत्यभामा यही वशीकरण मन्त्र मेरे पास है और इसी का प्रयोग मैं करती हूं और कोई मन्त्र औषधि नहीं है॥

द्रौपदी के यह वचन सुन कर सत्यभामा लज्जित होगई और उस को हंस कर कहने लगी कि मुझे क्षमा करो मैं तुम्हारे इन सब गुणों को जानती हूं। मैंने यह बात केवल हंसी ठट्ठे में पूछी थी इस को सखियों का हास्य समझो॥

एकसौनब्बे का अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का सत्यभामा को उपदेश, सत्यभामा का द्रौपदी को उस के पुत्रों का कुशल क्षेम कहना, श्री कृष्ण का लौट कर आना और

द्वारका चले जाना ॥

तब द्रौपदी ने सत्यभामा को कहा कि हे सखी, मैं तुम को उपाय बताती हूं जिस को यदि तू करेगी तो निस्संदेह श्री कृष्ण जी को अपने वश में कर लेगी हे । सत्यभामा सब देवताओं से पति परम देवता है । वह स्त्री की सब मनोकामना पूरी करता है । सन्तान होना, भोग भोगना, उत्तम शया पर सोना, अच्छे वस्त्र धारण करना, दिव्य भूषण और सुगन्धित माला धारण करना, संसार में कीर्ति, यश और परलोक में शुभ गति केवल पति ही की कृपा से प्राप्त हो सकते हैं ॥

सुख से सुख मिलना असम्भव है ! हां दुःख से सुख अवश्य मिलता है, इस लिये तू भी अपनी देह को किञ्चित दुःख देकर परम सुख की भागी हो । जिस समय श्री कृष्ण के शब्द सुनाई दें तुरन्त खड़ी हो जाया कर और उन को पाद्य और अर्घ देकर शुभासन पर बिठाया कर, जब कभी वह किसी दासी को काम बतावें तो झट खड़ी होकर वह काम आप कर दिया कर जो कुछ वह पास बैठ कर कहा करें किसी से मत कहा कर यदि कोई तुम्हारी निन्दा करे तो तू उस पर कुछ ध्यान न दिया कर जो तेरे पति का शत्रु है उस से कभी मत मिल और जो मित्र है उस को कभी २ भोजन खिलाया कर इतर मनुष्य के पास अकेली मत बैठ चाहे देवता भी क्यों न हों । दुष्ट और चपल स्त्रियों की सङ्गति त्याग दे यह व्रत स्त्रियों के लिये सर्वोत्तम है । तू भी इस को धारण करके पति की सेवा कर ॥

तब श्री कृष्ण जी लौटने को तय्यार हो गए। सत्यभामा ने द्रौपदी को सान्त्वन किया और कहा कि अब तेरे कष्ट के दिन पूरे होने वाले हैं तू शीघ्र ही अपना राज्य पावेगी और पृथ्वी पर ऐश्वर्य भोगेगी तेरे पांचों पुत्र प्रतिविंध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन क्षेम पूर्वक हैं। सुभद्रा उन को अभिमन्यु के समान जानती है और उन को देख कर चन्द्रमा की भांति खिली रहती है उन्हों ने अस्त्र विद्या अच्छी प्रकार सीख ली है और युद्ध में अच्छी प्रकार प्रवीण हो गए हैं। हम सब को स्नेह उन पर प्रद्युम्न के समान है तू कोई चिंता न कर॥

इस बात चीत के पश्चात् सत्यभामा द्रौपदी से आज्ञा लेकर और उस की प्रदक्षिणा करके श्री कृष्ण के साथ रथ में बैठ गई और वह दोनों शीघ्र गामी घोड़ों को हांक कर अपने नगर की ओर चल दिये॥

एकसौइक्यावन का अध्याय

—:-०-:—

एक ब्राह्मण का पाण्डवों के बन में रहने का बृत्तान्त धृतराष्ट्र को आकर सुनाना, उस का सुन कर दुःखी होना और दुर्योधन का प्रसन्न होना॥

तब पांडव उस स्थान से होते हुए एक सरोवर के निकट पहुंचे। वहां जाकर उन्हों ने मार्कण्डेय आदि ब्राह्मणों को बिदा कर दिया और अनेक वनों और नदी तटों पर विहार करने लगे, वहां बहुत से वेद पाठी और पुण्यात्मा ऋषि आये और पांडवों ने उन सब का सत्कार किया, उन में से एक ब्राह्मण, जो बड़ा इतिहास ज्ञाता था, देशाटन करता हुआ धृतराष्ट्र के पास आया, राजा ने उसको आदर सहित आसन पर बिठाया, तब उस ब्राह्मण से पांडवों का कुशल क्षेम पूछा, उस ने बताया कि वह लोग वन के सब दुःखों को और शरदी गरमी के वेग को सहार रहे हैं ॥

धृतराष्ट्र उस ब्राह्मण के वाक्यों को सुन कर बड़ा दुःखी हुआ, वह समझता था कि पांडवों के सब दुःख का कारण मैं ही हूं, परन्तु विवश होकर कुछ नहीं कर सकता था, वह पांडवों के बल और पराक्रम को भली प्रकार जानता था और समझता था कि यदि वह मेरे पुत्रों की भांति अधर्म से युद्ध करें तो एक क्षण में सब का सत्यानाश करदें, परंतु युधिष्ठर सत्यवादी और धर्मात्मा है, और बिना धर्म के कोई काम नहीं करता, अर्जुन उस की आज्ञा को मानता है, भीमसेन चाहे दिल में क्रोध करे, परंतु प्रत्यक्ष में सदैव युधिष्ठर के वचनानुकूल कर्म करता है ॥

यदि यह बात न होती तो मेरे पुत्रों को चिर से उस ने जीत लिया होता, शोक है, मेरे पुत्रों ने मेरे वचन को न मान कर अपने इन श्रेष्ठ बांधवों को तिरस्कार किया और उन

को वज्र पात के समान क्रूर वचनों से दग्ध किया, अब निश्चय यह लोग अपने किये हुए को भोगेंगे और धर्मात्मा पांडवों से मारे जायेंगे ॥

देखो द्रौपदी के साथ कैसा वर्ताव हुआ ? मेरे पुत्रों के कर्म अशुभ हैं, परंतु पांडवों ने सब कर्म शुभ किये हैं, अर्जुन के पराक्रम को देखो कि वह स्वर्ग में सदेह पहुंचा और अस्त्र विद्या सीख कर लौट आया, भला मेरे पुत्रों में भी कोई ऐसा बीर है जो इस प्रकार दृढ़मन होकर शत्रुओं की पराजय का उपाय सोचे ? कदापि नहीं, दुर्योधन आदि तो केवल झूठी हैं, इन से बनता बनाता कुछ नहीं, हा ! शोक यह मेरे मूर्ख पुत्र अब भी अपने कुकर्मों का त्याग नहीं करते ॥

हे पुत्र युधिष्ठर ! हे भीमसेन ! हे अर्जुन, नकल और सहदेव ! हे पुत्रि, द्रौपदि ! मैं तुम्हारे क्लेश और संताप को सुन कर बहुत दुःखी हुआ हुं ॥

महाराजा धृतराष्ट्र के उक्त वचनों को सुन कर, शकुनि घर गया और दुर्योधन को पांडवों का सब वृत्तांत सुनाया दुर्योधन उन की दुखित अवस्था का हाल सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥

एकसौ बावन का अध्याय

—:o:—

शकुनि का दुर्योधन को द्वैत बन में जाने

और अपना वैभव दिखा कर पाण्डवों को दुःख करने की सलाह देना। कर्ण, शकुनि और दुशासन का राजा से जाने की आज्ञा लेने का उपाय सोचना

तब शकुनि दुर्योधन को बोला कि तुम्हारे शत्रु इस समय वहुत दीन अवस्था में हैं। यदि तुम पूरे ऐश्वर्य में अपनी भार्या सहित द्वैत वन में जाओ और उन को अपना वैभव दिखाओ तो पाण्डव वड़े ही दुःखी होंगे, संसार में अपने शत्रु को अधिक से अधिक दुःख देने में वड़ा पुण्य होता है॥

जव मृग छाल पहिनी हुई द्रौपदी तुम्हारी स्त्री को देखेगी, तो निस्संदेह उसके दुःख का कोई ठिकाना न रहेगा। इस से तुम ऐसा उपाय करो कि वन में जाकर युधिष्ठर आदि को अपना ऐश्वर्य दिखा कर पीडित करो॥

दुर्योधन बोला कि मैं चाहता तो हूं। और आप का विचार भी वहुत अच्छा है, परन्तु राजा धृतराष्ट्र कव जाने की आज्ञा देंगे। इससे कोई ऐसा उपाय सोचो कि जिस से राजा मान जाय। वह पाण्डवों को अधिक तपस्वी और निरपराधी समझ कर उनका पक्ष करता है॥

अच्छा इस समय विश्राम करो और प्रातःकाल ही मैं राजा के पास जाऊंगा। शकुनि और कर्ण जी आप भी वहां आईये। जव मैं वहां वैठ चुकूंगा और भीष्म जी भी आजायेंगे,

तब आपने अपना विचार कहना। उस समय मैं पिता जी और भीष्म जी के वचनों को सुन कर उन को उत्तर दूंगा और ऐसी युक्ति दूंगा कि जिससे वह मान जायें॥

यह सुन कर दुःशासन, कर्ण और शकुनि अपने २ स्थानों को चले गये। प्रातःकाल ही कर्ण दुर्योधन के पास आया और हंसकर कहने लगा कि मैंने यह विचारा है कि तुम घोष यात्रा करो और द्वैत वन में जो घोष अर्थात् घोसी रहते हैं उनको देखो॥

घोषों का देखना राजा का परम धर्म है। इस से यह बहुत उत्तम बहाना है और आशा है कि इसको सुन कर राजा आप को अवश्य आज्ञा दे देंगे॥

यह बहाना शकुनि ने भी पसन्द किया और सब मिल कर धृतराष्ट्र के पास गये॥

एकसौ चौरानवे का अध्याय

—:-०-:—

दुर्योधन का बड़े वैभव और गौरव के साथ द्वैत बन में जाना॥

राजा धृतराष्ट्र सभा में बैठा हुआ था और यह सब लोग नमस्कार करके राजा के पास बैठ गए। इतने में एक कर्मचारी ने

आकर कहा कि महाराज गौएँ निकट आ पहुंची हैं किसी को भेज कर इन की संख्या करानी चाहिये और बछड़ों को चिन्ह लगाने चाहिये ॥

शकुनि पास ही बैठा था बोला कि महाराज दुर्योधन मृगया को जाना चाहते हैं क्यों न वह जाकर इस काम को भी कर आयें, धृतराष्ट्र बोला कि अहेर खेलना और गौओं की गिनती करना तो अच्छा है परन्तु वहां साथ हि पाण्डव भी रहते हैं हम ने धोखे से उन का राज्य जीता है और वह दुःखी हो कर तापस वेष में वन में रहते हैं यदि दुर्योधन उधर गया तो किसी न किसी कारण से उन का अपकार होगा और कदाचित वह क्रोध वश होकर इस को भस्म ही कर दें ॥

देखो अर्जुन स्वर्ग में जाकर अस्त्र विद्या सीख आया है युधिष्ठर तो धैर्यवान है परन्तु भीमसेन और द्रौपदी तो अग्नि का रूप हैं इस से दुर्योधन का वहां जाना उचित नहीं किसी और को भेज दो ॥

यह सुन कर शकुनि ने कहा कि महाराज युधिष्ठर प्रतिज्ञा के सच्चे और धैर्यवान हैं और उसके सब भाई भी बड़े धर्मात्मा और उस की आज्ञा मानने वाले हैं वह किसी अनुचित्त कार्य को कभी नहीं करेंगे परन्तु हम को क्या आवश्यक्ता है कि हम उन के अति समीप जायें हम तो अहेर खेल कर और गौओं को अङ्कित करके चले आवेंगे हम को पाण्डवों से क्या प्रयोजन है ?

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने शकुनि का कहा मान कर दुर्योधन को घोषयात्रा करने की आज्ञा दे दी ॥

दुर्योधन ने बहुत से रथ, घोड़े और सेना साथ ली और घोष यात्रा के छल से द्वैत वन की ओर चल पड़ा दो कोस चल कर स्थान किया और फिर प्रातःकाल उठ कर द्वैत वन को चला गया ॥

एकसौ पचानवे का अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का घोष ग्रामों में जाकर गौओं की संख्या करना और फिर द्वैत वन में पहुंचना ॥

तब दुर्योधन घोष ग्राम में गया और गौओं की संख्या की फिर नये उत्पन्न हुए बछड़ों को गिना और चिन्हत करके छोड़ दिया। और इस सारी गणना को पत्र पर लिख लिया ॥

जब वह यह काम कर चुका तो अहेर खेलने लगा, उस ने सैंकड़ो वन्य पशुओं, मृगों, वाराहों और सिंहों को मारा, फिर गोपों का गान और गोपियों का नृत्य को देखा और बहुत सा धन देकर विदा किया ॥

तब वहा से वह द्वैत वन को गया और उसी सरोवर के निकट पहूंचा, जहां पांडव ठहरे हुए थे, युधिष्ठर ने उस समय जंगल के फल मूल इकट्ठे किये हूए थे और यज्ञ की दीक्षा

लिये हुए था, दुर्योधन ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि सरोवर के तट पर अपने विहार स्थान बनायें ॥

उसी समय कुवेर अपने यक्ष और गंधर्वों को साथ ले कर उसी सरोवर पर उतरा और सब गंधर्व लोग अपने २ रमण के निमित्त जल के समीप स्थान बनाने लगे, दुर्योधन के सेवकों ने जब वह सरोवर तट गंधर्वों से रुका हुआ देखा तो उस के पास लौट आये, और कहने लगे कि महाराज वहां कुंवर जी उतरे हुए हैं और उन के गन्धर्व लोग अपने आसन सजा रहे हैं ॥

दुर्योधन ने अपने बड़े २ योधा भेजे और कहा कि उन गन्धर्वों को कहो कि इस स्थान को छोड़ दें, हम यहां क्रीड़ा करना चाहते हैं जब वह योधा गन्धर्वों के पास आये और उन को अपने राजा की आज्ञा सुनाई तो वह बोले तुम भी मूढ़ हो, और तुम्हारा राजा तुम से भी मूढ़ है, हम स्वर्ग वासी उसकी आज्ञा की क्या चिन्ता करते हैं, तुम भी महा अज्ञानी हो जो हम को ऐसी बातें कहते हो, जाओ जल्दी अपने राजा को कहदो और यदि लड़ने का उद्यम करोगे, तो राजा सहित मारे जाओगे ॥

योधा यह सुन कर दुर्योधन के पास आये और सब वृत्तांत उस को सुना दिया ॥

एकसौ छानवे का अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का सेना को युद्ध की आज्ञा देना गन्धर्वों से युद्ध होना, करण का विरथ हो कर भागना ॥

उन लोगों ने आकर यही उत्तर दुर्योधन को दिया, जिस से उस का क्रोध भड़क उठा और उस ने आज्ञा दी, कि सब सेना तुरन्त जाकर गन्धर्वों का ताड़न करे, यह सुनने ही सब लोग अस्त्र शस्त्र लेकर गन्धर्वों पर आपड़े, और उन को मार २ कर भूमि पर गिरा दिया, गन्धर्वों की दूसरी समाज ने जो कुछ दूर बैठी हुई थी, यह हाल देखा और अपने भाईयों की सहायता के लिये तुरन्त खड़ी होगई, तब तो बड़ा भयंकर युद्ध हुआ और गन्धर्वों की बहुत हानि हुई ॥

तब गन्धर्व अपने राजा चित्रसेन के पास गये और युद्ध का वृत्तांत सुनाया, उसने अपनी सेना को आज्ञा दी कि इन दुष्ट कौरवों की अच्छी प्रकार ताड़ना करो, उस सेना को आते देख कर कौरवों की सेना भाग चली, परंतु कर्ण खड़ा रहा अपने रथ को आगे बढ़ा कर उन से खूब लड़ने लगा, उस के बाणों से गंधर्व कट २ कर गिरने लगे और भूमी पर उन के मृतक शरीरों का एक भयंकर ढेर लग गया ॥

परंतु एक गन्धर्व के मरने पर सहस्रों नये आजाते, उस

समय दुर्योधन, दुशासन और शकुनि आदि भी वहां आये और कर्ण के साथ मिल कर गंधर्वों से युद्ध करने लगे, कौरवों ने बाणों से गन्धर्वों को ढक दिया, जिस से गन्धर्व भागने लगे चित्रसेन यह दशा देख कर आप लड़ने आया, और अपने मायास्त्र छोड़ कर सब कौरवों को मोहित करने लगा ॥

यह देख कर प्रत्येक कौरव को दश २ गंधर्वों ने घेर लिया, यह देख कर सब कौरव भाग गये, परंतु सूर्य पुत्र कर्ण वहीं ठहरा रहा दुर्योधन और शकुनि भी उन के साथ आगए तीनों को बहुत शस्त्र लगे, परंतु वह पीछे नहीं हटे और युद्ध करते रहे ॥

फिर गंधर्वों ने कर्ण को घेर लिया और मार मार कर उस के रथ को तोड़ डाला, उस के घोड़ों और सारथि को भी मार गिराया, तब कर्ण ढाल तलवार लेकर रथ से कूदा और किंकरी के रथ को लेकर रण से भाग गया ॥

एकसौ सतावने का अध्याय

—:-०-:—

कौरवों की सब सेना का भाग जाना, गन्धर्वों का दुर्योधन आदि सब भाईयों को और उन की स्त्रियों को पकड़ कर ले जाना, सेना के

लोगों का पांडवों की शरण में आना ॥

उस के भागते ही सब सेना चम्पत हो गई और शकुनि, दुर्योधन और उस के भाई ही रह गए तब गंधर्वों ने दुर्योधन को भी विरथ कर दिया और भूमि पर गिरा कर उस को बांध ले गए दूसरे गंधर्व शकुनि आदि को, दुर्योधन और उस के भाईयों की स्त्रियों को ले गए ॥

जो लोग बचे वह रोते चिल्लाते पाण्डवों की शरण में आए और कहने लगे कि तुम्हारे भाईयों को यह विपत्ति पड़ी है तुम उन की रक्षा करो भीमसेन ने कहा कि ऐ लोगो हम को ऐसे पापियों के बचाने की अवश्यक्ता नहीं वह हम को इस बन में दुखित अवस्था में रहते हुओं को अपना ऐश्वर्य दिखाने और हमारे अन्तःकरण को पीड़ित करने आए थे परन्तु जिसका कोई सहायक नहीं उस के परमात्मा तो है वह दुर्योधन हमारे पास तक पहुंचा भी नहीं कि रास्ते में ही उसको अपने दुष्ट कर्मों का दण्ड मिल गया ॥

हम तो उन के मारने के लिये शस्त्र विद्या सीख रहे थे परन्तु इन गंधर्वों ने उनको सहज ही मार कर हमारा का काम किया है। जिस मनुष्य ने तुम को यह कहा है कि हम उन की सहायता करेंगे उस ने निस्संदेह बड़ा पाप किया है ॥

यह सुन कर युधिष्ठर बोला कि भीमसेन यह समय परुष बचन बोलने का नहीं ॥

एकसौ अठावने का अध्याय

—:-o-:—

युधिष्ठिर का भीमसेन आदि सब भाईयों को दुर्योधन के छुड़ाने की आज्ञा देना और अर्जुन का छुड़ाने की प्रतिज्ञा करना ॥

इन शरणागत कौरवों को यह कठोर शब्द कहना सर्वथा अनुचित है जाति में अनेक वैर अनेक कलह और अनेक भेद पड़ जाते हैं परन्तु सामान्य धर्म और कुल धर्म नहीं छूटता यदि कोई अन्य पुरुष कुल के किसी मनुष्य को अनादर करे तो उस को जाति भेद जाति वैर अथवा कलह छोड़ कर दण्ड देना उचित्त है कुल के मनुष्य का तिरस्कार सहा नहीं जाता ॥

क्या यह हमारा अनादर नहीं कि हमारे कुल की स्त्रियां दूसरे मनुष्यों के वश में जावें, निस्सन्देह, गन्धर्वों ने बहुत बुरा किया है, कि हमारे होते हुए, हमें इस बात की सूचना नहीं दी ॥

दुर्योधन तो प्रसिद्ध मूर्ख है और उसने यह सब दुःख अपने ही कर्म का फल पाया है, परन्तु हमारे लिये यह बड़े लज्जा की बात है कि हमारे कुल की स्त्रिया इस प्रकार दूसरों के हाथ में जावें। इस लिये हे भीमसेन तुम चारों भाई जाओ और दुर्योधन को छुड़ा लाओ ॥

ऐसा कौनसा क्षत्रिय है जो शरणागत क्षत्रिय की रक्षा न करे, यदि शत्रु भी शरण में आजावे तो क्षत्रियों को उस की भी रक्षा करना अत्यावश्यक है। तुम्हें इस से बढ़ कर और क्या आनन्द मिल सकता है कि तुम्हारा शत्रु तुम्हारे आश्रय से प्राण रक्षा कर के जीवित रहे॥

मैं भी जाता परन्तु हमारे यज्ञ का प्रारंभ हो चुका है। इस लिये यज्ञ को भंग करना उचित नहीं, इस लिये तुम जाओ पाहिले नरमी से काम लेना, यदि वह सफल न हो, तो पराक्रम दिखाना यदि वह भी सफल न हो तो किञ्चत दण्ड से दुर्योधन को छुड़ा लाओ। अधिक क्या कहूं, तुम सब कुछ जानते हो॥

यह बचन सुन कर अर्जुन बोला कि मैं जाता हूं, यदि साम बचनों से निर्वाह न हुआ तो गंधर्वों के रुधिर को पृथ्वी पीवेगी, सत्यवादी अर्जुन की यह प्रतिज्ञा सुन कर सब का चित स्थिर हूआ॥

एकसौ निन्नानवे का अध्याय

भीमादि पाडवों का गन्धर्वों के साथ युद्ध करने को जाना॥

यह सुन कर सब पांडव खड़े हो गए और रथों में बैठ कर गंधर्वों से लड़ने चले, उन को देख कर कौरवी सेना

गर्जने लगी, गंधर्व निर्भयता से लड़ने लगे और पांडवों से युद्ध करने के लिये व्यूह रचना करने लगे ॥

अर्जुन ने जाते ही कहा कि हमारे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो परंतु गंधर्वों ने बात को हंसी में गंवाकर कहा कि तुम हमें ऐसी आज्ञा नहीं दे सकते हमें आज्ञा देने वाले केवल इन्द्र हैं। उस की आज्ञा में रह कर हम लोग निर्भय होकर विचरते हैं। उसी की आज्ञा से यह सब कुछ हुआ है॥

यह सुन कर अर्जुन बोला कि गंधर्व राजा ने बड़ा अनुचित और निन्दित कर्म किया कि दूसरों की स्त्रियों को हर ले गया, इस लिये तुम युधिष्ठर की आज्ञा मान कर इन को छोड़ दो नहीं तो मुझे तुम को मार कर उन्हें छुड़ाना पड़ेगा तत्पश्चात् कृष्ण ने तीक्ष्ण बाण आकाश मार्ग से छोड़े और गंधर्वों ने भी बाण वृष्टि आरम्भ की, तब बड़ा भयंकर युद्ध होना आरंभ हुआ॥

दो सौ का अध्याय

पांडवों का गंधर्वों से [illegible] होना, गन्धर्व राज का आकर अर्जुन को अपनी मैत्री जताना ॥

इस के पश्चात् बहुत से गन्धर्वों ने अर्जुन के रथ को घेर लिया चाहते थे कि उसको भी कर्ण आदि के रथों के सदृश खंड २ करें, परन्तु अर्जुन की बाण वृष्टि ने उन को रथ के निकट न आने दिया॥

जब अर्जुन ने क्रोधित हो कर दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया और क्रोध से सैकड़ों गन्धर्व मार कर पृथ्वी पर डाल दिये, तो अन्य पाण्डवों ने भी बहुत बाण वर्षाये ॥

यह देख कर गन्धर्व दुर्योधन आदि को साथ लेकर आकाश को उड़ चले, परन्तु अर्जुन ने ऐसे बाण मारे कि उन का ऊपर का रास्ता रुक गिया। जब उन्हों ने पृथ्वी की ओर आने का विचार किया तो अर्जुन ने अनेक प्रकार के अस्त्र छोड़े गदा, शक्ति, खड्ग आदि का प्रयोग किया। सार यह कि न विचारे आगे जा सक्ते थे न पीछे आसक्ते थे ॥

कुछ काल इस प्रकार लड़ाई होती रही, फिर चित्रसेन गदा लेकर आप लड़ने को आया, अर्जुन ने आते ही गदा को काट कर उसके सात टुकड़े कर दिये ॥

तब वह अन्तर्ध्यान हो गिया और आकाश से बाण वर्षाने लगा। तब अर्जुन ने शब्द वेधी बाण छोड़े और दिव्यास्त्रों को अभिमन्त्रित किया ॥

जब चित्रसेन किसी प्रकार अर्जुन से युद्ध न कर सका तो उसके पास आकर कहने लगा कि हे अर्जुन क्या तुम मुझ को भूल गये हो? मैं तुम्हारा परम मित्र चित्रसेन हूं। तब अर्जुन ने उसको पहिचान कर अपने छोड़े हुए अस्त्रों को बुलाया, और बाणों का संहार किया। तब अन्य पांडवों ने भी युद्ध रोक दिया। पाण्डवों के बीच में चित्रसेन बैठ गये और एक दूसरे की कुशल पूछने लगे ॥

दोसौएक का अध्याय

—:-०-:—

चित्रसेन का दुर्योधन के आने और गन्धर्वों को उसके बांधने का प्रयोजन कहना और पाण्डवों के कहने पर उसको छोड़ना, दुर्योधन का लज्जित होकर चले जाना ॥

तब अर्जुन ने चित्रसेन से पूछा कि हे वीर तुम ने दुर्योधनादि और उन की स्त्रियों को क्यों हर लिया इस लिये यदि तुम मेरे मित्र हो तो इन को छोड़ दो चित्रसेन बोला कि हे अर्जुन यह पापी दुर्योधन रक्षा करने के योग्य नहीं तुम अनाथ और दुःखियों को वन में दीन दशा में रहते हुए सुन कर और तुम्हें अपना वैभव दिखाने का विचार करके स्त्रियों शकुनि और कर्ण समेत यह आया था इन्द्र को यह बात बुरी लगी और उसने मुझे नियुक्त किया कि मैं आकर तुम्हारी रक्षा करूं मैं तुम्हारा प्रिय सखा और गुरू भी हूं इस लिये मैं तुरन्त तुम्हारी रक्षा के निमित्त दौड़ आया और अब इस को बाध कर इन्द्र के पास ले जाऊंगा ॥

अर्जुन बोला कि यह हमारे भाई हैं और युधिष्ठर की आज्ञा है कि इन को छुड़ाया जाए इस लिये आप इन को इस समय तो छोड़ दीजिए, गंधर्व बोला कि हे अर्जुन युधिष्ठर

इस पापी को अच्छी प्रकार नहीं जानता इस लिये यह बात कहता है ॥

तब वह सब के सब युधिष्ठर के पास गए और उस को सब वृत्तांत कह सुनाया युधिष्ठर ने गन्धर्वों की बहुत प्रशंसा की और कहा कि मेरे इन बाधवों को छोड़ दो यह इन की प्रारब्ध थी कि वह तुम्हारे वश में आकर भी बच रहे आपने मेरा बड़ा उपकार किया है कि इस दुर्बुद्धि को छोड़ दिया है नहीं तो मेरी बहुत निन्दा होती और हमारी कुल का बहुत अपमान होता ॥

तब गंधर्वों ने युधिष्ठर से आज्ञा ली और दुर्योधन आदि को छोड़ कर चले आए, तब सब कौरवों ने युधिष्ठर की पूजा की फिर युधिष्ठर ने कहा कि देखो दुर्योधन तुम ने बड़ा कुकर्म किया कि तुम ने इस प्रकार का साहस किया फिर कभी इस प्रकार का काम न करना अब तुम कुशल पूर्वक जहां इच्छा हो जाओ ॥

यह आज्ञा पा कर दुर्योधन बड़ा लज्जित होकर चला आया और युधिष्ठर अपने भाइयों सहित वहीं आनन्द पूर्वक रहने लगा ॥

दोसौ दो का अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का अपने नगर को आना, रास्ते

पर एक स्थान में ठहरना और कर्ण का उन से आ मिलना ॥

उस समय दुर्योधन की दशा रोगी और गतेन्द्रिय पुरुष की प्रतीत होती थी और दीख पड़ता था कि काटो तो शरीर में रक्त नहीं, वह बहुत नीचे मुख किये हुए नष्ट बुद्धि होकर अपनी दुर्दशा से पीड़ित हुआ २ चिंता ग्रस्त होकर अपने नगर को चल प ा, उस की टूटी फूटी चतुरंगणी सेन भी उसके पीछे २ चल पड़ी ॥

जाते जाते वह एक रमणीक स्थान पर पहुंचे, जहां हरा घास बहुत उगा हुआ था, वहां रथ ठहरा दिये और एक एकांत भूभाग में डेरा डाल दिया, सेना के लोग अपने २ घोड़ों और हाथियों को चराने ले गए और दुर्योधन एक चारपाई बिछा कर लेट गया॥

जब पहिर रात रह गई, तब कर्ण आया और कहने लगा कि हमारा बड़ा भाग्य है, जो आप सब लोग गंधर्वों को परास्त करके विजय पूर्वक लौट आये हो, मैंने तो बहुत युद्ध किया था, परंतु सेना भाग गई और मेरा रथ भी टूट गया, जब मैं अकेला घायल होकर रह गया तो भागने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था, आपका और आप के भाईयों का निस्संदेह बड़ा पराक्रम है। जो आप इस अमानुष्य युद्ध में कुशल क्षेम से आये हैं और स्त्रीजन को भी ले आये हैं ॥

दोसौ तीन का अध्याय

—:-०-:—

दुर्योधन का अपनी पराजय का वृत्तांत कर्ण को सुनाना और पांडवों के छुड़ाने का हाल कहना और अपने प्राण त्यागने का विचार करना और दुशासन को राजा बनाना, उस का न मानना, कर्ण का उन को धैर्य देना ॥

यह बात सुन कर दुर्योधन बड़ी शोकातुर वाणी से कर्ण से कहने लगा, कि हा बहुत विजय पाई है, परमात्मा शत्रु को भी इस प्रकार की विजय न दे, हम गंधर्वों से लड़े तो बहुत और उन को मारा, परंतु वह तो आकाश में स्थित होकर हम पर बाण वृष्टि करके हम को घायल करते रहे ॥

इस प्रकार जब असमान युद्ध हुआ तो वह जीत गये, और मुझे बांध कर स्त्री पुत्र समेत लेगये । हमारी सेना के मनुष्यों ने पाण्डवों के पास जाकर शरण ली और उनको हमारी इस दीन दशा का संदेशा दिया । तब धर्मराज युधिष्ठर ने अर्जुनादि पाण्डवों को भेजा और उन्हों ने गन्धर्वों से प्रार्थना की कि हमारे भाईयों को छोड़ दो, परन्तु गन्धर्वों न उनकी बात को न माना, तब उनसे युद्ध होने लगा ॥

तब गन्धर्व हम को आकाश में उड़ा ले चले, परन्तु अर्जुन

के बाणों ने आकाश मार्ग को रोक दिया। तब गन्धर्व राज चित्रसेन आया, अर्जुन की उससे मित्रता थी, वह दोनों बड़े प्रेम से मिले। अर्जुन ने उनसे हमारे लिये प्रार्थना की उसने हंसकर वह बात बतलाई जिसके लिये हम तुम यहां आये थे॥

हे कर्ण उस को सुन कर मैं इतना लज्जित हुआ कि यदि भूमि में बिल होती तो मैं उस में घुस कर कभी बाहिर न निकलता। इस के पीछे गंधर्व हम बांधे हुयों को युधिष्ठर के पास ले गए और उस से भी हमारी सलाह का हाल कहा, मैं अत्यंत लज्जित बंधुओं की दशा में अपने शत्रुओं के पास लाया गया और मेरे बन्धन काटे गए॥

हाय मैं वह दुर्योधन जिसने युधिष्ठर का निरादर करके उस को पीडित करके देश से निकाल दिया था और उस समय दीन अवस्था में उस से जीव दान मागूं, अच्छा होता कि मैं गंधर्वों के हाथ से मारा जाता, मुझे देव लोक में अक्षय सुख तो मिलत, अब जीता हुआ भी मृतक के समान रहुंगा॥

इस अवस्था में मेरा जीना ठीक नहीं और अब मैं नगर को नहीं जाऊंगा, यहां निराहार करके और व्रत धारण कर के अपने आप को मार डालूंगा॥

आप सब लोग दुशासन को राजा बनायें, और आगे करके हस्तिना पुर में जायें, मैं जाकर क्या करूंगा, भीष्म, द्रोणा चार्य, कृपा चार्य, अश्वत्थामा आदि विद्वजनों को जा

कर क्या उत्तर दूंगा, मैंने इस समय आप ही अपने दोषों के कारण नीचा देखा है, दुराचारी मनुष्य लक्ष्मी, विद्या और ऐश्वर्य पाकर मेरी भांति देर तक नहीं भोग सकते, इस से मैं प्राण नहीं रखूंगा, मुझ से अभिमानी मनुष्य अपने शत्रुओं से छुड़ाये जाने पर और उन से जीव दान पाने पर कैसे जीवें ॥

तब दुशासन को बुला कर कहने लगा कि हे दुशासन ! मैं अब यहीं प्राण त्याग करूंगा, मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूं। तुम शकुनि और कर्ण की सहायता से राज्य को भोगो तब उसने दुःशासन को गले से लगा लिया और फिर कहा कि जाओ राज्य करो और माता, पिता, गुरु, और भाईयों का यथोचित पालन करो ॥

यह सुन कर दुःशासन फूट२ कर रोने लगा और गद्‌ २ वचन से दुर्योधन से प्रार्थना करने लगा कि भाई प्रसन्न हो प्रसन्न हो। अपने मुख से ऐसे वचन मत निकालो। मैं इन को सहार नहीं सक्ता। तुम्हारे बिना मेरा राज्य करना सर्वथा असंभव है। चाहे पृथ्वी फट जाय, आकाश के दो खण्ड हो जायं, चन्द्रमा की प्रभा जाता रहे, अग्नि निस्तेज हो जाय वायु अवेग हो जाय, हिमालय अपनी जगह छोड़ दे, समुद्र का जल सूख जाय, परन्तु आप के बिना मेरा राज्य करना सर्वथा असंभव है ॥

इन दोनों की बात सुनकर कर्ण ने शोकातुर होकर कह.

कि तुम दोनों जन कैसी मूर्खों की बातें कर रहे हो। क्यों इतना शोच करते हो! जो मनुष्य इस प्रकार की बातें करता है, उसकी चिन्ता कभी दूर नहीं होती। शोक तो तब करना उचित है जब उससे किसी प्रकार का लाभ हो, या दुःख दूर हो सके। तुम्हारी इस चिन्ता से क्या हो सकता है। तुमको ऐसी अवस्था में देख कर तुम्हारे शत्रु प्रसन्न होंगे॥

क्या हुआ यदि पाण्डवोंने आप का भला कार्य कर दिया तो प्रजा को अपने राजा के प्रिय कार्य सदा करने चाहिये। वह आप के राज्य में सुख पूर्वक रहते हैं और आप से पालित हैं इस लिये इस बात पर तुम्हें इतना शोक करना कदापि उचित्त नहीं देखो तुम्हारे सब भाई तुम्हारे इन बचनों से बड़े व्याकुल हो रहे हैं उठो नगर को चलो॥

दोसौचार का अध्याय

—:-o-:—

कर्ण का दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाना, परन्तु दुर्योधन का अपना मन न हटाना॥

मैं समझता हूं कि इस समय तुम्हारी बुद्धि न्यून हो गई है यदि पाण्डवों ने तुम को छुड़ाया तो कौन सा आश्चर्य किया देशवासी और सेना जीवि मनुष्यों का यही धर्म है वह जाने

अथवा न जाने का प्रिय और हित कार्य करते हैं देखो आपके देश में वह निरुपद्रव वास करते हैं क्या वह इस ऋण को न उतारें ॥

एक वार वह तुम्हारे दास हो चुके हैं फिर दास ने यदि अपने स्वामी का हित किया तो कौन सी आश्चर्य की बात है देखो पाण्डवों पर इतनी विपत्ति आई परन्तु उन्हों ने कभी देह त्यागने का विचार नहीं किया इस लिये उठो और अपनी अज्ञानता को प्रकट मत करो यदि तुम न जाओगे तो मैं यहीं ही तुम्हारे चरणों पर पड़ कर प्राण त्याग दूंगा तुम्हारे इस प्रतिज्ञा से सब राजा तुम्हारी हंसी करेंगे ॥

इस प्रकार दुर्योधन को कर्ण ने बहुत समझाया परन्तु उस ने अपने मन के निश्चय को नहीं छोड़ा और स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा करने लगा ॥

दोसौ पांच का अध्याय

शकुनि का दुर्योधन को समझाना परन्तु दुर्योधन का उस के वचन न मान कर प्रायोपवेशन करना, पाताल वासी दानवों का कृत्ति को भेज कर उस को पाताल में मंगवाना ॥

तब शकुनि बड़ी बुद्धिमति की बात चीत करने को आया उस ने कहा कि हे दुर्योधन क्या हुआ यदि पांडवों ने आप को गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाया तो ऐसा करने में उन्हों ने केवल अपने धर्म का पालन किया है। देखो कर्ण ने बुद्धि मति की बात की है जो मनुष्य अकस्मात उठे हुए हर्ष और शोक को नहीं रोकता उस की लक्ष्मी इसी प्रकार नष्ट हो जाती है जैसे जल में कच्चा घड़ा॥

यदि तुम पांडवों के इस कर्तव्य की प्रशंसा करते हो तो उन को अपना राज्य भोगने दो, वह भी तुम्हारे भाई हैं इस में तुम्हारा यश और कीर्ति होगी और पृथ्वी पर कृतज्ञ कहलाओगे उन के साथ भाईयों का बर्ताव करने और उन को उन के पिता का राज्य देने से तुम को बहुत सुख होगा॥

परन्तु दुर्योधन कुछ न बोला और दुशासन को बार बार छाती से लगाने लगा तब शकुनि आदि से कहने लगा कि मैं ने निश्चय कर लिया है मुझे धन, राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी आदि की कोई आवश्यक्ता नहीं आप मुझ को छोड़ कर चले जाइये तुम जाकर राज्य करो और गुरुओं की सेवा करो॥

यह कह कर दुर्योधन कुशासन बिछा कर भूमि पर बैठ गया और जल को स्पर्श करके नियम पूर्वक स्वर्ग पाने की इच्छा से मौन व्रत करने लगा मन से उस ने चिता बनाई और सब क्रियाओं को त्याग कर दिया॥

पाताल वासी दानवों ने जब यह सुना तो उन को बड़ी

चिन्ता हुई और अपने पक्ष की हानि समझने लगे तब उन्हों ने महान यज्ञ रचाए और शुक्राचार्य और बृहस्पति के बताए हुए अथर्वण वेद के मन्त्र उचारण करके वेद वेदाङ्ग को जानने वाले ब्राह्मण हवन कराने लगे तब यज्ञ की समाप्ति पर एक कृत्तिका निकली और बोली कि क्या आज्ञा है दानवों ने कहा कि दुर्योधन को यहां उठा लाओ तब कृत्तिका उस स्थान पर आई और क्षण भर में दुर्योधन को उठा कर पाताल में ले गई ॥

दोसौ छे का अध्याय

—:०:—

दैत्यों का दुर्योधन को समझाना और अपनी बुद्धि को स्थिर करने को कहना और फिर दुर्योधन का वहां से अपने नगर को आना ॥

उस को देख कर दानव हर्ष से बोले कि हे दुर्योधन तुम्हारे पास बड़े २ प्रतापी, शूरवीर और महात्मा हैं तुम ने किस लिये यह निराहार मौन व्रत धारण कर रखा है। यह बुद्धि तुम्हारी धर्म अर्थ और सुख की नाशक है? यश प्रताप और पराक्रम को घटाने वाली और शत्रुओं का हर्ष बढ़ाने वाली है जो पुरुष इस प्रकार अपना शरीर त्याग करता है वह निंदित

और नरक गामी होता है ॥

देखो हम ने तुम को पूर्व काल में शिवजी से मांगा था, तुम्हारे ऊपर का धड़ तो वज्र से बना है जिस में कोई शस्त्र प्रवेश नहीं कर सकता, तुम्हारे नीचे का धड़ पुष्प मय है और ऐसा सुंदर है कि उस को देख कर स्त्री मोहित हो जाती है। इस से निश्चय जानो कि तुम्हारारूप दिव्य है और शंकर पार्वति से संयुक्त है। देखो चिन्ता मत करो, बड़े२ क्षत्रियं और योद्धा तुम्हारी सहायता करेंगे, हम ने अनेक दानवों को पृथ्वी पर जन्म लेने को भेजा है वह जन्म ले कर अवश्य ही आप की सहायता करेंगे ॥

बहुत से दानवों ने भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अन्य शूरों के हृदय में भी प्रवेश किया है वह अब पाण्डवों पर कृपा छोड़ कर तुम्हारी ओर से वैरियों से युद्ध करेंगे जो तुम अर्जुन से डरते हो वह अर्जुन शीघ्र ही मारा जाएगा हम ने मरे हुए नर कासुर की आत्मा को कर्ण के हृदय में प्रवेश कर दिया है वह अपने पिछले वैर को याद करके अर्जुन श्री कृष्ण की ताड़ना करेगा इन्द्र यह जान कर छल से कर्ण के कुण्डल और कवच ले जाएगा परन्तु अन्य दानव जो पृथ्वी पर जन्म लेकर संसप्तक नाम से विख्यात होंगे अर्जुन को मारेंगे ॥

देखो युधिष्ठर सदा देवताओं की गति है और तुम सर्वदा हमारी गति हो तुम्हारे यह व्रत धारण करने से हमारा पक्ष क्षय हो जाएगा इस लिए जाओ और मनमें धीर्य रखो कि तुम

अपने शत्रुओं को परास्त करोगे, इस के पश्चात् कृत्या ने फिर दुर्योधन को वहीं आन रखा ॥

तब से दुर्योधन की बुद्धि फिर वैसी ही होगई और उस ने गंधर्व संग्राम को स्वप्न मात्र विचार किया, कर्ण आदि अन्य शूर बीर कौरव भी पांडवों के शत्रु बन गए, दुर्योधन ने यह वृत्तांत किसी को न सुनाया ॥

इतने में रात्रि व्यतीत होगई, कर्ण ने दुर्योधन का हाथ पकड़ा और कहा कि उठो क्यों शोच कर रहे हो, जीता हुआ मनुष्य तो शत्रु को मार सकता है, परंतु मरा हुआ क्या करेगा मैं प्रण करता हूं, कि तेरहवें वर्ष युद्ध होने पर मैं निस्संदेह अर्जुन को मारूंगा और पाडवों को तेरे वश में कर दूंगा ॥

तब दुर्योधन उठा और सेना को कूंच करने की आज्ञा दी और रास्ते पर लोगों से मिलता मिलाता अपने नगर में चला आया ॥

दोसौ सात का अध्याय

—:-०-:—

भीष्म का दुर्योधन और कर्ण की निन्दा करना और कर्ण का अपना प्राक्रम दिखाने के लिये दिग्विजय करने जाना ॥

तब दुर्योधन घर में पहुंचा तो भीष्म ने कहा कि हम ने तो

तुम को पाहिले ही कहा था कि तुम तपोवन में मत जाईयो परन्तु हमारी बात का निरादर करके तुम वहां गए और बलवान शत्रुओं से बांधे गए, जब पाण्डवों ने तुम को इस दशा से छुड़ाया तो क्या तुम को लज्जा न आई? कर्ण जिस पर तुम्हारा इतना विश्वास है कहां था? तुम्हारे पुकारने पर भी न बोला? नहीं परन्तु गंधर्वों से डर कर भाग गया! हे दुर्योधन, किस घमण्ड पर तुम इतना इतरा रहे हो? कर्ण अर्जुन की चौथाई भी नहीं! क्या अभी समझ आई है कि नहीं? मेरा विचार है कि अब भी तुम उन महात्मा पाण्डवों से सन्धि कर लो॥

दुर्योधन मुसुकरा कर चुपका हो रहा और भीष्म के वचनों का कुछ उत्तर न देकर उठ कर बाहिर निकल गया उस के पीछे उस के साथी दुशासन आदि भी हो लिये भीष्म इस तिरस्कार को देख कर लाजित होकर घर लौट आया॥

भीष्म के चले जाने पर दुर्योधन अपने मन्त्रियों सहित फिर वहीं आ गया और उन को कहने लगा कि अब कोई ऐसा विचार करो जिस से हमारा कल्याण हो और यह कलङ्क धोया जाय कर्ण ने कहा कि भीष्म के वचन मैं सहार नहीं सकता देखो यह मेरी कैसी निन्दा करता है और तुम को भी निरादर के वचन बोलता है वास्तव में यह पाण्डवों से मिला हुआ है नहीं तो कभी उन की इतनी सरहाना न करे॥

दुर्योधन बोला नहीं इस का स्वभाव ही ऐसा है, तुम इस की चिंता मत करो, कर्ण ने कहा कि अच्छा मुझे सब सामग्रि प्रस्तुत करादो मैं दिग्विजय को जाऊंगा और सारी पृथ्वी को जीत कर लौटूंगा, चार पांडवों ने मिल कर दिग्विजय की थी, परंतु मैं अकेला ही सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर अपना बल और पराक्रम दिखाऊंगा, तब तो निस्संदेह भीष्म को मेरे महत्व का विचार होगा ॥

यह सुन कर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ और कर्ण की प्रशंसा करके कहने लगा कि मेरा जन्म तभी सफल है जब तुम दिग्विजय करके दिखाओ, मैं सब सामग्रि अभी प्रस्तुत कर देता हूं, तदुपरांत एक अच्छा मुहूर्त देख कर और सुंदर रथ पर बैठ कर और ब्राह्मणों से पूजित होकर कर्ण दिग्विजय करने को चल पड़ा ॥

—:०:—

दो सौ आठ का अध्याय

—:-०-:—

कर्ण का दिग्विजय करने जाना और संपूर्ण पृथ्वी को जीत कर लौट आना ॥

कर्ण बड़ी सेना लेकर राजा द्रुपद के नगर को गया और उसको विजय कर के बहुत सा कर लिया और आगे कर देने को नियम ठहराया, फिर वह उत्तर दिशा में गया और राजा भग दत्त को जीत कर उसके आधीन राजाओं को भी अपने वश

में कर लिया, फिर उसके समीप वर्ति राजाओं को भी जीता तदुपरान्त वह हिमालय पर्वत पर चढ़ गया और सब पर्वती राजाओं को जीत कर उन से कर लेने का नियम भी कर लिया। तब उत्तर दिशा को गया और अंग, वंग, कलिंग, मांडिक, मिथिल, मगध, कर्क खण्ड, अवशीर, योद्ध अहिछत्र, वत्स भूमि, केवली, मृत्तिका वती मोहन, पतन, त्रिपुर और कोशल आदि देशों को विजय किया और सब राजाओं से कर लेकर दक्षिण दिशा को चल दिया। और वहां के सब राजाओं को जीत कर दाक्षिणात्य देश में पहुंचा वहां राजा रुक्मि से युद्ध हुआ और बहुत साधन कर्ण के हाथ आया ॥

वहां से कर्ण पाण्ड्य और श्रीशैल देशों में पहुंचा और वहां के राजाओं को जीत कर केरल नील और आदि सब को जीता। वहां से दक्षिण के सब राजाओं को जीतता हुवा शिशु पाल के पुत्र और उस के समवर्ति राजाओं को जीता। फिर अवंती और वृष्णि देश को विजय किया और म्लेच्छ देश के राजाओं को, सार यह कि सब पृथ्वी के राजाओं को जीता और उन से कर लेने का नियम किया ॥

तब वह हस्तिना पुर को लौटा दुर्योधन पिता और बान्धवों सहित उस को मिलने गया और आदर पूर्वक नगर में ले आया कर्ण की दिग्विजय का ढण्डोरा सारे नगर में फिर गया और दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ. उस ने कहा कि हे कर्ण तुझ से आज मैं सनाथ हुआ हूं मुझे इतना ऐश्वर्य भीष्म द्रोणाचार्य और वाल्हिक से भी प्राप्त नहीं हुआ ॥

तब दुर्योधन कर्ण को धृतराष्ट्र और गन्धारी के पास ले गया कर्ण ने उनके पाओं पर शिर धर कर वन्दना की और उन्हों ने आशीर्वाद देकर हृदय का अन्तरीय भाव प्रकट किया तब से धृतराष्ट्र और शकुनि कर्ण को पाण्डवों को जीतने वाला समझने लगे ॥

दोसौ नौ का अध्याय

—:-०-:—

कर्ण की सलाह से दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ करने के विचार से शिल्पियों से स्वर्ण का हल बनवाना ॥

तब कर्ण बोला कि हे राजा दुर्योधन जो कुछ मैं तुम से कहता हूं उस को तुम सुनो और समझो और उसी के अनुसार काम करो, दुर्योधन ने कहा कि मेरा विचार है कि मैं भी अब राजसूय यज्ञ करूं जैसा कि युधिष्ठिर ने किया था, कर्ण ने कहा कि बहुत अच्छा ॥

तब दुर्योधन ने पुरोहित को बुलाया और राजसूय यज्ञ करने का सङ्कल्प प्रकट किया पुरोहित ने कहा कि हे दुर्योधन जब तक युधिष्ठिर जीता है और तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र जीते हैं तुम को राजसूय यज्ञ करने का अधिकार नहीं इस लिए तुम वह यज्ञ न करो, हां तुम एक और उत्तम यज्ञ कर सकते

हो वह वैष्णव यज्ञ है जो केवल विष्णु जी ने एक वार किया था उस के लिए तुम अपने वशीभूत सव राजाओं से स्वर्ण लेकर एक सुन्दर हल वनवाओ और उस से यज्ञ भूमि को जोतो फिर यज्ञ की सव सामग्रि और वनाया हुआ अन्न रक्खो और फिर यज्ञ करो ॥

दुर्योधन ने कहा कि मैं तो ब्राह्मणों का दास हूं, जो कुच्छ वह कहते हैं करता हूं, वहुत अच्छा यदि राजसूय नहीं तो वैष्णव यज्ञ ही सही, तव उस ने शिल्पियों को वुलाया और हल वनाने को कहा। थोड़े ही दिनों में हल वन कर तैयार हो गया ॥

दोसादस का अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का यज्ञ, सव राजाओं का आना, यज्ञ समाप्ति पर सव का विदा होना और दुर्योधन का नगर में आना ॥

इस के पश्चात् विदुर जी ने कहा कि अव यज्ञ का महूर्त निकट आन पहुंचा है आप को चाहिये कि सव सामग्रि लेकर यज्ञ को सम्पूर्ण करें, तव दुर्योधन ने यज्ञ को आरम्भ करवाया ॥

तव कौरवों ने शीघ्रगामी दूतों और ब्राह्मणों को वुला

कर आज्ञा दी कि तुम राजाओं के पास जाओ और उन को यज्ञ में आने का निमंत्रण दो । साथ ही जहां कहीं कोई ब्राह्मण तपस्वी मिले उनको आदर पूर्वक इधर भेजदो दूत यह सुन कर चल दिये, स्थान २ पर जाते और राजाओं और ब्राह्मणों को निमन्त्रण देते ॥

तब दुशासन ने एक दूत को बुला कर कहा कि जाओ द्वैत वन में पांडव रहते हैं, उन पापियों को और अन्य ब्राह्मणों को भी बुला लाओ। जब दूत द्वैत वन में पहुंचा और पाडवों को निमंत्रण दिया, तब युधिष्ठर ने कहा कि हम को यह सुन कर बड़ा प्रसन्नता है कि दुर्योधन बाप दादों के यश बढ़ाने वाले काम करता है परंतु हमारी प्रतिज्ञा को अभी तेरह वर्ष नहीं हुए इस लिए वन को छोड़ कर जा नहीं सकते ॥

तब भीमसेन बोला कि तुम ने दुर्योधन को जाकर कह देना कि प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर युधिष्ठर युद्ध रूपी यज्ञ में अस्त्र शस्त्रों की अग्नि जलाकर दुर्योधन आदि को हवन करने आवेगा, उस समय मेरा भी क्रोध बढ़ेगा, मैं भी क्रोध रूपी हवि को उन पर डालूंगा, जाओ दुर्योधन को ऐसा कह दो, वह दूत यह सुन कर लौट आया और पाडवों का उत्तर सबको सुना दिया ॥

तब धृतराष्ट्र ने विदुर को आने वाले लोगों की सेवा करने पर नियुक्त किया और आज्ञा दी किसी को किसी पदार्थ की कमी न रहे। विदुर ने सब प्रबन्ध बड़ी सोच विचार से किया और भोजन वस्त्र आदि बहुत इकट्ठे किये ॥

तब राजा लोग और ब्राह्मण आये, और यज्ञ की समाप्ति तक रहे। तत्पश्चात् कौरवों ने सब को धन देकर विदा किया। दुर्योधन ने शकुनि और भाईयों सहित बड़ी धूम धाम सहित नगर में प्रवेश किया ॥

दोसौग्यारां का अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का नगर में प्रवेश, कर्ण का अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा करना, उस को सुन कर युधिष्ठर का उद्विग्नचित होना ॥

जब नगर में दुर्योधन आये, तो बड़ी धूम धाम से मार्ग में वस्त्र विछाये गये चन्दन लिप्त खीलें रखी गईं। कई लोग तो दुर्योधन की स्तुति करते थे परन्तु कई २ कहते थे कि यह यज्ञ तो युधिष्ठर के राज सूययज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है। कईयों ने कहा कि इस प्रकार के यज्ञ तो केवल ययाति, मान्धाता और भरत ही करते थे ॥

नगर में इस प्रकार की बातें होने लगीं, राजा दुर्योधन अपने घर में पहुंचा और अपने माता पिता और वृद्धों के चरणों पर शीश धरा, तब सुन्दर आसन पर बैठ गिया और भाईयों से पूजित हुआ, तब कर्ण ने कहा कि जब तुम पाण्डवों को मार लोगे, तब मैं भी फिर तुम्हारी पूजा करूंगा, दुर्योधन ने कहा

बहुत ठीक जब तक मैं भी राजसूय यज्ञ न करलूं, मुझे भी शान्ति नहीं ॥

कर्ण बोला कि मैं अर्जुन को मारूंगा और प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक मैं यह काम न करलूं, तब तक अपने पैर किसी से नहीं धुलाऊंगा। जो कोई वस्तु मुझ से कोई मांगेगा उसको दे दूंगा, यह सुन कर कौरवों ने बड़ा कोलाहल किया और कर्ण को उठा २ गले से लगाने लगे और समझने लगे कि हमने पाण्डवों को जीत लिया ॥

पाण्डवों ने कर्ण की प्रतिज्ञा को सुना और उसकी दिग्विजय को सुन कर युधिष्ठर और भी घबरा गिया, युधिष्ठर सोचने लगा कि वास्तव में कर्ण बड़ा बलवान है वह अर्जुन को मार लेगा, इसी चिन्ता में उसने विचारा कि अब हम को द्वैत बन को छोड़ना चाहिये ॥

तब दुर्योधन सुख पूर्वक राज पाठ करने लगा उसने बहुत से यज्ञ किये और यह जान कर कि धन के दो ही प्रयोजन होते हैं, या तो दान देना, या भोगना, उसने अपने भाईयों का भी बहुत आदर सत्कार किया और यज्ञ भी बहुत किये ॥

दोसौ बारह का अध्याय

—:-०-:—

स्वप्न में पाराडवों से मृगों की प्रार्थना, पाराडवों का द्वैत बन को छोड़ कर कायम्क

बन को जाना ॥

तब दुर्योधन द्वैत वन से लौट कर अपने घर को आया जब पाण्डवों का यज्ञ हो रहा था, यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् पाण्डव वहां ही विहार करते रहे, रहते २ जब उनको एक वर्ष और आठ महीने हो चुके, तब एक दिन युधिष्ठर मध्यान्ह के समय सोता था, कि उसको स्वप्न में डर से भयभीत मृगों ने कांप २ कर प्रार्थना की कि महाराज, हम सब को आपने मार २ कर खालिया है और हम केवल बीज मात्र रह गये हैं, इस से आप को अन्य वनों को जाना उचित है ॥

यह स्वप्न देख कर युधिष्ठर की आंख खुली और उस ने भाईयों को कहा कि अब इस वन को छोड़ना उचित है। चलो रमणीक काम्यक वन को चले चलो। यह सुन कर सब ने वहां जाने की तैयारी की और अपना २ बोरिया बिस्त्र उठा कर रथों पर बैठ कर चल दिये और पवित्र काम्यक नामी तपो वन में जा पहुंचे ॥

दोसौ तेरह का अधयाय

—:o:—

काम्यक वन में व्यास जी का पांडवों से मिलना और दान धर्म का उपदेश करना ॥

काम्यक वन में जाकर पांडवों ने उन का ग्यारहवां वर्ष व्यतीत हुआ और वह आने वाले काल की प्रतीक्षा करने लगे

युधिष्ठर अपने किये हुए कर्म और उस के दुखदाई फलों को विचार करके बहुत चिंता करने लगा, इतने में व्यास जी आगए और उन को देख कर सब पांडव खड़े होगए और विधिवत पूजा करके उन को आसन दिया ॥

व्यास जी कहने लगे कि हे युधिष्ठर इस संसार में तप करने वाले मनुष्य को बहुत सुख नहीं मिलता सुख दुःख तो भोगने पड़ते ही हैं, परंतु अनंत सुख किसी को प्राप्त नहीं होता, जो मनुष्य ब्रह्म विद्या जान कर अपनी उत्पत्ति और लय के स्थान को जानते हैं वह न तो शोच करते हैं, न हर्ष, दुख आने पर उस को भोग लेते हैं, और सुख के आने पर उस को ग्रहण करते हैं, ऐसे मनुष्य किसान की खेती की भांति आने वाले काल की प्रतीक्षा करते हैं ॥

धर्मात्मा के गुण यह हैं — सत्य, सरलता, क्रोध रहित होना, अन्न का भले प्रकार विभाग करना, इन्द्रियों का रोकना दूसरे के गुणों में दोष न लगाना, हिंसा न करनी शुद्धिता से रहिना, और इंद्रियों को वश में रखना, अधर्मी मनुष्य पशु पक्षियों की योनि में जन्म लेता है ॥

जब दान देने का समय आवे, तब यथा शक्ति पात्र को देख कर और उस का आदर सत्कार करके दान देना उचित है, सत्यवादी मनुष्य चिरंजीवी होते हैं ॥

तब युधिष्ठर ने पूछा कि महाराज दान, धर्म और तप में अधिक फल किस का है, तब व्यास जी बोले कि दान सब

से अधिक फल रखता है, क्योंकि धन के कमाने में मनुष्य को बड़ा यत्न करना पड़ता है कोई खेती करता है, कोई व्योपार के लिये समुद्र से भी पार जाता है, कोई राजा की सेवा करता है और अनेक प्रकार के कष्टों को सहता है, इस से धन का उपार्जन करना बड़ा ही कठिन है और जो मनुष्य धन का दान करता है वह बहुत ही कठिन काम करता है ॥

परन्तु एक बात विशेषता से है वह यह है कि जो धन धर्म से कमाया गया हो उस का दान करना सफल है पाप से उपार्जन किया हुआ धन दान करने से कुछ लाभ नहीं होता शुभ काल में पवित्र धन थोड़ा सा भी पात्र को दिया हुआ अनन्त फल देता है क्या तुम ने मुद्गल ब्राह्मण का हाल नहीं सुना ॥

दोसौ चौदह का अध्याय

मुद्गल ब्राह्मण का एक द्रोण धान दान करना, दुर्वासा का आना और उस की परीक्षा करना ॥

कहते हैं कि मुद्गल नाम एक ब्राह्मण कुरुक्षेत्र का निवासी बड़ा धर्मात्मा था वह बड़ा जितेन्द्रिय और तपस्वी था दूसरे के गुणों में उस ने कभी दोष नहीं लगाया था सत्ते उस का शिलो

छः अर्थात सिला चुगने वी थी वह अतिथियों का बहुत पूजन किया करता था और कपोत वृत्ति स्थित होकर इष्टी कर्म भी किया करता था उस ने अपनी स्त्री और पुत्र सहित पक्ष में केवल एक दिन भोजन करने का नियम किया हुआ था मुद्गल ने इस प्रकार एक द्रोण धान इकट्ठे कर लिए ॥

मुद्गल का नियम था कि दर्श और पौर्णमास यज्ञ करे और अतिथियों को भोजन दे और जो देवता और अतिथियों से शेष रहे उस को आप खावे इन्द्र देव उस की दृढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर उस के दिए हुए अन्न को आप ग्रहण करता था एक समय पर्व के आने पर उस ने यथा पूर्व अतिथियों को भोजन कराया परन्तु जो अन्न शेष बचा वह इतना बढ़ा कि सैकड़ों ब्राह्मण खा गए परन्तु अन्त नहीं हुआ कारण यह कि ब्राह्मण का त्याग सच्चे मन से था ॥

इसके पीछे दुर्वासा ऋषि ने उस ब्राह्मण का सब हाल सुना और उसकी परीक्षा के लिये वहां आया और बड़ी गाली गलौच निकाल कर कहने लगा कि मैं तुम्हारे घर का अन्न खाऊंगा मुद्गल ने कहा कि बड़ी प्रसन्नता से खाईये। उसने विधि के अनुकूल दुर्वासा की पूजा की और अन्न परोस, दुर्वासा जी उस अन्न को खा गये, फिर और परोसा उसको भी खा गये। सार यह कि वह उसका सारा अन्न खा गये और जो जूठ बची वह भी साथ ले गये ॥

ब्राह्मण बिचारे के लिये कुछ न बचा और वह पक्ष भर निराहार रहा, दूसरे पक्ष में भी ऐसा ही हुआ, परन्तु

ब्राह्मण अपनी क्रिया यथा पूर्वक करता रहा, छः पक्ष तक दुर्वासा ने यही दशा रखी, परन्तु मुद्गल ने कुछ चिन्ता न की तब दुर्वासा बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि हम ने तीनों लोकों में तेरे समान कोई ब्राह्मण नहीं देखा ॥

तेरा मन बड़ा निर्मल है और तूने अपनी इन्द्रियों को वश में रखा हुआ है, यत्न पूर्वक इकट्ठे किये हुए धन को छोड़ना बड़ा कठिन है। परन्तु तुम उसकी चिन्ता ही नहीं करते। इस से तुम स्वर्ग में जाओगे। वह यह कह ही रहा था कि स्वर्ग से पुष्पविमान उतरा, और देवदूत ने मुद्गल को कहा कि हे ब्रह्मर्षि! आपने कर्मों के द्वारा इसको जीत लिया है। बैठिये स्वार हो कर स्वर्ग को चलिये ॥

यह सुन कर मुद्गल बोला, कि हे दूत! स्वर्ग में क्या २ तपस्या की जाती है? और क्या २ सुख मिलते हैं? और क्या २ दुःख हैं? कृपा कर के जो बात हो ठीक २ कहिये फिर मैं वहां जाने अथवा न जाने के प्रश्न को निश्चय करूंगा ॥

दोसौपंद्रह का अध्याय

—:०:—

मुद्गल का स्वर्ग की अवस्था सुन कर वहां न जाना, शम का अभ्यास करना और निर्वाण पद को प्राप्त करना, व्यास जी का

अपने आश्रम को चले जाना ॥

दूत ने कहा कि हे ब्राह्मण तुम्हारा प्रश्न अज्ञानियों का सा प्रतीत होता है, स्वर्ग का सुख सब लोग जानते हैं, अवश्य स्थान सब से ऊंचा है और केवल धर्मात्मा सत्यवादी ही पुण्य विमानों में बैठ कर वहां जा सकते हैं, झूठे, नास्तिक और तपस्या हीनों का वहां कुछ काम नहीं ॥

जो लोग धर्मात्मा, चित्त को रोकने वाले, दानी, धर्म परायण, शूरता से युद्ध में मरने वाले और शम और दम के अभ्यासी हैं वहां वास करते हैं, वहां देवता गन्धर्व भी वास करते हैं। वहां निवास करने से भूख, प्यास, सरदी, गर्मी के दुख नहीं होते। न किसी से वैर रहता है, न किसी से भय, मनोहर सुगन्ध चलती है और कानों को ऐसे शब्द सुनाई देते हैं जिन से मन प्रसन्न होता है, न वहां शोक है न बुढ़ापा न विलाप, उस लोक में संसार में किये हुए कर्मों का फल मिलता है, ऐश्वर्य प्राप्त होता है और वहां जाने वालों के शरीर तेजस हो जाते हैं, माता पिता से उत्पन्न शरीर नहीं रहते न कोई मूत्र करता है न विष्ठा और वहां के रज से मलिनता नहीं होती है ॥

यह और कई और भी स्वर्ग के सुख हैं, परन्तु दुःख केवल यह है कि स्वर्ग पहिले किये हुये कर्मों को भोगने का स्थान है। वहां रह कर मनुष्य और पुण्य नहीं कर सक्ता और पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से गिराया जाता है और पृथ्वी पर आजाता है, तब उस का ज्ञान मोह से नष्ट हो जाता है

और माला के कुमलाने से भय होता है यही स्वर्ग में भारी दुःख है, परन्तु पृथ्वी में आने पर उसको अच्छे घर में जन्म दिया जाता है कि जिस से उसको पुण्य के उपजय का अवसर मिले और यदि मनुष्य उत्तम कर्म करे, तो फिर शुभ गति पा लेता है, यह लोग कर्म भूमि और स्वर्ग लोक भोग भूमि है ॥

यह सुन कर मुद्गल बोला कि मुझे ऐसे स्वर्ग की अवश्यक्ता नहीं है जो दोष युक्त हो और जहां से लौट कर मनुष्य फिर पृथ्वी पर आए आप कृपा करके जाइये मुझे स्वर्ग की इच्छा नहीं हां यदि आप को कोई ऐसा स्थान ज्ञात हो जहां से पुनरावृत्ति न हो तो कृपा करके बता दीजिए ॥

दूत ने कहा कि ऐसा स्थान तो केवल विष्णु लोक है जो कि शुद्ध और सनातन ज्योति है जिस को पर ब्रह्म कहते हैं उस स्थान को जाकर मनुष्य फिर नहीं लौटता ॥

यह सुन कर मुद्गल ने दूत को नमस्कार किया और कहा कि अब आप जाइये आप की कृपा से मुझ को गम्य स्थान का पता लग गया है अब मैं विष्णु लोक में जाने का यत्न करूंगा ॥

यह सुन कर दूत चला आया और मुद्गल जी फिर अप का अभ्यास करने लगे और ज्ञान योग से ध्यान में मग्न रहने लगे जिस से परम वैराग्य और उत्तम बुद्धि मिली जिस से निर्वाण पद को वह शीघ्र पा गये ॥

व्यास बोले कि हे युधिष्ठिर तुम राज्य भ्रष्ट होने का शोच मत करो तपोबल से तुम को राज्य अवश्य मिलेगा

संसार में सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख तो हुआ करता ही है इस से शोच करना उचित नहीं तुम तेरह वर्ष के पश्चात् अवश्य राज्य पाओगे ॥

यह कह कर व्यास जी अपने आश्रम को तप करने चले गए ॥

दोसौसोलह का अध्याय

—:-०-:—

हस्तिना पुर में दुर्योधन के हां दुर्वासा ऋषि का आना और दुर्योधन को वर देना ॥

जिस समय पाण्डव इस प्रकार वन में रहते थे उस समय हस्तिना पुर में दुर्वासा ऋषि आए उन के साथ सहस्रों शिष्य थे राजा दुर्योधन ने उन का सत्कार किया दुर्वासा जी ने भली प्रकार दुर्योधन की परीक्षा की कभी आधी रात को उठ कर भोजन मांगते और जब त्यार होता तो अंतर्धान होजाते कभी रसोई बंद करा देते और बाहिर चले जाते और फिर आकर एक दम भोजन मांगते परन्तु दुर्योधन ने बड़े यत्न से निरालस्य होकर उन की सेवा की और कई दिन तक अपने स्थान पर रखा ॥

तब दुर्वासा जी बोले कि दुर्योधन मैं तुम्हारी सहन शीलता को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ हूं तुम जो वर चाहो मुझ से मांग सकते हो दुर्योधन ने पहिले ही कर्ण से सलाह की हुई

थी कहने लगा कि हे भगवन्! राजा युधिष्ठिर हमारे कुल में बड़ा धर्मात्मा, गुणी और शीलवान है और इस समय अपने भाइयों और स्त्री समेत वन में रहता है मेरा वरदान यही है कि आप शिष्यों समेत उस समय उन के हां भोजन मांगिये जब कि द्रौपदी अतिथियों को खिला कर सुख पूर्वक बैठी हो, दुर्वासा बोले कि ऐसा ही सही, और यह कह कर चले आये दुर्योधनादि बड़े प्रसन्न हुए कि अब पाण्डवों को मार लिया वह अवश्य दुर्वासा से शाप पावेंगे, कर्ण और दुशासनादि ने उस को बधाई दी कि अब तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ ॥

—:o:—

दोसौ सतारह का अध्याय

—:-o-:—

दुर्वासा का शिष्यों सहित पांडवों के पास जाना, द्रौपदी का अन्न की चिन्ता करके श्री कृष्ण का ध्यान करना श्री कृष्ण जी का आना और दुर्वासा का भाग जाना

तब दुर्वासा जी ने काम्यक वन को जाने का उद्देश किया और जिस समय सब को खिला पिला कर द्रौपदी आप खा कर सुख पूर्वक बैठी थी, उस समय दर्शन दिये, युधिष्ठिर ने अपने भाईयों सहित उन की पूजा की और भोजन करने को

कहा, दुर्वासा जी ने कहा कि भोजन तय्यार करो हम अभी स्नान कर के आते हैं ॥

यह कह कर दुर्वासा जी तो नदी पर चले आए परन्तु द्रौपदी बड़ी चिन्ता में ग्रस्त हो गई उस की स्थाली में भोजन तब तक ही रहता था जब तक कि वह आप न खा चुकती थी वह विचारी ऋषि शाप से डर कर बड़ी चिन्ता करने लगी तब उस ने श्री कृष्ण जी का ध्यान किया और नाना प्रकार के करुण बचनों से उस का आवाहन किया श्री कृष्ण शय्या पर सो रहे थे जब उन को उस का समाचार मिला वह तुरन्त काम्यक वन को आए और द्रौपदी से कहने लगे कि मुझ को भूख बहुत है मेरे लिये भोजन लाओ द्रौपदी बोली कि महाराज मैं तो खा चुकी हूं इस समय भोजन कहां स्थाली में मेरे खाने के पश्चात् भोजन नहीं रहता श्री कृष्ण ने कहा कि मैं इस समय हंसी ठट्ठे की बात पसन्द नहीं करता आप शीघ्र भोजन लाइये ॥

जब द्रौपदी ने फिर वही उत्तर दिया, तो श्री कृष्ण ने उठ कर स्थाली पकड़ ली और परमेश्वर से परार्थना करके उसको यथा पूर्व भर दिया ॥

तब भीमसेन को भेजा कि दुर्वासा जी को शीघ्र बुला लाओ इधर दुर्वासा जी के शिष्य जो जल में स्नान कर रहे थे अपने आप को रझे हुए प्रतीत करने लगे और अपने गुरु से कहने लगे कि हे महात्मन् हम तो इस समय भोजन नहीं करेंगे हम को तो डकारें आरहे हैं और हम बिलकुल रझे हुए हैं

दुर्वासा जी बोले कि यह तो बड़ी कठिन बात है यदि ऐसा था तो तुम ने भोजन किस लिये बनवाया, पाडव बड़े तपस्वी और धर्मात्मा हैं, यदि हम ने उन के पकाए हूए अन्न का निरादर किया, तो वह निस्संदेह हम को शाप देंगे, इस से अब क्या करना उचित है ॥

शिष्य बोले कि महाराज ! भाग चलो ! यही उत्तम विधि प्रतीत होती है यह सुन कर दुर्वासा बोले कि बहुत अच्छा और शिष्यों सहित कई दिशों में भाग गए ॥

जब भीमसेन उन की खोजना में वह आये, तो उन को वहां न पाकर इधर उधर देखने लगे, एक मुनि ने जो निकट ही रहता था कहा कि वह तो देर हूई भाग कर चले गए। भीमसेन अपने आश्रम में आया और यह हाल सब को सुना दिया, पाडव बड़ा संशा करने लगे कि कदाचित आधीरात को आकर दुर्वासा जी हम को पीड़ित करें और इस प्रकार के कई विचार करके दिल में दुखी होने लगे ॥

तब श्री कृष्ण ने कहा कि युधिष्ठिर मत डरो, मैं इस सारी बात को जानता हूं, यह केवल तुम्हारे शत्रुओं की दया थी अब तुम कोई भय मत करो, दुर्वासा जी अब नहीं आयेंगे वह निस्संदेह चले गए, तुम्हारे शत्रुओं ने जो घात तुम्हारे लिए लगाया था वह निष्फल हुआ ॥

दोसौ अठारह का अध्याय

पाण्डवों का मृगया खेलने जाना, पीछे राजा जयद्रथ का आना और द्रौपदी को देख कर उसकी ओर दूत भेजना ॥

एक समय वन मृगों के अहेर और फूल मूल लाने की इच्छा से युधिष्ठर आदि पांचों भाई किसी दिशा को चले गये और धाम्य जी के कथनानुसार द्रौपदी को तृणबिन्दु ऋषि के आश्रम में छोड़ गये ॥

उनके चले जाने पर सिन्धु देश का राजा जयद्रथ जो अपना विवाह करने के लिये शाल्वादेश को जा रहा था, काम्यक वन में पहुंचा । उसने आश्रम के द्वार पर दिव्य मूर्ति प्रकाशमान द्रौपदी को देख कर चिन्ता की कि इस स्थान पर यह सुभामिनी कौन हो सक्ती है । यदि यह मेरे साथ विवाह कर ले तो मैं यहां ही से लौट कर चलाजाऊं शाल्वादेश में कभी न जाऊं ॥

तब जयद्रथ ने कोटिकास्यनाम क्षत्रिय को भेजा कि तुम जाकर उसकी वार्ता सुनो और प्रतीत करो कि वह किस की कन्या अथवा भार्या है ? इस कंटक वन में किस प्रकार और कहां से आई है । यदि यह मुझ को चाहे तो उसको पाकर मैं पूर्ण काम हो जाऊं जाओ और उसके स्वामी को पूछ आओ ॥

यह सुन कर कुण्डलधारी कोटिकास्य द्रौपदी के पास गया और उससे इस प्रकार बातें करने लगा जैसे कि गीदड़ व्याघ्री से बातें करता है ॥

दोसौ उन्नीस का अध्याय

—:०:—

कोटिकास्य का द्रौपदी के पास आना और उस से बातें करना ॥

तब कोटिकास्य द्रौपदी के पास आया और पूछने लगा कि हे सुन्दरी, तूं कौन है ! तेरा रूप और तेरे मुख का प्रकाश निस्संदेह यह बात जतलाता है कि तेरा जन्म उत्तम कुल का है या तो तू देव कन्या है था यक्षी या अप्सरा है, तेरा स्वरूप इस कंटक वन के सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है और हम आश्चर्य पूर्वक आप से पूछते हैं कि आप अपना स्वरूप बताईये ॥

देखो मेरा नाम कोटिकास्य है, और मैं राजा सुरथ का पुत्र हुं, वह त्रगर्त देश के राजा का पुत्र क्षेमकर है, वह सदा फूले हुए पर्वत पर रहने वाला, लम्बी २ आखों से तेरी ओर देखने वाला कुलिंद का पुत्र है, वह इक्ष्वाकु वंशी राजा सुबल का पुत्र है वय वृद्धक्षत्र का पुत्र जयद्रथ सौवीर देश का राजा है। सब राजा इस के पीछे चलते हैं और वह सब से पूजित है ॥

इस लिए हे देवी तू अपने पति और पिता का नाम विस्तार पूर्व कह दे हम सब जानने की इच्छा रखते हैं ॥

दोसौबीस का अध्याय

—:o:—

द्रौपदी का कोटिकास्य को सब वृत्तांत सुनाना और उस को अतिथि समझ कर निमन्त्रण देना ॥

द्रौपदी ताड़ गई कि इस की बातों मे कुछ काला २ अवश्य है, और अपने शरीर को फिर ढांक कर बोली कि हे सुरथ के पुत्र, मैं जानती हुं मेरा तुम्हारे साथ कोई बात चीत करनी सर्वथा अनुचित है, परंतु दैववश इस समय यहा पर कोई मनुष्य या स्त्री नहीं जो इस समय तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे और उत्तर का न देना भी दोष है, इस लिये मैं आप से बोलती हुं ॥

मैं द्रुपद की कन्या हुं मेरा नाम कृष्णा है मेरा विवाह पांच पुरुषों से हुआ था उन के नाम युधिष्ठर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव हैं वह इस समय अहेर खेलने बाहिर गए हुए हैं और थोड़े ही काल में लौट कर आ जायेंगे वह पाण्डु राजा के पुत्र हैं और तुम ने अवश्य उन का नाम सुना होगा ॥

आप लोग अपने २ रथों को यहां खोल दीजिए और ठहरिये राजा युधिष्ठर अतिथियों का बहुत सत्कार करते हैं और आप लोगों को देख कर बड़े प्रसन्न होंगे यह कह कर द्रौपदी भीतर चली गई ॥

दोसौइक्कीस का अध्याय

—:-०-:—

जयद्रथ का द्रौपदी के पास जाना और उस से कुशल पूछना, द्रौपदी के निमन्त्रण करने पर उस का यह कहना कि तू पांडवों को छोड़ कर मेरी भार्या बन जा ॥

कोटिकास्य ने आकर सब वृत्तांत जयद्रथ को सुनाया वह सुन कर बोला कि हे कोटिकास्य तुम उस को साथ क्यों न ले आए कोटिकास्य ने कहा कि मुझ से यह काम होना असम्भव है आप जाईये और उस को समझाईये ॥

तब जयद्रथ आप उतर कर उस के पास गया और कहने लगा कि हे द्रौपदी ! मैं सौ वीर आढ्य और सिन्धु देश का राजा जयद्रथ हूं कहो तू अपने पतियों सहित कुशल पूर्वक है द्रौपदी ने कहा कि हे जयद्रथ मैं तो कुशल पूर्वक हूं मेरे पति भी सब प्रसन्न हैं आप अपना वृत्तांत कहीए कि आप के राज्य में तो कुशल है ? यह पाद्य है ग्रहण कीजिए और आसन पर

बैठ जाइये प्रातःकाल ही युधिष्ठिर आप को सेना सहित वन्य पशुओं और मृगों का आहार देगा ॥

यह सुन कर जयद्रथ बोला कि हे सुन्दरी । मुझे भोजन आदि की कोई आवश्यकता नहीं । मैं केवल आप को देख कर यहां चला आया हूं आप मेरे रथ पर स्वार होकर मेरे साथ चलो इन पाण्डवों के पास रहने से क्या प्रयोजन है, इनकी लक्ष्मी भ्रष्ट हो गई है और यह कृपण दरिद्री तुम को कोई सुख नहीं दे सकते, चलो मेरे घर में चल कर राज्य लक्ष्मी को भोगो, ज्ञानी स्त्रियें दरिद्रियों के पास नहीं रहतीं, सेवा केलव धनवान की ही करनी उचित है । अब तुम इनको छोड़ कर मेरी पटरानी बनो और राज्य को सुख पूर्वक भोग कर संसार का आनन्द पाओ, जयद्रथ के इन वचनों को सुन कर द्रौपदी क्रोध से नेत्र लाल कर के दूर जा बैठी और कहने लगी कि, जयद्रथ तुम्हें ऐसे वचन बोलने से लज्जा तो नहीं आती ! कुछ तो सोचो, कि तुम एक पतिव्रता स्त्री को कैसा निन्दित वचन बोल रहे हो ॥

पाण्डव बाहिर थे द्रौपदी ने सोचा कि इनको बातों में लगाना चाहिये ताकि वह आजायें ॥

दोसौ बाईस का अध्याय

—:-०-:—

द्रौपदी का जयद्रथ को फटकार कर पाण्डवों

की श्रेष्ठता का वर्णन करना। जयद्रथ का द्रौपदी को हर लेजाना, धौम्य पुरोहित का उसके पीछे २ जाना ॥

द्रौपदी बोली कि हे जयद्रथ, तुम तो अपने आप को राजा कहते हो क्या राजाओं के यही नीच कर्म हैं कि एक अकेली अरक्षित तपस्विनी स्त्री को देख कर उस पर आक्रमण करना, वीर पुरुष ऐसा निन्दित कर्म नहीं करते, पाण्डव महा पराक्रमी, धर्मात्मा, तपस्वी और यशस्वी हैं, और वन में रह कर भी उन के बल और तेज की सदैव वृद्धि ही होती है, यदि तुमने उन की भार्या की ओर मन्द दृष्टि से देखा तो तुम को निस्संदेह भस्म कर जायेंगे, और तुम चूतड़ों के बल ऐसे गिरोगे कि तुम्हारा फिर उठना असंभव होगा मैं निस्संदेह अबला हूं। परन्तु उन वीरों से सुरक्षित होकर, मुझे तुम्हारे जैसे गीदड़ों का लेश भी भय नहीं। देखो जयद्रथ, संभलो और अपनी दुष्ट बुद्धि को छोड़ दो ॥

जयद्रथ बोला, कि द्रौपदी मैं तुम्हारे भयभीत वचनों से भय नहीं करता, मैं उन देव पुत्रों को भली, प्रकार जानता हूं हम सत्रह गुण रखते हैं, परन्तु उन में छः गुण नहीं हैं। जिस से वह मन्द भाग्य निस्तेज हो गये हैं। छोड़ो इस वृथा कल्पना को और चलो मेरे साथ चाहे हाथी पर बैठो चाहे रथ पर स्वार हो जाओ। वलंब करना ठीक नहीं ॥

द्रौपदी बोली, कि जयद्रथ, मुझे किसी प्रकार का भय

नहीं, मेरे पांचों वीर पति सदैव मेरी रक्षा करते हैं तेरी दुष्ट बातें मेरे दिल को लुभा नहीं सकती तू तो क्या इन्द्र भी मुझे घर्षणा नहीं कर सकता, यदि मुझे बल से हरना चाहो तो तुम्हारा उद्यम व्यर्थ होगा, वह वीर पांडव मुझ को शीघर ही तुम से छुड़ा लेंगे और तुम्हें यम पुरी को भेज देंगे वह अर्जुन जो किरीटी और गाण्डीव धनुधारी है तुम को सेना सहित दलन करेगा, भीमसेन तेरी छाती पर चढ़ कर गदा से तेरे शिर को फोड़ेगा ॥

तुम ने मेरे पति व्रत धर्म को भंग करने की वृथा चेष्टा की है, परंतु तुम को इस का बदला शीघर ही मिलेगा। तब जयद्रथ ने द्रौपदी की ओढ़नी खेंची, परंतु द्रौपदी ने उस को ऐसा धक्का दिया कि वह भूमि पर जा गिरा, दुष्ट जयद्रथ फिर उठा और बिचारी अकेली रोती और बिलपति द्रौपदी को पकड़ कर खींच ले चला; जाते हुए द्रौपदी ने धौम्य को प्रणाम किया और रथ पर उस दुष्ट जयद्रथ को कोसती हुई बैठ गई ॥

धौम्य पुरोहित ने जयद्रथ को बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम्हारा कर्म क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है, परंतु कामासक्त जयद्रथ ने कुछ न सुना, तब धौम्य जी उस के रथ के पीछे पैदल हो लिए ॥

दोसौ तेईस का अध्याय

—:-०-:—
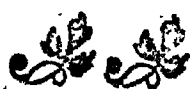
पाण्डवों का अपने आश्रम को लौट कर आना और द्रौपदी को हरा जान सुन कर जयद्रथ से लड़ने को जाना ॥

जिस समय पांडव वन को लौट कर आए तो रास्ता में उन को द्रौपदी के दास की भार्या मिली जो कि पृथ्वी पर लेट कर रुदन कर रही थी उस को देख कर युधिष्ठर का सार्थि बोला कि कहो क्या वार्ता है किसी शत्रु ने बलात्कार द्रौपदी का तिरस्कार किया है? या कोई और उपद्रव आया है जो तू इस दीन दशा में रुदन कर रही है?

दासी बोली कि हे इन्द्र सेन सिन्धु-देश का राजा अपनी सेना सहित इस वन स्थान में आया उस ने द्रौपदी का बड़ा तिरस्कार किया और पाण्डवों को बहुत दुसह वचन सुनाए तत्पश्चात् वह रोती और विलाप करती हुई द्रौपदी को बल से खींच कर अपने रथ में बिठा कर इसी मार्ग से ले गया है यह देखो वह टूटा हुआ वृक्ष उन के रथके मार्ग को बतलाता है पांडवों को कहा कि जल्दी जावें और विचारी रोती हुई द्रौपदी को धैर्य दें वह इस दशा में सहाय हीन होकर बहुत दुःख पाती होगी, ऐसा न हो कि कोई दुष्ट पुरुष बलात्कार उस के पातिव्रत धर्म को दूषित करे ॥

यह बात सुन कर युधिष्ठिर ने क्रोध में आकर अपने रथ का मुख उसी ओर कर दिया और वायु के वेग से रथ को चला कर पापी जयद्रथ के पीछे २ चला, कुछ दूर जाने पर घोड़ों के पाओं से उठती हुई धूल से उस ने निश्चय किया कि जयद्रथ की सेना वहीं है तब उन्हों ने रथों को और भी शीघ्र चलाया आगे चल कर धौम्य पुरोहित को पैदल चलते देखा वह देखते ही चिल्ला उठा कि पाण्डवो दौड़ो ! वह द्रौपदी का रथ है ! साहस करके अपनी भार्या को इस दुष्ट जयद्रथ से छुड़ा लो ॥

पांडवों की क्रोधाग्नि और भी प्रज्वलित हुई और शीघ्र गामी रथों पर चढ़ कर जयद्रथ के समीप जा पहुंचे और रोती हुई द्रौपदी को उस के पास रथ में बैठे हुए देखा ॥

दोसौचौबीस का अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का जयद्रथ से पांचों पांडवों का हाल कहना और पांडवों का जयद्रथ की सेना को रोक लेना ॥

तब जयद्रथ अन्य रथों को अपने पीछे आते देख कर द्रौपदी से पूछने लगा कि हे सुंदरि क्या यह पांडव आरहे हैं मुझे इन के भिन्न २ नाम बताओ ॥

तब द्रौपदी बोली कि तुम ने यह घोर कर्म करके मृत्यु को अपने शिर पर बुलाया है देखो वह अभी तुम को सेना समेत भस्म कर देंगे, परन्तु तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना मेरा धर्म है, देखो वह महाराज युधिष्ठर हैं जिन की ध्वजा के आगे नन्द और उपनन्द नाम मृदंग बज रहे हैं, यह बड़े धर्मात्मा हैं और सत्यवादि हैं, वह महा पराक्रमी भीमसेन हैं, जिन के भय से पृथ्वी कांपती है, वह अपने अनादर का बदला कभी नहीं छोड़ते और तुम समझ लो कि अब तुम निश्चित मृत्यु के वश में हो, तीसरे वह गंडीव धनुष्धारी अर्जुन हैं जो बड़े धनुर्धारी और यशस्वी हैं, वह नकुल और सहदेव हैं जो बड़े पराक्रमी और उग्रस्वभाव वाले हैं इन के होते हुए इन्द्र की भी सामर्थ नहीं कि मेरा अपमान कर सके तुम ने बहुत पाप किया है कि मुझ को हर इन महा तेजस्वी वीरों का निरादर किया और कालाग्नि को अपने भस्म करने के लिये आवाहन किया॥

इधर पांडवों ने धौम्य जी को छोड़ कर जयद्रथ की सेना को घेर लिया और बाण वृष्टि से चारों ओर अन्धेरा कर दिया॥

दोसौ पच्चीस का अध्याय

—:०:—

जयद्रथ के साथ युद्ध, उसकी सेना का हार कर भाग निकलना, जयद्रथ का भी भाग जाना, अर्जुन और भीम का उनके पीछे जाना॥

पाण्डवों को देख कर जयद्रथ ने अपनी सेना को धावा करने की आज्ञा दी। सेना बड़ा शब्द करने लगी, परन्तु पाण्डवों का महा पराक्रम देख कर सब लोग घबरा गये, तब भीमसेन गदा लेकर जयद्रथ के पीछे दौड़ा, कोटिकास्य ने बहुत से रथों से उसका रास्ता रोका, भीमसेन ने १४ प्यादे, एक हाथी को सवार सहित मार गिराया, उसी समय अर्जुन ने ५०० महारथी और पहाड़ी शूरवीरों को मार कर यमलोक में पहुंचा दिया, राजा युधिष्ठर ने भी १०० आदमी मारे, नकुल रथ से कूदा और मनुष्यों के शिर काट २ कर पृथ्वी पर फैंकने लगा, सहदेव ने रथ पर बैठ कर हाथी पर बैठ कर लड़ने वालों के कई दल मार दिये ॥

यह देख कर त्रिगर्त नरेश को बहुत क्रोध आया और वह धनुष बाण हाथ में लेकर रथ से कूद पड़ा और उतरते ही युधिष्ठर के रथ के चारों घोड़े मार डाले युधिष्ठर ने क्रोध में आकर अर्द्धचन्द्र बाण चलाया जिस से राजा व्याकुल होकर भूमि पर जा पड़ा ॥

तब कोटिकास्य ने भीमसेन पर बहुत तीर चलाए भीमसन ने उस के सारथि को पहिले मार दिया और जब घोड़े अपने आप इधर उधर भागने लगे तब भीमसेन उस के रथ पर चढ़ गया और उस को मुक्कों से मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥

इस प्रकार बहुत काल तक घोर युद्ध होता रहा पांडवों ने बड़े २ क्षत्रियों और राजाओं को रथों समेत मार डाला जब

जयद्रथ के सारे साथी मारे गए तो उस ने द्रौपदी को रथ से उतार दिया और आप वन की ओर भागा ॥

युधिष्ठर ने द्रौपदी को देख कर धौम्य ऋषि सहित रथ पर चढ़ा लिया, तब जयद्रथ की सारी सेना भाग चली और भीम सेन उस के पीछे भागा और बाणों की वर्षा करने लगा, अर्जुन ने देखा कि जयद्रथ तो भाग गया, उस ने भीमसेन को पीछे जाने से रोक दिया और कहा कि हे भीमसेन इस युद्ध का मूल जयद्रथ तो कहीं भी दिखाई नहीं देता, इन योधाओं को मारने का क्या प्रयोजन है, तब भीमसेन लौट आया ॥

फिर द्रौपदी धौम्य नकुल और सहदेव को साथ लेकर युधिष्ठर अपने आश्रम की ओर लौटा और द्रौपदी की सम्मति से भीम और अर्जुन जयद्रथ के पीछे गये, जयद्रथ वहां से एक कोस निकल गया था, अर्जुन ने बाण मार कर वहां से ही उस के घोड़ों को मार डाला और आप रथ उड़ा कर उस के पीछे गया और कोस भर के अन्तर पर जाकर पास पहुंचा ॥

जयद्रथ उस को देख कर और अपने घोड़ों को मरा हुआ देख कर वन की ओर भागा, अर्जुन उस के पीछे २ हो लिया और बोला, वाह ! तुम्हारी वीरता इसी बल पर तुम पराई स्त्री को उठा कर ले चले थे, वह तुम्हारा पराक्रम अब कहां गया जिसने तुम से यह नीच कर्म कराया है ? परन्तु जयद्रथ पीछे को न लौटा, भीमसेन उस के पीछे गया और पुकारने लगा खड़ा रह ! खड़ा रह ' अर्जुन ने कहा कि देखो इस को जान से न मारना ॥

इधर जब युधिष्ठर आश्रम को आया तो सब ब्राह्मण और ऋषि उस की बाट देख रहे थे वह द्रौपदी को उन के साथ आई हुई देख कर सब प्रसन्न हुये ॥

दोसौछब्बीस का अध्याय

—:-०-:—

भीमसेन का जयद्रथ को पकड़ कर दास बनाना और युधिष्ठर के पास ले जाना युधिष्ठर का उस को छोड़ देना, जयद्रथ का हरिद्वार में जाकर स्नान करना, शिवजी की तपस्या करना और वर दान पाकर घर को जाना ॥

जयद्रथ को मैदान से भागते देख कर भीमसेन ने भी रथ छोड़ दिया और उस के पीछे जाकर उसे बालों से पकड़ कर पृथ्वी पर दे मारा तब उस को भूमि पर रगड़ने और शिर पर मारने लगा तब जयद्रथ बहुत रोया और तब भीमसेन ने उस को एक लात मारी और उस की जंघाओं को घुटनों से दबाया ॥

भीमसेन मार देता परन्तु अर्जुन ने कहा कि युधिष्ठर की आज्ञा है कि गान्धारी और दुशाला का स्मरण करके इस को जान से मत मारो भीमसेन बोला कि यह महा पापी हमारी दया के योग्य नहीं है युधिष्ठर भी सदा दयावान है और

तुम भी उसी का कहा मानते हो मुझ को ऐसी बातों से बड़ी पीड़ा होती है ॥

तब भीमसेन ने उस का शिर मूंड कर पांच चोटियां रख दीं और कहा कि यदि तू बचना चाहता है तो यह प्रतिज्ञा कर कि सत्पुरुषों की सभा में मैं सदा अपने आप को कहाऊंगा जयद्रथ बोला कि बहुत अच्छा मैं ऐसा ही करूंगा फिर भीमसेन ने उस को रथ में बठाया और अपने साथ युधिष्ठिर के पास ले आया युधिष्ठिर उस को देख कर बहुत हंसा और भीमसेन को कहने लगा कि अब इस को छोड़ दो भीमसेन ने कहा कि द्रौपदी से पूछो द्रौपदी बोली कि पांच चोटियों वाला दास तो होता ही है, बस इस को छोड़ ही दो। भीमसेन ने तब उसे छोड़ दिया ॥

जयद्रथ ने युधिष्ठर को प्रणाम किया और मुनियों को दंडवत की, फिर युधिष्ठर बोला कि जा तू अदास हुआ परन्तु फिर कभी ऐसा नीच काम मत करना, जो मनुष्य पर स्त्री को चाहता है, उस को धिक्कार है, तूने बड़ा खोटा काम किया था, परन्तु आज से ऐसा काम कभी मत करना अपने हाथी घोड़ों और बची खुची सेना को ले जाओ और सदा धर्म के काम करना ॥

तब मुख नीचा करके जयद्रथ चल पड़ा और हरिद्वार में आकर शिवजी की तपस्या करने लगा, तब शिवजी बड़े प्रसन्न हुए और उस से कहने लगे, कि क्या वर मागता है

वह बोला कि मैं युद्ध में पांडवों पर विजय पाऊं, शिवजी बोले कि सिवाय अर्जुन के तु सब पांडवों को जीतेगा, अर्जुन को हमने अपने अस्त्र पहिले से ही दिये हुए हैं उस को तुम नहीं जीत सकोगे ॥

हे जयद्रथ अर्जुन के साथि श्री कृष्ण भगवान होंगे, जो साक्षात ईश्वर का अवतार हैं, ऐसे अर्जुन को जीतने का वृथा विचार मत कर, यह कह कर शिवजी उमा सहित वहीं अन्तर्धान होगए और जयद्रथ अपने घर की ओर चला आया ॥

दोसौ सत्ताईस का अध्याय

—:o:—

युधिष्टर का मार्कण्डेय जी से पूछना कि आपने मुझ सा भी कोई मन्द भाग्य देखा है मार्कण्डेय जी का राम चन्द्र का चरित्र सुनाना ॥

जयद्रथ के चले जाने पर युधिष्ठर ने मार्कण्डेय जी से पूछा कि महाराज आप त्रिकाल के जानने वाले हो, आपने मेरे जैसा मन्द भाग्य मनुष्य पहिले भी कोई देखा या सुना है देखो यह द्रौपदी बड़ी धर्म शीला है अतिथि और ब्राह्मणों

को सदा दान करती है और किसी पाप कर्म में रुचि नहीं करती, उत्तम कुल में उत्पन्न हुई और उत्तम कुल में व्याही गई, परन्तु भावी वश होकर कितना कष्ट उठा रही है, मेरे विचार में वन्य जीवों को मार कर खाने में बड़ा दोष है, किन्तु वन में रहना ही दोषयुक्त है, आप कृपा करके यह कहिये कि आपने पहिले भी इस प्रकार का कोई दृष्टांत देखा है ॥

मार्कण्डेय जी ने राम चन्द्र जी का हाल सुनाया और कहा कि राम चन्द्र जी ने स्त्री के हरे जाने पर बहुत दुःख पाया था ।

दोसौ अट्ठाईस का अध्याय

—:-०-:—

रामचन्द्र और उस के भाइयों तथा वैश्रवण और सीता के जन्म की कथा ॥

युधिष्ठिर ने रामचन्द्र जी की उत्पत्ति पूछी तब मार्कण्डेय बोला कि इक्ष्वाकु वंश में अजना राजा था और उस का पुत्र राजा दशरथ था जो बड़ा पवित्र और वेदपाठी था उस के चार पुत्र बड़े प्रतापी थे जिनके नाम रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे उस राजा की तीन रानियां थीं रामचन्द्र कौशल्या से, भरत कैकई से और लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा से उत्पन्न हुए ॥

विदेह के राजा जनक की पुत्री सीता रामचन्द्र की पट-रानी थी ॥

अब रावण की उत्पत्ति का हाल सुनो ब्रह्मा जी से पुलस्त्य नामी मानसी पुत्र उत्पन्न हुआ गोनम स्त्री से उसका पुत्र वैश्रवण पुत्र हुआ वह पिता को छोड़ कर सदा अपने दादा के पास रहने लगा पिता ने क्रोध किया और अपने आधे शरीर से विश्रवा नाम ब्राह्मण को वैश्रवण से दण्ड देने के लिये उत्पन्न किया ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर वैश्रवण को अमर कर दिया और लोक पाल की पदवी देदी तब उस की मित्रता रुद्र जी से कराई और उस के रहने को लङ्का देदी उस वैश्रवण का एक पुत्र नल कूबर उत्पन्न हुआ और ब्रह्मा जी ने उसे एक पुष्प विमान दिया और राजराजत्व पद भी दे दिया। उसी वैश्रवण का नाम कुबेर है जो यक्षों के राजा और धन के अधिपति हैं ॥

विश्रवा ने आकर वैश्रवण अर्थात कुबेर को क्रूर दृष्टि से देखना आरम्भ किया जिस से कुबेर समझा कि मेरा पिता मुझ से अप्रसन्न है इस लिये उस ने उसको प्रसन्न करने के लिये तीन राक्षसियें भेजीं यह राक्षसियें नाचने गाने में बड़ी चतुर थीं पुलस्त्य जी ने प्रसन्न होकर उन को वर दान दिया कि तुम्हारी सन्तान बड़ी प्रभाव शाली और बलवान होगी कुछ काल के पश्चात् पुष्पोत्कटा राक्षसी से रावण और कुंभकर्ण, मालिनी का एक पुत्र विभीषण और एका का एक पुत्र खर और एक कन्या शूर्पणखा उत्पन्न हुए ॥

यह सब बालक और कन्या बड़े प्रभाव शाली थे और रावण सब से बड़ा और बुद्धिमान था एक बार उन्हों ने कुबेर जी को बड़े ऐश्वर्य से पुलस्त्य जी अपने पिता के पास बैठे देखा और अपनी दरिद्री अवस्था का शोच करके ब्रह्मा जी की तपस्या करने लगा कई वर्षों के पश्चात् ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए और उन से वर मांगने को कहा तब रावण ने कहा कि मुझ को देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर और भूत कोई न मार सके ब्रह्मा जी बोले कि यह लोग तुम को पीड़ा नहीं दे सकेंगे परन्तु मनुष्य से तुम्हें भय रहेगा जो तुम ने अपना शिर काट कर होम में डाला है इस से तुम्हारे दश शिर हो जायेंगे यह वर पाकर रावण बड़ा प्रसन्न हुआ ॥

विभीषण ने वर मांगा कि दुःख में भी मेरी अधर्म बुद्धि न हो, ब्रह्मा जी बोले कि तु अमर भी होगा, और तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म में रहेगी, कुम्भकर्ण ने कहा कि मैं सुख पूर्वक नींद लिया करूं, ब्रह्मा जी ने कहा ऐसा ही होगा ॥

तत्पश्चात् रावण ने कुबेर से युद्ध किया और उसको जीत कर लंका से बाहिर निकाल दिया और उसका पुष्प विमान भी छीन लिया, कुबेर गन्ध मादन पर्वत पर चला गया और रावण को शाप दे गया, कि तेरा मारने वाला ही इस पुष्प विमान पर चढ़ेगा। विभीषण ने सत्पुरुषों का सतसंग किया और कुबेर ने उसको यक्षों और राक्षसों का सेनापति बना दिया और रावण ने लंका का अभिषेक पाया। और

राक्षसों पर राज्य करने लगा ॥

दोसौ उनतीस का अध्याय

—:०:—

देवताओं का पीडित होकर ब्रह्माजी के पास आना और उनका रावण को मारने का उपाय रचना ॥

रावण के दुराचार से दुःखित होकर देवता लोग ब्रह्मा जी के पास आये और कहने लगे, कि हे स्वामिन् । आपने दुष्ट राक्षस को बुद्धि दी है, परन्तु उसके दुराचार से हम सब लोग बड़े दुःखी हैं आप उसके विरोध का यत्न कीजिये ॥

ब्रह्मा जी बोले कि हमने विष्णु भगवान को उसके मारने के लिये अवतार लेने को कहा है, वह अब राजा दशरथ के हां उत्पन्न हुए हैं और रावण को मारेंगे, तुम भी यथा शक्ति उनकी सहायता के लिये पृथ्वी पर अवतार लो उसी समय दुन्दुभी नाम गन्धर्वी कि आज्ञा दी कि तू भी अवतार धारण करके यथा शक्ति इस काम में सहायता दे ॥

तब देवता लोग वानर और रीछों की योनी में आने लगे और उन की रीछनियों से बड़े २ बलवान पुत्र उत्पन्न हुए। दुन्दुभी कुबड़ी रूप धारण करके मन्थरा नाम से विख्यात हुई। और कैकेयी की दासी बनी ॥

———

दोसौ तीस का अध्याय

—:०:—

रामचन्द्र जी का पिता की आज्ञा पालने के लिये बन को जाना, भरत का शोकातुर होकर उन को लौटाने जाना शूर्पणखा के कारण सब दैत्यों का मारा जाना ॥

एक समय जब राम चन्द्र जी बड़े हुए और चारों वेद को पढ़ गए और धनुर्वेद के सब अङ्गों में प्रवीण हुए तो राजा दशरथ नें उन को युवराज बनाने की इच्छा प्रकट की और अपने गुरु विशष्ट जी को कहा कि यज्ञ की सामग्रि एकत्र कराई जाये ॥

कैकई की मन्थरा दासी यह बचन सुन कर अपनी स्वामिनी के पास आई और कहने लगी कि तेरा दुर्भाग्य शीघ्र होने वाला है, जब रामचन्द्र जी राजा होगए तो तुझ को निस्संदेह कौशल्या की दासी बनना पड़ेगा इस लिए यदि कोई यत्न कर सकती है तो अब करले ॥

कैकेयी ने उसी समय शोक वेष धारण किया और रात को जब राजा घर में आया तो उस का यह हाल देख कर बड़ा दुखी हुआ, कैकेयी ने कहा कि मैंने जो वरदान आप से मागा हुआ है अब पूरा करो, राजा ने कहा कि कहो जिस को चाहे मरवा डालूं, जिस को कहे धनपात्र कर दूं, ब्राह्मणों

को छोड़ कर प्रत्येक मनुष्य के प्राण और धन को ले सकता हूं॥

रानी बोली कि मेरा वरदान यह है, कि मेरे पुत्र भरत को राज्य मिले और रामचन्द्र को चौदह वर्ष वनवास करें, राजा यह बचन सुन कर बड़ा दुःखी हुआ, प्रातः काल होने पर रामचंद्र को भी पता लगा कि राज्य के स्थान पर उसको वनवास मिला है, तब रामचंद्र लक्ष्मण और सीता सहित अपने पिता के वचन को सत्य करने के लिये वनों को चले गये, राजा दशरथ उसी समय वियोग वश गिर कर मर गिया॥

भरतजी कैकय राजा के पास गये हुए थे। जब लौट कर आये तो उन्हों ने सब प्रजाओं को यह प्रतीत कराया कि रामचन्द्र जी को वनवास देने में वह सर्वथा निष्पाप है। फिर मन्त्रियों को साथ लेकर रामचन्द्र को खोजना में वन को गये और चित्रकूट पर जा मिले। भरत ने रामचन्द्र जी को घर आने को कहा, परन्तु रामचन्द्र जी ने पिता के वचन को सत्य करने के लिये वन में रहना उचित समझा। और भरत जी रामचन्द्रजी की पादुका लेकर अयोध्या को चले आये और उनको सिंहासन पर रखकर राज्य करने लगे॥

यह विचार करके कि यहां रहने पर प्रायः रवा। और देश वासी अवश्यमेव बार २ आकर घर चलने का प्रसंग चलावेंगे, रामचन्द्र जी ने चित्रकूट को छोड़ दिया, और शरभङ्ग ऋषि के आश्रम से होकर दण्डक वन में पहुंचे, वहां पञ्चवटी में शूर्पणखा उन पर मोहित हो गई जिस पर लक्ष्मणजी ने उसका नाक काट डाला, तब खरदूषण से घोर युद्ध हुआ, और राम-

चन्द्र ने १४००० राक्षसों को तीरों से मार डाला ॥

तब शूर्पणखा रावण के पास गई और उसको भी बहुत भड़काया, रावण ने बहुत क्रोध किया और उड़ता हुआ दण्डक वन की ओर आया, पहिले गो कर्ण नाम तीर्थ में पहुंचा और शिवजी का प्रियस्थान है और वहां से अपने पहिले मंत्रि मारीच को लिया, जो रामचंद्र जी के डर से तापस वेष में रहता था ॥

दोसौ इकतीस का अध्याय

—:-०-:—

मारीच का स्वर्ण मृग बन कर रामचन्द्र की कुटिया के पास पहुंचना, सीता का उस के चमड़े के लिए रामचन्द्र को कहना, रामचन्द्र का मृग मारने को जाना, लक्ष्मण का उस को देखने जाना, पीछे से रावण का सीता को हर ले जाना ॥

मारीच ने अपने पूर्व राजा का सत्कार किया और उस का बिगड़ा हुआ रूप देख कर बोला कि हे नाथ, क्या वार्ता है ? आप का मुख म्लान क्यों प्रतीत होता है ? क्या राज्य में किसी प्रकार का विघ्न तो उत्पन्न नहीं हुआ ? तब रावण

ने मारीच को अपना सब हाल सुनाया और कहा कि मैं तेरी सहायता चाहता हूं ॥

रामचन्द्र का नाम सुन कर मारीच ने कानों पर हाथ धरें और बोला, कि हे महाराज ! रामचन्द्र से डर कर ही मैंने यह वेष धारण किया है, उस के बाणों को कोई संहार नहीं सकता, उस से द्वेष करने का विचार आप का केवल वृथा है ॥

रावण को इस पर बहुत क्रोध आया और कहने लगा कि यदि तुम मेरा कहा न मानोगे, तो तुम्हारे प्राण अभी गंवा दूंगा, मारीच ने डर कर कहा कि अच्छा महाराज ! जो आप कहेंगे वह करूंगा, रावण बोला कि तुम एक स्वर्ण का मृग बन कर रामचंद्र के द्वार के आगे से निकलो और सीता को मन लुभाओ, उस को लेने की इच्छा से जब वह रामचंद्र को मृग को मारने को भेजेगी तो मैं सीता को हर लाऊंगा, सीता के वियोग में रामचंद्र आप ही मर जायगा ॥

यह विचार कर मारीच एक बहुत सुन्दर मृग बना और रावण ने तपस्वी का रूप धारण किया और दोनों रामचन्द्र जी के आश्रम तक आए तब मारीच रामचन्द्र की कुटिया के सन्मुख खेलने लगा सीता ने उस सुन्दर मृग को देख कर रामचन्द्र को कहा कि इस मृग को मार लो तो इस का चमड़ा बहुत अच्छा बने रामचन्द्र सीता के कहने पर धनुष बाण लेकर मृग के पीछे गया वह कपट का मृग रामचन्द्र को बहुत दूर ले

गया तब रामचन्द्र ने विचारा कि कदाचित् यह छल न हो इस लिये इसका जल्दी ही नबेड़ा करना चाहिये उन्हों ने अमोघ बाण मारा जिस से उस मृग को बहुत पीड़ा हुई और वह हा सीता ! हा लक्ष्मण ! ऐसा शब्द करने लगा ॥

यह शब्द सुन कर सीता ने लक्ष्मण को कहा कि रामचन्द्र पर कुछ आपत्ति आई है लक्ष्मण तुम उन के पीछे जाओ लक्ष्मण बोला कि हे सीता आप निश्चिन्त रहिये रामचन्द्र जी को दुःख देने वाला इस स्थान पर कोई नहीं, सीता बोली कि हां मैं जानती हूं तुम समझते हो कि यदि रामचन्द्र मर गए तो सीता मेरी भार्या हो जायगी सो यह विचार तुम्हारा वृथा है मैं शस्त्र से अपना घात कर लूंगी परन्तु और किसी की भार्या न बनूंगी ॥

यह परुष वचन सुन कर लक्ष्मण जी चुप हो गए और तुरन्त रामचन्द्र जी के पीछे धनुष बाण लेकर चल पड़े, इतने में रावण यति रूप में सीता के पास आया सीता ने उस को कन्द मूल लाकर दिये परन्तु उस ने अङ्गीकार न किये फिर उस ने अपना राक्षस रूप धारण किया और बोला कि रामचन्द्र राज्य से भ्रष्ट है और तू भी उस के साथ दुःख उठाती है, मैं लङ्का का राजा हूं, तू मेरे साथ चल और सुख से राज्य भोग ॥

यह सुन कर सीता ने दोनों कानों पर हाथ धरे और बोली कि यह हो नहीं सकता आकाश नक्षत्रों सहित गिर पड़े

अग्नि का स्वभाव शीत हो जाय परन्तु मैं रामचन्द्र को नहीं छोड़ सकता, यह कह कर सीता अंदर चली गई तब दुष्ट रावण ने अंदर जाकर उस विचारी को पकड़ लिया और रोती बिलकती को उठा कर ले भागा ॥

दोसौ बत्तीस का अध्याय

—:o:—

रावण का जटायु से युद्ध, जटायु का मारा जाना, रामचन्द्र का जटायु से सीता की खबर पाना, और दक्षिण दिशा को जाना, मार्ग में एक राक्षस को मारना, उस से सीता का समाचार मिलना ॥

मृग को मार कर जब रामचन्द्र अपने आश्रम की ओर लौटे तो रास्ते में लक्ष्मण जी मिले, उनको देख कर रामचन्द्र जी बड़े दुःखी हुए, और पूछने लगे कि तुम सीता को अकेली छोड़ कर क्या आये, लक्ष्मण ने सब बात सुनाई उस से रामचन्द्र जी के मन में बहुत चिन्ता हुई और वह शीघ्र आश्रम की ओर आये, रास्ते में उन को जटायु भूमि पर पड़ा हुआ मिला, रामचन्द्र जी ने राक्षस समझ कर पूछा कि तू कौण है ? वह बोला कि मैं दशरथ का सखा अरुण का पुत्र संपाति का भाई जटायु सबगिद्धों का राजा हूं। आप की प्रिया सीता को

रावण हर ले गिया है और दक्षिण दिशा को गिया है, यह कह कर जटायु मर गिया, रामचन्द्र जी ने अपने पिता का सखा समझ कर उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया ॥

तब रामचन्द्र दक्षिण दिशा को चल पड़े, कुछ थोड़ी ही दूर गये थे कि उन को एक महाकाय राक्षस मिला, उसने आते ही लक्ष्मण जी को बाहु से पकड़ लिया और भक्षण करने को उद्यत हुआ, लक्ष्मण जी पहिले ही शोक में थे, उस की पकड़ से और भी घबरा गये, तब रामचन्द्र ने तलवार से उसकी भुजा काट डाली, और लक्ष्मण जी ने दूसरी, तब राम चन्द्र जी ने उसके पार्श्व पर एक तलवार मारी जिससे मर कर वह भूमि पर गिर पड़ा, और उसकी देह से एक दिव्य प्रकाश-मान पुरुष निकला, रामचन्द्र जी ने पूछा कि तुम कौन हो उसने उत्तर दिया कि मैं विश्वावसु नाम गन्धर्व हूं, शाप के कारण राक्षस योनि में आया था, अब मैं मुक्त होकर स्वर्ग को जाऊंगा, तुम्हारी सीता को रावण हर कर ले गिया है, तुम सुग्रीव के पास जाओ, वह बहुत सुशील और धर्मात्मा है, और रावण की लंका को भी जानता है, वह आप की सहायता करेगा, सीता तुम को अवश्य मिलेगी यह कह कर विश्वावसु अन्तरध्यान हो गिया, राम लक्ष्मण बड़ा आश्चर्य करने
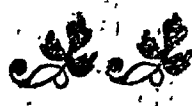
दोसौ तेतीस का अध्याय

—:०:—

रामचन्द्र का पंपा सरोवर पर होकर ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुंचना, सुग्रीव से मित्रता होनी, बाली को मारना, त्रिजटा राक्षसी का सीता को धैर्य देना, और रावण के नाश होने का स्वपन सुनाना ॥

तब रामचन्द्र पंपा पुष्करिणी पर पहुंचे और उस स्थान की सुंदरता देख कर सीता के वियोग में विलाप करने लगे लक्ष्मण ने समझाया कि आप आत्मा के जानने वाले हो कर इस प्रकार की बातें करते हो ? सीता वृत्तांत हमें प्रतीत होगया है, बुद्धि से उपाय सोचें जिस से उस का शीघ्र मिलना संभव हो। मैं आप का दास हूं, मुझ पर विश्वास करो ॥

तब रामचंद्र वहां से चल कर आगे ऋष्मूक पर्वत पर गए जहां बाली से मित्रता हुई और हनुमान से मिले ॥

तब रामचंद्र ने अपने आने का कारण कहा, सुग्रीव ने सहायता का प्रण किया और एक वस्त्र जो सीता ने रास्ते पर गिराया था रामचंद्र को दिखाया, रामचंद्र ने उसे तुरंत पहिचान लिया और सुग्रीव पर विश्वास करने लगे ॥

तब सुग्रीव ने अपना वृत्तांत सुनाया कि मेरे भाई वाली ने मेरा राज्य छीन लिया है, और मेरी स्त्री को अपने घर में डाल लिया है रामचन्द्र जी ने वाली को मार कर सुग्रीव को राज्य देलाने का प्रण किया ॥

इस प्रकार रामचन्द्र से नियम करके सुग्रीव उन के साथ हुआ और वह वाली की राजधानी किष्कंधा पुरी को गए सुग्रीव उस के द्वार पर जाकर गर्जा, वाली को अन्दर से क्रोध आया और उस से लड़ने को बाहर आया उस की स्त्री तारा ने उस को रोका कि सुग्रीव दूसरे का बल पाकर आप के सन्मुख आया है, इस से मत लड़े, परंतु वाली ने उस की बात न मानी, और बाहर आया तब वह सुग्रीव को बोला कि मैंने कई बार तुम को हराया है और भाई जान कर छोड़ दिया है, परंतु तू फिर आजाता है, आज तुझ को जान से मार दूंगा ॥

यह कह कर दोनों लड़ने लग पड़े उन का रूप आकृति और प्रकार ऐसे समान थे कि रामचन्द्र सुग्रीव से वाली को न पहिचान सके ॥

तब हनुमान ने सुग्रीव को एक माला पहिना दी जिस से वह चिन्हित हो गया और रामचन्द्र ने एक ही बाण से वाली को मार डाला तब सुग्रीव का किष्किन्धा में अभिषेक हुआ और तारा भी उस के हाथ आई ॥

तब रामचन्द्र जी ने चतुर्मास के कारण सुग्रीव सहित माल्यवान पर्वत पर वास किया रावण ने भी काम से पीड़ित होकर सीता को अशोक वन में ठहराया वहां अनेक राक्षसियों

उस की रखवाली करती थीं और डरावने रूप में सामने आ आ कर रावण को पति मानने के लिये कहती थीं परन्तु सीता डाट कर उत्तर देती और श्वास श्वास से राम राम का नाम लेती सार यह कि राक्षसियों का यत्न कभी सफल न होता ॥

एक दिन त्रिजटा नाम एक राक्षसी सीता के पास अकेली आई और उस की दीन दशा पर दया करके कहने लगी कि बेटी ! घबराना नहीं ! तेरे पति की एक बलवान वानर राज से मित्रता हो गई है और वह शीघ्र बड़ी सेना लेकर तुम्हें छुड़ाने के लिये लङ्का में आवेगा मुझे यह बात अविन्ध्य राक्षस ने कहा है इस नीच रावण से भय मत कर पूर्व काल में इस ने अपनी पुत्र वधु रम्भा का स्पर्श किया था उस समय नल कूबर ने इस को शाप दिया था कि तू किसी स्त्री के साथ बलात्कार कुकर्म नहीं कर सकेगा इस से यह तुम को बलात्कार दूषित नहीं कर सकता इसका भय मत कर और मैंने रात को एक स्वप्न भी देखा है जिस से इस दुष्ट को तेल के कड़ाहे में पड़ा हुआ पाया है इस का शिरमुण्डा हुआ और अङ्गों में कीचड़ लगा हुआ और ऐसा प्रतीत होता है कि गधों के रथ पर नाचता हुआ चला जाता है कुम्भकर्ण का शिर भी मुण्डा हुआ है नङ्गी देह और गले में लाल माला पड़ी है विभीषण के शिर पर श्वेत छत्र है और श्वेत कपड़े पहिने हुए श्वेत चन्दन का लेप किये हुए श्वेत पर्वत पर खड़ा है उस के मन्त्रि भी इसी दशा में उस के साथ हैं वह हम लोगों को

बड़े भय से छुड़ा रहे हैं तेरे पति के बाणों से सब पृथ्वी व्याप्त हो रही है लक्ष्मण अस्त्रों के ढेर पर बैठा हुआ मिठाई और खीर खा रहा है और सब दिशाओं को जलाना चाहता है तू रुधिर में भरी हुई और रोती हुई व्याघ्रों से रक्षित होकर उत्तर की ओर जा रही है ॥

इस से मुझे अवश्य प्रतीत होता है कि तू पति को शीघ्र ही मिलेगी ॥

दोसौ चौतीस का अध्याय

—:o:—

रावण का सीता को बातों में लुभाना परन्तु सीता का कठोर उत्तर देना ॥

एक दिन सीता दुःखी हो मैले कुचैले वस्त्र पहिन कर एक शिला पर लेटी हुई थी कि रावण उसके पास आया और कहने लगा कि हे सीता ! देख मैं लङ्का का राजा हुं मेरे पास अनेक राक्षस और गन्धर्व हैं ! मेरे रनिवास में देव कन्या और गन्धर्व कन्या रहती हैं, राक्षसियों का तो कहना ही क्या है, यदि तू मेरी रानी बन जायगी तो यह सब स्त्रियें तुम्हारी सेवा करेंगी ॥

मेरी बहुत सेना है, गन्धर्व और यक्ष मेरे पास कुवेर के समान आते हैं, मै विश्रवा ब्रह्म ऋषि का पुत्र हुं और संसार में पांचवां लोक पाल हुं, मेरे पास यक्ष और किन्नर हैं और

कुच्छ मेरे भाई कुवेर के पास हैं, मेरा वल इन्द्र के तुल्य है, इस से तू मुझ पराक्रमी की धर्मशीला वन जा मैं तुझ को मंदोदरी के समान रखूंगा ॥

सीता यह सुन कर रोने लगी और वोली कि हे राक्षस राजा! अपना मन मुझ दुखिया अभागिनी परस्त्री से हटा लो इस में तेरा कल्याण होगा मैं पति व्रता हूं तू मुझे विवश कर के बलात्कार प्रीती चाहता है ? अरे पापी अपने पिता को तो देखो जो वेद पाठी और धर्मात्मा है, ! तुझे धर्म का तो लेश भी नहीं, और अपने मुंह लोक पाल वना वैठा है ! कुवेर को अपना भाई कहते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ॥

यह कहते हुए रोने से सीता के हिचकियां वंध गईं और वह आतुर होकर भूमी पर जा पड़ी, रावण वोला कि अच्छा सीता जव तक तुम आप नहीं चाहो गी मैं तुम को नहीं मिलूंगा वड़े आश्चर्य की वात है कि तू अव भी रामचंद्र को चाहती है ? रामचन्द्र जैसे कई मनुष्य हम ने खा डाले हैं

यह कह कर रावण अंतर्धान हो गया ॥

दोसौ पैंतीस का अध्याय

—:-०-:—

सुग्रीव का सीता को समाचार लाने को वानर भेजना । हनुमान जी का सीता का समाचार लाना ॥

जब वर्षा समाप्त ऋतु हुई और रामचंद्र को माल्यपर्वत पर रहते हुए बहुत काल हो गिया तो उन्हों ने लक्ष्मण को कहा कि तू किष्किंधा में जा और देख कि सुग्रीव ने हमारे लिये क्या किया है। मेरा विचार है कि राज्य और स्त्री पाकर उस को संसार के किसी पदार्थ की सुध नहीं रही उस को उचित था कि हम को सहायता देता प्रतीत होता है कि वह भी अपने भाई वाली की भांति मारा जाना चाहता है, जाओ उस को यहां ले आओ ॥

यह आज्ञा लेकर लक्ष्मण जी सुग्रीव के पास आए और रामचन्द्र का आदेश उसको सुना दिया सुग्रीव बोला कि महाराज अधर्मी नहीं हूं मैंने उसी दिन से यत्न आरम्भ किया हुआ है; मैं वानरों को चारों दिशाओं में भेज चुका हूं, उन को आज्ञा है कि सीता जी का पता लावें अभी एक महीने में ५ रात्रि शेष हैं, इन के व्यतीत होने पर वानर सीता जी का समाचार अवश्य लावेंगे ॥

लक्ष्मण जी प्रसन्न हुए और सुग्रीव को अपने साथ ले आये ॥

जब पूरा महीना होगया तो तीन ओर के वानर लौटे, परंतु जो लोग दक्षिण दिशा को गये थे वह नहीं लौटे, जो लौटे उन को सीता का कुछ समाचार नहीं मिला, दक्षिण दिशा वाले बन्दर दो महीने के उपरांत लौटे, उन में एक हनुमान था, उस ने आते ही रामचंद्र जी को कहा कि महाराज मैं आप के लिए शुभ समाचार लाया हूं, रामचंद्र ने कहा कि सब वृत्तांत ज्यूं का त्यों सुनाओ ॥

तव हनुमान बोला कि महाराज जब हम को गए हुए एक मास व्यतीत हो गया तो हम को बहुत चिंता उत्पन्न हुई क्योंकि सीता जी का खोज नहीं मिला, तब बहुत थके हुओं को हम को एक गुफा मिली जो बड़ी लम्बी थी और कीड़ों मकोड़ों से भरी थी हम लोग उस गुफा में घुस गये, बहुत दूर जाने पर हम को सूर्य का प्रकाश और एक सुंदर भवन मिला यह भवन मयदैत्य का था और प्रभावती तापसी वहां तपस्या करती थी उस तापसी ने हम को मार्ग दिखाया और हम मलयाचल से होते हुए समुद्र तक पहुंचे, और खारी समुद्र को देख कर बड़े दुःखी हुए, इसी सोच में हम लोगों ने विचारा कि विना आकार रह कर अपने आप को मार डाल और समुद्र किनारे पर बैठ कर अनेक कथा प्रसंग करने लगे इतने में हम ने जटायु का वृत्तांत भी कथन किया तब एक बड़ा भारी पक्षी जो हम सब को खाना चाहता था धीरे २ हमारे पास आया और कहने लगा, कि मैं जटायु का भाई हुं तुम उस के विषय में क्या कहते हो, मेरा नाम संपाति है हम दोनों सूर्यलोक को उड़ कर गए थे, जटायु तो सूर्य का तेज न सह सका और लौट आया मैं चला गया परन्तु मेरे पर जल गए और मैं इस पर्वत पर गिरा और यहा ही रहता हूं मैंने देर से जटायु को नहीं देखा ॥

तब हम ने उस को जटायु का हाल सुनाया और आप का वृत्तांत भी वर्णन किया सम्पाति को बड़ा शोक हुआ तब उस ने कहा कि उठो शोच मत करो त्रिकूट पर्वत के नीचे लङ्का

है वहा तुम को रावण का भी भवन मिलेगा और सीता भी अवश्य मिलेगी ॥

यह सुन कर हम उठे और समुद्र से पार जाने का उपाय सोचने लगे तब मैंने अपने पिता वायु में प्रवेश किया और समुद्र को कूद कर लङ्का में चला गया वहा मैंने सीता माता को देखा तो जटा रखाए हुए थी और आप के शोच से परम दुःखित थी मैं झट उन के पास चला गया और उन को आप का सब वृत्तांत सुनाया और कहा कि वह कुशल पूर्वक हैं और अब वह वानरों की सेना सहित लङ्का में प्रवेश करेंगे, सीता बोली कि मुझे अविंध्य राक्षस से यह वृत्तांत पहिले ही विदित है ॥

तब सीता ने कहा कि अब तुम जाओ और यह मणि मुझ को स्मृति चिन्ह दिया और वह कथा भी सुनाई जब कि आप ने चित्रकूट पर एक काक के सींक का बाण मारा था तब मैंने अपने आप को पकड़वा दिया और सारी लङ्का जला कर आया हूं ॥

दोसौ छत्तीस का अध्याय

—:-०-:—

सुग्रीव का वानरों और रीछों का दल एकत्र करना, रामचन्द्र का उन को लेकर चलना,

समुद्र पर सेतु बांधना, रावण के भाई विभीषण का रामचन्द्र से मिलना ॥

तब सुग्रीव की आज्ञानुसार बहुत सा वानर दल इकट्ठा हुआ, सुषेण, गज, वय, गवस भारी २ सेना लेकर आए गन्धमादन, पनस, दधिमुख आदि अनेक जातियों के वानर भी वहां आए जामवन्त रीछों का राजा काले रीछों की बड़ी भारी पलटन लेकर आया यह विविध प्रकार के वानर सुग्रीव के स्थान पर आकर ठहरे रामचन्द्र उस महान दल को जिस की संख्या कई कोटि थी लेकर चल पड़ा ॥

हनुमान सब से आगे लगा, और कुल सेना को उसकी आज्ञा में रखा गया, नल नील आदि किरात मैंद और द्विद नाम वानरों को जो बड़े प्रभावशाली थे, अपनी २ जाती का मुखिया नियुक्त किया गया ॥

तब रास्ते में समुद्र आया, रामचन्द्र ने सेना के अधिपतियों को बुलाया और पूछने लगा कि समुद्र को कैसे पार करना चाहिये, वह बोले कि हे। आप तो कूद कर पार हो सक्ते है। परन्तु दूसरों की रक्षा करना असंभव है। तब रामचन्द्रने समुद्र की आराधना की और राह देने को कहा, समुद्र बोला कि आप नल को जो बड़ा कारीगर इंजिनियर भी है कहिये, और वह आप को पुल वान्ध देगा ॥

समुद्र का यह वचन सुन कर रामचन्द्र ने नल से सेतु बन्धवाया और सेना सहित समुद्र से पार हो गये, उस समय विभीषण अपने चारों मन्त्रियों सहित रामचन्द्रजी से मिलने आया

और सब बात सुनाई रामचन्द्र ने विभीषण को लंकेश बना दिया, और उन दोनों में मित्रता हो गई। फिर रामचन्द्र लंका में पहुंचे और वहां के वनों और उद्यानों में डेरा किया। रावण के दो मन्त्रि शुक और सारन भेद लेने के लिये वानर रूप से उस सेना में आये, परन्तु रामचन्द्र जी ने उन को पहिचान कर सेना को दिखलाया, और फिर तुरंत बाहिर निकाल दिया ॥

तब रामचंद्र ने अंगद को अपना दूत बना कर रावण के पास भेजा ॥

दोसौ सैंतीस का अध्याय

—:०:—

रावण का दुर्ग रचना करना, रामचन्द्र का सेना सहित चढ़ाई करना और युद्ध होना ॥

इधर रावण ने लंका का दुर्ग बना लिया था और उस के चारों ओर सात खाईयां बना कर उन में पानी छोड़ दिया और मकर आदि अनेक जल जीव उस में डलवा दिये बीच में अपना स्थान बनवा जिस में आने जाने के मार्ग बहुत दृढ़ बने हुए थे। प्रत्येक गोप्य स्थान पर सेना नियत थी ॥

जब अंगद लंका के द्वार पर पहुंचा तो निर्भय होकर अंदर चला गया और रावण के पास जाकर अपने का आन

संदेशा भेजा, रावण ने पूछा कि तुम किस लिए आये हो? अंगद ने कहा कि मुझ को रामचन्द्र जी ने युद्ध का समाचार देकर आप के पास भेजा है, और कहा है कि जो राजा अनीति करता है और जिसका अंतःकरण शुद्ध नहीं होता, उस का राज्य और लक्ष्मी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और वह बड़े दुख से प्राणों को त्यागता है, तेरी अनीति और दुष्टाचरण भी इसी प्रकार तेरे नाश को उद्यत हैं और अब मैं तुम को रण में मार कर इस अनीति और अन्य पापों को जो तू नित्य प्रति करता है, दण्ड दूंगा ॥

यह संदेशा सुन कर रावण को बहुत क्रोध आया और कहने लगा, कि हे दुष्ट वानर दूतों को मारना राजधर्म के विरुद्ध है, इस से मैं तुम को कोई दण्ड नहीं देता, यदि कोई और होता तो इस समय जीता न जाता, अंगद रावण के वचन सुन कर खिल खिला कर हंस पड़ा, जैसे किसी का तिरस्कार किया जाता है और मुंह बना कर कहने लगा जी हां। तुम्हारे जैसे योधा बहुत से देखे हैं, यहां स्त्रियों में बैठ कर ही बातें किया करो, रामचन्द्र के दूत को वध करने की तुम्हारी किया मजाल है?

तब रावण बोला कि अच्छा यह बताओ कि तुम्हारा रामचंद्र कैसा बल रखता है? तुम जो उस की इतनी प्रशंसा करते हो हमें भी उस के पराक्रम का कुच्छ हाल विदित होना चाहिये, हमारा एक २ योधा रामचंद्र को सेना समेत खा सकता है ॥

अब तो अंगद हंसते २ लोट पोट होने लगा और कभी २ कह देता, भई वह ! भई वाह ! अच्छी कही! अपने ही मुंह से मिया मिट्ठू बनते हो, दिखाओ तो उन सभटों के दर्शन करके मैं भी जन्म मरण से छूट जाऊं, यह कह कर अंगद ने अपना पांव बढ़ा कर आगे रखा और कहा कि जो तेरी सेना में सब से बलवान योधा हो, रामचन्द्र के इस छोटे से अनुचर का पग उठायें । फिर उन को और तुम को रामचन्द्र जी का महत्व प्रतीत होगा ॥

अंगद की यह बात सुन कर रावण ने कई योधाओं को आज्ञा दी, परंतु किसी से अंगद का पांव न उठा, तब रावण क्रोध वश होकर आप उठा परंतु अंगद ने पाव उठा लिया और कहा कि पांव पड़ना हो तो रामचंद्र के पास जाईये ॥

तब रावण ने अंगद को पकड़ने का विचार किया परंतु अंगद सब फंदों को छुड़ा कर दौड़ आया, और रामचंद्र जी को सब वृत्तांत कह सुनाया ॥

तब रामचंद्र ने लंका पर चढ़ाई की, जामवंत और रीछों ने तो दक्षिण की ओर से धावा आरम्भ किया अन्य वानरों ने दुर्ग के स्तम्भों को तोड़ना आरम्भ किया, ऊपर नीचे छत और दीवारों पर इतने बंदर चढ़ गए कि वह दुर्ग वानमय दिखाई देने लगा और राक्षस लोग डर २ कर भागने लगे ॥

तब रावण की आज्ञा पाकर राक्षस आये और वानरों से युद्ध करने लगे कई वानर मर गए और कई राक्षस ॥

तब रामचन्द्र जी ने आप बाण वर्षाये, जिस से अनेक

राक्षस मारे गए, लक्ष्मण जी ने भी बहुत से राक्षसों को मारा, तब सब वानर लौट कर शिविर को चले आये ॥

दोसौ अठतीस का अध्याय

—:-o-:—

दोनों ओर के योधाओं का परस्पर युद्ध ॥

तब रावण ने बहुत से राक्षसों को रामचन्द्र की सेना में भेजा और वह गुप्त रूप से वहां पहुंचे परन्तु विभीषण उन को ताड़ गया और वह गुप्त रूप उन का प्रकाश कर दिया तब वानरों ने उन को एक २ करके मार डाला ॥

तदनन्तर प्रहस्त राक्षस ने विभीषण को एक गदा मारी विभीषण ने शक्ति प्रहार से उस को मार डाला यह देख कर धूम्राक्ष विभीषण पर कूद पड़ा सब ओर वानरों को मार कर भगा दिया तब हनुमान ने एक वड़ा वृक्ष उखेड़ा और थोड़ी ही देर में मार मार कर सेना समेत उस का सत्यानाश कर दिया बचे खुचे राक्षस लङ्का को भागे रावण को बड़ी पीड़ा हुई और वह शोक सागर में निमग्न हो गया ॥

तब वह कुम्भकर्ण के स्थान पर गया और अनेक बाजे इकट्ठे करके उस को जगाया वह आंखें मल २ कर उठा तब रावण ने कहा कि तुम्हारी निद्रा में तो हमारा सत्यानाश हो गया प्रहस्त और धूम्राक्ष मार गए और लङ्का को उजाड़ा गया कहो अब तक सोवोगे ॥

कुम्भकर्ण बोला कि क्या बात है ? तब रावण ने सीता का सब वृत्तांत सुनाया और कहा कि दूषण के छोटे भाई वज्र वेग और प्रमाथी सेना सजा कर तुम्हारे साथ जायेंगे तुम इन को लेकर रण में चलो ॥

कुम्भकर्ण भूखा तो था ही रण में आकर वानर पकड़ पकड़ कर खाने लगा तब तो वानर डरे और इधर उधर भागे फिर सुग्रीव उस के सामने आया उस के सुन्दर आकार को देख कर कुम्भकर्ण ने समझा कि यह कोई उत्तम खिलौना है इस लिये इस को बैठक में रखना अच्छा है इस कारण उस को पकड़ कर जेब में डाल लिया लक्ष्मण यह वृत्तांत देख कर सामने आया और कुम्भकर्ण से लड़ने लगा ॥

बहुत देर तक युद्ध होता रहा लक्ष्मण ने उसकी दोनों भुजा निरर्थक कर दीं फिर ऐसा बाण मारा कि जिस ने उस के हृदय को विदीर्ण कर दिया जिस से वह भूमि पर गिरा और मर गया ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने वज्र वेग और नील ने प्रमाथी को मारडाला तब राक्षसी सेना भाग कर लंका में चली गई ॥

दोसौ उनतालीस का अध्याय

—:o:—

रावण का इन्द्रजीत को भेजना, और उसका

वानरों से घोर युद्ध करना इन्द्रजीत का अंतर्धान हो कर लक्ष्मण को बाण मारना, उस से उसका पृथ्वी पर गिर पड़ना ॥

तब रावण ने इन्द्रजीत को बुलाया, और कहा कि हे तुम ने पहिले काल में इन्द्र को जीतकर इन्द्रजीत का नाम पाया था और दोनों लोकों में यश प्राप्त कराया था। अब राम और लक्ष्मण को मार कर भी मेरे चित को प्रसन्न करो तब इन्द्रजीत रण में आया और पुकार कर कहा कि मैं इन्द्रजीत हूं, और लड़ने के लिये आया हूं। रामचन्द्र ने तुरंत लक्ष्मण को संमुख किया और उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा। तब इन्द्रजीत ने बहुत बाण मारे, और चारों ओर दिव्यास्त्र फेंके, परंतु लक्ष्मण जी ने सब को काट दिया ॥

तब इन्द्रजीत अंतर्धान हो गया, और गुप्त बाण चलाने लगा। रामचंद्र और लक्ष्मण उसको न देख सकने के कारण शोच करने लगे और वह राक्षस बाण वृष्टि निरंतर करता रहा उसके बाणों से लक्ष्मण मोहित हो गये, और बाणों के पाश में फंस गये। इन्द्रजीत उनको इस अवस्था में छोड़ कर रावण के पास गया और युद्ध का सारा वृत्तान्त सुनाया ॥

तब विभीषण ने आकर प्रज्ञा अस्त्र से उन को सचेत किया और सुग्रीव ने विशल्य औषधी देकर उनको शल्य रहित किया उसी समय एक गुह्यक कुवेर जी का भेजा हुआ आया, और एक जल पात्र देकर कहने लगा कि महाराज कुबेर जी ने

कहा है कि इस जल से नेत्र धोने से सब अंतर्धान हुए २ पुरुष और राक्षस दिखाई देंगे यह देख कर रामचंद्र ने तुरंत उस जल से आंखें धो लीं और लक्ष्मण और बड़े २ वानरों की आंखें भी धुला दीं इस से उनके नेत्र खुल गये और उनको सब गुप्त पदार्थ दिखाई देने लगे ॥

इतने में इन्द्रजीत रावण को सब समाचार देकर फिर युद्ध भूमि में आया। विभीषण बोला कि अभीतक इस ने आह्निक कर्म नहीं किये, इस लिये यदि उद्यम करो तो इसको मार लोगे लक्ष्मण सुनते ही, धनुष बाण लेकर उसकी ओर बढ़ा, तब लक्ष्मण ने मर्म भेदी बाण छोड़े, जिस से इन्द्रजीत का हृदय विदीर्ण हो गया, और वह मरकर भूमि पर गिरपड़ा ॥

फिर रावण ने सीता को मारने का विचार किया, और अशोक वन की ओर तलवार लेकर भागा। अविन्ध्य दैत्य ने जब यह देखा तो रावण को कहने लगा कि हे राजन् आप ने सीता को हर लाने का महा पाप तो किया है परंतु यह पाप उस से भी बलवानतर है देखो तुम बलवान और प्रतापी राजा हो तुम को एक दीन और अनाथ निर्बल स्त्री पर शस्त्र उठाना उचित नहीं इस से लोक में तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी, जाओ इस के पति को मार डालो तो यह फिर आप ही मर जायगी ॥

अविन्ध्य की यह शिक्षा मान कर रावण लौटा और युद्ध में रामचन्द्र से लड़ने आया ॥

दोसौ चालीस का अध्याय

—:-०-:—

रावण का रामचन्द्र से युद्ध, रावण का मारा जाना ॥

रण में आकर रावण ने बड़ा उपद्रव मचाया बड़े २ अस्त्र भुशुण्डी, शतघ्नी, फरसा, तोमर और शक्ति आदि फेंकने लगा रामचन्द्र ने उस के सारे राक्षसों को बाण वृष्टि से भस्म कर दिया और उस के सारे अस्त्रों को काट दिया रावण को बहुत आश्चर्य हुआ तब उस ने कई रामचन्द्र और लक्ष्मण बना दिये और राक्षसों को बानर बना कर इधर उधर भेजा लक्ष्मण ताड़ गया और रामचन्द्र को कहा कि इन का निस्संदेह मारिये तब रामचन्द्र ने उन पर बाण छोड़े और पल में ही भस्म करके रण को खाली कर दिया ॥

उसी समय इन्द्र ने अपना रथ भेजा और रामचन्द्र को कहा कि इस में बैठ कर युद्ध कीजिए रामचन्द्र जी उस रथ में बैठ कर रावण के सामने आए और भयानक युद्ध आरम्भ हुआ रावण ने एक महा घोर शूल छोड़ा रामचन्द्र ने उस को बाणों से ही काट दिया तब रावण ने भयभीत हो कर शूल, मूशल, छुरा, भुशुण्डी और अनेक प्रकार के दिव्यास्त्र छोड़े ॥

रामचन्द्र ने ब्रह्मास्त्र से मंत्रित पत्रों वाले बाण छोड़े और रावण को बाण वृष्टि से ढक दिया और तब दूसरा बाण

ऐसा छोड़ा कि रावण रथ और सारथि समेत जल गया यह देख कर सब देवता और गन्धर्व प्रसन्न हुए ॥

दोसौ इकतालीस का अध्याय

रामचंद्र जी को सब देव देवताओं का अशीर्वाद देना, रामचंद्र का सीता को त्याग देना और देवताओं की साक्षी पर फिर अंगीकार करना, विभीषण को लंका का राज्य देना अंगद को किष्किंधा में युवराज करना और अयोध्या में आकर अपना राज्य सम्भालना ॥

रावण को मार कर रामचन्द्र और सब वानर बड़े प्रसन्न हुए, उसी समय देवता लोग पुष्प विमानों में बैठ कर आये और गन्धर्वों ने पुष्प वृष्टि की, आकाश में बाजे बजते हुए सुनाई दिए, तब अग्निदेव सीता को आगे करके विभीषण सहित आया और कहने लगा कि हे महाराज आप इस देवी को ग्रहण कीजिए ॥

रामचन्द्र ने रथ से उतर कर सीता को देखा और फिर बोले कि सीता अब तू मेरी स्त्री नहीं हो सकती, तू

ने दूसरे पुरुष का स्पर्श किया है, अब जहां इच्छा हो जाओ! तेरे लिए जो कुच्छ करना था कर दिया है तू चाहे सुव्रत हो, चाहे असुव्रत हो मेरे काम की नहीं, यह शब्द सुन कर सीता पृथ्वी पर गिर पड़ी और फूट २ कर रोने लगी, जब होश आई तो बोली कि हे वायु देवता मेरी साक्षी दो, हे अग्नि देवता, या तो मुझ को भस्म करो, या मेरी साक्षी दो, हे वरुण देवता, तुम व्रत को जानते हो, इस समय इस दुष्कर परीक्षा में मेरी सहायता करो ॥

सीता के इस प्रकार रुदन करने पर आकाश वाणी हुई कि यह सीता पाप रहित है, हे राम! मैं वायु हूं, मेरा सब स्थानों में जाना है, मैं भली प्रकार से जानता हूं कि सीता निर्दोष है! फिर दूसरी अकाश वाणी हुई कि हे राम, मैं अग्नि हुं और मनुष्यों के देहों में व्यापक हो कर उन के सब रसों को पकाता हूं मैं सब के जानने वाला होकर भी कह सकता हु कि सीता निर्दोष है ॥

तब वरुण बोले कि, हे रामचन्द्र, मैं वरुण हु और सर्व गति होने से सब वृत्तांत को देखने वाला हुं, आप निश्चय रखें कि सीता निर्दोष है, उस ने बहुत दुःख सहा है। उस को अधिक दुखी करना उचित नहीं आप उस को अवश्यमेव अंगीकार करें। उस के पीछे ब्रह्मा जी बोले कि यह खेल मैंने केवल रावण को मारने के लिए रचा था सीता सर्वथा निर्दोष है मैंने रावण को नल कूबर से यह शाप दिलाया था कि यदि तू किसी अकामा स्त्री से कुकर्म करेगा तो तेरा मस्तक

फट कर सौ टुकड़े होजायगा। इस से सीता में किसी प्रकार की शंका न कीजिये ॥

देवताओं के इन वचनों से रामचंद्र को विश्वास होगया और उनहों ने सीता जी को अंगीकार किया। ब्रह्मा जी बोले कि हे रामचंद्र कोई वरदान मांगो। रामचंद्र ने कहा कि प्रथम तो मेरी धर्म में रुचि रहे, दूसरे शत्रु मुझे जीत न सकें और तीसरे यह सब वानर जी उठें। ब्रह्मा ने कहा ऐसा ही हो। तब सब वानर जी उठे। सीता ने हनुमान को वर दिया कि जब तक रामचंद्र की कीर्ति जगत में रहे तुम भी स्वर्ग में वास करो ॥

तब रामचंद्र ने विभीषण का राज्याभिषेक किया और सब देवता अपने २ स्थानों को पधारे ॥

तब लक्ष्मण सीता सुग्रीव विभीषण आदि के साथ पुष्पक विमान में बैठ कर रामचन्द्र अयोध्या की ओर चल पड़े, सब वानर और भालु सेतु के द्वारा पार हुए रामचन्द्र ने वानरों को बुला कर आदर सत्कार सहित विदा किया और किष्किन्धा पुरी में पहुंचे वहां वाली के पुत्र अङ्गद को सुग्रीव का युवराज बनाया फिर सब के सब अयोध्या को आए ॥

जब अयोध्या के निकट आए तो हनुमान को भेजा कि तुम जाकर भरत के हृद्गत भाव को देखो हनुमान ने आकर कहा कि महाराज भरत साधुवृत होकर आप की पादुका आगे रख कर राज्य करता है और आप के लौटने की प्रतीक्षा कर

रहा है तब रामचन्द्र ने अयोध्या में प्रवेश किया और भरत और शत्रुघ्न से प्रेम पूर्वक मिल कर बड़े प्रसन्न हुए ॥

अयोध्य में जाकर रामचन्द्र का राज्याभिषेक हुआ, और इसके पीछे सब वानर और विभीषण आज्ञा पाकर अपने २ स्थानों को लौटे रामचन्द्र ने पुष्पक विमान तो कुबेर जी को दे दिया और गोमती के तट पर दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥

यह कह कर मार्कण्डेय जी ने युधिष्ठर को कहा, कि हे राजन्! देखो किस प्रकार रामचन्द्र ने वनवास के दुःख उठाये और दुष्ट राक्षस से हरी हुई सीता को जाकर लाया. तुम्हारी सहायता के लिये तो तुम्हारे चारों भाई अतुल पराक्रमी हैं। उन्हों ने केवल वानरों और रीछों की सहायता से लंका को विजय किया था। इस लिये वनवास के निमित्त आप को कोई शोक करना उचित नहीं है। आप सत्याचारी हैं। देवताओं और दानवों को भी ऐसा होना कठिन है। इस लिये तुम को किसी का भय नहीं ॥

यह सुन कर युधिष्ठर बोले कि महाराज मैं आप की कृपा से प्रसन्न हूं। और मुझे किसी प्रकार का भय नहीं। मेरे भाई भी शूर वीर और धर्मात्मा हैं, परन्तु द्रौपदी का मुझे निस्संदेह शोच है। देखो इस बिचारी ने पहिले जुये में हारे जाने से तिरस्कार पाया, और इस समय पापी जयद्रथ ने इस को अकारण पीड़ा दी है आप को इतिहास बहुत आता है, आप कोई ऐसी कथा सुनायें जो इसी प्रकार की पति व्रता स्त्री की हो ॥

दोसौ अतालीस का अध्याय

—:०:—

राजा अश्वपति का सन्तान के लिये यज्ञ करना, सावित्री के वरदान से राजा के घर कन्या का उत्पन्न होना, उसका नाम सावित्री रखा जाना, उस कन्या को किसी ने विवाह में अङ्गीकार न करना, पिता की आज्ञा से उस कन्या का अनुरूप वर ढूगडने के लिये बाहिर जाना ॥

तब मारकण्डेय जी बोले कि मद्र देश में अश्वपति नाम एक राजा बड़ा धर्मात्मा, ब्राह्मणों का पूजने वाला, महात्मा, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, यज्ञ करने वाला, दानी, चतुर, सब का प्यारा, सब का हित करने वाला और क्षमा वान था। परन्तु बहुत आयु होने पर भी उस राजा के यहां कोई सन्तान न हुई। तब राजा ने बहुत [illegible] और यज्ञ किये और कई वर्ष तक सावित्री का जाप करता रहा। तत्पश्चात् सावित्री ने साक्षात् हो कर उससे पूछा कि हे राजन्! आप का क्या मनोर्थ है? और आप क्यों ऐसी उग्र तपस्या कर रहे हैं?

अश्वपति बोले कि हे देवी! मैं इतनी आयू होने पर भी सन्तान हीन हूं ब्राह्मण लोग कहते हैं कि बिना सन्तान के

मनुष्य की गति नहीं होती सो हे देवी ! आप की कृपा से यह चाहता हूं कि मेरे बहुत से पुत्र हों, सावित्री बोली कि हे राजन् ! तेरे अभिप्राय को जान कर मैं ने ब्रह्मा जी से पूछा था परन्तु उन्हों ने कहा है कि तुम्हारे हां एक कन्या उत्पन्न होगी सो हे राजन् इस से अधिक मेरी शक्ति से बाहिर है यह कह कर सावित्री अन्तर्धान हो गई ॥

कुछ काल के पश्चात् राजा की बड़ी रानी के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई राजा ने उस का नाम भी सावित्री ही रखा क्योंकि वह सावित्री की कृपा से उत्पन्न हुई थी ॥

जब वह कन्या युवा अवस्था को प्राप्त हुई तो राजा उस के विवाह के लिए बड़ी चिन्ता करने लगा, परंतु वह कन्या परम सुंदरी, रूपवती और दिव्य भाव से ऐसी सम्पन्न थी कि कोई मनुष्य उस से विवाह करने नहीं चाहता था और सब उस को देव कन्या समझते थे ॥

एक समय उस कन्या ने पर्वत पर जाकर अपने इष्ट देव की अराधना की और उस से ली हुई पुष्प माला ले कर अपने पिता के पास आकर पास बैठ गई, पिता उस देवलक्ष्मी को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा, कि हे पुत्री तेरे विवाह का समय निकट आया है और मुझे कोई मनुष्य तेरे अनुरूप नहीं मिला, इस से अच्छा हो यदि तू वृद्धा मन्त्रियों को साथ लेजा कर आप ही अपने पति की तलाश करो जिस को तुम पसंद करोगी, मैं उसको कन्या दान कर दूंगा, हमने

सुना है कि जो पिता अपनी कन्या का विवाह नहीं करता, जो पुरुष अपनी स्त्री के पास ऋतुकाल के आने पर नहीं जाता और जो पुत्र पिता के मरने पर अपनी माता की रक्षा नहीं करता वह तीनों नरक को जाते हैं। इस से तुम शीघ्र अपने पति की खोजना करो॥

यह सुन कर और पिता को प्रणाम करके सावित्री वृद्धा मात्यों को साथ लेकर चलदी। और जाती हुई उस वन में पहुंची जहां पर राजऋषि तपस्या करते थे। वहां उसने सब को नमस्कार की और आगे चलदी। फिर वह क्रम पूर्वक सब वनों में गई और तीर्थों पर धन दान करती हुई उस स्थान पर पहुंची जहां मुख्य ब्राह्मण रहते थे॥

दोसौ तैतालीस का अध्याय

—:-०-:—

सावित्री का राज पुत्र सत्यवान को अपना पति वरना, और वर के पिता के पास आना, नारदजी का आना और बताना कि सत्यवान एक वर्ष के पीछे मर जायगा, अश्वपति का सावित्री को विवाह का निषेध करना परंतु सावित्री का न मानना॥

एक दिन राजा सभा में बैठे हुए थे कि सावित्री वनों से हो कर आयी और अपने पिता जी को दण्डवत करने लगी। दैवयोग से नारद जी भी वहां ही बैठे हुए थे, सावित्री को देख कर पूछने लगे कि हे राजन्! आपने इस कन्या का अभी तक कोई वर तालाश किया है कि नहीं? राजा ने कहा कि महाराज मैंने इसी निमित्त इस कन्या को वनों को भेजा था, अब आई है। पूछिये क्या कर के आई है॥

तब नारद जी ने सावित्री से पूछा और वह कहने लगी कि हे महात्मन्! शाल्व देश में द्युमत्सेन नाम एक बड़ा धर्मात्मा राजा था वह अन्धा हो गया और उस के वैरियों ने उस के पुत्रों को बालक समझ कर उस के राज्य को आ दबाया विचारा राजा अपने पुत्र और भार्या सहित वनों को चला गया मैं ने उस के सत्यवान नाम पुत्र को जो नगर में उत्पन्न हुआ था, परन्तु बन में पला है, अपना पति निश्चय किया है॥

यह सुन कर अश्वपति ने नारद जी से पूछा कि हे नाथ वह बालक कैसा है? नारद बोले कि हे राजन्! लड़का तो बड़ा गुणवान और सत्यवादि है परन्तु बड़े दुःख की बात यह है कि उस की आयु केवल एक वर्ष भर शेष है? गुण तो उस में सब हैं माता पिता की सेवा भी करता है परन्तु यह दोष सब से बढ़ कर है! और इस का मिटना बड़े यत्न से भी असम्भव है॥

तब राजा ने अपनी पुत्री से कहा कि हे सावित्री, सत्यवान केवल एक ही वर्ष जियगा, इस लिये उस को छोड़ कर किसी और पुरुष को अपना पति बना ले ॥

सावित्री बोली कि यह हो नहीं सकता, वृक्ष एक बार गिरता है, पहाड़ एक ही बार टूटता है और कन्यादान भी बार होता है, मैं दूसरी बार क्यों पति वरूं, चाहे गुणवान एक ही हो, चाहे गुण हीन, चाहे चिरंजीव हो, चाहे थोड़ी आयु वाला, सत्यवान ही मेरा पति है, उस को छोड़ कर इतर मनुष्य को मेरा पति बनाना असंभव है ॥

तब नारद जी ने राजा को कहा कि सावित्री बुद्धिमति और धर्मवति है, आप इसी की बात को मानें, नारद जी के वचन सुन कर राजा ने विवाह की सामग्रि इकट्ठी की और सावित्री का विवाह रचा दिया ॥

———

दोसौ चौतालिस का अध्याय

—:-०-:—

सावित्री औ सत्यवान का विवाह और सावित्री का सेवा धर्म में नियुक्त होना ॥

तब राजा वृद्ध आमात्यों और ब्राह्मणों को साथ लेकर द्युमत्सेन के आश्रम को गया और उस के पास जाकर कहने लगा, कि हे राज ऋषि, मैं अश्वपति हूं, मेरी सावित्रि

नाम बड़ी धर्म शीला एक कन्या है, उस को आप अपनी पुत्र वधु बनाईये, राजा का वचन सुन कर द्युमत्सेन बोला कि हे राजन्, हम राज्य लक्ष्मी हीन वनवासी हैं, आप की कन्या सुख में रहने वाली हम तपस्वियों के साथ कैसे निर्वाह करेगी, इस लिए आप को उचित है कि यह अयोग्य सम्बन्ध कदापि न करें ॥

राजा ने कहा कि मैंने इन सब बातों को सोच लिया है मेरी लड़की इन सब बातों को अच्छी प्रकार जानती है इस लिए आप इस की चिन्ता न करें, वह सर्वदैव आप की सेवा करके आप को प्रसन्न रखेगी, तब द्युमत्सेन प्रसन्न होगया और उस ने सत्यवान से सावित्री का विवाह होना अंगीकार किया ॥

राजा ने इधर उधर के सब ब्राह्मणों को बुला कर सावित्री का पाणि ग्रहण कराया और बहुत सा धन साथ दे कर उस को वहीं छोड़ कर आप घर को लौटा ॥

सावित्री वन में बड़े प्रेम से रहती थी, सदा सास की सेवा करती थी और श्वशर को देवता समझ कर पूजती थी अपने पति को मधुर और प्रिया वचनों से एकांत में सेवा करती थी, वन में रहते हुए उस ने सब आभरण उतार डाले और वल्कल और काषाय वस्त्र धारण किये ॥

इस प्रकार सेवा करते हुए उस को कुछ काल व्यतीत हुआ, परंतु नारद की कही हुई बात सदा उस के दिल में रहती थी और कांटे की भांति चुभा करती थी ॥

दोसौ पैंतालीस का अध्याय

—:०:—

सावित्री का पति के मरने के समय को आया हुआ जान कर व्रत करना और उसी व्रत की अवस्था में पति के साथ वन को जाना ॥

सावित्री ने एक एक पल गिन कर वर्ष को विताया और जब केवल चार ही दिन बाकी रह गए तब उस ने व्रत धारण किया उस व्रत में तीन रात्रि भर उसने कोई भोजन नहीं करना विचारा या जब उस के श्वशुर ने यह बात सुनी तो उस ने रोका और कहा कि हे राज पुत्री ! तुम इस कठिन व्रत को मत धारण करो परन्तु सावित्री ने कहा कि मुझे कोई कष्ट नहीं मैं इस व्रत के बल अपने पति के पास बैठी रहूंगी जब बार बार कहने पर भी उस ने उस की बात न मानी तब द्युमत्सेन ने कहना छोड़ दिया सवित्री विना खाए पिए परन्तु पति की सेवा में दृढ़ व्रत तीन दिन तक बराबर बैठी रही चौथे दिन पहिले उठ कर अपने नैत्यिक कर्मों को समाप्त किया फिर अग्नि प्रज्वालित करके होम किया और फिर अपनी सासु, ससुर और अन्य वनवासी ब्राह्मणों को नमस्कार किया उन्हें ने आशीर्वाद दी कि तुम्हारा सौभाग्य बना रहे सावित्री ने इस आशीर्वाद को मन में धारण किया और कहा कि ऐसा ही होवे ॥

तब सासु और ससुर ने उस को भोजन खाने के लिये कहा परन्तु सावित्री बोली कि मैं सूर्यास्त होने पर खाऊंगी तत्पश्चात् सत्यवान् कुल्हाड़ा लेकर समधा लाने के लिये वन को चला सावित्री बोली कि मैं भी तुम्हारे साथ जाऊंगी। सत्यवान् बोला कि जङ्गल में जाना बड़ा दुःखदाई होता है तुम हठ न करो तुम ने उपवास किया हुआ है तुम्हारा वन में जाना कदापि उचित नहीं॥

सावित्री बोली कि मैंने व्रत किया हुआ है, मैं तुम से पृथक् कदापि न हूंगी। इससे आप मुझ को अवश्य वन में लेचलें। सत्यवान बोला कि अच्छा यदि तुम को अवश्य जाना है, तो मेरे माता पिता से आज्ञा मांगो, यदि वह आज्ञा दें तो मेरे ले जाने में कोई दोष न होगा॥

तब सावित्री उन वृद्ध तपस्वियों के पास गई और उन को प्रणाम कर के प्रार्थना करने लगी, कि हे पिता आप मुझ को वन में जाने की आज्ञा दो। मैं आज पति के बिना नहीं रह सक्ती, द्युमत्सेन बोला कि तुम सुकुमार राज पुत्री हो, तुम्हारे लिये वन के दुःखों का सहना असंभव है, इस लिये तुम यह विचार कदापि न करो॥

सावित्री बोली कि मेरा विचार ऐसा ही है, मैं पति के साथ ही वनको जाऊंगी, द्युमत्सेन बोला कि तुम ने तीन दिन से कुछ नहीं खाया, ऐसी दशा में तुम्हारा वन में जाना कैसे हो सकता है? सावित्री बोली कि मुझे पति के साथ जाने में

कोई क्लेश न होगा और क्योंकि वह यज्ञ के निमित्त समिदा लेने जाते हैं, इस लिये मैं उन को रोकती नहीं, अन्यथा कभी जाने न देती। इस लिये आप मुझे अवश्य ही पति के साथ जाने की आज्ञा दीजिये। द्युमत्सेन ने यह देख कर कि सावित्री को अपने विचार से रोकना असंभव है, जाने की आज्ञा देदी॥

सत्यवान ने कुल्हाड़ा कंधे पर रखा, और सावित्री उस के साथ होली। रास्ते में उस को कई प्रकार के विचार आते थे कभी तो वह पति से मधुर २ बातें कर के प्रसन्न होती, और कभी २ नारद जी के वचन याद कर के मन में बड़ी दुःखी होती॥

दोसौ छत्तीस का अध्याय

—:-०-:—

सत्यवान का लकड़ी काटते काटते शिर में पीड़ा होना और सावित्री की गोद में सो जाना, यमराज का [illegible] और उस के प्राण निकाल कर दूसरी दिशा को जाना, सावित्री का उस के पीछे पीछे जाना और उस को प्रसन्न करके वर दान लेना सत्यवान् का जी उठना॥

सत्यवान् ने बन में जाकर बहुत से फल फूल इकट्ठे किये और फिर लकड़ी काटने लगा काटते काटते उस के शिर में पसीना आ गया और कुछ पीड़ा सी होने लगी तब उस ने सावित्री को कहा कि हे प्रिय मेरे शिर में शूल होता है कहो तो मैं थोड़ा सा लेट जाऊं सावित्री ने कहा बहुत अच्छा आप मेरी गोदी में लेट जाईये तब सत्यवान उस की गोदी में शिर रख कर लेट गया और पीड़ा से व्याकुल हो कर उस की आखें बन्द होने लगीं इतने में महा काल वर्ण परन्तु परम तेजस्वी रक्त वर्ण वस्त्र पहिने हुए एक महा पुरुष वहां आया सावित्री ने पूछा कि तुम कौन हो उस ने उत्तर दिया कि मैं यमराज हूं तेरे पति के प्राण हरने के लिये यहां आया हूं सावित्री बोली कि हम ने तो सुना है कि यमराज के दूत ही मनुष्यों के प्राणों को हरते हैं परन्तु मेरे पति के प्राणों के लिये आप स्वयं किस प्रयोजन से आए हैं ? यमराज ने उत्तर दिया कि हे यशस्विनी ! तेरा पति सत्यवादि, धर्मात्मा और सत्यशील था इस लिये उस का आदर प्रकट करने के लिये हम आप उस के प्राणों को हरने आए हैं ॥

यह कह कर यमराज ने सत्यवान के शरीर से अंगुष्ठमात्र सूक्ष्म शरीर को बल से निकाल लिया जिस से उस का स्थूल शरीर निश्चेष्ठ होगया श्वास आदि बन्द होगए और कुरूप सा दिखाई देने लगा, यमराज उस सूक्ष्म शरीर को लेकर अपने पाश में बांध कर दक्षिण दिशा को चल पड़े, सावित्री

भी मृतक शरीर को भूमि पर रख कर यमराज के पीछे २ होली ॥

थोड़ी दूर गई थी कि यमराज ने कहा कि सावित्री अब तू लौट जा और अपने पति का अन्त्येष्टि विधि कर, तूने अपने पति का ऋण उतार दिया है॥

सावित्री बोली महाराज जहां मेरा पति जायगा वहां मैं भी जाऊंगी आप की कृपा से कोई वस्तु मेरी गति को रोक नहीं सकती मेरा आप से कुछ कथन है उस को सुनिये वन में रहने वाले आत्म ज्ञानी लोग कर्म फल को छोड़ कर धर्म करते हैं और उस को विज्ञान का साधन बताते हैं इस लिये धर्म को प्रधान गिना जाता है, सत्पुरुष एक ही धर्म बताते हैं, जिस से परम सन्मार्ग पूर्ण होता है, इस से वही एक धर्म है, सत पुरुष जिस को छोड़ कर दूसरे अथवा तीसरे धर्म की इच्छा नहीं करते, इस से उन्हों ने धर्म को ही प्रधान कहा है ॥

यह सुन कर यमराज प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे सावित्री, मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं अपने पति को फिर जीवन करने को छोड़ कर जो वर चाहे, मांग ले, सावित्री बोली कि मेरे श्वसुर को नेत्र प्राप्ति हो जाय, यमराज ने कहा कि ऐसा ही होगा, अब तू लौट जा, दूर जाने से थक जायगी ॥

सावित्री बोली कि पति के साथ चलने से मैं कभी नहीं थकती, वही मेरी गती है जहां वह जायगा, मैं भी जाऊंगी ॥

हां मैंने अभी कुछ और निवेदन करना है सुनिये "सत् पुरुषों के साथ एक ही वार मिलने से मित्रता हो जाती है। वह मिलना निष्फल नहीं होता। इस से सत्पुरुषों के बीच में रहना उचित है।

यमराज बोले कि हे सावित्री तेरा कहना ज्ञानी की बुद्धि को बढ़ाने वाला है, इस से सत्यवान् के जीवन को छोड़ कर और जो कुछ तू चाहे मांग ले सावित्री बोली कि प्रथम तो मेरा श्वसुर राज्य पावे और दूसरा धर्म को कभी न छोड़े यमराज ने कहा कि यही होगा परंतु अब तू लौट जा और वृथा श्रम मत कर ॥

सावित्री बोली कि आप यमराज हैं आप से दण्ड पाकर प्रजा शुद्ध होजाती है, आप दण्ड देते हैं और सुकर्म का फल भी देते हैं मेरी थोड़ी सी और प्रार्थना भी सुन लीजिये किसी के साथ मन-वचन और कर्म से द्रोह न करना चाहिये अनुग्रह करना और दान करना चाहिये, यह तीनों लक्षण सत्य पुरुषों के सनातन धर्म कहे गए हैं यद्यपि संसार निर्दई पुरुषों से भरा है तथापि सत्पुरुष शत्रु पर भी दया करते हैं यमराज बोले कि तेरे वचन ने मुझे बड़ा प्रसन्न किया है इस लिए सत्यवान् को छोड़ कर इतर वर मांग ॥

सावित्री बोली कि मेरे पिता के कोई पुत्र नहीं इस लिए मैं चाहती हूं कि उस के १०० पुत्र उत्पन्न हों और कुल के बढ़ाने वाले हों यमराज बोले ऐसा ही होगा परन्तु अब तू जा तू बहुत दूर आ गई है ॥

सावित्री बोली कि पति के पास रह कर मैं सब मार्गों को निकट जानती हूं परन्तु मेरा मन दूर तक दौड़ता है मुझे एक और बात याद आ गई कृपा करके सुनिए आप बड़े प्रतापी सूर्य के पुत्र हैं आप के धर्म को देख कर सब प्रजा धर्म करती है इस से आप का नाम धर्मराज है मनुष्य को जितना विश्वास सत्पुरुषों पर होता है उतना अपनी आत्मा पर नहीं होता इस से मनुष्य सत्पुरुषों की सङ्गति करता है क्योंकि वह सब पर प्रीति करते हैं ॥

यमराज बोले कि हे सावित्री मैं तेरे वचन से बड़ा प्रसन्न हूं इस से पति को छोड़ कर जो वर चाहे माग सावित्री बोली कि महाराज सत्यवान से मेरे सौ पराक्रमी और सपुत्र उत्पन्न हों, यमराज ने कहा कि ऐसा ही होगा अब तू परिश्रम मत कर लौट जा, सावित्री बोली कि हे यमराज संतों की सदा की वृत्ति सनातन धर्म ही है । वे संत न दुखी होते हैं न पीड़ा पाते हैं, उन का परस्पर सन्मिलन निष्फल नहीं होता और न उन को एक दूसरे से भय होता है उन्हीं के सत्य से सूर्य चला मान और पृथ्वी स्थिर है भविष्य भूत की गति भी उन्हीं से है और उन्हीं में रह कर उन को पीड़ा नहीं होती । यही संतों की सनातन धर्म है, यही इस पर चलते हैं और दूसरों की मनकामना पूरा करने में उपकार प्रत्युपकार का ध्यान नहीं करते । न उन का प्रसाद निष्फल जाता है और न कभी वह अर्थ और मान को भूल जाते हैं, इस लिये वह रक्षक गिने जाते हैं ॥

यमराज बोले कि हे पति व्रता तेरे वचनों से मेरे मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई है, इस लिये सर्वोत्तम वर को मांगले सावित्री बोली कि मेरा पति सजीव हो जाय, ताकि मेरे सौ पुत्र इसी पति से हों, तब यमराज ने प्रसन्न होकर पाश खोल डाला और कहा कि मैं तेरे पति को छोड़ देता हूं यह चिरंजीव होगा और इस से तुम्हारे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे उन का नाम सवित्र प्रसिद्ध होगा तेरे भाई भी होंगे, उन का तेरी माता मालवी के नाम से मालव नाम होगा ॥

यमराज तब अपने स्थान को लौट गए और सावित्री अपने पति के पास चली आई और उस को पहिले की भांति अपनी गोद में लेकर बैठ गई ॥

उसी क्षण सत्यवान को चेतनता हो गई, और वह अपनी परमप्रिय धर्मपत्नि की ओर इस प्रकार देखने लगा, जैसे कोई चिरकाल के उपरान्त परदेश से आया हो सावित्री को प्रेम से प्रफुलित दृष्टि से निहार कर कहने लगा कि हे प्रिये, आज मुझ को सोते हुए इतना काल हो गिया और रात पड़ गई, परन्तु तुम ने मुझे किस कारण नहीं जगाया मैं इतनी देर तक कभी नहीं सोया, वह काला मनुष्य जिसने मुझे भुजा से पकड़ कर खींचा था कहां गिया है ?

सावित्री इन प्रश्नों को सुन कर बोली कि हे नाथ ! निस्संदेह आज आप बहुत काल तक सोये हैं । वह काला मनुष्य प्रजा को दण्ड देने वाला यमराज था अब वह अपने

स्थान को चला गिया है। यदि आप की थकान दूर हो गई हो, तो चलो घर को चलें देखो कैसी अन्धेरी रात है। यह सुन कर सत्यवान उठ खड़ा हुआ और अपनी प्रिया के साथ चल दिया॥

तब सत्यवान कहने लगा कि हे सुभगे, मेरा विचार है कि मुझ को लकड़ी काटते २ शिर में शूल हुआ था और उग्र पीड़ा के कारण मैं तेरी गोद में सो गिया और गाढ़ी निद्रा को प्राप्त हुआ, उस समय महा अन्धकार प्रतीत होता था तब मुझे एक बड़ा प्रतापी और तेजस्वी पुरुष दिखाई दिया, परन्तु तत्पश्चात् क्या हुआ, मुझे कुछ पता नहीं। सावित्री बोली अब बहुत रात्रि हो गई है, प्रातः काल उठकर सब वृत्तान्त कहूंगी। अब आप उठिये और चल कर माता पिता के दर्शन कीजिये। देखो सूर्य्य को अस्त हुए देर हुई और अन्धेरा चारों ओर फैल गिया है॥

सत्यवान बोला कि हे प्यारी इस समय तो वास्तव में बहुत अन्धेरा हो गिया है। तुम्हे रास्ता देखना बहुत कठिन होगा। सावित्री ने कहा बहुत अच्छा लकड़ी तो हमारे पास है, सूखे हुए वृक्षों में धुकती हुई अग्नि प्रतीत होती है, मैं उस से लकड़ियों को जिला कर आप को अग्नि सेंकाती हूं, और रात्रि भर यहीं विश्राम करें॥

तब सत्यवान को अपने माता पिता का विचार आया और वह फूट २ कर रोने लगा, और कहने लगा कि वह वृद्ध अन्धे मेरे विना रात कैसे जियेंगे। जब कभी मुझे रात्रि को पहिले

देर हुई तो वह सब वनवासी वृद्धों को साथ लेकर वन में मुझ ढूंढने आते थे, जिससे उनको बड़ा क्लेश होता था, अब इतनी रात हो गई और मैं उनके पास नहीं पहुंचा हाय मेरे पिताजी क्या करते होंगे! मेरी तपस्विनी माता मुझ को अब तक न आया हुआ जान कर क्या कहती होगी! सावित्री, प्रिये। मैं उन के क्लेश को सहार नहीं सक्ता। निस्संदेह मैं प्राणों को त्याग दूंगा ॥

यदि तू मेरा हित चाहती है तो अभी आश्रम को चलो यद्यपि मैं रास्ता नहीं देख सकता नित्यप्रति आने जाने के कारण ऐसा अभ्यास रखता हूं कि आंख बन्द करके भी वहां पहुंच सकता हूं इस लिये आप आश्रम में पहुंचने का यत्न करो ॥

सावित्री ने कहा आप क्लेश न करें मैं ने हंसी में भी कभी झूठ नहीं बोला मैं अपने सत्यव्रत से कहती हूं कि आप के माता पिता आज कल्याण पूर्वक रहेंगे यदि तुम्हारा जाने का ही विचार है तो मैं तुम्हारे साथ हूं केवल आप की दुर्गिलत अवस्था देख कर ऐसा कहा था ॥

तब सावित्री ने उठ कर अपने शिर के बाल बांध लिये और सत्यवान को दोनों हाथों से उठा कर खड़ा किया, तब सत्यवान ने चारों ओर देखा और अपने तन से धूल को झाड़ा फिर वह फल से भड़ी हुई टोकरी की ओर देखने लगा सावित्री बोली कि मैं आपका कुल्हाड़ा उठा लेती हुं और इस फल की

टोकरी को यहां ही रहने देते हैं प्रातः काल आकर ले जायेंगे, यह कह कर सावित्री टोकरी को वृक्ष की टहनी पर लटका दिया और कुल्हाड़ा लेकर और सत्यवान की बांह को अपने कन्धे पर रख कर और दूसरे हाथ से उस को पकड़ कर वृक्षों के बीच में से होती हुई आश्रम की ओर चल पड़ी ॥

सत्यवान बोल कर मार्ग बताता जाता था और वह उसी मार्ग पर चली जाती थी, इतने में वह आश्रम के समीप आ पहुंचे ॥

दोसौ सैंतालीस का अध्याय

—:o:—

सत्यवान के न आने से द्युमत्सेन का महा व्याकुल होना, ऋषियों का उसको समझाना, फिर सत्यवान का आ जाना और सावित्री का यमराज से वरदान पाने का हाल कहना ॥

इस अवसर में द्युमत्सेन की आंखें खुल गईं और वह अपनी शुद्ध दृष्टि से सब को देखने लगा, जब सत्यवान रात्रि होने पर भी आश्रम में न पहुंचा, तो उस ने ढूंढना आरंभ की, एक आश्रम से दूसरे आश्रम को जाता और ऋषियों से सत्यवान का खोज पूछता, परंतु कहीं पता नहीं

लगा तब तो वह फूट २ कर रोने लगा और महा व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥

तब सब ऋषि इकट्ठे होकर द्युमत्सेन को समझाने लगे और कहने लगे कि सावित्री सौभाग्य के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त है, इस से सत्यवान के जीवित होने की कोई चिंता नहीं देखो आप के नेत्र खुल गये और राज्य की प्राप्ति हुई इस से सत्यवान के जीवित की किंचित भी शंका नहीं, इस प्रकार की अनेक बातें ऋषियों ने कहीं जिस से उस को कुछ २ शांति आई ॥

इसी अवसर में सावित्री और सत्यवान आपहुंचे और ऋषि उन को देख कर बड़े प्रसन्न हुए और द्युमत्सेन को बधाई देने लगे और कहने लगे कि ईश्वर ने तुम्हारी वृद्धि की है अब थोड़े काल में तुम को राज्य भी प्राप्त होगा ॥

तब ऋषियों ने सत्यवान से पूछा कि तुम ने वन में क्यों देर लगाई जल्दी लौट कर क्यों नहीं आये ? सत्यवान ने उत्तर दिया कि जब मैं लकड़ी काट रहा था, उस समय मेरे शिर में उग्र पीड़ा होने लगी इस से मैं पृथ्वी पर सोगया और देर तक न उठा जिस कारण कि इतनी रात्री होगई और कोई कारण नहीं ॥

ऋषियों ने कहा कि अच्छा यह तो बताओ कि तुम्हारे पिता ने नेत्र किस प्रकार पाये ? यदि तुम नहीं जानते तो सावित्री को कहो कि यथा तथ्य बतावे, तब सावित्री कहने

लगा कि मैंने नारद जी से सुना हुआ था कि सत्यवान अमुक दिन को मर जायगा, सो वह दिन आज था, इस लिए मैं उस के साथ रही और वन को भी गई, जब वह समय आ पहुंचा तो इन को उग्र पीड़ा हुई और यह मेरी गोद में लेट गए, तब यमराज आये और इन को बांध कर दक्षिण दिशा को चल दिये, मैं भी उन के साथ चली और उन की स्तुति करने लगी तब यमराज मुझ से प्रसन्न हुआ और एक २ करके पाचचवरदान दिये, जिन में से प्रथम यह था कि मेरे सुसर के नेत्र खुल जायें, दूसरे उस को राज्य प्राप्त हो तीसरे मेरे पिता के सौ पुत्र हों, चौथे मेरे सौ पुत्र हों और पांचवें सत्यवान चिर तक जीवे, हे ऋषियों यही कारण नेत्र खुलने का है और इसी से आप को आज इतनी पीड़ा मिली है मैंने व्रत भी इसी कारण किया था, इस के अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं ॥

यह सारा वृत्तांत सुन कर सारे ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और सावित्री को कहने लगे कि हे सुभगे ! तुम धन्य हो, तुम ने पिता और श्वसुर दोनों की कुलों की वृद्धि की तुम बड़ी कुलीन, शीलवति, और पवित्रात्मा हो, तुम ने समुद्र में डूबे कुल का उद्धार किया है ॥

तब ऋषियों ने आज्ञा मांगी और विदा होकर परम प्रसन्नता से अपने २ आश्रमों को पधारे ॥

दोसो अड़तालीस का अध्याय

—:-०-:—

राजा द्युमत्सेन का राज्य पाना, युधिष्ठर का इस बृत्तान्त को सुन कर शोक रहित होना और सुख पूर्वक काम्यक वन में रहिना ॥

प्रातः काल होने पर ऋषि फिर राजा द्युमत्सेन के पास आये और सावित्री की बड़ी प्रशंसा करते रहे। इसी अवसर में शाल्वदेश से बहुत से मनुष्य आये और द्युमत्सेन को कहने लगे कि महाराज, आप की प्रजा आप के गुणानुवाद गाती है और आप से प्रार्थना करती है कि आकर हम पर राज्य करो ॥

आप के मन्त्रि ने आप को शत्रु को सहायक और बांधवों सहित मार डाला है, और इस लिये आप को राज्य करने का निमन्त्रण भेजा है। आश्रम के बाहर चतुरंगणी सेना खड़ी है। चलिये और यान में बैठ कर अपनी राजधानी को चलिये, वहा सब लोग आप की प्रतीक्षा करते होंगे ॥

यह सुन कर द्युमत्सेन बड़ा प्रसन्न हुआ और ऋषियों से आज्ञा लेकर वनको छोड़ कर नगर को चला गया। कई दिनों के पश्चात् सावित्री के बड़े बलवान पुत्र उत्पन्न हुए। और अश्वपति के भी मद्रदेश में मालवी रानी से बड़े पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए ॥

इस प्रकार सावित्री ने अगले पिछले दोनों कुलों को तार दिया। राजा युधिष्ठर इस प्राचीन इतिहास को सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और उनका सब शोक दूर हो गया॥

दोसौ उंचास का अधयाय

—:-०-:—

इन्द्र का कर्ण से कुण्डल और कवच मांगने जाना, सूर्य का कर्ण को उपदेश देना, परन्तु कर्ण का आग्रह करके उस की बात न मानना॥

इन्द्र ने लोमश ऋषि को कहा था कि मैं युधिष्ठर का बड़ा भय दूर करूंगा वह भय कर्ण था उस के कानों के कुण्डल और कवच उस के साथ ही उत्पन्न हुए थे और बहुत अद्भुत गुण रखते थे अब इन्द्र ने विचार किया कि उन कुण्डलों और कवच को किसी प्रकार कर्ण से लेकर अपने प्रण को पूरा करना चाहिये और पांडवों को निर्भय करना चाहिये॥

कर्ण ने भी ब्राह्मणों को बहुत दान किया था और यह व्रत किया हुआ था कि जो पदार्थ कोई मांगे उस को वही दे दे इन्द्र ने विचारा कि ब्राह्मण बन कर कर्ण के पास चलें और उस से कुण्डल और कवच मांगें॥

जब सूर्य देव ने इन्द्र के इस विचार को सुना तो वह झट अपने पुत्र कर्ण के बचाव का उपाय सोचने लगा उस ने सोचा कि यदि कर्ण ने अपने दिव्य कुण्डल और कवच दे दिये तो वह निस्संदेह दुःखी होगा इस लिए रात्रि को जब वह सो गया तो स्वप्न अवस्था में सूर्य उस के पास आया, कर्ण बोला कि आप कौन हैं ? सूर्य ने उत्तर दिया कि मैं तेरा पिता रश्मिमान हूं और तुझ को एक बड़े दुःख से छुड़ाने आया हूं इन्द्र ने पांडवों की सहायता के लिये तुझ से कुण्डल और कवच हरने का विचार किया है और वह अवश्य ब्राह्मण रूप से तेरे पास आवेगा इस लिये यह पदार्थ मांगने पर भी उस को न देना ॥

कर्ण बोला कि नहीं ! मैं ने प्रण किया हुआ है कि ब्राह्मण जो कुछ मांगें मैं उन को दूंगा इस लिये यदि मैं अब इस प्रण को छोड़ दूं तो संसार में अपयश का भागी बनूंगा जब मैं ब्राह्मणों को दान करता हूं तो क्या साक्षात् इन्द्र महाराज को खाली जाने दूं यह नहीं हो सकता इस से मेरा अपयश होगा और अपयश मृत्यु के समान है जो मनुष्य यशस्वी है वही स्वर्ग को जाते हैं इस लिये इन्द्र को कुण्डल देकर यदि मेरी आयु क्षय भी हो जाय तो मुझे क्या हानि है ? मेरी कीर्ति सदा संसार में बनी रहेगी जिस से मुझे स्वर्ग वास मिलेगा मेरा यही व्रत है मुझे अपनी सांसारिक जीवन कीर्ति अधिक प्रिय है इस लिये छल से आए हुए इन्द्र को मैं अवश्य ही वह दान दूंगा जो वह मांगेगा ताकि लोक में मेरी कीर्ति का नाश न हो ॥

दोसौ पचास का अध्याय

—:-०-:—

सूर्यका कर्ण को फिर समझाना और यही उपदेश करना कि कवच और कुण्डल मत दो ॥

कर्ण के यह वचन सुन कर सूर्य ने उत्तर दिया कि देखो अपने माता पिता और बंधुओं का हित विचारो और उन की अहित बात मत करो। शरीर को रख कर ही कीर्ति पाना शुभ होता है। परन्तु जो मनुष्य प्राणों से हित नहीं करता उसकी कीर्ति रह नहीं सक्ती। सब सम्बन्धियों को जीते हुए संबन्धि ही से सुख मिलता है। राजा लोग भी उद्यम ही से यश को पाते हैं। मरने पर कोई कुछ नहीं कर सक्ता। इस लिये प्राणों की रक्षा करना सर्वोत्तम धर्म है। क्योंकि तू मेरा पुत्र है, इस लिये यह सूचना तुम को दी है। मेरा कहना मानो और शंका छोड़ कर उस को करो। इन्द्र को इधर उधर की बातों में फंसा देना जिससे वह कुण्डल मांगना भूल जाय, परन्तु कुण्डल कभी न देने। उनके देने से तुम्हारा यश क्षण २ में न्यून होगा। तुम अर्जुन से ईर्षा रखते हो। तुम्हारा उस से अवश्य ही युद्ध होगा, इस लिये यदि तुम उस युद्ध को जीतना चाहते हो तो अवश्य ही कुण्डल न देना॥

दोसौ इक्यावन का अध्याय

—:०:—

कर्ण का आग्रह से कहना कि मैं अपने व्रत को अवश्य ही पालन करूंगा, सूर्य का कहना कि अच्छा कुण्डलों के स्थान पर इन्द्र से शक्ति लेलेना ॥

तब कर्ण ने कहा कि हे भगवान् मैं किसी पदार्थ को अदेय नहीं जानता हूं, आप मुझ से हित करते हैं और मैं भी आप से प्यार करता हूं और कहता हूं कि आप मेरी रक्षा कीजिये, मुझे झूठ से इतना भय है कि इतना मृत्यु से भय नहीं और सत्य पुरुषों को दान देने से मैं कभी नहीं डरता, आप अपने दिल के दुख को दूर कीजिये, मैं अर्जुन को अवश्य ही युद्ध में जीत लूंगा ॥

तब सूर्य बोला कि हे कर्ण कुंडलों के होने से कोई जीव तुम को मार नहीं सकता, इस लिए इन्द्र का कुंडल मांगने का विचार केवल इसी प्रयोजन से है कि अर्जुन तुम से युद्ध में जीत जाय, इस लिये यदि तुम कुंडल दे भी दोगे तो इन्द्र से अमोघशक्ती मांग लेना, वह शक्ती सहस्रों को मार मार कर फिर लौट कर मारने वाले के पास आजाती है, यह कह कर सूर्य अन्तर्धान होगए ॥

कर्ण ने प्रातःकाल उठ कर स्वप्न का हाल सूर्य देवता

को कहा, वह सुन कर मुसकरा कर बोले कि हां यह बात ऐसी ही है, तदुपरांत शक्ति लेने की इच्छा से कर्ण इन्द्र की बाट देखने लगा ॥

दोसौ बावन का अध्याय

—:०:—

कुन्ति भोज के पास एक ब्राह्मण का आना राजा का अपनी कन्या पृथा को उस की सेवा में नियुक्त करना ॥

अब कर्ण के कुण्डल पाने का वृत्तांत सुनो, एक राजा कुन्ति भोज के पास एक बड़ा प्रतापी और तपस्वी ब्राह्मण आया उस के शिर पर जटा थी और बड़ी बड़ी दाढ़ी और मूछें थीं और एक मोटा दण्ड उस के हाथ में था वह पिङ्गल वर्ण वेद पाठी राजा को कहने लगा कि मैं भिक्षा से निर्वाह करके कुछ काल आप के घर में रहना चाहता हूं तुम अनुचरों को आज्ञा दो कि वह किसी प्रकार से भी मेरा अप्रिय न करें मैं जब चाहुं जहां मेरी इच्छा हो जाऊंगा और इच्छा अनुसार आऊंगा शय्या पर अथवा आसन पर बैठते उठते कोई मेरा अपराध न करे ॥

यह सुन कर राजा ने ब्राह्मण की विधि वत पूजा की और अपनी कन्या पृथा को जो बड़ी सुशीला, सावधान और

साध्वी थी, बुला कर कहने लगा कि यह महा तेजस्वी ब्राह्मण हमारे घर में रहेंगे, और इच्छानुसार इधर उधर विचरण करेंगे। कोई मनुष्य वा स्त्री इनका अपमान या निरादर न करे। ब्राह्मण परम तेजवान है और मैं तेरे चित की एकाग्रता को तेरे बालापन से ही जानता हूं, केवल तू ही इसकी सेवा कर के निरपराध रह सक्ती है, तू वृष्णि कुलोत्पन्न शूर की पुत्री है, और वसुदेव की बहिन, है तेरे बिना यह काम कोई नहीं कर सकता ॥

तेरे पिता शूर ने मुझ से प्रतिज्ञा की थी कि जो तेरी प्रथम सन्तान होगी वह मैं तुम को दूंगा, इस लिये तू मेरी पुत्री है, तू उत्तम कुल में उत्पन्न हुई और उत्तम में ही पली है, खोटे कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्रियां सदा दुष्ट काम करती हैं, इस लिये दर्प, दम्भ, और मान छोड़ कर इस महा क्रोधी वर दान ब्राह्मण की आराधना करो, तेरा कल्याण होगा, नहीं तो अपमान से क्रोधित होकर यह ब्राह्मण हम सब को भस्म कर देगा ॥

दोसौ तिरपन का अध्याय

—:o:—

पृथा का ब्राह्मण की सेवा अंगीकार करना, राजा का उसको ब्राह्मण को सौंप देना,

पृथा का ब्राह्मण का प्रसन्न करना ॥

पृथा बोली कि हे पिता ! मैं आप की पुत्री सदा नियम व्रत करने वाली हूं। और देवता और ब्राह्मणों की नित्य सेवा करना मेरा परम धर्म है। आप कोई शंका न करें। मैं उस ब्राह्मण को सब प्रकार से प्रसन्न रखूंगी और बड़ी सावधानी से मन वचन और कर्म से मान को छोड़ कर सेवा करूंगी, आप कोई चिन्ता न करें आप मेरे शील स्वभाव को भली प्रकार जानते हैं मैं उस को कभी क्रोधित न होने दूंगी, आप मेरे ऊपर विश्वास कीजिये ॥

यह सुन कर राजा ने पृथा को बहुत सा प्यार करके फिर उपदेश दिया और फिर उस को ब्राह्मण के पास ले जाकर बोला कि हे ब्राह्मण ! यह मेरी पुत्री बड़ी सुशीला और धार्मिका है, यह आप की सब प्रकार से सेवा करेगी और आप के जप होम में सहायता देगी, यद्यपि यह बाला है, परन्तु धर्म के सब लक्षणों से सम्पन्न है इस लिये आप की सेवा मैंने इस को सौंपी है यदि अज्ञानता इस से कोई अपराध होजाए तो आप उस को क्षमा करें क्योंकि महाभाग ब्राह्मण लोग वृद्ध बालक और तपस्वियों पर क्षमावान होते हैं और यथा शक्ति उत्साह से दी हुई पूजा को ग्रहण करते हैं ॥

ब्राह्मण बोला कि हे राजन ! आप कोई शंका न करें, जैसा आप ने कहा है ऐसा ही होगा तब राजा ने एक सुंदर

स्थान में ब्राह्मण का आसन लगा दिया और हवन यज्ञ की सब सामग्रि वहां रखवा दी तब पृथा उसकी बड़े यत्न से सेवा करने लगी और आलस्य और मान को छोड़ कर उस का पूजन करने लगी जिस से वह ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न और तृप्त होगया ॥

दोसौ चव्वन का अध्याय

—:-०-:—

पृथा का दुर्वासा की सेवा करना, और दुर्वासा का प्रसन्न होकर उस को सब देवताओं को बुलाने का मन्त्र बतलाना ॥

वह ब्राह्मण दुर्वासा था और वह पृथा की सेवा भक्ति की कई प्रकार से परीक्षा करता रहा, कभी वह बाहिर जाते हुए सन्ध्या काल को आने के लिये कह जाता, और न आता और कभी आजाता, कभी आधी रात को भोजन मांग लेता, कभी किसी और ढंग से दुःख देता, कभी क्रोध में आकर गाली तक दे देता, सार यह कि उस ने पृथा की जिसको कुन्ति भी कहते हैं कई प्रकार से परीक्षा की परन्तु पृथा सेवा धर्म में परिकन निकली ॥

तब दुर्वासा जी उस से बड़े प्रसन्न हुए, और कहने लगे कि हे कुन्ति! मुझे तूने अपनी सेवा भक्ति से बड़ा प्रसन्न किया

है, जो चाहे मुझ से वर मांगले कुन्ति बोली कि महाराज आप की और मेरे पिता की प्रसन्नता ही मेरे लिये सब कुछ है, मैं कौनसा वरदान मांगूं ?

तब दुर्वासा ने कहा कि अच्छा मैं तुम को एक मन्त्र बताता हूं उस मन्त्र को पढ़ने से तू जिस देवता का आवाहन करेगी वही सेवकों की भांति तेरे सन्मुख आजायगा, और जो कुछ तू उस से कहेगी वही करेगा, कुन्ति उस मंत्र को पाकर चुपकी हो रही, और इस भय से कि कदाचित मुझ से कोई अनुचित शब्द न बोला जाय, सिर नीचे किये खड़ी रही ॥

तब दुर्वासा जी कुन्ति भोज के पास गए और उस को कहने लगे कि हम तुम्हारी पुत्री की सेवा से बड़े प्रसन्न हैं यह कह कर वहीं अन्तर्धान होगये राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और पृथा की पूजा करने लगा।

दोसौ पच्चपन का अध्याय

—:०:—

पृथा का सूर्य्य का आवाहन करना, सूर्य का आना और पृथा पर कामासक्त होना, पृथा से पुत्र उत्पन्न होना, पृथा का उस को संदूक में बन्द कर के अश्वनदी में छोड़ देना ॥

एक दिन पृथा रजस्वला हो गई और कन्या होने के

कारण बड़ी लज्जित सी हो गई इस लिये वह स्नान कर के ऊपर की शय्या पर लेट गई, बैठे २ उस को दुर्वासा के दिये हुए मन्त्रों का विचार आया और उस ने कुतूहल से उन की परीक्षा करने का विचार किया, उस समय उस की दृष्टि सूर्य्य पर पड़ी और दिव्य दृष्टि से उसके सुंदर कुण्डल और अत्यन्त शोभायमान रूप को देख कर उस ने सूर्य्य का आवाहन किया ॥

मन्त्रों के बल से सूर्य तत्क्षण वहां आ गए कुन्ति ने देख कर नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि "हे भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हूजिए मैं ने केवल मन्त्र बल की परीक्षा के निमित्त आप का आवाहन किया था इस लिए आप मुझ को आशीर्वाद देकर अपने स्थान को गमन कीजिए" ॥

सूर्य बोला कि "हे कुन्ति! हम इस प्रकार जा नहीं सकते हम तुम्हारे मन्त्र के बल से तुम्हारे वश में हैं इस लिए जो कुछ तुम्हारा काम हो वह हम को बता दो," कुन्ति बोली कि "महाराज मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है बालापन से मैं ने इन मन्त्रों की परीक्षा करने के लिए उन को पढ़ा है," सूर्य ने कहा कि हम तुम को एक पुत्र दान करेंगे जो मेरे जैसा रूप वाला होगा और जिस के सुन्दर कवच और कुण्डल होंगे और जो बड़ा प्रतापी और यशस्वी और तेजस्वी होगा ॥

कुन्ति बोली कि महाराज मैं कन्या हूं मुझे पुत्र की कामना नहीं है आगे मेरे कुतूहल को क्षमा कीजिए और इच्छा के अनुसार अपने स्थान को जाइये ॥

सूर्य बोला कि देवता वरदान किए बिना जा नहीं सकते तुम मेरे सुन्दर रूप की अभिलाषा रखती है इस से मैं तुम्हें अपने जैसा स्वरूप वान पुत्र उत्पन्न कर दूंगा और उस बालक की उत्पत्ति के पश्चात् तू कन्या रूप हो जायगी यदि तुम ने यह वर न लिया तो मैं तुम को तेरे पिता को और तुझे मन्त्र देने वाले मूर्ख दुर्वासा ऋषि को भस्म कर दूंगा क्योंकि तेरा पिता तेरी अनीति को नहीं जानता और उस दुर्वासा ने तेरा शील जाने विना यह मन्त्र तुम को दिये हैं देखो देवता लोग मुझे तेरे वशी भूत देख कर हंस रहे हैं ॥

कुन्ति बोली कि महाराज मैं ने कन्याभाव से आप को बुलाने का दुःखदाई अपराध किया है मेरा विवाह नहीं हुआ मैं माता पिता की आज्ञा में हूं उन के बिना बताए आप के इस दान को ले नहीं सकती इस से आप मुझे क्षमा करें आप का कहना मानने से मेरा उपहास होगा ॥

सूर्य बोला कि तुझ को बाला समझ कर मैं उपदेश देता हूं कि तू मेरा कहा मान ले यदि मैं बिना कार्य चला गया तो देवलोक में मेरा उपहास होगा ॥

कुन्ति देर तक विचारती रही कि किस प्रकार अपने माता पिता और दुर्वासा ऋषि को शाप से बचाऊं ? और किस प्रकार बिना माता पिता की आज्ञा के पुत्रोत्पत्ति का दुष्कर कर्म

करूं ? तब वह अत्यन्त लज्जित होकर बोली कि महाराज मेरे माता पिता को इस बात का कुछ पता नहीं उन से आज्ञा पाए बिना यह कर्म करने से हमारे कुल की कीर्ति नष्ट हो जायगी इस लिए यदि आप अवश्य ही मुझ में पुत्र उत्पन्न करना चाहते हैं तो मुझ को अपयश से बचने का उपाय बताइये ॥

सूर्य्य बोले कि हे सुन्दरी तेरे माता पिता और गुरू तेरे स्वामी नहीं हो सकते, कन्या सदैव स्वतन्त्र होती है, और अपनी सब कामनाओं को स्वतन्त्रता से करती है इस लिये मुझ से पुत्र लेने में तुझे कोई अधर्म नहीं लगे गा, और मैं भी देवता हो कर कैसे अधर्म कर सक्ता हूं संसार में सब स्त्री और पुरुष अनावृत हैं अर्थात् किसी का रोक किसी के साथ नहीं, यह संसार का स्वभाव है और विवाह और नियमादि सब विकार रूप हैं इस लिए तू चिन्ता मत कर पुत्र उत्पत्ति के पश्चात् तू फिर कन्या हो जाय गी मेरा दिया हुआ पुत्र बड़ा पराक्रमी, रूपवान, बुद्धिमान तेजस्वी और धर्मात्मा होगा ॥

जब कुंती ने देखा कि सूर्य किसी प्रकार भी पुत्र दान दिये बिना नहीं जाना चाहता, तो वह बोली कि महाराज यदि मेरी और मेरे माता पिता और कुल की निन्दा न हो, तो मैं आप की बात मानने को तैयार हूं, सूर्य ने कहा कि तुम इस बात की चिंता मत करो, जगत में इस बात का कुछ पता नहीं होगा और मैं तुम्हारे पुत्र को सुन्हरी कुंडल और कवच दूंगा, जिस से क्षत्रियों में वह बड़ा प्रतापी होगा ॥

तब सूर्य ने कुन्ति में अपना तेज धारण किया, जिस से

वह विह्वल होकर शय्या पर अचेत गिर पड़ी, तब सूर्य चला गया और माघ शुक्ला प्रतिपदा को कुन्ति को चंद्रमा के सदृश एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, कुंति उस को देख कर रोने लगी कि हे पुत्र तुझ को किस प्रकार बचाऊं, तब धात्रि एक सन्दूक लाई और उस में सुंदर वस्त्र रख कर लड़का उस में रखा और कुन्ति की आज्ञा अनुसार अश्व नदी में छोड़ दिया ॥

कुन्ति यह दुष्कर कर्म करके बहुत रोने और बिलकने लगी, बालक का सुन्दर रूप उस के स्वभाविक कुण्डल और कवच, उस के सुन्दर अङ्ग प्रत्यङ्ग उस के दिल को लुभा रहे थे और अपने शरीर से पृथक् करने नहीं देते थे मातृ स्नेह बड़ा प्रबल था परन्तु लोक लज्जा का भय सब से उत्कृष्ट था विचारी कुन्ति ने मातृभाव को छोड़ कर कुल की प्रतिष्ठा को बनाए रखा और बच्चे को अश्व नदी की भयङ्कर तरङ्गों में छोड़ दिया और सब देवताओं का उस की रक्षा के निमित्त आवाहन किया ॥

वह संदूक बहता हुआ पहिले चर्मरावती में पहुंचा वहां से यमुना में और यमुना से गङ्गा में जा निकला बहते बहते वह संदूक चम्पापुरी के किनारे जा लगा जहां धृतराष्ट्र का सखा सूत रहा करता था ॥

दोसौछप्पन का अध्याय

—:-०-:—

अधिरथ सूत का अपनी स्त्री राधा सहित गङ्गा स्नान को जाना और संदूक का पाना, उस में से बालक को निकाल लेना और पुत्र समझ कर पालना, कर्ण का अस्त्र विद्या सीखना और महादानी होना ॥

धृतराष्ट्र का मित्र सूत अधिरथ दैवयोग से अपनी स्त्री राधा सहित उस स्थान पर आया और जब वह गङ्गा स्नान करने लगा तो संदूक को पाकर बड़ा आश्चर्य युक्त हो गया उस का आश्चर्य और भी बढ़ा जब उस ने संदूक खोल कर अन्दर से परम तेजस्वी, रूपवान, स्वर्ण कुंडल और कवच धारण किये हुए बालक को निकाला और वह बालक अपनी स्त्री राधा को देकर कहने लगा कि यह कोई देव कुमार है परमेश्वर ने हम को सन्तान रहित देख कर इसे भेजा है कि हम इस को पुत्र भाव से अङ्गीकार करें ॥

राधा बड़ी प्रसन्न हुई और उस पुत्र को देख कर हर्ष से गद गद बानी परमेश्वर की स्तुति करने लगी। ब्राह्मणों ने उस बालक का नाम वसुषेण रक्खा और वह सूत पुत्र और वृष भी कहलाने लगा पृथा को यह हाल विदित हो गया ॥

पहिले तो सूत ने उसको अंग देश में रखा परन्तु जब बड़ा हो गया तो उसको हस्तिनापुर में ले आया। वहां उसने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और परशुराम से शस्त्र विद्या सीखी और यहीं उसका दुर्योधन से मिलाप हुआ, और वह पाण्डवों का शत्रु बन गया और उन्हीं की बुराई निशदिन सोचने लगा। अर्जुन से उसका विशेष द्वेष इस कारण हुआ, कि अर्जुन शस्त्र और अस्त्र के चलाने में सब से अधिक चतुर और शूरवीर था वह बालक पश्चात् कर्ण नाम से विख्यात हुआ॥

यह तो कर्ण के कुण्डलधारी होने की कथा सुनी, अब फिर पीछे जाइये। इन्द्र ने इन कुण्डलों और कवच को लेकर पाण्डवों का हित करने के निमित्त कहा था कर्ण नियम पूर्वक नित्यस्नान करता और परमेश्वर से प्रार्थना और अग्नि होत्रादि करता। उस समय जो कुछ कि ब्राह्मण लोग आकर मांगते, कर्ण उनको देने की चेष्टा करता। इस अवसर को देख कर इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप किया और कर्ण के पास जाकर भिक्षा मांगने लगा। कर्ण बोला कि कहिये, आप क्या चाहते हैं?

दोसौ सतावन का अध्याय

—:०:—

कर्ण का इन्द्र को कुण्डल और कवच दे देना, और उससे अमोघ शक्ति लेना, पाण्डवों का

काम्यकवन को छोड़ कर द्वैतवनको चलेजाना॥

ब्राह्मण बोला कि महाराज मैं आप के कुण्डल और कवच चाहता हूं। यदि आप सत्य व्रत हैं, तो इनको उतार कर देदें। नहीं तो मैं जैसे आया हूं वैसे ही चला जाऊंगा, यह सुनकर कर्ण ने अनेक बातें ब्राह्मण से कहीं और कई प्रकार की प्रार्थना की, परन्तु ब्राह्मण ने अन्य कोई वस्तु लेना अङ्गीकार न किया॥

तब कर्ण बोला कि हे ब्राह्मण यह कुण्डल और कवच अमृत मय हैं, और इनके कारण मेरा शरीर रक्षित है। और कोई मुझे मार नहीं सकता, इस लिये इनके बदले जितनी पृथ्वी चाहे आप को मिल सकती है, जिससे आप निष्कण्टक राज्य कर सकते हैं, इस के अतिरिक्त यदि मैं आप को कुण्डल और कवच देदूं तो शत्रु मुझ को मार डालेंगे, इस लिये आप हठ को छोड़ कर कोई अन्य पदार्थ मुझ से मांगिये परन्तु ब्राह्मण ने कोई दूसरा पदार्थ लेना स्वीकार न किया॥

तब कर्ण बोला कि आप इन्द्र हैं, मुझे आप के आने का समाचार मिला था, यदि आप मेरे कवच और कुण्डल लेना चाहते हैं, तो मुझे भी कोई वरदान दें ताकि कुण्डल और कवच की क्षति किसी प्रकार पूरी हो सके, यदि मैं वध्य हो गया तो इससे आप की भी हंसी होगी॥

यह सुन कर इन्द्र सोचने लगा कि केवल सूर्य को हमारे आने का हाल विदित था उसी ने इस को कहा होगा। तब

कर्ण को बोला कि बहुत अच्छा, यदि कुछ मांगना हो तो माग लो। कर्ण बोला कि आप मुझ को अमोघ शक्ति प्रदान करें। इन्द्र बोला कि हे कर्ण! मेरे हाथ से तो वह शक्ती सैंकड़ों मनुष्यों को मार कर मेरे ही हाथ में आजाती है, परन्तु तेरे हाथ से केवल एक ही महा पराक्रमी शत्रु को मारेगी और फिर मेरे हाथ में आजायगी। यदि यह बात स्वीकार हो तो शक्ति लेलो। कर्ण बोला कि मुझ को एक ही शत्रु मारना अवश्यक है। मैं दूसरे को मारना चाहता ही नहीं॥

इन्द्र बोला कि हे कर्ण! जिस को तू मारना चाहता है उस की रक्षा के लिये श्री कृष्ण भगवान् जी जो नारायण का साक्षात् रूप हैं स्वयं उद्यत हैं कर्ण ने कहा कि इस की कोई परवाह नहीं आप मुझ को अमोघ शक्ति दीजिए इन्द्र ने कहा कि मैं एक और बात भी बताता हूं यह शक्ति उस समय प्रयुक्त करनी होगी जब तुम्हारे पास और कोई शस्त्र न रहे नहीं तो यह तुम्हारे ऊपर ही गिरेगी कर्ण ने कहा कि मुझ को यह भी स्वीकार है॥

यह कह कर कर्ण ने इन्द्र से प्रज्वलित शक्ति लेली और अपने अङ्गों से कुण्डल और कवच उतार कर दे दिये जिन को लेकर और पाण्डवों का काम सिद्ध करके इन्द्र स्वर्ग को चला गया॥

धृतराष्ट्र के पुत्र यह वृत्तांत सुन कर बड़े दुःखी हुए और पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए औ सब समाज सहित द्वैत वन को चले आए॥

———

दोसौ अठावन का अध्याय

—:-०-:—

द्वैत बन में एक मृग के सींग से ब्राह्मणों के अरणीकाष्ठ का उलझ कर चले जाना, ब्राह्मणों का पाण्डवों से निवेदन करना, पाण्डवों का अग्नि होत्र लोप के भय से मृग को ढूंढने जाना, मृग का न मिलना, पाण्डवों का एक बृक्ष के नीचे बैठ जाना, छोटे भाइयों का बारी बारी पानी लेने जाना और पानी पीकर मर जाना फिर युधिष्ठर का वहां जाना ॥

एक बार द्वैत वन के ब्राह्मणों ने यज्ञ का अरणीकाष्ठ एक वृक्ष पर लटकाया हुआ था दैवयोग से एक मृग वहां आ कर अपने सींग उस वृक्ष से रगड़ने लगा जिस से वह अरणीकाष्ठ उस के सींगों से उलझ गया यह देख कर मृग कहीं वन को चला गया ॥

तब ब्राह्मण युधिष्ठर के पास आए और कहने लगे कि आप कृपा करके मृग की खोजना करके अरणी को लादें जिस से अग्नि होत्र लोप न हो युधिष्ठर ने कहा कि बहुत अच्छा

तब वह सब भाई धनुष बाण लेकर बन को गए परन्तु मृग का खोज कहीं न मिला तब वह थकावट से चूर होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए ॥

युधिष्ठर ने नकुल को कहा कि इस वृक्ष पर चढ़ कर चारों ओर देखो कि कहीं जल भी दिखाई देता है ? तुम्हारे यह भाई प्यास से बहुत दुखी हैं, यह सुन कर नकुल वृक्ष पर चढ़ा और चारों ओर देख कर बोला कि महाराज, उस दूर स्थान पर पानी प्रतीत होता है, वहां बहुत से वृक्ष हैं और हंस कारण्डव आदि बहुत से पक्षी सुंदर शब्द कर रहे हैं, मेरे विचार में वहां निस्संदेह जल है ॥

युधिष्ठर ने कहा कि अच्छा वहां चले जाओ और तर्कशों को भर कर जल ले आओ, आज्ञा नकुल पाकर चल पड़ा और वहां जा पहुंचा, सरोवर बड़ा मनोहर था और नाना प्रकार के पक्षी और भ्रमरे उस के इधर उधर मंडला रहे थे नकुल ने उस सुंदर जल को देख कर पीना चाहा, परन्तु आकाश से वाणी हुई कि हे नकुल, मैं यक्ष हूं, यह सरोवर मेरा है, जब तक तू मेरे प्रश्नों का उत्तर न दे ले तू जल पी नहीं सकता, परन्तु नकुल ने इस वाणी पर कुछ ध्यान न दिया और पानी पीने लगा और पीते ही चित्त होकर भूमि पर जा पड़ा और मर गया, जब वह देर तक न आया, तो युधिष्ठर ने सहदेव को कहा कि जाकर नकुल को ढूंढ लाओ सहदेव आज्ञा पाकर गया और यक्ष के बचन को न मान कर उसी प्रकार मर गया, फिर बारी २ अर्जुन और भीमसेन गए परन्तु सब का वही हाल हुआ ॥

तदुपरांत युधिष्ठर बहुत घबरा कर आप गया और अपने चारों भाईयों को मरा हुआ देख कर बड़ा शोक करने लगा ॥

दोसौ उनसठ का अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का विलाप करना, यक्ष से उसका प्रश्नोतर होना, पाण्डवों का सजीव होजाना ॥

युधिष्ठर उन चारों भाईयों को पृथ्वी पर मरा हुआ देख कर अधिक फूट २ कर रोने लगा और कहने लगा कि "हे अर्जुन तुमको क्या हो गिया ? तुम हिमालय पर्वत के समान इस भूमि पर पड़े हुए हो। तुमने मेरे साथ बड़ी २ प्रतिज्ञायें की थीं, अब वह तुम्हारी प्रतिज्ञयें कहां गई ? केवल तुम्हारे आश्रय हम बात के इन दुःखों को सहते थे। तुम्हारी उत्पत्ती के समय कहा गया था कि तुम बल में इन्द्र के समान होगे। अब कौनसा महा पराक्रमी शत्रु आया, जिसने तुम को कौतुक ही से भूमि पर चित लिटा दिया ? भाई अर्जुन उठो, अपने विलाप करते हुए भाई को धैर्य्य दो ॥

"ऐ भीमसेन ! तुमने दुर्योधन के मारने का प्रण किया था, अब वह प्रण कहां गिया ? शत्रु तेरी अकाल मृत्यु को सुन कर बड़े प्रसन्न होंगे ! मेरा हृदय निस्संदेह पत्थर का है, जो इन नकुल और सहदेव को इस अवस्था में पड़ा हुआ देख कर

नहीं फटता ! हे पुरुषोत्तमो ! तुम देश, काल और शास्त्र के जानने वाले थे, तुम को क्या हो गिया कि तुम इस प्रकार अपना पराक्रम दिखाये विना सो रहे हो ॥

इस प्रकार दुःख की बातें करते २ युधिष्ठर मोहितसा हो गिया ॥ फिर वह सोचने लगा कि न तो इन पर कोई शस्त्र का चिन्ह है, न किसी वन्य पशु के पंगे का चिन्ह है, यह मर कैसे गए ? कदाचित शकुनि के कहने पर दुर्योधनादि ने इस सरोवर में विषडाल दिया है, अच्छा पहिले पानी तो पिंगे फिर देखेंगे कि किस महा पराक्रमी ने इन वीरो को, सहज ही मृत्यु वश किया है ॥

यह कह कर युधिष्ठर सरोवर में घुस गया और ज्यूं ही वह पानी पीने लगा, तो उस को आकाश वाणी से यह शब्द सुनाई दिया, हे युधिष्ठर मेरे चार प्रश्न हैं उन का उत्तर दे कर पानी पियो. यदि उत्तर न दोगे, तो अपने चारों भाईयों की भांति तुम भी मारे जाओगे, यह सरोवर मेरा है इस से पानी पीने का साहस मत करो युधिष्ठर इस बात को सुन कर बहुत विस्मित हुआ और कहने लगा कि कौन है कि जिस ने हिमालय, पारियात्र, विन्ध्याचल और मलयाचल की भांति इन मेरे शूर वीर भाईयों को गिरा दिया है ? " उत्तर मिला कि मैं शपलनाम बगला हूं, मैंने ही तेरे इन चारों भाईयों को मारा है ॥

युधिष्ठर बोला कि मैं इस बात को मान नहीं सकता बगले की क्या शक्ति है कि इन दिव्यास्त्र धारी महा पराक्रमी

पुरुषोत्तमों के निकट भी आये आप यौं तो वसु हैं या रुद्र और मरुत हैं और या कोई अन्य प्रभावशाली अमानुष जीव हैं दूसरे किसी की सामर्थ इन महा पाक्रमी वीरों के निकट आने की नहीं, इस लिये आप कृपा पूर्वक अपने स्वरूप को वर्णन कीजिए ॥

तब बगले का आकार बड़ा हो होगया और वह यक्ष रूप होकर बोला कि मैं यक्ष हुं मेरे चारों प्रश्नों का उत्तर दे कर जल पीने का साहस करो ॥

तब युधिष्ठर उस के पास गया उस का आकार बादलों तक छूता था और वह युधिष्ठर से कहने लगा कि मैं ने तेरे भाइयों को बार बार रोका पर वह न हटे जिस से मैं ने उन को मार डाला, मेरा यह नियम है कि जो कोई मेरे प्रश्नों का उत्तर देता है, उसी को मैं अपने इस सरोवर से पानी पीने देता हुं, इस लिऐ तुम पानी पीने का वृथा साहस मत करो ॥

युधिष्ठर ने कहा कि आपका यह चरित्र सत्पुरुषों की मति के अनुकूल नहीं, तौ भी आप अपने प्रश्नों को कह दे मैं उनका अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दूंगा॥

तब यक्ष और युधिष्ठर का निम्न लिखित प्रश्नोत्तर हुआ :—

यक्ष—मनुष्य श्रोत्री और महत कैसे होता है? पुरुष का सहायक दूसरा पदार्थ कौन है? मनुष्य बुद्धिमान कैसे होता है?

युधिष्ठर—मनुष्य श्रुति के पढ़ने से श्रोत्री होता है, तप करने से महान होता है, मनुष्य का सहायक धैर्य है, वृद्धों की सहायता से मनुष्य बुद्धिमान होता है ॥

यक्ष—ब्राह्मणों का देव भाव क्या है? सत्पुरुषों के समान धर्म क्या है? और असत्पुरुषों के समान क्या है?

युधिष्ठर—ब्राह्मणों में वेद पढ़ना, तप करना देव भाव है तपस्वी होना सामान्य धर्म और दोष रखना असत्पुरुषों का धर्म है ॥

यक्ष—संसार में वह मनुष्य कौन है? जो अच्छे २ भोग भोगता है? और सब का प्यारा होकर बड़े आदर के साथ रहता है, परन्तु जीता हुआ मृतक के समान है ॥

युधिष्ठर—जो मनुष्य न अतिथी को भोजन कराता है न देवता और भृत्यों को भोजन कराता है, वह जीता हुआ ही मृतक समान है ॥

यक्ष—कौन सा पदार्थ पृथ्वी से भारी, आकाश से ऊंचा, वायु से शीघ्र चलने वाला और घास से अधिक बढ़ने वाला है?

युधिष्ठर—माता पृथ्वी से अधिक भारी है, पिता की पदवी आकाश से भी ऊंची है मन वायु से भी अधिक तीव्र चलता है, चिंता घास से भी अधिक होने वाली है ॥

यक्ष—प्रदेशी, गृहस्थी, रोगी और मरने वाला इन चारों के मित्र कौन २ से हैं?

युधिष्ठर—परदेशी का मित्र स्वार्थ, गृहस्थी का मित्र स्त्री और रोगी का मित्र वैद्य, और मरने वाले का मित्र दान है ॥

यक्ष—सब का अतिथि कौन है ? सनातन धर्म क्या है अमृत किस को कहते हैं ? और यह सब जगत किस को कहते हैं ?

युधिष्ठर—अग्नि सब का अतिथि है, गोदुग्ध अमृत है मोक्ष देने वाला सनातन धर्म है और सब जगत वायु है क्योंकि बिना वायु के जीना असंभव है ॥

यक्ष—धर्म रूपी एक पद क्या है ? इस का क्या यश है स्वर्ग का देने वाला एक पद कौन सा है और इस पद का सुख कौन सा है ?

युधिष्ठर—चतुराई धर्मरूप एक पद है, दान एक पद का यश है स्वर्ग का देने वाला सत्य है और शील का होना एक पद का सुख है ॥

यक्ष—मनुष्य की आत्मा और देव का रचा हुआ मित्र कौन है कौन मनुष्य को जीविका देता है ? और अन्त समय में कौन पदार्थ सुख दाई है ॥

युधिष्ठर—पुत्र आत्मज और स्त्री देव का रचा हुआ मित्र है, इन्द्र वर्षा करके सब को जीविका देता है, दान अन्त समय में सुख दायी होता है ॥

यक्ष—कौनसा धन सर्वोत्तम है ? किस वस्तु का मिलना अच्छा है ? और कौन सा सब से बढ़ कर सुख है ?

युधिष्ठर—सब धनों में विद्या सर्वोत्तम धन है ? आरोग्यता सब से अच्छा लाभ है, संतोष सब से बड़ा सुख है ॥

यक्ष—श्रेष्ठ धर्म क्या है ? कौन सा सदा फल देने वाला है ? और किस पदार्थ को वश में करने से मनुष्य शोच नहीं करता ? वह क्या है जो कभी जीर्ण नहीं होता ?

युधिष्ठर—सब प्राणियों को अभय देना सब से श्रेष्ठ धर्म है, त्रयीधर्म अर्थात् तीन मात्रो रखने वाला ओंकार सम्बन्धी धर्म सदा फल दायक है, मन को वश में करने से शोच दूर हो जाता है, सज्जनों का मिलना कभी जीर्ण नहीं होता ॥

यक्ष—किस पदार्थ को छोड़ने से मनुष्य सब का प्यारा होता है ? क्या छोड़ने से मनुष्य धनवान हो जाता है ? किस वस्तु को त्यागने से मनुष्य शोक नहीं करता ? और किस को छोड़ने से सुख मिलता है ?

युधिष्ठर—मान को छोड़ कर मनुष्य सब को प्यारा होता है, काम त्यागने से धनवान, क्रोध त्यागने से शोक नहीं होता लोभ को छोड़ने से सुख मिलता है ॥

यक्ष—संसार किस वस्तु से ढका हुआ है ? उस में प्रकाश क्यों नहीं होता है ? मित्रों का त्याग क्यों किया जाता है ? स्वर्ग क्यों नहीं मिलता है ?

युधिष्ठर—संसार अज्ञान से ढका हुआ है उसी अज्ञान रूपी अन्धेरे के कारण से उस में प्रकाश नहीं होने पाता,

लोभ से मित्रों को छोड़ा जाता है, दुर्गुण स्वर्ग मिलने नहीं देते ॥

यक्ष—किस २ वस्तु के न होने से मनुष्य और देश निर्जीव समान होते हैं ?

युधिष्ठर—धन हीन मनुष्य और राजा हीन देश निर्जीव वत है ॥

यक्ष—श्रद्धा काल क्या है ?

युधिष्ठर—जिस समय ब्रह्मज्ञान आ जाए वही समय श्रद्धा काल है ॥

यक्ष—तप का लक्षण क्या है ? दम, क्षमा और लज्जा क्या है ?

युधिष्ठर—अपने धर्म पर चलना तप है मन को जीतना दम है, सुख और दुःख आदि द्वन्दों का सहना क्षमा है और काम से हटना लज्जा है ॥

यक्ष—ज्ञान, शम, दया और आर्जव किस को कहते हैं ?

युधिष्ठर—तत्वार्थ को जानना ज्ञान है, चित की शांति शम है; सुख चाहने के स्वभाव को दया, और चित की समता को आर्जव (सरलता) कहते हैं ॥

यक्ष—दुःख से जय होने वाला शत्रु कौन है ? अनन्त रखने वाला शरीरक रोग कौन है ? साधु किसको और असाधु किसको कहते हैं ?

युधिष्ठर—क्रोध दुःख से जय होने वाला शत्रु है । लोभ अनन्त रोग है । प्राणियों का हितकारी साधु और दया हीन असाधु है ॥

यक्ष—मोह, मान, आलस्य और शोक क्या है?

युधिष्ठर—धर्म में मूढता करना मोह है। शरीर का अभीमान करना मान है। धर्म का न करना आलस्य है। अज्ञान से शोक होता है।

यक्ष—स्थिरता, धैर्य, श्रेष्ट स्नान, दान किस २ को कहते हैं?

युधिष्ठर—अपने धर्म की दृढ़ता को स्थिरता, इन्द्रियों के निग्रह (वश में करने) धैर्य, मन के मल को दूर करने को श्रेष्ट स्नान और प्राणियों की रक्षा को उत्तम दान कहते हैं॥

यक्ष—पंडित और नास्तिक के क्या लक्षण हैं? काम और मत्सर क्या है?

युधिष्ठर—धर्म के जानने वाले का नाम पंडित, और मूर्ख का नाम नास्तिक है, वासना रूपी संसार के हेतु को काम और हृदय के सन्ताप को मत्सर कहते हैं॥

यक्ष—अहंकार किसको कहते हैं? दम्भ क्या है? परम दैव किसको कहते है? पैशुन्य किसको कहते हैं?

युधिष्ठर—महा अज्ञान को अहंकार कहते है। धर्म कह कर पाखंड करना दम्भ है? दान के फल का नाम दैव है। दूसरे को दोष लगाना पिशुनता है॥

यक्ष—धर्म अर्थ और काम तीनों आपस में विरोध रखते है। क्या यह तीनों एक स्थान पर मिल सकते हैं?

युधिष्ठर—जब धर्म और स्त्री दोनों मनुष्य के वश में हो

जाते हैं, तब धर्म अर्थ और काम तीनो का एक स्थान में मिलाप हो जाता है ॥

यक्ष—अक्षय नरक किसको प्राप्त होता है ?

युधिष्ठर—जो मनुष्य स्वयं न मांगते हुए, ब्राह्मण को बुलावे और फिर कहदे कि मैं कुच्छ नहीं दूंगा, वह अक्षय नरक में जाता है। जो मनुष्य वेद, धर्म शास्त्र ब्राह्मण और देवताओं और पितर सम्बंधि कर्मों में झूठ बोलते हैं वह भी नरक में अक्षय वास करते हैं जो धनी पुरुष लोभी होकर धन को न देता है न भोगता है। परंतु मेरे पास कुच्छ नहीं। यही कहता है। वह भी नरक में अक्षय वास करता है ॥

यक्ष—कुल वृत्त अर्थात् गुरु आदि की सेवा और वेद पाठ और वेदार्थ का जानना। इन तीनो में से किस से ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ॥

युधिष्ठर—इन से ब्राह्मणत्व नहीं मिलता, सुवृत्त होने से ब्राह्मणत्व मिलता है सुवृत्त की रक्षा करना ब्राह्मण का परम धर्म है, जो ब्राह्मण सुवृती अर्थात सत्याचरण रखने वाला है. वह कभी क्षीण नहीं होता है, दुर्वृत नष्ट होजाता है क्रियावान पंडित है, शेष सब व्यसनी और मूर्ख हैं, चारों वेद के जानने वाला परन्तु दुर्वृत मनुष्य शूद्र से भी नीच है, इस लिये ब्राह्मण वही है जो अग्नि होत्री और जितेन्द्रिय हो ॥

यक्ष—मीठा बोलने वाला, विचार का करने वाला, मित्र रखने वाला, धर्मरत, मनुष्य क्या क्या पाता है ?

युधिष्ठर—मीठा बोलने वाला सब का प्यारा होजाता है, विचार का काम करने वाले की सदैव जीत रहती है,

बहुत मित्रों वाला सुख पूर्वक बसता है, धर्मरत शुभ गति को पाता है॥

यक्ष—संसार में आनन्द कौन करता है ? आश्चर्य क्या है ? ठीक मार्ग कौन सा है ? वार्ता किस को कहते हैं॥

युधिष्ठर—जो मनुष्य अपने घर में आठ पहर के पश्चात् भी शाक अथवा अन्य पदार्थ बना कर खाता है। परंतु न उसने किसी का ऋण देना है न वह परदेसी है। वही वास्तव में सुखी है॥

नित्य प्रति मनुष्य मरते चले जाते हैं परंतु जो जीते हैं वह अपने आप को संसार में सदा रहने वाला समझते हैं इस से बढ़ कर क्या आश्चर्य हो क्या सकता है ?

वेद भी भिन्न २ विषयों को वर्णन करते हैं स्मृतियें एक दूसरे से विरुद्ध विषयों पर विचार करती हैं, कोई पण्डित ऐसा नहीं जो धर्म को एक ही प्रकार से वर्णन करे, धर्म का तत्व मनुष्य के हृदय में स्थित है, इस लिये महाजन जिस मार्ग पर जावे वही सत्य मार्ग है॥

मास और ऋतु की करछी समझो, जो सदा फिरती रहती है। सूर्य को अग्नि और रात और दिन को ईन्धन समझो, वह बड़ा मोह रूपी कड़ाहा है, इस में काल भूतों को पका रहा है। बस यही वार्ता है॥

तब यक्ष बोला कि हे युधिष्ठर तुम ने मेरे सारे प्रश्नों का उत्तर दिया है मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं अब तू जिस

एक भाई का नाम ले कर कहे मैं उसी को शाप मुक्त कर सकता हूं ॥

युधिष्ठिर ने विचार कर कहा कि हे यक्ष ! मैं चाहता हूं कि मेरा भाई नकुल जी उठे, यक्ष को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह युधिष्ठर से पूछने लगा कि हे युधिष्ठर भीमसेन तुम्हारा भाई सब से बलवान है और दश सहस्र हाथी का बल रखता है, अर्जुन की शस्त्र में प्रवीणता कुल जगत में विख्यात है फिर क्या कारण है कि तुम इन वीरों को छोड़ कर अपने सौतेले भाई नकुल को जिलाना चाहते हो ॥

युधिष्ठर बोला कि हे यक्ष महाराज ! मैं धर्म को छोड़ना ठीक नहीं समझता धर्म को मारने से धर्म मारता है धर्म की रक्षा करने से धर्म रक्षा करता है इस लिये धर्म की रक्षा करनी चाहिये ताकि मारा हुआ धर्म हम को न मारे मेरे पिता की दो भार्या थीं, एक कुन्ति और दूसरी माद्री, कुन्ति का पुत्र मैं हूं और नकुल माद्री का पुत्र है मेरा विचार है कि वह दोनों मेरी मातायें एक जैसी पुत्र वति रहें और मुझे तो वह समान ही है उन में पुत्र की समता रहनी मैं अच्छी समझता हूं सुतेली होने पर माद्री मुझ से वैसी ही प्रतिष्ठा के योग्य है जैसी कुन्ति, इस में कुछ भेद नहीं ॥

यक्ष बोला कि हे युधिष्ठर मैं तेरे इस धर्म से बड़ा प्रसन्न हुआ हूं और प्रसन्न हो कर कहता हूं कि तुम्हारे सब भाई जी उठे ॥

दोसौ साठ का अध्याय

—:०:—

यक्ष का अपना स्वरूप आविर्भाव करना और कहना कि मैं तेरा पिता धर्मराज हूं मैं तेरी परीक्षा के लिये आया था, फिर तीन वरदान देकर उस का अन्तर्धान हो जाना ॥

यक्ष के वचन को सुन कर सब पाण्डव सजीव हो गए तब युधिष्ठिर बड़े आश्चर्य पूर्वक कहने लगा कि हे भगवन्! आप अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कीजिए यक्षों के यह साहस नहीं कि भीमसेनादि को रण में मार सकें इस लिये मुझे ठीक २ बताइये कि आप कौन हैं?

यक्ष बोला कि मैं तेरा पिता धर्मराज हूं, केवल तेरी परीक्षा के लिये आया था। परारब्ध से ही तुम धर्मात्मा हो, और परारब्ध से ही तुम ने भूख प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु छयों को जीत लिया है। मैं तुम से बड़ा प्रसन्न हूं, तुम जो चाहो मुझ से मांग लो ॥

युधिष्ठिर बोला कि महाराज: ब्राह्मणों का अरणी काष्ट मृग उठा कर ले गया है, जिससे उनका अग्नि होत्र लोप होने का संभव है। इस लिये, मुझे वह अरणी काष्ट मिलना चाहिये। धर्मराज बोला कि यह तो मैं ही लाया हूं। यह केवल

तुम्हारी परीक्षा के निमित्त उपाय रचा था। लो यह अरणी दण्ड लेलो और कोई दूसरा वर दान मांगो ॥

युधिष्ठर बोला कि महाराज हम को बारह वर्ष वनवास के हो गये, अब तेरहवा वर्ष गुप्त रहने का है, ऐसी कृपा करो कि हम को कोई पहिचान न सके धर्मराज ने कहा कि ऐसा ही होगा। तुम विराट नगर में रहो और इच्छा के अनुसार रूप धारण करो, तुम को कोई न पहिचान सकेगा। यदि यहां भी रहो तो भी कोई न पहिचानेगा, परन्तु विराट में रहना अच्छा है। यदि कुछ और मांगना हो तो मांगलो तुम को देते हुए मैं तृप्त नहीं होता। युधिष्ठर बोला कि मैं लोभ, मोह और क्रोध को सदा जीतलूं। और दान, सत्य और तप में मेरा मन सदा लगा रहे। धर्मराज बोला यह बातें तुम में स्वभाविक हैं, परन्तु मैं भी यह वरदान देता हूं कि तुम्हारी यह इच्छा पूरी होगी ॥

यह कह कर धर्मराज अन्तरध्यान हो गये और पाण्डव वहां से इकठे होकर अपने आश्रम को आये और अरणी दण्डलाकर ब्राह्मणों को दे दिया ॥

दोसौ इकसठ का अध्याय

—:-०-:—

पाण्डवों का गुप्त रहने की इच्छा से सब ब्राह्मणों को विदा करना ॥

तव पाडव ब्राह्मणों से वाले कि हे भगवन्त । हम को आज्ञा दें कि अब हम एक वर्ष पर्यंत गुप्त वास करें, क्योंकि हमारा जूए का यही नियम है यदि ऐसा न हुआ तो हम को शत्रुओं से बहुत कष्ट मिलेगा, धौम्य पुरोहित ने उन को बहुत सान्तवना की और कहा कि इस में किसी प्रकार का दोष नहीं आप निस्संदेह गुप्त रहिये और अपने नियम को पालन कीजिये । तव ब्राह्मण आज्ञा पाकर और आशीर्वाद कह कर चले आये ॥

पाडव धौम्य पुरोहित को साथ लेकर एक स्थान पर बैठ कर विचार करने लगे ॥

रविवार तिथि सत्रहवीं मगसर मास पुनीत ।
प्रातःकाल पूर्ण भयो यह बन पर्व सुनीत ॥
उन्नीसौ उनहत्रवां संवत विक्रमी जान ।
कृपासागर ने रच दियो यह वन पर्व महान ॥
श्रीयुत लाला राम दित्ता धर्म हेतु बनवाय ।
लाला सालिग्राम से मुद्रित दियो करवाय ॥

विराट पर्व

पहिला अध्याय

पाडवों का भेस बदल कर विराट नगर में रहने की सलाह करना ॥

व पांडव धर्म देवता से वर पाकर अपने आश्रम में वापिस आए तो राजा युधिष्ठर अपने भाईयों को एकात में ले जा कर यह बोले ॥

वनवास के १२ वर्ष बीत गए पर अब तेरहवा साल गुप्त रहने का अति कठिन है, अत एव ऐसे स्थान में रहना अवश्यक है जहां किसी प्रकार से भी शत्रु न जान सके । अर्जुन बोले कि धर्मदेव के वरदान अनुसार महा पुरुषों को गुप्त विचरने में कोई पहिचान नहीं सकेगा, तथापि

मैं गुप्त वास के योग्य कई एक जगहों के नाम लेता हूं, आप पसंद कीजिये ॥

प्रथम कुरु देश के चारों ओर का सब देश सुंदर और बहुत अन्न रखने वाला है। फिर पंचाल, चंदेरी, मत्स्य, शूरसेन, पटतवर दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शल्ल, युगंधर, कुंतराष्ट्र, सुराष्ट्र और अवंति आदि देश भी गुप्त वास करने के योग्य हैं, अब आप आज्ञा करें? युधिष्ठिर जी बोले कि भगवान धर्म राज की शिक्षा तुम ने सुनी है उसी में सब का और हमारा भी कल्याण है। अत एव उन्हीं के बताए हुए सुखदाई देश में हम सब को मंत्र करके निर्भय वास करना चाहिए ॥

मत्स्य देश का राजा विराट हम पाण्डवों से प्रीति रखता है और धर्मात्मा, दानी और सत पुरुषों का सम्मत है, उसी के देश में हम सब इस वर्ष में वास करें। और वहां उसी की सेवा करें। परन्तु अब यह विचारना चाहिये कि उस के यहां रह कर हम सब में से कौन २ क्या २ उस के काम कर सकते हैं। अर्जुन बोले कि प्रथम आप कहिए, कि विराट नगर में रह कर आप क्या काम करेंगे? आपने राज्य का सुख देखा है, इस से आपत्तिकाल में किस कार्य को स्वीकार कीजियेगा ॥

युधिष्ठिर बोले कि मैं यह कह कर राजा विराट का सभासद बन जाऊंगा कि मैं कंक नामी द्विज हूं, पासा फेंकने की विद्या

में निपुण हूं। अब भीमसेन तुम भी कहो कि तुम किस हेतु से अपने को विराट नगर में गुप्त रक्खोगे?

दूसरा अध्याय

—:-o-:—

भीमसेन का रसोइया बन कर और अर्जुन का नपुंसक बन कर विराट नगर में रहने की प्रतिज्ञा करना

भीमसेन ने कहा कि मैं अपना नाम वल्लव भंडारी प्रकट करूंगा और राजा से कहूंगा कि रसोई बनाना मुझे उत्तम प्रकार से आता है। लकड़ी के भारी २ गट्ठे भी ले आया करूंगा, बलवान हाथी अथवा बैल को पकड़ कर वश में ला सकता हूं। इस के सिवाय मल्लों को मैं इस प्रकार से पछाड़ सकता हूं कि वह मरने न पावें। सो हे युधिष्ठर! इस प्रकार आप से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं अपनी रक्षा अपनी बुद्धि से करूंगा॥

फिर युधिष्ठर ने कहा कि यह महाबली अर्जुन क्या काम करेगा? इस के पास पहिले अग्निदेव ने ब्राह्मण रूप से आकर खांडव वन को दाह करने की भिक्षा मांगी थी और इस ने एकाकी और रथ के बिना ही सब पन्नग, उरग और राक्षसों को मार कर अग्नि देव को तृप्त किया था। इसी योधा ने वासुकि

नाग की वांहिन हरी थी। यह धनुष धारियों में इस प्रकार से श्रेष्ठ है जैसे तपाने वालों में सूर्य, द्विपदों में ब्राह्मण सर्पों में मध्यकी डाढ़ में विष रखने वाला सर्प, तेजस्वियों में अग्नि, हाथियों में एरावत, प्यारों में पुत्र, सुहृदों में स्त्री उत्तम है। मैं नहीं कह सकता कि यह अर्जुन जो इन्द्र और वासुदेव जी के सदृश है, क्या काम करेगा? इस शूरवीर के गुण मैं वर्णन नहीं कर सक्ता मैं नही जानता कि विराट नगर में रह कर इस के करने के योग्य क्या काम हो सकता है।

अर्जुन ने कहा कि महाराज मैं कानों में कुंडल, हाथों में गजरे पाहिन और शिर पर बेणी बांध कर यह कहता हुआ राजा विराट के पास जाऊंगा कि मैं बृहन्नल नामी नपुंसक हूं मैं स्त्री भाव से पहिले राजाओं के चरित्र गा गा कर राजा और राज सभा को प्रसन्न करूंगा और वहां की स्त्रियों को कई प्रकार के राग और नाच सिखाऊंगा, इस प्रकार मैं प्रजा के आचार और कर्मों को बता कर और अपने आप को छिपा कर रखूंगा और रनिवास और दरबार को हाथों पर नचाऊंगा॥

तीसरा अध्याय

—:-०-:—

नकुल, सहदेव और द्रौपदी का यह कहना कि हम बिराट नगर में यह २ काम करेंगे॥

अर्जुन की वार्ता सुन कर राजा युधिष्ठिर ने नकुल से पूछा कि तुम क्या काम करोगे ? उस ने कहा कि घोड़ों का पालना और सिखाना और उन के रोगों की चिकित्सा मैं अपने ऊपर लूंगा । मैं राजा के घोड़ों को पवन पुत्र बनाकर न दिखाटूं तो मेरा नाम नकुल नहीं । तब युधिष्ठर ने सहदेव से पूछा कि भाई तुम भी कहो क्या काम करके विराट में राजा के समीप रहो गे ? सहदेव बोला कि महाराज आप कोई चिन्ता न करें मैं गौ शाला के सब कामों मे प्रवीण हूं और आप देखेंगे कि मैं राजा को कैसे प्रसन्न करता हूं मुझे ऐसे बैलों की भी पहचान है जिन के मूत्र को केवल सूंघने से बंध्या स्त्रि को भी पुत्र उत्पन्न हो जाता है, मैं विराट नगर में यही काम करूंगा, फिर मुझे कौन पहचान सकेगा ? यह सुन कर युधिष्ठर बोले कि यह हमारी प्राण प्यारी भार्या कैसे व क्या काम कर के निर्वाह करेगी ? द्रौपदी बोली महाराज मैं रानियों का हार संगार ऐसा करना जानती हुं कि राजा उन के वश में रहे और कभी परनारी का स्वप्न में भी ध्यान न करे मैं यही काम करूंगी आप मेरी कुछ चिंता न करें, इस प्रकार से मैं रानी सुदेष्णा के पास रहुंगी, वह मुझे अपनी दासी जान कर मेरी रक्षा करेगी युधिष्ठर ने कहा हे तेजस्विनी कृष्णा तु उत्तम कुल और साधू वृत्ति में उत्पन्न होने के कारण पाप को जानती भी नहीं । पाप का सदा क्षय होता है और धर्म की सदा जय होती है इस लिए तेरी कल्याण होगी ॥

चौथा अध्याय

—:o—

धौम्य ऋषि का पांडवों को राजकुल में रहने के धर्म का उपदेश करके पंजाब को चले जाना और पांडवों का अग्नि की परिक्रमा करके गुप्त वास के लिए चल देना ॥

युधिष्ठर बोले जो जो काम अपने पर आप सब ने लिए हैं वह सब ठीक हैं पर मेरी इच्छा है कि ॥

हमारा पुरोहित और सूत रसोईयों को साथ लेकर राजा द्रुपद के पास चला जावे और वहां हमारी अग्नि होत्र की रक्षा करे इन्द्र सेन आदि रथों को लेकर द्वारका को चले जावें और यह द्रौपदी की दासीयां भी सूत आदि के साथ ही पांचाल देश को चली जावें और सब पूछने वालों को यह कहें कि पाडव हम सब को द्वैत वन में छोड़ कर चले गए हैं उन का कुछ पता नहीं चलता ॥

जब यह सम्मति होचुकी तो धौम्य जी ने कहा कि यद्यपि आप को सब कुछ मालूम है पर इस समय पर मेरे वास्ते यही उचित है कि राज कुल में भली भांति निर्वाह करने की रीति और दूसरी जरूरी बातें आप को याद दिलाऊं तुम को और अर्जुन को द्रौपदी की रक्षा करना उचित है ॥

जिस तरह बन सके एक साल तक गुप्त वास करो । कोई

भी तुम को जानने न पावे। इस केपीछे चौथवें साल सुख पूर्वक प्रगट होना ॥

राजा के पास जाने से पहिले उस की आज्ञा हासल करनी जरूरी है। राजसभा में जाकर ऐसी जगह बैठो जहां किसी की आप बैठने की इच्छा न हो, या जहां से दूसरा उठा न सके ॥

विना पूछे किसी बात में सलाह न दो, हाथी पलंग और यान पर मत चढ़ो, जिस जगह बैठने से कोई दुष्ट आचार पुरुष शंका करे वहां भी मत बैठो, याद रहे कि राजा लोग झूठ बोलने वालों की निन्दा और अपमान बहुधा किया करते हैं ॥

ज्ञानी पुरुष राजा के महल में रहने वाली स्त्रियों से और उन पुरुषों से जिन से राजा द्वेष रक्खें मित्रता न करे और जिस काम को राजा जानता हो, उस को बहुत छोटा सा होने पर भी कर डाले, जो पुरुष राजा के समीप रह कर ऐसा करता है उस की क्षय कभी नहीं होती ॥

राज सभा में उत्तम आसन होने पर भी मर्यादा को सोच कर जन्म के अन्धे की तरह हो जावे अर्थात् विना आज्ञा पाए उत्तम आसन की ओर दृष्टि भी न डाले मर्यादा का सदा पालन करे मर्यादा को उल्लंघन करने वाले पुत्र आदि को भी राजा लोग अच्छा नहीं जानते ॥

राजा की सेवा इस तरह करनी चाहिए जैसे कोई अग्नि और देवता की सेवा करता है उन्माद से सेवा करने वाले को

राजा मार डालता है इस में संदेह नहीं मनुष्य को उचित है कि जिस काम पर स्वामी उस को नियत करे वही करे मद अभिमान और कोप को त्याग दे। सर्वदा राजा का हितकारी रहे जो लोग राजा की हानि चाहें उन से मेल न रखे ऐसा बचन बोले जो अनुकूल हो और स्वामी को प्रिय लगे पर जो बातें स्वामी को अप्रिय लगें अथवा उस का हित करने वाली न हों वह कदाचित भी भूल कर न करे ॥

आप तो राजा का सदा हित करे पर अपने आप को राजा का प्यारा कभी न जाने अपनी जगह से कभी न जावे ऐसा करने वाला मनुष्य ही राज कुल में वास कर सकता है ॥

राज सभा में विद्यावान मनुष्यों को राजा के दायें वा बायें और शस्त्र धारी रक्षा करने वालों को पीछे बैठना चाहिये यदि राजा कोई झूठी बातें कहे तो राज कुल में वास करने वाला उसे प्रकट न करे ॥

राजा लोग झूठे मनुष्यों की सदैव निन्दा और अपनी पंडिताई का अभिमान करने वालों का अपमान करते हैं इस से शूर वीर और बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि झूठ और अभिमान को त्याग दे जो मनुष्य राजा से अपनी भय कामना और दुःख से प्राप्त होने वाला ऐश्वर्य पावे उसे उचित है कि सावधानी से राजा का प्रिय और हितकारी काम करे ॥

राज सभा में छोटी २ बातों में भी पूरी मर्यादा से काम करे जहां तक बन सके अपने शरीर को अचल रखे थूकना, नाक साफ करना आदि क्रिय भी धीरे से करे यदि हंसना पड़े तो धीरे से मुसकरा कर मंद मंद हंसे जोर से या आजादी से कभी न हंसे ॥

मान होने पर बहुत हर्षित और अपमान से बहुत दुःखी न होवे और धीर्य को कभी हाथ से न छोड़े, जो मनुष्य राजा का मंत्री होकर राजा या राज पुत्र की सदैव स्तुति किया करता है वह बहुत समय तक अपने अधिकार पर नियत रहता है और जो मंत्री बिना कारण के कैद किए जाने पर भी राजा की निन्दा नहीं करता वह फिर अपने अधिकार पर नियत हो जाता है, राजा की मंत्र और नौकर दोनों को उचित है कि परोक्ष में भी राजा की स्तुति ही करे ॥

जो मंत्री न्याय छोड़ हठ से लोगों को दण्ड दिलाता है उस के बहुत दुशमन हो जाने से वह बहुत देर अपने पद पर नहीं रहता और जान भी खोना संभव है। मनुष्य को चाहिए कि अपना कल्याण देखे और राजा से बहुत बात न करे। युद्ध और दूसरे राज के अधिकारियों से बात चीत करने में अपने राजा को बड़ा बनावे, राजकुल में वही निवास कर सकता है जो जितेन्द्रिय बल बुद्धि पराक्रम वाला और उत्साह वान सत्यवादी हो और राजा के पीछे छाया की समान चलने वाला हो, यदि राजा किसी दूसरे को बुलावे तो आप समीप जाकर कहे कि महाराज क्या आज्ञा है, फिर राजा

जो आज्ञा दे उसे पाकर कंपत न होवे, प्रदेश में वास कर के अपने प्रिय पुत्र स्त्री आदि को याद करे पर प्रदेश वास के दुःख को सुख कर के माने जो मनुष्य राजा के समान वेष धारण नहीं करता, और राजा का भेद किसी को नहीं देता वह राजा का प्यारा हो जाता है। जब राजा किसी काम पर नियुक्त कर दे तो किसी तरह भी राजा का धन न खाये क्योंकि इस का फल दुखदाई होता है और राजा जो चीज़ (सवारी, वस्त्र आदि) दे उसे सदा अपने वर्ताव में लावे, दूसरे को न दे देवे। इन बातों से मनुष्य राजा का प्यारा हो जाता है। सो हे पाण्डवो! तुम लोग भी अपने २ चित्त को वश में करके इसी प्रकार का स्वभाव कर लो और इस साल को ऐश्वर्य युक्त हो कर काट लो। उपरांत अपना राज्य मिलने पर अपनी इच्छा करना॥

युधिष्ठिर बोले कि महाराज आप का कल्याण हो सिवाय हमारी माता कुंति और विदुर जी के आप बिन और कौन ऐसा उपदेश हमें करेगा अब आप इस दुख के दूर करने के वास्ते जो अवश्यक कर्म है सो करें, तब धौम्य ने स्थान में जो जो कर्म उचित थे सब पूरे किए और पांडवों की विजय और पृथ्वी लाभ के लिये हवन किया और पांडव द्रौपदी सहत हवन की समाप्ति पर वहां से चल पड़े, उन के चले जाने पर धौम्य भी अग्निहोत्रों को साथ ले पंचाल का मार्ग चले और इन्द्रसेन आदि घोड़े और रथों को लेकर यादवों के पास जाकर रहने लगे॥

पांचवां अध्याय

—:०:—

पाडवों का जमना तट पर होते हुए अति मार्गों से राजा मतस्य के देश में पहुंचना और वहां अपने शस्त्र एक बृक्ष में छुपा कर विराट नगर में जाना ॥

पाण्डव वहां से सीधे जमना की ओर चल दिए और उस के तट पर पहुंच कर दशार्ण देशों के उत्तर और पांचाल के दक्षिण के मार्ग से मृगों को मारते हुए वन और पर्वत के दुर्ग स्थानों में वास करते हुए अपने बाल बढ़ा कर वन को लांघ कर राजा मतस्य के देश में पहुंचे। रास्ते में जो कोई उन से पूछता कि तुम कौन हो तो वह अपने को व्याध बतलाते थे। विराट नगर की सीमा पर पहुंच कर द्रौपदी ने युधिष्ठर से कहा कि महाराज यह देखो पकडंडियां और खेत ही दिखाई देते हैं इस से प्रतीत होता है कि नगर अभी दूर है मैं बहुत थक गई हूं आज रात यहीं रहें। युधिष्ठर ने अर्जुन से कहा कि आज हम वनवास से मुक्त होने पर नगर में वास करना चाहते हैं, तुम द्रौपदी को उठा कर ले चलो। अर्जुन ने द्रौपदी को उठा नगर के समीप जाकर उतार दिया। फिर वहां पाण्डवों ने एक वन में जो रास्ते से अलग था और जहां मृग और सर्प रहते थे, एक वृक्ष जिस पर चढ़ना अति कठिन

था पसंद किया, फिर सब ने अपने २ शस्त्र उतारे और नकुल ने उस वृक्ष पर चढ़ कर सब शस्त्रों को बड़ी मजबुती से छुपा कर बाध दिया। इस के उपरात पाराडवों ने एक मुर्दा उस वृक्ष के साथ बांध दिया, जिस से उस वृक्ष के समीप कोई न जावे, फिर वहा से चल अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गुप्त वास करने के लिए नगर में प्रविष्ट हूए, उस समय युधिष्टर ने भाईयों के गुप्त नाम यूं नियत कीये ॥

युधिष्ठर का अपना नाम जय, भीमसेन का जयंत, अर्जुन का विजय, नकुल का जयत, और सहदेव का जयद् बल नाम रक्खा ॥

छटा अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का दुर्गा की स्तुति करना, उसका प्रकट होना फिर दुर्गा का अन्तर्धान हो जाना फिर युधिष्ठर का विराट नगर में प्रवेश करना और राजा से मित्रता ॥

जब युधिष्ठर विराट नगर में प्रवेश करने लगा, तो उस समय उन्हों ने कल्याण के लिये दुर्गा की स्तुति की, दुर्गा प्रकट होकर कहने लगी कि तुम कहो कि तुम को किस प्रकार की सहायता की अवश्यक्ता है ? युधिष्ठर बोले कि हे देवी

हम सब भाई गुप्त रूप से कुशल पूर्वक वास करें और हम को कोई जान न सके ॥

दुर्गा ने कहा ऐसा ही होगा, आप कोई चिंता न करें, आप के सब कार्य सिद्ध होजायेंगे, यह कह कर दुर्गा अन्तर्धान होगई, तब युधिष्ठिर ने नाले सुनहरे पासें को वस्त्र में लपेट बगल में दबा, राज सभा की ओर मुंह किया, जब सभा के निकट पहूंचा, तो उस ब्राह्मण वेषधारी को दूर से ही देख कर राजा सोचने लगा कि यह अवश्य कोई राजा है, मेरी सभा की ओर वेधड़का बढ़ा आरहा है! ब्राह्मणों का ऐसा साहस कहां हो सकता है? परंतु न तो इस के साथ दास हैं, न हाथी और घोड़े, इन बातों से तो ब्राह्मण ही जान पड़ता है ॥

राजा इतने में समीप पहुंच गया और कहन लगा कि हे राजन्! मैं ब्राह्मण हुं? मेरा सब धन नष्ट हो गया है अब आप के पास आजीविका के लिए आया हुं ॥

युधिष्टर बोला कि आप का आना शुभ हो, आईये, बैठिये, तब उस ने प्रीति पूर्वक पूछा कि आप कहां से आये हैं? आप का नाम और गोत्र क्या है ॥

युधिष्ठर ने उत्तर दिया कि मैं पहिले युधिष्ठर का मित्र था, गोत्र मेरा व्याघ्रपद्य है और नाम मेरा कंक है, मैं पासे की क्रिया में बड़ा प्रवीण हूं और धर्म की खेल में भी सब का धन जीत सकता हुं ॥

यह सुन कर विराट ने कहा बहुत अच्छा आप यहां ही ठहरिये और अपने निवास से इस नगर को पवित्र कीजिए मैं

तो धर्त खिलाड़ीयों को भी सन्मान पूर्वक रखता हूं और आप तो देवता स्वरूप राज्य के योग्य हैं, आप मेरे समान ही मत्स्य देश का राज्य कीजिये, मैं भी आप के आधीन हूं ॥

युधिष्ठर ने कहा कि आप इतनी कृपा करें कि कोई पुरुष मेरे जीते हुए धन को न ले सके, विराट बोला कि यदि कोई आप की ओर कुदृष्टि से देखेगा तो मुझ से दण्ड पावेगा आप कोई चिंता न करें, तब राजा विराट ने युधिष्ठर को नगर के महा पुरुषों के सन्मुख पेश किया और कहा कि यह भद्र ब्राह्मण है, इन को दूसरा विराट समझो और इन को सब प्रकार से पूजा के योग्य समझो, यदि कोई इन का अपराध करेगा, तो मैं उस को शीघ्र अपने राज्य से बाहिर निकाल दूंगा ॥

तब राजा ने सब राज्य कार्य युधिष्ठर के सुपुर्द कर दिया और कहा कि आप यथेच्छा हमारे सखा और मित्र होकर रहें यदि कोई मनुष्य दुखित होकर आशीर्वाद के निमित्त आवे तो आप उस का प्रबन्ध करें इस प्रकार राजा युधिष्ठर विराट की राज सभा में स्वभाव से रहने लगा ॥

सातवां अध्याय

—:-०-:—

भीमसेन का रसोईया बन कर विराट नगर में

जाना और एक शाला का अध्यक्ष नियत हो जाना ॥

जब युधिष्ठर अपने पद पर नियत हो गया तब भीमसेन विराट के पास पहुंचा राजा उस महावली को देख कर चकित हो गया उस के आकार प्रकार तो राजाओं के थे परन्तु हाथ में मथानी और करछी पकड़ी हुई थी राजा ने पूछा कि आप कौन हैं ? भीमसेन बोला कि मैं वल्लव नाम रसोइया हुं मैं पहिले युधिष्ठर के हां नाना प्रकार के भोजन बनाया करता था मुझ को उत्तम व्यञ्जन बनाने आते हैं और फुलके अत्युत्तम पका सकता हुं इस के अतिरिक्त मैं बड़ा भारी मल्ल हुं और हाथियों और सिंहों से लड़ कर उन को परास्त कर सकता हुं और आप को अत्युत्तम कौतक दिखा सकता हुं ॥

विराट बोला कि बहुत श्रेष्ठ यदि आप की इच्छा ऐसी ही है तो मैं आप को पाकशाला का अध्यक्ष नियत करता हुं परन्तु निश्चय आप राज्य के योग्य हैं ॥

तब भीमसेन आज्ञा पाकर रसोईया बन कर अपना काम करने लगा और थोड़े ही काल में विराठ का बड़ा प्यारा हो गया ॥

आठवां अध्याय

—:-०-:—

द्रौपदी का सैरन्ध्री का रूप धारण कर के

विराट नगर में जाना और राजा विराट की पटरानी की दासी होकर रहना

जब द्रौपदी ने अपने बालों को इकट्ठा करके वेणी बनाई और सिर पर दहिने हाथ की ओर बांध दिये और मालन वस्त्र धारण करके सैरन्ध्री रूप से नगर में प्रविष्ट हुई, उस की शोभा देख कर सब नगर निवासी चकित से होगये जब वह राज भवन के पास से निकली तो विराट की पटरानी ने उसे देख कर बुला लिया और पूछने लगी कि तुम कौन हो? द्रौपदी बोली कि मैं सैरन्ध्री हूं, यदि कोई मुझ को इस काम पर नियत करे, तो मैं स्त्रियों का उत्तम शृंगार कर सकती हूं, उन के बालों को सुंदर बना सकती हूं ॥

रानी बोली कि तूं अत्यन्त सुन्दर रूप वाली है, और यद्यपि तू मैले कुचैले वस्त्र धारण कर रही है, तथापि तुम्हारे आचरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुई २ हो और तुम्हारा सैरन्ध्री रूप सर्वथा मिथ्या है, द्रौपदी बोली कि, हे देवी। मैं वास्तव में सैरन्ध्री हूं। और मैंने आयु भर यही काम किया है, परन्तु मैं सदैव ‘निवासों में रही हूं। इतर स्त्रियों का काम कभी नहीं किया, न किसी अल्प सामर्थ्य स्त्री के हां कभी नौकरी की है, पहिले तो मैं श्रीकृष्णचन्द्र की पटरानी श्रीमती सत्यभामा की सैरन्ध्री थी और तत्पश्चात् युधिष्ठर की महारानी द्रौपदी की सैरन्ध्री बनी, उसी द्रौपदी के बालों को सजाकर और उसके लिये सुन्दर पुष्पों की माला बनाकर मैं सारा काल उसको प्रसन्न करती रही ॥

इन महानुभाव स्त्रियों के पास रहने के कारण मेरे भाव उच्च और मेरा आचरण भी वैसा ही हो गया, मुझ में यह विशेष गुण है कि मैं किसी के पांव नहीं धुलाती, न किसी का जूठा अन्न खाती हूं मैं आप मानुष्यी हू परन्तु मेरे पति गन्धर्व हैं।

विराट की रानी सुदेष्णा यह सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और द्रौपदी से कहने लगी, कि मैं तुम को सदैव अपने पास रखना चाहती हूं, परन्तु मुझे यह डर है कि ऐसा न हो किसी दिन राजा तुम्हारे रूप यौवन पर मोहित होकर मुझ को छोड़ दे और तुम को अपनी पटरानी बनाले, तुम्हारे जैसी सुन्दर आकृती रखने वाली कोई स्त्री हमारे सारे रनिवास में नहीं है ॥

यह सुन कर द्रौपदी बोली कि यह हो नहीं सकता पांच गन्धर्व मेरे वश में हैं वह मेरे पति हैं और गुप्त रूप से मेरी रक्षा करते हैं उन के अतिरिक्त कोई मनुष्य मेरी चाहना नहीं कर सकता और न मुझे कोई अङ्गीकार ही है यदि कोई अन्य पुरुष मेरी ओर कुदृष्टि से देखे तो वह गन्धर्व उस का सत्यानाश कर सकते हैं, इस लिये मेरी ओर से यह चिंता छोड़ दो हां यह बात आवश्य है कि जो कोई मुझ से पांव धुलाये गा और मुझे जूठा अन्न देगा तो वह गंधर्व उस को अवश्य दण्ड देंगे ॥

यही मर्यादा मेरी महारानी द्रौपदी के साथ भी थी और मैं उस की ऐसी प्रिय थी कि उस ने मेरा नाम मालिती रखा हुआ था। सो इस लिये हे देवी! तू मुझ से निशङ्क हो जा ॥

तब सुदेष्णा बोली कि बहुत अच्छा, यदि तुम सत्य कहती हो, तो निर्भय होकर मेरे पास रहो और मेरी सैरन्ध्री बनो, न कोई तुम से पैर धुलायेगा और न तुम को जूठा खिलाएगा ॥

यह सुन कर द्रौपदी रनिवास में रहने लगी ॥

दसवां अध्याय

—:०:—

सहदेव का विराट नगर में जाना और राजा का गोसंरक्षक नियत होना ॥

तब सहदेव राजा विराट के पास गया और राज सभा में जा कर कहने लगा कि महाराज मुझ को वृत्ति दो। राजा बोला कि तुम कौन हो और कहां से आये हो? तुम को कौनसी विद्या आती है और तुम हम को कैसे उपयोगी हो सक्ते हो?

सहदेव बोला कि महाराज मैं अरिष्टनेम नाम बनियां हूं मैं कुरुदेश से आया हूं मुझ को गोविद्या में अत्यन्त प्रवीणता है मैं पहिले धर्मराज युधिष्ठिर के हां गोसंरक्षक था, उस के सब पशु मेरी संभाल में थे और मैं ही उन के रोगों की चिकित्सा भी करता था इस के अतिरिक्त मुझ को सब प्रकार के बैलों का पालन पोषण करना भी आता है और उन बैलों को भी पहिचानता हूं जिन के मूत्र को सूंघ कर बन्ध्या स्त्री के हां संतान उत्पन्न हो सक्ती है ॥

तब विराट बोला कि तुम्हारा आकार और रूप ता यह बताते हैं कि तुम ब्राह्मण अथवा क्षत्रि हो बनिया नहीं तुम यह बताओ कि यहा तुम्हारा कैसे आना हुआ, सहदेव बोला कि हे राजन्, पाण्डव राज्य से भ्रष्ट होकर बनो को चले गए और ज्ञान नहीं कि किस स्थान पर वास करते हैं वृत्ति करना तो मनुष्य देह का परम धर्म है, इस लिये मैं आप की सेवा में आया हुं मैं निस्संदेह बनिया हुं और मेरा नाम मतंतपाल है ॥

राजा ने कहा बहुत अच्छा तुम मेरे पशुओं की पालना करो, मैं सब गायों को तुम्हारे आधीन कर देता हुं, यह आज्ञा पाकर सहदेव विराट नगर में रहने लगा और राजा के गौ पशुओं को पालने लगा ॥

ग्यारवां अध्याय

—:-o-:—

अर्जुन का शखंड रूप धारण करके राजा विराट के पास जाना और राजा का उस की परीक्षा करके अपनी बेटी को नाचना और गाना सिखाने के लिये नियत करना ॥

तब अर्जुन निपुंसक रूप बना कर हाथों में कड़े और

कानों में बाली पहिन कर और बालों को पीछे बिखेर कर राजा विराट की सभा में गया ॥

राजा ने उस के रूप और प्रभाव को उस के वेष के विपरीत पाकर पूछा कि यह कौन है ? मन्त्रियों ने पूछा कि हम इस को पहिले से नहीं जानते पूछने पर पता लगेगा तब राजा ने उस को अपने पास बुलाया और पूछा कि तुम ऐसे शूरबीर और योद्धा प्रतीत होते हो तुम ने यह स्त्रियों का सा रूप क्यों धारण कर छोड़ा है बताओ कि तुम कौन हो और किस कारण इस नगर में आए हो ॥

अर्जुन बोला कि मेरा नाम बृहन्नला है मैं नपुंसक हूं गाना बजाना और नाचना मेरा काम है और इसी से वृती करता हूं आप का नाम मैं ने दया धर्म में कुशल सुना इस लिये मैं आप के पास जीविका के हेतु आया हूं यदि मुझ पर दया हो तो मेरे योग्य पद पर मुझे नियुक्त किया जाय आशा है कि मैं आप को सब प्रकार से प्रसन्न रखा करूंगा ॥

राजा सुन कर आश्चर्य हुआ और मन्त्रियों सहित उस का गाना सुनने लगा, तब उस से प्रसन्न होकर अपने रनिवास में जाने की आज्ञा दी और कहा कि मेरी लड़की को गाना बजाना और नाचना भली प्रकार से सिखा दो, अर्जुन ने कहा कि बहुत अच्छा तब से अर्जुन राजा के अन्तः पुर में रहिने लगा और राज पुत्री को गाना बजाना और नाचना सिखाने लगा, रनिवास की सब स्त्रियां उस से प्रेम करने लगी और वह उन के मध्य में सुख पूर्वक वास करने लगा ॥

बारहवां अध्याय

—:०—

नकुल का विराट नगर में जाना और राजा के घोड़ों की सेवा में नियुक्त होना ॥

तब नकुल राजा विराट की सभा में गया और राजा से विनय पूर्वक मिला राजा ने पूछा कि आप कौन हैं ? और इस स्थान पर कैसे आये हैं, नकुल बोला कि मैं महाराज युधिष्ठर का समत अश्व विद्या में चतुर हुं घोड़ों को रोगों से रहित करना मुझ को आता है मैं दुष्ट घोड़ों को निर्दोष और वेग हीनों को वेगवान कर सकता हुं और उन के रोगों की भली प्रकार से चिकित्सा कर सकता हुं, मुझ से शिक्षा पाये हुए घोड़े कभी नहीं डरते, न दुष्ट होते हैं, युधिष्ठर प्यार से मुझ को ग्रंथिक कहा करता था और आज तक लोग मुझ को उसी नाम से पुकारते हैं ॥

यह सुन कर विराट ने कहा कि आप मेरे घोड़े और वाहिनों को लीजिये और सब की यथोचित प्रकार से रक्षा कीजिए ॥

मैंने आज तक तुझ को नहीं देखा था, तुझ को पाकर मैं समझता हुं, कि मैंने युधिष्ठर का दर्शन कर लिया न जाने वह भद्र पुरुष राज्य और सेवकों से रहित होकर क्या २ दुख भोगते हैं, यह सुन कर नकुल उस राजा विराट के हां

नौकर होगया और अश्वशाला में घोड़ों को भली प्रकार से उत्तम शिक्षा देने लगा ॥

तेरहवां अध्याय

—:-०-:—

भीमसेन का बाहु युद्ध में अनेक मल्लों को मार कर विराट राज को प्रसन्न करना और हाथी, सिंह और व्याघ्र से युद्ध करना ॥

इस प्रकार सब पांडव आनन्द पूर्वक उस विराट नगर में रहने लगे, अवसर पाकर एक दूसरे को मिलते और जो धन एक दूसरे को किसी प्रकार से प्राप्त होता आपस में बांट कर खाते पाते, द्रौपदी को भी जो सैरन्ध्री रूप से महलों में रहा करती थी बराबर देखते रहते, राजा उन की सेवा से बड़ा प्रसन्न रहता और नगर के लोग भी बड़े आदर सत्कार से उन के साथ वर्ताव करते ॥

इस प्रकार रहते २ जब चार मास हो गए, तब विराट राजा के हां एक भारी ब्रह्मोत्सव आया, नगर के लोग बड़े आनन्द पूर्व उस में हिस्सा लेगे दूर २ से मल्ल राजा को अपना युद्ध दिखाने को आये, कई दिन तक बाहु युद्ध होता रहा, फिर एक जीमूत नाम मल्ल सर्वोत्कृष्ट निकला,

उस ने सब मल्लों को पिछाड़ दिया और सब को मार कर भूमि पर गिरा दिया ॥

तब उस ने नगर में घोषना आरम्भ की कि यदि कोई बलवान मल्ल हो तो मेरे सामने आए मैं उस को बाहु युद्ध में जीतूंगा जब कोई मनुष्य जीमूत से लड़ने को साहस न कर सका तब राजा ने अपने रसोइये वल्लव को बुलाया और कहा कि हम तुम्हारा पराक्रम देखना चाहते हैं यदि तुम जीमूत को पिछाड़ दो तो तुम को बहुत सा धन पारितोषक में दूंगा ॥

भीमसेन बोला कि बहुत अच्छा मैं युद्ध करने को प्रस्तुत हूं तब भीमसेन ने जीमूत की घोषना का उत्तर दिया और कच्छा बांध कर रङ्ग भूमि में आया पहिले तो एक दो घण्टे कई प्रकार के दाव पेच होते रहे जिन को देख कर लोग बड़े प्रसन्न हुए तत्पश्चात् एक झपटा मार कर भीमसेन ने जीमूत को गिरा दिया और ऐसा रगड़ा कि उस के प्राण निकल गए तब तो भीम की बड़ी प्रशंसा हुई विराट बड़ा प्रसन्न हुआ और उस ने प्रतिज्ञा किया हुआ पारितोषक तत्क्षण ही भीमसेन को दे दिया ॥

इस के पश्चात् भीमसेन का और कई मल्लों से युद्ध हुआ तो सब के सब उस के पराक्रम से वशी भूत हुए तब राजा ने हाथियों और सिंहों से उसे लड़ाया परन्तु भीम ने सब को मार कर भूमि पर गिरा दिया ॥

तब राजा भीमसेन बड़ा प्रसन्न हुआ, और युधिष्ठिर अर्जुन नकुल और सहदेव भी अपने २ स्थान पर उसकी प्रसन्नता पान लगे॥

चौदवां अध्याय

—:०:—

कीचक का कामासक्त हो कर द्रौपदी से बात चीत करना। द्रौपदी का उसको समझाना कि अधर्म पथ पर चलने से तू नष्ट हो जायगा॥

जब पाण्डवों को गुप्त वास करते २ दश मास हो गये, तब देवयोग से एक बार विराट के सेना पति कीचक ने द्रौपदी को महलों में देखा। उसको देखकर और उसके रूप और सुन्दरता पर मोहित हो कर यह वह सोचने लगा कि यह देवी रूप स्त्री सैरन्ध्री का काम क्यों करती है, यह काम इसके रूप यौवन के सवर्था अयोग्य ह। यह देवी रूप स्त्री राजभवन के योग्य है, यदि यह मुझ को मिल जाय तो मैं इसको अपनी रानी बनाऊं॥

यह विचार कर वह सुदेष्णा के पास गया और कहने लगा कि हे देवी' यह कौन स्त्री है जो आप के हां सैरन्ध्री का काम करती है? यह किसकी भार्य्या है? और किस देश से आई है, क्या इस के सौन्दर्य्य और सुकुमारता के

अनुरूप और कोई काम नहीं कि इस को इस नीच वृत्ती में लगा रखा है ? यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं इस से दो चार बातें कर लूंगा ॥

सुदेष्णा बोली कि बहुत अच्छा तुम उस से बात चीत करलो, तब कीचक द्रौपदी के पास आया और कहने लगा कि हे सुंदरी ! तुम कहां की रहने वाली हो और किस की स्त्री हो ? तुम्हारा सौन्दर्य और रूप देवताओं के समान है परन्तु तुम्हारी वृत्ति बहुत घृणा युक्त है, तुम अपने गुणों के सदृश क्यों नहीं व्यवहार करतीं, तुम राज भवन के योग्य प्रतीत होती हो, तुम्हारे समान रूप यौवन में कुशल स्त्री मैंने आज तक कोई नहीं देखी, यदि तुम मेरी बात मानो तो मेरे भवन में प्रवेश करो और मेरी परम प्यारी रानी हो कर रहो, मैं ही वास्तव में इस राज्य का स्वामी हूं, यदि तुम मेरा कहा मानोगी तो संसार के सब भोग सहज ही तुम को प्राप्त होंगे ॥

द्रौपदी बोली कि हे कीचक ! मैं परदेसन स्त्री हूं । अपने पति को छोड़ कर मैंने भूल कर भी किसी मनुष्य का कभी चिन्तन नहीं किया, यद्यपि निर्धन हूं तो भी मैं अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को अपना पति नहीं बना सकती । तुम मूर्ख हो तुम्हारी बुद्धि काम वश होकर हरी गई है । तुम इस समय धर्म और अधर्म का भेद भूल गये हो । तुम नहीं जानते कि कौनसा शुभ कर्म है, और कौनसा निन्दनीय । इस लिये अपनी

मूर्खता को छोड़ कर मेरा विचार सर्वथा भुला दो और अपने घर में जाकर अपनी पति व्रता स्त्रियों से प्रीति रखो ॥

कीचक बोला कि सैरध्री तुम मुझ को मूर्ख प्रतीत होती हो। तुम को अपना हित अहित कुछ प्रतीत नहीं है। यदि तू मेरा कहा न मानेगी, तो अवश्य ही पछतायगी ॥

द्रौपदी बोली कि कीचक! पांच गन्धर्व सदा मेरी रक्षा करते है, यदि उन्हों ने यह बात सुनली तो तुम को तुरन्त ही नष्ट कर देंगे। उन से मारा हुआ न तू स्वर्ग में जासकेगा न पाताल में और न कोई बन्धु और मित्र ही तेरी सहायता कर सकेगा। इस लिये तुम समझ जाओ और मेरी ओर कुदृष्टि से मत देखो ॥

पन्दरवां अध्याय

—:-०-:—

कीचक का सुदेष्णा से कहना कि कोई उपाय सोचो जिससे सैरंध्री मेरे वश में आजावे सुदेष्णा का उपाय बताना और द्रौपदी को उसके घर भेजना ॥

तब कीचक अपनी बहिन सुदेष्णा के पास गया और कहने लगा कि बहिन कोई ऐसा उपाय सोचो जिससे यह

सैरन्ध्री मेरे वश में आजाय । सुदेष्णा बोली कि तुम मेरा निमन्त्रण करो, मैं इसको तुम्हारे पास एकान्त भेजूंगी । वहां इस से तुम इच्छानुसार बातें करना ॥

२६ सुन कर कीचक अपने घर को आया और थोड़े काल के पश्चात् अपनी बहिन सुदेष्णा को न्योता कहा ॥

तब सुदेष्णा द्रौपदी को बुला कर कहने लगी कि हे सैरन्ध्री जाओ कीचक के घर से सुरा ले आओ] मुझ को बहुत प्यास लगी है द्रौपदी बोली कि हे महारानी मैं उस दुराचारी के घर में जाना उचित नहीं समझती उस ने मेरा अपमान किया था और अब यदि मैं उस के घर में गई तो निस्संदेह वह मेरा अपमान करेगा इस से आप किसी और दासी को भेज दीजिये मैं कदापि नहीं जाऊंगी ॥

सुदेष्णा बोली कि नहीं कीचक कभी ऐसा नहीं करेगा लो यह मेरा स्वर्ण पात्र ले जाओ इस को देख कर वह तुम को कुछ नहीं कहेगा ॥

द्रौपदी बिलकुल जाना नहीं चाहती थी परन्तु सुदेष्णा उस के सिवाय और किसी को भेजती ही न थी द्रौपदी उस की आज्ञा को उल्लंघन भी नहीं कर सकती थी अन्त को रोती हुई बर्तन लेकर चल पड़ी और बहुत देर तक उस ने सूर्य की स्तुति की और कहा कि हे देवों के देव मेरी रक्षा करो प्रार्थना के पश्चात् वह कीचक के घर को गई कीचक द्रौपदी को आते हुए देख कर उठ खड़ा हुआ ॥

सोलवां अध्याय

—:-०-:—

द्रौपदी का कीचक के पास जाना, कीचक का उस को दूषित करने की चेष्ठा करना, द्रौपदी का वहां से भाग कर राज सभा में जाना और राजा से अपनी प्रार्थना करना ॥

तब द्रौपदी ने कीचक को कहा कि रानी ने मुझे यह पात्र दिया है और कहा है कि मेरे लिये सुरा लाओ मुझ को बहुत प्यास लगी हुई है कीचक बोला कि हे सुन्दरी मैं तो चिर काल से तुम्हारी प्रतीक्षा करता था आओ बैठो और दासियें रानी के लिये सुरा ले जायेंगी तुम चिन्ता मत करो यह कह कर उस ने द्रौपदी का हाथ पकड़ लिया तब द्रौपदी ने उस को ऐसा धक्का दिया कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥

द्रौपदी वहां से लौटने लगी कि कीचक उठा और द्रौपदी का पलढ़ा पकड़ लिया द्रौपदी ने साहस से पलड़ा छुड़ाया और राज सभा की ओर भागती हुई आई कीचक भी उस के पीछे ही दौड़ा वह विचारी अभी राज सभा के अन्दर न आने पाई थी कि कीचक ने आकर उस को एक दो लातें मारीं ॥

तब तो द्रौपदी बहुत रोई और चिल्लाई और राजा के पास जाकर कहने लगी कि विराट कीचक से तुम्हारा वर्तांत राजाओं के समान नहीं है, देखो तुम्हारे देखते हुए उसने मुझ बिचारी अबला को लातें मारी हैं। सभासदो कीचक के दुष्टपन को देखो॥ राजा समेत तुम लोग सभा में बैठे हुए शोभा नहीं देते। क्या यही तुम्हारी न्याय प्रणाली है। कि एक निरपराधनी दुःखिया स्त्री बिना पाप किये तुम्हारी आखों के सामने इस प्रकार पिट जाये? तुम लोग एक निरपराधिनी स्त्री का अपमान देख कर शोभा नहीं पाते॥

हाय कहा है वह धर्मवीर जो शरणार्थी शरणागतों की सदा रक्षा करते थे? आज अपनी पतिव्रता भार्या की यह दशा देख कर लज्जित नहीं होते। हाय वह मुझ सती को इस दुरात्मा के हाथ से ताड़ित देख कर क्यों चुप हो रहे हैं॥

भीमसेन को बहुत क्रोध आया और वह चाहता था कि कीचक को पकड़ कर मरोड़ डाले, परन्तु युधिष्ठर बोला कि रसोईये जाओ इन्धन के लिये वनसे लकड़ी लेजाओ, और यहां मत खड़े हो॥

विराट द्रौपदी को कहने लगा कि तुम्हारा विवाद परोक्ष में हुआ है, इस लिये मैं उसके विषय में क्या जान सकता हूं। सभासद बोले कि वास्तव में कीचक बड़ा कुकर्मी है। उसने इस बिचारी पर बड़ा अत्याचार किया है॥

तब युधिष्ठर ने कहा कि हे सैरन्ध्री जाओ शान्ति पूर्वक रनिवास में जाओ, तेरे गन्धर्व पति समय रोप करना उचित नहीं समझते, जो स्त्रियें पति की सेवा करने वाली हैं उन को क्लेश मिलता है और उसी से उन को पति लोक मिलता है हे सैरन्ध्री तू काल को नहीं जानती है जाओ सुदेष्णा के पास जाओ, गन्धर्व तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥

यह सुन कर द्रौपदी बोली कि मैं उन दयावानों के लिए बड़ा धर्म कर रही हूं, इस से जो २ अपराधी हैं वह सब उन के हाथ से वध्य हैं और उन में सब से बड़ा वह है जो अक्ष विद्या का ज्ञाता है ॥

यह कह कर रोती हुई द्रौपदी राज भवन की ओर भाग आई, सुदेष्णा सुन कर बोली कि कीचक बड़ा दुष्ट है जिस ने काम वश होकर तुझ तपस्विनी का निरादर किया है, कहो तो इस को मरवा डालूं ॥

द्रौपदी बोली कि यह आप ही मारा जायगा, जिन का उसने अपमान किया है, वह महा पराक्रमी अवश्य ही उस से बदला लेंगे ॥

सतारहवां अध्याय

—:०:—

द्रौपदी का रात को भीमसेन के पास जाना

और उस को जगा कर अपने दुख का बृत्तांत कहना ॥

जब रात हुई तो द्रौपदी को नींद कहां ? सब के सो जाने पर वह भीमसेन के पास गई और उस को सोते हुए को जाग्रत किया, भीम बोला कि द्रौपदी तू इस समय किस लिये आई है ?

द्रौपदी बोली कि तुम जीते नहीं मर गए हो, मैं तुम को रोने आई हूं, जीते मनुष्य अपनी स्त्री का निरादर किसी दूसरे पुरुष से नहीं देख सकते, युधिष्ठर तो हो चुका, जुये ने उसका राज्य धन लक्ष्मी तो खोई थी, परंतु अब प्रतिष्ठा का भाव भी खो दिया ॥

देखो उस के बैठे हुए कीचक ने मुझे लात मारी परन्तु युधिष्ठर ने चूं तक न की इस से बढ़ कर क्लैव्य और क्या हो सकता है धन्य मैं हूं जो अब तक जीती हूं दुःशासन ने जिस प्रकार मेरा अपमान किया था वह तुम सब को ज्ञात ही है जयद्रथ की दुष्टता अभी मुझे भूली न थी कि कीचक ने मेरा बहुत भारी निरादर किया है ॥

जिन स्त्रियों के पति होते हैं किस की सामर्थ है कि कोई उन की ओर कुदृष्टि से देख सके ? क्या मैं झूठ कहती हूं कि तुम जीते ही मर गए हो ॥

हे भीमसेन मैं तुम्हारे पास इस लिये आई हूं कि जब

तक तुम कीचक को मार कर मेरे अपमान का बदला न लोगे मेरा जाना उचित नहीं ॥

भीमसेन बोला कि हे द्रौपदी मुझे अपना वृत्तांत सुनाओ और शान्ति रखो कि जब तक मैं जीता हूं तुम्हारे अपमान का बदला लिया जायगा ॥

आठारवां अध्याय

—:o:—

द्रौपदी का अपने मानसी क्लेशों को वर्णन करना ॥

द्रौपदी बोली कि हे भीमसेन! मुझ को और भी बहुत से दुःख हैं। देखो तुम कैसे पराक्रमी हो और क्षत्रिय धर्म को भली प्रकार जानने वाले हो। परन्तु इस समय नृप को सब लोग रसोईया ही समझते हैं! इस बात से मुझ को बड़ा क्लेश होता है॥

जब तुम को स्त्रियों के बीच में सिंहों से और हाथियों से लड़वाते हैं। और स्त्रियें देखकर हंसती हैं तो मुझ को बहुत दुःख होता है, उस समय मुझ को दुःखी देखकर सुदेष्णा कहती है कि तुम्हारी प्रीति इस रसोईये से प्रतीत होती है। इस प्रकार के वचन सुन कर मैं अत्यन्त दुःख को प्राप्त होती हूं॥

देखो अर्जुन ने एक रथ से सब मनुष्य और देवता जीते

थे अब वही अर्जुन विराट की कन्याओं को नाचना और गाना सिखा रहा है और आप उन के सामने नाचता है उस के करीठ तो दिखाई नहीं देता परन्तु बालों की बेणी स्त्रियों के तुल्य अवश्य है, जब वह स्त्रियों और कन्याओं के बीच में नृत्य करता है और चारों ओर कन्याओं से आवृत होजाता है तो उस को देख कर मेरे मन को बड़ा शोक होता है॥

वह अर्जुन जिस के चलने से पृथ्वी कांपती थी और जिस के उत्पन्न होने पर कुंति का सब शोक जाता रहा था वह इस समय स्त्रियों का सा शृंगार किये हुए है, हाथों में गजरे और कानों में कुंडल पहिने हुए, नपुंसक सा बन कर बिलकुल निस्तेज जान पड़ता है, पृथ्वी पर उस के समान दूसरा कोई धनुष्य धारी नहीं और वह धर्म शूरता और सत्य में जीव लोक का सम्मत है, परंतु उस को स्त्री रूप में देख कर मेरे मन में बड़ी चिंता उत्पन्न होती है॥

इसी प्रकार नकुल और सहदेव को देखो, उन के यह कर्म अपने जाति धर्म के विपरीत हैं, मेरी सास ने बन को आते समय मुझ से बार २ कहा था कि सहदेव का तुम आप ध्यान रखा करो, यह बड़ा लज्जावान है इस को आप भोजन कराया करो, उस सहेदव को गौओं का व्योपार करते और गो चर्म पर सोते देख कर मुझे बड़ा दुःख होता है॥

शोक है कि आप के जीते हुए मुझे यह दुख बाधा करें॥

उन्नीसवां अध्याय

—:-०-:—

द्रौपदी का भीमसेन को अपने अनेक दुःख बतलाना और कहना कि यदि तुम कीचक को न मारोगे तो मैं विष खा लूं गी ॥

यह कह कर द्रौपदी बहुत रोने लगी और कहने लगी कि भीमसेन देखो यह मेरे कोमल हाथ हैं, मैंने इन से कभी कोई कष्ट काम नहीं किया था, अब मैं इन से चन्दन रगड़ती हूं राजा को मेरा चंदन त्यार किया हुआ ही अच्छा लगता है और मैं ही इस काम पर नियुक्त हुं देखो मेरे हाथ इस पर कैसी गांठ पड़ गई है कभी तुम ने मेरे हाथों का यह हाल देखा था मैंने बन में भी बहुत कष्ट उठाये थे परन्तु इस समय की जो मेरी दशा है, उस को वाणी से वर्णन करना असंभव है, मैं जानती हुं कि दुख सुख मनुष्यों को परारब्ध वश होते हैं और यह अनित्य हैं, इस लिये मैं भी अपने अभ्युदय की बाट देख रही हुं क्योंकि जिस पुरुष को दैव विपरीत होने के कारण से दुख प्राप्त होते हैं, दैव के अनुकूल होने पर उस को ही सुख मिलेगा ॥

मैं राजा द्रुपद की बेटी और पांडवों की पटरानी इस दुखी अवस्था को मेरे अतिरिक्त कौन सी स्त्री सहार सकती है, मुझे पुत्रों और पतियों के होते हुए यह संताप मिल

रहे हैं, इस से निश्चय मैंने कोई बड़ा अपराध किया है, एक समय तो सारी पृथ्वी मेरे वश में थी अब मैं सुदेष्णा के पीछे चलती हुं और उस के लिए चंदन घिसती हुं मैंने सिवाय आर्या कुंति के और किसी की यह सेवा कभी नहीं की थी ॥

यह कह कर द्रौपदी ने अपने चिन्हित हाथ भीमसेन को दिखाये और फूट २ कर रोने लगी। और कहने लगी कि हे भीमसेन इस प्रकार से दुःख सहती हुई मुझ को कीचक ने बहुत दुःख दिया है यदि तुम चाहते हो कि मैं जीती रहूं तो निस्सन्देह इस दुष्ट को मारो, यदि ऐसा न करोगे तो मैं विष खा कर अवश्य मर जाऊंगी ॥

भीमसेन द्रौपदी के दोनों हाथ पकड़ कर रोने लगा और महा दुःखी होकर कहने लगा ॥

बीसवां अध्याय

—:o:—

भीमसेन का द्रौपदी को समझाना, और द्रौपदी का उत्तर देना, भीमसेन का उसको धैर्य देना ॥

भीमसेन बोला कि हे द्रौपदी मेरे महा बल को और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है कि हमारे जीते हुए तेरी यह दशा हो। विराट की सभा में क्या है? यदि हम

चाहें तो एक क्षण में भस्म कर सक्ते हैं। मेरा मन तो उसी समय तेरा निरादर देख कर कीचक को वध करने का था, परन्तु युधिष्ठर ने मुझ को कटाक्ष से निवारण किया। सो हे सुन्दरी इस प्रकार के कटु वचन मत बोलो, क्रोध को छोड़ दो दैवाधीन हम लोग इस नरक को भोगते हैं ॥

यदि तुम्हारे यह कठोर वचन महाराज युधिष्ठर सुनें तो निस्संदेह प्राण त्याग दें अर्जुन और सहदेव भी तत्काल ही मर जायें तुम को सीता का वृत्तांत याद है उस कुल वति धर्मज्ञा देवी ने कितने कष्ट सहे थे सावित्री की कथा तुम सुन चुकी हो वह पति के पीछे यम लोक को गई थी सुकन्या ने अपने बूढ़े पति च्यवन की सेवा की और इन्द्र सेना और लोपामुद्रा भी इसी प्रकार जगत में विख्यात हुई हैं तुम्हारे भी गुण ऐसे ही हैं अब केवल डेढ़ मास हमारे दुःख में और शेष हैं इस के पीछे तुम राजा की पटराणी बनोगी तुम को इस समय में शोच करना उचित नहीं है ॥

तब द्रौपदी बोली कि हे भीमसेन मेरे मन में बहुत क्लेश के कारण खटक रहे थे इस से मैं ने यह शब्द कहे थे मेरा भाव राजा युधिष्ठर की निन्दा करने का नहीं है अच्छा अब पिछली बात को जाने दो तुम को कीचक का हाल विदित ही है वास्तव वह है कि सुदेष्णा डरती है कि कहीं राजा सैरन्ध्री को न चाहने लगे और उस का निरादर करे इस लिए वह चाहती है कि कीचक मुझ को अपने घर ले जाए ॥

सुदेष्णा के इस अभिप्राय को कीचक जानता है इसी से वह मुझ को चाहता है मैं ने उस को यह भी कहा था कि पांच गन्धर्व मेरी रक्षा करते हैं यदि तुम मुझ से कोई अनुचित व्यवहार करोगे तो वह तुम को क्रोध वश हो कर मार डालेंगे परन्तु उस ने कहा कि मैं सब गन्धर्वों से पराक्रम में अधिक हूं मैं उन से नहीं डरता ॥

मैंने कहा कि हमारे कुल का धर्म है कि शीलवान हों इस से मैं तुम्हारा वध नहीं चाहती हुं, इस को सुन कर कीचक बहुत हंसा, इस के पश्चात् जो कुछ हुआ वह आप सब को विदित है, मैं जानती हूं कि अभिमानी, परस्त्री गामी दुष्टात्मा को यदि कुछ दण्ड न मिला तो नित्य ही मुझ को दुख देगा और चूंकि मैं उस का कहना नहीं मानती इस लिए निराश होकर मुझ को मार डालेगा और आप जैसे मर्यादा रक्षकों की भार्या मर जायगी ॥

भार्या के रक्षित होने पर प्रजा की रक्षा होती है और प्रजा के रक्षित होने पर आत्मा की रक्षा होती है, ज्ञानी लोग इसी लिये स्त्री को जाया कहते हैं, क्योंकि मनुष्य उस से अपना आत्मा उत्पन्न करता है, आप ने यह बात जान कर पहिले मेरी रक्षा की है, परंतु अब कीचक का मुझे अत्यंत भय है, उस को अवश्य मार कर मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए यदि यह सूर्य उदय तक जीता रहा तो मेरा जीना कठिन होगा मैं तुरन्त विष घोल कर पी लूंगी ॥

भीमसेन ने द्रौपदी से बहुत प्यार किया और तत्त्वार्थ बचन कह कर उस को शांत किया और कीचक के वध करने को मन में धार कर महा क्रोशित होकर द्रौपदी से कहने लगा ॥

इक्कीसवां अध्याय

—:o:—

भीमसेन को कीचक को नाच घर में मारना, और सब लोगों का उसके अमानुष कर्म को देख कर अश्चर्य्य करना

हे द्रौपदी तुम यह रात्रि तो व्यतीत करो, प्रातः काल जब कीचक तुम्हें आकर मिले और दुष्ट वचन बोले, तुमने कहना कि मैं रात्रि को तुम से इस नूतन स्थान में मिलूंगी, परन्तु इस बात का भेद किसी को न देना, ऐसा न हो कि मेरी निन्दा हो जब तुम्हारे साथ यह बात निश्चित हो चुकेगी तो मैं रात्री को जाकर उस को यमपुरी को पहुंचा दूंगा ॥

यह निश्चय करके भीमसेन और द्रौपदी ने वह रात जूं तूं कर के और परदुःखी होकर काटी । प्रातःकाल द्रौपदी राज भवन में आई । कीचक उसको देख कर बोला कि देखा, विराट की सभा में जाकर तुम ने क्या कर लिया राजा तो हमारा नाम मात्र ही है, वास्तविक राजा तो मैं हूं, जो उसका सेना

पति हूं। उसकी क्या मजाल है कि मुझ को कोई धर्षणा कर सके। तुम बड़ी भूल में हो, अब भी मेरा कहा मानलो, तो रानियों के तुल्य तुम्हारी प्रतिष्ठा हो जायगी। अनेक दास और दासी तुम्हारी सेवा करेंगे, यह भी मोहर लो इस से अपने आवश्यक वस्त्रादि बनालो ॥

द्रौपदी बोली कि हे कीचक मैं गन्धर्वों से डरती हुं, इस लिये यदि तु अपने भाई वाहिनों से इस बात का भेद न दे तो तेरा कहा मानने में कोई शंका न होगी कीचक बोला कि मुझे स्वीकार है, जहां तू कहे मैं आ सकता हुं द्रौपदी ने कहा कि वह देखो राजा ने नूतन स्थान वनाया हुआ है, दिन को यहां कन्या नाचती हैं और रात को अपने २ घरों को चली जाती हैं तुम रात को इसी स्थान में आजाओ, मैं भी आजाऊं गी यह सुन कर कीचक वहुत प्रसन्न हुआ और खुशी २ अपने स्थान कोचला गया ॥

द्रौपदी ने यह सब वृत्तांत भीमसेन को आकर सुना दिया, भीमसेन पहिले ही इसी चिन्ता में था, द्रौपदी के वचन सुन कर हर्षित हुआ और कहने लगा कि अब कोई चिन्ता मत करो मैं कीचक को इन्द्र के वृत्रासुर को मारने के समान मारूंगा यदि कोई सहायक उस की सहायता करेगा तो उस को भी अवश्य मारूंगा और दुर्योधन आदि भी आजावें तो उन के साथ भी युद्ध करके अपना राज्य जीत लूंगा युधिष्ठर को विराट की उपासना करने दो ॥

तब द्रौपदी बोली कि भीमसेन कीचक को गुप्त प्रकार से मारो ताकि किसी को प्रतीत न हो भीमसेन बोला बहुत अच्छा ऐसा ही करूंगा, तब भीमसेन मुंह पर कपड़ा लपेट नृतन गृह में जा बैठा और वहां पर पड़ी हुई शैया पर जाकर लेट गया ॥

कीचक विचारे ने बड़े कष्ट से दिन काटा था और सारा दिन इस का बनाओ शृङ्गार में ही व्यतीत हुआ था जब रात पड़ी तो वह छुटते ही नाच घर की ओर आया और अन्धेरे में ही अन्दर घुस गया और शय्या पर जाकर हाथ पाय मारने लगा भीमसेन के अङ्गों को छूकर बोला कि हे सैरन्ध्री आज से तू मेरे सर्वस्व की स्वामिनी हुई तेरे बड़े भाग्य हैं सब स्त्रीयें मुझ को अत्यन्त दर्शनीय और सुन्दर जान कर मेरी कामना किया करती हैं परन्तु प्रारब्ध से आज मैं तेरे वश में आ गया हूं ॥

भीमसेन यह सुन कर झट उठ खड़ा हुआ और बोला कि निस्संदेह यह तुम्हारी प्रारब्ध ही है तुम अपने मूंह से अपनी प्रशंसा करते हो परन्तु आज जिस हाथ से तुम्हारा स्पर्श हुआ है ऐसा पहिले कभी न मिला होगा यह कह कर उस ने कीचक के बाल पकड़ लिये और चारों ओर घुमाने लगा ॥

कीचक भी समझ गया कि अब तो लेने के देने पड़ गए परन्तु साहस करके भीमसेन से लड़ने लगा तब तो दोनों का

बड़ा भारी युद्ध हुआ कभी वह उस को धकेल देता कभी वह उस को नीचे गिरा देता अन्त को भीम का पलड़ा भारी हो गया और उस ने कीचक के वक्षस्थल में ऐसे मुक्के मारे कि वह विचारा विह्वल हो गया और भूमि पर जा पड़ा ॥

भीमसेन झट उस की छाती पर स्वार होगया और उस की दोनों जंघा और दोनों भुजा पकड़ कर उस के पेट में घुसेड़ दीं कीचक अधमुआ होकर तड़पने लगा, तब भीम ने द्रौपदी को बुलाया और कहा कि यही दुष्ट है, जो तुम्हारा निरादर करता था अब इस के प्राणों को निकलते हुए देखो ॥

तब भीम ने उस के गले को हाथ से पकड़ कर ऐसा दबाया कि उस के रहे सहे श्वास भी जाते रहे और ग्रीवा उस की लटक गई और सब अंग ढीले पड़ गए और आंखें बाहिर निकल आईं, तब भीम पाकशाला में चला आया, द्रौपदी दौड़ कर बाहिर आई और लोगों को पुकार २ कर कहने लगी कि देखो मेरे गन्धर्व पतियों ने मेरा निरादर देख कर कीचक को मार डाला है ॥

तब राज कर्मचारी बड़ी २ लालटैनें लेकर आये और देख कर बड़ा आश्चर्य करने लगे, वह महा पराक्रमी कीचक जिस का बल सारे मत्स्य देश में विख्यात था और जिस की बराबरी कोई पुरुष राज्य भर में नहीं कर सकता था भूमि पर लेटा पड़ा था, उस के भुजाओं और पेट की यह

दशा थी कि मानो किसी बड़े हाथी ने उस को बलात्कार मंथन किया है ॥

बाइसवां अध्याय

—:-०-:—

कीचक के भाईयों का द्रौपदी को पकड़ कर कीचक के साथ जलाने को लेजाना और भीमसेन का उन को मार कर द्रौपदी को छुड़ाना ॥

कीचक के भाईयों ने जब यह सुना तो रोते पीटते नाच घर में पहुंचे वहां आकर अपने बन्धु के मृतक शरीर को एक अपूर्व दशा में पाया, उस के हाथ कहीं गिरे पड़े थे शिर से मज्जा बह रही थी, आखों के गोलक बाहिर निकले हुए थे ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई बड़ा भारी कछुआ है ॥

उन्हों ने रो २ कर बहुत विलाप किया, जब दिन चढ़ा तो कई बोले कि इस ही सैरन्ध्री ने कीचक को मरवाया है क्यों न इस को भी साथ ही मार डाला जाए, दूसरे बोले कि नहीं, कीचक इस से प्रीति रखता था इस को कीचक के साथ ही दाह करदो, यह विचार सब को अच्छा लगा और

वह सब भाई विराट के पास गए और सैरन्ध्री को कीचक के साथ जलाने की आज्ञा मांगी ॥

राजा ने कहा कि यदि तुम अपने बल पर विश्वास रखते हो, तो निस्सन्देह जलादो, मेरी ओर से तुम को इस काम के लिये आज्ञा है, तब कीचक के भाईयों ने जो संख्या में १०५ थे सैरन्ध्री बिचारी को बांध लिया और कीचक की अर्थी पर बिठा कर शमशान की ओर लेचले द्रौपदी बिचारी रोने लगी और चिल्ला कर बोलने लगी कि हे जय, हे जयन्त ! हे विजय ! हे जयत्सेन ! हे जयत्बल ! मेरी रक्षा करो ! मुझ निर्दोष्णी को यह सूत पुत्र बल से लिये जाते हैं ॥

तब तो भीमसेन को बहुत क्रोध आया, उस ने एक फलांग मारी और पाकशाला की दीवार से कूद कर बाहिर आया और बोला कि हे सैरन्ध्री मैं तेरी रक्षा करता हूं, जब वह सूत पुत्र अर्थि लेकर बाहिर निकले और शहर से बाहिर हुए, तो भीम ने एक मोटा सा वृक्ष तोड़ कर कंधे पर धर लिया और उन की ओर दौड़ा ॥

कीचक भाई बहुत डर गए और कहने लगे कि देखो वह गंधर्व आया, सैरंध्री को इसी क्षण छोड़ दो, तब भीमसेन ने उन भागते हुओं को उसी तोड़े हुए वृक्ष से मार २ कर ऐसा गिराया कि वह सब के सब फिर उठ न सके यह देख कर नगर के निवासी पुरुष स्त्री बड़े आश्चर्य में होगए ॥

तेईसवां अध्याय

—:०:—

लोगों का कीचक और उसके भाईयों के वध का बृतान्त विराट से कहना, विराट का भय भीत होजाना और आज्ञा देना कि द्रौपदी तुरन्त यहां से चली जाय परन्तु द्रौपदी का प्रार्थना करना कि मुझ को १३ दिन और रहने दीजिये ॥

नगर के लोग इस अपूर्व दृश्य को देख कर तुरन्त राजा के पास आये और कहने लगे कि महाराज ! सब सूत गन्धर्वों ने मार डाले। जब से यह सैरन्ध्री इस नगर में आई है, बड़ा उपद्रव होरहा है। और आश्चर्य नहीं कि और कोई आपत्ति आप के नगर पर आवे सैरन्ध्री रूपवान है और मनुष्य बहुधा कामी होते हैं, कदाचित् किसी ने उसको कुदृष्टि से देखा तो गन्धर्व सारे नगर का सत्यानाश करदेंगे। बहुत अच्छा हो यदि आप आज्ञा देकर सैरन्ध्री को नगर से भेज दें ॥

राजा यह सुन कर बहुत डर गया और सुदेष्णा के पास जाकर कहने लगा कि तू सैरन्ध्री को कहदे कि यहां से इच्छानुसार चली जाय, क्योंकि उसके यहां रहने से कदाचित् कोई और आपत्ति नगर पर आजायेगी ॥

इसी अवसर में द्रौपदी भी नगर में प्रविष्ट हुई। उसको देख कर सब लोग इधर उधर भाग गये। द्रौपदी ने पाकशाला के निकट भीमसेन को देख कर कहा कि जिस गन्धर्व राज ने मुझ को अभय प्रदान दिया है, मै उसको जय हो मैं नमस्कार करती हूं। भीमसेन बोले कि उसके जो आज्ञाकारी पुरुष इस नगर में विहार करते हैं, अब से वह अनृण होकर विहार करेंगे॥

यह सुन कर द्रौपदी नाच घर को ओर गई वहां अर्जुन राज कन्या को नाचना सिखाता था द्रौपदी को देख कर सब कन्या वहिर निकल आई और उस से बातें करने लगीं, उन्हों ने कहा कि हे सैरन्ध्री तेरी प्रारब्ध अच्छी थी जो तू इस घोर आपात्ति से बच निकली सूतों का मारा जाना भी परारब्ध से ही हुआ है॥

तब बृहन्नला बोली कि सैरन्ध्री तू कैसे छूटी? सैरन्ध्री बोली हे बृहन्नला! तुझ को मेरे दुःख का क्या पता है? तू तो कन्याओं के बीच में सुख पूर्वक बसती है, तुझे सैरन्ध्री के दुःख से क्या प्रयोजन है, यह सुन कर बृहन्नला कहने लगी कि मैं नीच योनि में हूं, और तू भी मेरे दुःख को नहीं जानती मैं भी उसी समय यहां आई थी जब कि तू। तेरे दुःख को देख कर किसी को क्लेश नहीं होता? तू मेरे हृदय की बातें नहीं जान सक्ती। इस से ऐसा कहती है॥

तब द्रौपदी उन कन्याओं के समेत सुदेष्णा के पास गई उस को देख कर रानी ने उस को राजा की आज्ञा सुना दी

और कहा कि अब तू जहां इच्छा हो चली जा मनुष्य विषय को बहुत प्रिय जानते हैं परन्तु गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं इस से कदाचित् तेरे रूप को देख कर कोई मनुष्य कामासक्त हो जाय और गन्धर्वों के क्रोध से मारा जाय ॥

तब सैरन्ध्री बोली कि राजा मुझ को १३ दिन और क्षमा करें फिर गन्धर्व मुझ को अपने स्थान में ले जांयगे और आप के भी हित की बात करेंगे और राजा भी कल्याण युक्त होगा ॥

चौबीसवां अध्याय

—:-०-:—

दुर्योधन के भेजे हुए दूतों का लौट कर आना और पाण्डवों के न मिलने और कीचक के मारे जाने का सब वृत्तान्त कहना ॥

इधर दुर्योधन ने देश देशान्तर और वन वनान्तर में पाण्डवों का पता लेने के लिये दूत भेजे परन्तु उन महा वीरों का कहीं भी पता न मिला और दूतों ने लौट कर दुर्योधन से कहा कि महाराज हम ने नगर २ और ग्राम २ में पाण्डवों की खोजना की है और वन और पर्वत भी खोज ढूंडा है

परंतु उन महा पुरुषों के रहिने का कोई पता नहीं हम ने दुर्ग और विषम स्थान भी देखे और मनुष्यों से आकीर्ण देश और कटक भी देखे परन्तु हम को कहीं भी पाण्डवों का खोज न मिला ॥

तब हम को पता लगा कि पाण्डवों के रथ द्वारका को गए हैं हम वहां भी पहुंचे परन्तु खाली रथ और सूतों को छोड़ कर पांडवों को कहीं न पाया न द्रौपदी ही मिली ॥

हमारा विचार है कि वह महात्मा नष्ट हो गए हैं अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही करें हम ने यह भी सुना है कि मत्स्य देश का कीचक जिस के हाथ से त्रिगर्त देश के बहुत से योधा मारे गए थे गन्धर्वों के हाथ से अपने मनोहर भाइयों सहित मारा गया है यह सुन कर जो आप की इच्छा हो करो ॥

पच्चीसवां अध्याय

—:-०-:—

दुर्योधन का सभासदों से मन्त्र पूछना, कर्ण और दुःशासन का मन्त्र देना और द्रोणाचार्य का कहना कि पाण्डव नष्ट नहीं हो सकते ब्राह्मण उन को ढूंढें ॥

जब सभा में भीष्म, द्रोणाचार्य कृपाचार्य, कर्ण दुःशासन और त्रिगर्त देशीय योधा आदि बैठे हुए थे तब दुर्योधन ने सब से पूछा कि आप लोगों की मति अनुसार किस प्रकार यत्न करना चाहिये? साल का बहुत सा भाग तो व्यतीत हो गया और थोड़ा शेष रह गया यदि इस से पांडवों के गुप्त स्थान का पता न लगा तो वह निस्संदेह आकर राज्य हम से ले लेंगे इस से आप कोई ऐसा उपाय बतायें जिस से उन का पता लग सके ॥

तब कर्ण ने कहा कि अब ऐसे दूत भेजो जो पांडवों को जानते हों और धूत चतुर और कार्य को करने वाले हों वह गुप्त रह कर पाडवों की खोजना करें जहां बहुत मनुष्य रहते हों वहां जायें विद्वानों की सभायें और मुनियों के आश्रम देखें तीर्थ स्थान, नदी, कुंज, ग्राम, नगर, रमणीक स्थान सब ढूंढ डालें, पांडव आकाश पर चले ही नहीं गए, आशा है कि ऐसा करने पर उन का पता निकल आयेगा ॥

तब दुशासन ने कहा कि महाराज जो दूत हम से वेतन लेते हैं और हमारे विश्वास स्थान हैं उन ही को फिर भेजिए हमारी सब की सम्मति कर्ण के साथ है निदान कुछ न कुछ तो पता मिले होगा कि उन महात्माओं को क्या हुआ वह समुद्र के पार चले गए अथवा सर्पों से डसे गए अथवा महा संकट से दुखी हो कर शरीर त्याग कर गये ॥

तब द्रोणाचार्य बोले कि पांडवों का नष्ट होना संभव नहीं। वह बड़े धर्मात्मा। सत्यवादी और जितेंद्रि हैं और छोटे भाई बड़ों का कहा मानते हैं और प्रीति पूर्वक सब आज्ञाओं का पालन करते हैं, अर्जुन उन में शस्त्र विद्या में कुशल है' युधिष्ठर धर्म अर्थ और नीति के तत्व का ज्ञाता है। अवश्य वह अपने समय की बाट देखते होंगे। उनका नाश कभी नहीं हो सक्ता इस लिये आप ऐसे ब्राह्मण उनका पता लेने के लिये भेजदें जो उनको जानते हों। उन में एक अर्जुन ही ऐसा है कि देखे जाने पर भी वह मनुष्य को मोहित कर सक्ता है॥

छब्बीसवां अध्याय

—:-०-:—

भीष्म पितामहा का पाराडवों को ढूंडने के विषय में अपनी सम्मति देना॥

तब भीष्म पितामहा ने कहा कि पाण्डवों के ढूंडने की एक रीति यह है कि जहां वह रहते होंगे, उन के धर्म गुण का प्रभाव अवश्य दिखाई देगा, वहां यज्ञ और हवन नित्य होंगे, लोग अधर्म को छोड़ कर धर्म में प्रीति रखने वाले होंगे, ब्राह्मणों की वाणी में सत्या होगी, लोग धर्म परायण होकर दूसरे के गुणों में दोष न लगाने वाले होंगे॥

खेति वाड़ी वहां अच्छी होगी, वर्षा समय पर पड़ती होगी परस्पर द्रोह करने वालों का नाम न होगा, दूध, दही और घृत बहुत और रसवान होंगे लोगों के आचरण शुभ और स्वभाव यज्ञ व्रत और शुभ कर्म करने वाला होगा न वह झूठ बोलने वाले होंगे और न परस्पर द्वेष रखने वाले होंगे ॥

धर्म की कथायें और सत्संग सब लोग करते होंगे, इस लिए ब्राह्मण भी उन को पहिचानने के समर्थ न होंगे, अन्य पुरुषों का तो कहना ही क्या है, जैसा युधिष्ठिर आप सत्यवादी, दयावान, लज्जावान धैर्यवान, कीर्तिवान और सीधा है, वैसा ही उस का निवास स्थान भी होगा, इस लिए यह विचार करें जो आप की इच्छा हो सो करो ॥

सत्ताईसवां अध्याय

—:०:—

कृपाचार्य का अपना मन्त्र देना कि पांडवों का भाग उदय होगा, तुम को सेना और कोश की वृद्धि करनी उचित है ॥

यह सुन कर कृपाचार्य बोले कि भीष्म जी ने जो कुछ कहा है, वह निःसंदेह सत्य है, पांडव कोई साधारण पुरुष नहीं उन का नाश सर्वथा असंभव है। आप को उचित है कि अपने कोश और सेना की यथावत वृद्धि करें साधारण

शत्रु से भी युद्ध करना हो तो बहुत कुछ करना पड़ता है परंतु यहां तो पांडव हैं आप को उन के आने के लिए आगे से ही तैयारी करनी चाहिये, अपनी सेना को प्रस्तुत करो और अपने मित्रों से मिलो और ज्ञान करो कि कौन २ उन में आप के पक्ष पर लड़ना चाहता है और कौन २ विरोध करना चाहता हैं ॥

यदि अपनी सामर्थ देखेंगे तो लड़ाई कर लेना नहीं तो सन्धि करनी सब से श्रेष्ठ होगी. हां दूतों को अवश्य भेजो और यदि उन का पता मिल सके तो अवश्य निकालो । साम, दाम, दण्ड और भेद नीति के चार ही अङ्ग हैं, दुर्बल शत्रु को बल में करना उचित है इस से अपने मित्रों को सान्त्वन कीजिये और सेना को प्रसन्न करने का उपाय भी कीजिये, ताकि तुम्हारी जय हो ॥

अठाईसवां अध्याय

—:०:—

राजा सुशर्मा का मन्त्र देना कि पाण्डवों का विचार छोड़ दो, चलो राजा विराट देश को लूटें और उस का धन और के गौऐं पकड़ लायें ॥

इतने में त्रिगर्त देश का महारथी राजा सुशर्मा बोला कि

इन सब बातों को छोड़ो, पाण्डव कहां है ? अवश्य ही वह यम-पुरी को चले गए होंगे अब अपने राज्य को सुख पूर्वक भोगो और इस की सीमाओं को चारों ओर फैलाओ ॥

मैं ने अभी सुना है कि विराट की सेना का पति कीचक मर गया है वह दुष्टात्मा बड़ा पराक्रमी था उस ने मेरे राज्य पर कई वार आक्रमण करके मुझे बहुत पीड़ा दी थी अब मेरा विचार है कि उस के मरने से विराट का बल कुछ नहीं रहा देश की सीमा तुम्हारे राज्य के साथ लगती है सेना लेकर चलो और उस को जा दबाओ मैं भी अपनी सेना समेत तुम्हारा सहायक हूंगा उस की सुन्दर २ एक लाख गायें हैं और धान्य का तो कुछ ठिकाना ही नहीं आप के चलने से मत्स्य देश सारा का सारा आप के वश मे हो जाएगा ॥

कर्ण बोला कि सुशर्मा का परामर्श अच्छा है आप सब लोग इस पर विचार करो पाण्डवों की खोजना से अब क्या प्रयोजन है वह तो लक्ष्मी हीन और सेना हीन होकर मर गए सुशर्मा की सम्पत्ति पर काम करने से कौरवों का निश्चय प्रिय होगा यह बात उन्हों ने देश काल के अनुसार कही है आगे जैसी आप की इच्छा हो एक बात अवश्य है वह यह कि सारी सेना एक ही वार न जाए किन्तु थोड़ी २ करके भिन्न भिन्न मार्गों से जावे ॥

यह सुन कर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञादी कि तुम पिता महा और आचार्य इस बात का मन्त्र कर के शीघ्र सेना प्रस्तुत करो, त्रिगर्त नरेश सुशर्मा अपनी सेना को लेकर पहिले जाये और दूसरे दिन हमारी सेना अन्य मार्ग से जाये ॥

इस प्रकार मन्त्र करके कौरव और त्रिगर्त देशीय लोभ वश होकर मत्स्य देश को सेना लेगये, सुशर्मा तो कृष्ण पक्ष की सप्तमी को एक ओर से गिया और दुर्योधन अष्टमी को दूसरी ओर से गये। उन्हों ने आते ही राजा विराट की सहस्त्रों गाएँ पकड़ ली ॥

उनतीसवां अध्याय

—:०:—

राजा विराट का पाण्डवों सहित बड़ी सेना लेकर गौओं की खोज में बाहिर निकलना ॥

इस समय पाण्डवों के तेरह वर्ष पूरे हो गये थे और राजा विराट जान गिया था कि वह उसकी सहायता करने के लिये सदैव तत्पर होंगे ॥

राजा विराट को गोपों ने आकर सूचना दी कि त्रिगर्त देश का राजा मत्स्य आप की एक लाख गौएँ छूरकर लेगिया है। और सब गोपों को बान्धवों सहित बड़ी पीड़ा देने का कारण हुआ है। यदि आप में बल है तो अभी निकट ही है, जाकर गौओं को छुड़ालें ॥

राजा विराट को यह सुन कर बहुत क्रोध आया, उस ने अपने छोटे भाई शतानीक मदिराक्ष और सूर्यदत्त को बुलाया और अपने पुत्र शंख को भी सूचना की। वह सब आये और युद्ध की त्यारियां करने लगे। थोड़े ही काल में रथादि से युक्त बड़ी सेना तैयार हो गई। फिर विराट ने कहा कि यह हमारे सेवक कंक, वल्लव, तंत पाल और दामग्रन्थि भी बड़े योधा प्रतीत होते हैं, क्यों न इन को भी साथ लिया जाये मुझे आशा है कि यह अवश्य ही शस्त्र पकड़ना जानते होंगे। अच्छा हो यदि इन को भी रथ दिये जायें॥

शतानीक ने चार रथ और जुतवा दिये और युधिष्ठर भीम नकुल और सहदेव को दिये। उन रथों पर बैठ कर पांडव भी लड़ाई को चल पड़े। इस सारी सेना की बड़ी अपूर्व शोभा थी और विराट नगर से बड़ी धूम धाम से निकली॥

तीसवां अध्याय

—:o:—

राजा सुशर्मा का विराट से युद्ध

तीन पहिर दिन के बीतने पर मत्स्य देशियों ने त्रिगर्त देशियों को पाया और युद्ध के लिये ललकारा, त्रिगर्त देशी ठहर गए और परस्पर बड़ा युद्ध होने लगा, पहिले प्यादों

से लड़, फिर असवार असवारों से, हाथी हाथियों से और रथि रथियों से। इतने में सूर्य अस्ताचल पर पहुंच गया घोड़ों रथों और हाथियों के इधर उधर परम तीक्षण गति करने से पृथ्वी की धूल ऐसी उड़ी कि कुछ दीख नहीं पड़ता था, योधा लोग भी उस धूल से ऐसे ढक गए कि उन को पहिचानना कठिन होगया॥

जब शतानीक और मदिराक्ष आगे बढ़े और त्रिगर्त देशी योधाओं को चुन २ कर मारने लगे, तो शतानीक ने अकेले एक सौ योधा मार डाला, मदिराक्ष ने चार सौ शूरों का वहीं रखा, तब वह शत्रुओं के बीच में घुस गये और रथियों को बालों से पकड़ २ भूमि पर धकेलने लगे॥

उन की बाण वर्षा से इतना रुधिर निकला कि पृथ्वी की धूल बैठ गई तब सुशर्मा और विराट सामने आए और एक दूसरे पर बाण वृष्टि करने लगे॥

इकतीसवां अध्याय

—:-०-:—

मत्स्य और त्रिगर्त देशियों का परस्पर भयानक युद्ध, राजा विराट का पकड़ा जाना, पाण्डवों का राजा विराट को छुड़ाना और सब को जीत कर त्रिगर्त देश

के राजा सुशर्मा को पकड़ कर ले जाना ॥

उन दोनों का भयानक युद्ध होने लगा परन्तु रात्रि ऐसी अन्धकार मय था कि कुछ दिखाई नहीं देता था, इस लिये रण में खिलवली सी मच गई और अनेक वीर पुरुष शत्रु को भूल कर मित्रों पर ही प्रहार करने लगे ॥

तब भगवान् चन्द्रमा उदय हुआ उस सब अन्धकार मिट गया क्षत्रियों ने फिर युद्ध आरम्भ किया और चारों ओर बाणों की से वृष्टि होने लगी ॥

तब त्रिगर्त राज ने मत्स्य राज को घेर लिया उस के दो भाई भी पीछे से रथ दौड़ाते हुए आये और त्रिगर्तों ने बूढ़े विराट को रथ हीन करके पकड़ लिया, उस की यह दशा देख कर उस की सेना के लोग बिखर कर, अपने २ घर की ओर भागे, तब त्रिगर्त नरेश ने उस को अपने रथ पर बिठाया और रण भूमि से निकल कर नगर की ओर चल पड़ा ॥

पाण्डव एक कोन में खड़े युद्ध को देख रहे थे, विराट की यह दशा देख कर, युधिष्ठर ने भीमसेन को कहा कि इस राजा के देश में सुख पूर्वक बसे हैं हम को उचित है, कि इस आपत्ति काल में हम इसकी रक्षा करें, भीमसेन तुम जाओ, और मत्स्य राज को शत्रु के हाथ से छुड़ा कर लाओ। हम इसके

राज्य में सुख पूर्वक वसे हैं। हम को उसकी सहायता करना अत्यावश्यक है ॥

यह सुन कर भीमसेन बोला कि महाराज बहुत अच्छा, मैं जाता हूं तब वह एक मोटे को वृक्ष उखाड़ने लगा, परन्तु युधिष्ठर ने कहा कि ऐसा मत कर शस्त्रों को लेजाओ, और साधारण युद्ध कर के उसको छुड़ा लाओ ॥

भीमसेन ने कहा बहुत अच्छा तब वह रथ छोड़ कर उसकी ओर भागा और दूर से ही कहने लगा कि हे सुशर्मा भाग कर कहा जाते हो, ठहिरो और शूर वीरों की भान्ति युद्ध करो। भीम का वचन सुन कर सुशर्मा ठहिरा और पीछे को मुड़ कर उसके सन्मुख आया ॥

थोड़े ही काल में भीम ने उसको आतुर कर दिया, तब उसके भाई भी सन्मुख हुए, परन्तु भीमसेन ने के पराक्रम के आगे वह कुछ न कर सके। भीमसेन सुशर्मा के घोड़ों को मार डाला और जब उसका रथ गतिहीन हो गिया, तो वृद्ध विराट राज युवा पुरुषों की भान्ति उसके रथ में से कूद पड़ा, भीम ने उसको अपने रथ में जगह दी और सुशर्मा को मार २ कर घायल कर दिया। तब सुशर्मा विवश होकर भूमी पर जापड़ा भीम उसको पकड़ कर युधिष्टर के पास लाया और कहने लगा कि अब तू राजा विराट का दास बन जा नहीं तो अभी तेरे प्राण निकाल दूंगा ॥

युधिष्ठर बोला कि भीमसेन अब इस पापी को छोड़ दो

देखो सुशर्मा ! फिर कभी ऐसा नीच काम न करना, जाओ हम तुम को अदास करके छोड़ते हैं ॥

बत्तीसवां अध्याय

—:-०-:—

राजा मत्स्य का पाण्डवों की शूरवीरता देख कर उनकी प्रशंसा करना, और दूतों को जय का समाचार देकर अपने नगर को भेजना ॥

राजा त्रिगर्त यह शब्द सुन कर बड़ा लज्जित हुआ और शिर नीचे करके विराट को प्रणाम करके और सब गौवें लौटा कर चल दिया ॥

तब राजा ने पाण्डवों से कहा कि मैं आपका धन्यवाद करता हूं आप के कारण मेरे प्राण बचे और मैं पुत्र पौत्र और अपनी प्रजा को फिर देख रहा हूं यह मत्स्य देश आप का है और आप राजा के पद के योग्य हैं आप मेरे सब कोश और भूषण वस्त्र आदि के स्वामी हैं मैं अपनी अलंकृत कन्या आप को देता हूं और नाना प्रकार के धन देता हूं आप अपनी इच्छा अनुसार इन को जो चाहो सो करो और जो आप की मनोकामना हो उस को भी मैं पूरा करूंगा ॥

युधिष्ठर बोला कि हे राजन् ! आप धन्य हैं जो कुछ आप के मुख से निकला वह सर्वथा प्रशंसा के योग्य है हमारी

प्रसन्नता तो केवल यही है कि आप शत्रु के हाथ से बच गए विराट बोला कि मैं आप का राज्याभिषेक कराता हूं आप मत्स्य देश के राजा हूजिये ॥

यह सुन कर युधिष्ठिर बोला कि आप की कृपा का मैं बहुत धन्यवाद करता हूं आप श्लाघा के योग्य हैं अब आप नगर में समाचार भेज दें कि हमारी विजय हुई है ॥

तब राजा ने शीघ्र गामी दूतों को आज्ञा दी कि नगर में जावें और विजय का समाचार सुना कर हमारी ओर से आज्ञा दें कि सब लोग प्रातःकाल नगर से बाहिर आकर हम को मिलें और सब वेश्या और कन्यायें अलंकृत होकर बाजों सहित हम को लेने आवें ॥

तेतीसवां अध्याय

दुर्योधन का विराट नगर की सीमा पर जाकर विराट की गौएं हरना और गोपालों का विराट के पुत्र भूमि जय को इस बात की सूचना करना ॥

जब राजा विराट सुशर्मा के साथ युद्ध करने गया था तो पीछे अपने छोटे पुत्र भूमि जय को छोड़ गया था कि उस की अनुपस्थिति में राज्य का कार्य करे उस के जाने के दूसरे

दिन ही गोपाध्यक्ष ने रथ पर चढ़ कर विराट नगर में आकर सूचना दी कि कौरवों की बड़ी भारी सेना, जिस में भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि और दुःशासन आदि अनेक महा रथी हैं हमारी दूसरी सीमा पर आ गई है और उन ने सब गौओं को मार कर भगा दिया है और आठ सहस्र गौओं को अपने वश में कर लिया है ॥

गोपाल बोला कि हे राज कुमार भूमि जय इस समय राजा नगर से बाहर गया हुआ है राज्य की गति केवल आप के आधीन है उठिये शस्त्र पहिनिये और अपनी गौओं को शत्रुओं से छुड़ाइये राजा आप की बहुत प्रशंसा किया करता है और कहा करता है कि आप भी उन के सदृश बल बुद्धि रखते हैं इस लिये चलिये और उन के वचनों को सत्य कीजिये ॥

चौंतीसवां अध्याय

—:०:—

उतर का अपने रथ के लिए सारथी ढूंढना द्रौपदी का कहना कि बृहनला तुम्हारा सारथी करेगा उतर का अपनी छोटी बहिन को भेज कर बृहनला को बुलाना ॥

राज भवन में सब स्त्रियां बैठी हुई थीं कि राज कुमार उतर गोपाध्यक्ष के यह वचन सुन कर बोला, कि मेरा सारथी तो थोड़े दिन हुए महा युद्ध में मारा गया अब यदि कोई और सारथी मिल जाय तो मैं रण में जाने को प्रस्तुत हूं, मेरे बल और पराक्रम को कौरव सह नहीं सकेंगे और मैं पल भर में ही उन को मार डालूंगा ॥

यह शब्द सुन कर अर्जुन बड़ा प्रसन्न हुआ और रहस्य में द्रौपदी को जाकर कहने लगा कि तुम इस को कहो कि बृहन्नला को सारथी बनालो, यह सुन कर द्रौपदी उतर के पास आई और कहने लगी कि महाराज बृहन्नला आप का सारथ्य कर सकता है अगले समय में जब अर्जुन युद्ध को जाया करता था, तो यही उस का रथ चलाया करता था, इस लिए आप इस को सारथी बनालें तो अवश्यमेव आप की जय होगी ॥

उतर ने पूछा कि हे सैरन्ध्री तुझ को यह बात कैसे विदित है ? और क्या यह सत्य है कि नपुंसक इस प्रकार वीरता के काम कर सके । द्रौपदी बोली कि महाराज मैंने इस को युधिष्ठर के हा अर्जुन के साथ जाते देखा है और इस में कोई संदेह नहीं, आप इस को अपनी छोटी बहिन को भेज कर बुलवाइए और पूछीए, जब पूर्व काल में अग्नि ने खाडव वन को दग्ध किया था, तो अर्जुन के घोड़े इसी ने हांके थे इसी के साथ उसी ने सब प्राणियों को जीता था इस के समान कोई दूसरा सारथी नहीं है ॥

तब उतर ने अपनी छोटी बहिन को बुला कर कहा कि बृहन्नला को बुलादे, तब वह नाच घर में बृहन्नला रूप अर्जुन के पास गई ॥

पैंतीसवां अध्याय

—:-०-:—

अर्जुन का उतर के साथ सारथी हो कर जाना ॥

वह वहां आकर कहने लगी कि हे बृहन्नला ! हम ने सुना है कि तू पूर्व काल में अर्जुन का रथ हांका करती थी और जब अर्जुन खाण्ड वन को जाता तो भी तुम ही उस के सारथी थी। इस समय कौरवों ने आकर हमारी गावों को पकड़ लिया है और घर में और कोई न होने से राज कुमार उतर उन से लड़ने को जाना चाहता है यदि तू उस का सारथी बने तो बहुत अच्छा है, क्योंकि उस का सारथी थोड़े काल हुआ महा युद्ध में मारा गया था ॥

अर्जुन यह सुन कर राज कुमार के पास गया और हंस कर बोला कि मुझे तो नाचना ही आता है, सारथी का काम मैं कैसे कर सकता हूं, उतर बोला कि मुझ को तेरा खांडव बनवाला सब हाल सैरन्ध्री से विदित होगया है, यह भी उस समय वहां ही थी। अब तू शीघ्र चलने की तैयारी कर क्योंकि कौरव हमारी गायों को लिये जाते हैं ॥

तब अर्जुन ने रथ को तैयार किया। द्रौपदी ने हंसी से कहा कि बृहन्नला, युद्ध से भीष्म और द्रोणाचार्य आदि को जीत कर उन के चित्र वस्त्र लेती आईयो, अर्जुन बोला कि यदि उतर ने महारथियों को जीता तो मैं अवश्य ही चित्र वाचित्र वस्त्र लेती आऊंगी ॥

तब अर्जुन ने रथ को उस ओर हांका जहां पर कौरवी सेना आई हुई थी और गौओं को हांके जाती थी ॥

छत्तीसवां अध्याय

—:०:—

उतर का रथ में बैठकर कौरवों की सेना के पास पहुंचना और महारथियों को देख कर भयभीत होना और भागना और अर्जुन का उसको पकड़ कर समझाना ॥

जब उतर कौरवों की सेना के समीप पहुंचा तो उस बड़ी सेना को और उसके महारथियों को देखकर घबरा गिया और अर्जुन को कहने लगा कि हे बृहन्नला। यह बड़ी सेना है और मैं अकेला हूं. इनका जीतना संभव नहीं। मैंने पिता से युद्ध करने की आज्ञा नहीं ली, इस लिये जब वह आयेगें

तो मुझ पर क्रोध करेंगे। तुम शीघ्र रथ को लौटा दो और घर की ओर चलो॥

अर्जुन ने उत्तर दिया कि तुम ने स्त्रियों के सन्मुख प्रतिज्ञा की थी और पुरुषों के सन्मुख पौरुष दिखाया था, अब तुम बिना शत्रु जीते, और गौवों के लौटाये बिने जा सक्ते हो?

उत्तर ने कहा कि मेरे पिता ने बड़ा द्रोह किया जो सारी सेना लेकर आप तो लड़ने चला गिया, और मुझ को शून्य छोड़ गिया मैं एक तो बालक हूं दूसरे अकेला हूं। इस अस्त्र शस्त्र विद्या में निपुण सेना से कैसे लड़ सक्ता हूं। इस लिये मुझ को घर की ओर ले चलो॥

अर्जुन बोला कि अभी तो तुम ने शत्रुओं से किसी प्रकार का युद्ध भी नहीं किया। पहिले से ही क्यों घबरा रहे हो। और क्यों दीन रूप होकर शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाते हो यह कौरवी सेना तो गिद्धों की भांति मास की भूखी है मैं तुम को उन के बीच मे ले चलूंगा, तुम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना, नहीं तो स्त्रियें और बालक तुम्हारी हंसी करेंगे। मैं भी अब सारथ्य कर्म को अंगीकार कर चुका हूं इस लिये गौओं को बिना लौटाए कभी नहीं लौटूंगा॥

यह सुन कर उत्तर बोला कि उन को गौवें और अन्य धन ले जाने दो और लोगों की इच्छा अपनी अनुसार हंसी ठट्ठा करने दो गौवें आयें या चली जायं मुझे इस मे कुछ काम नहीं मेरा नगर भी शून्य है और मैं पिता से डरता हूं यह कह

कर उत्तर नगर की ओर भागा ॥

अर्जुन ने कहा कि रण भूमि से भागना क्षत्रियों का धर्म नहीं, उसी में मरना कल्याण रूप है और डर कर भागना अकल्याण है। यह कह कर अर्जुन रथ से कूद कर उस उतर के पीछे भागा और सौ पद पर जाकर उसे जापकड़ा ॥

उसको देख कर कौरव नाना प्रकार के विचार करने लगे, एक कहता था कि यह अर्जुन प्रतीत होता है, दूसरा कहता था कि अर्जुन नहीं यह तो नपुंसक है, परन्तु बड़ा बलवान है तीसरा बोला कि अर्जुन के बिना कौन हमारे सन्मुख आने का साहस कर सकता है, देखो विराट का पुत्र बालक पन से डर कर भाग रहा है, अर्जुन ही उस को पकड़ कर पीछे लाने के लिये दौड़ रहा है ॥

इसी अवसर में अर्जुन ने उतर को बालों से जा पकड़ा, उतर बोला कि हे बृहन्नला मैं तुम को बहुत से स्वर्ण मुद्रा और वडूर्यमणि दूंगा और सुन्दर घोड़ों वाला रथ भी दूंगा और दश मत वाले हाथी भी दूंगा, परन्तु तू मुझ को इस समय छोड़ दे, ताकि मैं घर को तो जाऊं ॥

अर्जुन ने उसकी एक न मानी और हंसकर उसे पकड़ कर रथ के पास ले आया। तब अर्जुन ने कहा कि यदि तुम शत्रु से लड़ नहीं सक्ते हो तो मैं तुम्हारे स्थान पर लड़ूंगा, और तुम ने रथ को चलाना। कौरवी सेना के महत्व की कुछ चिन्ता न करो क्योंकि क्षत्रिय लोग विषाद नहीं करते। मैं आप इन से लड़ूंगा और गौओं को इन से छीन लूंगा। अब

तुम सावधान हो जाओ इस प्रकार उस वीर अर्जुन ने राज कुमार को ढारस दिया तदउपरान्त उस डरे हुये के कारण चेष्टा हीन को रथ के ऊपर बिठाया ॥

सैंतीसवां अध्याय

—:o:—

अर्जुन का छोकर के वृक्ष के समीप रथ ले जाना, कौरवों का भयभीत होजाना, अर्जुन का उतर को कहना कि इस वृक्ष पर पांडवों के अयुध हैं, इन को उतारो ॥

तब अर्जुन नपुंसक भेष से ही रथको हांक कर और उतर को उस में बैठा कर छोकर वृक्ष के पास गया, भीष्म और द्रोणा चार्य उस को देख कर भयभीत होगए, उन्हों ने सब सेना बुला कर कहा, कि इस समय कोई बड़ा भय तुम्हारे सन्मुख उपास्थित हुआ है, क्योंकि मैं अशुभ शकुनों को चारो ओर देखता हूं, आप सेना को व्यूहित कर के गौवों की रक्षा करो, मेरे विचार में यह नपुंसक रूप रखने वाला अर्जुन ही है, इस का आकार और डौल और इस का युद्ध का साहस उसी अर्जुन का सा देख पड़ता है ॥

यदि देवता असुर भी आजायें तो अब यह बिना युद्ध के न लौटेगा, इस ने अकेले ही शिवजी को भली प्रकार से

ताड़ित किया था और इन्द्र से अस्त्र विद्या सीखी थी, यह सुन कर कर्ण बोला कि आप हमारे सामने अर्जुन की सदैव सराहना और हमारी निन्दा करते रहते हैं, हमारी तो वह एक कला के भी तुल्य नहीं हैं, आप का बारंबार ऐसा कहना उचित नहीं है ॥

दुर्योधन बोला कि यदि यह अर्जुन है तो बहुत ही अच्छा हुआ, उस का भेद आप ही खुलने पर उस को बारह वर्ष और वनवास मिलेगा और यदि कोई इतर पुरुष है, तो वह मेरे तीक्ष्ण बाणों से अवश्य ही मारा जायेगा, इस बात पर सब ने दुर्योधन के पौरुष की प्रशंसा की ॥

इधर छोकर के वृक्ष के पास आकर अर्जुन ने उतर को कहा कि तुम इस वृक्ष के ऊपर चढ़ो, इस पर पाण्डवों के शस्त्र और सब आयुध पड़े हैं उन को उतारो तुम्हारे धनुष और बाण छोटे हैं वह मेरे हाथ में निष्फल होंगे, यहां ही अर्जुन का गाण्डीव नाम धनुष भी है और बड़े २ कवच और अन्यास्त्र भी हैं ॥

अठतीसवां अध्याय

—:-०-:—

उतर का वृक्ष पर चढ़ कर आयुधों को उतारना और विस्मय पूर्वक पूछना कि यह आयुध

किस किस के हैं, अर्जुन का यथातथ्य वर्णन करना ॥

उतर बोला कि इस वृक्ष पर मृतक बांधा था, मैं क्यों कर इसको स्पर्श करूं। यह सुन कर अर्जुन ने कहा कि यहां कोई मृतक शरीर नहीं है तुम कोई शंका मत करो और कार्य को सिद्ध करो ॥

अर्जुन की यह बात सुन कर वह राजपुत्र उतर वृक्ष पर चढ़ा, और सब आयुध उतार लाया। जब अर्जुन ने उनको खोला तो उतर बहुत अश्चर्य होकर पूछने लगा कि यह धनुष किस का है, यह किस का है वह तलवार किस की है ! इत्यादि अनेक प्रश्न करने लगा ॥

तब अर्जुन ने प्रत्येक अस्त्र को दिखाया और उसके वर्तने वाले का नाम लिया। उतर गांडीव को देख कर बड़ा अश्चर्य युक्त हुआ और उसके सम्बन्ध में नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगा ॥

अर्जुन ने कहा कि सब से पहिले यह धनुष ब्रह्मा जी के पास था फिर प्रजापति ने लिया उस से इन्द्र ने और फिर चन्द्रमा ने चन्द्रमा से वरुण ने और उस से श्वेत वाहन अर्जुन को मिला ॥

इस प्रकार अर्जुन ने सब आयुधों का पृथक् पृथक् वर्णन किया ॥

उनतालीसवां अध्याय

—:-०-:—

उतर का अर्जुन से पाराडवों का बृत्तान्त पूछना, अर्जुन का उस को बताना, तब उतर का अर्जुन के दश नामों की व्याख्या पूछना ॥

तब उतर बोला कि हे बृहन्नला अब वह महात्मा यशस्वी पाराडव कहां गए हैं जब से वह अपना राज्य जूए में हार कर वनों में गए हैं हम ने उन का कोई बृत्तान्त नहीं सुना है ॥

अर्जुन बोला कि हे उतर तुम्हारा कङ्क नामी सभासद युधिष्ठर है बल्लव नामी रसोइया भीमसेन है मैं अर्जुन हूं जो अश्वबन्ध है वह नकुल है और जो गौत्रों का पालक है वह सहदेव है तुम्हारी सैरन्ध्री जिस के कारण कीचक मारा गया है वह द्रौपदी है ॥

अर्जुन ने फिर कहा कि पृथ्वी की चार सीमाओं में मेरा वर्ण दुर्लभ है, इस से मेरा नाम अर्जुन हुआ मैं हिमालय पर्वत पर उतरा फाल गुणाइन्द्र नक्षत्र में उत्पन्न हुआ था, इस से फाल्गुण नाम रखता हुं दुर्मद दानवों को जीतने से इन्द्र ने आप मेरे शिर पर किरीट बाधा था। इस से मैं किरीट नाम

वाला हूआ, मेरे रथ के श्वेत घोड़े होने से मुझ श्वेत वाहन कहते हैं। वीभत्सु इसलिये कि मैं कभी भी विभत्स नही करता युध में सदैव जय पाता हुं इस लिये विजय हूं, मुझे काला देख कर पिता जी कृष्ण कहा करते थे, इन्द्र पुत्र होने से मेरा नाम जिष्णु है गांडीव को चढ़ा कर दोनो हाथों से बाण मार सकता हुं इस लिये मेरा नाम सव्यसाची है और धनञ्जय इस लिए कि मैंने देशों को विजय किया और राजाओं को धन लेकर छोड़ दिया, सोहे उतर मेरे दशों नामों की व्याख्या है॥

इस को सुन कर उतर गद् २ होकर उस के पाओं पर गिरा और कहने लगा कि हे धनञ्जय, आप धन्य हो मेरी भूल चूक को क्षमा कीजिये, अब मुझ दृढ़ विश्वास है कि हम शत्रुओं को मार कर निस्संदेह सिद्ध अर्थ होंगे, अब मुझे कुछ भय नहीं रहा॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे भूमिजय, तु शीघ्र नीचे आ और मेरे आयुधों को ला, उतर यह सुन कर शीघ्र नीचे उतरा, अर्जुन शस्त्रों को पहिरने लगा, तब उतर ने कहा कि हे अर्जन! मेरे मन में यह शंका है कि तुम इतने बड़े योधा और धर्मात्मा, तुम को क्लीब रोग कैसे लग गया!? तुम्हारे जैसे पुण्यात्मा का क्लीव होना बड़े आश्चर्य की बात है॥

अर्जुन बोला कि मैं क्लीव नही हुं केवल युधिष्ठर की आज्ञा पाकर अपने आप को ऐसा कहता हूं। यह सुन कर भूमि जय बोला कि मुझ को पहिले ही इस बात पर विश्वास न था,

परन्तु अब मुझ को निश्चय हो गिया, और अब मैं किसी प्रकार का भय नहीं रखता हूं ॥

इस रथ के घोड़े बड़े उत्तम और वेग वान हैं, आप देखिये मैं इन को बड़ा शीघ्र चलाऊंगा, यह घोड़े श्री कृष्ण के समान हैं। आप इस में स्वार होकर युद्ध करें ॥

तब अर्जुन ने अपने सब अस्त्रों का ध्यान किया और सब को नमस्कार की। तब धनुष पर ज्या चढ़ाई और उस को टंकारने लगा। इस की टंकार से बड़ा भयानक शब्द हुआ, आकाश अपता सा दिखाई देने लगा और सब कौरवों के हृदय कम्पायमान हो गये ॥

तब भूमि जय ने फिर अर्जुन को कहा कि मुझे डर है कि तुम अकेले और सहाय हीन हो। अर्जुन बोला कि मैं ऐसे कई बार सहायता हीन हो युद्ध कर चुका हूं। मैंने अपने गुरु द्रोणाचार्य से शिक्षा पाई है। और इन्द्र, कुवेर, कृपाचार्य और कृष्ण जी की उपासना की है ? मुझे कौरवों से कुछ डर नहीं, तुम अपने मन की व्यथा को दूर करो ॥

चालीसवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का शंख बजाना, भूमि जय का डरना और अनेक उल्कापात होने से द्रोणा-

चार्य का दुर्योधन को समझाना

तब अर्जुन ने शंख बाजाया और रथ के घोड़ों को शत्रु की ओर छोड़ा। उस शंख का ऐसा तुमुल शब्द हुआ कि उतर भयभीत हो गिया और घोड़े रथ को उड़ा कर ऐसे भागे कि उतर रथ के बीच गिरपड़ा। अर्जुन ने उसे छाती से लगाया और धैर्य दिया कि मत डरो तुम तो क्षत्रिय हो, शूरवीर लोग शंख नाद से नहीं डरते। देखो शत्रु तुम को इस अवस्था में देख कर क्या कहेंगे॥

उतर बोला कि हे अर्जुन मैं ने ऐसा शब्द कभी नहीं सुना न कभी रथ को इस प्रकार चलते देखा है अर्जुन ने कहा कि तुम घोड़ों की बाग डोर अच्छी तरह पकड़ लो और रथ को पाओं से दबाए रक्खो और कोई चिन्ता न करो॥

तब अर्जुन ने फिर शङ्ख बजाया द्रोणाचार्य देख कर बोले कि हे दुर्योधन! इस रथ में अर्जुन के सिवाय और कोई नहीं देखो कैसे उल्कापात हो रहे हैं पशु पक्षी भयभीत होकर हमारे शिविर की ओर आ रहे हैं गीदड़ रो रहे हैं गिद्ध हमारे चारों ओर मुण्डला रही हैं यह उत्पात क्षत्रियों का नाश करने वाले हैं देखो तुम्हारी सेना उदास सी हो रही है सब वाहन दुःखी और रोते हुए दिखाई देते हैं तुम अर्जुन के बाणों से अवश्य पीड़ित होगे और पछिताओगे तुम को उचित है कि गौओं को छोड़ दो और यहां ही युद्ध के लिए तय्यार रहो॥

इकतालीसवां अध्याय

—:-०-:—

दुर्योधन का युद्ध करने का उपदेश और द्रोणाचार्य की बात पर क्रोध करना ॥

तब दुर्योधन बोला कि पाडवों को १२ वर्ष का वनवास था और उसके पश्चात् एक वर्ष गुप्त रहना था, यदि वह एक वर्ष गुप्त न रहें तो उन को और बारह वर्ष का वनवास था, परन्तु वह तेरहवां गुप्त रहने का वर्ष अभी व्यतीत नहीं हुआ फिर किस प्रकार अर्जुन आकर हमारे साथ युद्ध कर सक्ता है। यह केवल गुरु जी का भ्रम ही है ॥

वह घोड़ों के हिंसने को बड़ा उत्पात मानते हैं। भला बताओ तो सही, घोड़ों ने कभी हिंसना बन्द किया है। वह तो हिंसा ही करते हैं। हमारा गौओं के हरण करने का कोई अभिप्राय नहीं था, हम तो केवल त्रिगर्त देशियों की सहायता के लिये यहां आये थे और हम ने सोचा था कि जब मत्स्य देशी त्रिगर्तों से लड़ते होंगे हम पीछे से गौएं चुरा कर त्रिगर्त की सहायता करेंगे अब न जाने त्रिगर्त जीता या मत्स्य देशी और अपने नगर से होकर यह मत्स्य राज ही हम से लड़ने को आ रहा है इस पर अर्जुन के होने की शङ्का करना सर्वथा भूल है ॥

अब हम सब यहां आगए हैं चाहे भला हो चाहे बुरा, चाहे अर्जुन हो चाहे इन्द्र लड़ना तो अवश्य ही पड़ेगा इस के बिना छुटकारा नहीं, इस लिए आप सब लोग चिन्ता को छोड़ कर शस्त्र पहिन लो और गुरु जी की ओर मत देखो, इन को पीछे रहने दो, इन को पांडवों की बड़ी लगन है इस लिये पांडव इन को हमारे पास छोड़ गए थे, कि नित्य प्रति उन की प्रशंसा के स्तोत्र गाकर यह हम को सुनाया करें और हमारे मनों को पीड़ित किया करें ॥

यह पांडवों का पक्ष करके सदा हम को डराते रहते हैं यह अभी हमारी सेना को भगा देंगे, देखो हम इस प्रदेश में बैठे हैं, ऐसा न हो कि यह रुक जावे, मैं यह नहीं समझता कि बादलों के गर्जने और इन्द्र के बर्षने का युद्ध से क्या संबंध है और इस में अर्जुन के आने का क्या निमित्त है हां एक बात तो प्रकट ही है कि गुरु जी अर्जुन पर दयावान हैं और हम पर रोष करते हैं ॥

इस अवसर में गुरु से उपदेश लेना, अपने आप को कुयें में डबोना है, पहिले लोग तो उत्तम आश्रमों में रह कर उत्तम आसनों पर बैठ कर विचित्र कथा सुनाने के योग्य हैं और वह सभा में विचित्र विनोद करके शोभा पाते हैं, उन की रुचि बहुधा यज्ञ की सामग्री रचने, दूसरों के क्षमा ज्ञान की प्रवीणता करने, स्नान पूजन आदि चरित्रों के कथन करने हाथी घोड़ा और रथ आदि की चर्चा वर्णन करने, गधा ऊंट

भेड़ बकरी की चिकित्सा करने, भोजन संस्कार और दोषों के विचार की निपुणता में ही होती है ॥

इस के अतिरिक्त जो पंडित शत्रु गुण वादी हो, उस को आगे करके युद्ध न करना चाहिये, आगे सब लोग गौओं की अच्छी तरह रक्षा करें और सेना को उस के गिरद डाल दें ॥

बतालीसवां अध्याय

—:०:—

कर्ण का द्रोणाचार्य की निन्दा करना और अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा करना कृपाचार्य का उस की निन्दा करना और अर्जुन की श्लाघा करना। अश्वत्थामा का युद्ध न करने का प्रण करना ॥

तब कर्ण बोला कि हे दुर्योधन ! तुम सत्य कहते हो। मैं सब वृद्धों को युद्ध से भयभीत देखता हूं, सब का मन चंचल और दुखी हो रहा है परन्तु आप कोई चिन्ता न करें, मैं अर्जुन को मारूंगा। मेरा बल उस से किसी प्रकार भी न्यून नहीं, मानता हूं कि उस ने तेरह वर्ष तलवार को हाथ नहीं लगाया जिस से उस को अधिक रोष होगा, परन्तु मेरे सन्मुख वह क्या है ॥

मैंने परशुराम से शस्त्र पाये हैं, मैं इन्द्र से भी लड़ सक्ता हूं अर्जुन विचारा क्या है ॥

तब कृपाचार्य बोले कि हे राधा के पुत्र ! तू सदैव घमण्ड करता है, अर्जुन से तेरी तुलना कैसे हो सक्ती है। अर्जुन ने अकेले ही कौरवों की रक्षा की, अकेले ही अग्नि को तृप्त किया, अकेला महादेव से लड़ा, अकेले ने द्रौपदी को छुड़ाया इत्यादि नाना प्रकार के प्रशंसनीय काम किये, ऐसे अर्जुन से युद्ध करना योग्य नहीं अरे मूर्ख ! यह अर्जुन तेरह वर्ष हम से पृथक रहा और आपत्ति के निकल जाने से इसका मन बढ़ा हुआ है। हमने बड़ी भूल की जो उसके सन्मुख इस प्रकार आगये, तुम साहस मत करो हम सब लोग मिल कर सेना सहित युद्ध करेंगे अकेले २ इस के साथ जाकर लड़ना हमारी भूल है ॥

तब अश्वत्थामा बोला कि हे कर्ण ! तुमने न तो अभी गौएं जीतीं, न मत्स्य देश से बाहिर आये और न हस्तिनापुर ही पहुंचे, परन्तु अपनी श्लाघा के अभी से पुल बांधने आरंभ कर दिये ? संसार में लोगों ने बड़े २ काम किये हैं, परन्तु अपने मुख से अपनी श्लाघा करते हुए हमने किसी को नहीं देखा, जो मुख से बकता है वह क्या कर सक्ता है। और जो गर्जता है वह बरसता नहीं ॥

देखो सूत पुत्र ! चारों वर्ण के पृथक २ धर्म हैं क्षत्रिय का धर्म है कि धनुर्विद्या का आश्रय रख कर युद्ध करे तुमने और दुर्योधन ने पाण्डवों से कौनसा युद्ध किया है। तुम्हारे

मामा ने केवल जुये में इन्द्रप्रस्त जीता था, और तुम लोगों ने निर्लज्ज हो कर द्रौपदी को एक वस्त्र ओढे हुए सभा में बुलाया था, वह पाप अभी तक तुम्हारे शिर पर है, कुच्छ पराक्रम से करते तो लोग तुम्हारी प्रशंसा भी करते और हम भी कहते कि तुम महा पराक्रमी शूरवीर हो, परन्तु जो तुमने किया है, पाप और अधर्म से किया है ॥

मैं इस संसार में सब को शान्त देखता हूं। परन्तु तुम्हारी शान्ति मुझे दिखाई नहीं देती द्रौपदी का तुम पर बहुत रोष है जो वृथा नहीं जायगा। पाण्डव पिताजी के शिष्य हैं। और वह उन पर पुत्र के समान प्रीती रखते हैं अब तुम लोग सोच लो, उनके साथ तुम ही लड़ोगे, या तुम्हारा मामा शकुनी जो दुष्ट जुआ खेलने वाला है, और अपने आप को पण्डित और क्षत्रिय कहता है, और जिसकी दुष्ट बुद्धि का परिणाम तुम सब को अब भोगना पड़ेगा वही तुम्हारा साथ देगा। पिता जी चाहे युद्ध करें परन्तु मैं तो युद्ध नहीं करूंगा हां यदि विराट लड़न आवे तो मैं अवश्य ही लड़ूंगा ॥

तिरतालीसवां अध्याय

—:-०-:—

भीष्म का सब को समझाना और सब के क्रोध को शान्त करना और द्रोण से अपराध

क्षमा कराना ॥

भीष्म पितामह जोकि देश काल को यथावत जानते थे समझ गए कि अब आपस में भेद हो गया जिस है से अवश्य हानी होगी, यह सोच कर उन्हों ने अश्वत्थामा को कहा कि हे आचार्य पुत्र कर्ण ने जो कुछ कहा है, वह क्षत्र धर्म को मुख्य मान कर कहा है और उस का प्रयोजन केवल उत्साह उत्पन्न करने का था, इस लिए आप उस को क्षमा करें, इस समय आप के सामने बड़ा भारी कार्य उपस्थित है, यह समय विरोध का नहीं, आप और कृपाचार्य दोनों क्षमा करें ॥

आप दोनों ब्रह्म विद्या और ब्रह्मास्त्र ज्ञाता हैं और हमारा बड़ा भाग्य है कि हमारे आचार्य दोनों विद्याओं में निपुण हैं शत्रु के भी गुण और गुरु के भी दोष बतलाने में कोई दोष नहीं परन्तु यत्न से सदैव वह ही वात कहनी चाहिये जो पुत्र और शिष्य के हितकारी हो ॥

तब दुर्योधन ने कहा कि हे गुरु जी महाराज आप क्षमा करें, अब समय शान्ति का है, आप के रोष से हमारा सब कर्तव्य नष्ट होता है, तब भीष्म कृपाचार्य और कर्ण को साथ लेकर दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास गया और उस से क्षमादान लिया ॥

तब द्रोणाचार्य बोले कि मैं भीष्म के साथ एक सम्मति हूं अब ऐसी बात करो कि जिस से अर्जुन दुर्योधन को देखने न पावे यदि वनवास का समय पूरा न होता तो वह कभी प्रकट

न होता और अब चूंकि उस को धन नहीं मिला वह अवश्य लड़ेगा इस से ऐसी बात करो कि जिस से सेना पराजय न हो तब द्रोणाचार्य ने कहा कि आप वनवास के समय का निश्चय करें ॥

चौतालीसवां अध्याय

—:-०-:—

भीष्म का वनवास का समय निश्चय करना और सेना का व्यूह रचना करना ॥

तब भीष्म ने गनना की और कहा कि आज पाण्डवों को गए हुए तेरह वर्ष पांच महीने और बारह दिन होते हैं इस लिये पाण्डवों की प्रतिज्ञा पूरी हो गई भला पाण्डव कभी झूठ को अङ्गीकार कर सकते हैं ? कदापि नहीं ! इस लिये उचित है कि हम सब लोग मिल कर शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन से युद्ध करें अच्छा दुर्योधन आप बताईये कि अब आप की क्या इच्छा है क्या युधिष्ठिर को आधा राज्य देंगे अथवा अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे ॥

दुर्योधन बोला कि मैं राज्य नहीं दूंगा और युद्ध ही करूंगा आप यह ही निश्चय समझें भीष्म बोला कि जो बात तुम ठीक समझते हो वही करो यदि यह विचार है तो एक चौथाई सेना लेकर तुम तो घर को चलो एक चौथाई सेना गौओं को लेकर चले, शेष आधी सेना से हम अर्जुन के साथ

युद्ध करेंगे, द्रोणाचार्य कर्ण अश्वत्थामा और कृपाचार्य हमारे साथ होंगे ॥

दुर्योधन यह कह कर चौथाई सेना लेकर चल पड़ा और चौथाई सेना के साथ गौएं भेज दीं, शेष आधी सेना से भीष्म ने व्यूह रचना की और सेना के मुखिये नियत किये द्रोणाचार्य मध्य में खड़ा हुआ अश्वत्थामा बाईं ओर कृपाचार्य दाईं ओर, कर्ण आगे और भीष्म पीछे, सारी सेना का चित्र निम्नलिखित आकार के सदृश था ॥

कर्ण (सेना का मुख)

```
            x x x x x x x x x x x x
            x                     x
            x                     x
            x                     x
            x                     x
अश्वत्थामा    x      द्रोणाचार्य        x      कृपाचार्य
            x                     x
            x                     x
            x                     x
            x                     x
            x                     x
            x x x x x x x x x x x x
```
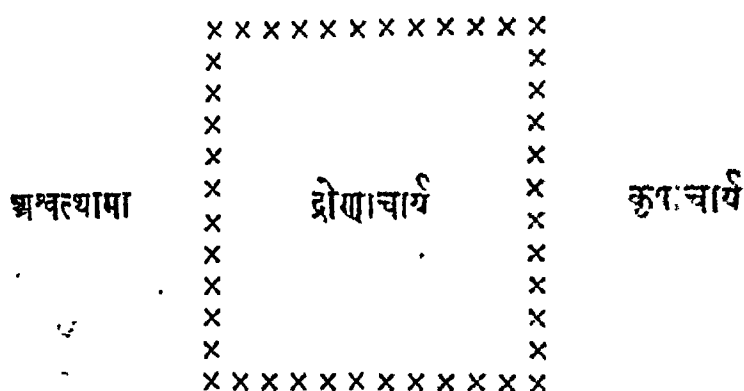
भीष्मपितामह

पैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का सेना के पास जाना और शंख

बजाना और कर्ण से युद्ध करके उस को भगा देना ॥

जब अर्जुन ने देखा कि शत्रु लड़ने को तैयार है, तब वह शस्त्र लिए हुए, शंख बजाता सेना की ओर आया उस के शंख की ध्वनि सुन कर कौरवों के रोंगटे खड़े होगए, अर्जुन ने सेना के सब मुखियों को देखा और दो बाण गुरु जी अर्थात द्रोणाचार्य के पाँवों में छोड़े, जिस का अभिप्राय यह था कि मैं आप को नमस्कार करता हूं, फिर दो बाण उन के कानों के पास से छोड़ कर कुशल पूछा, जिस को देख कर द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि अर्जुन बड़ा शोभायमान दिखाई देता है ॥

तब अर्जुन दुर्योधन को ढूंडने लगा, परन्तु वह कहीं दिखाई नहीं दिया, अर्जुन ने समझा कि वह जान बचा कर भागा है उस ने उत्तर को कहा कि रथ को फेर कर दक्षिण दिशा को लेजाओ, क्यों कि दुर्योधन गौओं को ले कर जा रहा है और युद्ध में इन वृद्धों को लड़ने को छोड़ गया है हमारा इन से लड़ने का कोई प्रयोजन नहीं हम दुर्योधन ही को मारेंगे ॥

तब उत्तर ने बड़े कष्ट से रथ उधर को मोड़ा कौरवों ने समझा कि अर्जुन दुर्योधन को छोड़ कर और किसी से लड़ना नहीं चाहता इस लिए विचारने लगे कि जब यह दुर्योधन से लड़ेगा तो हम इस को पीछे से मारेंगे ॥

आगे बढ़ कर अर्जुन ने धनुष को टंकोरा और शंख बजाया, उस का ऐसा शब्द हुआ कि सब गौएं डर कर दुम

उठा कर नगर की ओर भागीं, सेना में से कोई उस को रोक न सका ॥

छयालीसवां अध्याय

—:o:—

अर्जुन का कौरवों से युद्ध होना और कर्ण का भाग जाना ॥

अर्जुन को गौओं को छुड़ा कर ले जाते हुए और दुर्योधन का पीछा करते हुए देख कर कौरवों की व्यूहित सेना उस पर धावा करने लगी ॥

अर्जुन ने भी रथ फेरा, तब चित्रसेन, संग्राम जित शत्रुसह और जय नाम महारथी उस के सन्मुख आये, अर्जुन के बाणों ने सब को पीड़ित किया, तब विकर्ण विराट नामा बाणों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ा अर्जुन ने भी बाण मारे और शत्रु के बाणों को निष्फल कर दिया ॥

तब बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, पृथ्वी और आकाश बाणमय होगया, तब कर्ण भी युद्ध में प्रवृत्त हुआ और अर्जुन पर बाण छोड़ने लगा परन्तु अर्जुन ने उस के सब बाण काट दिए, तब अर्जुन ने तीक्ष्ण भालों को धनुष में चढ़ाया। उन के प्रहार से कर्ण ऐसा व्याकुल हुआ कि मुंह उठा कर घर की ओर भागा ॥

सैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का कौरवी सेना को मारना ॥

कर्ण के भागने पर दुर्योधन की सेना अर्जुन के सन्मुख आई परन्तु बाण वर्षा के द्वारा अर्जुन ने उन का वेग रोक दिया सब योधाओं के बड़े २ तीर लगे जो कवच के नीचे दो दो अंगुल चले गए अर्जुन की शस्त्र विद्या की सब ने प्रशंसा की और कौरवी सेना के बहुत से योधा मारे गए ॥

कहते हैं शून्य रथों को घोड़ बिना सारथी लिये हुए सब रण भूमि में दौड़ने लगे और अपने ही दल को कुचलने लगे अर्जुन जिस तरफ चाहता रथ को दौड़ा कर ले जाता और कई मनुष्यों को मार्ग में कुचल कर चला जाता इस प्रकार उस ने सारी सेना को दलन कर डाला ॥

तब उस ने उतर को आज्ञा दी पहिले मेरा रथ व्याघ्र चर्म से ढके हुए लाल घोड़ों वाले रथ के पास ले चलो यह कृपाचार्य का रथ है मैं उस के शस्त्रों को देखना चाहता हूं वह रथ जिस की ध्वजा में सुन्हरी कुण्डल हैं द्रोणाचार्य का है वह धनुष धारियों में श्रेष्ठ मेरे गुरु हैं मैं उन की प्रदक्षिणा करूंगा और यदि वह मुझ पर प्रहार करेंगे तो मैं भी बाण मारूंगा ॥

वह रथ जिस की ध्वजा में धनुष का चिन्ह है अश्वत्थामा का है वह आचार्य के पुत्र हैं और हमारे माननीय हैं इस के पश्चात् उस रथ के समीप चलना जिस की सुन्हरी

ध्वजा पर नाग का चिन्ह है, यह कौरवों में दुष्ट दुर्योधन का है जो श्रेष्ठ अस्त्रधारी है वह हाथी के चिन्ह वाला कर्ण का रथ है यह मेरे साथ सदैव ईर्षा रखता है और बड़ा पराक्रमी है तत्पश्चात् उस नीली पताका वाले रथ के सन्मुख जाना जिस पर तारों और सूर्य के चिन्ह हैं और ऊपर पांडु वर्ण का छत्र है य हमारे कुरुवृद्ध पितामह भीष्म का है जो शिर पर मुकुट धारण किए हुए विराजमान हैं यह हमारे पूज्य हैं परन्तु आज कल दुर्योधन का पक्ष ले रहे हैं। मैं सब से पीछे इन के पास जाना चाहता हूं जिस से यह मेरे कार्य में विघ्न कर्ता न हों॥

यह सुन कर उत्तर ने रथ को चलाया और कृपाचार्य के सन्मुख ले गया॥

अड़तालीसवां अध्याय

—:o:—

अर्जुन और कृपाचार्य का युद्ध, कृपाचार्य का हार जाना॥

तब अर्जुन ने कृपाचार्य की प्रदक्षिणा की और सन्मुख आ कर ठहिर गिया। अर्जुन ने देवदत्त नाम का शंख बजाया जिस को सुन कर सब प्राणी कांपने लगे, तब कृपाचार्य ने भी शंख बजाया और दोनों में युद्ध आरंभ हो गिया॥

कृपाचार्य ने मर्म भेदि बाण छोड़े और अर्जुन ने भी अनेक बाण छोड़े कभी एक पासा भारी हो जाता कभी दूसरा निदान अर्जुन ने कृपाचार्य को रथहीन कर दिया, और उस को भूमि पर गिरा दिया, कौरव यह देख कर कृपाचार्य को रण से निकाल कर लेगये और आप सामने आये ॥

उनचासवां अध्याय

—:०:—

द्रोणाचार्य और अर्जुन का युद्ध, द्रोणाचार्य का घायल होना ॥

तब द्रोणाचार्य लड़ने को सामने आये, अर्जुन ने उत्तर को कहा कि यह परम तेजस्वी वेद वेदांग के जानने वाले और शस्त्र विद्या और धनुर्वेद के ज्ञाता, पृथ्वी पर एक ही है । यह मेरे गुरु हैं इनके सन्मुख मेरे रथ को ले चलो उत्तर ने ऐसाही किया । तब अर्जुन ने रथ से उतर कर गुरु को दण्डवत की और कहने लगा कि हे गुरु जी महाराज हम लोग वन के क्लेशों को सह कर बड़े दुःखी रहे, हमारी प्रतिज्ञा है कि हम अपने शत्रुओं से बदला लें, इस लिये आप हम पर क्रोध न कीजिये यदि आपने लड़ना है, तो पहिले आप बाण चलाइये, मैं आप पर पहिले प्रहार नहीं करूंगा ॥

तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बीस बाण मारे, और दोनों में युद्ध आरंभ हो गया । कभी वह उसको बाणों से ढकदेता,

कभी वह उसके बाण काट डालता सार यह कि बहुत काल तक युद्ध होता रहा, अन्त को द्रोणाचार्य घायल हो गया, यह देख कर अश्वत्थामा आगे बढ़ा और द्रोणाचार्य को हटा कर पर ले गये।

तब अश्वत्थामा सामने आया और अक्षय बाण मारने लगा परन्तु वह ऐसी शीघ्रता से बाण चलाता था कि थोड़े ही काल में उसके दोनों तर्कस खाली हो गये, यह देख कर अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ ॥

पचासवाँ अध्याय

—:०:—

अर्जुन और कर्ण का परस्पर युद्ध, कर्ण का हार जाना ॥

अर्जुन ने कर्ण को देख कर ललकारा और कहा कि हे कर्ण तुम सदा से अपने बल की डींगें मारते हो और परोक्ष में हमारी निन्दा करते हो तुम ने कई बार हम को कठोर वचन कहे हैं जिस से तुम्हार अधर्म भाव सहज ही प्रकट है। हम से तो यह काम हो नहीं सक्ता, अब समय है तुम अपने वचनों को सच्चा करो, हमने बारह वर्ष वनवास का दुःख उठाया है, उस का फल अब तुम को मिलेगा, तुमने द्रौपदी को सभा के बीच में दुःख पाती देखा था, उस का परिणाम अब

तुम को मिलेगा। मैंने उस समय धर्मपाश में बन्धा होने से क्षमा कर दिया था, परन्तु अब मेरे क्रोध की जय को देखो॥

कर्ण बोला, कि बहुत अच्छा अर्जुन जो कुछ तुम कहते हो, उस को करके दिखाओ। लोगों में तुम्हारी प्रसिद्धी तो बहुत है, परन्तु जितना कुछ तुम अपने आप को प्रगट करते हो उतने नहीं हो अब क्या तुम्हारा पाश छुट गया पहिले एक पाश से बंधे थे अब कई पाशों से बन्ध हो। हम को तो जब आप कुछ पराक्रम करके दिखाओगे, तब तुम्हारी बात मानेंगे॥

अर्जुन ने कहा के अरे पापी मुझ से डर कर भाग गया था और तेरे भाई को मैंने मार दिया है क्या और पराक्रम देखना चाहता है?

यह कह कर अर्जुन ने बाण छोड़े और परस्पर घोर युद्ध होने लगा। कर्ण को एक बड़ा तीर कवच को फोड़ कर लगा जिस से उसका सिर घूमने लगा और बाणी विह्वल हो गई तब कर्ण रण छोड़ कर उत्तर की ओर चला गया। अर्जुन ने उसको वार वार पुकारा परन्तु वह न लौटा॥

इक्यावनवां अध्याय

—:-o-:—

अर्जुन का उत्तर को कहना कि रथ को आगे

बढ़ावे उतर का बाणों से पीड़ित होकर कहना कि आगे जाने की मेरी सामर्थ नहीं, अर्जुन का उसको समझाना ॥

तब अर्जुन ने उतर को कहा, कि हे उतर, मेरे रथ को आगे बढ़ाओ। वह देखो भीष्मपितामहा का रथ है, मैं उसके पास जाना चाहता हूं और इन सारे कौरवों को जीतना चाहता हूं ॥

उतर बोला कि हे महारथी! बाणों के लगने से मेरे नेत्र शिथिल हो गये हैं और मेरे दिल में बड़ा भय उत्पन्न हो रहा है। मैंने कभी ऐसा घोर संग्राम नहीं देखा, मेरा चित मोहित हो रहा है, मुझ में शक्ति नहीं कि मैं अधिक काल तक बाग डोर पकड़ सकूं। आप अब मुझे आज्ञा दीजिये के मैं लौट जाऊं ॥

अर्जुन ने उस के यह वचन सुन कर कहा कि हे उतर तुम महा पराक्रमी विराट के पुत्र हो, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हो, तुम को ऐसा शब्द कहना ठीक नहीं, अभी थोड़ी सी और देर है और हम घर को लौटेंगे ॥

मुझे इन पापी कौरवों की सेना को मार लेने दो, तुम अपने जीवन की कोई चिन्ता न करो, केवल रथ पर बैठ कर घोड़ों की बाग डोर पकड़े रखो शेष सब काम मैं आप करूंगा उतर बोला कि हे अर्जुन तुम्हारे गाण्डीव धनुष की टंकार

ने मेरे शिर को पीड़ित कर दिया है, तुम ही हो जो इस को कान तक खींच कर चढ़ाते हो और बाण छोड़ते हो, मुझे तो समझ भी नहीं आता कि तुम क्या करते हो। अर्जुन ने कहा कि मैने इन्द्र, वरुण, शिवजी, प्रजापति आदि सब देवताओं के अस्त्र सीखे हैं और मैं उन का भले प्रकार से प्रयोग कर सकता हुं ॥

यह कह कर उत्तर को परचा लिया, तब उत्तर उस के रथ को भीष्म के पास ले गया और उन दोनों का बड़ा युद्ध होने लगा। फिर दुशासन, विकर्ण, दुसह और विविंशती आगए और अर्जुन से लड़ने लगे। परन्तु सब हार कर भागे और अर्जुन उस सेना में चारों ओर घूमने लगा ॥

बावनवां अध्याय

—:-०-:—

अर्जुन का सब सेना से युद्ध होना ॥

तब सब सेना और कौरवों के बड़े २ महारथी अर्जुन के सामने आये परन्तु अर्जुन के बाणों से वेधत होकर भाग गए, फिर भीष्म जी दोबारा आये, पहिले अस्त्र विद्या के बल से लड़ते रहे फिर दुर्योधन, दुशासन, विकर्ण आदि आये परन्तु हार गए और युद्ध से भागे। दुर्योधन को भागते हुए देख कर अर्जुन ने तालिया वजाई और कहा कि अरे दुर्योधन

तेरा नाम दुर्योधन किस ने रक्खा है तू तो सुयोधन है। भागने वालों को दुर्योधन कौन कहता है। देख मैं कुंती का पुत्र और युधिष्ठर का भाई हूं, तुम्हारा जूआ कहा गया अपने दुष्ट कर्मों को याद करके आज वाजे क्यों नहीं बजवाता, देख यदि जीवणा चाहता है, तो हमारा राज्य दे दे ॥

यह वचन सुन कर घायल हुआ २ दुर्योधन फिर रथ को फेर लाया और अर्जुन के सन्मुख आया। उस को ऐसी दशा में लौटते हुये देख कर कर्ण आगे बढ़ा और दुर्योधन को रोकने लगा। फिर भीष्म जी भी सचेत हो कर आगये। फिर द्रोणाचार्य कृपाचार्य, विविंशती और दुःशासन भी धनुष बाण लेकर आगये और अर्जुन पर बाण वृष्टि करने लगे, अर्जुन ने सब बाणों को रोक दिया और ऐन्द्र नामी अस्त्र का प्रयोग किया और गांडीव का टंकार कर महानन्द शंख बजाया जिस से कौरव पीडित होकर मोहित होगये और अस्त्रों को छोड़ कर जहां तहां रह गये ॥

तब अर्जुन को उतरा की बात याद आई। उसने उतर को कहा कि इन मूर्छितों के वस्त्र उतार लाओ। भीष्म को मत छुओ, वह मोहित नहीं, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के श्वेत कर्ण के पीताम्बर और दुर्योधन के नीलांबर वस्त्र उतार लाओ ॥

अर्जुन का कहना मान कर उत्तर झट रथ से कूद पड़ा और कौरवों के वस्त्र उतार लाया ॥

कुछ काल के पश्चत् दुर्योधन को होश आई और वह भीष्म से कहने लगा कि अर्जुन को बाणों से खूब पीड़ित करो भीष्म बोला कि अरे मूर्ख इतनी देर तो मृतक समान पड़ा रहा और मुझ को ऐसी बात बताता है? अर्जुन चाहता तो तुझको और अन्य कौरवों को मार देता, परन्तु वह अधर्मी नहीं और उसने तुम्हारी मूर्छित दशा में तुम को कुछ नहीं कहा। अब तुम उसको गौएं ले जानेदो। उसकी जय हो गई और तुम अपने प्राणों को लेकर घर पहुंचो॥

यह सुन कर दुर्योधन लज्जित सा हो गिया और चुपका खड़ा रहा। इधर कौरव भी चुपके से होरहे। तब अर्जुन ने वृद्ध कौरवों के चरणों में बाण छोड़ कर उनको साष्टांग दण्डवत की और एक बाण दुर्योधन के शिर पर मार कर रथ को विराट नगर की ओर लौटा दिया। तब उतर को कहने लगा कि तुम्हारे सब शत्रु जीते गये॥

तिरनवां अध्याय

—:०:—

अर्जुन का नगर को लौट कर आना

जब लौट कर आये तो अर्जुन ने उतर से कहा कि मैंने तुम को अपना आप बता दिया है कि मैं अर्जुन पांडव हूं

अब याद रखो कि यह वृत्तान्त अपने पिता से कभी न कहना ऐसा न हो कि वह शोच में मर जाय। उतर बोला कि बहुत अच्छा फिर अर्जुन ने कहा कि इस विजय को भी मेरी चेष्टा कभी न कहना, परन्तु अपना काम बतलाना, उतर बोला कि बहुत अच्छा जब तक आप स्वयं इसकी बाबत न कहेंगे, मैं किसी को कुच्छ न कहूंगा॥

तब उसी श्मशान में पहुंचे, और सब शस्त्रों को यथा पूर्व शमी वृक्ष पर रख दिया। तब एक गोकुल देख कर ठहिर गये और गोपों को विराट नगर में भेज कर राजा को यह सन्देशा भेजा कि उतर ने कौरवी सेना जीतली है और स्नान कर कुच्छ काल विश्राम पाकर चल दिये। अर्जुन ने उसी प्रकार वेणी बनाली और सारथी बन बैठा और उतर रथ में बैठ गया॥

चौवनवां अध्याय

—:-o-:—

विराट का नगर को लौट कर आना, और उतर को युद्ध में गये हुए सुन कर सेना को सहायता के लिये भेजना, युधिष्ठिर का पासे खेलना, विराट का उसको पासा मारना॥

इधर जब विराट युद्ध जीत कर आया तो अपने पुत्र भूमिजय अर्थात उतर को नगर में न देख कर पूछने लगा कि उतर कहां है। लोग ने कहा सब कौरवी सेना बड़े २ महारथियों के साथ गौ हर ले गई थी और उतर क्रोध करके उन को ताड़ने को गया है, राजा ने पूछा कि उस के साथ कौन गया है मंत्रियों ने कहा कि केवल बृहन्नला उस की सारथी बनी है राजा कहने लगा कि बहुत बुरा काम हुआ, नपुंसक को सारथी बना कर वह कैसे बच सकेगा, वह अवश्य मारा गया होगा ॥

यह सुन कर युधिष्ठर बोला कि महाराज जिस का बृहन्नला सारथी हो, उस को पराजय कहां, मनुष्य तो क्या देवता भी जीत नही सकते, तब राजा ने बड़े २ योधाओं को आज्ञा दी कि तुम उतर की सहायता के लिए अभी जाओ राजा की आज्ञा पर उन सब लोगों ने अपने २ वाहन ले कर चल दिए ॥

उन को गया हुआ देख कर राजा ने युधिष्ठर को कहा कि आओ पासा खेलें और द्रोपदी को कहा कि पासे ला दो युधिष्ठर के मन में द्विचती सी हो रही थी और उस ने उस समय राजा को कहा कि पासा खेलना अच्छा नहीं देखो युधिष्ठर इसी व्यस्न से धन ऐश्वर्य और राज्य खो कर वनवास के दुःख उठाता रहा इस लिये मैं तो खेलना नहीं चाहता परन्तु यदि आप की इच्छा अवश्य खेलने की हो तो मैं रोक नहीं सकता ॥

राजा ने युधिष्ठर का कहा न माना और उस के साथ जूआ खेलने लगा इतने में दूतों ने आकर सूचना दी कि उतर विजय कर के आ रहे हैं, राजा ने लोगों को आज्ञा दी कि बाजे लेजाकर उसका भली प्रकार सत्कार करो, उतरा भी जाए और सब कुमारियों को साथ ले जाय, तब राजा उतर के गुणों की श्लघा करने लगा। युधिष्ठर बोला कि महाराज जिसका वृहन्नला साथी हो वह मनुष्यों को छोड़ कर देवताओं को भी जीत सकता है॥

यह सुन कर राजाने हाथ में लिया हुआ पासा बल से युधिष्ठर के नाक पर मारा, और कहने लगा कि अरे नीच ब्राह्मण तू नपुंसक को मेरे पुत्र से बढ़ कर बताता है, और मेरा अपमान करता है?

युधिष्ठर पासा प्रहार से चुपका होकर एक कोने में जा बैठा परन्तु उस के नाक से रुधिर जारी हो गया युधिष्ठर ने सैरन्ध्री से कहा कि पानी लाय पानी आने पर उस ने रुधिर को उस में डाल दिया ताकि वह भूमि पर गिर कर अर्जुन की प्रतिज्ञानुसार उस का सर्व नाश न करावे इतने में उतर नगर मे आगया॥

राजा ने कहा कि वृहन्नला और उतर दोनों आवें परंतु युधिष्ठर ने लाने वाले को कान मे कहा कि देखो वृहन्नला को अंदर न लाना जब वह मुझ को रुधिर से लिप्त देखेगी तो राजा को मंत्रियों सहित भस्म कर देगी इस लिए केवल उतर ही को लाना॥

तब उत्तर अंदर आया और उस ने युधिष्ठर और राजा को दण्डवत की, युधिष्ठर को एक कोने में रुधिर लिप्त देख कर बोला कि इस का क्या हुआ। राजा बोला कि यह नीच ब्राह्मण बार २ बृहन्नला की स्तुति करता है और नपुंसक को तुम से बढ कर बताता है, उत्तर बोला कि हे पिता तुम ने बड़ा अपराध किया यदि इस ब्राह्मण का रुधिर भूमि पर गिर पड़ता तो हमारा कुल भस्म हो जाता आप शीघ्र इन से अपना अपराध क्षमा कराईये ॥

तब राजा ने शीघ्र ही युधिष्ठर से क्षमा मांगी युधिष्ठर बोला कि मैंने तुम को उसी क्षण तुम्हारी अज्ञानता समझ कर क्षमा कर दिया था और इस लिये रुधिर को भूमि पर नहीं गिरने दिया था ॥

तब विराट आनन्द में बड़ा मगन हुआ और पुत्र से पूछने लगा कि हे आयुष्मान तुमने भीष्म को कैसे जीता ! द्रोणाचार्य को कैसे पराजय किया, कृपाचार्य अश्वत्थामा से कैसे लड़ाई हुई दुर्योधन किस प्रकार भागा ॥

यह कह कर विराट आनन्द अश्रु पात करता हुआ उत्तर को बार २ आलिंगन करने लगा ॥

पचपनवां अध्याय

—:-०-:—

उतर का युद्ध को जीतने का वृत्तान्त कहना

तब उतर बोला, कि महाराज, कौरवों की भयानक सेना देख कर मैं तो बहुत घबरा गया और घबरा कर भागने लगा था, परन्तु एक देव पुत्र मुझ को भागते हुए देख कर मेरे पास आया और कहने लगा कि देखो भागो मत युद्ध करो, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा, मैं उस का वचन मान कर लौटा तब उस देव पुत्र ने सब महारथी कौरवों को अपने अतुल पराक्रम से मार कर भगा दिया और गाएं भी जीत लीं नहीं तो मुझ में कहा सामर्थ थी कि मैं उस महा भयंकर सेना को मार कर संहार सकूं ॥

राजा ने पूछा कि वह देव कुमार अब कहां है उतर बोला कि हमारा जय करके वह उसी समय अन्तर्धान होगया परन्तु मुझ से वह कह गया कि मैं तीन दिन के पश्चात् आऊंगा, इस लिये वह तीन दिनों के पश्चात् आवेगा और आप उस के दर्शन करेंगे ॥

उनसठवां अध्याय

—:o:—

पांडवों का राज्यासन पर बैठना ॥

इस के तीन दिन के उपरांत पाण्डवों ने नियम पूर्वक व्रत रखा और स्नान करके शुभ मुहूर्त में उत्तम वस्त्र आभूषण धारण करके विराट की सभा में जाकर राज्यासन पर बैठ गए ॥

जब विराट ने आकर उन को इस दशा में देखा तो क्रोध से उस की आखें लाल हो गईं और उच्च स्वर से कहने लगा कि अरे कंक तेरे मन में यह भाव कैसे उत्पन्न हुआ, मेरा सभासद होकर तू यह प्रमाद करता है कि मेरे राज्यासन पर बैठता है ॥

तब अर्जुन उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि महाराज यह कुन्ति पुत्र युधिष्ठिर धर्म राज हैं आप के नगर में गुप्त रूप से वास करते थे अब इन के वनवास का समय व्यतीत हो चुका है और यह अपने आप को प्रकट करते हैं विराट ने विस्मित हो कर पूछा कि अच्छा यदि यह युधिष्ठिर है तो शेष चार पाण्डव कहां हैं ? तब अर्जुन ने द्रौपदी समेत सब के नाम लिये ॥

तब उत्तर ने कहा कि महाराज, जिस देव कुमार का मैं ने आप से वर्णन किया था वह यही अर्जुन है इसी ने

कौरवों की सेना को परास्त किया था और यही हमारी गौओं को छुड़ा कर ले आया था विराट बोला कि मुझ को भी तो इन्हीं महात्माओं ने छुड़ाया है तब उस ने पाण्डवों से अपने अपराधों को क्षमा कराया परन्तु पाण्डवों ने कहा कि हे राजन् हम ने सुख पूर्वक एक वर्ष तेरे राज्य में वास किया है हम को कोई दुःख नहीं हुआ ॥

तब राजा ने अपनी कन्या उतरा को अर्जुन से ब्याह कर सम्बन्ध उत्पन्न करने की इच्छा की परन्तु अर्जुन ने कहा कि मैं उस कन्या को नाचना सिखाता रहा हूं इस लिये वह मेरी पुत्री है मैं जितेन्द्री हो कर उस से विवाह नहीं कर सकता हां मेरा लड़का श्री कृष्ण जी का भानजा अभिमन्यु नाम से विख्यात है वह सब प्रकार उतरा के योग्य है यदि इच्छा हो तो राज कुमारी का विवाह उस से हो सकता है ॥

विराट ने इस बात को मान लिया, पाण्डवों ने अपने सब मित्रों को विराट में बुलाया और उतरा का विवाह अभिमन्यु से हो गया ॥

॥ इति विराटपर्व समाप्तम् ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत

॥ भारत वर्ष देश का प्राचीन इतिहास ॥

* उद्योगपर्व *

१९१३

ला० राम दित्ता मल्ल ऐंड सनज़

पब्लिशर्स तथा पुस्तकांवाले लोहारी दर्वाज़ा

लाहौर ने

ला० सालिग्राम से

अरोड़वंश यंत्रालय लाहौर में मुद्रित करवाकर

प्रकाशित किया ॥

मूल्य उद्योगपर्व ।।।=) .... सम्पूर्ण महाभारत ८)

उद्योग पर्व

पहिला अध्याय

राजा विराट की सभा में श्री कृष्ण, बलभद्र, सात्यकी आदि शूरवीर क्षत्रियों की बात चीत होना ॥

र दिन तक विवाह की धूम धाम रही, इस के पश्चात् राजा विराट ने सभा की और उस में सब पाण्डव गए, श्री कृष्ण, बलभद्र और सात्यकी भी गए और उन के अतिरिक्त वृद्ध महाराज द्रुपद और उन का पुत्र शिखंडी और अन्य योधा जो पाण्डवों के बनवास की अवधी सुन कर विवाह पर आए थे उपस्थित हुए द्रुपद और

विराट सब से बड़े होने के कारण एक उच्च आसन पर बैठ गए और शेष सब के सब अपने अपने दर्जे के अनुसार उन के सन्मुख बैठ गए ॥

तब श्री कृष्ण जी ने [illegible] यह वचन बोले "हे महाशयो ! आप सब को प्रतीत है कि किस प्रकार सुबल के पुत्र ने धोखे से पाण्डवों के साथ जूआ खेला और इन का राज्य जीत कर तेरह वर्ष वनवास में रहने की प्रतिज्ञा भी करवाली पाण्डव चाहते तो सब पृथ्वी को जीत लेते परंतु यह सत्य पर टिके रहे और तेरह वर्ष महा कष्ट में बिता दिए और अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया, परंतु अब यह अपने पिता का राज्य चाहते हैं, जो कि धर्मानुसार इन को मिलना चाहिए, इस लिए जिस प्रकार युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों का भला हो, वह बात आप सब विचारें, युधिष्ठिर धर्म के विरुद्ध कुछ काम करना नहीं चाहता और अधर्म से यदि स्वर्ग का भी राज्य मिले तो ले लेना उचित नहीं समझता, परंतु धर्म से केवल एक ही ग्राम पर संतोष करेंगे, दुर्योधन ने अपने पराक्रम से इन को नहीं जीता किंतु जूए में जो कि कपट से प्रवृत्त किया गया था इन का देश जीत लिया इस लिए दुर्योधनादि कौरवों से वह राज्य वापिस मिलना चाहिए परंतु हमें दुर्योधन का मत प्रतीत नहीं कि आया वह क्या चाहता है ॥

पूर्व काल में पाण्डवों को बड़े कष्ट मिले, इन को मारने के कई उपाय सोचे गए, परंतु इन के प्रबल भाग्य से यह बच रहे, यदि अब दुर्योधनादिकों का मत वैसा ही है, तो उन

से अवश्य युद्ध करना पड़ेगा, कई शूर वीर वृथा मारे जायेंगे पाण्डव तो उन को जीत ही सकते हैं, इस में किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता ॥

इस लिये यदि आप की सम्मति मेरे साथ हो तो एक विद्वान दूत उन के पास भेज दें, जो उन से वार्तालाप करके और पाण्डवों के आशय को प्रकट करके दुर्योधनादि का उत्तर लादे, उस को पाकर पाण्डव देख सकते हैं कि आया उन को युद्ध करना पड़ेगा वा विना युद्ध के राज्य मिल जायगा ॥

कृष्ण देव के इन वचनों को सुन कर बलदेव जी बोले कि मैं श्री कृष्ण के साथ एक सम्मति हूं, उन्हों ने सब के हित की बात कही है, परंतु जो कोई दूत बन कर जाय वह बड़ा समझदार और बात चीत में चतुर होना चाहिए प्रथम तो द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य शकुनि, और नगर के श्रेष्ठ पुर वासी उपस्थित हों, यदि कोई ऐसा अवसर न मिले तो सब को बुला लेना चाहिये ॥

दूसरी बात यह है कि युधिष्ठिर ने आप ही शकुनि के साथ जुआ खेला था, किसी के कहने पर नहीं खेला था इस में शकुनि को दोष नहीं इस लिए जो बात कही जाय वह नम्रता पूर्वक कही जाय, यदि कोई चाहे कि कि वह धमकी दे कर दुर्योधन को मनाले, तो यह बात असंभव है यदि युद्ध से बचना चाहते हो तो उस से समझ बूझ कर ही बात चीत

करना, क्योंकि जो काम सुलय सफाई से निकलता है, वह युद्ध से नहीं निकलता ॥

बलदेव जी के यह बचन सुन कर सात्यकि को बड़ा क्रोध आया और बोल उठा कि बलदेव जी जैसा मनुष्य का आत्मा होता है वह वैसे ही शब्द उच्चारण करता है, एक ही कुल में बलवान और निर्बल पुत्र उत्पन्न होते हैं, हम आपके बचन को दोष नहीं देते, परंतु जो उन को सुनते हैं वह दोष युक्त हैं क्योंकि कोई पुरुष युधिष्ठर का थोड़ा भी दोष बता सकता है शकुनि ने छल से जूआ जीता क्या यह उस का दोष नहीं ? यह किस क्षत्रिय धर्म के अनुकूल है ॥

इस लिये क्यों युधिष्ठर उनकी शरण में जायें और बाप दादों के राज्य को त्यागदें। फिर यह बनवास भी कर आये हैं। अब कहते हैं कि तेरहवें वर्ष यह प्रकट हो गये, परंतु यह भी झूठ है। भीष्म, द्रोण और विदुर जी गणना कर चुके हैं और कह चुके हैं कि वह तेरहवां वर्ष बिता कर आये हैं। फिर किस प्रकार इन पर दोष लगायें ॥

हमतो नम्रता पूर्वक कभी बात नहीं करेंगे। यदि दुर्योधन ने आधा राज्य न दिया तो उसको युद्ध में जीत कर युधिष्ठर के आधीन करावेंगे। और यदि उसने पाओं पर पड़ना स्वीकार न किया, तो यमपुरी का रस्ता दिखावेंगे। देखो यह महा पराक्रमी अर्जुन, श्रीकृष्ण और भीमसेन हैं, यह द्रौपदी के पुत्र और अभिमन्यु हैं मैं हूं प्रद्युम्न और सांबजी हैं, महारथी

द्रुपदजी और उन के पुत्र हैं। क्या कौरव हम सब से अधिक दुसह और वेग वान हैं? हम अवश्य ही उनको मार कर युधिष्ठर का राज्याभिषेक करेंगे। आततायी को मारना अधर्म नहीं परन्तु धर्म ही है॥

तब द्रुपद बोला कि मैं सात्यकि के वचन को ठीक मानता हूं। दुर्योधन से नम्रता करनी सर्वथा मूर्खता है, इस से वह यह समझेगा कि हम में बल नहीं, बुद्धिमान और धर्मात्मा तो नम्रता से समझ जाते हैं परन्तु कुबुद्धि और पापात्मा मृदुता को निर्बलता समझते हैं। आप सब मित्रों को दूत भेजें, कि वह अपनी २ सेना तैय्यार रखें। यह हमारे पुरोहित दूत का काम कर सकते हैं। यदि आप उचित समझें तो सब राजाओं को दूत भेजें अथवा धृतराष्ट्र को कहला भेजें। परन्तु सफलता होनी असंभव है। धृतराष्ट्र तो अपने पुत्र के वश में है, द्रोणाचार्य उनका अन्न खाते हैं। कर्ण और शकुनी पहिले ही मूर्ख हैं, यह अवश्य ही दुर्योधन का पक्ष करेंगे॥

यह सुन कर श्री कृष्ण जी बोले कि महाराज द्रुपद ने सब सत्य कहा है, और उनके वचन नीति के अनुकूल हैं। हमारा कौरवों और पाण्डवों से एक जैसा सम्बन्ध है। हम यहां विवाह के लिये आये थे, अब घर को जायेंगे। इस लिये आप आज ही सब राजाओं को संदेशा भेजदें॥

धृतराष्ट्र और भीष्म आप के सखा हैं, यदि वह आप का मन्त्र मान लें और शान्ति करें तो अच्छा है, क्योंकि आपस

में भाई पन तो बना रहेगा, परन्तु यदि न मानें तो नाश को प्राप्त होंगे, आप सब राजाओं को बुलावें, और फिर हम को भी बुला लेना ॥

दूसरा अध्याय

—:०:—

कृष्णचन्द्र का विदा होना, सब राजाओं को संदेशा भेजना, कौरवों का भी सब राजाओं को बुलाना। द्रुपद का पाडवों की ओर सहस्तिना-पुर में दूत भेजना ॥

तब कृष्ण चन्द्र विराट नगर से विदा होकर द्वारका को चले आये तत्पश्चात् राजा द्रुपद ने समुद्र तक के सब राजाओं को दूत भेजे और युधिष्ठिर के नाम से सब को युद्ध का निमन्त्रण भेजा यह बात कौरवों को विदित हो गई और उन्हों ने भी अपने २ मित्र राजाओं को संदेशे भेजे। दोनों के पास बड़ी सेना एकत्र होने लगी ॥

तब द्रुपद ने परोहित को बुलाया और कहा कि हे महाराज आप धर्म शास्त्र और नीति के ज्ञाता हैं, आप कृपा करके हस्तिनापुर में जावें और धृतराष्ट्र को समझावें आप युधिष्ठिर को भी जानते हैं, और दुर्योधन को भी, इस लिये आप उन के

धर्म युक्त वचन कह कर उन के मन को अवश्य लौटावें, विदुर जी आप के सहायक होंगे, आपने भीष्म आदि वृद्धों में भी भेद उत्पन्न कर देना मंत्रियों और योधाओं में भेद होने से दुर्योधनादि उन को इकट्ठा करने में लग जायेंगे। उसी अवसर में पाण्डवों की सेना एकत्र हो जायगी। आप भी कार्य करने में विलंब करते जावें, और कौरवों का प्रिय वाणी से मति भेद बढ़ाते जावें, यदि आप देर तक वहां रहें तो राजा धृतराष्ट्र भी तुम को अच्छा समझने लगेगा। इस लिये आप वहां रह कर पाण्डवों के गुणों को छोटे बड़ों तक पहुंचाते हुए, धर्म युक्त वार्ता करते हुए, पाण्डवों के क्लेशों को सब को गिनाते हुए सब दिलों में भय उत्पन्न करादें। आप को उन से कुच्छ भय नहीं। आप विद्वान और पण्डित हैं॥

यह कह कर पुण्य नक्षत्र प्रातःकाल विजय मुहूर्त में पुरोहित को हस्तिनापुर में भेज दिया॥

तीसरा अध्याय

—:०:—

अर्जुन का श्री कृष्ण को लेने के लिये द्वारका जाना, दुर्योधन का भी द्वारका पहुंचना, अर्जुन का श्री कृष्ण को सहायता में लेना और दुर्योधन का श्री कृष्ण

की सेना को मांगना ॥

तब अर्जुन श्रीकृष्ण जी को बुलाने के लिये द्वारका को चल दिया। दुर्योधन ने भी गुप्त दूतों के द्वारा उन का सब भेद ले लिया हुआ था। उसने भी बहुत सी सेना ली और श्रीकृष्ण जी के पास चला गया। जब वह उनके पास पहुंचा तो श्री कृष्ण जी सो रहे थे, दुर्योधन उनके शिर की ओर एक सुन्दर आसन पाकर बैठ गया। उसी समय अर्जुन भी आया, और दुर्योधन को बैठा हुआ देख कर, कृष्ण चन्द्र के पाओं की ओर बैठ गया ॥

कुछ काल पश्चात् श्रीकृष्ण चन्द्र जी उठे और उन्हों ने अर्जुन को देखा, तत्पश्चात् दुर्योधन ने भी प्रणाम किया श्रीकृष्ण जी ने दोनों का कुशल क्षेम पूछा। उन्हों ने उत्तर दिया कि महाराज आप की सहायता लेने के लिये आये हैं दुर्योधन बोला कि मैं पहिले आया हूं मेरा कृष्णचंद्र जी ने कहा तुम दोनों से एक सा सम्बन्ध है। इस लिये मैं तुम दोनों को सहायता दूंगा ॥

मेरा और आप का सम्बन्ध होने से मैंने प्रतिज्ञा की है कि कौरव और पाण्डवों के युद्ध में मैं शस्त्र नहीं पहिनूंगा इस लिये एक ओर तो मैं शस्त्र हीन हूं, परन्तु दूसरी ओर मेरी सारी गोपों की सेना है। अर्जुन को मैंने पहिले देखा है और तुम दोनों में वह छोटा भी है। इस लिये इन दोनों बातों में से जिसको चाहे मांग ले ॥

अर्जुन ने कहा कि महाराज चाहे आप शस्त्रधारी हों

अथवा न शस्त्र खाते हों, मुझ को तो केवल आप की अवश्यक्ता है। आप के होने पर मेरे सब कार्य सिद्ध होंगे। तब दुर्योधन को सेना मिल गई। सेना पाकर दुर्योधन को बड़ा हर्ष हुआ और वह सोचने लगा कि अब हमारी विजय निश्चिय होगी॥

श्री कृष्ण से सेना लेकर दुर्योधन बलदेव जी के पास गया और अपने आने का कहा प्रयोजन बलदेव ने कहा कि हे दुर्योधन हम ने तुम्हारे हित की बात पांडवों से कही थी परंतु हमारी बात को किसी ने नहीं सुना, अब मैं न तुम्हारी सहायता करूंगा, न अर्जुन की, परन्तु वासुदेव जिधर होंगे उधर ही जाऊंगा। क्योंकि उन के बिना दो दिन काटना मेरे लिये कठिन है, दुर्योधन ने समझा कि यह भी न लड़ेंगे, सो यह सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बलदेव जी को अलिंगन करके और विदा हो, कृत वर्मा के पास गया और उस से एक अक्षौहिणी सेना ली॥

दुर्योधन के चले जाने पर अर्जुन को श्री कृष्ण ने पूछा कि तुम ने मुझ शस्त्र हीन को क्यों मांगा, अर्जुन बोला कि हम को लड़ने लड़ाने की अवश्यक्ता नहीं, यह आप की कृपा से हम बहुत कुछ कर सकते हैं, आप की कीर्ति संसार में विख्यात है इस लिये हम यश के अभिलाषी होकर यशस्वी काम करने लगेंगे, आप मेरे सारथी बन कर हमारी सहायता करें, श्री कृष्ण जी ने यह बात अंगीकार की॥

चौथा अध्याय

—:-०-:—

पांडवों का मद्रराज शल्य को बुलाना, दुर्योधन का धोके से अपना ओर करना। शल्य का युधिष्ठर से मिलना और प्रतिज्ञा करना ॥

दुर्योधन ने अपने राज्य में चर्गों ओर सभायें और ठहरने के पड़ाओ बनाए। मद्रदेश का राजा शल्य जो माद्री का भाई और पाण्डवों का मामा था, बड़ा पराक्रमी था उस के पास एक अक्षौहिणी सेना थी, वह बुद्धिमान था इन सभाओं और ठहरने के स्थानों को देखते हुये उस ने एक विचित्र सभा स्थान को देख कर बड़ा अचंभा की और वहां कि सेवकों को कहने लगा कि इस सभा के बनाने वाले पर हम बड़े प्रसन्न हैं, जाओ उस को बुला लाओ, हम उस को परितोषिक देना चाहते हैं ॥

सेवकों ने झट आकर दुर्योधन को समाचार दिया दुर्योधन शाल्व के पास गया और नमस्कार करके अपने मामा का कुशल क्षेम पूछा। शाल्य ने कहा कि तुम्हारे इस सभा को बनाने का हाल सुन कर में बड़ा प्रसन्न हूं। तुम जो चाहो वह मुझ से मांगो दुर्योधन ने कहा कि महाराज आप हमारी सेना के पति बनें, शाल्य बाला कि बहुत अच्छा, मैं तुम्हारा सेना

का पति बनूंगा अब बतलाइये और क्या चाहते हैं? दुर्योधन ने कहा कि यही चाहिये था॥

तब शल्य बोला कि अच्छा अब मुझे आज्ञा दो कि मैं शत्रु नाशक युधिष्ठिर को मिल आऊं दुर्योधन ने कहा कि बहुत अच्छा जल्दी से लौट कर आइये, तब शल्य युधिष्ठिर के पास गया और उस को अपने आने का वृत्तांत सुनाया वह बोला कि जो हुआ सो बहुत ठीक हुआ परन्तु हमारा सम्बन्ध आप से अधिक है आप अवश्य ही दुर्योधन के सेना पति बनें परन्तु जब अर्जुन और कर्ण का युद्ध हो तो आप कर्ण के सारथी बन कर उस की लक्ष्मी और तेज को नष्ट करें॥

शल्य बोला कि ऐसा ही होगा, मैं कर्ण का सारथी बनूंगा वह हम को सदा वासुदेव के समान जानता है हम उस को अहित वा निन्ध वचन कह २ कर उस के तेज और अहंकार को नष्ट करदेंगे इस के अतिरिक्त और जो कुच्छ आप की प्रिय बात होगी वह करेंगे, आपने बहुत दुख उठाया है अब आप को सुख मिलेगा, देखो नल दमयंति ने कितना दुख पाया और फिर उन के भाग्य का उदय हुआ, इसी प्रकार इन्द्र ने इन्द्राणी सहित बहुत दुख पाया था और फिर उस के भाग्य का उदय हुआ था॥

पाचवां अध्याय

—:०:—

शल्य का इन्द्र के कष्ट विश्वरूप के मारे जाने वृत्तासुर की उत्पत्ति और विनाश की कथा सुनानी

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि मामा जी इन्द्र को कैसे आपत्ति आई थी और वह किस प्रकार मुक्त हुआ था। शल्य जी बोले कि पूर्व काल में त्वष्ट नाम प्रजा पति ने इन्द्र को मारने के अभिप्राय से विश्वरूप नाम एक पुत्र उत्पन्न किया उस के तीन शिर थे एक से वेद पढ़ते दुसरे से मधूपान करते और तीसरे से सब दिशाओं को देखते भालते, यह तीनो शिर सूर्य चन्द्रमा और अग्नि के समान थे॥

विश्वरूप वृद्धि पाने की इच्छा से बड़ी उग्र तपस्या करने लगा, इन्द्र ने समझा कि मुजको मारने का उपाय है इसालिये बड़ी चिन्ता करने लगा, तब इन्द्र ने अप्सरा भेजी और कहा कि तुम जाकर विश्वरूप के मन को डुलाओ, तब अप्सरा बहुत सुन्दर रूप धारण करके और नाना प्रकार के वेष लगा कर विश्वरूप के सन्मुख गई और बहुतेरा नाचती गाती रही परन्तु विश्वरूप की तपस्या में विघ्न न हुआ॥

इन्द्र ने बहुतेरा सोचा, परन्तु किसी विधि से भी उसको वश में करना सुगम प्रतीत न हुआ। तब इन्द्र ने वज्र मारा जिससे विश्वरूप मोहित होकर गिर पड़ा, परन्तु मरा नहीं। इस

से इन्द्र और भी दुःखी हुआ। दैव योग से वहां एक बढ़ई आ गया, इन्द्र ने कहा कि विश्वरूप के शिरों को कुल्हाड़ी से काट दो तुम्हारा इस में कल्याण होगा॥ बढ़ई बोला कि इसका बड़ा भारी कन्धा है, प्रहार करने से कुल्हाड़ी टूट जायगी, इस के अतिरिक्त ब्राह्मण का मारना अधर्म है॥

इन्द्रने कहा कि तुम मत डरो, मैं तुम्हारे कुल्हाड़े को वज्र के समान बना दूंगा, बढ़ई ने कहा कि आप कौन हैं जो ऐसा घोर कर्म करते हैं इंद्र बोला कि मैं देवताओं का राजा इंद्र हुं बढ़ई ने कहा तुम इतने बड़े देवता होकर ऐसे घोर पाप युक्त काम करते हो, तुम को लज्जा आनी चाहिये, क्या तुम ब्रह्म हत्या को भी ठीक समझते हो॥

इन्द्र बोला कि इस को मार कर मैं बड़ा कठिन धर्म करूंगा जिस से कोई पाप मुझ को दुख नहीं देगा, यदि तुम यह काम करदो तो हम तुम पर बहुत अनुग्रह करेंगे आज से लोग यज्ञ में पशु का शिर तुम को बलिदान देंगे, यस सुन कर बढ़ई ने विश्वरूप के शिर काट दिए तब जिस मुख से वह वेद पढ़ते थे उस से कपिञ्जल नाम पक्षी निकले, जिस से मादिरा पान करते थे उस से कलविंक और जिस से सब जगत को पीते थे उस से तितर पक्षी निकले॥

जब त्वष्टा ने इन्द्र के हाथ से अपने पुत्र का वध सुना तो उस को बड़ा क्रोध आया और उस ने इन्द्र को मारने के योग समझ कर एक वृत्तासुर नाम राक्षस उत्पन्न किया, वृत्तासुर भयंकर और डरावना था और वह देवताओं के

साथ विशेष करके इन्द्र के साथ बड़ा युद्ध करने लगा यहां तक कि इन्द्र को पकड़ कर उस ने मुंह में डाल लिया, तब देवता बहुत घबराए उस समय उन्हों ने जमाई का पैदा किया जब वृत्तासुर को जमाई आने लगी तो इन्द्र झट उस के मुंह से निकल आया ॥

तब इन्द्र को आगे करके सब देवता विष्णु भगवान के पास गए और वृत्तासुर को मारने का उपाय पूछा । भगवान बोले कि इन्द्र उस से मित्रता रखे तो वह अवश्य मर जायगा यह सुन कर देवता लौट आये और इन्द्र ने वृत्तासुर से मैत्री करली, तब वृत्तासुर के सब छिद्र उस को प्रतीत होगए और उन्हीं छिद्रों के द्वारा उस ने उस को शीघ्र मार लिया ॥

वृत्तासुर को मार कर इन्द्र को बड़ा पाप लगा और वह उस से मूर्छित होकर समुद्र में गिरा, उस के छिप जाने से सब देवता दुर्बल होगए, पृथ्वी पर का प्रकाश जाता रहा वायु बंद होगई, नदियां झरने सूख गए, सब प्राणी व्याकुल हो इधर उधर भागने लगे तब देवता विचारने लगे कि हमारा राजा कौन बने ॥

छटा अध्याय

—:०—

देवताओं का नहुष को राजा बनाना, नहुष

का शचि को अपनी भार्या बनाने की इच्छा प्रगट करना देवताओं का रोकना शचि का इन्द्र की खोजना करना ॥

तब देवताओं ने नहुष से प्रार्थना की कि इन्द्र तो मित्र द्रोह के पाप से तेज नष्ट कर चुके, अब आप हमारे राजा बनिये। नहुष ने कहा कि मैं इन्द्र की भान्ति बलवान नहीं हुं, इस लिये मैं आप का राजा होने की सामर्थ नहीं रखता॥

देवताओं ने कहा कि आप शली गुण सम्पन्न है, देवताओं के सब लक्षण आप में पाये जाते हैं, स्वर्ग में आप का वास है। और किस बात की आप को आवश्यक्ता है? नहुष ने पहिले तो अंगीकार न किया, परंतु जब देवताओं ने उसको बारं २ यही कहा, तो उन के कल्याण के हेतु वह उनका राजा बन गया। और इन्द्र की पदवी पर नियुक्त हो गया॥

नहुष को राजा बना कर देवता सुख पूर्वक रहने लगे। नहुष भी बड़े आनंद से अप्सराओं और देव कन्याओं के गान और नाच देखता हुआ, नन्दन वन, हिमवान् और कैलाशपर्वत पर फिरता हुआ अपना काल सुख से बिताने लगा, एक दिन उसने सुकुमार मृदुलाङ्गी लावण्यमति शचि को देखा। और उसको देख कर कहने लगा कि हम इन्द्र के स्थान पर राजा हुए हैं हम को इन्द्र के सब भोग्य पदार्थ और रहने बैठने के स्थान मिल गये हैं परंतु इन्द्र की इन्द्राणी शचि अभी तक नहीं

मिली, वह हम को अवश्य मिलनी चाहिये वह हमारी रानी होगी। वह आज हमारे पास अवश्य यहाँ आवे ॥

यह सुन कर इन्द्राणी बहुत घबराई, और बोली कि मैं पतिव्रता हूं, एक इन्द्र के बिना और किसी को पति नहीं समझती हूं नहुष का मेरी आकांक्षा करना धर्म के विरुद्ध है मैं उस को कभी भी अपना पति नहीं बनाऊंगी ॥

तब शची बृहस्पति के पास गई और उस को कहा कि हे देव गुरु आपने कहा था कि मैं देवराज की अत्यन्त प्रिया सौभाग्यवति भार्या और पति व्रता धर्म पवित्र हूंगी। उस वाक्य को आज सत्य करने के लिये नहुष से मेरी रक्षा कीजिये, मैं आपकी शरण में हूं। बृहस्पति जी बोले कि हे इंद्राणी हमारी बात सत्य ही होगी। तुम शीघ्र अपने प्राण प्रिय इंद्र से मिलोगी ॥

जब नहुष ने इंद्राणी का बृहस्पति की शरण में जाने का हाल सुना तो उसने अंगिरा के पुत्र बृहस्पति पर बहुत क्रोध किया ऋष्यादि देवों ने इंद्र की क्रोध से विकराल आकृति देख कर कहा कि हे देवेन्द्र आप कोप न करें, शची पर स्त्री है। पर स्त्री को धर्मात्मा लोग ग्रहण नहीं करते इस लिये इस महा पाप से अपने मन को लौटाइये। यदि इन्द्र छल से वृत्तासुर को न मारता तो आज उस की यह दशा न होती ॥

नहुष ने बड़े क्रोध में आकर कहा कि हां आप के

सब उपदेशों को जानता हूं जब इन्द्र ने पर स्त्री अहल्या को उस के पति गौतम के देखते २ दूषित किया था, तो उस समय आप कहां थे। इन्द्र ने और भी कई कुकर्म किये, परंतु आप का धर्म उपदेश केवल आज ही सुना जाता है। बस हमारी आज्ञा है कि शची को आज ही हमारे पास लाया जाय, देवताओं ने कहा बहुत अच्छा, परन्तु आप क्रोध को दूर करें॥

तब देवता लोग बृहस्पति के पास गए और कहने लगे कि हे विप्रेन्द्र! नहुष इन्द्र से अधिक तेज रखता है और शची के आप की शरण में आने पर क्रोध करता है, आप उसे नहुष को देदें और वह उस की भार्या होजाय यह सब देवताओं की आप से प्रार्थना है॥

देवताओं की यह प्रार्थना सुन कर शची रोने लगी और कहने लगी कि हे ब्राह्मण! मैं नहुष को पति बनाना नहीं चाहती, बृहस्पति ने कहा कि न बनाओ यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर रखता है, हम शरणागत को कभी नहीं त्यागते. तुम तो धर्मज्ञ और सत्य शीला हो, तब वह देवताओं को कहने लगे कि हे देवगण हम यह कार्य कभी न करेंगे॥

तब देवताओं ने इंद्राणी से कहा कि आप पति व्रता और धर्म शीला हैं आप के तेज के आगे नहुष नहीं ठहर सकेगा, इस से निश्शंक होकर उस के पास जायें और यदि वह तुम को कुदृष्टि से देखेगा तो नष्ट होजायगा, देवताओं का

कहा मानकर शची नहुष के पास गई और उस को देख कर वह कामात्मा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥

नहुष ने कहा कि हे शची, सब देवता, यक्ष, किन्नर और गंधर्व मेरी सेवा करते हैं, तुम भी मेरी रानी बन कर पहिले की भांति स्वर्ग का राज्य भोगो, शची बोली कि हे सुरेश्वर ! मुझे प्रतीत नहीं कि मेरे पति को क्या हुआ और वह कहां है यदि तू मुझ को थोड़ा अवकाश दे तो मैं उस की खोजना करलूं, इस के पीछे जैसा कहोगे वैसा करूंगी नहुष इस से प्रसन्न हुआ और उस ने शची को अपने पति के खोजना का अवकाश दे दिया, तब इन्द्राणी ने अपने पति इन्द्र की खोजना आरम्भ की ॥

सातवां अध्याय

—:०:—

देवताओं का विष्णु के पास जाना और वरदान पाना, इंद्र का आना और फिर नष्ट होजाना, शची का विलाप और उपश्रुति की उपासना और इन्द्र का देखना ॥

तब देवता लोग श्रीविष्णु जी के पास आये और कहने लगे कि हे भगवन् ! इन्द्र कहीं नष्ट हो गये हैं, और

नहुष शची पर कुदृष्टि रखता है। आप ऐसा उपाय बनाइये जिससे इन्द्र की मोक्ष हो। विष्णु जी बोले कि इन्द्र को मेरी ही उपासना करना चाहिये, वह अवश्य मुक्त होगा, शची अपने पति को पायगी। इसके लिये अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये इंद्र को इंद्र पद मिल जायगा नहुष अपने कर्म से भ्रष्ट होगा॥

तब देवताओं ने विष्णु भगवान जी की उपासना की और भयभीत इन्द्र के पास बृहसपति समेत गए और जाकर अश्वमेध यज्ञ किये, इंद्र ने अपने ब्रह्महत्या नदियों, वृक्षों, पर्वतों पृथ्वी और स्त्रियों में बांट दी। तब पापात्मा इंद्र आत्म ज्ञानी होकर अनिंदित होगया और सवर्ग में आया परंतु नहुष को गद्दी पर बैठा हूआ देख कर कांपने लगा और फिर नष्ट होकर इधर उधर घूमने लगा॥

जब इंद्र आकर फिर गुप्त होगया तो इंद्राणी बड़ा विलाप करने लगी और समझी कि बस अब मैं नहुष के बस में गई, तब उस ने उपश्रुति की उपासना की, वह देवी सामने आई और कहने लगी कि मैं तुम को इंद्र से मिलाऊंगी, तुम मेरे साथ शीघ्र चलो शची उपश्रुति के साथ २ होली आकाश और पृथ्वी के सब स्थान उन्हों ने खोज डाले अंत को समुद्र के पास पहुंचीं और वहां इंद्र को सूक्ष्म रूप धारण किये हुए पाया॥

शची उस को देख कर प्रार्थना करने लगी, परंतु इंद्र बोला कि तू यहां क्यों आई है ? इन्द्राणी बोली कि हे भगवन् तीनों लोकों का राज्य पाकर नहुष बड़ा घमण्डी होगया है और मुझ को अपनी भार्या बनाना चाहता है, यहां तक कि उस दुष्टात्मा ने मुझ से प्रतिज्ञा भी करा ली है कि यदि इन्द्र न आए तो मैं उस के वश में होजाऊंगी ॥

तब इन्द्र ने कहा कि नहुष इस समय बलवान है, उस से युद्ध करना उचित नहीं मैं तुम को एक बात बताता हूं । तुम नहुष को जाकर कहना कि मैं तुम्हारी भार्या बनती हूं परन्तु तुम में कुछ इन्द्र से विशेष बात होनी चाहिये । इस लिये तुम अपनी पालकी ऋषियों से उठवाया करो ॥

शची बोली कि बहुत अच्छा । तब शची नहुष के पास आई । नहुष ने समझा कि अब यह मुझ पर मोहित है और यह विचार कर कहने लगा कि सुन्दरी जो आप मेरे योग्य हो वह मैं करूं ।। कहो क्या चाहती हो ?

शची बोली कि अवधि पूरी होने पर मैं तुम्हारे वश में तो हो ही जाऊंगी । परन्तु एक बात आप करें, अपने तेज को सब प्रकार से बढ़ावें, मैं दूसरा पति भी करूं और वह भी पहिले ही की भान्ति तेज हीन हो, तो मुझे क्या लाभ है ?

नहुष बोला कि कहो कैसे करूं । शची बोली कि इन ऋषियों महर्षियों को भली प्रकार वश में रखो, और इन को अपना वाहन बना कर इन से पालकी उठवाया करो ॥

नहुष हंसकर बोला कि यह आन सी बात है, अब से ऐसा ही करके तुम्हारे वचन को प्रसन्न किया करूंगा। तब से नहुष अपनी पालकी ऋषियों से उठवाने लगा और सप्तर्षि उसके वाहन का काम देने लगे॥

तब शची बृहस्पति के पास आई और कहने लगी कि महाराज अब मेरी प्रतिज्ञा के थोड़े दिन बाकी हैं आप कृपा करके इंद्र को ढूंढ़वा दीजिये। बृहस्पति बोला कि नहुष अपने दुष्टकर्मों से शीघ्र ही पतित होगा। तुम इसका डर बिलकुल छोड़ दो तुम शीघ्र ही इन्द्र से मिलोगी। तब बृहस्पति ने यज्ञ किया और अग्नि का आवाहन करके उसको आज्ञा दी कि जाओ इन्द्र को ढूंढ़लाओ, अग्नि चारों ओर घूमा, पृथ्वी और आकाश की सब दिशाओं में फिरा परन्तु इन्द्र का कहीं पता न लगा॥

तब अग्नि लौटा और बृहस्पति से कहने लगा कि मैंने इन्द्र की सब जगहों में खोजना की है, परन्तु कहीं नहीं पाया केवल जलको ढूंढ़ना शेष है। सो वहां जाने पर मैं नष्ट हो जाऊंगा इस लिये जा नहीं सकता॥

आठवां अध्याय

—:-०-:—

अग्नि का कमल की नाल में इन्द्र को पाना

बृहस्पति का देवताओं सहित इन्द्र के पास जाना, इन्द्र की स्तुति करना। अगस्त्य जी के शाप से नहुष का स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाना, और सर्प हो कर पृथ्वी पर गिरना। देवताओं का इन्द्र को फिर राजा बनाना॥

तब बृहस्पति बोला कि तुम देवताओं का मुख हो, तुम्हारे द्वारा सब देवता हव्य और कव्य गृहण करते हैं। यदि तुम ऐसा कहो तो और किस का काम है कि इन्द्र को ढूंढ सके, तुम्हारी गति लोकों में एक सी है इस लिये आप जाइये और जल में इंद्र की खोज कीजिये॥

तब अग्नि इंद्र को जल में ढूंढने की इच्छा से निकला और ठौर २ ढूंडने लगा परंतु कहीं पता न मिला, निदान एक बड़े तालाव में कमल की नाल के सूत में सूक्ष्म शरीर से इंद्र को बैठे देखा अग्नि ने तुरंत बृहस्पति जी को सूचना दी॥

बृहस्पति सब देवताओं को लेकर आया और इंद्र को अनुमात्र शरीर में बैठा देख कर उस की स्तुति करने लगा। कि हे इंद्र तुम ने वृत्रासुर का हनन किया, तुम ने शमवरा को मारा, तुमने अनेक बड़े २ पराक्रम किये, हे देव उठो, देखो सब देवता आप को देखने आये हैं, हे महेंद्र दानवों को मार तुमने सदैव देवताओं और मनुष्यों की रक्षा

की है, हे इंद्र सब प्राणियों की स्थिति आप में है हे महेंद्र बल पाओ और बढ़ो ॥

यह स्तुती सुन कर इन्द्र धीरे २ बढ़ने लगा और थोड़े ही काल में पुर्ववत बलवान हो गिया, तब बृहस्पती जी से पूछने लगा कि क्या आप लोगों का अब कोई और काम शेष है जो मुझ को बुलाते हो। बृहस्पती जी बोले कि मनुष्य राजा नहुष ने तीनों लोकों का राज्य पाकर बड़ा उपद्रव मचा रखा है और हम सबों को दुःख देता है, इन्द्र बोला कि उसको देवताओं का राज्य किसने दिया? बृहस्पति बोले कि जब आप चले आये तो देवता नहुष को राजा बनाने की इच्छा से उसके पास गये और कहने लगे कि आप हमारे राजा हूजिये, नहुष बोला कि यदि मुझ को अपने तेज से बढ़ाओगे तो आप का राजा हो सकता हूं ॥

फिर देवताओं ने उस को अपने तेज और बल से बढ़ाया परंतु वह बड़ा दुष्टात्मा निकला है कि ऋषियों से पालकी उठवा कर तीनों लोकों में घूमने जाता है परंतु याद रखो कि तुम नहुष की ओर कभी न देखना, वह देखने वाले का तेज और बल खींच लेता है। इस लिये सब देवता भी उस के डर से गुप्त ही फिरते रहते हैं ॥

तब बृहस्पति ने इंद्र की और भी स्तुति की और उस के वृत्रासुर वध के चरित्र गाए और कहा कि शत्रु को भी मार डाला और शरीर में घाव भी न लगा तब कुबेर आदि देवता

भी इंद्र के पास आए और कहने लगे कि नहुष सब देवताओं का भाग खाजाता है और किसी को कुछ नहीं देता, हे इंद्र उस से सब की रक्षा करो तब इन्द्र ने कुबेर आदि को अपने स्थानों पर नियुक्त किया और कहने लगा कि हम नहुष को मार डालेंगे॥

इस प्रकार देवता और लोक पाल इन्द्र की स्तुति कर ही रहे थे कि महार्षि अगस्त्य जी वहां आगये और कहने लगे कि हे इन्द्र बड़े भाग्य की बात है कि नहुष देव राज्य पद से गिर गया, तब तो देवताओं और इन्द्र ने अगस्त्य जी से यह सारा वृत्तांत सुनने की इच्छा की ॥

तब अगस्त्य जी बोले कि नहुष की पालकी उठाए हम लोग ब्रह्मर्षि और देवर्षि एक दिन थक कर नहुष से पूछने लगे कि ब्रह्मा जी ने गाइयों के परोक्षण करने के लिएँ जो मंत्र बनाए हैं वे प्रमाण हैं कि नहीं, नहुष ने कहा कि नहीं प्रमाण नहीं हैं तब ऋषि बोले कि तुम सदा अधर्म में रहते हो तुम को धर्म कैसे आसक्ती हो, महर्षि हमसे पहिले ही उन को प्रमाण कह गए हैं, इस से नहुष ने क्रोधित हो मेरे शिर पर लात मारी जूं ही उस का पैर मेरे शिर से छुआ तो वह हतलक्ष्मी होगया, मैंने कहा कि तुम अपने दुष्ट कर्मों के कारण फिर पृथ्वी को जाओ और सर्प बन कर विचरो ॥

तब सब देवता गन्धर्व और अप्सरायें स्वर्ग को लौटीं और आनन्द पूर्वक विचरने लगीं उस समय अथर्व वेद के कर्ता अंगिरा ऋषि आये और इन्द्र की स्तुति करने लगे, इन्द्र

ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि आज से इस वेद का नाम अथर्वांगिरस होगा तब इन्द्र धर्म से प्रजा पालन में तत्पर हूए ॥

यह कह कर शाल्य बोला कि हमने यह इन्द्र विजय उपाख्याना सुनाया है, इस प्रकार हे युधिष्ठर तुम भी राज्य पाओगे और तुम्हारी भी वृद्धि होगी ॥

तब शाल्य ने कर्ण का सारथि बनने का प्रण किया और कहा कि हे युधिस्ठर यदि कुच्छ और कार्य होगा तो भी आप की सहायता के लिये सदैव प्रस्थित हूं। तब राजा शल्य सेना लेकर दुर्योधन के पास आये ॥

नौवां अध्याय

=-:०:—

भारत वर्ष के अन्य २ देशों से राजाओं का पाण्डवों के पास सेना लेकर आना, और पाण्डवों के पास सात अक्षौहिणी सेना का एकत्र हो जाना, और दुर्योधन के पास ग्याहर अक्षौहिणी ॥

तब सात्यकि एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवों की सहायता के लिये आया। फिर धृष्टकेतु चन्देरी का राजा भी एक अक्षौहिणी सेना लाया। तब रासन्जध का पुत्र जयत्सेन

मगध का राजा भी एक अक्षौहिणी सेना लाया। तब समुद्र तट निवासियों को संग ले पांडीचिरी का राजा अपने योधाओं सहित आया फिर राजा द्रुपद की बड़ी भारी सेना आई और राजा द्रुपद के बलि पुत्रों ने बहुत अस्त्र शस्त्र पहिन लिये व पहाड़ी राजा विराट अपनी सेना लाया। इस प्रकार इधर उधर से मिला कर पाण्डवों के हां सात अक्षौहिणी सेना हो गई ॥

इसी प्रकार पूर्व समुद्र के किनारे के राजा भगदत्त ने एक अक्षौहिणी सेना भेजी। इस सेना में चीनी लोग और किरात देशी भी थे, इसी प्रकार भूरिश्रवा और शल्य और कुकुर वंशियों सहित कृतवर्मा एक अक्षौहिनी लेकर दुर्योधन की सहायता को आया। फिर जयद्रथ आदि सिन्ध और सौवीर देश के राजा भी अपनी सेना लेकर आये। फिर कम्भोज देश का राजा सुदक्षिण एक अक्षौहिणी सेना लेकर आया। फिर नील राजा अपनी नीला युध धारी सेना लेकर आया। तब अवन्ती पुरी के राजा बड़ा बलवान दो अक्षौहिणी सेना लेकर आये। फिर केकय देशके पांच संग भाई राजा एक अक्षोहिणी सेना लेकर आये और इधर उधर के अन्य राजाओं को मिला कर तीन अक्षौहिणी और सेना हो गई। इस प्रकार कुल गयारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधन के पास थी ॥

जब राजा द्रुपद का पुरोहित हस्तिना पुर में आया तो यह सब सेना वहां इकट्ठी हो चुकी थी ॥

दसवां अध्याय

—:०:—

पुरोहित का पाराडवों का संदेशा सुनाना, भीष्म का उत्तर देना, कर्ण का दुर्योधन के पक्ष की बात कहना धृतराष्ट्र का संजय को युधिष्ठर के पास भेजने का विचार करना ॥

राजा द्रुपद का पुरोहित हस्तिना पुर में आया और सभा में पहुचा धृतराष्ट्र ने उस का बड़ा सत्कार किया और पांडवो का कुशल पूछा। पुरोहित ने उत्तर देकर सब सभा के बीच में कहा कि आप लोग राजाओं के सनातन धर्म को जानते हैं धृतराष्ट्र और पाराडु एक ही विचित्रवीर्य के पुत्र हैं, फिर क्या कारण कि पाण्डु के पुत्र अपने बाप दादों का थोड़ा सा धन भी न पावें? सब कुछ धृतराष्ट्र के पुत्रों ने सम्भल लिया है, यहां तक कि पाराडवों के मारने के भी बहुत उपाय किये गये परन्तु अच्छे कर्मों के फल से पाराडव आज तक जीते हैं फिर उन्हों ने अपने पराक्रम से कुछ राज्य बढ़ाया, परन्तु छल के जुए से वह भी छीना गया और उनकी पतिव्रता भार्या को निरादृत और दूषित करने की चेष्टा की गई। तिस पर भी सन्तोष न हुआ और उन विचारों को तेरा वर्ष वनवास दिया गया फिर विराट नगर में उन्हों ने बड़े २ क्लेश

पाये कि नीच योनि उत्पन्न पुरुष भी उनको सह नहीं सकता। क्या यह कुरुवंशियों के लिये लज्जा का स्थान नहीं कि उनके वीर और राज्याई भाई रसोईयें और घुड़ सालियों का काम करें। और उनकी पतिव्रता स्त्री सैरन्धि रूप होकर अन्य लोगों की सेवा करे। और नीच लोग उसको कुदृष्टि से देखें ?

परंतु यह सब दुःख और कष्ट सह कर धर्मराज राजा युधिष्ठिर मिलाप ही चाहते हैं बल में वह किसी से कम नहीं, अर्जुन के सामने कोई मनुष्य और योधा नहीं ठहर सकता, भीम अकेला दश सहस्र का बल रखता है शेष पांडव भी महा बली और योधा हैं इस के अतिरिक्त सात अक्षौहिणी चतुर सेना और बड़े २ बलवान क्षत्रिय उन की सहायता पर हैं महा दीप्तमान श्री कृष्ण जी भी उन के सहायी हैं इस लिए यदि आप चाहते हैं कि क्षत्रियों को महा घोर संग्राम को निवृत हो तो पाडवों का राज्य उन को देदें ॥

तब भीष्म जी बोले बड़े भाग्य की बात है कि पांडव कुशल हैं उन को सहायक भी मिल गए हैं वह धर्म में भी रत हैं और कौरवों से मिलाप भी चाहते हैं और कौरव युद्ध भी नहीं चाहते हम को उन के क्लेशों को सुन कर बड़ा दुख हुआ है यह भी हम जानते हैं कि अर्जुन अस्त्र विद्या में इंद्र से भी बढ कर है दूसरे लोगों का तो कहना ही क्या है ॥

भीष्म इस प्रकार की बातें कर ही रहा था कि इतने में कर्ण उस की बातों का निरादर करके बोलने लगा ॥

हे ब्राह्मण पाडवों के हित की बात जो आपने कही उस को कौन नहीं जानता, फिर उस को बार २ कहने से क्या प्रयोजन है हां दुर्योधन की ओर से शकुनि ने जुआ खेला था परंतु युधिष्ठिर हार गया राज्य खो बैठा उस ने तेरह वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा की थी, परंतु वह पुरी न हुई और पांडव पहिले ही प्रकट होगए, इस लिए यदि वह अपने पितामहे का राज्य पाना चाहते हैं तो तेरह वर्ष फिर वनवास करें, राजा विराट और द्रुपद के बल पर मूछे न मुडवायें लोग तो इसी प्रकार का मंत्र देकर दुख दिया करते हैं वनवास के पश्चात् पाण्डव निर्भयता से दुर्योधन के समीप आकर बैठ सकते हैं उन्हें कहो कि धर्म छोड़ दें और यदि धर्म को छोड़ वह अधर्म से लड़ना चाहते हैं तो हमारे बचन को अवश्य ही याद करेंगे ॥

यह सुन कर भीष्मजी बोले अरे कर्ण तुम को लजया नहीं आती । अभी कल की बात है कि अर्जुन ने मार २ कर तुम्हें सुअर बना दिया था और तुमको सिवाय भागने के और कुच्छ न हो सका और तुमको नहीं वरन मेरे सात तुम्हारी सेना के सब महारथियों को जीत लिया था इस लिये जो यह ब्राह्मण कहता है वैसे ही करना चाहिए नहीं तो हमरी अधोगति का कुच्छ ठिकाना नहीं रहेगा ॥

भीष्म की इस प्रकार की बात चीत सुन कर राजा धृतराष्ट्र ने कर्ण को फटकारा और भीष्म की बड़ी स्तुति

की। तब उसने कहा कि हम सञ्जय को बुला कर पाण्डवों के पास भेजेंगे ॥

ग्यारहवां अध्याय

—:o:—

धृतराष्ट्र का सञ्जय को युद्ध की निवृति के लिये पाण्डवों के पास भेजना और कहना कि धृतराष्ट्र शान्ति के अभिलाषी हैं ॥

तब संजय को बुलवा कर धृतराष्ट्र ने कहा कि तुम शीघ्र पांडवों के पास जाओ और हमारी ओर से उन का कुशल पूछो और कहो कि धृतराष्ट्र आप का आना सुन कर बड़े प्रसन्न हैं ॥

हे संजय मैंने आज तक पांडवों की कोई मिथ्या कृति नहीं सुनी बन में रह कर भी वह सदा धर्मेन्द्रिन काम करते रहे हैं और राज्य पाकर भी उन्हों ने सारा धन छीन कर हम को ला दिया था साथ ही वह बड़े तपस्वी और शूर बीर हैं युधिष्ठर का सामना कोई मनुष्य नहीं कर सकता, अर्जुन तो इंद्र से भी बढ़ कर है, भीमसेन अकेला ही हमारी सब सेना को नष्ट भ्रष्ट कर सकता है ॥

जब मैं देखता हूं कि श्री कृष्ण चन्द्र भी उन की सहायता

करते हैं तो मुझ को शांति नहीं आती, मेरे पुत्र बड़े मूर्ख हैं जो इन धर्मात्माओं के साथ युद्ध करना चाहते हैं देखो अर्जुन ने अकेले उतर कुरूदेश को जीता था और द्रावड़ देश को भी पराजय किया था उस के खांडव वन के चरित्रों को याद करो हमारी सेना पांडवों के आगे क्या है हम ने सुना है कि दृष्ठ द्युम्न भी पांडवों से आ मिला है। यह भी सुना है कि विराट दिन रात उन के साथ ही रहता है ॥

इन के अति रिक्त म्लेछ देशों के राजा और पर्वती देशों के राजा वहुत २ सेना लेकर आये हैं और नाना प्रकार के आयुध अपने साथ लाये हैं चेदि और करूखादि देशों के राजा भी पाण्डवों के अर्थ युद्ध के लिए तैयार हैं ॥

हम ने यह भी सुना है कि श्री कृष्ण सारथी होंगे और अर्जुन रथी होंगे, हे संजय इन दोनों के एक स्थान में होने पर क्या दुर्योधन युद्ध जीत सकता है कभी नहीं इस लिये आप शीघ्र पाण्डवों के पास जायें श्री कृष्ण से उन का कुशल पूछें और धर्मराज युधिष्ठर से भी, और हमारी ओर से यह निश्चय करायें कि धृतराष्ट्र युद्ध नहीं चाहते हैं ॥

बारहवां अध्याय

—:-०-:—

युधिष्ठर का सञ्जय से कौरवों का कुशल

पूछना और सञ्जय का उत्तर देना ॥

तव सञ्जय धृतराष्ट्र से विदा होकर विराट नगर को आये और उसके समीप उपप्लव्य नाम स्थान में युधिष्ठरादि पाण्डवों के पास गये। वहां जाकर युधिष्ठर से कुशल क्षेम पूछा और कहा कि बड़ी भाग्य की बात है कि आप के फिर दर्शन हुए, यह भी बड़े भाग्य की बात है कि आप को सहायता मिल गई कहिये भीमसेन, अर्जुन, द्रौपदी, नकुल और सहदेव तो कुशल पूर्वक हैं। आप सब लोगों की कुशल अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र ने पूछी है ॥

यह सुन कर युधिष्ठर बोले कि हे सञ्जय आप का आना शुभ हो कहिये आप अच्छे हैं? हम तो भाईयों सहित आनन्द पूर्वक हैं। हमको बड़ा कुशल है कि बहुत दिनों के पीछे आज मान्यवर कुरुवृद्ध धृतराष्ट्र जी ने हमारा कुशल पूछा है। मानो आज हमने उनके दर्शन कर लिये, कहिये पिता मह भीष्म जी कुशल हैं? धृतराष्ट्र जी अपने पुत्रों सहित तो कुशल पूर्वक हैं? तातसोमदत्त, भूरिश्रवा, और सत्य प्रतिज्ञशल कुशल पूर्वक हैं? द्रोणाचार्य व कृपाचार्य तो कुशली हैं? सार यह कि सब कौरवों के नाम लिये और स्त्रियों का नाम लिया ॥

फिर कहने लगे कि अच्छा यह तो बताओ कि क्या राजा ब्राह्मणों का स्नेह तो पूर्ववत करते हैं और जिन को हम ने ग्रामादि दिये थे दुर्योधन ने उनको ले तो नहीं लिया? क्या धृतराष्ट्र पुत्रों सहित ब्राह्मणों के निरादर से डरते हैं? उनकी

जीविका तो नहीं हरते ? यदि वह ब्राह्मणों की जीविका का नाश करेंगे तो सब कौरवों का नाश होजाएगा, क्या आमात्य और मंत्रि लोग अपनी जीविका यथोचित पाते हैं ? कहीं विरुद्ध होकर शत्रु से मिलना तो नहीं चाहते ? क्या उन्हों ने कोई हमारा पाप कर्म तो प्रकट नहीं किया ? क्या कभी अर्जुन के गांडीव धनुष को भी याद करते हैं ? क्या भीमसेन के वीर कर्मों को याद करते हैं ? कलिंग देश के राजा को बायें हाथ से जीतने वाले सहदेव को याद करते हैं कि नहीं ? जब दुष्ट मंत्रियों के कारण दुर्योधन घोष यात्रा को जाकर गधर्वों से लड़ा और बान्धा गया और अर्जुन ने उस को छुड़ाया, क्या इस बात का कोई स्मरण करता है कि नहीं ?

तब संजय ने कहा कि महाराज जिन २ महात्माओं के आप ने नाम लिए हैं वह सब प्रसन्नता पूर्वक हैं दुर्योधन के हां साधु और ब्राह्मण लोग भी हैं और असाधु भी और मांगने पर तो वह शत्रुओं को भी दान दे देते हैं। सच बात तो यह है कि धृतराष्ट्र मिलाप नहीं चाहते परन्तु अपने पुत्रों के नाश के भय से अत्यन्त डरते हैं, यद्यपि ब्राह्मणों से सुनते हैं कि मित्र द्रोह से बढ़ कर कोई पाप नहीं, तथापि हटते नहीं, आप लोगों का स्मरण प्रत्यवसर करते हैं ॥

हे युधिष्ठर अब आप अपनी बुद्धि को सम कीजिये जिस से सब कौरवों और पाण्डवों का कल्याण हो ॥

तेरहवां अध्याय

—:o:—

संजय का सभा के बीच में धृतराष्ट्र को संदेशा देना और युद्ध से निवारण करने का यत्न करना ॥

उस समय युधिष्ठिर ने कहा कि हे संजय इस समय सभा में सब वीर महाशय बैठे हैं, आप धृतराष्ट्र जी का संदेशा सुनाइये, तब संजय सब सभा की ओर देख कर बोला ॥

हे युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ! हे श्रीकृष्णचन्द्र, हे सत्यकि, चेकितान, विराट, हे द्रुपद ! जो सब से वृद्ध हो, हे धृष्टद्युम्न, हे पर्वत राजा, हे याज्ञसेनि, ! आप महाशयों के प्रति कौरवों का ऐश्वर्य चाह कर जो विनती करता हूं वह सुनिये राजा धृतराष्ट्र चाहते हैं कि युद्ध न हो और आपस में शान्ति हो जाये इसी कारण उसने मुझे शीघ्रता से आप के पास भेजा है, अब आपकी जैसी इच्छा हो करो, आप सब लोग उत्तम धर्मों से संयुक्त हैं आप को युद्ध जैसा कर्म जिस में भाई बन्धु और मित्रों का हनन हो कदापि करना उचित नहीं ॥

देखो जब दुर्योधन घोष यात्रा में जाकर गन्धर्वों से पकड़ा गया था तो उस समय आप ने उसको इस कारण छुड़ाया था

कि वह आप का सम्बन्धी था क्या अब वह संबंधी नहीं है ? जिन लोगों ने अपने जाती वालों का कार्य किया है वह धन्य हैं । इस लिये ज्ञातियों का नाश करना उचित नहीं, यदि युद्ध हुआ तो कौरव निस्संदेह मारे जायेंगे, क्योंकि आप बलवान हैं और देवता मन्त्रि रखते हैं, वह अभी बालक हैं और हठ से बात करते हैं, इस लिये बालकों का मारना श्रेष्ठ नहीं ॥

यूंतो दुर्योधन के पास भी बहुत सेना है, और भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि बड़े २ महारथी हैं, क्या यह बीर यूंही मर जायेंगे ? अवश्य ह कईयां को साथ लेकर मरेंगे । परन्तु इसका फल क्या होगा, जिन भाई बन्धुओं के लिये राज्यादि संभोग के पदार्थ मनुष्य चाहता है, वह ही भाई बन्धु मारे जायेंगे ॥

इस से मेरे विचार में आप सब बुद्धिमानों को इस अवसर पर गूढ़ विचार से काम लेना उचित है और यही सर्वथा श्रेष्ठ है कि निग्रह न हो और आपस में प्रीति बढ़े मैं हाथ जोड़ कर आप की शरण आता हूं और पूछता हूं कि कुरुवंशियों का कल्याण कैसे हो ? मेरा अभिप्राय किसी के दिल दुःखाने का नहीं परन्तु मैं दोनों ओर नाश को देखता हूं और इस लिये मिलाप ही चहता हूं, यही सब कुरुवृद्धों की सम्मति है ॥

चौदहवां अध्याय

—:०:—

युधिष्ठर का सञ्जय को उत्तर देना ॥

तब युधिष्ठर बोला "हे संजय आप ने हमारी कौनसी वाणी सुनी कि जिस में हमने युद्धकी अभिलाषा प्रकट की है? हम तो अयुद्ध को युद्ध से सदा श्रेष्ठ कहते हैं। यदि बिना कर्म के मनुष्य के काम सिद्ध हो जायें तो कौन पुरुष कर्म करना चाहता है? कर्म तो कष्ट ही से सिद्ध होता है। हम भी सुख की इच्छा से कर्म तो करते हैं, परन्तु वह कर्म जो धर्म युक्त हो जिस सुख से पाप करना पड़ता है, उसको सदा छोड़ देते हैं॥

कामों की इच्छा वाला तो कभी तृप्ति नहीं पाता, परन्तु जैसे अग्नि पर घी पड़ने से वह और प्रचण्ड होती है, कामनायें इसी प्रकार बढ़ती चली जाती हैं। धृतराष्ट्र को देखिये क्या उसकी कामनायें तृप्त हुई? हमारे समत उसके एक सौ, पांच पुत्र है, फिर भी इसने राज्य करना नहीं छोड़ा और करता ही चला जाता है॥

समर्थ पुरूष विग्रह भी कर सकता है, यदि असमर्थ करे तो नष्ट होजाता है। राजा धृतराष्ट्र समर्थ हैं, तभी उन्हों ने हम को देश से निकाल दिया, असमर्थ होते तो ऐसा अनर्थ न करते कामनायें इन को दुःख देती हुई प्रतीत नहीं होतीं हमारे हृदय में काम हो तो हम को खेद होता है॥

राजा धृतराष्ट्र आप तो विषम स्वभाव हैं और औरों को सामर्थ देखते हैं, यह अच्छा नहीं, जैसे आप हों वैसे ही औरों को भी जानें, इस समय उन का शोक करना ऐसा है जैसे कोई पुरुष वन को आप ही अग्नि लगा कर और उस के समीप खड़ा रह कर अपने बचने का उपाय विचारे, अपने दुष्ट पुत्र के वश में होकर ऐश्वर्य तो मांगते हैं परन्तु दीन बचन वार २ क्यों कहते हैं? जो पुत्र विदुर जी का निरादर करे उस का वह प्रिय चाहते हैं और उस के निमित्त धर्म, अर्थ और मोक्ष सब कुच्छ खो देते हैं, विदुर को देश से निकाल कर इस ने निश्चित अपने ऊपर नाश को बुलाया है वह पृथ्वी पर अपना निष्कंटक राज्य मानते हैं इस लिए इन लोगों के साथ मेल होता मुझे दीख नहीं पड़ता ॥

अर्जुन के पराक्रम को दुर्योधन अच्छी प्रकार जानते हैं विराट आदि नगरों में अर्जुन के कई युद्ध देख चुके हैं, यदि कर्ण अर्जुन को कुच्छ नहीं समझता तो विराट नगर से युद्ध छोड़ कर क्यों भागा था? आप के हां राजा लोग आए हुए हैं, वह भी अर्जुन को जानते हैं, हमारे विचार में जब तक गांडीव धनुष का टंकार रण भूमि में सुनाई नहीं देता शांति का होना असम्भव है ॥

इस लिये यदि धृतराष्ट्र भी इस बात को समझलें तो उन के पुत्र युद्ध में नाश न हों, आप जानते हैं कि इन लोगों ने हम को कैसे २ कष्ट दिए और हम ने इन के साथ कैसा बर्ताव किया ॥

पंद्रहवां अध्याय

—:०:—

संजय का प्रत्युत्तर देना ॥

यह सुन कर संजय बोला कि हे युधिष्ठर मैं ने आप की धर्म रूपी कीर्ति सुनी है इस लिये अनित्य जीविका के लिये वृथा कौरवों को न मारिये, यदि वह आप को राज्य न भी दें तो आप को भिक्षा मांगनी स्वीकार करनी चाहिये परन्तु युद्ध कर के राज्य लेना अच्छा नहीं ॥

मनुष्य जीविन चलायमान और अचिर कालिक है उस पर भी इस में नित्य दुःख होते हैं इस लिये इस जीवन के हेतु इतना महा पाप मत करो, हे तात ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म का पालन कर के मोक्ष की पदवी लो, बुद्धिमान काम को विनाश करता है और अर्थ के बन्धनों को तोड़ता है, धर्म हीन पृथ्वी का राज्य पाकर भी सुखी नहीं होता, जो केवल धन को ही सुख का हेतु समझता है, वह धन के नष्ट होने पर दुःखी हो जाता है ॥

तुम ने यज्ञ और तप किये, और ब्राह्मणों को दान दिये परन्तु इस युद्धरूपी घोर नरक में पड़ कर वह सब कर्म निष्फल मत करो। जो लोग धर्म करके पीछे अधर्मी हो जाते हैं, वह मन्द बुद्धि परलोक में जाकर सन्तप्त चित होते हैं। जो अच्छे कर्म हैं मनुष्य इसी देह में कर सकता है, मर कर कुछ

नहीं होता। इस लिये परलोक की सिद्धि वाले सब कार्य यहीं कर लो ॥

यदि आपने अन्त को युद्ध ही करना था, तो पहिले ही क्यों न कर लिया ? वनवास में जाने का क्या प्रयोजन था ? दुर्योधनादि भी उस समय इतने बलवान न थे। तुम्हारे सहायक श्रीकृष्णचन्द्र जी तब भी विद्यमान थे। अर्जुन भीमसेन का बल तब भी विद्यमान था, रुक्म रथ और द्रुपद तब भी तुम्हारे साथ थे, और पृथ्वी के सब राजा जिन को तुम ने जीता था तुम्हारे साथ ही होते। उस समय आपने भुजाबल के प्रताप से श्रीकृष्ण और अर्जुन के सामने क्यों न दुर्योधन का अहंकार तोड़ा। अब शत्रुओं का बल बढ़ा कर और अपने सहायकों को दुर्बल बना कर और वन में तेरह वर्ष इस हीन अवस्था में रह कर युद्ध की इच्छा करने लगे हो हमारे मत में यही श्रेष्ठ है कि तुम युद्ध का नाम न लो ॥

लड़ाई में जय पराजय किसी के आधीन नहीं होती, बड़े २ योधा हार जाते हैं और निर्बल दैव वश हो कर जीत जाते हैं निर्बुद्धियों की जय होती है और बुद्धिमान हार जाते हैं, हे पार्थ ! आज तक तुम्हारी रुचि धर्म के कामों में थी, नहीं जानते कि किस प्रकार तुम्हारी बुद्धि इस समय अधर्म के कामों को करने लगी है, हे महाराज, आप गोत्रवध रूपी पाप मत करो, यह क्रोध आप के पीने के योग्य है, केवल सज्जन ही इस को पी सकते हैं आप को क्षमा करनी ही बहुत

अच्छी है आप के पितामहा, गुरु, मामा, भाई, गुरुपुत्र मारे गये तो आप को कौन सा सुख होगा ?"

सोलहवां अध्याय

—:o:—

युधिष्ठर का संजय को प्रत्युतर देना ॥

युधिष्ठर ने कहा कि हे संजय । जैसा तुम कहते हो धर्म वैसा ही है, धर्म अधर्म से अच्छा होता है परन्तु जो कुच्छ हम करते हैं उस को विचारो, यदि वह अधर्म ठहरे तो हमारी निन्दा करो ॥

धर्माधर्म तीन प्रकार से देखे जाते हैं । प्रथम जैसे कोई, दम्भी और कपटी मनुष्य किसी दूसरे को दुःख देने अथवा मारने की इच्छा से परमेश्वर की पूजा करने लगे बहुधा लोग इस प्रकार के जप तप को धर्म समझते हैं, परन्तु यह धर्म नहीं हो सकता । दूसरे रागद्वेष की शून्यता से उन्मत्त वत आचरण करने को लोग अधर्म कह देते हैं । तीसरे वशिष्ठ आदि मुनियों का धर्म ॥

इन सब बातों को विद्वान लोग अपनी बुद्धि से देख लेते हैं, आप भी देखिये, यदि हम में धर्म है तो कह दीजिये यह धर्म भी ब्राह्मण क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल है, यदि आपत्काल हो तो ब्राह्मण क्षत्रिय का और क्षत्रिय अन्य

वर्ण का धर्म करने में दोष नहीं समझते, परन्तु अनापत्काल में फिर वही करने लगते हैं इस लिये एक वर्ण का धर्म दूसरे में अधर्म हो जाता है। तथापि आपत्काल के धर्म अन्य काल में अधर्म ही होते हैं। परन्तु आपत्काल में अपना धर्म करना निन्दित है, क्योंकि वैसा करने से अपने तथा कुटुम्बियों के प्राण जाने से आत्म हत्या का दोष लगता है॥

इस लिये जो कुच्छ हमने भी आपत्काल में किया तो वह निन्दित नहीं कहला सक्ता, यदि हमने भिक्षा भी मांगी तो इस में दोष नहीं, हम सदैव बाप दादों के धर्म पर चलते हैं और आस्तिक हैं, देखो श्री भगवान कृष्णचन्द्र जी बैठे हैं और सब देशों के राजा लोग भी उपस्थित हैं, यदि यह लोग हम में अधर्म देखते हैं तो हम को वर्ज दें॥

सतारहवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण चन्द्र का प्रत्युत्तर॥

तब श्री कृष्ण चन्द्र बोले कि हे संजय मैं दोनों ओर का हितैषी हूं। युधिष्ठर भी शान्ति को अच्छा समझता है, परन्तु धृतराष्ट्र राज्य का लोभी है इस लिये कौरवों का मद बढ़ता है फेर तुम युधिष्ठर पर अधर्म करने का दोष कैसे लगाते हो?॥

पाण्डव पवित्र वृत्ति रखते हैं मोक्ष भी कर्म करने से ही प्राप्त होता है जैसे जनकादि राजाओं ने पाई। कई कहते हैं कि मोक्ष विद्या से मिलती है इस लिए कर्म करना अथवा न करना दोनों श्रेष्ठ हैं, परंतु कर्म करने वाले का अकर्मी होना बड़ा कठिन है इसी प्रकार सन्यास गृहस्थ नहीं हो सकता उस को सन्यास रहना ही ठीक है, ब्राह्मण लोग भी गृहस्थी के द्वार पर आते हैं इस लिए सन्यासी को अपने धर्म पर चलना श्रेष्ठ है और गृहस्थी को अपने धर्म पर ॥

देखो कर्म न हो तो यह सारा जगत नष्ट भ्रष्ट होजाये यह केवल कर्म का ही प्रकाश करता है, कर्म ही से सूर्य चन्द्र और पृथ्वी स्थित हैं, यदि सूर्य कर्म न करे तो रात और दिन कैसे उत्पन्न हों। लोग यज्ञ और तपस्या करते हैं तभी पुण्य रूपी फल पासकते हैं ॥

देखो इन्द्र ने पहिले ब्रह्मचर्य किया और फिर जितेन्द्रि होकर देवताओं का राज्य पाया, कर्म ही से बृहस्पति देव गुरु बने कर्म ही करते हुए ऋषि लोग स्वर्ग में जाते हैं, तुम कर्म करने से पांडवों को क्यों रोकते हो ? यदि तुम बिना कर्म करने के इन का राज्य दिला सकते हो तो यह लोग युद्ध को छोड़ देंगे और क्षत्रियों के रक्षा रूप कर्म को अंगीकार करेंगे ॥

परन्तु युद्ध करने पर यदि इनको राज्य मिल गिया तो इनका ऐश्वर्य होगा और यदि यह मारे गये तो भी क्षत्रिय धर्म पालन करने वाले हो कर पृथवी पर विख्यात होंगे देखो चारो वर्णों के धर्म यह हैं ब्राह्मणों के वेद पढ़ना पढ़ाना

दान देना और लेना और यज्ञ करना, क्षत्रियो का धर्म वेद आदि सच्छास्त्र पढ़ना, धर्म युद्ध करना पृथ्वी का पालन करना और सब को नियम पर चलाने की इच्छा से आप नियम पर चलना ॥

वैश्य का धन बढ़ाना, खेती वाडी करना और व्यापार है शूद्र का धर्म केवल सेवा करना है, इन को छोड़ कर राजाओं के धर्म विशेष कर सब को धर्म में चलाना है परंतु यदि कोई क्रूर राजा दूसरे का ऐश्वर्य चाहने लगे तो उन दोनो में युद्ध होने लगेगा इसी लिये तो ईश्वर ने क्षत्रिय बल उत्पन्न किया है कि इन चोर राजाओ को दंड दिया जाए ऐसे राजा चोर पदवी के भागी होते हैं, देखो दुर्योधन ने युधिष्ठर के राज्य का लोभ किया है परंतु साथ ही ईश्वर ने युद्ध के सामान धनुष कवच और अन्य शस्त्र भी बना दिये हैं ऐसे चोरों राजाओं को इनही से मारा जाना है और उन को मारने से मोक्ष मिलता है दुर्योधन ने पांडवों का राज्य हर लिया और बूढ़े कौरव भी इस में पाप नहीं देखते, यह राज्य हरना चोरों से भी बढ़ कर कर्म है इस लिये चोरों को मारना पांडवों का परम धर्म है और इसी में उन का यश है ॥

पांडवों के साथ कौरवों ने बड़े २ अत्याचार किये हैं देखो दुष्ट दुशासन द्रौपदी को घर से पकड़े लाया और सब बालक और वृद्ध के सामने उस का अनादर किया उस समय धृतराष्ट्र भी वहीं बैठे थे तुम भी वहां थे अन्य कौरव भी वहीं थे किसी ने यह तो न कहा कि अरे दुष्टो इस नीच

कर्म को छोड़ो नहीं तो तुम को दंड देंगे इस समय तुम्हारा युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश करना अच्छा प्रतीत नहीं होता युधिष्ठिर अपने पिता का राज्य लेने का यत्न अवश्य करेगा यदि मारा भी गया तो भी प्रशंसा पायगा, द्रौपदी के निरादर के समय यदि तुम कुच्छ न कर सके तो इस समय पांडवों को उपदेश कैसे करते हो उस विचारा शील पती ने पाण्डवों को नाव की भांति बचा लिया ॥

देखो कर्ण ने कैसे अनुचित वाक्य कहे थे कि हे द्रौपदी अब पांडव मर जायेंगे तुम या तो कौरवों की दासी बन कर रहो नही तो और पति करलो क्या यह वाण रूप वचन द्रौपदी को भूल गया है, देखो दुशासन ने बनवास के समय कहा था कि अब पांडव मारे गये इन का अन्त्येष्टि संस्कार करदो, शकुनि ने जूआ खेलते समय कहा कि अब नकुल तो हारे गये अब द्रौपदी को दाव पर लगाओ, इन बातों से क्या युधिष्ठिर कौरवों को क्षमा कर सकते हैं ॥

हां तुम कौरवों को समझाओ और कहो कि वह अपने धर्म का पालन करें, युधिष्ठिर का राज्य उस को देदें, तो उस समय पाण्डव अन्य अपराधों को क्षमा भी कर सकते हैं, इस के अतिरिक्त यदि हम सन्धि के लिए उन के पास जायें भी और वह हमारा कहा न मानें तो हमें बहुत लज्जित होना पड़ेगा और कौरवों को अपने पुत्रों सहित भस्मी भूत होना पड़ेगा ॥

कौरवों की सब शौखयें हम को प्रतीत हैं, वह घर ही में कहते हैं कि हमने पाण्डवों को यूं जीता, परन्तु रण में आकर जीत हार का निर्णय होगा ॥

अठारहवां अध्याय

—:o:—

संजय का जाने के लिए आज्ञा मांगना और युधिष्ठर का सब की कुशल पूछना बता कर विदा करना ॥

यह वचन सुन कर संजय बोला कि युधिष्ठर अब हम जाना चाहते हैं, हम को आज्ञा दें, यदि हम ने कोई कटु अथवा अनुचित वाक्य कहा हो तो उस को आप क्षमा करें, हम लोग अपनी ओर से कुछ नहीं कहते, दूत धर्म का पालन ही करते हैं इस समय पर हम को अप्रिय शब्द भी प्रयोग करने पड़ते हैं, इस से आप क्षमा करें ॥

युधिष्ठर बोला कि हे संजय हम आप को चिर काल से जानते हैं आप बड़े बुद्धिमान गम्भीर और शास्त्रज्ञ हैं हम आप को भली प्रकार जानते हैं हमारी ओर से कोई अनुचित शब्द आप के निमित्त कहा गया हो तो क्षमा करें, अब यदि किसी ने आना हो तो विदुर जी आवें हमारी ओर से सब का कुशल पूछना ॥

युधिष्ठिर ने सब वृद्ध बालक, स्त्री जन कन्या और परदेश से आए शत्रु मित्रों के नाम लिए और एक २ को पृथक २ करके कुशल का संदेशा दिया और छोटों को अपने २ धर्म पर चलने की शिक्षा दी और कहा कि हम ने कौरवों के अन्य सब अपराध क्षमा किये परंतु अब यदि हम को वह आधा राज्य देना नहीं चाहते हों तो हम को केवल पांच ग्राम ही देदें हम युद्ध न करेंगे, उन में कुशालस्थ वृकस्थल, माकंदी और वारणावर्त तो चार हम अवश्य ही लेंगे, पाचवां जो उन की इच्छा हो हम को दें इस से हम पांचों भाई एक २ ग्राम पर निर्वाह करेंगे, यदि यह भी न दें तो युद्ध अवश्य होगा ॥

उन्नीसवां अध्याय

—:०:—

सञ्जय का लौट कर आना और धृतराष्ट्र को पाण्डवों का प्रत्युत्तर सुना कर कहना कि युद्ध में गोत्र हत्या का पाप तुम्हारे शिर पर होगा ॥

तब संजय वहां से चल कर हस्तिना पुर को आया और राज भवन में जाकर द्वार पाल को बोला कि राजा धृतराष्ट्र

को हमारा प्रणाम दो और कहो कि संजय आप से कुच्छ आवश्यक वात करना चाहता है, धृतराष्ट्र पहिले ही से संजय की प्रतीक्षा कर रक्खा था द्वार पाल के बचन सुन कर वोला कि उस को शीघ्र अन्दर लाओ ॥

तव संजय ने जाकर प्रणाम किया और कहा कि हे महाराज! मैं पाण्डवों के पास से आया हुं, वह सब कुशल पूर्वक हैं, उन्हों ने आप की और आप के पुत्रों की कुशल पूछी है, युधिष्ठर वड़ा धर्म युक्त है और दयावान है वड़े शोक की वात है कि ऐसे धर्मराज युधिष्ठर के साथ आप ने और आप के पुत्रों ने ऐसे घोर अपकार किये हैं, आप का कर्म वड़ा अनुचित है जिस के कारण यहां तो निन्दित हुए परन्तु स्वर्ग में भी आप को दुःख ही होगा ॥

अपने पुत्रों के वशीभूत होकर आप सब अधर्म का ठेका लिया चाहते हो, आपने वेद शास्त्र सुने, ब्राह्मणों की कथायें सुनीं फिर भी आप पर अभाग्य सवार होरहा है, पाहिले तो उन को अधर्म जूआ खिला कर राज्य हर लिया और सभा में वुलाकर निरादित किया फिर वनवास दिया और अब जब वह लोग नियम पूर्वक वनवास कर चुके तो उन के पिता पितामह का राज्य भी उन को न दिया ॥

इस से हे राजा धृतराष्ट्र इस युद्ध का पाप तुम्हारे शिर पर होगा और तुम ही महा अपराधी होकर पुत्र पोता सहित अपने इस घोर कर्म के फल को भोगोगे और पांडव निर्दोष

हैं उन्हों ने धर्म के लिए बहुत कष्ट सहे हैं और अब वह अपना राज्य चाहते हैं जो कोई उन का राज्य न देगा वही पाप का भागी होगा ॥

हम ने उन को सर्वथा धर्म परायण देखा है वह सत्यवादि और सहनशील हैं फिर हम उन को क्या दोष दें, तुम ने जो राज्य को पाकर और अपने पुत्र के वश होकर आगा पीछा कुच्छ नहीं देखा इस से बड़ा पाप किया है फिर आपने विदुरादि श्रेष्ठ पुरुषों को निकाल कर कर्ण आदि दुष्ट मन्त्री रख लिए हैं इस से तुम ऐसे दुर्बल होगए हो कि पृथ्वी की रक्षा नहीं कर सकते ॥

यह वचन सुन कर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे संजय मैं तुम्हारा वचन सुन कर बड़ा प्रसन्न हुं अब इस समय विश्राम करो, प्रातः काल सभा में चल कर पाण्डवों के संदेश को सुनाना ॥

बीसवां अध्याय

—:-o-:—

विदुर जी का धृतराष्ट्र को उपदेश ॥

जब संजय चला गया तो धृतराष्ट्र को नींद न आई उस ने अपने भृत्य को कहा कि विदुर जी को जाकर बुला लाओ, जब विदुर जी आये तो धृतराष्ट्र जी बोले कि हे महा प्राज्ञ विदुर जी संजय पांडवों से लौट कर आये हैं और युधिष्ठिर

का संदेशा लाए हैं जिस को सुन कर मेरे चित की शांति जाती रही है और नींद नहीं आती, तुम बुद्धिमान हो मुझे बताओ कि मुझ को क्या करना चाहिए ?

धृतराष्ट्र के यह बचन सुन कर महा ज्ञानी विदुर जी बोले कि हे धृतराष्ट्र चार मनुष्यों को नींद नहीं आती एक तो उस को जो साधन हीन दुर्बल होकर बलवान से पीड़ित हो दूसरे जिस का धन नष्ट होगया हो तीसरा जो कामातुर हो, चौथे जो चोर हो तुमने इन में से कौनसा कर्म किया है कि तुम्हारी नींद जाती रही है धृतराष्ट्र ने कहा कि तुम ज्ञानी हो मैं तुमारा धर्म युक्त बचनों को सुनना चाहता हूं ॥

विदुर ने कहा कि हे राजेन्द्र। सर्व लक्षण युक्त पुरुष तीनों लोकों का राजा होता है जसे कि युधिष्ठर। परंतु तुमने युधिष्ठर को राज्य से निकाल दिया है। युधिष्ठर ने अक्रूरता दयालुता, सत्यता और पराक्रम रख कर तुम्हारा गौरव माना और वन के दुख सहन किए उस को तो आपने निकाल दिया परंतु दुर्योधन, शकुनि, कर्ण, दुशासन आदि को ऐश्वर्य दिया फिर ऐश्वर्य की अभिलाषा आप कैसे करते हैं ? जो पुरुष अच्छे कामों को करे नास्तिक न हो वह पंडित कहाता है जिस काम को आरंभ से पता न लगे परंतु अन्त में जाकर प्रतीत हो जिस के कार्य में शीत, उष्णता, भय, मथुन, धन स्मृद्धि दरिद्रता कुच्छ विघ्न न कर सकें, जो यथा शक्ती काम करे। जो निश्चय से काम करता है और बिना समाप्ति के काम को नहीं छोड़ता वही पंडित है ॥

जो शास्त्र तो जानता नहीं परंतु सब काम करने को तैयार होजाता है जो दरिद्री होता है परंतु उदार चित्त रहता है और सब का धन खींचने का यत्न करता है उस को मूर्ख कहते हैं जैसे कि दुर्योधन ॥

जो अपने काम को छोड़ दूसरों के पीछे दौड़ता है, मित्रों के अर्थ मिथ्या वाद करता है वह शकुनि की भांति मूढ़ कहता है, जो इच्छा न रखने वालों को अपनी ओर इच्छा कराता है और उस की ओर इच्छा करते हैं उन को छोड़ देता है और बलवान से वैर करता है, वह आप की भांति मूर्ख कहलाता है जो अमित्रों को मित्र बनाता है और मित्रों से वैर रखता है और दुष्ट कर्मों का आरम्भ करता है उस को मूढ़ कहते हैं जो देश काल को नहीं जानता और धर्म मार्ग से वर्जित होकर अलभ्य वस्तुओं को बिना पराश्रम प्राप्त करने की इच्छा रखता है वह भी मूर्ख ही है जो शून्य में राजा और पर स्त्री की उपासना करते हैं वह भी मूर्ख समझो ॥

पुरुष अकेला पाप कर्म करता है, उसका फल बहुत लोग भोगते हैं परन्तु वह छूट जाते हैं। और करने वाला दोष का भोगी होता है, शस्त्रधारी का शस्त्र प्रहार करे वा न करे परन्तु बुद्धिमान की चलाई हुई बुद्धि राजा सहित देश को नाश कर देती है ॥

एक बुद्धि से करने अथवा छोड़ने योग्य काम का विचार करो। मित्र, शत्रु और उदासीनों को साम, दाम, दण्ड और

भेद से वश में करो पांच इन्द्रियों को जीतो, सन्धि, विग्रह, यान, द्वैधीभाव, स्वस्थानस्थिति, शत्रु द्रोह, और चिन्तन, इन छै पदार्थों को जानो, अतिस्त्री सेवा, जूआ खेलना, शिकार खेलना, मद्यपीना, कटु वचन बोलना, अतिघोर दण्ड देना, वृथा धन खर्चना। इन सात दोषों को छोड़ दो फिर तुम सुखी रहोगे ॥

वेदान्त वाले इस प्रकार कहते हैं, कि एक ही बुद्धि से दो पदार्थों नित्य और अनित्यों का निर्णय करो। काम, क्रोध, और लोभ को शम दम, उपरम और श्रद्धा से अपने वश में करो। पांच इन्द्रियों को जीत लो, काम, क्रोध, मद, लोभ, मात्सर्य, अहंकार। यह छै और अशना, पिपासा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु यह छै मिला कर कुल बारहों को जानो। पांच इन्द्रियों छटी बुद्धि और सातवें मन को छोड़ कर सुखी रहो ॥

विष पीने वाले को ही मारता है, शस्त्र भी एक ही मनुष्य को हनन करता है, परन्तु दुष्ट मन्त्रि को मन्त्र राज्य और प्रजा सहित राजा का नाश करता है, हे, राजन एक ही जो ब्रह्म है उसको जानो वही भव सागर के तरने के लिये नौका है। क्षमा करने वाले में एक यही दोष है कि लोग उसको असमर्थ गिनते हैं, परंतु यह दोष अंत में भूषण हो जाता है, क्षमा असमर्थों का गुण है और समर्थों का भूषण ॥

जो राजा युद्ध करने से कुशल नहीं, और जो ब्राह्मण अप्रवासी है, उसको पृथ्वी ऐसे निगल जाती है, जैसे बन के पक्षियों को सर्प। जो कर्म न करते ऐसा मनुष्य शोभा

पाता है। एक कठोर वचन न बोलने वाला, दूसरे दुष्टों क सत्कार न कराने वाला, परन्तु आप शकुन्यादि दुष्टों क सत्कार करते हैं। दो पुरुष अपने शरीर को तपाते रहते हैं एक जो निर्धन हो कर अलभ्य भोगों की कामना करें दूसरे जो निर्बल होकर बलवान को जीतने की अभिलाषा करें तुम्हार पुत्र इसी प्रकार शरीर शोषण करेंगे।

दो पुरुष सदा स्वर्ग में रहते हैं। एक क्षमावान राजा, दूसरा दानी। राजा युधिष्ठिर इन्हीं में से एक हैं, दो पुरुष सीधे स्वर्ग में जाते हैं, एक योगाभ्यास युक्त सन्यासी दूसरा जो सन्मुख रण में मारा जाय। इस संसार में सब प्रकार के मनुष्य हैं, बुद्धिमान जिसे कार्य के योग्य जो कोई होता है, उसी मे उस को लगाता है। तुम ने कर्णादि को अयुक्त पदों पर लगाया है, हे राजन! पुरुष के जीते जी स्त्री को देने लेने का अधिकार नहीं, वैसे ही पिता के होने हुए पुत्र को और स्वामी के होते हुये भृत्य को देने लेने का कोई अधिकार नहीं इस लिये आप के होते हुये दुर्योधन को कोई अधिकार नहीं। आप चाहे युधिष्ठिर को राज्य देदें दुर्योधन कुछ नहीं कर सक्ता॥

हे राजेन्द्र। चार पदार्थ तुरन्त फल देने वाले होते हैं। देवताओं का संकल्प बुद्धिमानों का अनुभाव, विद्वानों का विनय और पापियों का विनाश, मनुष्य के पाच इन्द्रि में होती यदि एक रोग हो तो मनुष्य की सारी बुद्धि चू जाती है जैसे

चर्म पात्र से पानी आठ गुण पुरुष को तेजस्वी करते हैं (१) प्रज्ञा (२) कुलीनता (३) इन्द्रिय दमन (४) शास्त्रपढ़ना (५) पराक्रमी होना (६) थोड़ा बोलने का स्वभाव होना (७) यथा शक्ति दान देना (८) उपकार मानना, शरीर रूप घर में पांच इन्द्रियें और मन बुद्धि अहंकार और स्थूल शरीर यह नौ द्वार हैं। अविद्या काम और कर्म यह स्थम्भ हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पांच साक्षी है। चैतन्य शक्ती से आधिष्ठित इस को जो जानता है वह सब से अच्छा कवि है॥

जो पुरुष आपत्ति से कभी नहीं घबराता और सावधानता से उद्योग करता रहता है। समय पर दुःख सहता और धुरन्धर कहलाता है, वह सब को जीत लेता है जो पुरुष अपने सुख में हर्षित नहीं होता और पराये दुःख पर भी हर्षित नहीं होता और दान करके पछताता नहीं, वही सत्य पुरुषों का स्वभाव रखता है। जो मनुष्य अपने आप निन्दित कर्मों से लज्जित रहता है, वह सब लोक का गुरु हो जाता है॥

देखो शाप से दग्ध पाण्डु जी के इन्द्र के समान पांचों पुत्र वन में उत्पन्न हुये तुम्हीं ने उनको बढ़ाया और वह अब भी तुम्हारी ही आज्ञा का पालन करते हैं इस लिये हे तात! पाण्डवों को राज्य दे कर देवताओं की भान्ति प्रमुदित हो कर रहिये॥

इक्कीसवां अध्याय

—:०:—

विदुर का राज नीति वर्णन करना ॥

तब धृतराष्ट्र बोले कि चिन्ताग्नि से मेरा मन दग्ध हो रहा है इस लिये जो कुछ मेरा कर्तव्य है वह बताइये विदुर जी बोले कि हे राजन् जिस कर्म में कपट मिथ्या इत्यादि मिले हुये हों और जो झूठे उपायों से सिद्ध होता हो उसको कभी न करना चाहिये करते समय यह विचारना चाहिये कि अमुक काम करने से यह फल होगा अमुक काम करने से यह इससे जिस का फल श्रेष्ठ हो वोही काम करना उचित है ॥

धर्म से राज्य मिलता है इस से धर्म ही से राज्य का पालन भी करें ताकि धर्म मूल राज लक्ष्मी पाकर उसको छोड़ना न पड़े, और न लक्ष्मी ही उसको छोड़े। चाहे उन्मत्त पुरुष कोई अनर्थ वचन कहता हो चाहे बालक कुछ बकता हो, पर बुद्धिमान को उससे सार लेलेना उचित है। गाय, बैल गन्ध से देखते हैं, पुरुष नेत्र से देखते हैं, परन्तु राजा लोग दूतों से देखते हैं। इस लिये उत्तम पुरुषों को दूत पद पर नियुक्त करना चाहिये ॥

अच्छा बोलना कई कल्याणों का दाता है, बुरा बोलना अनर्थ उत्पन्न कराता है। बाण लगने से जो घाव होता है, वह फिर मिट जाता है, परन्तु दुर्वचन से जो हृदय में छेद हो

जाता है, वह कभी नहीं मिटता । इस लिये विद्वान दूसरों पर वाग बाण कभी न छोड़े । देवता लोग जिस पुरुष का निरादर करते हैं, उसकी बुद्धि को पहिले हर लेते हैं । वह नीच कर्म करने लगता है । विनाश काल में बुद्धि मलिन हो जाता है, इस से वह न्याय और अन्याय में भेद नहीं देखता ॥

हे राजन् ! अब तुम्हारी बुद्धि भी वैसी हो गई है परन्तु तुम नहीं जानते, हे राजन् युधिष्ठर सब धर्म लक्षणों से युक्त है और राजा होने के योग्य है, वह तुम्हारे आज्ञाकारी होगा तुम्हारे पुत्र राज्य के योग्य नहीं क्योंकि वह तेज और प्रज्ञा से युक्त नहीं और धर्म अर्थ को नहीं जानते ॥

बाईसवां अध्याय

—:o:—

विदुर का धृतराष्ट्र को उपाय बताना ॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर जी अपने मनोहर वचनों को एक बार फिर कहो । विदुर जी बोले कि, हे राजन् समता बुद्धि रखना तीर्थ स्नान के तुल्य है, तुम अपने पुत्र और भतीजों में समदृष्टि रहो । इस से तुम्हारी संसार में कीर्ति और परलोक में यश होगा । क्योंकि जब तक मनुष्य की पुरुष कीर्ति जगत में रहती है, वह स्वर्ग में वास करता है ॥

इस विषय में पुरातन इतिहास हैं कहते हैं कि केशिनी नाम एक अति रूपवान कन्या विशेष पति की इच्छा से स्वयम्बर में स्थित थी उस समय प्रल्हाद का पुत्र विरोचन उस के पास आया और कहने लगा कि हे केशिनी तू मुझ को पति बरले तब केशिनी बोली कि तुम दैत्य पुत्र हो इस लिए नीच हो इस से तो मैं सुधन्वा ब्राह्मण को ही पति बनाऊं तो अच्छा है ॥

विरोचन बोला कि सुधन्वा हम से श्रेष्ठ नहीं हम लोग प्रजा-पति की संतान हैं यह सब लोक हमारे हैं, सुधन्वा हम से किस प्रकार अच्छा हो सकता है, केशिनी बोली कि अच्छा प्रातःकाल सुधन्वा आयेगा तो उस से बात चीत करना, विरोचन ने कहा बहुत अच्छा, जब प्रातःकाल हुआ और सुधन्वा आया तो उस ने उन दोनो को बैठे देखा, केशनी ने अर्घ्य पाद्य से उस की पूजा की तब विरोचन बोले कि हे सुधन्वा तुम स्वर्ण आसन पर बैठ जाइए सुधन्वा ने कहा कि हे विरोचन हम तुम्हारे आसन पर नहीं बैठ सकते, तुम अकेले बैठे रहो, विरोचन बोला कि हां तुम तो काष्ठ के पीढ़े अथवा कुश कास की चटाई पर बैठने वाले हो, तुम भला स्वर्ण आसन पर किसी कर बैठ सकते हो ॥

सुधन्वा ने कहा कि पिता और पुत्र एक आसन पर बैठ सकते हैं। अथवा दो ब्राह्मण व दो क्षत्रिय अथवा दो वैश्य एक आसन पर बैठ सक्ते हैं। परन्तु अन्य २ जाति के दो मनुष्य

एक आसन पर नहीं बैठ सक्ते । तुम्हारे पिता हम से नीचे बैठते हैं, परन्तु तुम बालक हो, इस से नहीं जानते ॥

विरोचन बोला कि मैं अपने पिता के धन की बाज़ी लगाता हूं ॥

सुधन्वा बोला कि तुम्हारा धन तुम्हारे पास रहे हम तो प्राणों की बाज़ी लगाते हैं, विरोचन ने कहा कि बहुत अच्छा किसी जानने वाले के पास चलो, सुधन्वा बोला कि तुम्हारे पिता ही के पास चलेंगे ॥

तब दोनों प्रल्हाद के पास आये। प्रल्हाद उन को वेग से आते हुए देख कर कहने लगा कि हे विरोचन हम ने तुम को पहिले कभी इस प्रकार आते नहीं देखा क्या सुधन्वा तुम्हारे सखा होगए हैं? विरोचन बोला कि सुधन्वा हमारे सखा नहीं, हमारी परस्पर प्राणों की बाज़ी लगी है आप बताइए हम दोनों में कौन श्रेष्ठ हैं प्रल्हाद ने सुधन्वा को अर्घ दिया और सेवकों को कहा कि इन के लिये शरत लाओ, सुधन्वा बोले कि हम को इन पदार्थों की अवश्यकता नहीं आप यह बताइए कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं कि विरोचन? प्रल्हाद बोला कि हे सुधन्वा मेरा एक ही पुत्र है तुम तो साक्षात् ब्राह्मण हो फिर मैं आप दोनों के इस घोर विवाद में प्रश्न का कैसे उत्तर दूं ॥

सुधन्वा ने कहा कि गाय व अन्य धन अपने पुत्र को दे दो, मैं तो प्रश्न का उत्तर ही लूंगा, प्रल्हाद ने कहा कि

तुम प्रथम मेरे प्रश्न का उत्तर दो कि जो न सत्य ही कहे और न असत्य ही, ऐसा अन्याय बोलने वाले को क्या दुःख मिलेंगे ॥

सुधन्वा ने कहा कि भूख प्यास से सताए हुए, ऐसे नगर में रहते हुये जिस के चारों ओर से शत्रुओं ने सन्देह कर लिया हो जो दुःख उस मनुष्य को होता है वही झूठी साक्षी देने वाले को होगा जो मनुष्य पृथ्वी के विषय में झूठ बोलता है वह नाश हो जाता है यह केशिनी पृथ्वी स्वरूप है ॥

तब प्रह्लाद जी बोले कि हे विरोचन सुधन्वा के पिता अंगिराजी हम से श्रेष्ठ हैं। सुधन्वा तुम से श्रेष्ठ है उसकी । माता माता से श्रेष्ठ है। इस लिये अब तुम हार गये हो, सुधन्वा तुम्हारी तुम्हारे प्राणों के स्वामी हैं ॥

सुधन्वा बोला कि हे दैत्यराज ! मैं आप के सत्य से प्रसन्न हूं मुझ को आप के पुत्र के प्राणों की इच्छा नहीं तुम्हें यह दुर्लभ्य पुत्र प्राप्त ही रहे अब चाहे यह केशनी से विवाह करे चाहे न करे हम को उस से कुच्छ काम नहीं ॥

यह कह कर विदुर जी बोले कि हे राजा धृतराष्ट्र आप को भी भूमि के विषय में साक्षी देनी है देखो झूठ मत बोलो ऐसा न हो कि सर्वस नाश हो जाये जैसे लाठी लेकर चरवाहे पशुओं की रक्षा करते हैं देवता लोग ऐसा नहीं करते वह अपने रक्ष्य की बुद्धि से रक्षा करते हैं इस से जिन ने प्रकार

मनुष्य कल्याण के काम करता है उसी प्रकार उस की रक्षा भी होती है माया भी पुरुष का दुःख वेद छुटा नहीं सकते और अन्त काल में उस को छोड़ देते हैं जाती वालों के वीच में भेद कराना और स्त्री पुरुष का वियोग कराना यह काम छोड़ने के योग्य हैं इस से हे राजन्! जाती वालों के भेद और कलह कराने में तुम्हारी प्रवृति उचित नही है ॥

मान के लिये अग्नि होत्र, मान के अर्थ मैानव्रत, मान के लिये पढ़ना, मान के लिये पढ़ाना, मान के लिये यज्ञ करना अच्छी रीति और भाव से न किये जाकर अभयंकर हो कर भी भयंकर होते हैं दिन को वह कार्य करना चाहिएं जिस से रात्रि सुख से कटे वर्ष के आठ महीनों में वह कार्य करे जिस से शेष चार मास में सुख से रहे युवावस्था में वह कार्य करना चाहिए जिस से वृद्ध अवस्था में सुख से रहे और आयु भर वह काम करे जिस से परलोक में स्वर्ग मिले ॥

अपनी जाती की भलाई चाहने वाला क्षत्रिय शीलवान होकर वहुत काल पृथ्वी का पालन करता है आपने दुर्योधन शकुनि, दुशासन और कर्ण को शिर पर चढ़ा रखा है आप को ऐश्वर्य कैसे मिल सकता है पाण्डवों में सब गुण हैं और वह आप में पितृभाव भी रखते हैं, इस लिए आप दुर्योधनादि की मति पर न चलें ॥

तेईसवां अध्याय

—:-०-:—

विदुर जी का अनेक प्रकार के नीति के बचन सुनाना ॥

तब विदुर जी बोले कि हे राजेन्द्र ! एक समय महा प्राज्ञ परमहंस दत्तात्रेय जी को फिरते हुए साध्य देवता मिले और उन से कवियों का उपदेश सुनने की इच्छा करने लगे इस वचन को सुन कर श्री परमहंस जी ने वहुत उपदेश के वाक्य कहे और यह भी कहा कि जिन लोगों का जाति वालों से विगाड़ होजाता है उन को पुष्प शय्या पर लेटने पर भी नींद नहीं आती, न स्त्रियों में प्रीति। न मागधसूतों की प्रशंसा करने से ही नींद आती है, न प्रसन्नता ही होती है ऐसे लोगों का शीघ्र ही नाश होजाता है ॥

इस लिए हे राजेन्द्र ! पाण्डवों से युद्ध करने में अनेक दोष हैं, इन्द्रादि देवता भी व्यथित होंगे, पुत्रों से वैर, निन्द चित में दुख होगा, यश का नाश, शत्रुओं का हर्ष, भीष्म जी का कोप, तुम्हारा कोप, द्रोणाचार्य का कोप, युधिष्ठर का कोप, यह सब कोप मिल कर पृथ्वी का नाश कर देंगे ॥

यदि मेल करके रहो तो तुम्हारे पुत्र और पाण्डव सब पृथ्वी का राज्य कर सकते हैं, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र वन के समान हैं युधिष्ठर आदि व्याघ्र हैं, न व्याघ्र वन के

बिना रह सकते हैं, न वन व्याघ्रों के बिना बच सकता है पुरुषों के पांच प्रकार के बल होते हैं, सब से छोटा बाहु बल अच्छे मंत्रियों का मिलना, दूसरा बल धन का लाभ, तीसरा बल बाप दादों का इकठा किया हुआ, अभिजात बल चौथा, है, हे राजन्। जिस ने इन चारों बलों को पाया है उस का पांचवा बल प्रज्ञा है, जो सब बलों का बल है ॥

हे राजन्! सर्प, अग्नि, सिंह, बजाती भर में बड़ा बुद्धिमान पुत्र, इन सब का कभी अनादर न करना चाहिएं जिस की प्रशंसा जुआरी लोग करें और व्यभिचारिणी स्त्रियें करें, वह जी नहीं सकता, इस लिए पाण्डवों से मिलाप करो नहीं तो पछताना पड़ेगा ॥

चौबीसवां अध्याय

—:०:—

विदुर जी का सनत्सु जात का उपदेश सुनाना ॥

धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर जी आप के वचन बड़े अच्छे है। यदि कुच्छ और बात हो तो वह भी कह दीजिये ॥

विदुर ने कहा कि तुम सब सुख देने वाली सनत्सुजात जी से ब्रह्मविद्या का उपदेश सुनो। धृतराष्ट्र ने कहा कि

सनत्सुजात कैसे मिले? तब विदुर ने सनत्सुजात को याद किया और वह महात्मा आए, विदुर ने कहा कि हे भगवन! धृतराष्ट्र जी के मन में कुछ शंका है उसको दूर कीजिये। तब धृतराष्ट्र जी ने कहा कि हे महर्षि हम ने सुना है कि आप के वचनानुकूल मृत्यु कहीं नहीं, यह बात कैसी है?

सनत्सुजात बोले, कि एक ही पुरुष को मृत्यु और अमृत्यु दो भिन्न २ अवस्थाओं में होती है। मोह से मृत्यु होना कवियों ने कहा है, हम प्रमाद को मृत्यु कहते हैं। और अप्रमाद को अमृत्यु, प्रमाद से असुरमृत्यु को प्राप्त हुए, ज्ञान से फिर ब्रह्मभूत हो जाते हैं मृत्यु का स्वरूप तो कभी दिखाई नहीं देता। और न यह नयत्र की भान्ति मनुष्य को खाती है। इसलिये उसके होने में कोई प्रमाण नहीं॥

जो लोग यमराज को मृत्यु कहते हैं, वह भूल पर हैं, वह केवल सब भूतों को शिक्षा देते हैं। वही शुभ करने वालों को कल्याण फल देते हैं इसलिये वह मृत्यु नहीं हो सकते॥ वे ही लोग यह भी कहते हैं कि यमराज ही की आज्ञा से क्रोध अज्ञान लोभ रूपी मृत्यु मनुष्यों को प्राप्त होती है। और अहंकार वश कुमार्ग पर चल कर आत्मयोग को कोई नहीं पाता॥

इसी से मनुष्य मोहित हो शरीर छोड़ कर यमराजा के वश में होते हैं और यम लोक से फिर मर्त्य लोक में आते हैं और नरक में जाते हैं, प्रयोजन यह कि यमराज को जो अज्ञान

नाशक है मृत्यु कहते हैं फिर कर्मों के उदय होने पर स्वर्ग को पाते हैं जो मनुष्य की शब्द स्पर्श आदि विषयों में नित्य प्रवृत्ति रहती है, वही इन्द्रियों का महा मोह कराती है और अन्तरात्मा को विषयों में लगाती है, जिन्हों ने चित्त वृत्ति को जीता हुआ है वह तो मृत्यु को तर जाते हैं, परन्तु अज्ञानी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, इस लिये अभिलाषों को नाश करने से मृत्यु अमृत्यु हो जाती है' अर्थात अज्ञान रूप मृत्यु यमरूप मृत्यु के समान नहीं खाती ॥

निष्काम पुरुष के समीप मृत्यु नहीं आती क्रोध, मोह, लोभ युक्त जो तुम्हारा जीव इस शरीर के भीतर है वही तुम्हारी मृत्यु है इस प्रकार मृत्यु की उत्पति जान कर, ज्ञानी पुरुष मृत्यु से नहीं डरता क्योंकि जैसे अज्ञानी पुरुष मृत्यु से डरता है वैसे ही ज्ञानी पुरुष मृत्यु को मार देता है ॥

तब सनतसुजात जी ने सम्पूर्ण ब्रह्म विद्या का उपदेश धृतराष्ट्र को किया, इतने में रात्रि बीत गई और सुवेरा हुआ ॥

पच्चीसवां अध्याय

—:०:—

कौरवों की सभा में संजय का पांडवों का प्रत्युतर सुनाने जाना ॥

प्रातःकाल ही संजय के आने का समाचार सब को मिल गया, धृतराष्ट्र ने बड़ी भारी सभा की, सुंदर आसन और शय्या लगाए गए चारों ओर चदनादि सुगंधी युक्त जल छिड़का गया। अमृत समान उज्वल वस्त्रादि बिछाए गए सुंदर चित्र विचित्र काष्ट और पत्थर और हाथी दान्त की चौकियें स्थान स्थान पर रखी गई इस प्रकार अनेक सुंदर वस्त्रादि से आछादित राज सभा में सब राजाओं ने आना आरम्भ किया ॥

पहिले धृतराष्ट्र और सब वृद्ध कौरव आये, फिर दुर्योधन और उसकी टोली आई, तिस के पश्चात् द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि संजय जी आरहे हैं इतने में संजय जी भी आपहुंचे और कहने लगे कि हे कौरव लोगो, हम पाण्डवों के पास गये थे, अब आये हैं, पाण्डव लोग अवस्था के अनुसार आप सब को अभिनंदित करते हैं सब छोटे बड़ों का नाम ले २ कर उन्हों ने कुशल पूछी है धृतराष्ट्र जी की आज्ञा से जो कुच्छ हम ने उन को कहा और जो उन्हों ने उत्तर दिया उस को सुनो ॥

छब्बीसवां अध्याय

—:०:—

संजय का सब सभा के सामने अर्जुन का

संदेशा सुनाना ॥

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे संजय आप पाण्डवों का प्रत्युत्तर सुनाइये। तब संजय ने कहा कि सब महाशय सुनें मैं महा गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन का प्रत्युत्तर सुनाता हूं उसने मुझे कहा है कि जब धृतराष्ट्र की सभा में बैठे हों और भीष्म जी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और विदुर जी भी बैठे हों और कर्ण जो सदा अपने पराक्रम की मिथ्या प्रशंसा करता है और कौरवों के सहायक राजा लोग भी बैठे हों, उस समय मेरे वचनों को उच्चस्वर से कहना। वह वचन यह हैं:—

यदि दुर्योधन अब भी युधिष्ठिर को अर्ध राज्य देना नहीं चाहता, तो हम समझते हैं कि अभी तक उसने अपने पापों का फल पूरा २ नहीं भोगा। क्योंकि उनका युद्ध युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न और शिखंडी से होगा पाण्डवों के सहायक श्रीकृष्ण जी हैं, जो त्रिलोकी के मालिक हैं जिन्हों ने नरकासुर और मुरासुर को मारा था, देवता लोग उनको साक्षात् परमेश्वर समझते हैं, इसके अतिरिक्त सात्यकि आदि अनेक राज पुत्र युद्ध विद्या में बड़े प्रवीण हमारे सहायक होंगे ॥

यह समय है कि कौरवों को अब विचार करलेना चाहिये, हमारा एक २ योधा उन कौरवों का बीज नाश करने को प्रस्तुत है, हमने उन सब के [illegible] को देखा है और जो २

कष्ट उन्हों ने हम को दिए वह भी हम को याद है, इस लिए हम उन का बिना मारे कभी नहीं छोड़ेंगे ॥

हां यह बात अवश्य है कि यदि दुर्योधनादि युद्ध न करना चाहें तो हम भी लड़ना अच्छा न समझेंगे और यदि लड़ेंगे तो हमारा एक ही वीर उन का यम मंदिर में पहुंचावेगा। इस लिए जैसा उन की इच्छा हो करें ॥

वृद्ध लोग हमारी जय बताते हैं, ज्योतिषी लोग हमारी जय बताते हैं, हमारा गाण्डीव धनुष और तूणीर हमारी जय बताता है, हमारी खड्ग कोश से बार २ हिलती है, पशु और पक्षी सब हमारी विजय का समाचार देते हैं। कौन है जो शिव जी के दिये हुए हमारे पाशुपतास्त्र से बच सके ॥

कौरवों को कहो कि निन्द्रा का छोड़ कर जागृत हो। अब पाण्डव बिना युद्ध किये नहीं रहेंगे हमारे आगे इन्द्र होगा और पश्चात् श्री कृष्ण जी रक्षा करेंगे क्या दुर्योधन इस प्रकार का अमित पराक्रम रखते हुए हम पांडवों से बच सकता है ॥

तब अर्जुन ने कहा कि वृद्ध कौरवों को हमारा प्रणाम करो और जो कुछ वह कहें सोई करो ॥

सताईसवां अध्याय

—:-०-:—

भीष्म का नर नारायण रूप वर्णन करना, कर्ण

का रोष से बोल उठना। भीष्म का फिर बोलना और द्रोणाचर्य का राजा धृतराष्ट्र को समझाना॥

तब भीष्मपिता मह्हा बोले कि एक समय बृहस्पती जी और शुक्राचार्य जी ब्रह्मा जी के पास बैठे थे अन्य सब देवता भी वहीं थे कि इतने में नर नारायण ऋषि परम तेजस्वी वहां आये उनको देख कर बृहस्पति जीने ब्रह्मा जी से पुछा कि हे पितामहा यह तेजस्वी कौन हैं जो आपको भी प्रणाम नहीं करते॥

ब्रह्मा जी बोले कि यह परम प्रतापी प्रकाशमान नर और नारायण हैं। यह जीव लोक से ब्रह्म लोक में आये हैं। और बड़े पराक्रमी और प्रभावशाली हैं। इन्हों ने अपने कर्म फल से लोक भर को अनन्दित किया है और अनेक दुष्ट राक्षस और दैत्य मारे हैं॥

दैवयोग से उसी समय देवासुर संग्राम हो रहा था, इन्द्रादि सब देवता यह सुन कर नर नारायण के पास गये और कहने लगे कि हे महात्माओं आप हमारी सहायता करो नर नारायण बोले कि बहुत अच्छा, जो कुछ आप कहेंगे, वह हम करेंगे। तब उनकी सहायता से इन्द्रने सब दानवों और दैत्यों को जीता और पौलोम और कालजंघ नामी सहस्रों राक्षसों का वध किया॥

यह अर्जुन और श्रीकृष्ण केवल उन्हीं नर और नारायण

का रुप हैं। इसी अर्जुन ने अग्न्यासुर को मार कर और समुद्र के पार साठ हजार निवात कवच राक्षसों को जीत कर इन्द्रादि देवताओं को प्रसन्न किया है। इन्द्रादि देवता इस को नहीं जीत सक्ते। यह कर्म करने के लिये इस संसार में आये हैं। नारद जी ने इन दोनों महात्माओं को वर दिया है कि तुम युद्ध ही किया करो, क्योंकि वह ब्राह्मणों का महात्म्य अच्छी तरह जानते हैं॥

हे दुर्योधन तुम को श्रीकृष्ण तथा अर्जुन जी के वचनों को अंगीकार करना चाहिये, यदि ऐसा न करोगे तो पछताओगे। और फिर हमारे वचन को स्मरण करोगे। तुम्हारे ही मत पर सब कौरव चलते हैं, और तुम पाप बुद्धि कर्ण, शकुनी और दुशासन के मत पर चलते हो॥

इतनी बात सुन कर कर्ण चिल्ला उठा, पिता हे पितामह किसी आयुष्मान को ऐसे प्रकार वचन कहने उचित नहीं, जैसे आप हम को कहते हो। हम क्षत्रिय धर्म को पालन करते हैं। कोई दुराचरण नहीं करते। फिर आप हमारी निन्दा क्यों करते हैं? हमारे दुःख को कोई नहीं जानता दुर्योधन को भी कुछ प्रतीत नहीं होने जो प्रतिज्ञा की है उसको अवश्य ही पालेंगे, और दुर्योधन न भी लड़ेंगे तो भी पांचो पाण्डवों को मारेंगे जब उनसे पहिले बिगाड़ हो चुका तो अब मिलाप कैसे हो सकता है! हम दुर्योधन और धृतराष्ट्र का प्रिय करेंगे क्योंकि वही हमारे राजा हैं उन के अतिरिक्त और किसी को हमारे साथ बोलने का अधिकार नहीं॥

यह सुन कर भीष्म जी धृतराष्ट्र को चिता का कहने लगे कि तुम देखते हो कर्ण नित्यप्रति बकवास करता है। यह पाण्डवों का सोलहवां भाग भी नहीं, और अपने ही मूंह से अपनी प्रशंसा करता है जो आपत्ति तुम पर आने वाली है उसका यही कारण है। दुर्योधन इसी के कहने पर चलता और पाण्डवों का अपमान करता है ॥

विराट नगर में जब अर्जुन ने हम सब को जीता था, तो उस समय कर्ण किधर था! क्यों वहां से दुम दबा कर भागा! जब घोष यात्रा में गन्धर्व दुर्योधन को पकड़ कर लेगये थे तो उस समय कर्ण कहां थे? अर्जुन और दूसरे पाण्डवों ने ही जा कर छुड़ाया अब कर्ण बड़ा भारी योधा बनता है। अभी कल विराट नगर में अर्जुन ने कर्ण के भाई को मार डाला, कर्ण भी वहां था क्यों न उस ने अपने भाई को बचा लिया, और क्यों वहां से भाग आया ॥

तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हे धृतराष्ट्र, भीष्म जी के वचन सुनो जो वह कहते हैं सत्य हैं. धन के लोभी स्वार्थियों के वश में मत पड़ो. अर्जुन ने जो कुच्छ कहा है वह ठीक ऐसा ही होगा, इस लिए हम चाहते हैं कि आप युद्ध न करें लड़ाई का त्याग करें. अर्जुन के समान तीनों लोकों में कोई योधा नहीं है ॥

धृतराष्ट्र ने इन वचनों की ओर कुच्छ ध्यान न दिया और संजय से फिर पाण्डवों के विषय में वार्ता लाप करने

लगा, इस से सब वृद्ध पांडव निराश होगए ॥

अठाईसवां अध्याय

—:०:—

सञ्जय का पाण्डवों के सहायक राजाओं के नाम बताना ॥

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे संजय! यह तो तुम ने अर्जुन के वचन सुनाये, अब धर्मराज युधिष्ठिर का वचन तो सुनाओ कि उस महात्मा ने क्या कहा था अब वह क्या कर रहे हैं? कौन २ लोग उन के भाईयों और पुत्रों की आज्ञा चाह कर उन के मुख की ओर देखते हैं? युधिष्ठर का स्वभाव तो कोप करने का नहीं, किया कोई पुरुष उस को रोकता भी है कि नहीं ॥

संजय बोले कि पंचाल युधिष्ठर जी के मुख को देखते हैं और वह सब को सिखाते रहते हैं उस को आते जाते देख कर सब पंचाल और पाण्डव नमस्कार करते हैं छोटे से छोटे चरवाहे और घोप से लेकर बड़े २ धनाढ्य और राज सभासद पांचाल और मत्स्य देशी उस को प्रणाम करते हैं सब ब्राह्मणियां राज पुत्रियां और वैश्यकन्या उन को युद्ध की तय्यारी करते हुए देखने आती हैं और वहां खेलती रहती हैं ॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि उन के सहायकों के नाम तो लो, संजय को यह सुन कर मूर्छा आगई और वह भूमि पर गिर कर श्वास लेने लगा, यह देख कर विदुर बोला कि हे धृतराष्ट्र जी महाराज, संजय तो मूर्छित हो कर गिर पड़े और बोल नहीं सकते, धृतराष्ट्र ने कहा कि निश्चित पाण्डवों को देख कर इस के मन को पीड़ा हुई है ॥

कुच्छ काल के पश्चात् संजय को होश आई और वह कहने लगा कि महाराज विराट नगर में बस कर कुन्ति पुत्र कुच्छ दुर्बल हो गये हैं आपने पाण्डवों के सहायकों के नाम पूछे हैं सो आप को सुनाता हूं ॥

युधिष्टर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव के नाम तो आप को विदित ही हैं, यही पांचों पाण्डव महा पराक्रमी धनुर्धर और सब लोकों को जय करने वाले हैं इन के अतिरिक्त आप शिखंडी को जानते हैं, यह पूर्व काल में अम्बा नाम काशी राज की पुत्री थी और भीष्म जी को वध करने की इच्छा से इस ने बड़ा घोर तप किया था, इस ने वर लिया था कि जहां कहीं मैं जन्म लूं भीष्म को मारूं, फिर यह द्रुपद की कन्या हुई और वर की प्रबलता से पुरुष हो गई, क्योंकि बहुत काल तक स्त्री रही, उस में स्त्री और पुरुष दोनों के गुण पाये जाते हैं वही महा दुर्मद पांचाल राजा का पुत्र कालिंग देश के राजा से लड़ा था वह भी पाण्डवों का सहायक है ॥

केकय राज के पांच पुत्र सदा कवच धारण किये हुये हैं,

वह बड़े शूर हैं और पाण्डवों की सहायता के लिये आये हैं वृष्णि वंश के वीर पराक्रमी सात्यकि भी पाण्डवों के सहायक हैं, राजा विराट भी युद्ध करने को उद्यत हैं, काशी राज भी पाण्डवों के अर्थ लड़ने मरने को आया हुआ है ॥

इन के अतिरिक्त द्रुपद पुत्र, अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु, शिशुपाल का पुत्र धृष्टद्युम्न और अन्य महारथी भी युद्ध करने को सन्नद्ध हैं धृष्टद्युम्न एक अक्षौहिणी सेना साथ लाया है ॥

वासु देव श्रीकृष्णचन्द्र को आप जानते ही हैं वह भी पांडवों के सहायक और मन्त्री हैं उन के भाई शरब और कर्कश भी साथ हैं सहदेव और जयत्सेन जो जरासन्ध के पुत्र हैं जो युद्ध में बड़े कुशल हैं वह भी पाण्डवों के सहायक हो लड़ेंगे ॥

राजा द्रुपद तो लड़हीगे परन्तु उनको छोड़ कर और बहुत से राजा पश्चिम और पूर्व की दिशाओं से आये हैं और बड़ी २ सेना साथ लाये हैं उन सब की सहायता लेकर पांडव आप से लड़ेंगे ॥

उनतीसवां अध्याय

—:-o-:—

धृतराष्ट्र का भीमसेन, अर्जुन और सात्यकि

आदि योधाओं के पराक्रमों का विचार कर के बहुत शोच करना ॥

यह सुन कर धृतराष्ट्र बोले कि हे संजय ! मैं भीमसेन के पराक्रम को जानता हूं, बाल्यवस्था ही से वह बड़ा पराक्रमी था, हमारे पुत्रों को तो वह हाथी के समान दलन कर देता था और बड़ा भयंकर युद्ध करता था, सब से अधिक खाता था और सब से अधिक बल रखता था, क्या मेरे पुत्र उस वीर से युद्ध कर सक्ते हैं ? कभी नहीं, जीतने की तो बात ही और है ॥

देखो बाल्यवस्था ही में उस ने बड़े २ पराक्रम किये, राजा जरासन्ध को बिना आयुध ही मार डाला, जब वह गदा हाथ में लेकर हमारी सेना में फिरेगा तो निस्संदेह उस के रूप को देख कर सब को भय होगा ॥

जब मैं बार २ इस बात को सोचता हुं और भीमसेन के मल्ल युद्ध के करने का बिचार करता हुं, तो मेरे मन में यही आता है कि उस अपराजित महा बाहु से कदापि लड़ना उचित नहीं, मेरे पुत्र तो केवल काल के घेरे हुए प्रतीत होते हैं जो यह उस अमति बल रखने वाले से युद्ध करने को उद्यत हुए हैं ! यदि यह बुद्धिमान हों और अपने प्राणों की रक्षा चाहते हों तो अब भी पाण्डवों को उन का राज्य देकर सुख पूर्वक राज्य करें, परन्तु काल वश होकर यह हमारा बचन नहीं सुनते ॥

फिर अर्जुन को देखो, तुम ने कभी भी उन की पराजय सुनी है? चाहे वह देवताओं से लड़े, चाहे राक्षसों अथवा गन्धर्वों से, उस की कभी हार सुनी है? कभी नहीं। फिर किस प्रकार मेरे पुत्रों से वह हार जायगा? क्या यह गन्धर्वों और देवताओं से भी अधिक बल रखते हैं?

हमारे दल में से कौन अर्जुन के सामने जा सकता है? कहीं कदाचित् उनका अपूर्व बल देख कर उन से मिल जाय, द्रोणाचार्य वृद्ध हैं और अर्जुन के गुरु भी हैं, कदाचित् वह भी उन पर कृपा करने लग जायँ? इस प्रकार जब मैं चारों ओर से देखता हूं, तो मुझ को तो अपनी विजय दिखाई नहीं देती॥

अर्जुन के गाण्डीव धनुष की टंकार आकाश को शब्दाय मान कर देती है और उस के बाणों के आगे आने में इन्द्र भी डरता है, क्या जब उस धनुष को चढ़ा कर अर्जुन मेरे पुत्रों पर बाण वर्षा करेगा तो वह जीते रहेंगे? कभी नहीं, मुझ को उन की शांति दिखाई नहीं देती॥

जब से मैंने सुना है कि अर्जुन के सारथि श्रीकृष्णचन्द्र होंगे तब से तो मेरी रही सही भी आशा जाती रही है। अर्जुन तो पहिले ही बड़े धनुर्धारी हैं और श्रीकृष्णचन्द्र जी के संगम से काली अग्नि होकर हमारे वन में फिरेंगे हमारे पास न तो वैसा धनुष है न कोई वैसा योधा और न ही सारथी, इस बात को हमारे मंद बुद्धि पुत्र नहीं समझते

वज्र से पीड़ित मनुष्य च हे बच जाए परंतु अर्जुन के बाणों से बेधित मनुष्य कभी नहीं बच सकता ॥

फिर केकय, मत्स और मगध देश के राजा भी हमारे शत्रु और उन के मित्र हैं और युद्ध में आकर हम से लड़ना चाहते हैं सात्यकि तो अर्जुन का शिष्य है क्योंकि उस ने उस को धनुर्विद्या सिखाई है ऐसे सहायकों से लड़ने पर मेरे पुत्रों की गति का निश्चय कर सकते हो, मैं जानता हुं कि युधिष्ठर जी बड़े दर्शनीय, मनस्वी, लक्ष्मीमान, ब्रह्मवर्चस्वी मेधावी, सुकृती, प्रज्ञा वान, धर्मात्मा हैं और मित्रों और आमत्यों से सम्पन्न हैं, बड़े बलवान भाइयों और सम्बन्धियों से भी युक्त हैं ? क्या ऐसे अक्रूर स्वभाव महादानी बहुश्रुत कुशलात्मा वृद्ध सेवी और जितेन्द्रिय के क्रोध को दुर्योधनादि मन्द बुद्धि मेरे पुत्र सहार सकेंगे ! निश्चय युधिष्ठर रूपी कालाग्नि मेरे पुत्रों को भस्म कर देगी, इस से मैं युद्ध में कुच्छ नहीं देखता हुं ॥

हे कौरव लोगो ? मेरी सम्मत्ति में युद्ध से तुम को बचना अच्छा है, नहीं तो अवश्य नाश को प्राप्त होगे। जहां तक हो सके शान्ति करने का यत्न करो ॥

तीसरा अध्याय

—:०:—

युद्ध के विषय में संजय की अनुमति ॥

यह सुन कर संजय बोला कि हे राजेन्द्र? जैसा आप पाण्डवों को समझते हैं, वह सच मुच वैसे ही हैं परंतु आप बार २ उन का अपराध करते हैं. इस से आप की यह बुद्धि देर तक न रहेगी, दोष तो पहिले आप ही का है, आपने पिताओं का सा आचरण नहीं किया, पहिले आप ही ने उन का निरादर किया, जो पिता श्रेष्ठ सुहृद हो उस को सावधान रहना उचित है, उस को सब का हित करना ही योग्य है, जो औरों के मारने की इच्छा रखता है वह गुरु नहीं कहाता! "यह जीता, इतना जीता" इस प्रकार के वचन कह कर आप ही जूए के समय हंसते थे॥

आप के पिता का तो केवल कुरुदेश और जांगल देश ही था अन्य सब पृथ्वी पाण्डवों ने ही जीती थी फिर क्यों आप सब देश को अपना जीता हुआ समझ रहे हैं? गन्धर्व राज तुम्हारे पुत्रों को पकड़ कर ले चले थे। केवल पांडवों ने ही उन को बचाया, पांडवों के जूए में हारने पर और फिर उन के वन में जाने पर आप बाल की भान्ति सन्तुष्ट ही रहे आप में और उन में यह अंतर है, उस समय आपने इस समय का विचार नहीं किया था॥

देखो धनुष धारियों में अर्जुन श्रेष्ठ हैं धनुषों में गांडीव प्राणियों में श्री कृष्ण चन्द्र, आयुधों में सुदर्शन चक्र, श्वेत अश्वयुक्त रथ पर आरूढ़ अर्जुन इन सब उत्तम सहायकों से युक्त है, इस लिये उस को पराजय करने का विचार करना मूर्खता नहीं तो और क्या है॥

जो २ राजा तुम्हारे वश में हैं वह शीघ्र ही तुम्हारे वश से निकल जायेंगे और पांडवों के सहायी होंगे क्योंकि वह उन के वीर्य को जानते हैं और उन्हीं ने पहिले जीत कर उन को अपने वश किया था, देखो मत्स्य, पांचाल और केकय तो तुम्हारे हाथ से छूट गए, शाल्व देशी और शूरसेन देशी भी तुम्हारा निरादर करते ही हैं इस लिए यह सब लोग अब पांडवों के पास चले गए हैं ॥

कारण यह है कि पाण्डव धर्म युक्त है लोग उनकी भक्ति करते हैं। तुम्हारे पुत्र केवल अधर्म करते हैं, इस लिये लोग इन से विरोध करते हैं। आप अब इस विलाप को छोड़दें, इस से क्या प्रयोजन है? जो असमर्थ हो, उसका अनेक उपाय सोचना वृथा है, आप पुत्रों के वश में हो, कठपुतली की भांति जिस प्रकार आप को वह नचाते हैं आप नाच रहे हो। जुए के समय में मैंने भी आप को समझाया था और विदुर जी ने भी कहाथा कि यह कर्म अच्छा नहीं, इस लिये अब शोच करना ठीक नहीं है ॥

इकतीसवां अध्याय

—:o:—

दुर्योधन का सभा में अपनी अनुमति देकर

अपनी बड़ाई करना, और धृतराष्ट्र को शांति और धैर्य्य देना

यह सब बातें सुन कर दुर्योधन को क्रोध आया, और वह उठकर कहने लगा कि हे पिता जी महाराज आप क्यों डरते हैं? और क्यों इतना शोच करते हैं? हम शत्रुओं को जीत सकते हैं।। जब पाण्डवों ने वनवास लिया था, तो उस समय श्रीकृष्णचन्द्र आये और बड़ी भारी सेना लाये थे, केकैयदेश के राजा तथा धृष्टकेतु और धृष्टद्युम्न भी आये थे। वह सब हमारी निन्दा ही करते थे, श्रीकृष्ण तो हमको राज्य से गिराना ही चाहते थे। उनकी अनुमति थी तो सब राज्य पाण्डवों को देदें, और अपने लिये पाओं रखने को भी स्थान न रखें वह सब तुम्हारा नाश ही चाहते थे॥

फिर हमने ज्ञाति वालों की समति ली, और भीष्म द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से कहा कि समय के आने पर पाण्डव राज्य को पावेंगे। परन्तु श्रीकृष्ण तो हम को निर्मूल ही करना चाहते थे। विदुर को छोड़ कर उनके मत से तो हम सब वध करने के योग्य हैं, केवल धृतराष्ट्र ही हम में धर्मज्ञ हैं॥

परन्तु अबतो समय आगया है कि या तो हम मेल कर लेने के लिये चले और पाण्डवों के पाओं पड़ें, अथवा लज्जा से भाग खड़े हों, नहीं तो प्राणों की आशा छोड़ कर शत्रु

से युद्ध करें हमें यह तो प्रतीत है कि प्रति युद्ध करने से पाण्डवों की जय होगी क्योंकि सब राजा पांडवों के वश में है हमारे बन्धु और मित्र हमारा तिरस्कार करते हैं. हमारे वृद्ध हम को धिक्कार करते हैं और हम आप राज्य से विरक्त हैं। भला जब घर से यह निरादर हो तो शत्रुओं से विजय की आशा कैसे हो सक्ती है? कभी नहीं॥

हम को यही कहा जाता है, कि पाण्डवों के पास जाकर और भूमि पर पड़ कर साष्टांग दण्डवत करो ऐसा करने से वंश क्षय नहीं होगा और बहुत दिनों तक उन का हमारा मेल मिलाप बना रहेगा। परन्तु हमारा प्रयोजन तो और ही है, हम तो अपने वृद्ध अन्ध पिता को शोच करते हैं कि हमारे लिये उनको अनन्त कष्ट प्राप्त हो रहे हैं॥

हे महाराज हम तेरे पुत्रों ने तो शत्रुओं का उपाय पहिले ही से किया था, क्योंकि हम जानते थे कि अब यह विरोध कम नहीं होगा और अवसर पाकर आमात्यों और मित्रों सहित यह लोग हम को मारने के लिये उद्यत होंगे जब ऐसा विचार कर के हम को बहुत शोच हुआ तो हम ने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा से सम्मति ली। उन्हों ने हम को अभय दान दिया और कहा कि तुम मत डरो, यद्यपि हम ने पाण्डवों का अभिद्रोह किया है, तो भी वह युद्ध में हम को जीत नहीं सकते॥

भीष्म अकेला सब राजाओं को जीत चुका है, यदि उसका बल अब क्षीण हो गया है, तो मुझे ज्ञान नहीं है।

आप उन के बल पर संदेह करते हैं, मैं तो उन को सब पाण्डवों के जीतने वाला समझता हूं। सब पृथ्वी पाण्डवों के वश में तो थी ही परन्तु जब से वह क्षीण बहुत हैं तब से सब राजा हमारे वश में आगये हैं। अब यह लोग हमारे लिये प्राण देने को भी उद्यत हैं। और अग्नि में कहो तो प्रवेश कर सक्ते हैं। यह लोग आप की ऐसी करुण और क्षीण बातों को सुन कर हसते हैं। इन में से एक २ राजा पाण्डवों को सेना समेत जीत सक्ता है।

हे महा राज इन्द्र भी एका एकी हमारी सेना को जीत नहीं सक्ता और नहीं ब्रह्मा जी अकस्मात इस को मार सक्ते हैं। इसी सेना के डर सक्ते युधिष्ठर आधा राज्य छोड़ कर पांच ग्राम ही उतर आया है भला जो सब को जीतने वाला हो, वह आर्त हो कर पांच ग्रामों को प्रार्थना करे।

आप निस्संदेह हमारे बल को नहीं जानते, इस लिए भीमसेन से डरते हैं भीम ऐसा बलवान नहीं जैसा आप जानते हैं, वह मुझ से बल में अधिक नहीं, हम ने भी बलदेव जी से गदा युद्ध साखी हैं भीम की क्या मजाल है कि हमारे समान गदा यद्ध कर सके, यद्यीभीम बलदेव जी के तुल्य है तो भी वह हमारा नहीं सह सकता, मैं गदा में बड़ा प्रवीण हुं, बड़े २ योधाओं का उत्साह तोड़ सकता हुं, हिमालय पर्वत को कहो तो फोड़ सकता हुं भीम की गणनां ही किया है ॥

श्री कृष्ण और अर्जुन मेरे गदा युद्ध को जानते हैं, इस लिए हे राजन आप उदास न हो हम भीमसेन को अवश्य

मार डालेंगे, उस के मरने पर हमारे अन्य योधा अर्जुन को मार डालेंगे, देखो भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य और जयद्रथ एक २ ऐसे हैं, कि पांडवों को रण में श्वास न लेने दें. यह सब इकठे होकर तो क्षण भर में पांडवों को मार सकते हैं, फिर आप इतने क्यों घबराते हैं और क्यों अपने मुंह अपनी निन्दा करते हैं ? इसी से तो शत्रु का उत्साह बढ़ता है ॥

हे महाराज भीष्मपितामहा जी शन्तनु से भी अधिक बल रखते हैं। इन को कोई मार नहीं सक्ता, इनको पिता ने वर दिया था कि जब तक तुम्हारी मरन की इच्छा न होगी तुम न मरोगे, द्रोणाचार्य जी परमास्त्र वेता भरद्वाज कुल में उत्पन्न हुए हैं आचार्यों मे श्रेष्ठ कृपाचार्य जी गौतम कुल में उत्पन्न हुये हैं और सब अस्त्र शस्त्र के वेता हैं। भला कौन इनको युद्ध में जीत सक्ता है ! यह अश्वत्थामा देवताओं के समान महारथी हैं कर्ण भी भीष्म द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के समान वीर है। उसने परशुरामजी से आज्ञा पाई थी कि तू हमारे समान हो, तब से वह बल में परशुरामजी के तुल्य है। इनके कान में कुण्डल थे जो इन्द्र मांग कर इन्द्राणी के लिये ले गया ॥

इन सारे महारथियों के होने पर हमको अर्जुन आदि पाण्डवों का क्या भय है क्या भीम और अर्जुन को छोड़ कर शत्रुओं में कोई और भी वीर दिखाई देता है ? हां धृष्टद्युम्न

और सात्यकि दो जने और हैं। माना कि वह सात वीर योधा हैं। क्या उन को भीष्म, द्रोण कृप अश्वत्थामा, वैकर्तन, कर्ण, सोमदत्त, वाह्लिक राज, शल्य, मित्रानुविन्द, जयद्रथ, दुश्शासन, दुर्मुख, दुस्सह, श्रुताय, चित्रसेन पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा, विकर्ण आदि योधा जीता छोड़ेंगे। उनकी सेना भी हम से कम है, हमारी ११ अक्षौहिणी सेना है और उनकी केवल सात अक्षौहिणी, इस लिये मुझे प्रतीत नहीं होता कि क्यों आप शोच करते हैं? हम बलवान और गुणवान हैं, विरुद्ध इसके शत्रु क्षीण और गुण हीन हैं॥

बत्तीसवां अध्याय

=-:०:—

दुर्योधन का संजय से पाण्डवों की सेना के विषय में प्रश्न करना, संजय का पाण्डवों के महारथियों का नाम लेना और सेना के विभाग वर्णन करना॥

तब दुर्योधन ने पूछा कि हे संजय पाण्डवों ने सात अक्षौहिणी सेना तो राजाओं से मांग कर इकट्ठी कर ली परन्तु यह तो बताओ कि युद्ध की इच्छा युधिष्ठिर किस विचार से करते हैं॥

संजय ने कहा कि युधिष्ठिर को युद्ध का कुछ भय नहीं और वह हर्षित हो कर युद्ध की तैयारी कर रहे हैं, कोई भाई नहीं डरता, एक दिन मेरे सामने अर्जुन अस्त्र विद्या की परीक्षा के लिये रथपर चढ़ कर बाहिर निकले, मैंने उस को बिजुली सहित मेघ के समान चमकते देखा जब वह लौट कर आया तो कहने लगा कि मुझे तो अपनी विजय होने में कोई शक नहीं दिखाई देता यह बचन सुन कर मुझे भी निश्चय हुआ कि अर्जुन सत्य कहता है ॥

यह सुन कर दुरयोधन ने कहा कि तुम हमारे मुंह पर हमारे शत्रुओं की प्रशंसा करते हो हमने उनको जूए में जीत लिया है अच्छा हम को यह तो बताओ कि उन्हों ने रथ कैसे बनाये हैं तब संजय ने पाण्डवों के रथों का वर्णन किया और बताया कि देवताओं से दिये हुये उन में अपूर्व घोड़े लगे हैं और बड़े शोभायमान हैं, विश्वकर्मा और त्वष्टा ने उन रथों को बनाया है और घोड़े प्रहार से मर नहीं सक्ते ॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि अच्छा यह तो बताओ तुम ने उन के युद्ध की [illegible]ति को निश्चय किया है कि नहीं ? कौन २ लोग प्रीति पूर्वक हां युद्ध करने आये हैं ॥

तब संजय ने सब लोगों के नाम लिये और कहा कि हे राजन् ! पाण्डवों ने सेना को इस प्रकार से विभाग किया है :—

पाण्डवों के योधा	कौरव योधा जिस से वह लड़ेंगे
(१) शिखण्डी और उस के	(१) भीष्मपितामह

राजा विराट और उसकी सेना।	
(२) युधिष्ठर	(२) मद्रदेश का राजा शल्य
(३) भीमसेन। गदा युद्ध करने वाला	(३) दुर्योधन, उसके सौ भाई पुत्र और दक्षिण और पूर्व देश के राजा
(४) अर्जुन	(४) कर्ण वैकर्त्तन, अश्वत्थामा, विकर्ण, जद्रथ और पृथ्वी के अन्य शूर क्षत्रिय
(५) कैकेयदेशी ५ भाई	(५) अन्य कैकेयदेशी राजपुत्र, मालव, शाल्व, त्रिगर्त देशी राजा
(६) अभिमन्यु	(६) दुर्योधन के सब पुत्र, दुश्शासन के सब पुत्र और राजा वृद्ध क्षत्र।
(७) धृष्टद्युम्न, और द्रौपदी के पांच पुत्र	(७) द्रोणाचार्य।
(८) चेकितान	(८) सोमदत्त
(९) सात्यकि	(९) भोजराज कृतवर्मा
(१०) सहदेव	(१०) श्याल शकुनि

नोटः—यह दोनों सरल स्वभाव रखते हैं, इस लिये युधिष्ठर का उनसे युद्ध नियत किया गया है। शल्य नकुल और सहदेव का मामा था और इस लिये युधिष्ठर का भी॥

(११) नकुल (११) उलूक छली और सारस्वत गण।

हमारे हां से जो योधा निकलेगा और अपना नाम पुकारेगा पाण्डवों के दल से इसी नियम से योधा लोग आकर युद्ध करेंगें इस प्रकार आप की संपूर्ण सेना से युद्ध का विचार उन्हों ने सोच रखा है। अब जैसा विचार हो कीजिये।

यह सुन कर धृतराष्ट्र के छक्के छुट गये, उसने सोचा कि मेरे पुत्रों का भीम सेन से युद्ध होगा और वह बलवान देवतात्मा निस्संदेह सब को मारदेगा। हे संजय। मैं क्या करूं। मैं इस दुष्ट पापात्मा दुर्योधन को नित्य समझाता हुं परन्तु यह नही समझता। कहो ऐसी अवस्था में मैं क्या करूं॥

यह सुन कर दुर्योधन झट बोल उठा—"पांडव और हम एक ही पिता महा के पुत्र हैं, एक ही पृथ्वी पर रहते हैं, उन्हों ने राज लक्ष्मी को खोदया हमारी लक्ष्मी अभी तक स्थित है।

फिर क्या कारण है कि आप लोग उनकी ही जय मनाते हैं, देखो हमारे पिता महा और आचार्य आदि वीरों को इन्द्र भी नहीं जीत सक्के। कर्ण के हाथ में अन्द्र की दी हुई आमोध शक्ति है। जिस्को पाण्डव लोग कभी सहार न सकेंगे॥

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि यह दुर्योधन बहुत बकता है। इस को अपने बल का कुच्छ पता नहीं। मैं इस की बातें सुन कर बहुत घबराता हुं कि इस का नाश शीघ्र आने

वाला है। अच्छा संजय यह तो बताओ कि युधिष्ठिर को युद्ध के लिये कौन उत्तेजित करता है?

संजय ने कहा कि सब से बढ़ कर धृष्टद्युम्न है जो बार २ कहता है कि मैं तुम्हारे सब शत्रुओं को मारूंगा तुम कोई चिन्ता न करो फिर मेरी ओर देख कर कहने लगा कि हे सूत तुम कौरवों के योधाओं को जाकर कह देना कि युधिष्ठिर को एक साधु रूप ही न समझें, अर्जुन आप को विष युक्त बाणों से मार डालेंगे, जिस २ को अपने प्राण प्यारे न हों वह इस युद्ध में हमारे सामने आवे ॥

तेतीसवां अध्याय

—:-०-:—

धृतराष्ट्र का दुर्योधन को शांति का उपदेश करना, और कहना कि तुम आधा राज्य पाण्डवों को देदो, परन्तु दुर्योधन का न मानना॥

तब दुर्योधन की ओर ध्यान करके राजा धृतराष्ट्र बोले कि हे भारतसत्तम! युद्ध करना अच्छा नहीं, वीर लोग इस को श्रेष्ठ नहीं समझते, तुम पाण्डवों को आधा राज्य दे दो देखो कोई कुरुवीर युद्ध को अच्छा नहीं समझता, भीष्म जी तो

पहिले ही इस के विरुद्ध हैं, न द्रोण न कृपाचार्य, न अश्वत्थामा न संजय, न सोमदत्त, न शल्य ही युद्ध चाहते हैं। सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा, जयद्रथ भी युद्ध को अच्छा नहीं समझते ॥

यदि यह कुरुवीर मन से पांडवों से हार गए हैं, तो रण में जाकर किया करेंगे ?।

किया तुम अकेले ही उन महापराक्रमी जितेन्द्रियों से लड़ते फिरोगे, हे प्राण प्रिया जो बात हम सब को अच्छी प्रतीत होती है वही तुम को भी अच्छी लगनी चाहिए, तुम हम से अधिक बुद्धिमान नहीं, मैं जानता हुं कि कर्ण तुम को उकसाता रहता है, दुष्टात्मा दुशाम्सन और सुबल का कुपुत्र शकुनि भी तुम को साहस देते हैं परन्तु अन्त में तुम को पछताना पड़ेगा ॥

यह बात सुन कर दुर्योधन बोला कि मैं किसी भी कौरव से सहायता नहीं मांगता, सब अपना २ काम करें और जो जिस को रूचे वह करे, मैं नहीं चाहता कि मेरे लिये यह लोग प्राण गंवायें, न भीष्म, न द्रोण, न कृपा, न अश्वत्थामा, न संजय न काम्बोज राजपति, न वाल्हिक, न सत्यव्रत, न भूरिश्वा और न और कोई आप का सम्बंधि ॥

मैं और कर्ण दोनों जने पांडवों से लड़ेंगे और रण यज्ञ करके युधिष्ठर को यज्ञ पशु बनावेंगे, रथ हमारी होगी, खड्ग हमारा स्रुवा होगा, गदा का स्रुक कवच को सभा और चारों पहिरों का चातुर्होत्र बनावेंगे, बाणों की कुशा और यश को

हव्य बनावेंगे, इस प्रकार के आत्म यज्ञ में यम राज की पूजा करके शत्रुओं को जीत जगत में सुख पावेंगे

इस में हमें और किसी की अवश्यक्ता नहीं, मैं, कर्ण और दुशासन तीनों जने लड़ेंगे, या तो पाण्डवों को मार कर सारी पृथ्वी का राज्य करेंगे। नहीं तो पाण्डव ही हम को मार कर सारा राज्य लेंगे, हम राज्य, धन और प्राणों को छोड़ देंगे परन्तु पाण्डवों के साथ नहीं बसेंगे, आप तो आधा राज्य कहते हैं, मैं तो इतनी भूमि भी नहीं दे सकता जितनी कि सूई के तीक्ष्ण नोक में आती है ॥

यह सुन कर धृतराष्ट्र सारी सभा को पुकार कर बोले कि हे कौरव वंशी प्राण प्रियो, हमने आज से इस दुर्योधन को छोड़ा, यह यम पुर को जाना चाहता है हमें आप लोगों का जो इस के पीछे जाते हैं शोक है पाण्डव हमारी सेना को दलन करेंगे दुर्योधन अभी हमारी बात को नहीं समझता जब भीमसेन के हाथ से दान्त टूटे, शिर फूटे, पेट फूटे और सब अंग लटे, तब सोचै करेगा और हमारे बचनों को याद करेगा ॥

दुर्योधन देखो हमारा कहा मान लो और पाण्डवों से शान्ति कर लो नहीं तो भीमसेन की गदा से मर कर शान्ति मिलेगी ॥

चौतीसवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र का सञ्जय से श्री कृष्ण के वचन पूछना और संजय का उत्तर देना ॥

तब धृतराष्ट्र ने संजय से पुछा कि हे सूत! क्या श्रीकृष्ण चन्द्र ने तुम को कुछ कहा। यदि कहा हो ते विस्तार पूर्वक सुनाओ ॥

संजय बोला कि हे महाराज मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन जी के मिलने के लिये अन्तः पुर में गिया वहां श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन सत्यभामा और द्रौपदी रहती थीं और कोई पुरुष जाता आता नहीं था उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी विश्राम कर रहे थे उन के पाओं अर्जुन की गोद में रखे हुये थे और अर्जुन के पांव द्रौपदी दबा रही थी ॥

उन्हो ने मुझ को स्वर्ण की चौकी दी परन्तु मैं उस को हाथ से छू कर भूमि पर बैठ गिया, उस समय मैंने अर्जुन और श्रीकृष्ण का पूरा २ स्वरूप देखा जिस को देख कर मैं भयभीत होगया और मैं विचारने लगा कि जिस युधिष्ठर के ऐसे वीर पुरुष आज्ञाकारी हों उस की भला क्यों जय न हो ॥

तब हम ने आप का संदेशा सुनाया तो श्रीकृष्ण जी ने कहा कि सा कौरवों को हमारी ओर से जा कर यह कहना

कि आप लोग दान धर्मादि करलें। यही समय है, फिर यह नहीं मिलेगा आप लोगों का काल आ पहुंचा है। दान करो ब्रह्मणों को दक्षिणा दो, स्त्री और पुत्रों के संग प्रेम करलो मित्रों से मिलो, प्रिय पुत्रों से भेंट करो, आप को नाश करने के लिये धर्मराज युधिष्ठिर बड़ी शीघ्रता कर रहे हैं।

जब दुशासन ने द्रौपदी का वस्त्र खींचा था और द्रौपदी ने "गोविंद! " गोविन्द! " कह कर पुकारा था उस समय हम ने द्रौपदी की रक्षा तो की थी परन्तु सारा ऋण नहीं उतरा, वह तब ही उतरेगा जब सब कौरव नाश होंगे। मैं सारथी हो कर अर्जुन की रक्षा करूंगा जिस को अपने प्राण प्रिय होंगे वह निस्संदेह हमारे सामने आवे॥

विराट नगर का दृष्टान्त आप को याद ही है, बस ऐसा ही समझ लें। जब अकेला अर्जुन ऐसा चमत्कार कर सकता है, तो सहयाकों सहित सब पाण्डवों क्या कुछ कर दिखावेंगे?

यह सुन कर धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई। और वह संजय से कई प्रकार के विचार करता रहा। कभी पांडवों की बड़ाई करता, कभी उनकी युद्ध में कुशलता की प्रशंसा करता, कभी उनके आयुधो का वर्णन करता और अपने पुत्रों को लाघव समझ कर बड़ा शोच करने लगता॥

पैंतीसवां अध्याय

—:०:—

दुर्योधन का अपने आप को देवताओं से बढ़ कर बताना ॥

तब दुर्योधन ने धृतराष्ट्र को कहा कि हे महाराज यह जो आप का विचार है कि देवता लोग पांडवों की सहायता करेंगे, यह ठीक नहीं, देवता न किसी से वैर करते हैं, न क्रोध करते हैं न द्वेष रखते हैं। भला इस प्रकार यदि वह आकर एक दूसरे के झगड़ों को नबेड़ने लगें, तो उन में देवता पन क्या रहा, वह तो अपने पद से शीघ्र ही मरजायेंगे काम; क्रोध, और वैर न रखने वालों का नाम तो देवता है यह बात हम ने तपस्वी नारद जी से, द्वैपायन व्यास जी से और श्री परशुराम जी से सुनी है ॥

देव बल अलबत्तः हम में है क्या वह अग्नि जो नित्य प्रति यज्ञ में हम जलाया करते हैं शान्त हो जायेगी, क्या वह तीनो लोकों को जीतने के लिये समर्थ नहीं है, पाण्डवों की तो गिनती ही क्या है, इस लिये देवताओं का सब तेज हम में समझें, हम मन्त्र पढ़ें तो फटती हुई पृथ्वी थम जाये, गिरते हुये पहाड़ ठहर जायें, मरे हुये मनुष्य जी उठें, जड़ चैतन्य हो जायें ॥

इस मन्त्र से जब समुद्र का जल स्तमन कर दें तो उस पर से हाथी घोड़ा और रथ चला लो कभी नहीं हिलेगा, लोगों ने हमारी इन सब बातों को बहुधा देखा है हमारे कहने की आवश्यक्ता नहीं, आप को तो इस लिए बताते हैं कि आप मोह और शोच न करें ॥

देखो हमारे मन्त्र के बल से हमारे देश में समय पर वर्षा होती है, खेती बाड़ी हरी भरी रहती है जिन के संग हम वैर करें उन की कोई देवता भी नहीं रक्षा कर सकता, आप सुन लेंगे कि पांचाल देशियों को तथा सात्यकि और वासुदेव को दुर्योधन ने जीत लिया जैसे नदियां समुद्र में जाकर नष्ट हो जाती हैं वैसे ही पांडव भी हम से नष्ट हो जायेंगे आप कोई चिंता न करें हम में उन से अधिक बुद्धि और तेज बल है, हम भीष्म द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को भी तुच्छ नहीं समझते ॥

छत्तीसवां अध्याय

—:o:—

कर्ण का अपनी बड़ाई की डींग मारना, भीष्म का उस की मिथ्यावाद की निन्दा करना, कर्ण का क्रुद्ध होकर घर को चले

जाना, दुर्योधन और भीष्म की बात चीत ॥

फिर धृतराष्ट्र ने संजय से पांडवों के सम्बन्ध में और प्रश्न पूछे, परन्तु कर्ण ने सुनना पसंद न किया और अपनी बढ़ाई की डींग मारने लगा, उस ने कहा कि मैंने ब्राह्मण बन कर परशुराम से ब्राह्मास्त्र विद्या सीखी थी जब परशुराम को प्रतीत हुआ कि मैं ब्राह्मण नहीं हूं तो उस ने मुझे शाप दिया कि अन्तकाल में तुझ को यह विद्या छोड़ देगी, तब मैंने प्रार्थना की जिस पर महर्षि ने कहा कि जब तक तुम जियोगे यह विद्या तुम को बहुत फल देगी, मरने पर अलबत्तः यह शस्त्र तुम को छोड़ देंगे परन्तू अभी तक हमारी आयू बहुत शेष है, भीष्म जी यहीं बैठे रहें, हम अकेले ही जाकर पाण्डवों को मार देंगे और फिर शस्त्र धारियों के लोक को चले जायेंगे ॥

यह सुन कर भीष्म ने कहा कि अरे कर्ण क्या बक रहा है ? हम ही तो प्रधान हैं, हमारे जाने पर सब कौरव मारे जावेंगे तुम्हें अर्जुन का खाण्डव वन का वृत्तान्त प्रतीत है, तुम्हारी शक्ती श्री कृष्ण के सुदर्शन चक्र से भस्म होगी और यह तुम्हारा बाण जिस पर नित्य फूल चढाते हो, शीघ्र ही अर्जुन के बाणों से भस्म होगा, अरे कर्ण श्री कृष्ण ! चन्द्र ने तुम्हारे जैसे सहस्रों मूर्ख मार दिये ॥

यह सुन कर कर्ण बोला कि अच्छा भीष्म जी ही प्रधान हैं, हमें युद्ध करने की क्रिया अवश्यक्ता है अब हम घर को

जाते हैं, यह हमारी विजय देखना नहीं चाहते, जब यह मर जायेंगे तभी हम लड़ेंगे अन्यथा कभी नहीं आयेंगे ॥

यह कह कर कर्ण घर को चला गया, तब भीष्म जी दुर्योधन से कहने लगे कि तुम्हारा मित्र सूत पु॰ तो बड़ा ही सत्य प्रतिज्ञा निकला, कहां तो अभी कहता था कि मैं अकेला सब को मारूंगा और कहां अब यह कहता है कि अब हम लड़ेंगे ही नहीं ॥

यह ठीक तुम्हारा मित्र है, फिर अभी तो कहता था कि पाण्डवों के मारने का भार हमारे सिर पर है अब वह भार यूंही पटक दिया, या घर बैठे ही सहेंगे! अभी यह सब राजाओं को मारने की डींग मारता था और अभी इस की शस्त्र विद्या सीखने की करतूत भी प्रगट हो गई जिस अधम ने गुरु से धोखा किया, वह औरों से क्या करेगा, उस का तेज तो तभी से नष्ट है ॥

तब दुर्योधन ने कहा कि हे पितामह जी पाण्डवों की और हमारी जाती एक है गुण भी समान है, विद्या भी समान ही पाई है फिर आप उन की विजय और हमारी क्षय क्यों कहते हैं, इस से हम ने विचारा है कि हम आप लोगों के आश्रय हो कर युद्ध नहीं करेंगे, कर्ण मैं और दुशासन बस तीनों जने ही पाण्डवों के लिये पर्याप्त हैं, आप सुन लेंगे कि दुर्योधन ने पाण्डवों को मार डाला ॥

विदुर ने समझा कि यह मूर्ख अजितेन्द्रिय होने से

बकवास कर रहा है, इस लिये उसने दम के गुण सुनाने आरंभ किये ॥

सैंतीसवां अध्याय

—:०:—

विदुर का जाति वालों से सम्मत रहने के सम्बन्ध में दृष्टान्त देना, और दुर्योधन को समझाना संजय का अर्जुन के शेष संदेशा सुनाना ॥

तब विदुर जी ने कहा कि हमने पूर्वजों से एक दृष्टान्त सुना है, तुम भी उसको सुनो; किसी स्थान पर एक चिड़ी मार ने जाल बिछाया। उससे दो पक्षि फंस गये, पक्षियों ने अपनी आपत्ति देख कर सम्मत हो कर यह विचारा कि जाल समेत उड़ चलें। यह कह कर, एक चित हो, वह पक्षी जाल लेकर उड़ गये, चिड़ी मार भी पीछे २ भागा, एक ऋषि ने उसको भागते हुए देख कर पूछा कि अब तो पक्षी चले गये अब क्यों भागते हो?

चिड़ीमार ने कहा कि यह जाल तब तक ही लेजाते हैं, जब तक कि यह एक चित हैं, जूंही इन में विवाद होगा, यह झट नीचे आन गिरेंगे। चिड़ी मार अभी थोड़ी ही दूर गया था कि पक्षियों में विवाद हुआ जिस से वह झट नीचे आन गिरे

और चिंड़ी मार उनको पकड़ कर घर लेगया। इस लिये जो जाती वाले आपस में विवाद करते हैं, वह उन दोनों पक्षियों के समान मारे जाते हैं ॥

जो मनुष्य लोभ वश होकर आप ही सब कुच्छ समेटना चाहता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। दुर्योधन भी सारी पृथ्वी का राजा बनना चाहता है, परन्तु यह नहीं सोचता कि यह काम कैसे हो। जो मनुष्य मधु को लेना चाहते हैं, उनको यह भी विचारना चाहिये कि यह कैसे कठिन स्थान पर लगी हुई है, यदि लेने का यत्न करते हुए गिर पड़े तो चकना चूर हो जायेंगे ॥

फिर धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा कि क्या अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने तो कुच्छ और भी कहा था संजय ने उत्तर दिया कि श्रीकृष्ण जी ने कुच्छ नहीं कहा परन्तु अर्जुन ने कहा था कि सब कौरवों को विदित करके दुर्योधन को कहना कि हम तुम्हारा नाश करना उचित नहीं समझते, यदि तुम इस युद्ध को निवृत करना चाहो तो कर सकते हो। यज्ञ पशु बनने की इच्छा न करो और युधिष्ठर का आधा राज्य उसको देदो, यदि ऐसा न करोगे तो हम सेना सहित तुम को यमपुरी में पहुंचावेंगे ॥

तब मैंने श्रीकृष्ण और अर्जुन को प्रणाम किया और आज्ञा लेकर घर को आया ॥

अड़तीसवां अध्याय

—:०:—

सभा का विसर्जन होना धृतराष्ट्र का संजय से पाण्डवों का भेद लेना, संजय का व्यास जी और गांधारी को बुलवाना ॥

यह वचन सुन कर दुर्योधन चुप हो रहा। सब राजा उठ बैठे और अपने २ स्थानों को चले गये। तब धृतराष्ट्र जो अपने पुत्रों के वश में हो कर उनकी विजय चाहता था बोला कि हे संजय तुम दोनों ओर का भेद जानते हो, यह तो बताओ कि हमारे हां किस बात की अधिकताई है और पाण्डवों में किस पादार्थ की न्यूनतता है?

संजय ने कहा कि हे राजन! मैं इस विषय में एकान्त में आप से बात चीत नहीं करूंगा। यदि आप और सुनना चाहते हैं तो अपने पिता व्यास जी और रानी गान्धारी को बुलालो।

संजय के यह वचन सुन कर धृतराष्ट्र ने व्यास जी और गान्धारी को बुलाया। उन के आने पर संजय ने कहा कि धृतराष्ट्र जी आप पाण्डवों का भेद लेने के लिये वार २ हम से पूछते हो पर हम और क्या कहें, हमें तो पांडवों की जय ही विदित होती है। श्री कृष्ण चन्द्र का पांच हाथ लम्बा सुदर्शन चक्र है, जिस से वह सब को मारते हैं। जब वह पांडवों के सहायक हैं तो आप के पुत्र उन के सन्मुख कैसे ठहिर सकते हैं।

यह समझलो कि सारा जगत एक ओर और श्रीकृष्ण जी दूसरी ओर, फिर भी कृष्णचद्र जी विशेष ही हैं। वह चाहें तो सारे जगत को भस्म कर सकते हैं, परन्तु सारा जगत उन को भस्म नहीं कर सकता।

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा कि तू श्री कृष्ण की शरण में चला जा, परन्तु वह बोला कि मैं तो उस को मारूंगा, मैं उस की शरण में कैसे जा सकता हूं॥

उनतालीस्वां अध्याय

—:-o-:—

श्री कृष्ण और युधिष्ठर की बात चीत, श्री कृश्न का हस्तिना पुर में शान्ति के लिये जाने को उद्यत होना॥

जब संजय पाण्डवों के पास से चले आये तो युधिष्ठर जी श्रीकृष्ण के पास आकर बोले कि हे जनार्दन! अब ऐसा काल आया है कि आपके बिना हमारी आपत्ति दूर नहीं हो सकती, आप वृष्णि वंशियों की भान्ति हमारी भी रक्षा करें, श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया कि मैं तो आप के पास आया ही हुआ हूं जो मेरे योग्य सेवा हो वह मुझ को कह दीजीये॥

युधिष्ठर ने कहा आपने धृतराष्ट्र का विचार देख लिया है वह हम से शान्ति तो करना चाहते हैं परन्तु देते दिलाते कुछ

नहीं। हमने पांच ग्राम ही लेने पर सन्तोष किया तो भी हमारी बात न मानी, धृतराष्ट्र का शांति के लिये दूत भेजना केवल जगत का दिखावा है, वह वास्तव में शान्ति नहीं चाहते, हमने धृतराष्ट्र के कहने पर ही तेरह वर्ष बनवास लिया था परन्तु अब चौदहवां वर्ष आरम्भ होने पर भी वह हम को राज्य नहीं देते, वह मन्द बुद्धि सर्वथा अपने पुत्र के वशी भूत है, अब मुझे माता जी की चिन्ता है, जो वहां दी पड़ी हैं शोक है कि हम उसके भार को सम्भाल नहीं सके॥

कौरव हम को हमारा धन वापिस नहीं देते, हम को निर्धन करके मारना चाहते हैं, सत्य है जिस के पास धन है वही पुरुष जीता है जिस के पास धन नहीं वह मृतक के समान है इस अधन अवस्था को पाकर बहुत तो मर ही जाते हैं, कोई अपना ग्राम छोड़ कर दूसरे ग्राम को चले जाते हैं, कोई वन को चले जाते हैं और कोई विक्षिप्त होते हैं कोई शत्रु के वश में पड़ जाते हैं और कोई दास भाव स्वीकार करते हैं॥

इस लिए निर्धन होने की अपेक्षा मरना अच्छा है, जो मनुष्य सदा का निर्धन हो उसे वह दुख नहीं होता जो धन वान को निर्धन होने पर होता है। निर्धन की मति को शास्त्र भी नहीं रोक सकते, वह सेवकों को दुख देता है सुहृदों की निन्दा करता है और सदा क्रोध वश रहता है पाप कर्म करते २ वर्ण संकर हो जाता है और फिर नरक को प्राप्त होता है॥

निर्धन पुरुष पाप की परंपरा से निर्लज्ज होजाता है, तब वह न पुरुष न स्त्री किसी गणना में नहीं आता केवल पशुओं और स्थावरों में गिना जाता है, उस को धर्म करने का अधिकार नहीं होता और वह शूद्र गिना जाता है ॥

लज्जावान पुरुष देवताओं की पितरों की और अपनी भी रक्षा कर सकता है, इसी लिये अमृत होजाता है ॥

आपने लज्जा का अंश जो हमें में है देख ही लिया है इसी के कारण हम राज्य से भ्रष्ट होगए हैं, लिये इस अब हमारा विचार है कि हम राज्य लक्ष्मी को कदापि न छोड़ें और जीवन की आशा छोड़ कर भी युद्ध करें, परंतु एक बात मुझ को भय दिखाती है वह यह है कि युद्ध करने में असंख्य प्राणियों का नाश होगा, इस से यदि हमारा काम बिना युद्ध के बन जाय तो अच्छा है ॥

युद्ध तो कुत्तों की लड़ाई है, जैसे कुत्ते एक दूसरे को भौंकते हैं, वैसे ही योधा भी एक दूसरे को गर्जते हैं जैसे वह दान्तों और नखों से द्वेषी कुत्तों को मारते हैं, वैसे ही योधा भी द्वेषियों को शस्त्र से मारते हैं, जैसे दुर्बल कुत्ता प्रणिपात कर के अपने पक्ष को छोड़ देता है और बलवान हड्डी ले जाता है, वैसे ही योधा भी निर्बल वैरी को मार कर राज्य को पाते हैं, इस लिये मुझे युद्ध कदापि उत्तम कार्य नहीं जान पड़ता, यदि इस के बिना हमारा कार्य सिद्ध हो सके तो आप बताइये ॥

श्री कृष्ण जी बोले कि यह बात सत्य है युद्ध एक घोर कर्म है इस लिये इस से बचना ही अच्छा है, मेरा विचार है कि मैं आप कौरवों के पास जाऊं और शान्ति के लिये यत्न करूं यदि आप को विना युद्ध किये आधा राज्य मिल जाये तो न आप को दुःख हो न आप के सहायक राजा पीड़ित हों और न उन की जानें मारी जायें इस से यही उत्तम बात है ॥

युधिष्ठर ने कहा कि हे श्री कृष्ण ! आप मेरे सखा और मित्र हो, मैं आप को भेजना उचित नहीं समझता, कदाचित् कौरव आप का कहा न मानें तो फिर आप की प्रतिष्ठा में दोष आये ।

श्री कृष्ण जी ने कहा कि हे युधिष्टर मुझे इस बात का विचार नहीं, मैं तो यह समझता हूं कि यदि मैं आप जाकर उन को शान्ति का उपदेश करूं तो कल को अच्छे बुरा परिणाम होने पर मुझे तो कोई दोष न लगायेगा कि कृष्ण चन्द्र ही इस युद्ध का करने वाला है, यदि वह निवारण करना चाहता तो युद्ध मिट जाता । मैं कौरवों को समझाऊंगा और युद्ध के सब दोष बता कर उस के निवारण करने का यत्न करूंगा, परन्तु यदि वह न समझें तो उनकी इच्छा, तुम लोग और मैं तो इस दोष से बच जायेंगे ॥

युधिष्ठर ने कहा बहुत अच्छा आप कौरवों के पास जाइये, और जहां तक हो सके दुर्योधन को समझाइये कि

युद्ध को छोड़ कर वह हमको आधा राज्या देदें, नहीं तो फिर युद्ध में जीत कर सारा राज्य लेंगे ॥

चालीसवां अध्याय

—:-०-:—

श्री कृष्णजी का युधिष्ठर से कौरवों की प्रकृति वर्णन करना ॥

तब श्रीकृष्ण जी बोले कि हे युधिष्ठर, मैं आप के अभिप्राय को जानता हूं, कौरव आप से शान्ति नहीं करेंगे, मैं दुर्योधन को जानता हूं, वह बड़ा दुष्ट प्रकृति है उसको जीता छोड़ना अच्छे नहीं भिक्षा मांगना क्षत्रिय का धर्म नहीं, तुम क्षत्रिय बनो, दीनता क्यों करते हो ? कृपणता करने से जीविका न चलेगी ? इस से क्षत्रिय बनो और शत्रुओं को मारो ॥

देखो उन्हों ने बहुत सेना इकट्ठी करली है, यदि वह लोभी न होते तो ऐसा न करते थे तुम्हारे साथ उनका मेल असंभव है। जब तक इन से नरमी करोगे वह तुम्हारे शिर पर चढ़ेंगे जब तुम दण्ड दोगे, तभी तुम्हारा आदर करेंगे। मृदुला और दयालुता से नहीं समझेंगे।

आप इन को अपना कहते हो, इन में अपनाई कहां ? देखो जब तुम वन को गये तो वह बड़े प्रसन्न हुये। उस समय सब लोगों

के आंसु बह रहे थे और यदि तुम तनक भी लोगों का कहा मानते तो यह अधर्मी उसी क्षण में नष्ट हो जाते। परन्तु तुम्हें तो धर्म का विचार था और यह हंस २ कर नाना प्रकार के आनन्द के वाक्य बोलते थे। कोई कहता था "देखो! कैसी युक्ती से राज्य छीना? दूसरा कहता था—"अब पाण्डव मर गये। उन के गोत्र भी लोप हो गिये" कोई कहता था— "उन का अभा पिण्ड कर दो"।

परन्तु सब लोग दुर्योधन की निन्दा करते थे निंदा भी कुलीन के लिये मृत्यु से कम नहीं, निन्दित कुलीन का कुच्छ ही शेष रह जाता है जिसे से वह श्वास लेता रहता है, लोग ही नहीं, पृथ्वी के सब राजे दुर्योधन की निन्दा करते थे, और अब भी करते हैं। वह दुष्ट बड़ा निलज होने के कारण जी रहा है। इस लिये उस की मृत्यु बहुत ही निकट है और वह सब का वध्य है।

हे युधिष्ठर आप अवश्य ही दुर्योधन के मार डालें, हम हास्तनापुर में जा कर अन्या सब कौरवों के संशय को मिटा देंगे जब हम धर्म अर्थ युक्त वचन कहेंगे तो सब राजा लोग प्रसन्न होंगे हम सब के सामने दुर्योधन की निन्दा करेंगे सब राजा लोग भी दुर्योधन और धृतराष्ट्र ही की निन्दा करेंगे और तुम्हारा यश करेंगे जब वह इस प्रकार निन्दित होंगे तो दुर्योधन नष्ट तेज हो कर आप ही मर जायेगा॥

परन्तु हम जानते हैं कि वह कभी हमारा प्रमार्थ नहीं

मानेगा इस से हम शीघ्र ही लौट कर आपका कार्य करेंगे आप इतने में युद्ध का सब समान त्यार करें ॥

इकतालीसवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का श्रीकृष्ण जी को अपनी अनुमती देना।

तब भीमसेन ने श्रीकृष्ण जी को कहा कि हे श्रीकृष्ण जी आप निस्संदेह कौरवों के पास जाइये और उन्हें समझा कर युद्ध को निवारन करने का उपाय कीजिये मिलाप हो जाये तो अच्छा ही है परन्तु दुर्योधन बहुत अहंकारी है इस से संभव नहीं कि आप के कार्य की सफलता हो परन्तु कुलक्षय का दोष तो हम को प्राप्त न होगा ॥

हम सब लोग बड़े आनन्द और प्रसन्नता से रहते थे, परन्तु इसी दुष्टात्मा दुर्योधन के कारण हम भी और कौरव भी दुःख के भागी हुए हैं। दुर्योधन की सेना को भी आप जानते ही है। और उसका शीलस्वभाव भी आप को विदित ही है, फिर आप को और कहने की क्या आवश्यकता है। जब धर्म के अन्त का समय आता है तो तेज से प्रज्वालित धनाढ्यों के श्री शत्रुओं के समान कलह होने लगता है। पूर्व काल में अठारह राजाओं ने कुल का नाश किया और अपने बंधुओं का संहार किया है उनके नाम यह हैं:—

(१) उदावर्त हैहयवंशी (२) जनमेजय नीपवंशी (३) बाहुल तालजंघवंशी (४) वसु कृमिवंशी (५) आजाबिंदु सुवीर-वंशी (६) रुषर्द्धिक सौराष्ट्र (७) अर्कज वलीहवंशी (८) धौत मूलक चीनवंशी (९) हयग्रीव विदेहवंशी (१०) वरयु महौजस वंशी (११) बाहु सुंदर देशी (१२) पुरुरवा दीप्ताक्ष (१३) सहज चेदि मत्सयवंशी (१४) वृषध्वज मवीर वंशी (१५) धारण चन्द्रवत्सवंशी (१६) विहागन मुकुटवंशी (१७) शम-नन्दि वेग वंशी "यह सब युग के अन्त में हुए हैं, और कुलका नाश करके पुरुषाधम कहाते हैं। इन्हीं के समान युधिष्ठर भी हम को और कौरवों को मारने के लिये कुलका अंगार उत्पन्न हुआ है। इसको मार डालना ही श्रेष्ठ है ॥

आप दुर्योधन के सामने धीरे से बोलना और धर्म अर्थ सहित वचन कहना, उस को "हे उग्र पराक्रम," कह कर बोलना, भला इसी प्रकार काम सिद्ध होजाये तो सब से अच्छा है हम चाहते हैं कि कौरवों की कुल को नाश न हो और भीष्म पितामहादि वृद्ध और श्रेष्ठ पुरुष न मारे जांये हमारी कौरवों से च हे [illegible] रहे अथवा रहे, परंतु उन की कुल का नाश न होना [illegible]

बियालीसवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का भीमसेन को उत्तर देना ॥

भीमसेन के ऐसे कोमल वचन सुन कर श्री कृष्ण जी बोले कि हे भीमसेन आप की प्रकृति कैसे पलट गई, आप तो सिवाये युद्ध के और कुच्छ बोला ही नहीं करते ? आप तो युधिष्ठर की निन्दा किया करते थे कि वह युद्ध नहीं करते आप की काया कैसे पलट गई ? मैं आपके ऐसे वचन सुन कर बड़ा आश्चर्य करता हूं ॥

आपने प्रण किया हुआ है कि मैं दुर्योधन को गदा से प्रहार करूंगा और दुशासन के चूतर तोडूंगा वह आप की प्रतिज्ञा अब कहां गई ॥

क्या पर्वतों में लघुता होगई और अग्नि शीतल बन गई कि तुम्हारे मुख से ऐसे असम्भव वचन निकलते हैं ? तुम तो दुर्योधनादि को सदैव मर्दन करने के लिये तैयार रहते हो, सदा घोर अकल्याण शब्द ही उन के लिये प्रयोग करते हो और अग्नि के तुल्य उष्ण श्वास ही लेते रहते हो कि कब युधिष्ठर आज्ञा दें और कब तुम उन को हनन करके अपने चित्त को शांत करो परंतु इस समय तुम्हारे स्वभाव विरुद्ध यह वचन सुन कर मुझे बहुत आश्चर्य आता है ॥

क्या तुम्हारी शक्ति हीन हो गई या तुम्हारा युद्ध बल जाता रहा किन्वा शस्त्र विद्या भूल गए तुम को क्या हो किया गया कि इस प्रकार कातुर वचन बोलते हो और युद्ध से भाग कर क्षत्रिय धर्म के विरोधी बनते हो ? बस जान लिया कि

तुम को भी युद्ध का भय दुखी कर रहा है इस प्रकार की नपुंसकता की बात करना तुम्हारे बल और कुल के अयोग्य है॥

हां सच है, मनुष्य का मन सदा एक जैसा नहीं रहता तुम्हारा हृदय कांपता है और तुम अब लाठी के बिना चल फिर नहीं सके इसी से इस प्रकार के शब्द बोलते हो, मनुष्य का चित्त अनित्य है कभी चल हो जाता है और कभी अचल॥

तुम्हारी वाणी अब तो ऐसी अप्रमाण हो गई है जैसी बैलों की वाणी मनुष्य के सदृश होना। तुम्हारे इस वाक्य ने पान्डवों की नाव को चलते २ डगमगा दिया है॥

तेतालीसवां अध्याय

—:०:—

भीमसेन का श्री कृष्ण चन्द्र का प्रत्युतर देना॥

यह सुन कर भीमसेन अपने स्वभाव में आगये और कहने लगे कि हे केशव आप हमारे स्वभाव को जानते हैं और जान कर ऐसे वचन कहते हैं यदि कोई न जानने वाला मनुष्य कहे तो बात दूसरी है, परन्तु आप के मुखारविन्द से निकलते हुए यह शब्द शोभा नहीं देते, अच्छा कोई बात नहीं, आप सब कुच्छ कह सकते हैं, पर मेरा वचन भी सुनिये॥

अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करना ठीक नहीं, परन्तु यहां तो सिवाय इस के और कुच्छ हो ही नहीं सकता, और

कुछ न कुछ कहना ही पड़ता है। श्रीकृष्ण चंद्र जी! इस पृथ्वी और आकाश को देखये इन्हीं में प्राणी बसती है। यदि यह क्रोध वश हो कर एक दूसरे से मिलना चाहे, तो हम दोनो भुजाओं से इन दोनों को पकड़ छोड़ें और यह वहीं के वहीं ठहरे रहें। क्या मजाल कि बाल भर आगे पीछे हो सकें यह हमारी भुजा का बल है।

जो पुरुष हमारी भुजाओं के बीच में आकर छूट जाये ऐसा न कोई हूआ है और न कोई होगा, जिस को हम मारें उस की इन्द्र भी रक्षा नहीं कर सकता, यह सब राजा जो पाण्डवों से युद्ध करने आये हैं हमारे सामने कुछ भी नहीं, इन को हम पाओं के तले दवा कर मार सकते हैं, अभी आप हमारे बल को नहीं जानते, जब युद्ध होगा तो आप देखेंगे? अब हम आप को क्या बतायें॥

मनुष्यों, हाथियों, घोड़ों को मारने में न हमारे मन में व्यथा होती है न चित्त की ग्लानि, सब क्षत्रियं हमारे पराक्रम से दलन होंगे, कौरवों की तो गिन्ती ही क्या है हम तो केवल स्नेह वश भीष्मादि का मरना उचित नहीं समझते॥

चौतालीसवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का भीमसेन को प्रत्युत्तर और

अर्जुन का वचन बोलना ॥

भीमसेन के ऐसे वचन सुन कर श्रीकृष्ण चन्द्र जी बोले कि हे भीमसेन हम ने तुम्हारा अभिप्राय जानने के लिये यह वचन बोले थे हम तुम्हारे बल को जानते हैं, हम ने तुम्हारी निन्दा नहीं की। इस लिये तुम हमारे वचन को अन्यथा न समझो। तुम्हारा जन्म उत्तम कुल में हुआ है और तुम भाइयों और सहृदों के सम्मत हो।

यदि यह कहो कि तुम को ऐसा जान कर भी हम ने ऐसा क्यों कहा, तो जो लोग देवताओं और मनुष्यों के स्वभाव को भी जानते हैं, वह भी अच्छी प्रकार सब कुच्छ नहीं जानते कारण यह कि कोई काम संदेह के विना नहीं होता। मनुष्य के बल अबल का निश्चय करना बड़ा कठिन है, कभी २ बड़े २ बलवान भी साहस छोड़ कर क्लीव हो जाते हैं।

धर्म ही पुरुषों की अर्थसिद्धि में हेतु है। यह पुरुषों के विनाश का भी कारण है। इसलिये पुरुषों के कर्म में सदा संदेह हो रहता है, क्या जान सिद्ध हो वा असिद्ध। कवियों ने लिखा कुच्छ और ही है, वर्ताव में कुच्छ और ही आता है, मनुष्य कैसे ही विचार से वा न्याय से काम करे, परन्तु दैव उस में विरोध कर ही देता है, और उसका परिणाम यथोचित नहीं होता, क्या कारण है? दैव के कर्म शीत, उष्ण, वर्षा, भूख प्यास आदि को मनुष्य भी अन्यथा कर देता है, शीत पर कम्बल ओढ़ लेता है। उष्णता और वर्षा पर छत्री और पंखे का प्रयोग करता है। अन्न खा कर भूख और पानी पीकर

प्यास मिटा देता है, इस से पौरुष सदा करना चाहिये यदि कर्म न करें तो जीविका ही नहीं हो सकती ॥

जो पुरुष दैव कर्म के साथ पौरुष करता है, वह कर्म के सिद्ध न होने पर शोक नहीं करता, न सिद्ध होने पर अति हर्ष युक्त होता है, इससे शत्रुओं के साथ युद्ध करने में सदा जय भी नहीं होती, न सदा पराजय। इसलिये कार्य की सिद्ध न होने पर न तो शोक करना चाहिये न किसी प्रकार का विषाद ॥

अब हम प्रातःकाल धृतराष्ट्र के पास जायेंगे और मिलाप करने का यत्न करेंगे, यदि काम बन गया तो हमारा भी यश होगा और आप का और कौरवों का भी काम बन जायगा। नहीं तो युद्ध होने में तो कोई संदेह ही नहीं। हे भीम इस युद्ध का भार तुम्हारे ही सिर पर है। हम तो केवल सारथी ही होंगे, हमारी युद्ध की इच्छा नहीं ॥

यह सुन कर अर्जुन बोला कि हे भगवन्! आप सब बातों को समझते हैं आप ऐसा वर्ताव करें जिस से शान्ति भी हो जाय और हमारा अभीष्ट भी सिद्ध हो, यदि ऐसा न हो तो युद्ध तो होगा ही हम भी युद्ध ही चाहते हैं, जिस दुष्ट ने युधिष्ठिर की श्री कपट से हर ली है वह निश्चय मारने ही योग्य है परन्तु यह बताइये कि उस का वध कैसे होगा, कोमलता वा कठोरता करने से? यदि उस का मार डालना ही श्रेष्ठ है तो और विचार छोड़ दीजिये यही कीजिये और तुरन्त कीजिये ॥

पैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण चन्द्र जी का वचन और नकुल की और सहदेव की अनुमति ॥

अर्जुन के वचन सुन कर श्री कृष्ण चन्द्र जी बोले कि हे पाण्डवों! हम वही करेंगे जिस में आप दोनों का हित हो युद्ध करा देना अथवा शान्ति करा देना तो दूतों के आधीन होता ही है परन्तु फिर भी किसी २ स्थान पर उनका यत्न सफल नहीं होता, देखो कभी २ पृथ्वी को अच्छी तरह जोत कर उस में बीज फेंका जाता है, परन्तु दैव वश वर्षा न होने से खेती नहीं फलती, इसी प्रकार यह बात भी दैवाधीन है देखें क्या होता है! इसी प्रकार मनुष्य के सब कार्य दैव और पौरुष के आधीन हैं, परन्तु हम वही करेंगे जो पौरुष के आधीन है, दैव से हमारा कुछ कार्य नहीं, न हम कर्म को दैवाधीन मानते हैं॥

दुर्योधन धर्म और लोक दोनों को छोड़ कर काम करता है अधर्म कर्म से कभी सम्मत नहीं होता, उस को दुर्बल दुष्ट मंत्री सदा बढ़ा रहे हैं, उस के तीन मंत्री हैं शकुनि, कर्ण और दुशासन, इस लिए वह राज्य कभी नहीं देगा और युधिष्ठर राज्य को अवश्य लेना चाहते हैं, फिर शान्ति कैसे

होगी ? आप अज्ञानियों के समान हमारे विषय में मत शंका करें कि हम शांति नहीं होने देते ॥

यह सुन कर नकुल ने कहा कि मैंने आप सब का वार्ता लाप सुना है, महाराज जी का मत तो यह है कि शांति होजाये परंतु द्रौपदी चाहती है कि कौरव जड़ से निर्मूल किए जायें, इस लिए आप वहां जाकर पहिले शत्रुओं का मन देख फिर जैसा उचित हो, वैसा करें, वनवास में हमारा विचार कुछ और था, इस समय ७ अक्षौहिणी देख कुछ और है ॥

इस लिये आप वहां जाकर सब प्रकार की बातें करें कोमल वचन भी कहें भय भी दिखावें, शांति हो अच्छा है परन्तु न हो तो हम लड़ना भी अच्छा ही समझते हैं, जब आप धर्म अर्थ और पुरुषार्थ युक्त वचन सभाके बीच में करेंगे तो उस समय विदुर भीष्म द्रोण तथा वाल्हिक नरेश अवश्य कौरवों को यही समझावेंगे । जहां विदुर सुनाने वाला और आप कहने वाले हों वहां कौनसा काम है जो हो नहीं सक्ता ॥

सहदेव बोला कि जो कुछ राजा ने कहा है सनातन धर्म तो वही ही है परन्तु हम चाहते हैं युद्ध ही हो यदि वह शान्ति भी चाहें तो भी आप वह वचन कहिये जिससे युद्ध ही हो, देखो द्रौपदी की कैसी दुर्दशा सभाके बीच में हुई थी इस लिये यदि धर्म राज न भी चाहें तो भी हम अकेले ही कौरवों से लड़ेंगे, सात्यकि ने बाहिर से आये हुये राजाओं की सम्मति सुनाई और कहा कि हम सब दुर्योधन को मारना ही चाहते हैं

हम सहदेव के साथ हैं और युद्ध ही को श्रेष्ठ समझते हैं शान्ति को नहीं। यह वचन सुन कर सब राजाओं ने बड़ा भयंकर सिंह नाद किया और सात्यकि की बहुत प्रशंसा की ॥

छयालीसवां अध्याय

—:-०-:—

युद्ध के विषय में द्रौपदी की अनुमति ॥

तब द्रौपदी बोली कि हे श्रीकृष्ण चन्द्र! आपने सब के वचन सुन लिये, मैं सहदेव और सात्यक के वचनों की बहुत प्रशंसा करती हूं, युधिष्ठर ने तो आधा राज्य छोड़ पांच ग्राम तक भी कह दियां, परन्तु दुर्योधन ने यह भी अंगीकार न किया, अब पाण्डवों के सहायक बहुत से हैं, और वह शत्रुओं को रण में जीत सकते हैं, कौरव साम और दाम से कभी न मानेंगे उन को तो दण्ड ही आवश्यक है, इस लिये उन पर दण्ड ही फेंकिये।

ऐसा करने से आप का भी यश होगा और क्षत्रिय धर्म का भी पालन होगा, क्योंकि क्षत्रिय हो अथवा अक्षत्रिय लोभी को मारना क्षत्रिय का परम धर्म है, यदि न मारे तो वह अधर्मी है, वध्य का मारना और अवध्य का न मारना ही क्षत्रिय का एक सनातन धर्म है क्या पाण्डव क्षत्रिय धर्म से गिर सक्ते हैं। देखो मैं द्रुपद राजा की पुत्री, पांडु की पुत्र वधु युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव की धर्म पत्नी और पतिव्रता स्त्री,

अजमीढ़ की कुल में बयाही हुई आप की प्यारी सखि, सिंहों के समान मेरे पांच पुत्र तिस पर भी दुशासन मुझे दासी बना कर घसीटता हुआ सभा में ले आया उस समय यदि आप भी मेरी रक्षा न करते, तो मेरी क्या दशा होती? क्यों नहीं वह लोग जो शांति चाहते हैं, चुल्लू भर पानी ले कर डूब मरते? क्या मेरी ऐसी दुर्दशा करने वाला दुर्योधन जीता रहेगा।

हे श्रीकृष्णजी मेरे इन बालों को देखो, क्या यह इसी प्रकार खुले रहेंगे। दुश्शासन के हाथ से इन के उखाड़े जाने का वृतान्त स्मरण करो। जिन दुष्टों ने मुझ पर वह अत्याचार किया था, क्या वह अब जीते ही बचे रहेंगे? हे कृष्ण मुझ तपस्विनी का अपराध करने वाला बच नहीं सक्ता। मैंने तेरह वर्ष इसी प्रतीक्षा में काटे कि अब युधिष्ठर, भीमसेन, नकुल अर्जुन और सहदेव मेरे अपराध का बदला लेते हैं, परन्तु यह विचारे तो कृपण हो गये। और बलहीन हो कर शान्ति की प्रार्थना करते हैं आप इनकी रक्षा कीजिये॥

बालों को हाथ में लेकर रोती हुई द्रौपदी ने अपने बाण रूपी वचनों से सब को रुला दिया और क्रोध के अश्रु प्रवाह से उसके नेत्र लाल हो गये और गद् गद् वाणी से कहने लगी—"अब मेरे निरादर का बदला मेरे पिता महाशय और भाई धृष्टद्युम्न, और अभिमन्यु को आगे करके मेरे पांच पुत्र ही लेंगे, क्या जब तक दुश्शासन के अंगों को मर्दित कर के मैं उसके निश्चेष्ट शरीर को रुधिर से भरा हुआ नहीं देखती

मेरे चित को शान्ति होगी ? कभी नहीं ! "हे कृष्ण ! यदि आप अब भी धर्म ही देखते हैं, तो मेरा इस धर्म को दूर से ही प्रणाम है ॥

यह कह कर द्रौपदी करुणा स्वर से फूट २ कर रोने लगी, उस समय यदि महा निष्ठुर भी कोई पुरुष होता, तो भी विना रोये न रह सक्ता था ॥

यह देख कर श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि हे द्रौपदी ! जो हुआ सो हुआ ! अब तू भी शीघ्र ही कौरवों की स्त्रियों को रोती हुई देखे गी, क्योंकि उनके पति और पुत्रादि बंधुओं का वध सब पाण्डव आप के पति करेंगे, हिमालय पर्वत चलने लग पड़े ! चाहे पृथ्वी सौ टुकड़े हो जाय, चाहे तारों समेत आकाश गिर पड़े, परन्तु यह वचन मेरा वृथा नहीं होगा । इस लिये आंसुओं को बंद करो, तुम शीघ्र अपने पतियों को श्री युक्त और शत्रु रहित देखोगी ॥

सैंतालीसवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण का हस्तिना पुर को जाने के लिए रथ पर चढ़ना, पांडवों का अपने सहायक राजाओं सहित उन को विदा करने

जाना और सब की कुशल का संदेशा देना ॥

प्रातःकाल उठ कर कार्तिक मास में रेवती नक्षत्र के बीच में जब मैत्र तारा प्रकाश हुआ तो श्री कृष्ण ने चलने की तय्यारी की उस समय अर्जुन जी बलवतर हुये श्री कृष्ण जी के लिये रथ सजाया गया और उस में अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र रखे गए, तब शुभ मुहूर्त देख कर और शांति पाठ करके श्री कृष्ण जी रथ पर चढ़ कर चल पड़े ॥

पांचों पांडव, चेकितान, चंदेरी राज, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न और अन्य सब राजा श्री कृष्ण जी को बिदा करने के लिये साथ गए, कुछ दूर जाकर युधिष्ठर जी कहने लगे कि हे भगवन्! देर हुई हमारी माता जी का समाचार हम को नहीं मिला, वह मर गई है वह जीती है, हम नहीं जानते। उस देवी ने हम को जन्म दिया और पालन पोषण किया है, उस ने हमारे कारण बहुत से दुःख सहे हैं, परंतु हमारा कोई भी सुख नहीं देखा, उसी ने हम को दुर्योधन के भय से छुड़ाया, उस देवी को मिल कर उस की कुशल पूछना, हे कृष्ण। उस का दुख कैसे मिटेगा? वह भी हमारे साथ वन को जाना चाहती थी, परंतु हम ने आप ही उस को वन का भार सहने के अयोग्य देख कर छोड़ा था, उस देवी को हमारा प्रणाम बार बार कहना, धृतराष्ट्र को और दूसरे राजाओं को जो आयु में हम से अधिक हों हमारा प्रणाम

कहना और सब से कुशल पूछना, यह कह कर युधिष्ठिर प्रणाम कर और रथ की प्रदक्षिणा कर लौटे ॥

तब अर्जुन आगे बढ़ा और श्री कृष्ण जी से कहने लगा, कि यदि कौरवों ने आधा राज्य देदिया तो बहुत अच्छा; यदि न देंगे तो हम निस्संदेह सब को मार देंगे, यह बात निश्चित समझना, भीमसेन यह सुन कर प्रसन्न हुए, तब प्रणाम करके सब राजा लोग लौटे ॥

तब श्री कृष्ण गरुड़ ध्वजा युक्त रथ को उड़ा कर हस्तिना पुर को चल पड़े, रास्ते में बहुत से ऋषि मिले, श्री कृष्ण ने सब की विधिवत पूजा की और कुशल पूछा और कहा कि मेरे योग्य जो सेवा हो वह कहिए; ऋषि बोले कि आप के देखने की इच्छा से हम लोग यहां आए हैं हम धर्म अर्थ युक्त आपके वचन सुनना चाहते हैं, तब श्री कृष्ण ने कहा कि जब हम लौट कर आयेंगे तो आप से बात चीत करेंगे ॥

अड़तालीसवां अध्याय

—:o:—

श्री कृष्ण का हस्तिनापुर को जाना ॥

जब श्री कृष्ण जी हस्तिना पुर को प्रस्थित हुये तो उन के साथ दश महारथि गये एक सहस्र प्यादे और एक सहस्र स्वार भी गये, रास्ते में जहां कहीं जाते घरों से निकल २ कर लोग उन के दर्शन को आते और सब प्रकार से सेवा करते

रात को कृष्ण चन्द्र वृक स्थान में पहुंच, वहां के लोगों ने उनको बड़ा सत्कार किया, और वह रात उन्हों ने वहीं व्यतीत की। दूतों ने आकर धृतराष्ट्र को समाचार दिया कि श्री कृष्णचन्द्र आप पाण्डवों के हित के लिये हस्तिनापुर को आरहे हैं। यह सुन कर धृतराष्ट्र भीष्मपितामह और अन्य कुरुवीरों को कहा कि श्रीकृष्ण जी के लिये पूजा की सब सामग्रि यथोचित प्रकार से इकठी कीजाये॥

तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को कहा कि श्रीकृष्ण जी के उतारे के लिये उत्तम स्थान बनवाओ और बड़े सत्कार पूर्वक उनको नगर में लाओ, ऐसा करो कि जिस से तुम्हारे साथ उनकी प्रीति बढ़ जाय, दुर्योधन ने कहा बहुत अच्छा, तब उस ने नगर के मार्गों को बहुत रमणीक बनाया और जगह २ को बेल बूटों से सजाया और चौरस्तों पर झंडियां, और तारण लग गये, कहीं फूलों के हार लटकाये, बहुत उत्तम चौकियां और सिंघासन स्थान २ पर रक्खे।

कृष्ण चन्द्र जी के वास के लिये वृकस्थल में एक सभा सजाई गई और उस में खाने पीने के सामान और नाना प्रकार की भोग्य वस्तुएं रखी गई, यह सब कुछ बना कर दुर्योधन ने कहा कि हे पिता जी सब सामग्रि श्रीकृष्ण जी की पूजा के लिये तैय्यार है।

उनचासवां अधयाय

—:०:—

श्रीकृष्ण के लिये धृतराष्ट्र का पूजा की सामग्री इकट्ठी करना और दुर्योधन से वचन बोलना ॥

तब राजा धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को कहा कि श्रीकृष्ण जी विराट नगर के पास से आये हैं और रात को वृक स्थल में ठहरे हैं वह आहुक वंशियों के स्वामि और सात्वत वंशियों के पुरा गामी हैं हम उन के लिए यह पदार्थ देकर पूजा करेंगे ॥

(१) सोलह रथ जिन में प्रत्येक में चार २ उत्तम काबली घोड़े लग हों रथ नवीन होंगे ॥

(२) आठ मस्त हाथी ॥

(३) चौंसठ साधारण हाथी ॥

(४) एकसौ युवा दासी ॥

(५) एकसौ युवान दास ॥

(६) १८००० कोमल रोम वाले पहाड़ियों के लाये हुए वस्त्र ॥

(७) १००० चीनी मृगछाल बिछाने के लिये ॥

(८) एक महामणि जो हमारे पास है और दिन रात प्रकाशमान रहती है ॥

(९) १ रथ जिस में ५६ कोश चलने वाली ४ खच्चरें जुती हैं ॥

इस के अतिरिक्त श्री कृष्ण जी को जिस की इच्छा हो वह भी दगे ॥

प्रातःकाल सब मेरे पुत्र (दुर्योधन को छोड़ कर) और अन्य वृद्ध अथवा युवा कौरव, सुन्दर रथों पर बैठ कर और उत्तम वस्त्र धारण करके श्रीकृष्णचन्द्र को आगे से मिलने को जाओ और आदर पूर्वक नगर में लेआओ, नगर की वैश्या भी सुन्दर वस्त्र और आभूषणादि पहिर कर नृत्य करने जायें। नगर की कन्या भी मंगल गाकर श्री कृष्णचन्द्र का शुभागमन करें ॥

वृद्ध, बालक, पुरुष, स्त्री जिस को श्रीकृष्णजी के दर्शनों की अभिलाषा हो, वह बिलारोकटोक देखने आवें। दुर्योधन के घर से दुश्शासन का घर अच्छा है। वह बहुत सजा हुआ है और वहां षटऋतुएं सदा वास करती हैं। इसलिये उस घर में श्री कृष्णजी को निवासस्थान बनाया जावे ॥

पचासवां अध्याय

—:o:—

विदुर, भीष्मपितामह, दुर्योधन और धृतराष्ट्र की बात चीत, दुर्योधन का श्री कृष्ण चन्द्र को बन्दि गृह में डालने का विचार ॥

तब विदुर धृतराष्ट्र से बोले कि हे राजेन्द्र! आप बडे

वृद्ध और धर्मात्मा है, आपने श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा की सामग्री बहुत विचार पूर्वक बताई है। परन्तु क्या आप श्री कृष्णचन्द्र के विद्यागुण भली प्रकार जान कर कह सक्त हैं कि वह इन पदार्थों को अंगीकार करेंगे।

आप बालकों सी बुद्धि न रखें, परंतु अपने गुणों की रक्षा करें। श्रीकृष्णजी को जो कुछ दें वही थोड़ा है, परंतु आप यह तो बतायें कि यह इस प्रकार की पूजा करने का कौनसा अवसर है। मैं तुम्हारे हृदय की बातों को भली प्रकार समझता हूं। आप का प्रयोजन न तो धर्मरूप ही है, और न श्री कृष्ण चन्द्र के हित की बात है, आप का अभीप्राय कुछ और ही है, यह सब छल ही है, आप के गुप्त विचार को हम अच्छी प्रकार जानते हैं।

पाण्डवों ने पांच ही ग्राम मांगे परन्तु आपने नदिये अब तुम यह पदार्थ देकर चाहते हो कि श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे पक्ष में हो जायें हे राजन्! यह हो नहीं सकता, श्रीकृष्ण कभी तुम्हारा पक्ष न लेंगे, चाहे तुम इससे दुगना तिगुना भी धन दो, वह पाप समझ कर तुम्हारी ओर हो नहीं सकते, न उन में और पाण्डवों में कभी भेद हो सकता है॥

मुझे आशा है कि श्रीकृष्ण जी इस पूजा को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, उनके लिये तो आप पाद्य और अर्घ लेजायें और कुशल प्रश्न पूछें, यही उनकी पूजा है। इसी से वह प्रसन्न होते हैं, इस दिखावे को दूर कीजिये, जो कुछ कहने की इच्छा

से श्री कृष्ण चन्द्र आप के पास आते हैं, उस को ध्यान दे कर सुनें और विचारें, इसी में उन की सब पूजा हो चुकी ॥

यह सुन कर दुर्योधन बोला कि विदुर जी सत्य कहते हैं, पाण्डवों से कृष्ण चंद्र का ऐसा प्रेम है कि वह किसी यत्न भी उन से पृथक् नहीं हो सकते, इस लिए हे राजन्! जो २ कुच्छ आपने उन को देने का विचार किया है वह न दीजीए यद्यपि वह पूज्य हैं और उन को पूजा देनी चाहिए परंतु देश के अनुसार हमारी विचार की हुई पूजा देनी उचित नहीं, वह यही मानेंगे कि यह हम से डरते हैं और भय से पूजा देते हैं, इस लिए हमारा इस में अपमान होगा, क्षत्रियों को वह कार्य कदापि न करना चाहिये जिस के करने से अपमान हो ॥

हम जानते हैं कि वह पूजा के योग्य हैं, परन्तु विग्रह का आरंभ हो रहा है, और वह पूजा मात्र से निवृत्त नहीं हो सक्ता।

यह सुन कर भीष्म जी बोले कि चाहे सत्कार हो, चाहे असत्कार, श्रीकृष्ण चन्द्र क्रोध नहीं करेंगे, परन्तु उन का निरादर करना अच्छा नहीं जो बात मन से हो रही हो उसको कोई उपाय अन्यथा नहीं कर सकता, हां जो कुच्छ आकर वह कहें, वह करना उचित है, अच्छा अवसर मिल गिया है, इन्हीं की सहायता से पाण्डवों से मिलाप किया जाय तो बहुत अच्छा है।

तब दुर्योधन बोला कि यह बात नहीं हो सक्ती कि हम इतनी देर राज्य करके और सारी पृथ्वी पर शासन कर के आज पांडवों के साथ आधा राज्य बांटने लगें, जब तक हम जीते हैं, यह बात असम्भव है मर जायेंगे तो क्या पता क्या हो व न हो, हां मैंने एक उपाय विचारा है, वह यह है कि श्री कृष्ण जी उन के परम सनेही, वीर्यवान और दांया हाथ हैं वह कल यहां आजायेंगे कल ही पकड़ कर उन को बंदी ग्रह में डाल देते हैं, जब श्री कृष्ण जी हमारे वश में आगए तो पांडव उदास होकर आप ही लड़ना छोड़ देंगे। न पांडवों का नाश होगा न कौरवों का। वरन सब पांडव और उन के सहायक हमारे आधीन होंगे, आप बुद्धिमान हैं कोई ऐसा उपाय बतायें जिस से सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे श्री कृष्ण जीत भी इस बात को जानें जब उन का बंदिग्रह में प्रवेश ही किया जाए ॥

यह वचन सुन कर धृतराष्ट्र बड़ा दुखी हुआ और कहने लगा कि हे प्रजापाल! ऐसे कुत्सित बचन न कहो यह सनातन धर्म नहीं है, प्रथम तो दूत बंधुआ बनाये ही नहीं जाते फिर दूत भी कौन वह श्री कृष्ण चन्द्र जी जो तीनों लोकों के स्वामी हैं उन्हो ने कौरवों का कभी अप्रिय नहीं किया, वह किस प्रकार बन्धुआ होने के योग्य हैं?

इतने में भीष्म जी बोले कि धृतराष्ट्र तुम्हारा पुत्र बड़ा मंद बुद्धि है, इस को कभी अच्छा विचार भी होगा कि नहीं? यह न शत्रु को देखता है न मित्र को, अच्छे विचार तो इस ने

सखा ही नहीं, सब अनर्थ ही करता चला जाता है। तुम भी मूर्खों की भांति इस के अनुयायी बन रहे हो, कुच्छ तो सोचो कि यह क्या बक रहा है इस की ऐसी अनर्थ युक्त बाणी हम कदापि सुन नहीं सकते ॥

यह सुन कर दुर्योधन ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे पितामह, हे कुरुश्रेष्ठ मेरे अपराध को क्षमा करो मैं फिर कभी ऐसा नहीं कहुंगा, यह कह कर वहां से उठ कर घर को चला गया ॥

इक्यावनवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण चन्द्र का हस्तिना पुर में प्रवेश और विदुर जी से मिलना ॥

प्रातःकाल उठ कर श्री कृष्ण जी ने स्नान किया और आह्निक कर्म करके हास्तिना पुर की ओर चल पड़े ॥

इधर से कौरवों को भी उन के आने का समाचार मिला और दुर्योधन को छोड़ कर सब उन को आगे से लेने को गए, हस्तिना पुर वासियों ने बड़ा हर्ष प्रगट किया और सब स्त्री पुरुष घरों से बाहर निकल कर श्री कृष्ण चन्द्र के दर्शन को आये ॥

तब श्रीकृष्ण सब वृद्ध कौरवों से पूजित हो कर और यथा विधि आदर पाकर राज सभा की ओर आये। कौरवों

ने सभा मंदिर को बड़ा सजाया हुआ था, तीन फाटकों से होकर चौथे फाटक के अन्दर बड़े दालान में उत्तम सुनहरी चौकियां बिछी हुई थीं, और श्वेत वर्ण की चादरें नीचे बिछी हुई थीं ॥

जब धृतराष्ट्र ने सुना कि श्रीकृष्ण जी फाटक पर आ गये हैं तो सत्कार के लिये अपने स्थान से उठ खड़े हुए। सब कौरव तथा कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अन्य महात्मा कौरव भी उठ खड़े हुए और श्रीकृष्ण जी को आदर सहित एक उच्च चौकी पर जो धृतराष्ट्र के पास ही पड़ी हुई थी बिठा दिया तब ब्राह्मणों ने विधिवत अतिथि सत्कार किया ॥

फिर इस के पश्चात् आपस में बातें होती रहीं। श्री कृष्णचन्द्र बड़े चिर के पश्चात् हस्तिनापुर में आये थे, इस लिये कई प्रकार की वस्तुओं की सी बातें हुईं। थोड़े काल के पश्चात् श्रीकृष्णजी सभा से उठे और विदुर जी को मिलने चले गये। विदुर जी बड़े प्रेम से मिले और आपस में कुशल क्षेम पूछा तब श्रीकृष्ण ने कौरवों की सब व्यवस्था पूछी और पाण्डवों का सब हाल वर्णन किया, विदुर ने दुर्योधन, धृतराष्ट्र और भीष्मपितामहादि का सब वृतान्त सुनाया ॥

बावनवां अध्याय

—:०:—

श्री कृष्ण जी का कुन्ति के पास जाना, उस का एक एक करके सब पाराडवों का हाल पूछना, और शोच करना, कृष्णचन्द्र का उस को धीरज देना, और वहां से विदा होकर दुर्योधन के पास जाना ॥

विदुर जी को मिल कर श्री कृष्ण जी अपनी फूफी कुन्ती जी के स्थान में गये, वह विचारी काल से पाण्डवों का संदेशा सुनना चाहती थी, रोकर कृष्ण जी के गले में लिपट गई और कहने लगी कि श्री कृष्ण पाराडव तो बनवास गये थे तुम ने भी मुझे विसार दिया ॥

श्रीकृष्ण जी ने उस को सब प्रकार से धैर्य दिया और कहने लगे कि आप घबराओ मत, हम आप ही को मिलने आये हैं पाराडव सब कुशल पूर्वक हैं और आप को याद करते हैं, कुन्ति बोली कि आप को देख कर आज मुझे अर्जुन याद आता है फिर कृष्ण जी का सत्कार कर के आसन दिया और अपने पास विठा कर विविध प्रकार की बातें करने लगी ॥

कुन्ति ने कहा कि हे कृष्ण मेरे पुत्र सदा गुरुओं की सेवा में तत्पर रहे, वह बनवास के कदापि योग्य, नहीं थे दुष्टों ने

उन को छल से राज्य हीन कर दिया और वह निर्जन वन को चले गये। मैं भी दौड़ती हुई उन के पीछे गई, परन्तु मुझ रोती हुई को छोड़ कर भाग गये। देखो मुझ को कितना कष्ट प्राप्त हुआ है॥

वह बालक पन से सुंदर शय्या पर सोने वाले थे, उनको वनकी कठोर भूमि कैसे भाती होगी, देखो छोटी अवस्था में उनके पिता स्वर्ग वास हुये, मैंने बड़े यत्न से उनका पालन पोषण किया, माता पिता दोनो के बिना वह वन में कैसे सुखी होंगे? बाल्यावस्था मे ही वह बाजों और बंसरियों के शब्दों से जगाये जाते थे, वन में सिंहों के नाद से जागते होंगे, ब्राह्मण लोग उनको सदा अशीर्वाद देते थे और मंगल शब्द उन के लिये प्रयोग करते थे, वन में उनकी कौन पूजा करता होगा, घर में वह सुन्दर कोमल शय्या पर सोते थे वन में मृगचर्म पर सोते होंगे, उनको निद्रा कैसे आती होगी, कृष्ण जी वह वैसे ही हृष्ट पुष्ट हैं जैसे यहां थे, कहीं दुबले पतले तो नहीं होगये॥

युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा और सत्यवादि था और सत्य बातेजा और सर्वगुण संपन्न होने के कारण तीनों लोकों के राज्य के योग्य था, कृष्ण जी! उसका समाचार तो कहो जो दश सहस्र हाथी का बल रखने वाला असहन शील, महा पराक्रमी भीमसेन है जिसने क्रोध को वश में करके अपने भाई की ही आज्ञा मानी है उस भीमसेन का हाल भी कहिये॥

हे कृष्ण चन्द्र अपने सखा अर्जुन का वृत्तान्त कहो कि जो दो ही बाहुओं को रख कर भी सहस्र बाहु अर्जुन के तुल्य में है इन्द्रियों के दमन करने में महर्षियों के तुल्य है, और बल में इन्द्र के तुल्य है जिस ने अपने बल से सब राजाओं को जीत लिया और जिस को कोई भी नहीं जीत सक्ता, जो एक ही बार पांच सौ बाण चलाता है, और जिस के सामने आ कर कोई योधा बच नहीं सक्ता, वह अर्जुन कैसा है?

हे कृष्ण चन्द्र, सब पर दया वान अति सुकुमार, दया वान, लज्या वान, शास्त्र वित, अति सुकुमार, धर्मात्मा हमारे प्राण पियारे भाइयों के हितैषी और आज्ञा कारी जो सब योधाओं में शूर वीर माद्री के पुत्र सहदेव है, उन का वृत्तान्त भी सुनाओ।

सब से छोटे, युवावस्था को प्राप्त, अति सुकुमार योधा वीर नकुल का हाल भी सुनाओ, हे कृष्ण वह नकुल कैसा है क्या मैं उस को फिर देखूंगी? मेरे प्राण कैसे कठिन हैं, मैं जो क्षण भी नकुल के बिना न जीती थी, आज तक उस को न देख कर भी जी रही हूं?

परन्तु हे कृष्ण। मुझ को सब से प्यारी द्रौपदी है, वह कुलीन धर्म शीला, उत्तम वंश में उत्पन्न हुई, उत्तम वंश में ब्याही हुई पांच पतियों की स्त्री परम रूप वान वन, के कष्टापि योग्य नथी परन्तु दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा से निरादर पाकर उस ने अपने पुत्रों को छोड़ कर भी अपने पतियों के साथ ही जाना चाहा उस ने पांच पतियों की नारी होकर भी आजतक

कोई सुख नहीं पाया। हे कृष्णचन्द्र! मुझे उसका बड़ा शोच है, कहो वह द्रौपदी कैसी है?

दुशासनादिकों ने उस का निरादर किया, सब कौरव दुखी होगए परंतु किसी ने कुच्छ नहीं कहा, हां सब से बढ़ कर मैं विदुर जी को अच्छा समझती हूं जिन्हों ने बड़े श्रेष्ठ वचन बोले, श्रेष्ठता आचरण ही से होती है, विद्या और धन से नहीं होती, इस लिए उस का शील चौदहों लोकों से बढ़ कर है॥

हे कृष्ण! राजाओं ने जो जूआ खेलना आरम्भ किया है यह व्यसन ही बढ़ाया है, यदि जूआ न होता तो द्रौपदी धृतराष्ट्र के पुत्रों से निरादर न पाती, हाय शोक वह सब वृत्तान्त अपनी आंखों से देख कर भी मेरा मरण न हुआ॥

हे कृष्ण! मैंने केवल द्रौपदी का निरादर ही नहीं देखा। मैंने आयु भर बहुत दुःख पाये हैं, देखो पुत्रों का देश से निकाला जाना और बारह वर्ष वनों में फिरना और फिर १ वर्ष गुप्त वास करना! अच्छा यदि सुख से पुण्य नाश होता है तो दुःख से अवश्य बढ़ता होगा, इस से यद्यपि हम को दुःख प्राप्त हुआ है परन्तु हम सुख अवश्य पावेंगे॥

मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे पुत्र युद्ध को जीतेंगे, मैं उस समय तुम को युधिष्ठिर और अर्जुन के साथ देखूंगी। मेरे दुःखों का कुच्छ न पूछो, देखो तुम्हारे पितामह मेरे पिता शूर सेन ने मुझ को कुन्ति भोज को इस प्रकार दे दिया जैसे ब्राह्मणों को धन, कुच्छ न विचारा कि यह मैं क्या करने लगा

हूं। फिर भीष्म पितामहा और धृतराष्ट्र ने जो हमारे श्वशुर के तुल्य हैं हम को त्याग दिया जिस से मुझे परम दुःख हुआ ॥

जब अर्जुन उत्पन्न हुआ था तो आकाश वाणी हुई थी कि यह बालक महा संग्राम में सब कौरवों को मारेगा और राज्य पाकर भाईयों सहित तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा, मैं उस देव वाणी की निन्दा नहीं करती और विश्व के करने वाले धर्म को तथा श्रीकृष्ण को नमस्कार करती हूं कि उन का किया हुआ होता तो सब कुछ है पर कर कुछ नहीं सकते। केवल धर्म ही प्रजाओं का पालन करता है, इसी से उस का यह नाम है, इस से हे कृष्ण! क्या इस आकाश वाणी को तुम सत्य करोगे ॥

हे कृष्ण! मुझको विधवा हो कर भी ऐसा दुःख प्राप्त नहीं हुआ जैसा पुत्रों से विहीन हो कर हुआ है, मुझे पुत्रों को देखे हुये १४ वर्ष होने लगे हैं, और अब मेरा अन्त काल आ पहुंचा है मेरे पुत्रों से कहना कि तुम्हारे लिये तो मैं मरगई और तुम मेरे लिये मृतक समान हो, तुम्हारे जीते हुये यदि मुझे ऐसे दुःख मिलें तो शेष क्या रह गिया, मरने पर तो पिण्डादि सब करते हैं तुमने युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव से कहना कि तुम्हारा बड़ाभारी धर्म नष्ट हुआ जाता है जिस पुत्र की माता दूसरे के आश्रय रहकर जीती हो उस पुत्र और माता दोनों को धिक्कार है दीनता के साथ जीविका मिलने से अप्रतिष्ठा

ही श्रेष्ठ है। जिस काल के लिये क्षत्रियानी पुत्र उत्पन्न करती है वह काल बीत गया तो फिर क्या। फिर तुम्हारा विक्रम वृथ होगा, क्षत्रिय को चाहिए कि जब समय आ जाए तो प्राण भी त्याग दे, परन्तु समय को हाथ से न जाने दे, अर्जुन का कहना कि द्रौपदी की पदवी को प्राप्त हो, क्योंकि जब द्रौपदी को बालों से पकड़ कर खींचा गया, तो उस समय अर्जुन और भीमसेन ने क्रोध किया था, निश्चय यह उन का बड़ा भारी निरादर था, परन्तु भीमसेन का क्रोध तो कभी शान्त ही नहीं हुआ ॥

मुझ को न राज खोने का, न बन में जाने का, और न किसी और बात का ऐसा दुःख है, जैसा उन कठोर वचनों का जो द्रौपदी के लिये बोले गये, किसी ने कहा—"तुम्हारे पति तो अब गये"! किसी ने कहा—"अब मेरी ही समझो"। किसी ने कहा तुम अब और पति ढूंढो। मुझ को तो केवल इन कठोर वचनों का दुःख है, उस नाथ वति पांच पतियों की स्त्री का उस समय कोई न बना, हे कृष्ण! जिन के तुम सहायक हो, उनकी यह दशा ॥

तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि "हे फूफी जी! तुम राजा शूरसेन की पुत्री राजा अजमीढ़ की कुल में व्याही गई, एक समुद्र से निकल कर दूसरे समुद्र में आई और बड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त हुई ॥

यदि दुःख और सुख को तुम ने न सहा तो और किस को उन के सहने की सामर्थ है, तुम्हारे पुत्र निद्रा, तन्द्रा, क्रोध, मुदा

क्षुत्पिपासा शीतोष्णा को जीत कर तुम्हारे पुत्र सुख से वास करते हैं। सामान्य पुरुषों के सुखों की ओर नहीं जाते और महोत्साही हो कर बड़े सुख की इच्छा करते हैं ॥

मनुष्य भोग्यादि पदार्थों को जिन का सुख तत्क्षण होता है, भोगते हैं परन्तु अन्त को उन से दुःख होता है, बुद्धिमान क्लेश सहते हैं, जो अन्त को जाकर बड़े सुखदायी हो जाते हैं। द्रौपदी और पांडव सब आप को प्रणाम करते हैं। थोड़े ही काल में उनके सब अर्थ सिद्ध हो जायेंगे, और आप उनको सब लोकों का स्वामी बना हुआ देखोगे ॥

यह सुन कर कुन्ति ने कहा कि अच्छा कृष्ण जी आप उनके साथ हैं, जिस २ पदार्थ की न्यूनता हो पूरी करो ॥

श्रीकृष्णजी ने कहा कि तुम उनके विषय में कोई चिन्ता न करो, तब कृष्णजी कुन्ति से विदा हुए और दुर्योधन के स्थान को गये ॥

त्रिपन का अध्याय

—:o:—

श्री कृष्णजी का दुर्योधन के पास जाना, दुर्योधन का पूजा सत्कार करना, श्रीकृष्ण का भोजन खाना स्वीकार न करना, और वहां

से उठकर विदुर जी के स्थान पर आना ॥

कुन्ति से आज्ञा पाकर श्री कृष्ण चन्द्र दुर्योधन को मिलने गये, वहां सब राजा और दुर्योधन के मन्त्री उपस्थित थे श्री कृष्ण का बड़ा सत्कार हुआ और उस को उत्तम स्वर्ण आसन पर विठाया गया, कृष्ण चन्द्र पहिले दुर्योधन से मिले फिर मंत्रियों से और पश्चात् अन्य राजाओं से एक २ करके मिले ॥

तब दुर्योधन ने अपने हाथ से श्री कृष्ण जी को पूजा की सामग्री दी और कहा कि यह घर और राज्य आप का ही है। तब दुर्योधन ने श्री कृष्ण जी को भोजन के लिए निमन्त्रन किया, परन्तु श्री कृष्ण जी ने अंगीकार न किया, तब दुर्योधन ने कर्ण की ओर देखते हुए कहा कि हे जनार्दन। हमने आप के लिए खान पान की सामग्रि इकट्ठी की है, आप क्यों स्वीकार नहीं करते, आपने तो मुझ को और अर्जुन दोनों को सहायता देने को कहा था, फिर क्या कारण है कि आप हमारा भोजन स्वीकार नहीं करते ? आप हमारे सम्बंधि भी हैं, जैसे अर्जुन आप को प्रिय है, वैसे ही मुझ को प्रीति भाव से देखो, आप धर्म अर्थ को जानते हैं, मैं आप के भोजन न ग्रहण करने के कारण को सुनना चाहता हूं ॥

तब श्री कृष्ण चन्द्र ने दहिना हाथ उठा कर बड़े ऊंच स्वर से और बड़ी शीघ्र वाणी से दुर्योधन की ओर ही देख कर

कहा कि हे दुर्योधन! दूत लोग जिस काम के लिए आते हैं उस की समाप्ति पर ही भोजन करते हैं, मैं दूत बन कर आया हुं यदि मेरा कार्य सम्पूर्ण होजाएगा तो मैं समाज सहित आप के हां भोजन करूंगा, उस समय आप प्रीति पूर्वक भोजन कराइए ॥

श्री कृष्ण जी के यह वचन सुन कर दुर्योधन बोला :—
"परन्तु हमारे विषय में आप को आयुक्त करना उचित नहीं। चाहे आप कार्य कर चुकें, हम तो आप की पूजा करने के लिये सदैव उद्यत हैं, पर नहीं कर सके, क्या करें? आप का यह कहना कि दूत कार्य करके पश्चात् पूजा ग्रहण करते हैं केवल एक बहाना है। आप के साथ न कोई हमारा वैर है, न कोई दुःख, यदि आप अच्छी प्रकार विचारें तो भोजन को स्वीकार न करना आप को उचित नहीं" ॥

जब दुर्योधन ने यह वचन बोला तो श्रीकृष्ण जी ने हंस कर कहा कि हे राजन्! भोजन दो प्रकार से कराया जाता है एक तो उत्तम प्रीति के साथ, दूसरे जब करने वाले पर कोई घोर आपत्ति आई हुई हो और उस को भोजन मिलता ही न हो और केवल पेट भरने से ही उस का काम हो, यहां दोनों ही बातें नहीं, न तो आप ही गाढ़ी प्रीति से भोजन कराते हैं और न मैं ही किसी घोर आपत्ति में ग्रस्त हूं, मैं न धन से न लोभ से, न भय से, न काम से, न क्रोध से धर्म को छोड़

सक्ता हूं, जो करूंगा धर्मानुकूल ही करूंगा, हे राजन् ! तुम अकस्मात पाण्डवों से वैर करते हो, वह आप का सदा भला करते हैं. और आप के भाई हैं और शुभ गुण युक्त हैं, आप को उन से अकस्मात अप्रीति करना योग्य नहीं, जब वह धर्म कर्म में लगे हुये हैं तो कोई उन को क्या कुछ कर सक्ता है।

जो उन से वैर रखता है, वह मुझ से वैर रखता है, जो उन का अनुयायी है, वह मेरा अनुयायी है। मुझ को और धर्मचारी पाण्डवों को एक ही जानो। जो हम से और पाण्डवों से वैर रखता है, वह कामी और क्रोधी ही होगा, जो गुण वालों से वैर करता है, वह नीच पुरुष कहाता है। जो काम और लोभ के वश में हो कर अपने भाई बन्धुओं को दोष दृष्टि से देखता है वह अजितात्मा शीघ्र ही राज्य लक्ष्मी से भ्रष्ट हो जाता है, जो पुरुष गुण वालों को अपने वश में कर लेता है, वह चिर काल सुख भोगता है, क्योंकि यह अन्न आप जैसे दुष्टों का है, हम इसको ग्रहण नहीं कर सक्ते। हम विदुर जी के हाथ की सूखी रोटी खाना स्वीकार करते हैं, क्योंकि वह धर्मात्मा तो हैं, हमारी बुद्धि तो यही कहती है, आगे जैसा आप के विचार में आये।

यह कह कर श्री कृष्ण जी दुर्योधन के अत्युत्तम भवन से चल पड़े और विदुर जी के स्थान पर आये और वहीं स्थान किया। भीष्म पितामह द्रोणाचार्य और अन्य कुरुवीरों ने आकर कहा कि हे मधुसूदन आप के लिये एक उत्तम राज भवन प्रस्तुत कर रक्खा है आप वहां चल कर विश्राम कीजिये

श्री कृष्ण ने कहा बस आप लोग हमारा आदर कर चुके अब अपने २ घरों को चले जाईये ॥

यह रूखा सा उत्तर सुन कर भीष्म पितामहादी अपने २ घरों को लौटे, फिर विदुर जी ने श्रीकृष्ण चन्द्र जी की पूजा की और उन के खाने को अन्न बनाए और बहुत से ब्राह्मणों को बुला कर भोजन कराया ॥

चौवनवां अध्याय

—:o:—

विदुर जी का श्री कृष्ण को कहना कि कौरवों को समझाना वृथा है, परन्तु श्री कृष्ण जी का उत्तर देना कि हम अपनी ओर से समझा कर अपना कर्तव्य अवश्य पालेंगे ॥

तब विदुर जी ने कहा कि हे श्री कृष्ण जी! आप ने कौरवों के पास आने की वृथा ही चेष्टा की है, यह महा अधर्मी, कामात्मा, हटी और लोभी हैं किसी का मत नहीं मानते, अपने ही स्वार्थ के कारण सब काम करते हैं, आप का आगमन अच्छा नहीं हुआ, दुर्योधन अपने को ही पंडित मानता है। आप कल्याण के वचन कहेंगे तो वह उन को दोष युक्त ही

बताएगा वह अपनी सेना को पाण्डवों के जीतने वाली समझता है, यही नहीं, किंतु कर्ण को सब पाण्डवों का जीतने वाला समझता है ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा से केवल इसी लिये हित करता है कि वह समझते हैं कि यह वीर पराक्रमी पाण्डवों को जीत सक्ते हैं, मिलाप का तो वह नाम भी सुनना पसंद नहीं करता सूई की नोक के बराबर तक भूमि युधिष्ठर को देना नहीं चाहता, इस लिए यदि उस से मिलाप करने का वचन कहोगे तो वह निश्चय उलटी ही समझेगा, हे मधूसूदन ! जहां अच्छा कहना और बुरा कहना समान ही हो वहां पंडित को कुच्छ न कहना चाहिये, चाण्डालों के सामने ब्राह्मण लोग देव वाणी नहीं बोलते ॥

हे श्री कृष्ण चन्द्र ! उन पापियों के बीच में आप का बैठना हम को अच्छा नहीं लगता, यह राजा लोग भी जो दुर्योधन के लिए लड़ने को आए हैं, आपसे कुच्छ न कुच्छ वैर रखते हैं इस लिए इन शत्रुओं के बीच में आप का अकेला जाना भी ठीक नहीं ॥

विदुर जी के यह वचन सुन कर श्री कृष्ण चन्द्र बोले कि हे विदुर जी आपने जो कुच्छ कहा है वही ठीक है, आपने माता के समान स्नेह प्रकट किया है परन्तु हमारे आने का जो कारण है वह और ही है, दुर्योधन की दुष्टता और राजाओं का वैर हम सब जानते हैं और यह जान कर भी हम कौरवों

के पास आये हैं । हम देखते हैं कि हाथी, घोड़ों और मनुष्यों सहित पृथ्वी नष्ट होने लगी है, कदाचित हमारे यत्न से यह नाश दूर होजाय यही हमारा विचार है ॥

जो मनुष्य यथा शक्ति धर्म का कार्य करे परन्तु वह कर न सके तो उस का दोष नहीं, वह धर्म फल का अधिकारी है, जो मन से पाप करने की चिन्ता न करे तो उस का पाप नहीं लगता, मन को पुण्य का फल तो होता है, परंतु पाप का फल नहीं होता, हम कौरवों और संजय वंशियों का नाश होता देखते हैं जो मनुष्य दुखी मित्रों की सहायता नहीं करता और उन के दुःख के कारण जान कर समझाता बुझाता नहीं । वह पाप करता है परन्तु जो अपने कर्तव्य को समझ कर भली बुरी सब बात बता देता है, उस को कोई बुरा नहीं कहता; इस लिए हम दुर्योधन को अमात्यों सहित वचन कहेंगे माने तो वह सकता है, न माने तो उस की इच्छा ॥

कल को ही अधर्मात्मा हमारे शत्रु यह कहेंगे कि श्रीकृष्ण ने कुल का नाश कर दिया, और बीच में हो कर भी दोनों जनों को नहीं रोका, इस से हम तो अपना कर्तव्य पूरा करने आये हैं यदि दुर्योधन हमारा वचन न मानेगा, तो अपने भाग्य के वश में पड़ेगा ॥

पचपनवां अध्याय

—:-०-:—

श्री कृष्ण का बड़ी धूमधाम से कौरवों की राज सभा में जाना ॥

वह रात तो श्रीकृष्णचन्द्र ने अनेक प्रकार के वार्तालाप करते हुए विदुर जी के घर में काटी। प्रातःकाल दो घड़ी रात रहने पर शौच स्नानादि करके नित्य क्रिया करनी आरंभ की इतने में दुर्योधन और शकुनि आये और कहा कि महाराज धृतराष्ट्र आप को राज सभा में याद करते हैं, सब राजा लोग बैठे हैं, श्रीकृष्ण जी ने कहा कि मैं अभी सन्ध्या वन्दन करने लगा हूं आप जाईये मैं अभी आता हूं, यह कह कर दोनों को विदा किया।

इतने में सूर्योदय हुआ, भगवान कृष्ण चन्द्र ने सन्ध्य वन्धन समाप्त किया और ब्राह्मणों को दान दिया, तब अपना रथ जुतवाया, अग्नि की प्रदक्षिणा की और कौस्तभमणि धारण की, फिर कुरुवंशियों से वेष्टित और वृष्णि वंशियों से रक्षित हो कर रथ पर स्वार हुये। साथ ही विदुर भी बैठ गये, दुर्योधन और शकुनि जो गये नहीं थे दूसरे रथ पर चढ़ कर पीछे २ हो लिये। इन के पीछे सात्यकि और कृत वर्मादि वृष्णिवंशी जो श्रीकृष्ण चन्द्र के साथ आये थे, अस्त्र शस्त्र पहिन कर हो लिये इस के पीछे और योधा वा वीर पुरुष रथों और घोड़ों पर स्वार हो कर चल पड़े।

कौरवों ने रास्त को बहुत सजाया हुआ था, बाजे गाजे और शंख भरी का तुमुल शब्द सब दिशों में व्याप्त हो रहा था, श्रीकृष्ण के आगे पीछे तो सेना थी, और नगर के निवासी पुरुष और स्त्री सब उन को देखने के लिये अपने २ घरों से निकल २ कर रास्ते में खड़े हो गये, स्त्रियें मकानों की छत्तों पर बैठ गईं, श्रीकृष्ण जी ने यह देख कर कि लोग उन को देखने का कुतूहल रखते हैं, रथ को शनैः २ चलाना आरंभ किया।

जब राज सभा के निकट पहुंचे तो श्रीकृष्ण के अनुचरों ने शंख बांसुरी आदि बाजे बजाये, जिस से वह राज सभा श्रीकृष्ण चन्द्र को शुभा गमन करने के लिये प्रस्तुत हो गई, श्रीकृष्ण जी अपने उज्ज्वल और ऊंचे रथ पर से उतर, और इन्द्र भवन के समान राज सभा में प्रविष्ट हुए, उस समय कृष्ण चंद्र ने एक हाथ से विदुर जी को पकड़ा हुआ था, और दूसरे हाथ से सात्यकि को। उन के आगे कर्ण और दुर्योधन लगे और वृष्णि वंशी और कृतवर्मा उन के पीछे थे॥

तब श्री कृष्ण चन्द्र की पूजा के लिए भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र को आगे किया और अपने २ स्थानों से उठ खड़े हुए और शुभागमन करने के लिए आगे बढ़े, उन के साथ ही सब राजा लोग अपने २ स्थानों से उठ खड़े हुए, वहां एक उत्तम सुनहरी गोल आसन श्री कृष्ण जी के वास्ते रखा हुआ था, सब से कुशल पूछ और यथास्थान सब से बोल कर श्री कृष्ण जी उस आसन पर जा बैठे॥

इतने में देवर्षि आए तब श्री कृष्ण जी ने कहा कि अब देवर्षियों का सत्कार करना चाहिए और उन को सभा में आदर पूर्वक बिठाना चाहिए, भीष्म जी ने सब को अपने २ पद पर बिठाया, इस के पश्चात् सब अपने २ स्थानों पर बैठे दुशासन ने अपने हाथ से आसन उठा कर सात्यकि को दिया, विविंशति ने सोने की चौकी उठा कर कृतवर्मा को दी। कर्ण और दुर्योधन कृष्ण चन्द्र जी के पास एक ही आसन पर श्रीकृष्ण जीके समीप बैठ गये पासही शकुनि अपने पुत्रों सहित बैठगया, विदुर जी शुक्ल मणि युक्त आसन पर श्रीकृष्णजीके समीप बैठगये, जब यह सब कुछ हो चुका तो सब लोग मौन चुपचाप हो कर श्रीभगवान कृष्णचन्द्र की ओर देखने लगे॥

छपनवां अध्याय

—:o:—

कौरवों की सभा में शांत हो जाने पर श्री कृष्ण जी का उपदेश देना, और शांति के फल वर्णन करना॥

जब चारों ओर एक मौन छवि छा गई, तो शंख बजाया गया, उसकी ध्वनि को सुन कर सब राजा लोग कृष्णचन्द्र की ओर देखने लगे॥

फिर श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने आसन पर से उठ खड़े हुए और धृतराष्ट्र की ओर मुंह करके कहने लगे:—

"हे राजन्! जिस काम के लिये मैं आप के पास आया हूं, वह आप को विदित ही है, कौरव कुल शास्त्र पढ़ने और अन्य शुभ गुणों के कारण सब से उच्च हैं। कृपा, अनुकम्पा करुणा, अक्रूरता, सरलता, क्षमा और सत्य सब कौरवों में विद्यमान हैं और इन्ही के कारण अन्य राजाओं की अपेक्षा इन में विशेषता है। परन्तु यदि किसी कारण से यह गुण इस कुल से जाते रहे, और विशेष करके आप के कारण से, तो इस में बहुत दोष होगा॥

हे राजन्! इस समय कौरव मिथ्या चरण कर रहे हैं, आप उन के बड़े हैं, इस लिये आप ही उनके शिक्षक समझे जा रहे हैं, आप के पुत्र पाण्डवों से अन्याय वृत्ति रखते हैं। यदि इसका कुच्छ उपाय न हुआ, तो कौरव क्या समस्त पृथ्वी का नाश हो जायगा आप कौरवों की इस घोर आपत्ति को मिटाने का यत्न करें॥

यदि आप कुल नाश करने वाली इस आपत्ति को मिटाने का यत्न करना चाहो तो कर सक्ते हो। यह बात आप के और मेरे आधीन है। आप अपने पुत्रों को शांत होने के लिये उद्यत करें और मैं पाण्डवों को कहूंगा, बस शांति हो जायगी, आप के पुत्रों को आप की आज्ञा माननी चाहिये। इसी में उनका हित है॥

हे प्रजानाथ! वैर करने में कोई लाभ नहीं शांत होने पर

पांडव आप के सहायक हो जायेंगे, तब तो इन्द्र भी तुम्हारे तेज बल को न सहार सकेंगे, जहां भीष्मपितामहा, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, वाल्हिक, सैंधव, कलिंग, काम्बोज, सुदक्षिणा, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और युयुत्सु होंगे, वहां कौनसा मूर्ख अपने प्राणों से हाथ धोकर युद्ध करने को उद्यत होगा। यदि आप पाण्डवों का तिरस्कार करेंगे तो यह आप की भूल है, पांडव तिरस्कार के योग्य कदापि नहीं हो सक्ते। पांडवों से मिलाप होने पर जो राजा आप से अधिक भी बल रखते हैं, वह भी आप आकर आप से मेल रखेंगे। और आप सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी होंगे॥

हे नरेन्द्र! युद्ध करने में बड़ा भारी क्षय दिखाई देता है। यह क्षय दोनों ओर ही होगा। इस क्षय होने में आप कौनसा धर्म देखते हैं? आप के पुत्र भी बलवान और युद्ध में कुशल हैं। वैसे ही पांडव भी हैं, युद्ध होने पर दोनो मारे जायेंगे और फिर आप इन को न देख सकेंगे, अन्य राजा आप को हीन देख कर राज्य पर आक्रमण करेंगे और प्रजा का नाश होगा, इससे हे महाराज आप प्रजा की रक्षा कीजिये, अपनी प्रकृति पर आकर सब को मरने से बचाइये॥

शांत होने पर सब राजा लोगों का यथोचित सत्कार कीजिये, इन के गले में फूलों की माला डालिये और सत्कार पूर्वक अपने २ नगरों को वापिस भेजिये जैसा पाण्डवों का मत शांत होने का है वैसा ही आप भी कीजिये और न्याय

पूर्वक प्रजा को पालिये ताकि आपका धर्म और अर्थ नाश न हो ॥

आप को प्रणाम कर के पांडवों ने कहा है कि आप की आज्ञा से हम ने बहुत दुःख पाये हैं, बारह वर्ष तक हम ने वनबास के दुःख सहे, तेरहवें वर्ष में गुप्त वास रह कर नाना प्रकार के घोर नरक में वास किया। हम ने निश्चय कर लिया था कि अच्छा इतने दिन तो अपने नियम को पालें। इस के पश्चात् धृतराष्ट्र भी जीते ही होंगे, वह हम को हमारा राज्य दिला देंगे, परन्तु अभी तक हमको राज्य नहीं मिला इस से आप उन के साथ माता पिता के समान वर्ताव करें, छोटी अवस्था ही में उन के पिता मर गये, आप ने ही उन का पालन पोषन किया और बढ़ाया, अब बढ़ा कर गिराना उचित नहीं आप की सभा में सब धर्मात्मा लोग हैं। धर्मज्ञ सभा में पक्ष पात रूप अन्याय कदाचित उचित नहीं ॥

हे राजन्! पंडित केवल धर्म अर्थ की ही ध्यान करते हैं, आपही कहिये, कि उन का राज्य उन को देने के सिवाय और आप क्या कर सकते हैं? यह सब बुद्धिमान राजा लोग बैठे हैं, यही कहें कि पांडवों का राज्य मांगना न्याय के विरुद्ध है? इस लिये हे राजन्! इन सब क्षत्रियों को मृत्यु की फांसी से छुड़ाओ। अपने पुत्रों के अत्याचार को याद करो, लाख के घर का स्मरण रखो। हस्तिना पुर से इंद्र प्रस्थ को भेजने का वृत्तांत देखो! कैसे उन्हों ने सब राजाओं को जीत कर आप के वश में कर दिया था। परन्तु इस पर भी आप को संतोष

ने हुआ। आपने शकुनी के द्वारा महा कपट का जुआ खिलाया और झूठ मूठ जीत कर द्रौपदी की भरी सभा में दुर्दशा की यह जो कुछ हुआ सो हुआ; अब तो सम्भल जाओ, मैं तुम्हारा और उन का दोनों का कल्याण चाहता हूं; शांत होजाओ प्रजा को वृथा नाश न करो अपने लोभी पुत्रों को रोको और उन को अपने ही पदार्थ भोगने दो। पांडव युद्ध करना और आप की सेवा करना दोनों बातें स्वीकार करते हैं अब आप की इच्छा है जो अच्छा समझो करो; मैंने अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया है॥

सतावनवां अध्याय

—:o:—

परशुराम का धृतराष्ट्र को नर और नारायण का इतिहास सुना कर उपदेश करना॥

कृष्ण चन्द्र के ऐसे धर्म अर्थ युक्त वचन सुन कर परशुराम जी बोले कि हे राजन्! श्री कृष्ण जी ने सब कुछ ठीक कहा है। आप उन की कल्याण की बातें ग्रहण करो पहिले समय में दम्भोद्भव नाम एक चक्रवर्ति राजा हुए हैं उसने सब क्षत्रियों को जीत कर सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य किया है जब रात बीत जाती थी और प्रातःकाल होता था तो वह राजा सब ब्राह्मण क्षत्रियों और वैश्यों के पास जाकर

कहा करता था कि यदि कोई तुम में से अथवा और किसी स्थल में मुझ से अधिक बलवान पुरुष हो तो बताओ; मैं उस से युद्ध करूंगा ॥

उस के बार २ ऐसा कहने पर ब्राह्मण लोगों ने क्षुभित होकर कहा कि हे राजन्! दो पुरुष आप से अधिक बलवान हैं आप उन को जीत नहीं सकते। महा लोभी और अहंकार दम्भोद्भव ने पूछा कि आप कृपा करके उन के नाम बताईये मैं उन से अवश्य ही युद्ध करूंगा; तब ब्राह्मणों ने कहा कि वह तपस्वी नर और नारायण बड़े बलवान योधा हैं और गन्धमादन पर्वत पर अपने आश्रम में रहते हैं वह ऐसा अपूर्व बल रखते हैं कि आप उन को जीत नहीं सकते ॥

दम्भोद्भव ने यह सुन कर गंधमादन पर जाने का विचार किया और बड़ी भारी सेना लेकर नर और नारायण से युद्ध करने को चल पड़ा, वहां जाकर उस ने नर जी को उग्र तपस्या में ठहरे हुए देखा, शरीर उस का तप से दुर्बल हो रहा था और अंग सब ढीले पड़े हुए थे, राजा को देख कर ऋषि ने सत्कार किया और सेना सहित कुशल पूछा ॥

राजा ने ऋषि को प्रणाम किया और उस के दिए हुए आसन पर विराजमान होकर बैठ गया ॥

तब नर ने पूछा कि हे राजन्! कहिए, आप का आना कैसे हुआ; मूर्ख और बल से मदांध राजा ने उत्तर दिया कि हे ऋषिसत्तम मैंने सुना है कि आप बल से अपराजित हैं और बहुत युद्ध कर सकते हैं, इस लिए मैं आप से युद्ध करने को

आया हूं, यह हमारा आतिथ्य कीजीए, फिर नर जी ने कहा कि हे राजन्, यह सरल आश्रम है यहां क्रोध का नाम नहीं आप और किसी स्थान में जाकर युद्ध करें पृथ्वी पर अनेक राजा हैं। यह सुन कर भी दुष्ट राजा ने आग्रह ही किया और वार २ युद्ध करने पर ही दुष्ट प्रसन्नता प्रकट की ॥

तब नर जी ने मुट्ठी भर सिरकण्डे लिये और दम्भोद्भव को कहा कि आओ युद्ध करो, मैं तेरी श्रद्धा को पूरण करता हूं। राजा उन सिर कण्डों को देख कर आश्चर्य मय हुआ, परन्तु ऋषि के कहने पर उस से युद्ध करने लगा और उस पर बहुत तीव्रता से बाणों की वृष्टि की। सेना ने भी बाण मारे, उन सब का अनादर कर तपस्वी ने उन्हीं सरकण्डों से मार २ कर राजा को सैन्य सहित आच्छादित कर दिया, तब राजा को प्रज्ञा हुई और वह नरजी के पाओं पर गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा ॥

नर जी ने उस का सब अपराध क्षमा किया और कहा कि अभी नारायण जी से आप नहीं लड़े, देखो फिर ऐसा काम न करना, अहंकार वश हो कर किसी का निरादर न करना, अब जाओ प्रज्ञावान् और जितेंद्रिय बनों, तुम्हारा कल्याण होगा, यह सुन कर नर और नारायण जी को नमस्कार कर दम्भोद्भव अपने देश को लौट आया और धर्म व्रत में रहने लगा ॥

हे धृतराष्ट्र! इस दृष्टान्त से शिक्षा सीखो अर्जुन और श्री कृष्ण चन्द्र नर और नारायण के समान हैं आप उन से

अहङ्कार के कारण युद्ध न करें, शांत हो जायें। आप का कुल भूतल में श्रेष्ठ माना जाता है आप मान को छोड़ दें और इस उत्तम कुल का नाश न करें, हमारी बात का निश्चय करें॥

अठवनवां अध्याय

—:०:—

कण्व ऋषि का इन्द्र के सारथी मातली की कन्या गुणकेशी के वर प्राप्ती का प्रसंग सुनाना॥

तब कण्व ऋषि बोले कि हे दुर्योधन! आप की अभी युवास्था है, आप सुख से राज्य भोगें; आप का युद्ध करने का समय नहीं, इस लिये आप युधिष्ठर से मिलाप करलें तो सर्व श्रेष्ठ है। पांडव और कौरव दोनो मिलकर पृथ्वी का पालन करें, बलवान के संग रहने से लोग अपने आप को बलवान कहने लगते हैं; परन्तु वास्तव में बलवान नहीं होते; जिनका शारीरक बल अधिक है, उनके सामने सेना का बल कुछ काम नहीं कर सकता, पांडव सब बलवान हैं और उनके बल देवताओं के सामन है; इस विषय में हम एक पुराना इतिहास कहते हैं, सुनाः—

इन्द्रजी का मातलि नाम सारथी है, उसके हां एक बड़ी रूपवति और सुशीला कन्या उत्पन्न हुई, उसका नाम गुणकेशी

था, जब वह युवावस्था को प्राप्त हुई तो मातलि उसके विवाह की चिन्ता करने लगा, परन्तु देवलोक और दैत्यलोक में कोई पुरुष उस कन्या के अनुरूप वर न मिला, तब मातलि ने अपनी स्त्री और सुधर्म्मा नाम देवसभा का भी सम्मत लिया, और कन्या का शिर सूंघकर मर्त्यलोक में अपनी कन्या के अनुरूप पति ढूंढने को उतरा ॥

मातलि थोड़ी ही दूर गया था कि उसको नारद जी मिले; उन्हों ने मातलि से उसकी यात्रा का कारण पूछा; मातलि ने सब कुछ यथातथ्य कह सुनाया और कहा कि मैं वरुण लोक को जारहा हूं, नारद ने कहा कि हम भी उधर ही को जाते हैं, चलो तुम्हारे साथ चलें, तब दोनो मिल कर वरुण लोक में आये और वरुण जी के दर्शन किये, और उनसे आज्ञा पाकर सब स्थानों में गुणकेशी के अनुरूप पति की खोजना करने लगे, नारद जी सब स्थानों को जानते थे. उन्हों ने एक एक करके सब स्थान मातलि जी को दिखाये. वरुण के पुत्र पुष्कर को भी दिखाया, और दैत्योंके और देवताओं के आयुध दिखाये, परन्तु मातलि को वहां अपने कन्या के अनुरूप कोई पति प्राप्त न हुआ ॥

तब नारद जी मातलि को पाताल देश में लेगये और अनेक महाबलि दैत्य और दानव दिखाये, परन्तु मातलि के मन में कोई न रुचा। फिर नारद मातलि को हिरण्यपुर में जो दैत्यों का सुन्दर नगर है लेगया और महा दुर्म्मद निवात कवच दानव भी दिखाये, और कहा कि इन्द्र इनको बल से

नहीं जीत सका, तुम इन में से किसी को अपनी पुत्री के लिये वर पसंद करो, परन्तु मातलि बोला कि देवताओं और दानवों के भाई २ होने में कोई शंका नहीं, परन्तु इनके कर्म एक दूसरे के विरोधी हैं, दैत्यहिंसा करते हैं, देवता हिंसा से परे हैं इसलिये हिंसकों को अपनी पुत्रि कैसे दे दूं ॥

तब नारद जी मातलि को गरूड़ देश में ले गये, और क्षीर सागर में होते हुए सुरभी और असकी सन्तान के दर्शन भी कराये, परन्तु मातलि ने अपनी कन्या के अनुरूप कोई वर न पाया, फिर नारद जी वासुकि नाम नाग राज की पुरी भोगे वति में गये, नाग कुल की चन्द्रोलना की और बड़े २ नागों को देखा नारद जी बोले कि यह सब कश्यप ऋषि की सन्तान हैं। मतलि ने एक परम सुन्दर नाग को देख कर नारद जी से पूछा कि यह द्युति मान कौन है? इस के माता पिता का क्या नाम है? मेरे विचार में गुण किशी के अनुरूप यही वर है ॥

नारद जी बोले कि हे मातलि! यह ऐरावत के कुल में उत्पन्न है! सुमुख इस का नाम है आर्यक इन के पिता मह और वामन नाम नाग राज की पुत्री इन की माता है। इन को पिता चिकुर नाम था? थोड़े दिन हुए गरूड़ जी ने उन को खालिया है। मातलि बोला कि बस यही गुण केशी के अनुरूप वर है इस में कोई भेद नहीं ॥

उनसठवां अध्याय

—:०:—

नारद का आर्य्यक को मातलि का अभिप्राय बताना और उस के पौत्र से गुण केशी के विवाह का नियम करना।

तब नारद जी आर्यक के पास आये और कहने लगे कि हे भुजंगोत्तम यह मातलि जी इन्द्र के सखा और सारथी हैं विद्या बल में इन के अनुरूप कोई पुरुष नहीं, इन्हो ने इन्द्र की बड़ी सहायता की है इनकी एक कन्या गुण केशी नाम है, वह आप के सुमुख नाम पौत्र से व्याहना चाहता है। हे आर्यक! आप इस कार्य में विलंब न कीजिये। यद्यपि सुमुख का पिता नहीं तो भी अधिक गुण और शील रखने के कारण हम इस को अंगीकार करते हैं॥

यह सुनकर आर्यक बोला कि हे ऋषि सत्तम। अभी थोड़ी देर हुई कि मेरे पुत्र को गरुड़ जी खागये हम अभी तक उसका शोक कर रहे हैं. फिर इस काल में हम को सुमुखका विवाह कैसे अच्छा लग सकता है इस में एक और भी बात है वह यह है कि जाते समय गरुड़ जी ने यह भी कहा था कि अगले महीने हम इसके पुत्र सुमुख को खालेंगे सो गरुड़ जी की इस बातसे हमें और भी दुःख है॥

यह सुन कर मातलि बोला कि हमने सुमुख को अपना जमाता बना लिया है इस में कुच्छ भेद नहीं इस लिये सुमुख हमारे साथ स्वर्ग लोक को चले, वहां इन्द्र के सामने इसकी आयु का निरणय होगा, यदि आयु शेष होगी तो गरुड़ के मारने का भी प्रबन्ध किया जायेगा यह कह कर सुमुख और आर्यक सहित नारद और मातलि स्वर्ग में आये और वहां अर्द्धासन पर श्रीविष्णुजी को इन्द्र के समीप बैठे देखा नारद ने कहा कि यही अवसर है आप इन्द्र जी से सब बात कहदो ॥

तब मातलि ने विष्णुजी और इन्द्र को सब वृत्तान्त सुनाया विष्णुजी ने इन्द्र को कहा कि सुमुख को अमृत पिलाकर देवताओं के समान करलो, इन्द्र ने गरुड़ का भारी विक्रम जानकर विष्णुजी से कहा कि आपही इन को अमृत दीजिये, इन्द्र ने कहा कि तुम तीनों लोकों के स्वामी हो, तुम्हारे दिये हुये अमृत को निष्फल कौन कर सकेगा यह सुन कर इन्द्र ने सुमुख को चिरंजीव करदिया परन्तु अमृत न पिलाया तब सुमुख का विवाह हुआ और वह गुणकेशी को लेकर अपने घर को चला गया ॥

साठवां अध्याय

—:-०-:—

गरुड़ का आना और इन्द्र का धर्षण करना

विष्णु जी का उस की सत्ता खींच कर उस का ठीक बल बताना और गरुड़ का क्षमा मांगना ॥

जब यह वृत्तान्त गरुड़ जी ने सुना तो वह शीघ्र इंद्र के पास आये और कहने लगे कि हे इंद्र ! आप ने कैसा अत्याचार किया है कि सुमुख को चिरंजीव कर दिया है, मैं भी बल में आप से कम नहीं, मैंने भी बहुत से दैत्य मारे हैं । मैं आप को भाई सहित अपनी पीठ पर धारण करता हूं। इस लिये आप मुझ को क्षुद्र जान कर मेरा निरादर करते हैं, मैं भी कश्यप का पुत्र हूं और देवता हूं, आपने सर्प को चिरंजीव बना कर मेरी जीविका हरली है, क्या अब मैं निराहार रहूंगा, देखो मैं तीनों लोकों को अपने ऊपर सहज ही उठा सक्ता हूं फिर मेरा गौरव नष्ट करने का यह उपाय आपने क्यों किया है ॥

यह सुन कर श्री विष्णु भगवान बोले कि अरे गरुड़ ! तुम ऐसी बल बढ़ाकी बातें हमारे सामने करते हो ! हम ने तो तुम्हारा गौरव बढ़ाने के लिये तुम को अपना वाहन बनाया है, वास्तव में तुम में इतना बल नहीं, मैं तो अपने बल से तुम को बलवान करता हूं इस से तुम में बल है। यह कह कर विष्णु ने कहा कि अच्छा यह मेरा हाथ तो अपनी पीठ पर उठाओ ॥

ज्योंही विष्णु ने गरुड़ की पीठ पर हाथ रखा तब वह मारे भार के नीचे दब गया और श्री विष्णु जी को नमस्कार कर

के कहने लगा कि हे भगवन् ! मेरे वचन को क्षमा कीजिये, मैंने अज्ञानता से सब कुछ कहा था, तब श्री विष्णु ने गरुड़ को अपने अंगूठे से उठा कर उस का प्रसाद किया और उस का सब गर्व नष्ट किया, परन्तु यदि वह बलवान भी था तो भी उस का सारा बल जाता रहा ॥

इस लिये हे गंधारी के पुत्र ! जब तक तुम पाण्डवों के सामने युद्ध क्षेत्र में नहीं जाते तुम बलवान हो, जब जाओगे तो अवश्य ही पछताओगे यह कृष्ण चंद्र आप की शांति चाहते हैं इस लिए इन के द्वारा कुल की रक्षा करलो, यह सुन कर दुर्योधन ने अपनी जंघा पर हाथ मारा और कहा कि जिस प्रकार ईश्वर ने हम को बनाया है और जैसी बुद्धि उस ने हम को दी है, उसी प्रकार हम वर्तते हैं हम आप की बातों को कैसे सिद्ध करें ॥

इकसठवां अध्याय

—:o:—

अन्य कौरवों का और ऋषियों का दुर्योधन को समझाना, गालव ऋषि का वृत्तांत । विश्वामित्र का गुरु दक्षिणा मांगना ॥

तब भीष्म पितामह और अन्य कौरवों ने भी दुर्योधन को समझाया, फिर नारद जी बोले कि हे दुर्योधन आप को हठ

करना अच्छा नहीं अच्छे लोग हठ नहीं करते, हठ के विषय तुम को गालव ऋषि का वृत्तांत सुनाते हैं। सुनो ॥

एक समय विश्वामित्र जी कौशकी आश्रम में तपस्या करते थे, धर्म भगवान ने उन की परीक्षा लेनी चाही, वह विशिष्ट जी का रुप धारण करके भूख प्यास से दुर्बल हो कर कौशक आश्रम में चले आये, विशवामित्र ने उनको आदर सत्कार से पास बिठाया, और उन के भोजन के लिये खीर लाने को चला गिया, धर्म जी ने उन को इस अभिप्राय से जाते न देखा, इस के पीछे और ऋषियों ने लाकर उनको भोजन दिया, जो वशिष्ट रुप धारी धर्म जी ने खालिया।

जब विश्वामित्र जी खीर बना कर गरम २ वर्तन में लाये तो धर्म जी भोजन कर चुके थे, विश्वा मित्र की खीर को देख कर कहने लगे कि अब तो हम प्रसन्न हैं, इस लिये जाते हैं, अभी आयेंगे, विश्वामित्र जी वर्तन पकड़ कर खड़े हो गये और उसी प्रकार खड़े रहे, बहुत देर तक धर्म जी की प्रतीक्षा की परन्तु वह न आये, विश्वामित्र विचारे उसी दशा में खीर के वर्तन को उठाये हुये खड़े रहे, और योग बल से शरीर को काबू में रखने लगे, न कुछ खाते न पीते इसी प्रकार खड़े रहे, उन के शिष्य गालिव ने इस अवसर में उन की बड़ी सेवा की।

जब कई दिन बीत गये, तब अन्त को धर्म जी ने दर्शन दिये और विश्वा मित्र से खीर का वर्तन ले कर देखा तो खीर वैसे ही गर्मा गर्म वर्तन में पड़ी है, धर्म जी विश्वा मित्र की

भक्ती भाव से बड़े प्रसन्न हुये और कहने लगे कि हे विश्वामित्र ! आज से तू क्षत्रिय पद को छोड़ कर ब्राह्मण पद को प्राप्त हुआ है, यह कह कर धर्म जी चल दिये ॥

गालव ने विश्वमित्र जी की बहुत सेवा की थी इस लिए ऋषि ने कहा कि हे गालव आज से तुम भी स्वतंत्र हुए, अब यथेच्छा घूमो, गालव बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि महाराज ! गुरु को दक्षिणा अवश्य दी जाती है। अब बताईए कि आप को क्या गुरु दक्षिणा लाकर दूं। विश्वामित्र ने कहा कि जाओ मैंने तुम को दक्षिणा छोड़ी, परन्तु गालव ने हठ से बार २ कहा कि नहीं आप दक्षिणा अवश्य मांगें दक्षिणा के बिना विद्या सफल नहीं होती ॥

विश्वामित्र ने कहा कि अच्छा यदि तुम अवश्य ही दक्षिणा देना चाहते हो तो हम को आठ सौ घोड़े जिन का एक कान काला और शेष वर्ण श्वेत हो लादो, यह सुन कर गालव की होश उड़ी और वह चिन्ता में डूब कर विचारने लगा कि मैं अब कहां जाऊं और कहां से इतने धन को लाऊं कोई मित्र ऐसा नहीं जो इतना धन मुझ को लाकर देदे ॥

गालव बहुत काल उस चिन्ता में निमग्न रहा और अपनी प्रतिज्ञा को भंग होती हुई प्रतीत करने लगा तब उस ने सोचा कि अब प्राण त्यागना अच्छा है, इतने में गरुड़ भगवान आये और कहने लगे कि रे गालव मुझे विष्णु जी ने आपके पास भेजा है कि मैं आप की सहायता करूं, आप पूर्व,

पश्चिम, उत्तर दक्षिण, जिस दिशा को जाना चाहें मैं आप को ले जा सकता हूं ॥

बासठवां अध्याय

—:०:—

गरुड़ जी का गालव को पूर्वदिशा में ले जाना, परन्तु घोड़ों का न मिलना, फिर राजा ययाति के हां धन मांगने जाना ॥

तब गरुड़ जी ने गालव को अपनी पीठ पर चढ़ाया और पूर्वदिशा को लेकर बढ़ चला। परन्तु गरुड़ ऐसे वेग से जाता था कि गालव को नीचे ऊपर कुछ दिखाई नहीं देता था। तब गालव ने वैनतेय से कहा कि हे गरुड़जी मुझ को तो कुछ यहां दिखाई नहीं देता. केवल अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। घोड़े प्राप्त करने की कोई आशा नहीं दीख पड़ती इस लिये प्रतिज्ञा भंग होने से मैं प्राण त्यागना ही अच्छा समझता हूं ॥

गरुड़ ने कहा कि हे ऋषि सत्तम दक्षिण दिशा में ऋषभ पर्वत है वहां पर सिद्ध लोग रहते हैं। आप मेरे साथ वहां चलें कदाचित् आप को वहीं धन मिल जाये। गालव ने कहा कि बहुत अच्छा तब गरुड़ जी गालव को लेकर ऋषभ पर्वत

पर पहुंचे और वहां शाण्डिली नाम महा तपस्विनी ब्राह्मणी को देखा। गरुड़ और गालव दोनो प्रणाम कर पूजा करके खड़े हो गये। तत्पश्चात् ब्राह्मणी ने उनको खाने को अन्न दिया और दोनो खाकर सो रहे ॥

कुछ काल के पश्चात् जान पड़ा कि गरुड़जी के पक्ष भ्रष्ट हो गये हैं, गालव जीने यह देख कर बड़ा शोक किया और कहा कि हे गरुड़जी आपने कौन सा घोर मानसी पाप किया है कि जिसके कारण आपकी यह दशा हुई है, गरुड़ ने कहा कि मैने यही विचारा था कि इस ब्राह्मणी को उड़ा कर स्वर्ग में ले चलूं क्योंकि यहां यह विचारी वृथा कष्ट पाती है, तब तपस्विनी से बोले कि हे ब्राह्मणी हमने आपके हित के लिये यह विचार किया था आपने क्यों उलटा समझा इस लिये आप हमारे पाप क्षमा कीजिये ॥

ब्राह्मणी बोली कि हे गरुड़! हम अपनी निन्दा नहीं सुन सकती इस लिये हमको यह वर मिला हुआ है कि जो तुम्हारी निन्दा करेगा वह लोक से भ्रष्ट हो जावेगा, अच्छा अब आप यथा पूर्व हो कर स्वच्छंदया आहार विहार करो ॥

तब गालव जी को लेकर गरुड़ जी वहां से चल पड़े परन्तु कहीं से घोड़े न मिले, तब गरुड़ ने कहा कि हे ऋषिवर और कहीं से घोड़ों का मिलना असम्भव प्रतीत होता है, आप राजा ययाति के पास चलिये, वह बड़ा धर्मात्मा और दानी है वह निस्संदेह आपको घोड़े देकर प्रसन्न करेगा ॥

तब गरुड़ जी गालव को ययाति के पास ले गए और उस के आगे सब वृतान्त सुनाया और यथोक्त प्रकार के आठ सौ घोड़े मांगे ॥

तिरसठवां अध्याय

—:०:—

ययाति का अपनी माधवी नाम कन्या गालव ऋषि को देना कि इस कन्या को बेच कर घोड़े लेलें, गालव का राजा हर्य्यश्व के पास जाना और कन्या को एक पुत्र की उत्पत्ति के लिए उसे देना ॥

यह सुन कर ययाति बोला कि मेरा अहो भाग्य है कि आप सब राजाओं को छोड़ कर केवल मेरे ही पास आये हैं परंतु मैं इस समय धन से क्षीण हुं आप की सहायता नहीं कर सकता, हां मेरी एक कन्या परम सुंदरी है सब राजा लोग उस के लिये प्रार्थना कर चुके हैं, परंतु मैंने किसी को वह कन्या नहीं दी, आप उस को ग्रहण करें और किसी राजा के पास बेच कर अपना कार्य्य सिद्ध करें, गरुड़ और गालव दोनों इस बात को मान गये, राजा ने माधवी को बुला कर उन के सुपुर्द कर दिया, तब गरुड़ जी गालव की आज्ञा

पाकर चल दिये और गालव कन्या को ले कर राजाओं को ढूण्डने लगा ॥

तब इक्ष्वाकुवंशी राजा हर्यश्व के पास पहुंचा और कहने लगा कि हे राजन् ! आपके सन्तान नहीं, मैं आप के पास इस कन्या को बेचना चाहता हूं, यदि इच्छा हो तो मोल देकर इस को अपनी भार्या बना लो और इस में पुत्र उत्पन्न करो, राजा ने पूछा कि बताइये आप क्या मोल लेंगे ? ऋषि बोला कि मैंने एक कानश्याम और सर्वांश्वेत आठ सौ घोड़े लेने हैं, यदि आप देदें तो कन्या को अपनी भार्या बना सक्ते है ॥

राजा ने कहा कि हे ऋषि सत्तम ! घोड़े तो मेरे पास बहुत है परंतु जैसे घोड़े आप मांगते हैं वह तो दो सो ही हैं इस लिए यदि आप दो सौ लेना चाहें तो ले सकते हैं, मैं इस कन्या में केवल एक ही पुत्र उत्पन्न करूंगा, माधवी बोली कि हे ब्राह्मण, मैं ऋषि के वर से दश पुत्र उत्पन्न करके भी कन्या ही रह सकती हूं, तुम राजा से दो सौ घोड़े ले लो जिस से वह एक पुत्र मुझ में उत्पन्न कर ले, शेष घोड़ों के लिए किसी और के पास चले जाना ॥

तब ब्राह्मण ने राजा से कहा कि हे राजन् ! आप दो सौ घोड़ों के बदले इस कन्या में एक पुत्र उत्पन्न करलें, तब राजा ने विधिवत उस कन्या को अपनी भार्या बनाया और उस से एक पुत्र उत्पन्न किया ॥

चौसठवां अध्याय

—:-०-:—

गालव का राजा दिवो दास के पास जाना और माधवी से एक पुत्र उत्पन्न कराके फिर राजा उशीनर के पास जाना ॥

तब गालव राजा के पास आए और कहने लगे कि हे राजा आप का एक पुत्र उत्पन्न होगया है अब घोड़े आप ही पास रखो और कन्या को मुझे दे दो ताकि मैं और घोड़ों का प्रबंध करूं, जब तक शेष घोड़े नहीं मिलते तब तक यह घोड़े आप ही के पास रहेंगे, राजा ने माधवी को बुला कर गालव को सौंप दिया और वह उस को लेकर राजादिवो दास के पास पहुंचा ॥

गालव बोला कि हे राजन! आप की कोई सन्तान नहीं, इस से इस कन्या को ले कर मुझे छः सौ घोड़े जिन का एक कान श्याम हो और शेष वर्ण श्वेत हो दे दो, राजा ने कहा कि हे ब्राह्मण मेरे पास इतने घोड़े नहीं, यदि मुझे एक पुत्र के उत्पन्न करने की आज्ञा दें तो दो सौ घोड़े जो मेरे पास हैं, वह आप ले सकते हैं, गालव ने कहा बहुत अच्छा, तब राजा ने माधवी से विवाह किया और उस से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, गालव फिर आया और माधवी को साथ लेकर राजा उशीनर के पास पहुंचा और उस को भी

पुत्र हीन देख कर माधवी से सन्तानोत्पत्ति के लिए कहा, परंतु उशीनर के पास भी दो सौ से अधिक घोड़े न मिले और उस ने भी एक ही पुत्र उत्पन्न करने का प्रण किया, तब गालव बिचारा यथा पूर्व माधवी को लेकर किसी और राजा के पास चल पड़ा ॥

रास्ते में गरुड़ जी मिले और पूछने लगे कि हे गालव ! अब तो आप का काम बन गया, अब तो प्रसन्न हो ? गालव ने कहा कि प्रसंन क्या हूं, अभी दो सौ की कमी है, गरुड़ ने कहा यह कोई कमी नहीं दो सौ और घोड़े मिलने असम्भव हैं, जानते हो यह भी कैसे मिल गए ? ऋचीक ऋषि ने राजा गाधी की लड़की से विवाह करना चाहा था राजा ने उस को टालने के लिए कहा कि हम को एक सहस्र घोड़े जिन का एक कर्ण शयाम हो और चन्द्रमा के समान शेष वर्ण ही ला दे, फिर हम आप को कन्यादान दे देंगे, ऋचीक जी वरुण के पास गए और वैसे ही एक सहस्र घोड़े ले आए, तव राजा ने अपनी कन्या ऋचीक को दे दी ॥

उस के पीछे राजा ने यज्ञ किया और सब घोड़े ब्राह्मणों को दे दिए, उन ब्राह्मणों से इन राजाओं ने दो दो सौ घोड़ा मोल ले लिया, शेष घोड़े वह ब्राह्मण ला रहे थे कि मार्ग में कोई किसी ने ले लिया और कोई किसी ने, इस लिए अन्य घोड़ों का मिलना असम्भव है ॥

आप इसी माधवी को विश्वामित्र के पास ले जावें और उन से कहें कि छः सौ घोड़े तो मिल गए, दो सौ के लिए इस कन्या को ग्रहण कीजिए, गालव ने वैसा ही किया और

विश्वामित्र जी के पास उस कन्या को लेगया, विश्वामित्र ने कहा कि यदि तू पहिले ही इस कन्या को ले आता तो हम कुल वर्धक चार पुत्र तो इस में उत्पन्न कर लेते, अच्छा अब एक ही सही, यह कह कर उस ने घोड़ों को अपने आश्रम में बंधवा लिया और माधवी को अपनी भार्या बना कर अष्टक नाम एक पुत्र उत्पन्न किया, तब गालव जी अनृण होकर उस कन्या को लेकर उस के पिता राजा ययाति के पास चले गए ॥

पैंसठवां अध्याय

—:०:—

ययाति का माधवी का स्वयंबर रचना, माधवी का तपस्या करने के लिये बन में जाना, राजा ययाति का स्वर्ग में जाना और वहां से गिरना, और फिर अपने दौहित्री के पुण्य के कारण स्वर्ग को प्राप्त करना ॥

जब राजा ययाति ने अपनी कन्या को फिर पाया, तो उसका स्वयंवर रचा, नाना देशों से राजा और गंधर्व लोग आये, परंतु माधवी ने किसी के अपना पति न वरा, तब माधवी अपने पिता से आज्ञा मांग कर बन को चली गई और तपस्या

करने लगी, उसने बहुत से व्रत और उपवास किये और वन के मृगों की सी वृत्ति करने लगी ॥

राजा ययाति ने बड़े २ यज्ञ किये थे जब वह मृतक हुए तो उनका स्वर्ग वास हुआ, उसके दो पुत्र पुरु और यदु पृथ्वी पर राज करते रहे जब ययाति को चिरकाल तक स्वर्गानन्द भोगते हो गया, तो बहुत काल के पीछे उनके मन में विस्मय उत्पन्न हुआ, और वह स्वर्ग वासियों का अपमान करने लगे, तब तो सब ने उसको धिक्कार कहा, और वह नष्ट श्री होकर स्वर्ग से गिराये गये ॥

जिस स्थान पर वह गिरे वहां पर उसके चारों दौहित्र अर्थात् हर्यश्व का पुत्र वासुमना, दिवो दास का पुत्र प्रतर्दन, उशीनर का पुत्र शिवि और विश्वामित्र का पुत्र अष्टक यज्ञ कर रहे थे, वह राज पुत्र ययाति को देख कर पूछने लगे कि आप कौन हैं, ययाति ने सारा हाल कहा। इतने में उसकी तपस्विनी कन्या भी आगई उसने अपने पिता को देख कर पहिचान लिया और प्रणाम कर के कहने लगी कि हे पिता यह आप के चारों दौहित्र हैं, और मैं आप की पुत्रि माधवी हूं तब उन सब ने अपने तप और पुण्य का फल ययाति को दिया, गालव भी वहां आगया और उसने भी ययाति को अपने तप का फल दिया। उसको पाकर ययाति फिर सीधा स्वर्ग को चला गया ॥

यह कह कर नारद जी ने कहा कि हे दुर्योधन अभिमान से ययाति स्वर्ग से गिराया गया था और हठ करने

पर गालव ने भारी कष्ट पाया था आप अभिमान को छोड़दें, और हठ न करें, क्योंकि यह दोनो क्षय का कारण हैं। इस लिये अपने भाई पाण्डवों से शांति करके कुल की पालना करें ॥

छ्यासठवां अध्याय

धृतराष्ट्र का प्रत्युत्तर, श्रीकृष्ण जी का दुर्योधन को समझाना ।

नारद जी का यह वचन सुन कर दुर्योधन ने कुछ उत्तर न दिया, परंतु धृतराष्ट्र ने कहा कि आप जो कुछ कहते हैं, सत्य है, तब श्रीकृष्ण चद्र को कहने लगे कि मै तो आप का वचन मानता हूं, परंतु दुर्योधन मेरा वचन नहीं मानता आप उस को समझाइये, तब श्रीकृष्ण चद्र दुर्योधन से कहने लगे किः ।

हे कुरु सत्तम ! आप पढ़े लिखे, धर्म अर्थ के जानने वाले, उत्तम कुल में उत्पन्न हुये हैं, आप हमारी उत्तम शिक्षा को ग्रहण करें, दुरात्मा, अकुलीन और अज्ञानी लोभ ही ऐसा काम करते हैं जैसा तुम मानते हो, सज्जन लोग धर्म अर्थ के काम करते हैं, असजान विपरीत, हे तात ! तुम अपनी कुल का विचार करो और असजनों के काम छोड़दो, पाण्डव बड़े बलवान और धर्मात्मा हैं, आप उन को छोड़ कर और लोगों की सहायता क्यों चाहते हैं, उन्हीं के

साथ मिल कर अपना राज्य करो और सम्पूर्ण पृथ्वी को भोगो।

देखो उत्तम पुरुष वही काम करते हैं जिसमें धर्म, अर्थ और काम तीनो सिद्ध हों, यदि काम न सिद्ध हो तो धर्म अर्थ ही सा है, परन्तु अर्थ भी न सिद्ध हो तो केवल धर्म को तो कभी छोड़ते ही नहीं। मध्यम पुरुष केवल काम और अर्थ को ही ग्रहण करते हैं और अधम पुरुष तो काम ही को मुख्य रखते हैं। आप अधम पुरुषों का आचार छोड़दो, केवल काम ही की ओर ध्यान न दो, मध्यम पुरुष बनो तब भी तुम्हारे काम और अर्थ दोनो पाण्डवों के सथ ही मेल करने से सिद्ध हो सकते हैं। यह राजा लोग पाण्डवों को जीत नहीं सक्ते, अकेला अर्जुन सब राजाओं को जीत सक्ता है फिर जहां पांचों भाई और उनके सहायक अमित पराक्रमी योधा हों उनके बल का क्या कहना।

हे दुर्योधन! इस महा घोर युद्ध से अपनी और सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करो, उत्तम पुरुष अपने ज्ञाति वालों से बढ़कर दूसरे को नहीं समझते और उन्हीं की शरण छोड़कर दूसरों की शरण कभी नहीं जाते, अपनी कुलका नाश न करो और कुल नाशक नाम से विख्यात होकर संसार में अकीर्ति लाभ न करो अकीर्ति मनुष्य को स्वर्ग से गिरा देती है और इस लोक में भी राज्य श्री को नष्ट करती है, हे राजन! अपने कर्तव्य को समझो और सोच विचार कर काम करो अपने मित्रों को प्रसन्न करो, और शत्रुओं को अपने वश में करो ॥

सतासठवां अध्याय

—:o:—

भीष्मपितामहा, द्रोणाचार्य, विदुर और धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना ॥

तब भीष्म पितामहा ने कहा कि हे दुर्योधन जो कुच्छ भगवान कृष्णचन्द्रजी ने कहा है, मैं उसको यथार्थ समझता हूं। उनके वचन धर्म अर्थ और काम युक्त हैं। आप उनको स्वीकार करें, और दुरात्माजा को छोड़ कर अपने हित की बात करें॥

फिर द्रोणाचार्य ने कहा कि कुछ जो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है, वह बहुत उत्तम है। आप कुल नाशक हो का कुपुरुष और कुमति न बनो, अपने माता पिता को शोक सागर में न डवोवो। जो यह कर्णादि तुम को कुमार्ग पर चलाते हैं इनका कहा न मानो यह समर में कुच्छ भी नहीं कर सक्ते। आप को युद्ध में उलझा कर छोड़ देंगे। जहां श्रीकृष्णजी वर्तमान हैं उसी दल की जय है। दूसरे की नहीं, हमारी बात मान लो नहीं तो पछताना पड़ेगा॥

फिर विदुर जी बोले हे दुष्ट नाथ? मुझे तो तुम्हारे वृद्ध पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारी का शोच है, तुम इन विचारों को इस वृद्ध अवस्था में शोक करते हुओं को भीख मांगने के लिये द्वार द्वार पर न घुमाओ, तुम्हारे जैसा कुल नाशक पापी पुत्र उत्पन्न कर के यह विचारे कुल हीन हो कर

साथ मिल कर अपना राज्य करो और सम्पूर्ण पृथवी को भोगो।

देखो उत्तम पुरुष वही काम करते हैं जिसमें धर्म, अर्थ और काम तीनो सिद्ध हों, यदि काम न सिद्ध हो तो धर्म अर्थ ही सा हि, परन्तु अर्थ भी न सिद्ध हो तो केवल धर्म को तो कभी छोड़ते ही नहीं। मध्यम पुरुप केवल कार्म और अर्थ को ही ग्रहण करते हैं और अधम पुरुप तो काम ही को मुख्य रखते हैं। आप अधम पुरुषों का आचार छोड़दो, केवल काम ही की ओर ध्यान न दो, मध्यम पुरुष बनो तब भी तुम्हारे काम और अर्थ दोनो पाण्डवों के सथ ही मेल करने से सिद्ध हो सकते हैं। यह राजा लोग पाण्डवों को जीत नहीं सक्ते, अकेला अर्जुन सब राजाओं को जीत सक्ता है फिर जहा पांचों भाई और उनके सहायक अमित पाक्रमी योधा हों उनके वल का क्या कहना।

हे दुर्योधन! इस महा घोर युद्ध से अपनी और सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करो, उत्तम पुरुष अपने ज्ञाति वालों से वढ़कर दूसरे को नहीं समझते और उन्हीं की शरण छोड़कर दूसरों की शरण कभी नहीं जाते, अपनी कुलका नाश न करो और कुल नाशक नाम से विख्यात होकर संसार में अकीर्ति लाभ न करो अकीर्ति मनुष्य को स्वर्ग से गिरा देती है और इस लोक में भी राज्य श्रीको नष्ठ करती है, हे राजन! अपने कर्तव्य को समझो और सोच विचार कर काम करो अपने मित्रों को प्रसन्न करो, और शत्रुओं को अपने वश में करो॥

सतासठवां अध्याय

—:o:—

भीष्मपितामहा, द्रोणाचाय, विदुर और धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना ॥

तब भीष्म पितामहा ने कहा कि हे दुर्योधन जो कुच्छ भगवान कृष्णचन्द्रजी ने कहा है, मैं उसको यथार्थ समझता हूं। उनके वचन धर्म अर्थ और काम युक्त हैं। आप उनको स्वीकार करें, और दुरात्माओं को छोड़ कर अपने हित की बात करें ॥

फिर द्रोणाचार्य ने कहा कि कुछ जो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है, वह बहुत उत्तम है। आप कुल नाशक हो कर कुपुरुष और कुमति न बनो, अपने माता पिता को शोक सागर में न डबोवो। जो यह कर्णादि तुम को कुमार्ग पर चलाते हैं इनका कहा न मानो यह समर में कुच्छ भी नहीं कर सके। आप को युद्ध में उलझा कर छोड़ देंगे। जहां श्रीकृष्णजी वर्तमान हैं उसी दल की जय है। दूसरे की नहीं, हमारी बात मान लो नहीं तो पछताना पड़ेगा ॥

फिर विदुर जी बोले हे दुष्ट नाथ ? मुझे तो तुम्हारे वृद्ध पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारी का शोच है, तुम इन बिचारों को इस वृद्ध अवस्था में शोक करते हुओं को भीख मांगने के लिये द्वार द्वार पर न घुमाओ, तुम्हारे जैसा कुल नाशक पापी पुत्र उत्पन्न कर के यह बिचारे कुल हीन हो कर

पत्न हीन पक्षियों के समान शीघ्र ही अनाथ हुआ चाहते हैं हे दुर्योधन ! इस उत्तम कुल को सर्व नाश होने से बचाओ ॥

यह सुन कर धृतराष्ट्र बोले कि हे दुर्योधन ! जो कुच्छ महात्मा कृष्ण चन्द्र ने कहा है, वह सत्य ही है, उस को गा करो । हम कृष्ण भगवान की सहायता से शीघ्र ही अपने इष्ट काम को पावेंगे । इस लिये इन्हीं के साथ हो कर तुम युधिष्टर के पास चले जाओ और सब भारतों का कल्याण करो श्री कृष्ण जी के बीच में आने से हमारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा । भाग्य ही से श्री कृष्ण जी आगये हैं । वह आप का मेल करा देंगे ॥

अठासठवां अध्याय

—:०:—

भीष्म पितामहा और द्रोणाचार्य का दुर्योधन को समझाना और दुर्योधन का सब को प्रत्युत्तर देना ॥

तब धृतराष्ट्र के ऐसे वचन सुन कर भीष्मपितामहा जी और द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को समझाया और कहा कि जब तक पाण्डव अपना अमित पराक्रम नहीं दिखाते तब तक

शान्त हो जाओ तो अच्छा है। जब सब ने बार २ यही कहा तो दुर्योधन श्रीकृष्णचन्द्र की ओर मुख कर के बोला:—

हे कृष्णचन्द्रजी! आप सोच कर बोलें। आप हम को बड़े कटु वचन बोलते हैं, और बार २ निन्दा करते हैं। आप की देखा देखी अन्य राजा लोग भी हमारी निन्दा करते हैं। आपने हमारा बलाबल कुच्छ नहीं देखा केवल पाण्डवों की भक्ति वाद से ही अकस्मात हमारी निन्दा करते हैं: विदुर, राजा, द्रोणाचार्य और पितामहा जी भी हमारी ही निन्दा करते हैं। परन्तु मैं ने तो कोई भी अपराध नहीं किया, न पाण्डवों के साथ किसी प्रकार का अन्याय किया है, मतो नहीं कि क्यों आप लोग हमारे विषय में इतना वृथा वाद करते है॥

पाण्डवों ने आप ही जुआ खेल कर स्त्री समेत सब कुच्छ हार दिया और यदि शकुनि ने जीत लिया तो हमारा क्या दोष है? हम ने और धन दिया परंतु वह भी हार गये। फिर हमारा क्या दोष है? मानते हैं कि वह बड़े भारी योधा हैं। परंतु जब वह सब कुच्छ जुए में हार गये तो हम क्या करें? वह आप ही हम को शत्रु समझ कर विरोध करते हैं, हैं तो बांधव परंतु हम से तो शत्रु वृत्ति ही रखते हैं, न जाने हम ने उन का क्या बिगाड़ा है? वह किस लिए हम को संजय सहित मार डालना चाहते हैं? परंतु हम उन के उग्र कर्म की, न भय की, न कड़े वचन की ही परवाह करते हैं, इंद्र भी चल कर लड़ने आए तो हम कुच्छ नहीं समझते, पाण्डव विचारों की क्या गिनती है॥

हे कृष्ण ! हम क्षात्र धर्म को अच्छी प्रकार जानते हैं, हम को समर में कोई जीत नहीं सकता, यदि संग्राम में अस्त्र से मर जायेंगे, तो सीधे स्वर्ग को ही जायगे, यही हमारा मुख्य धर्म है कि समर में बाणों की सेज पर सोवें, परंतु फिर भी शत्रु के आगे न झुकें, कौन सा ऐसा क्षत्रिय पुत्र है जो जीविका की ओर देख कर भय से किसी को प्रणाम करे, क्षत्रिय में पौरुष अवश्य होना चाहिए वह मर जाय, पर किसी के आगे न झुके, केवल ब्राह्मणों का ही धर्म के लिए प्रणाम करना उचित है, । अन्य लोगों के आगे कभी न झुकना चाहिए यही क्षत्रिय का धर्म है और यही हम मानते हैं ॥

जो राज्य हमारे पिता की आज्ञा से पाण्डवों ने भी इकट्ठा किया है वह भी हमारे जीते जी पाण्डवों को कभी नहीं मिल सक्ता, जब तक धृतराष्ट्र जी जीते हैं, पाण्डवों का और हमारा राज्य लेने का कोई अधिकार नहीं। हम तो भिक्षुओं की भांति मांग कर अन्न खा सकते हैं, स्वाधीन राज्य करने का न उन को अधिकार है न हमको, इस लिये हम तो अभी तक पराधीन हैं , न कुछ दे सक्ते हैं न ले सक्ते हैं, जब तक धृतराष्ट्र जी जीते हैं वह राजा हैं और हम बालक, इस लिये पाण्डवों को राज्य नहीं मिल सक्ता, जब धृतराष्ट्र जी हम को राज्य सौंप देंगे, तो उस समय भी हमारा निश्चय है कि यदि युधिष्ठर सूई की नोक के बराबर पृथ्वी हम से लेना चाहें, तो यावत जीवन कभी न देंगे ॥

उनहत्तरवां अध्याय

—:-०-:—

श्रीकृष्ण चंद्र का क्रोध करके दुर्योधन को समझाना, दुश्शासन का भी युद्ध छोड़ने का पर मर्ष देना, दुर्योधन का उठ कर चले जाना श्रीकृष्ण का कौरवों को और सम्मति देना ॥

तब श्रीकृष्ण जी दुर्योधन को कहने लगे कि अच्छा यदि तुम्हारी इच्छा वीर शय्या पर ही सोने की है तो हमें कोई शंका नहीं, तुम अपना इच्छित फल पाओगे, तुम कहते हो कि हम ने पाण्डवों से कोई अन्याय नहीं किया, हे राजन् तुम्हीं ने उन की राज्य श्री को नसहार कर शकुनि से छल का जुआ खिलाया, क्या धर्मात्मा, निष्कपटी लोग जुये के भेद जानते हैं ? असज्जन लोगों को ही इस का अभ्यास होता है इस से युधिष्ठिर जुए को क्या समझ सक्ते थे ! आप ही की सम्मति और मन्त्र से ऐसा हुआ ॥

फिर आपने अपने भाइयों की पतिव्रता स्त्री को सभा में बुला कर दुर्दशा की यह न्याय है कि अन्याय ? तुम ने लाख का घर बनवा कर माता सहित पांडवों को मार ही डाला था, पाण्डव भाग्य वश बच कर चिर काल तक ब्राह्मणों के घर में बसे, क्या इसी को न्याय कहते हो ॥

तुम ने पाण्डवों को विष खिलाया, सर्पों से कटवाया, बन्धन में डाला और अनेक उपायों से उन को मारना चाहा परन्तु तुम्हारा अर्थ फिर भी सिद्ध न हुआ, क्या यह सब कुच्छ न्याय से ही हुआ, अब तुम उन के पिता का राज्य भी उन को नहीं दिया चाहते, इस से तुम्हारा ऐश्वर्य अवश्य भ्रष्ट होगा क्योंकि जो दूसरे को गिराना चाहता है वह शीघ्र ही आप भ्रष्ट होजाता है ॥

फिर तुम्हारे पिता, विदुर और भीष्म जी भी शान्त होने को कहते हैं परन्तु तुम नहीं मानते, हे राजन्? सुहृदों के बचनों का तिरस्कार करके सुख नहीं मिल सक्ता। यह सुन कर दुश्शासन ने कहा कि हे राजन्! सब कौरव लोग पाण्डवों का पक्ष करते हैं, यदि तुम इन का कहा न मानोगे तो यह निस्संदेह आप को, मुझ को और शकुनि को बान्ध कर पाण्डवों के हवाले कर देंगे और उन को राज्य दे देंगे। दुश्शासन के यह बचन सुन कर दुर्योधन ने लम्बा सांस लिया और क्रुद्ध हो कर सभा से उठ खड़ा हुआ और सब बड़ों के बचन का अनादर कर के सभा से चल पड़ा, उस के उठते ही धृतराष्ट्र के सब पुत्र कर्ण और शकुनि भी चल दिये, यह देख कर भीष्म जी बोले कि क्रोध वश जो पुरुष अर्थ को छोड़ देता है, लोग उस के व्यसन पर हंसते हैं, देखो दुर्योधन उपाय नहीं जानता, परन्तु मिथ्याभिमानी हो कर क्रोध और लोभ के वश में हो गया है, हमारे विचार में निस्संदेह सब क्षत्रियों का काल आन पहुंचा है ॥

तब श्री कृष्ण जी कौरवों से कहने लगे कि हे कुरुसत्तमो आप बल से दुर्योधन को नहीं रोकते, यही आप का अन्याय है, देखो वृद्ध भोज राज को जीते ही उस का अज्ञानी और दुराचारी पुत्र पिता का राज्य हरने से मृत्यु वश हुआ, उग्रसेन के पुत्र कंस को दुराचार के कारण तब जाति वालों ने छोड़ दिया था इस लिए हमने उस को मार डाला और ज्ञाति वालों की प्रसन्नता से उग्रसेन राजा बना। अब सब यादव, अन्धक और वृष्णि वंशी कैसे सुख से दिन काटते हैं? इसी प्रकार देवासुर संग्राम में सब प्राणियों को नाश से बचाने के लिए ब्रह्मा जी ने दैत्यों को पकड़ कर वरुण को दे दिया उस ने उन की समुद्र में रक्षा की, अब वह बड़े आनन्द से वहां वास करते हैं, इस लिए आप लोग दुर्योधन कर्ण, दुश्शासन और शकुनि को बंदिग्रह में डाल कर पांडवों को राज्य देदें॥

सत्तारहवां अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र का गंधारी को बुलाना, गंधारी का दुर्योधन को समझाना, मंत्रियों सहित दुर्योधन का कृष्ण चन्द्र को बंदि गृह में डालने का विचार, सात्यकि का सभा में दुर्योधन की मति प्रकाश करना, दुर्योधन को सब को गाली

फिटकार देना ॥

तब धृतराष्ट्र ने गान्धारी को बुलाया और कहा कि अपने पुत्र को समझाओ, वह धर्म अर्थ की कोई बात नहीं मानता, गांधारी ने फिर दुर्योधन को बुलाया और कहा कि हे भरत श्रेष्ठ! तुम लोभ न करो, पांडवों को आधा राज्य दे दो तुम इस योग्य नहीं हो कि पांडवों से युद्ध कर सको, वह सब जितेंद्रय और शूर बीर हैं, जो पुरुष जितेंद्रय न हो, वह राज्य को प्राप्त नहीं हो सकता ॥

धृतराष्ट्र तुम भी लोभी हो, इसी से ऐसे पुत्र को प्रिय समझते हो, हे दुर्योधन! जो कुच्छ तुम को पिता जी कहते हैं और भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और श्री कृष्ण चन्द्र जी कहते हैं, वही तुम को करना योग्य है, यदि तुम हमारा और अपने बड़ों का कहना मान कर मेल करोगे, तो इस में हमारी भी प्रतिष्ठा होगी, जो राजा अपने मन ही को वैरी समझता है और उस को जीतने का ही प्रयास करता है, वह सब राज और पृथ्वी जीत लेता है ॥

क्रोधी पुरुष को स्वर्ग में भी कोई स्थान नहीं मिलता, इस लिये क्रोध मत करो। जो पुरुष अपने सुहृदों की अर्थ और काम की बातें नहीं सुनता, वह शीघ्र ही अपने शत्रुओं का हर्ष बढ़ाता है। हे तात! युद्ध में कल्याण नहीं, और न ही धर्म और अर्थ, फिर कल्याण कहां से हो, जीत भी सदा नहीं होती क्योंकि वह दैवाधीन है, इस से युद्ध से चित्त को हटाओ। राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य दिया

था, जिस को उन्हों ने बढ़ाया, इसी से आज तुम बेखटके राज्य भोग रहे हो। इस लिये उनके साथ वैर करना उचित नहीं ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य आदि आप का अन्न खाते हैं, यह आप के साथ युद्ध में खड़े तो होंगे, परन्तु पाण्डवों से न लड़ सकेंगे। इस लिये युद्ध को छोड़कर शान्ति करलो ॥

दुर्योधन ने कुछ उत्तर न दिया, परन्तु सभा से उठकर अपने मन्त्रियों के पास चला गया। वहां जा कर वह कर्ण, शकुनि, दुःशासन और अन्य जुआरिये विचारने लगे कि यह कृष्णचन्द्र बड़ा उपद्रवी है "यह धृतराष्ट्र और भीष्म पिता महों से मिल कर हम को बन्दि ग्रह में डाल कर युधिष्ठर को सौंपना चाहता है। इस से अच्छा हो कि हम ही पहिले इसको पकड़ कर बन्धुआ कर लें। यदि यह पकड़ा गया तो पाण्डवों का जीतना कुछ बड़ी बात नहीं, वह निरुद्यम हो कर शीघ्र ही वश में हो जायेंगे, इस लिये धृतराष्ट्र तो बकता रहे कृष्णचन्द्र को पकड़ लो ॥

दुर्योधनादि को यह मति सत्यव्रत सात्यकि जी को भट विदित हो गई। उसने सेना को कहा कि शस्त्र पहिन लो और तैयार रहो, तब वह शीघ्र ही सभा में गया और कृष्ण जी को सब वृत्तान्त सुनाया, उन्हों ने विदुर जी से कहा विदुर जी धृतराष्ट्र से बोले कि हे राजन्। अपने पुत्रों की करतूत सुनलो अब वह परम पूजनीय भगवान् कृष्णचन्द्र जी को बन्धुआ किया

चाहते हैं देखो सात्यकि यह समाचार लाया है अब बताईये क्या करना योग्य है ?

विदुर जी के वचन सुन कर धृतराष्ट्र लज्जित सा हो गया और कहने लगा कि हे तात ! दुर्योधन को फिर किसी प्रकार सभा में लाओ ॥

श्री कृष्ण जी धृतराष्ट्र की ओर देख कर बोले कि हे राजन ! मैं बंधुआ होने से नहीं डरता, मैं तो चाहता हुं कि मुझे आकर दुर्योधन पकड़, ताकि मैं उस को पकड़ कर तुरन्त ही इस पृथ्वी नाशक युद्ध को मिटा दूं, परन्तु क्या करूं सब काम बातों ही बातों में होरहे हैं, मैं कोई निंदत और धर्म विरुद्ध काम करना नहीं चाहता, दुर्योधन को अपनी इच्छानुसार मुझे बन्धुआ बनाने दो, मैं तो यहां ही ठहरा हूं ॥

इतने में विदुर जी दुर्योधन को बुला लाये और उन के मन्त्रि भी साथ ही आये फिर धृतराष्ट्र जी बोले, अरे नीच दुर्योधन ! अरे नीच निर्लज्ज ! अरे पापी ! तू अपनी ढीठाई को कभी नहीं छोड़ता ? तू मेरे घर में कैसा कुलनाशक हुआ है ? जो पाप कर्म तूने और तेरे दुष्ट साथियों ने विचारा है, क्या तू वह करने के सामर्थ है ? ऐसा अयश देने वाला और सज्जनों से निन्दित कर्म तू कैसे कर सकता है ? क्या तू बल से श्री कृष्ण भगवान पुंडरी काक्ष के तुल्य हो सकता है ?

तब विदुर ने श्री कृष्ण जी के गुण वर्णन किये और कहा कि जिस को द्विविद बानर ग्रहण न कर सका, जिस

को असुरों सहित नरकासुर न पकड़ सका, उस को बल से बन्धन में डालना तुम्हारे जैसे मूर्ख ही विचारा करते हैं ॥

इकहत्तरवां अध्याय

—:o:—

सभा की समाप्ती, श्री कृश्न का हस्तिनापुर से चल कर पांडवों के पास आना ॥

तब श्री कृष्ण ने कहा कि हे दुर्योधन ! अब मैं यहां उपस्थित हूं, यदि तुम में सामर्थ है तो मुझ को बन्धुआ करलो, इस से बढ़ कर और कौनसा अच्छा अवसर तुम को मिल सकता है ॥

यह कह कर श्री कृष्ण ज्यूंहीं उठ कर खड़े हुए उन के विशाल नेत्रों के प्रभाव से दुर्योधन कांपने लगा और साहस करता हुआ भी कुच्छ बोल न सका। फिर कृष्ण चन्द्र सभा से निकल कर बाहिर आये, सब कौरव भी उन के साथ २ आए, धृतराष्ट्र ने कहा कि श्री कृष्ण जी आपने देख लिया कि मैंने दुर्योधन को कितना समझाया है, आपके पीछे भी मैं इसी प्रकार कहता रहा हूं, परंतु वह मंद मति मेरी बात नहीं मानता, मैं क्या करूं, आप सारी अवस्था को देख कर मेरे ऊपर कोई शंका न करें, पाण्डवों के साथ कोई पाप करने का मेरा विचार नहीं ॥

तब श्री कृष्ण जी ने कहा कि आप सब लोग जानते हैं, मैंने धर्म और अर्थ की बात कह कर दुर्योधन को समझाया है, यदि वह नहीं मानता तो हमारा दोष नहीं, हमने अपने कर्तव्य का पालन कर दिया है। आप सब लोग हमारे साक्षि हैं, यह कह कर श्री कृष्ण चन्द्र रथ पर सवार हुए और सब के देखते ही चल दिए॥

बहत्तरवां अध्याय

—:०:—

कुंति का राज धर्म पर आरुढ़ होने के लिए युधिष्ट्र को संदेश॥

वहां से चल कर श्री कृष्ण जी कुंति के पास आए और सभा का सब वृत्तांत उस को सुना दिया और पूछने लगे कि यदि कुच्छ आपने कहना हो तो कहदें, मैं आप का संदेशा युधिष्ट्र जी को दे दूंगा॥

कुंति बोली कि मेरी ओर से युधिष्ट्र को कहना कि तुम क्षत्रिय धर्म के विपरीत कर रहे हो, ब्रह्मा जी ने तुम को अपनी भुजाओं से उत्पन्न किया था, कि तुम अपनी भुज बल से जीत कर पृथ्वी का पालन करो, परंतु तुम भिक्षा वृत्ति धारण करके ब्राह्मण धर्म कर रहे हो, इस में तुम्हारा कल्याण न होगा। देखो पूर्वकाल में राजा मुचुकुंद को कुवेर

जी ने यह पृथ्वी यूं ही दे दी थी, परंतु उस ने स्वीकार न की और कहा कि मैं अपनी भुज बल से जीत कर पृथ्वी लेना चाहता हूं ॥

जो राजा क्षत्रिय वृत्ति रख कर राज्य करता है उस की प्रजाओं के धर्म कर्म का एक चौथाई फल इस को प्राप्त होता है और यदि वह आप भी धर्मात्मा हो तो फिर अमृत ही होजाता है, यदि प्रजा को अधर्म के लिए दंड दिया जाए तो वह नीति है, क्योंकि प्रजा इस से धर्म करने लगती है, इस लिए राजा ही सतयुग, द्वापुर, त्रेता और कलियुग का प्रवर्तक होता है, राजा ही काल का कारण होता है, काल राजा का कारण नहीं होता, वह चाहे तो द्वापुर में सतयुग और सतयुग में कलियुग और कलियुग में सतयुग ले आए निरंतर पाप करने वाले राजा को नरक प्राप्त होता है।

न मैंने, न तुम्हारे पिता ने, न आचार्य ने तुम को यह शिक्षा दी है कि तुम अपने क्षत्रिय धर्म को छोड़ कर ब्राह्मण वृत्ति से जीविका को और अपने पितरों को नरक में भेजो, हे महात्माओ! अपने पिता का अंश डूबा हुआ न देखो। उस का उद्धार करो। तुम्हें पुत्र उत्पन्न करके मैं बड़े दुःख को प्राप्त हूं और दूसरों का दिया हुआ अन्न खाकर निर्वाह करती हूं, यदि तुम इसी वृत्ति में रहे, तो तुम्हारे पितर स्वर्ग से गिर कर नरक को प्राप्त होंगे ॥

तिहत्तरवां अध्याय

—:o:—

विदुला और उस के पुत्र का वृत्तांत

जब महायशस्विनी विदुला का पुत्र सिंधुदेश के राजा से हार कर अपने घर आ छुपा तो उस की माता बड़े क्रोध से आकर उस को ताड़ने लगी और कहने लगी कि हे कुपुत्र न तू मेरे गुण रखता है, न अपने पिता के, तू हमारे घर में कैसे आगया ? तुझ पुत्र को पाकर मैं पुत्र वति नहीं रह सकती क्षत्रि पुत्र वह है जो समर में जाकर शत्रुओं से लड़े न कि वह जो घर में स्त्रियों के समान आकर छुप जाये ॥

यह सुन कर विदुला का पुत्र संजय बोला, कि जब मैं युद्ध में मारा गया तो तुम मुझ को न देखोगी और फिर तुम को पृथ्वी का राज्य क्या सुख देगा ? यह सुन कर विदुला बोली कि जो लोग निर्धन होकर यह कहते हैं कि आज क्या खायेंगे, आज क्या पहिनेंगे ? जिन लोगों को यह प्राप्त होते हैं वह तुम्हारे शत्रुओं को प्राप्त हों और विजय लोगों को जो लोक मिलते हैं, वह हमारे सुहृदों को प्राप्त हों, इस से हे पुत्र भृत्य हीन, जीविका हीन, पराये अन्न पर जीने वाले बन कर जीविका मत करो। वरन तुम्हारे दिये हुये अन्न को ब्राह्मण और सुहृद लोग खायें। जो क्षत्रिय यथा शक्ति विक्रम कर के अपना पौरुष नहीं दिखाता, पंडित लोग उस को चोर कहते हैं. शत्रुओं को जीत कर अपने नाम को साथ करो ॥

हार जाने पर जब तुम आप भूखों मरोगे, और तुम्हारी माता और स्त्री भी भूखी होंगी, तो उस समय तुम जाकर क्या करोगे जब तुम्हारे नौकर चाकर तुम को छोड़ कर चले जायेंगे, तो उस समय तुम्हारे जीने का क्या फल होगा? हां यदि तुम इस समय जीने की आशा छोड़ दो तो सब शत्रु तुम्हारे वश में हो जायेंगे यदि यही नपुंसक वृत्ति रखोगे तो सदा दास ही बने रहोगे, इस से मर जाना ही अच्छा है तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हो कर सिन्धु देश की कन्याओं के दास मत बनो। पौरुष करो, जो क्षत्रियों का धर्म है क्षत्रिय लोग नम्र नहीं होते, वह टूट जायें पर झुकते कभी नहीं। ब्राह्मणों का आदर करो, अन्य वर्णों की रक्षा करो, यही तुम्हारा धर्म है ॥

यह सुन कर संजय बोला कि हे माता! तेरा हृदय बहुत कठोर है तुम तो ऐसा कहती हो कि मानो तुम मेरी माता ही नहीं? माता अपने पुत्र को मरने के लिये प्रेरणा कभी नहीं करती। भला यदी मैं मारा भी गया, और तुम को संपूर्ण पृथ्वी का राज्य भी मिल गया, तो फिर क्या?

माता ने कहा, कि हे संजय मेरा हृदय कठोर नहीं। और मैं तुम्हारी ही माता हूं। यदि मैं गधी होती, तो तुम से अनुचित वत्सलता करके तुम को सदा का दुःख दे देती, परन्तु मैं जानती हूं कि तुम्हारा किस बात में हित है। इस लिये मैं तुम को युद्ध के लिये ही उत्तेजित करूंगी। क्षत्रिय लोग

इसी लिये बनाये गये हैं। अमित्रों को वश में करके जो सुख क्षत्रिय लोग पाते हैं वह इन्द्र के भवन में भी नहीं है॥

यह सुन कर पुत्र ने कहा कि न तो हमारे पास धन है, और न ही सहायक हैं, फिर हमारी जय कैसे होगी! माता ने कहा कि धन और सहायकों से हीन हो कर अपने आप का अनादर करना उचित नहीं, न कभी धन सदा रहता है, और न सदा निर्धन ही रहना पड़ता है, इस लिये कर्म को छोड़ना उचित नहीं! कर्म करने से कुच्छ तो आशा बन्ध जाती है? यदि फल न भी मिले तो दोष नहीं, न कर्म करने का तो फल निश्चय ही है कि कुच्छ न मिलेगा, परन्तु कर्म करने पर यह तो सम्भावना होती है कि शायद फल मिल जावे! इस से दतचित हो कर यत्न पूर्वक कर्म करना उचित है। अपने साथियों से प्रीति पूर्वक बर्ताव करो। वह तुम्हारे अच्छे बर्ताव से आकर्षित हो कर तुम्हारे लिये प्राण छोड़ने को भी तैय्यार होंगे। इस प्रकार तुम को स्थान मिलजायगा, और फिर धन की वृद्धि होगी॥

तुम को किसी विपत्ति में भय न करना चाहिये यदि करो भी, तो भी भीतों के समान आचरण न करना चाहिये, धैर्य से काम लो। जिस से तुम्हारे शत्रु तुम को डरा हुआ न जाने।

माता की ऐसी बातों को सुन कर संजय दलेर हो गिया और कहने लगा कि अब मैं निरुद्यम नहीं हूंगा! यह कह कर वह रण में गिया और शत्रुओं को जीत कर सुख को

प्राप्त हुआ। हे श्रीकृष्ण जी आप भी मेरे पुत्रों को यह सब इतिहास सुनाना और कहना कि तुम विदुला के पुत्र की भांति कर्म न छोड़ो, उद्यम और पौरुष करो॥

हे कृष्णजी जब अर्जुन उत्पन्न हुआथा तो आकाश वाणी हुई थी कि यह तुम्हारा पुत्र भीमसेन के साथ शत्रुओं को जीतेगा, उस आकाश वाणी को सच्चा करके दिखाओ, द्रौपदी को कहना कि तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो मुझे आशा है कि तुम मेरे सब पुत्रों के साथ यथा योग्य वर्तनि होगी, यदि तुम को उचित है, देखो द्रौपदी का अनादर जो सभा में हुआ था मैं सहार नहीं सक्ती, मेरे पुत्रों को कहना कि उसका अवशय बदला लेकर मेरे चित्त को शान्तकरो॥

तब श्रीकृष्ण जी प्रणाम करके कुन्ति से विदा हुये कुन्ति ने अशीर्वाद दिया, कृष्णजी हस्तिना पुर से बाहिर गये, उस समय श्रीकृष्ण ने कर्ण को रथ में बुलाया और कूच्छ बातचीत करके विदा किया, तब कौरव लोग विचार करने लगे कि यह राज्य नष्ट हो जायगा दुर्योधन बड़ा मन्द मति है जो श्रीकृष्णजी का कहना नहीं मानता॥

चौहत्तरवां अध्याय

—:-०-:—

भीष्म, द्रोण और अन्य कौरवों का दुर्योधन

को समझाना ॥

जब श्रीकृष्णजी चले गये, तो भीष्म, द्रोणाचार्य और अन्य कौरव दुर्योधन से बातें करने लगे, पहिले भीष्म ने समझाया कि पाण्डवों के साथ युद्ध करना तुम्हारे लिये अच्छा न होगा, तुम इस राज्य को नष्ट करना चाहते हो, फिर द्रोणाचार्य ने कहा कि देखो हम लोगों की आयु तो बीत ही चुकी है; पहिले पठन पाठन में लगे रहे; फिर गृहस्थ भोगा और संसारके ऊंच नीच सब स्थान देखे, अब हम को केवल मरना ही शेष है, बस अब युद्ध कराके मारलो ॥

अभी विराट नगर में अर्जुन ने हम सब कौरवों को जीत लिया था, क्या इस समय जब कि वह ससहायक होगा तो हम सब को जीता छोड़ देगा ? हे दुर्योधन तुम्हारी मति में भेद है ॥

पचहत्तरवां अध्याय

—:o:—

श्री कृष्ण और कर्ण की बात चीत ॥

जब सब कौरव लोग श्री कृष्ण चन्द्र को विदा कर आये तो श्री कृष्ण जी ने कर्ण को अपने पास बुलाया था, धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा कि श्री कृष्ण और कर्ण की वार्तालाप क्या हुई थी ! वह मुझ को सुनाओ ॥

संजय ने कहा कि उस समय कर्ण को बुला कर श्री कृष्ण ने कहा था कि देखो, तुम भी कुन्ति के पुत्र हो और युधिष्ठिर से बड़े हो, इस लिये तुम भी पाण्डु के पुत्र पाण्डव हो और पाण्डवों के बड़े भाई हो। तुम दुर्योधन का साथ छोड़ कर इसी समय हमारे साथ चलो हम तुम्हारा राज्याभिषेक करा देंगे, सब पाण्डव तुम्हारी सेवा करेंगे और तुम को अपना बड़ा भाई समझ कर बड़ी प्रतिष्ठा करेंगे और तुम राज्य के सब सुख पाओगे। अपने भाईयों के साथ यु करना अच्छा नहीं॥

तब कर्ण ने कहा कि मैं सब कुच्छ जानता हूं। मुझे मालूम है कि मैं कुन्ति का पुत्र हूं, परन्तु कुन्ति ने मेरे साथ कैसा अन्याय किया कि मुझ को नदी प्रवाह में छोड़ दिया। यदि सूतों का राजा अधिरथ मुझ को उठा कर अपनी वन्ध्या स्त्री राधा को न देता, तो मैं कहां होता! फिर राधा ने मुझ को पाला, मल मूत्र उठाया और बढ़ाया। उसी ने मेरा विवाह किया, उसी कुल में मेरे पुत्र और पौत्र हुये। उन लोगों को धन और सुख के लोभ से छोड़ कर कहां जासक्ता हूं॥

फिर देखो मेरा ही बल पाकर दुर्योधन ने पाण्डवों से युद्ध करने का विचार किया। मेरा ही द्वन्द्व युद्ध अर्जुन से निश्चय हुआ। मैंने और अर्जुन ने एक दूसरे को मारने की प्रतिज्ञा भी करली है, इन सब बातों को देख कर उत्तम पुरुष अब किस प्रकार अपने पक्ष को छोड़ कर राज्य और धन का लोभ कर के दूसरी ओर चला जाय?

एक बात आप से कहता हूं कि मेरे जन्म की कथा युधिष्ठर से कभी न कहना, यदि वह मुझ को कुन्ति का पुत्र जानेगा तो, वह मेरे जीते जी कभी राज्य ग्रहण न करेगा, क्योंकि वह धर्मात्मा है और सदा ही धर्म पर चलने वाला है, मैंने चौदह वर्ष दुर्योधन के पास राज्य किया है, यदि राज्य मुझ को मिल गया तो मैं फिर दुर्योधन ही को देदूंगा और यह बात बहुत अनुचित है, क्योंकि महात्मा युधिष्ठर ही राजा होने के योग्य है ॥

हे श्रीकृष्ण जी! मैं जानता हूं कि अपने सहायकों के साथ पाण्डव रण को जीतेंगे, क्योंकि आप उन के प्रेरक हैं दुर्योधन के हां शस्त्रयज्ञ होगा और सब कौरवों की बलियें दी जायेंगी, यह राजा लोग मृत्यु के अभिलाषी युद्ध की चाहना करते हैं, और युद्ध के बहुत प्यासे हैं। आप ऐसी प्रेरणा करें कि इन को युद्धामृत मिल जाये, ऐसा न हो कि निराश हो कर यह लोग घरों को लौटें। हे कृष्ण! यही करो कि जिस से सब क्षत्रिय लोग इसी पुण्य भूमि कुरुक्षेत्र में युद्ध करते हुए मरें, और स्वर्ग को पावें, जिस से उनकी कीर्ति प्रलय तक संसार में निश्चल रहे ॥

तब कृष्ण चन्द्र ने कर्ण जी को कहा कि हे कर्ण भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से कहना कि यह शुक्लपक्ष का बड़ा सुन्दर महीना आया है, इस में सब अन्न तैय्यार है, मक्खियें बहुत कम हैं। जल में कीचड़

नहीं दिखाई देता और उस में रस है। न बहुत गर्मी है न जाड़ा इस लिये आज से सातवीं तिथी को अमावस होगी उस का देवता इन्द्र है, आप युद्ध को आरंभ करें। ईन्धन इत्यादि अभी से इकट्ठा करना आरंभ करदें।

तब कर्ण ने कहा कि हे भगवन् मैं चारों ओर उत्पात देखता हूं, जिस से मुझ को दुर्योधन की पराजय ही दिखाई देती है, और सब पृथ्वी का नाश ही जान पड़ता है, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि हे कर्ण! हमारा वचन तुम्हारे हृदय में नहीं टिकता, इस से हमें यही प्रतीत होता है कि पृथवी का अन्त निकट आन पहुंचा है, क्योंकि उस समय अन्याय न्याय के समान जान पड़ता है। तब कर्ण बोला कि हे मुरारि! जो क्षत्रिय रण से बच रहेंगे, वह आप का दर्शन करके परमानन्द को प्राप्त होंगे। यह कह कर और प्रणाम करके कर्ण रथ से उतरे, तब श्रीकृष्ण जी ने सारथी को कहा कि रथ को शीघ्र हांको। सारथी ने वायु के वेग से रथ को चलाया और शीघ्र ही दूर ले गिया।

छिहत्तरवां अध्याय

—:-०-:—

विदुर जी का कुन्ति के पास जाकर शांति न होने पर शोक करना, कुन्ति का गंगा तट

पर कर्ण को बुलाना और कहना कि तु मेरा पुत्र है, तू पाराडवों से वैर मत कर, कर्ण का स्वीकार न करना ॥

तब विदुर जी कुन्ति के पास आये, और कहने लगे कि हम को बड़ा शोक है कि मन्द मति दुर्योधन अपने और सब कौरवों के हित को नहीं मानता। देखो युधिष्ठिर इतने बलवान और सहायकों के साथ भी है, तो भी अभी तक विराट में बैठे २ धर्म ही का चिन्तन करते हैं, और जाति वालों के नाश के भय से आगे नहीं बढ़ते, परन्तु धृतराष्ट्र लोभ में ग्रसन हैं, वह किसी न्याय पर आता ही नहीं, इस से अवश्य नाश होगा मुझे तो शोच करते हुए रात को नींद भी नहीं आती ॥

कुन्ति ने कहा कि निश्चय जाती वालों का नाश होने से और अधिक दुःख क्या होगा, परन्तु अयुद्ध में यश की हानी होती है, क्या द्रोणाचार्य अपने शिष्यों से लड़ना स्वीकार करेंगे? क्या भीष्म जी अपने पौत्रों से प्रेम करना छोड़ देंगे? यह सब दुर्योधन की दुष्टता का फल है, कर्ण का पाराडवों से वैर करना और भी हम को दुःख देता है यह, तो मेरा पुत्र और पाण्डवों का भाई है, यह क्यों उनसे वैर करता है! अच्छा मैं इसको बुलाती हूं ॥

यह कह कर कुंति गंगा तट पर गई और कर्ण को वहां बुलाया, कर्ण ने कहा कि हे देवि! मैं राधा पुत्र और अधिरथ का पुत्र कर्ण हूं, मैं आप को प्रणाम करता हूं, मेरे योग्य

सेवा हो तो कहिये ? कुंति बोली कि तुम सूत के पुत्र नहीं हो न राधा के पुत्र हो तुम कुंति पुत्र और सूर्य के पुत्र हो इस लिए सब से बलवान हो, तुम पाण्डवों से वैर करना छोड़ दो, वह तुम्हारे भाई हैं, अज्ञान से अपने भाइयों को छोड़ कर धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्रों के पीछे न जावो ॥

पूर्वकाल में अर्जुन ने पृथ्वी को जीता था जिस का शासन अब धृतराष्ट्र के पुत्र करते हैं, दुर्योधनादि से इस पृथ्वी को छीन कर अपने भाई पाण्डवों के साथ भोगो, जब यह लोग तुम्हारा और अर्जुन का मिलाप देखेंगे तो आप ही जाकर तुम्हारे पाओं पर गिरेंगे पाण्डवों के साथ तुम्हारा मिलने पर कोई वस्तु असाध्य न रहेगी ॥

जब कर्ण ने कुंति का यह वचन सुना, तो वह सत्यधारी बोला "हे क्षत्रिय की स्त्री कुंति ! मैं तुम्हारी इस बात पर विश्वास नहीं करता, न मैं तुम्हारी आज्ञा को मान कर धर्म से पतित होता हूं, तुम ने मेरे साथ बहुत पाप किया, कि मेरे उत्पन्न होते ही, बाहर फेंक दिया, इस से मेरा यश, कीर्ति और गौरव सब नष्ट होगए, यद्यपि मैं क्षत्रिय उत्पन्न हुआ था परन्तु मेरा कोई भी संस्कार क्षत्रियों का सा न हूआ, तुम ने अपने सुख के लिए सब कांमें किए, परन्तु मेरे साथ ऐसा पाप किया कि शत्रु भी नहीं कर सकता, मेरी जाति भ्रष्ट होगई संस्कार करने के समय तो तुम बोली भी नही और मेरा क्षत्रियों का संस्कार ही न होने दिया, परन्तु अब अपने काम के लिए मुझे पुत्र बनाती हैं ?

" तुम ने न मुझ से माता के समान हित किया और न पुत्र समझ कर दूध पिलाया अब अपने हित के लिये मुझ को समझाती है और अपनी ओर मिलाती है मैं तुम्हारी आज्ञा कभी मान नहीं सक्ता अब तक तो मैं पाण्डवों का भाई नहीं था, परन्तु अब युद्ध के समय पान्डवों का भाई बन गिया हूं ॥

यदि आप का कहा मानूं तो मुझ को क्षत्रिय लोग क्या कहेंगे ॥

यही कि कर्ण भय से पाण्डवों से जा मिला है, धृतराष्ट्र के पुत्रों ने आज तक मेरा पालन पोषण किया है मुझ को सब कामों में साथ रखा और मेरी पूजा की है मैं उन की पूजा को निष्फल कैसे कर सक्ता हूं? मेरे ही बल से तो उन्हों ने युद्ध आरंभ किया है अब यदि मैं ही उन को छोड़ दूं तो उन का मनोरथ कैसे सिद्ध हो! जिन लोगों की आयु भर पालना की जाय, यदि वह समय पर काम न आवें, तो उनके समान कृतघ्न और कौन हो सक्ता है ? इस से मैं अवश्य ही तुम्हारे पुत्रों से लडूंगा ॥

हां मैं प्रतिज्ञा करता हुं कि तेरे पांच पुत्र अवश्य रहेंगे या मैं मर जाऊंगा या अर्जुन, यदि मैं मर गया तो अर्जुन समेत, यदि अर्जुन मर गया तो मेरे समेत, मैं अर्जुन को छोड़ कर और तुम्हारे किसी पुत्र से न लडूंगा और न किसी को मारूंगा, मेरे वश में भी आजायें तो भी छोड़ ही दूंगा, अर्जुन को मार डालने में मैं कृत कृत्य हुं और उस से मारे जाने में कीर्तिमान हुं ॥

यह सुन कर कुंति कांपने लगी और कर्ण प्रणाम करके और आशीर्वाद लेकर चला गया ॥

सतासीवां अध्याय

—:-o-:—

कृष्ण चन्द्र का उपप्लव्य में आना और युधिष्ठर को हस्तिना पुर का समाचार देना ॥

तब कृष्णचन्द्र हस्तिना पुरसे हो कर और अपने निष्फल दूत कार्य को करके उपप्लव्य में पहुंचे, सब पाण्डव उनका समाचार सुनने के लिये उनके पास आये और नमस्कार प्रणामादि कर के यथा विधि पूजा करने लगे, कृष्णचन्द्र जी देर तक बातें करते रहे और पश्चात् अपने भवन को विश्राम करने के लिये चले गये, जब रात हुई तो पाण्डवों ने कृष्णचन्द्र को बुलाया और एकान्त में बैठ कर सम्मत करने लगे, कृष्णचन्द्र ने कहा कि हमने कौरवों को धर्म अर्थ युक्त वचन कहे हैं परन्तु दुर्योधन ने हमारी बात नहीं मानी, फिर भीष्म पितामह ने कहा द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी ने भी समझाया पर दुर्योधन ने किसी का कहना नहीं माना, तब युधिष्ठर ने कहा कि हे भगवन्, भीष्म ने क्या कहा, श्री कृष्ण जी बोले कि हे युधिष्ठर भीष्म जी ने दुर्योधन को कहा कि कुल के हित की बात करो, देखो पहिले शान्तनु का मैं ही पुत्र था,

उन्हों ने अकेले पुत्र को तुच्छ समझ कर और पुत्र की अभिलाषा की, हमने बड़े यत्न से अपने पिता का सत्यवति से विवाह किया और उस के हित के लिए आप राज्य को छोड़ा और यहां नहीं किन्तु सारी आयु ब्रह्मचर्य करने की प्रतिज्ञा की फिर हमारी माता सत्यवति से विचित्र वीर्य उत्पन्न हुये और यद्यपि हम से छोटे थे, पर हमारी प्रतिज्ञा के अनुसार वही राजा हुये। विचित्र वीर्य बहुत भोग विलास करने के कारण क्षय रोग से ग्रस्त हुये और थोड़े ही काल में मर गये ! तब लोगों ने मुझ को राजा होने के लिए कहा और माता सत्यवति ने भी मुझे बहुत बार कहा परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा कैसे छोड़ देता ? मैंने राज न लिया परन्तु महार्षि व्यास से प्रार्थना करके विचित्र वीर्य की स्त्रियों को पुत्रवति किया जिस से कि धृतराष्ट्र और पाण्डु उत्पन्न हुए ॥

यद्यपि धृतरष्ट्र सब से बड़े थे, परन्तु अंग हीन होने के कारण वह राजा न हुये फिर जब पाण्डु ही राजा बने तो पाण्डव उन के पुत्र राज्य पाने के अधिकारी हैं ! इस लिये हे तात् ! कलह न करो पाण्डवों का राज्य उन को देदो, हम तुम को और पाण्डवों को एक जैसा जानते हैं ॥

फिर द्रोणाचार्य जी बोले कि देखो जब अंगहीन होने के कारण धृतराष्ट्र को राज्य न मिला और पाण्डु ही राजा हुये तो कुछ काल राज्य कर के पाण्डु धृतराष्ट्र को राज्य सौंप आप बनों को घूमने चले गये, उस समय विदुर जी धृतराष्ट्र की शूद्रा के समान सेवा करते थे, कोष का इकट्ठा करना, भृत्यों को देखना

पालना यह सब विदुर जी ही करते रहे, युद्ध का सब कामसन्धि विग्रह करना यह भीष्म जी के हाथ में रहा धृतराष्ट्र तो केवल सिंहासन पर ही विराजमान थे तब से हम भीष्म जी से दिया हुआ अन्न खाते हैं, हम उसी की इच्छा रखते हैं, आप से और धन लेने की कोई इच्छा नहीं, इस लिए जिधर भीष्म रहेगा, द्रोण भी उधर ही रहेंगे, इस लिए पाण्डवों को आधा राज्य दे दो, हम तुम्हारे और उन के आचार्य हैं वह हमारे और तुम्हारे दोनों के स्वामि हैं हम को अर्जुन और अश्वत्थामा में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता, बहुत कहने से क्या, जहां धर्म है वहां ही जय है॥

विदुर जी ने बहुत भय दिखा कर समझाया, फिर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे दुर्योधन! मेरा वचन मानो, इस में तुम्हारा कल्याण होगा; कौरववंश में सब से प्रथम सोम प्रजापति हुए उन की छटी पीढ़ी में नहुष के पुत्र राजा ययाति हुए, उस का सब से बड़ा लड़का यदु हुआ और सब से छोटा पुरु जिन से हमारा वंश चला, यदु बड़ा अहंकारी और बलवान था, इस से उस को राज्य न मिला, पुरु पिता की आज्ञा मानने वाला था, इस लिए राज्य का अधिकारी हुआ, इस लिए जो पुत्र पिता की आज्ञा मानने वाला होता है, वही राज्य का अधिकारी होता है, चाहे वह बड़ा हो चाहे वह छोटा हो॥

इसी प्रकार हमारे पिता के पितामहा प्रताप के तीन

पुत्र थे, सब से बड़े देवापि, उस से छोटे बाह्लिक* और सब से छोटे हमारे पितामह शन्तनु. देवापि बड़े धर्मात्मा और पिता की आज्ञा मानने वाले थे, परन्तु कुष्ठ रोग से ग्रस्त होने के कारण लोगों ने उन को राजा बनाना स्वीकार न किया यद्यपि सब अभिषेक की सामग्रि प्रस्तुत थी और राजा भी देवापि ही को पसन्द करते थे परन्तु लोगों के सामने वह कुच्छ न कर सके, बाह्लिक* अपने पिता का राज्य छोड़ कर अपने भाईयों से विदा हो अपने मामा के हां जो पुत्र हीन था चला गया और उस को वहीं राज्य मिल गया, इस लिए हमारे पितामह शन्तनु जी, यद्यपि सब से छोटे थे राजा होगए इसी प्रकार हम को भी अङ्गहीन होने के कारण ब्राह्मणों ने राज्य अभिषेक न किया और पाण्डु राजा हुए इस लिए यह राज्य पाण्डु के पुत्रों का है हमारा नहीं है, दुर्योधन तुम अराजा के पुत्र हो इस से तुम अराजा ही रहोगे इस लिए लोभ करके पराया धन हरने का विचार छोड़ दो ॥

*इसी बाह्लिक के नाम से तुर्किस्तान में बलख नगर आज तक बसता है ॥

अठहरारवां अध्याय

—:o:—

कृष्णचन्द्र का कहना कि अब कौरव अपनी सेना लेकर कुरुक्षेत्र में गये हैं अब तुम भी अपनी सेना के विभाग करो और सेनापति बना कर कुरुक्षेत्र में युद्ध करने चलो, पांडवों का सेनापति बनाना ॥

श्रीकृष्ण ने कहा कि जब सबने दुर्योधन इस को प्रकार कठोर बचन कहे, तो वह उठकर सभा से बाहर चला गया उसके साथी राजा भी साथ ही चले गये। तब उसने आज्ञा दी कि आज पुष्य नक्षत्र है, आप युद्ध करने के लिये कुरुक्षेत्र को चलो। इसलिये वह काल प्रेरित राजा लोग कुरुक्षेत्र को चले गये, हैं भीष्म उनकी सेना के सेनापति नियत हुए हैं। हे राजन्! आप सब प्रकार से योग्य हैं, [illegible] आप की इच्छा हो करो। हमने तो बड़ा यत्न किया था कि आप को सौभ्रात बना रहे, परन्तु क्या [illegible], साम, दाम और भेद तो निष्फल हुए हैं, अब दण्ड केवल शेष है, आप दण्ड से काम ले सक्ते हैं ॥

यह सुनकर युधिष्ठिर ने सब भाईयों को आज्ञा दी कि सेना के विभाग शीघ्र करो [illegible] सेनापति स्थापन करके कुरुक्षेत्र को चलो और विचार [illegible] सात अक्षौहिणी सेना के सेना पति रहे, वह यह [illegible]

(१) द्रुपद (२) विराट (३) धृष्टद्युम्न (४) शिखंडी (५) सात्यकि (६) चेकितान (७) भीमसेन। परन्तु इन के ऊपर सब सेना का पाते होना चहिये। उसके लिये आप सोचें कि कौन हो ?

तब सहदेव ने कहा कि मेरे विचार में मत्स्यनरेश विराट हमारे सेनापति हों क्योंकि वह बड़े पराक्रमी वेद शास्त्र के जानने वाले, धनुर्विद्या में निपुण और हमारे प्रिय संबन्धि हैं। नकुल ने कहा कि मेरे विचार में द्रुपद हो क्योंकि वह आज तक हमारे दुःख में दुःखी और सुख में सुखी रहे हैं। भीष्म और द्रोणाचार्य दोनों के सखा हैं और उनके स्वभाव को अच्छी प्रकार जानते हैं। अर्जुन ने कहा कि धृष्टद्युम्न हों तो अच्छा है। वह शस्त्र विद्या में भी अपराजित और हमारे बहुत ही हितकारी हैं। भीम ने कहा कि भीष्म को शिखंडी के बिना कोई नहीं मार सक्ता इस लिये शिखंडी सेनापति होना चाहिये ! युधिष्ठिर ने कहा कि अच्छा श्रीकृष्णजी से पूछो इनकी क्या मति है, और यह किस को सेनापति के योग्य समझते हैं ॥

यह सुन कर श्रीकृष्ण जी बोले कि मैं भी अर्जुन के साथ एक मति हूं, और धृष्टद्युम्न ही को सेना पति बनाना अच्छा समझता हूं। यह सुनते ही योधाओं ने धृष्टद्युम्न के जयकारे बुलाये और हर्ष से बड़ा भारी नाद किया। तब सब योधा अपने २ अस्त्र शस्त्र संभाल कर चल पड़े, आगे २ भीमसेन, नकुल और सहदेव चले। फिर अभिमन्यु और द्रौपदी

के सब पुत्र । फिर धृष्टद्युम्न और पांचाल देश का प्रभद्रक राज कुमार इन के बीच में श्री मान् धर्म पुत्र युधिष्ठर ।

इस के पीछे खाने पीने की वस्तुओं के छकड़े और तम्बू कनातें वाहन, और सेवक लोग. कई भार उठाने वाले कई घोड़ों के सेवक कहार और नाई वारी २ अपनी २ टोलिया बना कर चल पड़े ! वैद्य और घाव सीने वाले मनुष्य पृथक २ रथों पर बैठ कर चल पड़े, द्रौपदी उसी स्थान में दास दासियों सहित छोड़ी गई, उस की रक्षा के लिये सेना स्थापित की गई ! इस प्रकार पाण्डव लोग अपनी सेना ले कर कुरुक्षेत्र को चल पड़े ॥

पांचों केकय देश के राजा, धृष्टद्युम्न, श्रेणी मान, वसुदान, शिखण्डी यह युधिष्ठर जी के संरक्षक नियत हुये । आधी सेना में राजा विराट, द्रुपद के अन्य पुत्र, सोम दत्ति, सुशर्मा, कुन्त भोजन और धृष्टद्युम्न के सब पुत्र चले ॥

कुरुक्षेत्र में पहुंच कर सब सेना को रहने सहने के सामान बना दिये, खान पान की रसोईयां और क्रीड़ा स्थान बनाये, एक स्थान पर केवल अस्त्र शस्त्र ही रख दिये एक बड़ा सुन्दर पानी का स्रोत बनाया और सब पदार्थ अपने २ स्थान पर रख दिये गये ॥

उन्नासीवां अध्याय

—:०;—

दुर्योधन का सेना का विभाग करना और कुरुक्षेत्र में पहुंचना ॥

जब श्री कृष्ण चन्द्र हस्तिना पुर से चले आये और दुर्योधन ने यह जाना कि पाण्डवों की सेना कुरुक्षेत्र में आगई तो उस ने कर्ण को बुला कर कह दिया कि आप लोग सेना को तय्यार करें और कुरुक्षेत्र को चलें, सब राजा लोग भी अपनी अपनी सेना ले कर चलें, यह सुन कर कर्ण ने सब सेना को तैय्यार किया रथों में सब प्रकार के सामान और अस्त्र शस्त्र रखा दिये ॥

एक २ रथ के संग दश २ हाथी थे, सौ घोड़े और एक सहस्र प्यादे, कुच्छ २ रथों के साथ, पचास २ हाथी पांच २ सहस्र घोड़े और ३५००० प्यादे थे । इस प्रकार दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिनी सेना बटी हुई थी, पचपन योधाओं की एक पत्ति होती है, तीन पत्ति का एक गुल्म और तीन गुल्म का एक गण होता है, दुर्योधन की सेना में कई गण थे, दुर्योधन ने अपनी सेना के ग्यारह सेना पति बनाये, उन के नाम यह हैं :—शल्य, जयद्रथ, द्रोण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, दक्षिण, शकुनी, भूरिश्रवा, और वाह्लिक ॥

अस्सीवां अध्याय

—:०:—

भीष्म का सेना पति पद पर अभिषेक होना

तब दुर्योधन सब के सामने हाथ जोड़कर भीष्म पितामह जी से बोले कि हे कुरु सतम, सेना का विभाग तो हमने किया परन्तु मुख्य सेनापति का होना अवश्यक है, बिना सेनापति के सब लोग अपनी २ मनमानी करेंगे, देखो पूर्व काल में हैहय वंश के राजा पर कुश वंश के ब्राह्मण वैश्य और शूद्र लोग बड़ा दल बना कर चढ़ आये और लड़ने लगे, क्षत्रि लोग थोड़े थे परंतु तीनों वर्ण के शत्रु बहुत थे तो भी क्षत्रि लोग जीत गये

तब ब्राह्मणों ने उनकी जीत का कारण पूछा, क्षत्रियो ने कहा कि आपके हां तो कई ब्राह्मण महात्मा जो जिसके जी में आता है करते हैं, परन्तु हमारा एकही सेना पति है हम उसी के कहने पर चलते हैं, तब ब्राह्मणों ने एक वीर ब्राह्मण को अपना सेनापति बनाया और क्षत्रियों से लड़ कर जीत गये। इसलिये मेरे विचार में आप हमारे सेनापति होने के योग्य हैं॥

भीष्म जी बोले कि हे दुर्योधन! हम अपसे सहायता की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, इस लिये आपका सेनापति होना स्वीकार करते हैं, परन्तु मैं अर्जुन को छोड़कर और किसी पाण्डव से युद्ध नहीं करूंगा और न ही किसी पाण्डव को मारूंगा, हां उनकी सेना के बहुत से योधा प्रतिदिन मार दिया करूंगा,

अर्जुन भी सामने होकर हम से युद्ध नहीं करेगा क्योंकि वह हमारे गौरव का आदर करता है, यदि हम को पहिले ही पांडवों ने मार डाला तो वह दूसरी बात है परन्तु यदि हम कुच्छ काल जीते रहे तो उनकी सारी सेना मार डालेंगे ॥

एक बात की और प्रतिज्ञा करते हैं वह यह है कि चाहे पहिले कर्ण लड़े चाहे हम, वह हमसे सदैव द्वेष रखता है, इस लिये दोनो मिलकर कभी न लड़ेंगे, यह सुनकर कर्ण बोला कि हे राजन् ! मैं भीष्म जी के जीते कभी युद्ध नहीं करूंगा जब यह मर जायेंगे तो अर्जुन से लड़ूंगा ॥

तब दुर्योधन ने हवन यज्ञ किया और भीष्म का सेनापति पद पर अभिषेक कराया । कहते हैं कि उस समय ऐसे उत्पात होने लगे कि आकाश से रुधिर की वर्षा होने लगी, भीष्म जी को सेनापति बनाकर गयारह अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधन जी कुरुक्षेत्र की पुण्य भूमि को पांडवों के साथ युद्ध करने की इच्छा से चल पड़े ॥

इक्यासीवां अध्याय

युधिष्ठर का भाइयों सहित युद्ध सभा में विचार करना, बलभद्र और रुक्मणि का आना

और सहायता करने के लिये कहना, परन्तु अर्जुन का उस की सहायता की अभिलाषा न करना, रुकमी का लौट कर चले जाना ॥

जब पांडवों ने भीष्म जी का अभिषेक सुना तो इकट्ठे हो कर सम्मत करने लगे, युधिष्ठर ने सब भाइयों को कहा कि शस्त्र पहिन कर अपने अपने स्थानों पर टिके रहो और अपने २ सेनापतियों का कहा मानो, अर्जुन को धृष्टद्युम्न के ऊपर के पद पर रखा गया और श्री कृष्ण उस के प्रेरिक हुए ॥

उस समय बलदेव जी आए, उन के साथ बहुत से यादव वंशी थे, युधिष्ठर ने सब का यथोचित सत्कार किया, तब बलदेव जी बोले कि हे युधिष्ठर हम ने कृष्ण चन्द्र को बार २ यही कहा है कि सम्बंधियों में सम वृत्ति रखो, पाण्डवों और कौरवों की एक जैसी सहायता करेंगे, परन्तु यह हमारा बचन नहीं मानते और अर्जुन ही के साथ रहते हैं, इस लिए विजय निश्चित आप को ही होगी, गदा युद्ध में अर्जुन और दुर्योधन दोनों मेरे शिष्य हैं, इस लिए अब हम सरस्वति के तीर तीर्थ स्नान करने जाते हैं ॥

बलदेव जी के चले जाने पर दक्षिण देश का राजा भीष्मक जी का पुत्र हिरण्य रोम वा रुक्मी आया, माहेंद्र नाम धनुष उस के हाथ में था और वह बड़ा प्रतापवान योधा था ॥

जिस समय कृष्ण चन्द्र रुक्मणी को अपने पिता के पास से हर कर ले आये थे तो रुक्मणी ने प्रण किया था कि मैं कृष्ण चन्द्र को मारे बिना इस नगर को लौट कर न आऊंगा ! वह बड़ी भारी सेना ले कर गया परन्तु कृष्णचन्द्र से हार गया ! फिर रुक्मणी कुण्डिन पुर को न लौटा उस ने एक और नगर भोजकट बसाया और उसी को अपनी राजधानी बनाया ॥

वही रुक्मणी इस समय पाण्डवों के पास आया ! एक अक्षौहणी सेना उस के पास थी । वह आ कर अर्जुन से कहने लगा कि हे अर्जुन ! युद्ध से मत डरो मैं तुम्हारी सहायता को आया हूं ! मेरे समान बल में कोई पुरुष यहां नहीं है ! इस लिये जितना भाग सेना का मुझ को दोगे मैं उस को मार डालूंगा ! आप कोई भय न करो !

जो २ राजा उस युद्ध सभा में थे रुक्मणी की इस बात पर हंसने लगे, परन्तु अर्जुन ने कहा कि हे महाराज ! आप हमारे पूज्य हैं । देखो मैं कुरु कुल में उत्पन्न हुआ और पाण्डू का पुत्र हूं । द्रोण मेरे गुरु हैं, और श्री कृष्ण चन्द्र मेरे सहायक हैं और तिस पर यह गांडीव धनुष मेरे हाथ में है ! भला मुझ को किस शत्रु का डर हो सक्ता है ?

मैं ने घोष यात्रा में अकेले ही गन्धर्व जीते, खांडव वन में देवता दानव जीते ! फिर निवात कवच दैत्य जीते और विराट नगर में सब कौरव जीते ! उस समय कौन आप

जैसा बलवान पुरुष मेरा सहायक था ? इस लिये मैं तो कह नहीं सकता कि मैं युद्ध से डरता हूं ! कौरव क्या इन्द्र भी मुझ से लड़ने आवें तो यह न कहूंगा कि मैं युद्ध से डरता हूं ! इस लिये मुझ को सहायता की अवश्यका नहीं आप की इच्छा हो तो जाइये, इच्छा हो तो यहीं टिके रहिये ॥

फिर रुक्मी दुर्योधन के पास गया, परन्तु वहां से भी यही उत्तर मिला, फिर तो विचारा सीधा घर को चला गया ॥

ब्यासी का अध्याय

—:०:—

धृतराष्ट्र का संजय को अपने पास बुलाके कहना कि मुझ को युद्ध का समाचार देते रहना, दुर्योधन का पाण्डवों को युद्ध का निमन्त्रण देना ॥

राजा धृतराष्ट्र ने अपने सारथी संजय को पास बुला कर कि हे संजय ! अब सेना की निवेश तो हो गया, इसके पश्चात् का मुहूर्त २ का वृत्तान्त आप मुझे देते रहें और मेरे पास बैठे रहें । शोक है कि मैं युद्ध के दोषों को देखता भी हूं परन्तु उन को दूर नहीं कर सक्ता ! इस लिये जो होनहार है वही होगी ॥

संजय बोला कि महाराज ! इस में दुर्योधन का क्या दोष है । भाग्य वश अथवा पूर्व जन्म के कर्म के फल से अथवा ईश्वर की आज्ञा से मनुष्य शुभ अशुभ कर्मों को करता है इस लिये एकाग्रचित होकर आने वाले अनर्थ को सुनो ॥

जब पाण्डवों ने अपनी सेना कुरुक्षेत्र में लाकर स्थापित कर दी तो महाराज दुर्योधन भी अपनी सेना को लेकर उसी स्थल को गये और निकट ही सेना का निवेश कराया, फिर अपने मुख्य मन्त्रियों को बुलाकर युद्ध सभा की, और उलूक को बुलाकर पाण्डवों को यह सन्देशा भेजाः—

हे उलूक ! तुम चन्द्र वंशी श्रीकृष्ण और पाण्डवों के पास जाओ, कृष्णचन्द्रको कहो कि जिस युद्ध को चिरकाल से आप विचारते थे, वह युद्ध आपहुंचा है, अब आप की मन मानी बात होगी । अर्जुन से कहना कि श्रीकृष्ण की सहायता से तुम कहते थे कि मैं कौरवों के बीच में जाकर गर्जूंगा वह समय आपहुंचा है । अपनी प्रतिज्ञाओं का विचार करो और शूरवीरों की भांति युद्ध करो विराट नगर में तो तुम नपुंसक बन कर रहे, साढ़ी भी पहिनी, वेणी भी बनाई, लड़कियों के साथ भी नाचे, युद्ध नाच घर नहीं होते । अपनी वीरता की बकवास तो बहुत करते रहे हो, पर आज शौर्य दिखाये बिन कुच्छ न बनेगा आओ रण भूमि में आकर युद्ध करो और प्रतिज्ञाओं को पूरा करो ॥

युधिष्ठिर को कहना कि हे वैडाल व्रत दुष्टात्मन् ! तुम को अपने तो धर्म राज कहा करते थे अब तुम्हारा धर्म कहां गिया? केकय वंशियों और श्री कृष्ण चन्द्र की सहायता पाकर अब जगत का नाश करने को उद्यत हुये हो, जब प्रह्लाद का राज्य देवताओं ने हरा लिया था, तो उस ने कहा था कि हे देवतो! तुम धर्म ध्वजी हो। मुंह से तो धर्म की बहुत गप्पें हांकते हो, पर बगले की भान्ति मछली को नहीं छोड़ते, नारद जी ने हमारे पिता को एक बिल्ली का दृष्टान्त दिया था जो गंगा तीर पर देर तक तपस्या करती रही और लोगों को कहने लगी कि मैंने हिंसाचर काल से हिंसा छोड़ रखी है ॥

जब बहुत से पक्षि और चूहे उस पर विश्वास करने लगे तो वह शनैः २ एक २ कर के गुप्त ही उन पक्षियों को खाने लगी यहां तक कि उस ने सब पक्षि खा डाले, जब मूढ़ पक्षियों को उस धर्मात्मा बिल्ली का यह हाल मालूम हुआ, तो सब के सब अपने २ स्थानों को भाग गए इस लिए, हे वैडाल व्रतो! धर्म की आड़ में अधर्म करना तुम्हारे लिए उचित नहीं, अपने ज्ञाति वालों के संग वैडाल वृत्ति न करो, तुम्हारा इन्द्रियों को वश में करना केवल दिखावे के कारण था ॥

हे युधिष्ठिर! छल से क्षत्र धर्म करने लगे हो, आओ बाहु के बल से पृथ्वी लो, इधर उधर क्या करते हो, पृथ्वी को पाकर ब्राह्मणों को दान दो, बहुत दिनों से तुम्हारी मां क्लेश पाती है, उस के आंसू पूंछो, हम से पांच ग्रामों की प्रार्थना

करते थे. पर हम ने वह भी न दिए, हम ने तो तुम्हारा बहुत ही अनादर किया है, उस ही का स्मरण करके युद्ध करो, तुम ने कहा था कि मैं शान्त होजाने और युद्ध करने के लिए तैयार हूं, हे राजन! वह युद्ध का समय आगया है ॥

श्री कृष्ण को कहना कि हम जानते हैं कि तुम छल कपट के बहुत से रूप धार कर लोगों को मोह लेते हो तुम्हारे इन्द्र जाल का फंदा यहां कुच्छ काम न देगा तुम ने पाण्डवों को राज्य दिलाने के लिये प्रतिज्ञा की है अब वीर बन कर पराक्रम दिखाओ और पाण्डवों को राज्य ले दो, हम जानते हैं कि अकस्मात तुम्हारा पौरुष जगत में प्रसिद्ध हो गया है परन्तु जो तुम को शूर मानते हैं वह पुरुष चिन्ह रखने वाले नपुंसक हैं आओ तो हमें भी अपनी शूरता का विश्वास कराओ ॥

फिर भीमसेन को बोलना की तुम तो बल्लव हो जो विराट नगर में रोटी पकाया करते थे युद्ध को रसोई घर न समझना यहां तुम्हारी दाल न गलेगी, हम ने ही वह दिन तुम को दिखाया था अब अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करो और दुशासन के रुधिर को पियो ॥

नकुल को कहना कि अब सोवो मत, द्रौपदी के क्लेशों को स्मरण करके युद्ध करो, सहदेव को कहना कि सब क्लेशों का स्मरण करके युद्ध करे ॥

राजा विराट और द्रुपद को कहना कि जबसे ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पन्न की है तब से आज तक न ऐसे भृत्य और न ही ऐसे स्वामी

भी मिले हो तुमलोग युधिष्ठिर को अच्छे भृत्य मिले हो धृष्टद्युम्न को कहना कि अब तुम्हारा समय आगया है, द्रोणाचार्य से लड़के अपना फल पाओ, शखंडी को कहना कि तुम मत डरो तुम्हारे जैसी स्त्री को भीष्म जी नहीं मारेंगे हम युद्ध में तुम्हारा पौरुष अवश्य देखेंगे ॥

फिर अर्जुन को कहना कि तुम्हारी बकवास तो बहुत सुनी पर अब अवश्य पौरुष दिखाओ। हम ने तुम को राज्य से निकाल दिया, तुम को दास बनाया, बनवास में भेजा, तुम्हारी स्त्री को सभा में बालों से घसीट कर ले आये। ऐसी बातें देख कर जो तो मनुष्य होता है वह तो क्रोध करता है, परन्तु तुम तो नपुंसकों की भान्ति हमारे जूते तले ही रहे। जिधर हमने धकेला उधर ही चले गये। असहन शीलता ही पौरुष है। आओ अपने क्रोध, बल, वीर्य, ज्ञान, योग और अस्त्र में शीघ्रता दिखाओ ॥

देखो हम ने जान बूझ कर तुम्हारा राज्य हरा, मनुष्य सदा नहीं जीतता, कभी हारता भी है, केवल परमेश्वर ही जगत को सदा अपने वश में कर सकता है, तेरह वर्ष बीत गए और तुम लोग ऐसे ही रोते रहे, हम ने तुम को दुःख भी दिया और राज्य भी लिया और अब फिर तुम्हारा सर्वनाश करके राज्य भोगेंगे। हे अर्जुन! तुम्हारा बल कहां था जब तुम दास हुये थे, तुम को द्रौपदी ने आकर छुड़ाया, हम तो तुम्हारा श्राद्ध-पिंड कर चुके हैं अब तुम कहां से जीते हो ॥

देखो यह कुरुक्षेत्र की भूमि कीचड़ से रहित है, यहां सड़क अच्छी बनी हुई हैं, तुम्हारे घोड़े अच्छे चल सकते हैं और हृष्ट पुष्ट भी हैं इस से कृष्ण को साथ लो और प्रातःकाल युद्ध करो, कूएँ के मेंडक की भांति तुम कौरव राज्य को नहीं जानते, न कौरव सेना को, केवल बकना ही जानते हो, यदि बकने ही से सब काम सिद्ध हों तो लोक में सब लोग सिद्धार्थ हो जायें, क्योंकि इस में न हींग लगे न फटकड़ी ॥

तिरासीवां अध्याय

—:०:—

उलूक का पाण्डवों की सेना में आकर दुर्योधन का सन्देशा देना और पांडवों का प्रत्युत्तर देना ॥

तब उलूक पांडवों के पास आया और विधि पूर्वक प्रणाम कर के महाराज युधिष्ठिर से कहने लगा कि हे महाराज! मैं दुर्योधन का भेजा हुआ दूत हूं और जो उस ने आप के लिये संदेशा भेजा है, उस को देने आया हूं, जो वचन मैं आप से कहूंगा वह बड़े कठोर होंगे, परन्तु राज दूत होने के कारण कहने ही पड़ते हैं इस लिये आप मेरे अनुचित शब्दों को भी क्षमा कीजिये और आज्ञा दीजिये कि मैं उन को सुना दूं।

मिराज युधिष्ठर बोले कि हे उलूक तुम अवध्य हो, दुर्योधन : वचन हम को सुनाओ, तुमको कोई कुच्छ नहीं कहेगा ॥

तब उलूक ने यथातथ्य दुर्योधन के वचन सुनाये, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव मारे रोष के दान्त पीसने लगे और नेत्र उन के लाल होगए, सब राजा लोग भी क्रोध में आगए परन्तु युधिष्ठर ने सब को धीर्य दी और कहा कि दूत सब प्रकार से अवध्य हैं, यह इस का दोष नहीं है तब कृष्णचन्द्र ने कहा कि दुर्योधन को कह दो कि प्रातःकाल जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा, हमने आप के वचन सुन लिये हैं और आप का मत ग्रहण करते हैं ॥

फिर अर्जुन सब राजाओं से बोला कि आप लोगों ने विचारा है कि इस का क्या उत्तर दिया जाय? मेरे विचार में तो यही है कि हम नपुंसकता की इधर उधर की बकवास करना नहीं चाहते, प्रातःकाल को हमारा उत्तर हमारा गांडीव धनुष देगा, राजा लोग इस उत्तर पर बड़े प्रसन्न हुए ॥

फिर भीमसेन ने उलूक को कहा कि जब दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अन्य लोगों की प्रशंसा की, तो अपने बल के विषय में क्या कहा? क्या वह औरों की छाछ पर मूछें मण्डवा रहा है? उस को कहना कि भीमसेन तुम्हारे चूतड़ तोड़ने की और दुशासन का रुधिर पीने की प्रतिज्ञा पूरी करेगा, तुम भीष्म के भरोसे पर मत रहो, तुम समझते हो कि पांडव दयावान हैं और अपने वृद्ध पितामहा को छोड़ देंगे, नहीं! नहीं! हम सब से पहिले भीष्म जी को मारेंगे, जो केवल

सहायकों से बल पाकर लड़ना चाहता है वह अधम क्षत्रिय होता है तुम में जो अपनी बड़ाई, बुद्धिमत्ता, पराक्रमता, शौर्य और राज्य का घमंड है यह भीमसेन ही गदा से फोड़ कर निकालेंगे, अब घबराओ मत समय बहुत निकट आगया है॥

इस के पश्चात् सब पांडवों ने और धृष्टद्युम्न शिखंडी आदि ने भी यथोचित उत्तर दिए और फिर उलूक को विदा किया। उलूक ने सब वृत्तांत जूं का तूं आकर सुना दिया, फिर दुर्योधन ने सब सेना को आज्ञा भेज दी कि सूर्योदय से पूर्व ही सब लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत होजायें॥

चौरासीवां अध्याय

—:-०-:—

धृष्टद्युम्न का सेना विभाग करना, भीष्म का अपनी सेना के महारथों के नाम लेना, भीष्म और कर्ण का आपस में विवाद॥

तब युधिष्ठर ने महा सेना पति धृष्टद्युम्न को आज्ञा दी कि सेना का यथोचित विभाग करके सब वीरों को प्रस्तुत होने की आज्ञा दें, क्योंकि प्रातःकाल ही युद्ध का आरम्भ होगा, धृष्टद्युम्न ने सब सेना पति नियत किए और प्रातःकाल से पहिले ही रण भूमि में जाकर उपस्थित होगए॥

धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि जब पाण्डवों न भीष्म के मारने की प्रतिज्ञा करली तो भीष्म को मरा ही समझो, अच्छा फिर बताओ कि दुर्योधन ने इस के पीछे क्या किया, संजय ने कहा कि दुर्योधन ने भीष्मजी को सेना पति बनाकर हाथ जोड़ कर कहा कि हे पितामह, अब अपनी और शत्रु की सेना का बल अबल देखलो, फिर भीष्म जीने सब रथियों, महा रथियों को क्रम से गिना, फिर अश्वत्थामा का नाम लिया और कहा कि यह है तो महारथी और दोनो सेनाओं में इनके समान कोई योधा भी नहीं, परन्तु इन में एक दोष है, वह यह है कि इन को प्राण बहुत पियारे हैं, यह सदा आयु बल की ही कामना करते रहते हैं ॥

सामर्थ तो इन में ऐसी है कि देवताओं की सेना को भी जीत लें और पहाड़ों को भी फोड़ डालें परन्तु दोष केवल यही है, इनके पिता यद्यपि वृद्ध हैं, परन्तु ज्वान वीरो से श्रेष्ठ हैं, अस्त्र विद्या में सब क्षत्रियों के गुरु हैं, परन्तु वह अर्जुन को अपने पुत्र अश्वत्थामा से भी अधिक प्रिय समझते हैं, इस लिये उसको नहीं मारेंगे॥

परन्तु यह तुम्हारा मन्त्रि कर्ण जो तुमको सदा युद्ध के लिये प्रेरणा करता रहता है, केवल बकना ही जानता है, इसको लड़ना भिड़ना कुछ नहीं आतायह न रथी ही है न महारथी, पहिले तो इसके कुण्डल और कवच थे परन्तु अब वह भी जाते रहे अब केवल गर्व और अभिमान ही रहा गया है, इस लिये

यदि चाहो तो इसको अर्द्ध रथ गिणलो, जब यह अर्जुन के सामने जायेगा तो तुरन्त मारा जायेगा ॥

यह सुन कर द्रोणाचार्य बोला कि भीष्म जी आप सत्य कहते हैं, इतनी बेर हमने देखा परन्तु कर्ण कहीं नहीं जीता सदा भागता ही रहा है । यह अधर्थ से अधिक नहीं गिना जा सक्ता ॥

यह सुन कर क्रोध से लाल हो कर कर्ण बोला कि भीष्म जी आप सदा हमारी निन्दा ही करते हैं । यदि आप मुझ को अर्द्ध रथक कहेंगे तो और लोग भी अर्ध रथ ही कहेंगे देखो अभी द्रोणाचार्य जी ने ऐसा ही कहा है परन्तु राजा यह नहीं जानते कि आप उन के अहित की बात करके पाण्डवों की प्रिय करना चाहते हैं । पाण्डवों से आप का अधिक स्नेह है, इस से आप उनकी सदा प्रशंसा करते हैं और हमारी सदा निन्दा । आप का तात्पर्य यह है, कि कौरव सेना में वह विभेद हो जाय और पांडव हम को जीत जायें ॥

हे दुर्योधन ! इस दुष्ट भाव भीष्म को त्यागो, तभी तुम्हारी जय होगी यह सेना का विभेद करते हैं, यदि सेना भिन्न हो गई, तो फिर उस को इकट्ठा करना कठिन होगा ! हमारे समान कौन पौरुष रखता है ? यह भीष्म विचारे रथों को क्या जानें ? कहा घमसान की लड़ाई, और कहां भीष्म जी जिन के जरावस्था के कारण सब अङ्ग भी ढीले हो

गये हैं, अब तो मिथ्याभिमान ही उन में शेष है ? अपने समय में यह भी वीर योधा होंगे, परन्तु अब यह क्या कर सकते हैं, इनका मत तो केवल हम से वैर करना ही है। शास्त्र में लिखा है कि वृद्धों के वचन मानने योग्य हैं, परन्तु अति वृद्धों के वचन बालकों के समान होते हैं, इस लिये मैं ही अकेला पांडवों की सेना को मारूंगा, परन्तु यश तो भीष्म का ही होगा, क्योंकि आप ने इनको महा सेना पति बनाया है ! इस लिये मेरी प्रतिज्ञा है कि जब तक भीष्म जीता है, तब तक मैं युद्ध न करूंगा ? इन के मरने पर शत्रु के महारथों से लड़ूंगा ॥

यह सुन कर भीष्म ने कहा कि अरे सूत पुत्र ! इस समय हम पर बड़ा सोच विचार का समय आगया है, नहीं तो कभी मुझ वृद्ध से जीता न बचता, और तेरा सारा छोकरा पन अभी निकाल देता। तेरे ही कारण कौरवों पर यह घोर आपत्ति आई है; इस लिये यदि कुच्छ बन सके तो इसके मिटाने का यत्न कर ॥

यह देख कर दुर्योधन बोला कि हे पितामह ! आप मेरी ओर देखें। यह बड़ा भारी कार्य आ पड़ा है। आप हमारे कल्याण की चिन्ता कीजिये क्योंकि आप दोनों ने ही हमारे हित का भार अपने ऊपर लिया है। अच्छा अब पाण्डवों की सेना के महारथों का नाम लीजिये ॥

पचासीवां अध्याय

—:-०-:—

भीष्म का पाण्डवों के रथियों का नाम लेना, और शिखण्डी से न लड़ने की प्रतिज्ञा करना दुर्योधन का इसका कारण पूछना, भीष्म का शिखण्डी का पूर्व वृत्तान्त वर्णन करना ॥

तब भीष्म ने पांडवों के रथों, अतिरथों और अर्धरथों के नाम लिये और कहा कि शिखंडी के साथ मैं कभी युद्ध न करूंगा । भीष्म ने कहा कि यह बड़ा लम्बाचौड़ा वृत्तान्त है पर मैं तुम को सुनाता हूं । सुनो । जब जगतविख्यात महाराज शन्तनु जी स्वर्ग वास हुए, तो मैंने अपने छोटे भाई चित्रांगद को राज्य पर बिठाया, कुच्छ काल के पश्चात् वह भी मर गये, फिर मैंने सब से छोटे विचित्रवीर्य अपने भाई को राज्य पर बिठाया ॥

जब विचित्र वीर्य जुवान हुआ, तो मैंने उसके विवाह की चिन्ता की मैंने सुना कि काशी के राजा की तीन कन्याओं का स्वयम्बर है और सब राजा लोग वहां जारहे हैं मैं भी वहां पहुंचा । स्वयम्बर का नियम केवल यही था कि जो राजा सब से बलवान हो और युद्ध में सब को जीते वह उन तीनों कन्याओं को लेजाये, मैंने कन्याओं को पकड़ कर रथ

पर चढ़ा लिया और राजाओं को कहा कि जो कोई हम से स्पर्द्धा करता हो, वह हमारे साथ युद्ध करले ॥

बहुत से राजा झुंझला कर हाथ पाओं मारते हुये मेरी ओर दौड़े और युद्ध करने लगे परन्तु मैंने सब को हरा दिया और मार २ कर अधमुआ कर दिया। फिर तो मुझे रोकने वाला कोई नहीं था, मैं कन्याओं को रथ पर चढ़ा कर घर ले आया! जब मैं उन कन्याओं का विवाह विचित्र वीर्य से करने लगा, तो सब से बड़ी अम्बा बोली कि हे राजन्! आप बड़े धर्मज्ञ हैं, इस से मेरी बात सुन कर जो उचित हो कीजीये॥

मैं ने दिल से शाल्व राज को अपना पति बनाया हुआ है इस लिये मैं पर स्त्री हूं, आप मुझ को ग्रहण न कीजिये, मैं ने अपनी माता सत्य वति से सम्मत किया और अम्बा को शाल्व राज के पास भेज दिया, जब अम्बा शाल्व के पास पहुंची और उस को अपना अभीप्राय जताने लगी तो शाल्व ने कहा कि तुम पर पुरुष के हां हो आई हो, इस लिये पर पुरुष से दूषित हो इस लिये मैं पर स्त्री को अंगीकार नहीं करूंगा। अम्बा ने बहुतेरा समझाया परन्तु शाल्व ने उस को अपनी भार्या न बनाया ॥

तब विचारी रोती पीटती अम्बा सोचने लगी कि मैं अब क्या करूं, न तो मैं भीष्म के पास ही रही और न शाल्व ने मुझ को अंगीकार किया! यदि मैं पिता के घर को जाऊं तो वहां भी मेरा निरादर होगा, इस लिए मैं वहां भी

नहीं जा सकती ! अब किया करूं ! इस प्रकार रो ी और शोच करती हुई अम्बा तपो वन को चली गई और वहां जा कर तपस्या करने लगी ॥

उस सुकुमारी कन्या को तपो वन में व्रत करती को देख कर ऋषि लोग आए और कहने लगे कि हे कन्या ! तुम्हारे इस व्रत का कारण किया है ? तुम तो राजा की बेटी प्रतीत होती हो, जाओ राज भवनों में वास करो तप से तुम्हारा किया प्रयोजन है ? तुम्हारे रूप और यौवन को देख कर कदाचित् कोई तपस्वी तुम पर मोहित होजाये, या कोई राजा ही आकर तुम को दुख दे, इस से तुम्हारा यहां पर रहना ठीक नहीं ॥

कन्या ने कहा कि हे मुनिवरो ! मेरी सहायता करो, मैं बहुत दुखी होकर आप की शरण में आई हु, तब मुनियों ने उस का सब वृत्तांत सुना। इतने में राजा होत्रवाहन आगए उन्हों ने उस कन्या को वहां आने का कारण पूछा, ऋषियों ने यथातथ्य सब कुछ सुनाया और कहा कि हे राजन् ! आप इस कन्या की रक्षा कीजिये, होत्रवाहन सब वृत्तान्त सुन कर शोकातुर होगया और कहने लगा कि यह कन्या मेरी कन्या की कन्या है और इस लिए मेरी दौहित्री है, तब उस ने कहा कि हे अंबे तुम मेरे घर में चलो वह भी तुम्हारा ही घर है, मैं तुम्हारे दुख को निवृत करूंगा, अब तुम यह बताओ कि तुम क्या चाहती हो ? किया तुम शाल्व के पास रहना चाहती हो अथवा भीष्म के पास रहना उचित समझती हो ॥

अंबा बोली कि हे राजन्! मैंने आप को यथातथ्य अपने दुख का वृत्तांत सुना दिया है, अब आप ही बिचारो कि मुझ को दुःख किधर से पहुंचा, दोष तो मेरे पिता का भी है कि जिस ने मेरा स्वयंवर रचा और मेरा मन शाल्व के लिये होने पर भी मुझे यूंही भीष्म जी को दे दिया परंतू भीष्म यदि मुझ को वहां से न लाता तो मेरी यह दशा न होती। इस लिए भीष्म का अपराध अधिक है, राजा शाल्व तो शंका करते हैं और उन की शंका को कारण भी है इस लिए आप जो कुच्छ करने के योग्य समझते हैं कीजिए॥

यह सुन कर होत्रवाहन बोला, कि अच्छा परशुराम जी मेरे सखा हैं, वह भीष्म को समझा बुझा लेंगे, और यदि वह न मानेगा तो उस को पाडवों से मरवा कर तेरा दुःख निवृत करेंगे इतने में अकृत व्रण ऋषि जो परशु राम के बड़े सखा थे वहां आगये, उन को देख कर सब ऋषि उठ खड़े हूये! राजा होत्रवाहन ने अकृत व्रण से पूछा कि परशु राम जी आज कल कहां हैं मैं उन को मिलना चाहता हूं?

ऋषि ने उत्तर दिया कि वह वहीं महेन्द्र पर्वत पर अपने आश्रम में रहते हैं। अभी कल ही आप को याद कर रहे थे और बड़ी शलाघा पूर्वक कहते थे कि होत्रवाहन हमारे बड़े सखा, मित्र और सुहृद हैं! वह कल प्रातः काल यहां आयेंगे और आप से मिलेंगे? राजा ने कहा कि बहुत

अच्छा तब यहीं ठहरते हैं। तब अकृत व्रण ने पुछा, परशु राम से क्या कार्य है। राजा ने अपनी दौहित्री का हाल सुनाया और कहा कि परशु राम जी की सहायता से हम यह काम किया चाहते हैं! अकृत व्रण बोले कि आप का विचार बहुत ठीक है। परशु राम जी इस कार्य को शीघ्र ही कर डालेंगे॥

वह रात तो बीत गई प्रातःकाल ही परशुराम जी भी आ गये और उस रोती बिलकती कन्या को देख कर उसके दुःख का हेतु पूछने लगे। राजा ने सब हाल सुन कर कहा कि महाराज! अब आप की सहायता की अवश्यकता है। आप इस कन्या के दुःख को दूर कर सकते हैं॥

छयासीवां अध्याय

—:o:—

परशुराम जी का कन्या को पूछना कि तू क्या चाहती है और फिर उसका कार्य सिद्ध करने के लिये उपाय सोचना॥

यह सुन कर परशुराम जी बोले कि हे राज कन्या, यदि तुम भीष्म जी के समीप जाना चाहो तो हम तुम को भेज देंगे, यदि वह हमारा वचन न मानेंगे, तो हम उन को मन्त्र द्वारा भस्म कर देंगे, यदि तुम शल्व को पति बनाना चाहो,

नवासीवां अध्याय

—:-०:—

शिखण्डी की उत्पत्ति का वर्णन, पहिले उस का कन्या होना और कन्या रूप में ही राजा दर्शाण के पुत्री से विवाह होना, दर्शाण का उस को कन्या जान कर क्रोध करना और सेना लेकर द्रुपद पर चढ़ाई करना । शिखण्डी का स्त्री से पुरुष हो जाना ॥

इस [illegible] राजा द्रुपद ने पुत्र की कामना से शिवजी की उपासना की तब शिवजी प्रसन्न हुये तो राजा को वर मांगने के [illegible] कहा । राजा ने कहा कि हम को कन्या की इच्छा नहीं [illegible] घर में पुत्र हो और वह भीष्म को मारने वाला हो शिवजी [illegible] कहा कि तुम ने पहिले कन्या का नाम लिया है इस से तुम्हारे [illegible] कन्या ही उत्पन्न होगी, परन्तु वह फिर पुरुष हो जायगी [illegible] भीष्म का वध भी उसी से होगा राजा ने फिर प्रार्थना की परंतु शिवजी ने यही कहा कि हमारा वचन अन्यथा नहीं हो सकता ॥

तब [illegible] द्रुपद के घर कन्या उत्पन्न हुई परंतु रानी ने यह सोच कर कि यह पुरुष तो हो ही जायगा इस लिये पुत्र ही [illegible] किया उस के सब संस्कार [illegible]

अच्छा
...ओं के कर्म भी सिखाये गये परन्तु साथ ... पुरुषों के योग्य धनुर्विद्या भी सिखाई गई। कुछ काल ... जब कन्या जुवान हुई तो द्रुपद ने उस का विवाह दशार्ण देश के राजा हिरण्य वर्म्मा की पुत्री से कर दिया, ... वह कन्या जिस का नाम शिखंडी था, अभी तक कन्या रही पुत्र न हुई ॥

अब तो शिखण्डी का भेद खुल गया, ... । वर्म्मा को पता लग गया कि राजा द्रुपद ने छल ... उस की कन्या अपनी कन्या से विवाह दी है। हिरण्य वर्म्मा को बहुत क्रोध आया और उस ने कहला भेजा कि राजा द्रुपद ने मेरे साथ जो धोका किया है मैं उस का बदला उस को मार कर निकालूंगा। उस ने मेरी कन्या को ... कन्या से बियाहा है ॥

तब राजा को बड़ी चिन्ता हुई और ... दशार्ण से प्रार्थना की कि आप को यह समाचार ... है, मेरी कन्या नहीं वरन पुत्र ही है परन्तु यह बात ... कहां रह सकी थी। हिरण्य वर्मा और भी क्रोधित हु... ...ना लेकर द्रुपद पर चढ़ आया। दशार्ण के इस प्रका... करने को उद्यत जान कर द्रुपद को बड़ी चिन्ता हुई ... अपने नगर की रक्षा के लिये सब सामग्री इकट्ठी कर ... ब्राह्मणों और देवताओं का पूजन करने लगा ॥

शिखण्डी यह देख कर बहुत दुखित ... और तपस्या ...ने को बन में चली गई। वहां जाकर ... स्थूणा कर्ण

यक्ष का संतन किया, यक्ष बोला कि आप का क्या मनोरथ है मुझे बताइए मैं उस को पूरा करूंगा? शिखण्डी बोली कि मेरा मनोरथ बड़ा कठिन है यदि आप कर सकते हों तो मैं कह सकती हूं यक्ष बोला कि मैं अवश्य ही करूंगा आप कहिए ॥

तब शिखण्डी ने अपना सारा वृत्तान्त सुनाया और कहा कि यदि मैं पुरुष होजाऊं तो मेरे पिता का छुटकारा है, अन्यथा नहीं, यक्ष ने कहा कि मैं इस काम को कर तो सकता हूं परंतु इस से मुझे दुख होगा, अच्छा मैंने तुम से प्रण किया है, इस लिए तुम मेरा पुरुषत्व लेलो और अपना स्त्रीभाव मुझ को दे दो, जब तुम्हारा काम होजाए तो फिर तुम ने अपना स्त्रीत्व लेकर चले जाना, शिखण्डी ने यह बात स्वीकार की और स्थूणाकर्ण का पुरुषत्व पाकर और पुरुष बन कर घर को चला आया ॥

राजा द्रुपद उसको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ इतने में दशार्ण पति हिरण्य वर्म्म भी सेनादल जो द्रुपद की राज धानी से बहुत ही निकट था पहुंच गया और वहां सेना को निवेश करा कर उस ने दूत भेजा कि द्रुपद को हमारे आने का समाचार दो, और कहो कि तुमने हमारे साथ धोका किया है, इस लिये अब हम से साथ युद्ध करो, अब तो शिखण्डी पुरुष हो गिया था, द्रुपद राज यज्ञ सेन ने कहला भेजा कि महाराज आप हमारे समधि हैं यह समाचार आप को किसी ने झूठ ही दे दिया है, शिखण्डी

मेरा पुत्र है कन्या नहीं, आप उस की सब प्रका[illegible] परीक्षा करलें ॥

जब दशार्ण ने शिखण्डी की परीक्षा [illegible] उस को पुरुष पाया फिर तो उस का क्रोध शान्ति में बदल गया और वह द्रुपद से हाथ जोड़ कर क्षमा मांगने लगा [illegible] ने अपने समधि का बहुत सत्कार किया और उस से आदर [illegible] पाकर उस को यथोचित रीति से विदा किया ॥

इधर अब स्थूणा कर्ण स्त्री होकर घर [illegible] था तो कुवेर जी आए, स्थूणा कर्ण के स्थान को देख [illegible] बड़े प्रसन्न हूए परंतु स्थूणा कर्ण उन को मिलने न आया, [illegible] निरादर देख कर कुवेर को बड़ा क्रोध आया और पूछने ल[illegible] कि स्थूणा कर्ण बड़ा घमण्डी होगया है कि हम को अपने [illegible] पर आए हुए देख कर भी यहां हमे मिलने नहीं आता, लोगों ने कहा कि महाराज ! वह आज कल स्त्रीरूप हो[illegible] आप क संमुख आने से लज्जा करता है ॥

यह सुन कर कुवेर को क्रोध आया और [illegible] लगे कि स्थूणा कर्ण को पकड़ कर यहां ले आओ, जब स्थू[illegible] कर्ण वहां आया तो कुवेर ने उन क स्त्री हो जाने का कारण [illegible], स्थूणा [illegible]र्ण ने लाज्जित होकर सब हाल सुनाया इस [illegible] कुवेर को [illegible]र भी क्रोध आया और कहने लगा कि तुम [illegible] तो ब्रह्मा [illegible] सृष्टि को ही उलट दिया, उस से तू अब [illegible] बना रहो

यह सुन कर दूसरे यक्षों ने प्रार्थना की कि महाराज ! इस शाप की कुच्छ अवधि होनी चाहिये, क्योंकि स्थूणा कर्ण को इस से महा क्लेश होगा, कुबेर ने दया करके कहा कि अच्छा जब तक शिखण्डी न मरे तब तक यह स्त्री ही रहे, यह कह कर कुबेर जी अपने धाम को चले गए ॥

जब दशार्ण अपने देश को चले गए तो शिखण्डी स्थूणा कर्ण के पास आया और कहने लगा कि महात्मन् ! आप की कृपा से मेरा कार्य तो होगया अब आप अपना रूप धारण करें और मेरा मुझ को दें, स्थूणा कर्ण ने कहा कि जाओ शिखण्डी तुम्हारी परारब्ध बड़ी बलवान थी, अब हम तुम्हारा स्त्रीभाव छोड़ नहीं सकते, तुम पुरुष ही रहोगे और मैं स्त्री, तुम्हारे पीछे कुबेर जी ने आकर मुझ को यह शाप दिया है अच्छा यह तुम्हारा दोष नहीं, ऐसा ही परारब्ध से होना था ॥

तब शिखण्डी प्रसन्न होकर घर को आया और अपने माता पिता से सब हाल [illegible] या वह सुन कर वह बड़े प्रसन्न हुए और उन का सब दुख जाता रहा ॥

यह कह कर भीष्म बोले कि हे दुर्योधन इस प्रकार शिखण्डी [illegible] से पुरुष हुआ परन्तु जन्म से तो वह स्त्री [illegible] है इस लिये मैं उस पर बाण नहीं चला सकता। उस को [illegible]ने से मेरी प्रतिज्ञा नष्ट हो जाती है। मैं स्त्री पर कभी बा[illegible] नहीं

चलाऊंगा, यह काशीराज की कन्या है जिस ने मेरे मारने के लिये पुरुष का जन्म लिया है। तुम मेरी प्रतिज्ञा जानते हो कि यदि स्त्री वा स्त्री पूर्वक मनुष्य, अथवा स्त्री नाम वाला मनुष्य वा स्त्री रूप धारण किया हुआ मनुष्य मेरे सामने आवे तो मैं उस पर कभी बाण नहीं चलाऊंगा॥

नब्बेवां अध्याय

—:o:—

सेनाओं के बल अबल का विचार

तब दुर्योधन ने भीष्मपितामहाजी से पूछा कि हे पिता महा! आप कितने काल में पाण्डवों की सेना को मार सक्ते हैं। भीष्म ने कहा कि मैं सूर्योदय से लेकर दोपहिर तक दशसहस्र मनुष्य मार सक्ता हूं और एक सहस्र हाथी इस लिये पाण्डवों की सारी सेना को मारने में मुझे एक मास लगेगा, द्रोणाचार्य ने कहा कि मैं भी एक मास में ही मार सक्ता हूं, कृपाचार्य बोले कि मैं दो मास में मार सक्ता हूं, कर्ण ने कहा कि मैं पांच दिन में सब को मार सक्ता हूं॥

भीष्म ने कहा अरे मूर्ख! बैठ जा कुच्छ सोच समझ भी बोला कर!

यह सुन कर कर्ण चुप हो गया, पाण्डवों को भी इस सूचना पहुंच गई, युधिष्ठर ने अर्जुन से पूछा कि

भला तुम बताओ, कितने दिनों में तुम इस सेना को मार लोगे, अर्जुन ने कहा कि जो मेरे पास अस्त्र हैं वह न तो भीष्म के पास हैं, न अश्वत्थामा और द्रोणाचार्य के ही पास हैं, कर्ण उनको कैसे जान सक्ता है। मैं श्रीकृष्णजी के साथ होकर क्षण भर में सब को मार सक्ता हूं॥

इक्यानबेवां अध्याय

दोनों सेनाओं का युद्ध के लिये रण भूमि में आना॥

प्रातः काल हुई, घोड़े हाथी अपनी अपनी सेना सहित रण भूमि में आये, राजा लोगों ने नाना प्रकार के वस्त्र आभूषण धारण किये हुये थे। सब रणभूमी में आकर इकट्ठे हुये। हाथी घोड़ा की चिंघाड़ और योधाओं की ललकार से सारा मैदान भर गिया, इधर से भीष्म पितामहा अपने सेना पति [illegible] पर [illegible] राज मान हो कर श्वेत वस्त्र पहिने सामने आये उधर से धृष्टद्युम्न जी पाण्डवों के महा सेना पति रथ पर चढ़ कर बाहिर निकले। दोनों सेना एक दूसरे के सामने आकर डट गईं॥

उद्योग पर्व उद्योग बढ़ाएके क्षत्रि धर्म पुनीत सिखावे।
नीति सिखाये कुनीति हरे, बलतेज बढाय दारिद्र नशावे॥